श्रीसच्चिदानन्दब्रह्मणे नमः ।

प्रस्तावना ।

हे पाठकगण ! उस सच्चिदानंद परब्रह्मको हम कोटिशः धन्यवाद देतेहैं कि, जिसने वेदांत सिद्धांत वाक्यरूप करतनियोंसे हमारा मायाजाल कतरकर उद्धारकियाहै; और आनंदमय अपना धाम दरशायाहै. अहो ! उस दयालु प्रभुकी दयालुताको हम कैसे वर्णन करसकतेहैं ? कि, जिसने चौरासी लक्ष योनियोंमें भ्रमतेहुए हमलोगोंको मनुष्यशरीर दिया; फिरभी हमारा अज्ञान नष्ट करनेके लिये वेदांतशास्त्र प्रकट किया । हाय ! तिसपर भी हम न समझें तो हमारी ऐसी मूर्खता है कि, जैसे हथेलीपर आयाहुवा अमृत अज्ञानसे त्यागदेना; और खाना नहीं अब प्रकृतको अनुसरण करतेहैं कि, हे पाठकगण ! उसी वेदांतसिद्धांतशास्त्रमें यह एक ग्रंथ योगवासिष्ठ है जो कि महर्षि वाल्मीकिजीने निर्माणकियाहै; और वशिष्ठजी महाराजने रघुवंशमणि श्रीरामचंद्रजीके प्रति उपदेशकियाहै । अहो इस ग्रंथकी शैलीको क्या अन्य ग्रंथ प्राप्त हो सकताहै ? कदापि नहीं. कि जिसमें वेदांतके गूढ पदार्थ कथारूपकरके ऐसी सरलरीतिसे दरशायेहैं कि, मानो करतलमें आमलक, अब इस आबालवृद्ध विख्यात अतिअवदात ग्रंथकी अविज्ञात ग्रंथके समान प्रशंसा करनी उचित न समझकर इस भाषाग्रंथके विषयमें लिखताहूँ कि, यह योगवासिष्ठ भाषाग्रंथ ऐसा कदापि न जानना चाहिये कि, अज्ञानभ्रमको दूर नहीं करसके; यह अवश्य ही अज्ञानभ्रमको दूर करताहै क्योंकि, किसी महात्माने युक्तिके साथ कहाहै जैसे कि–

दोहा–ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित, ताकी वाणी वेद ।
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेद भ्रम छेद ॥ १ ॥

इसलिये जब अन्य ब्रह्मज्ञानीजननकी भाषावाणी भी अज्ञान दूरकरनेकेलिये वेदरूप है तो फिर महर्षि वाल्मीकिजीके ग्रंथके भाषानुवादका तौ कहनाही क्या है; यद्यपि यह ग्रंथ अक्षरार्थानुरूप अनुवादित नहीं कियागया किंतु कथानुरूप अनुवादित कियागयाहै तथापि इसके कथादृष्टांतोंको दार्ष्टांतिकोंपर ऐसा समेटाहै कि, मानो सागरका जल गागरमें भरलियाहै इसका कथानुरूप अनुवाद होनेका कारण भिन्नभिन्नप्रकारसे सुनाजाताहै कोई तौ कहतेहैं कि, कोई माहात्मा कहीं योगवासिष्ठकी कथा श्रवणकरके आयाकरते और अति दयालुतासे मुमुक्षुजनोंके हितार्थ उतनीही कथाको कंठसे लिखलियाकरतेथे; और कोई ऐसा कहतेहैं कि अबसे १०० वर्ष पूर्व पंजाबदेशके अंतर्गत सर्वविज्ञात पटियाला नाम राजधानीमें

श्रीसाहबसिंह नामवाले राजा हुए उनकी दो बहिन विधवायें थीं उनकी अद्वैतमतमें अत्यंत निष्ठा थी इसलिये वेदांतशास्त्रकी ही कथा श्रवण कियाकरतीथीं; एक समय निरंजनी साधु रामप्रसादजीके मुखसे इन्होंने इस योगवासिष्ठकी कथा श्रवणकरी पश्चात् वेदांतसिद्धांतका प्रकाशक सूर्यरूप इस ग्रंथको समझकर इन्होंने विचार किया कि, यह उत्तम ग्रंथ देववाणीमें होनेसे सर्वोपयोगी नहीं इसलिये इसकी भाषा कराकर हम ऐहलौकिक यश और पारलौकिक कल्याणको प्राप्तहोवें ऐसा विचारकर फिर उसी (उक्त) साधुसे कथाका प्रारंभ कराया और दोपंडित लिखनेके वास्ते बैठादिये; जैसे जैसे ये साधु कथाका व्याख्यान करतेगये वैसे वैसेही पंडित लिखतेगये आशय यह कि, व्याख्यानरूप यह योगवासिष्ठकी सम्पूर्ण कथा पंजाबीमिश्र हिंदुस्थानीभाषामें लिखीगई और दोनों पुस्तकोंको मिलानकर शुद्ध एक प्रति बनाईगई। पश्चात् अतिउत्तम होनेके कारण शीघ्रही यह ग्रंथ सब देशोंमें प्रचलित होगया इसलिये इन पूर्वोक्त उपकारपरायणोंको हम कोटिशः धन्यवाद देतेहैं कि जिनने परलोकसुखसाधन यह ग्रंथ प्रचलितकरके परम उपकार किया। इस ग्रंथके वैराग्य-आदि षट् ६ प्रकरण हैं उनमें तिस तिस नामवाले प्रकरणमें तिस तिस विषयका ऐसा वर्णन कियाहै कि, मानो साक्षात् मूर्त्तिमान् यह विषय उपस्थितहै इसलिये [illegible] इसमें ऐसा दरशाया कि, जिसका श्रवण मनन और निदिध्यासन करनेसे अवश्यही मनुष्य प्रपंचजालसे छूटकर मोक्षपदका भागी होजाताहै यह ग्रंथ अति शुद्ध कराकर मैंने अपने यंत्रालयमें प्रकाशित कियाहै और महात्माओंकी यथारुचिके कारण मैंने यह दोप्रकारसे मुद्रित कियाहै एक ग्रंथसाइज व दूसरा बुकसाइज तथापि बुकसाइज सुनहरी काम कराकर अति उत्तम बनवाई है और यह सर्व समय विचारोपयोगी होनेके कारण बुकसाइजके दो विभाग कियेगयेहैं। और महात्माओंसे निवेदनहै कि, इसमें कहीं दृष्टिदोषसे अशुद्धि हों सो क्षमा करें।

आपका कृपाकांक्षी—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयाध्यक्ष,—बंबई.

योगवासिष्ठकी अनुक्रमणिका ।

वैराग्यप्रकरणकी अनुक्रमणिका १.

सर्गांक.	सर्गनाम.	पृष्ठांक.
१	कथारंभ	१
२	तीर्थयात्रावर्णन	९
३	विश्वामित्रागमनवर्णन	१२
४	विश्वामित्रेच्छावर्णन	१७
५	दशरथोक्तिवर्णन	१९
६	रामसमाजवर्णन	२२
७	रामेणवैराग्यवर्णन	२८
८	लक्ष्मीतिरस्कारवर्णन	३१
९	संसारसुखनिषेधवर्णन	३३
१०	अहंकारदुराशावर्णन	३६
११	चित्तदौरात्म्यवर्णन	३८
१२	तृष्णागारुडीवर्णन	४२
१३	देहनैराश्यवर्णन	४९
१४	बालावस्थावर्णन	५२
१५	युवागारुडीवर्णन	५४
१६	स्त्रीदुराशावर्णन	५९
१७	जरावस्थावर्णन	६२
१८	कालवृत्तांतवर्णन	६५
१९	कालविलासवर्णन	६८
२०	कालकालिकावर्णनं	६९
२१	कालविलासवर्णन	७१
२२	सर्वपदार्थाभाववर्णन	७३
२३	जगद्विपर्ययवर्णन	७७
२४	सर्वांतप्रतिपादनवर्णन	८०
२५	वैराग्यप्रयोजनवर्णन	८२
२६	अनन्यत्यागवर्णन	८४
२७	देवसमाजवर्णन	८६
२८	मुनिसमाजवर्णन	८७

मुमुक्षुप्रकरणकी अनुक्रमणिका २.

सर्गांक.	सर्गनाम.	पृष्ठांक.
१	शुकनिर्वाणवर्णन	८९
२	विश्वामित्रोपदेशवर्णन	९२
३	असंख्यसृष्टिप्रतिपादनवर्णन	९४
४	पुरुषार्थोपक्रमवर्णन	९७
५	पुरुषार्थवर्णन	९८
६	परमपुरुषार्थवर्णन	१०२
७	पुरुषार्थोपमावर्णन	१०४
८	परमपुरुषार्थवर्णन	१०७
९	परमपुरुषार्थवर्णन	१०९
१०	वसिष्ठोत्पत्तितथावसिष्ठोपदेशागमन वर्णन	१११
११	वसिष्ठोपदेशवर्णन	११४
१२	तत्त्वज्ञमाहात्म्यवर्णन	११९
१३	शमनिरूपण	१२२
१४	विचारनिरूपण	१२८
१५	संतोषनिरूपण	१३४
१६	साधुसंगनिरूपण	१३५
१७	षट्प्रकरणविवरण	१३८
१८	दृष्टांतप्रमाणवर्णन	१४२
१९	आत्मप्राप्तिवर्णन	१४८

उत्पत्तिप्रकरणकी अनुक्रमणिका ३.

सर्गांक.	सर्गनाम.	पृष्ठांक.
१	बोधहेतुवर्णन	१५१
२	प्रथमसृष्टिवर्णन	१५४
३	बोधहेतुवर्णन	१५७
४	बोधहेतुवर्णन	१६०
५	प्रयत्नोपदेशवर्णन	१६५

सर्गांक.	सर्गनाम.	पृष्ठांक.
	दृश्यासत्यप्रतिपादन	.... १६८
	सच्छास्त्रनिर्णय	.... १७१
	परमकारणवर्णन	.... १७२
	परमात्मास्वरूपवर्णन	.... १७७
	परमार्थरूपवर्णन	.... १८१
	जगदुत्पत्तिवर्णन	.... १८३
	स्वयंभूत्पत्तिवर्णन	.... १८५
	सर्वब्रह्मप्रतिपादन	.... १८७
	मंडपाख्याने परमार्थप्रतिपादन	.... १९३
	विश्रांतिवर्णन	.... २०७
	विज्ञानअभ्यासवर्णन	.... २१०
	लीलाविज्ञानदेहाकाशसमागमनवर्णन	२१४
	लीलोपाख्याने आकाशगमनवर्णन	२१५
	लीलोपाख्याने भूलोकगमनवर्णन	२१६
०	लीलोपाख्याने सिद्धदर्शनहेतुकथन	२१७
१	लीलोपाख्याने जन्मांतरवर्णन	.... २१९
२	लीलोपाख्याने गिरिग्रामवर्णन	.... २२२
३	लीलोपाख्याने पुनराकाशगमन	.... २२४
४	लीलोपाख्याने ब्रह्मांडवर्णन	.... २२६
५	लीलोपाख्याने गगननगरयुद्धप्रेक्षकान्वितवर्णन	.... २२८
१६	लीलोपाख्याने रणभूमिवर्णन	.... २३०
१७	लीलोपाख्याने द्वंद्वयुद्धवर्णन	.... २३१
१८	लीलोपाख्याने स्मृतिअनुभव	.... २३३
१९	लीलोपाख्याने भ्रांतिविचार	.... २३९
२०	लीलोपाख्याने स्वप्नपुरुषसत्यता	.... २४४
२१	लीलोपाख्याने अग्निदाहवर्णन	.... २४६
२२	लीलोपाख्याने अग्निदाहवर्णन	.... २४७
२३	लीलोपाख्याने सत्यकामसंकल्प	.... २५१
२४	लीलोपाख्याने विदूरथमानभंगवर्णन	२५२
२५	लीलोपाख्याने मृत्युमूर्च्छानंतरप्रतिमावर्णन	.... २५६
३६	लीलोपाख्याने मंडपाकाशगमन	.... २५९
३७	लीलोपाख्याने मृत्युविचारवर्णन	.... २६२
३८	लीलोपाख्याने संसारभ्रमवर्णन	.... २६८
३९	लीलोपाख्याने मरणानंतरावस्था	.... २७३
४०	लीलोपाख्याने स्वप्नपदार्थसत्यतानिर्णय	२७७
४१	लीलोपाख्याने जीवजीवनवर्णन	.... २८०
४२	लीलोपाख्याने निर्वाणवर्णन	.... २८३
४३	प्रयोजनवर्णन :	.... २८४
४४	जगत्किंचनवर्णन	.... २९०
४५	दैवशब्दार्थविचारवर्णन	.... २९४
४६	बीजावतारवर्णन	.... २९६
४७	बीजांकुरवर्णन	.... २९७
४८	जीवविचारवर्णन	.... ३००
४९	संश्रितउपशमयोगवर्णन	.... ३०२
५०	सत्योपदेशवर्णन	.... ३०४
५१	विषूचिकाव्यवहार	.... ३१०
५२	सूचीशरीरलाभवर्णन	.... ३१३
५३	राक्षसीविचारवर्णन	.... ३१६
५४	राक्षसीविचारवर्णन	.... ३१८
५५	राक्षसीप्रश्नवर्णन	.... ३२०
५६	राक्षसीप्रश्नभेदवर्णन	.... ३२३
५७	सूचीउपाख्यानेपरमार्थनिरूपण	.... ३२८
५८	राक्षसीसुहृदतावर्णन	.... ३३५
५९	सूचीउपाख्यानसमाप्तिवर्णन	.... ३३९
६०	मनअंकुरउत्पत्तिकथन	.... ३४०
६१	आदित्यसमागमवर्णन	.... ३४४
६२	ऐंदवसमाधिवर्णन	.... ३४६
६३	जगद्रचनानिर्वाण	.... ३४९
६४	ऐंदवनिश्चयकथन	.... ३५०
६५	कृत्रिमइंद्रवाक्य	.... ३५२
६६	अहल्यानुरागसमाप्तिवर्णन	.... ३५५
६७	जीवकर्मोपदेशवर्णन	.... ३५३

सर्गाङ्क.	सर्गनाम.	पृष्ठाङ्क.
६८	मनोमाहात्म्यवर्णन	.... ३५९
६९	वासनात्याग	.... ३६२
७०	सर्वब्रह्मप्रतिपादन	.... ३६४
७१	कर्मपौरुषऐक्यप्रतिपादन	.... ३६५
७२	मनोसंज्ञाविचार	.... ३६७
७३	चित्तोपाख्यानवर्णन	.... ३७२
७४	चित्तोपाख्यान	.... ३७४
७५	चित्तोपाख्यानसमाप्तिवर्णन	.... ३७६
७६	चित्तचिकित्सावर्णन	.... ३७९
७७	बालकाख्यायिका	.... ३८१
७८	मननिर्वाणोपदेशवर्णन....	.... ३८५
७९	चित्तमाहात्म्यवर्णन	.... ३८२
८०	इन्द्रजालोपाख्याने नृपमोहनवर्णन	.... ३९०
८१	राजाप्रबोधवर्णन	.... ३९३
८२	चांडालीविवाह	.... ३९५
८३	इन्द्रजालोपाख्याने उपद्रववर्णन	... ३९७
८४	शम्बरोपाख्यानसमाप्तिवर्णन	.... ३९९
८५	चित्तवर्णन	.... ४०१
८६	मनशक्तिरूपप्रतिपादन	.... ४०६
८७	सुखोपदेशकथन	.... ४१०
८८	अविद्यावर्णन	.... ४१२
८९	यथाकथितदोषपरिहारोपदेशवर्णन	४२३
९०	सुखदुःखभोक्तव्योपदेशकथन	.... ४२३
९१	सात्विकजन्मावतार	.... ४२६
९२	अज्ञानभूमिकावर्णन	.... ४२८
९३	ज्ञानभूमिकोपदेशवर्णन	.... ४३०
९४	युक्तोपदेशवर्णन	.... ४३२
९५	चांडालीशोकवर्णन	.... ४३४
९६	चित्तामात्रप्रतिपादन	.... ४३५
९७	परमार्थनिरूपण	.... ४३८

स्थितिप्रकरणकी अनुक्रमणिका४.

सर्गांक.	सर्गनाम.	पृष्ठाङ्क.
१	जगन्निराकरणवर्णन	.... ४४३
२	स्मृतित्रीजोपन्यास	.... ४४५
३	जगदनन्तवर्णन	.... ४४७
४	अङ्कुरवर्णन	.... ४४९
५	भार्गवसंवितगमन	.... ४५०
६	भार्गवमनोराजवर्णन	.... ४५२
७	भार्गवसंगमवर्णन	.... ४५३
८	भार्गवोपाख्याने विविधजन्मवर्णन	.... ४५५
९	भार्गवकलेवरवर्णन	.... ४५७
१०	कालवाक्य ...	.... ४५८
११	संसारावर्त्तवर्णन ...	.... ४६२
१२	उत्पत्तिविस्तारवर्णन	.... ४६७
१३	भृगुआश्वासनवर्णन	.... ४६८
१४	भार्गवजन्मांतर	.... ४७०
१५	शुक्रकाप्रथमजीवनवर्णन	.... ४७२
१६	भार्गवजन्मांतरवर्णन	.... ४७४
१७	मनोराजसम्मीलनवर्णन	.... ४७६
१८	जीवपदवर्णन	.... ४७८
१९	जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयारूपवर्णन	.... ४८३
२०	भार्गवोपाख्यानसमाप्तिवर्णन	.... ४८६
२१	विज्ञानवादवर्णन	.... ४८७
२२	अनुत्तमविश्रामवर्णन	.... ४९१
२३	शरीरनगरवर्णन	.... ४९४
२४	मनस्वीसत्यताप्रतिपादन	.... ४९८
२५	दामव्यालकटोत्पत्तिवर्णन	.... ५००
२६	दामव्यालकटसंग्रामवर्णन	.... ५०२
२७	दामोपाख्याने ब्रह्मवाक्यवर्णन	.... ५०४
२८	सुरासुरयुद्धवर्णन	.... ५०७
२९	दामव्यालकटोपाख्याने असुरहनन वर्णन	.... ५०८

सर्गाङ्क.	सर्गनाम.	पृष्ठाङ्क.
३०	दामव्यालकटजन्मांतरवर्णन	५१०
३१	निर्वाणोपदेशवर्णन	५११
३२	दामव्यालकटोपाख्याने देशाचारवर्णन	५१५
३३	दामव्यालकटोपाख्याने पुरुषार्थवर्णन	५१९
३४	दामव्यालकटोपाख्यानसमाप्तिवर्णन	५२४
३५	उपशमरूपवर्णन	५२७
३६	चिदात्मरूपवर्णन	५३२
३७	शांतिउपदेशकरण	५३४
३८	मोक्षोपदेशवर्णन	५३५
३९	सर्वैकताप्रतिपादन	५३८
४०	ब्रह्मप्रतिपादन	५४२
४१	अविद्याकथन ...	५४५
४२	जीवतत्त्ववर्णन	५४८
४३	जीवबीजस्थानवर्णन	५५१
४४	संसारप्रतिपादन	५५४
४५	यथार्थोपदेशयोगवर्णन	५५८
४६	यथाभूतार्थबोधयोगवर्णन	५६२
४७	जगत्सत्यासत्यनिर्णय	५६४
४८	दासुरोपाख्याने वनोपरुदनवर्णन	५७०
४९	दासुरोपाख्याने अवलोकनवर्णन	५७३
५०	दासुरसुतबोधवर्णन ...	"
५१	श्वेतथवैभववर्णन	५७६
५२	संसारविचारवर्णन	५७८
५३	दासुरोपाख्याने जगच्चिकित्सावर्णन...	५८२
५४	दासुराख्यानसमाप्तिवर्णन	५८५
५५	कर्तव्यविचारवर्णन	५८६
५६	पूर्णस्वरूपवर्णन ..	५९१
५७	कचगाथावर्णन ...	५९६
५८	कमलजाव्यवहारवर्णन	५९७
५९	विचारपुरुषनिर्णय	६०१
६०	मोक्षविचारवर्णन	६०३
६१	मोक्षोपायवर्णन	६०५

उपशमप्रकरणकी अनुक्रमणिका ५.

सर्गाङ्क.	सर्गनाम.	पृष्ठाङ्क.
१	पूर्वदिनवर्णन	६०९
२	उपदेशानुसारवर्णन	६१०
३	सभास्थानवर्णन	६१४
४	राघवप्रश्नवर्णन	६१५
५	प्रथमोपदेशवर्णन ...	६१८
६	क्रमोपदेशवर्णन	६२३
७	क्रमसूचनावर्णन	६२४
८	सिद्धगीतावर्णन	६२५
९	जनकविचारवर्णन	६२७
१०	जनकनिश्चयवर्णन	६३३
११	चित्तानुसारवर्णन	६३५
१२	प्राज्ञमहिमावर्णन ...	६३७
१३	मननिर्वाणवर्णन	६३९
१४	चित्तचैत्यरूपवर्णन	६४८
१५	तृष्णावर्णन ...	६५२
१६	तृष्णाचिकित्सोपदेश	६५४
१७	तृष्णोपदेश	६५६
१८	जीवन्मुक्तिवर्णन	६५९
१९	पावनबोधवर्णन ...	६६४
२०	पावनबोधवर्णन	६६७
२१	तृष्णाचिकित्सोपदेश	६७०
२२	विरोचनवर्णन	६७२
२३	बलिवृत्तांतविरोचनगाथा	६७५

सर्गांक.	सर्गनाम.	पृष्ठांक.
२४	बलोपाख्यानेचित्तचिकित्सोपदेश	.... ६७७
२५	बलिचिंतासिद्धांतोपदेश	.... ६८१
२६	बलोपदेश....	.... ६८६
२७	बलिविश्रांतिवर्णन	.... ७८४
२८	बलिविज्ञानप्राप्तिवर्णन	.... ६८४
२९	बलोपाख्यानसमाप्तिवर्णन	.... ६८८
३०	हिरण्यकशिपुवधवर्णन....	.... ६९२
३१	प्रह्लादविज्ञानवर्णन	.... ६९४
३२	प्रह्लादोपाख्यानेविविधव्यतिरेकवर्णन	६९८
३३	प्रह्लादाष्टकानंतरनारायणागमनवर्णन	७००
३४	प्रह्लादोपदेशवर्णन	.... ७०२
३५	प्रह्लादात्मलाभचिंतनवर्णन	.... ७०९
३६	प्रह्लादोपाख्याने संस्तवनवर्णन	.... ७१५
३७	दैत्यपुरीप्रभंजनवर्णन	.... ७२०
३८	भगवान्‌चित्तविवेकवर्णन	.... ७२१
३९	नारायणवचनोपन्यासवर्णन	.... ७२३
४०	प्रह्लादबोधवर्णन	.... ७२५
४१	प्रह्लादाभिषेकवर्णन	.... ७२७
४२	प्रह्लादावस्थावर्णन	.... ७३०
४३	प्रह्लादविश्रांतिवर्णन	.... ७३२
४४	गाधीआख्यानेचांडालीवर्णन	.... ७३४
४५	राजप्रध्वंसवर्णन	.... ७३७
४६	गाधीबोधप्राप्तिवर्णन	.... ७४०
४७	राघवसेवनवर्णन	.... ७४८
४८	उद्दालकविचारवर्णन	.... ७५४
४९	उद्दालकविश्रांतिवर्णन	.... ७६०
५०	उद्दालकनिर्वाणवर्णन	.... ७६६
५१	ध्यानविचारवर्णन	.... ७६८
५२	भेदनिराशावर्णन	.... ७७३
५३	सुरघवृत्तांतमांडव्योपदेश	.... ७७४
५४	सुरघवृत्तांतवर्णन	.... ७७७
५५	सुरघवृत्तांतसमाप्तिवर्णन	.... ७७९
५६	सुरघपरिघसमागमवर्णन	.... ७८१
५७	समाधिनिश्चयवर्णन	.... ७८४
५८	सुरघपरिघनिश्चयवर्णन....	.... ७८६
५९	कारणोपदेशवर्णन	.... ७८७
६०	भासविलासवृत्तांतवर्णन	.... ७९१
६१	अनित्यताप्रतिपादन	.... ७९२
६२	अंतरासंगविचारवर्णन....	.... ७९४
६३	संसक्तविचारवर्णन	.... ७९७
६४	शांतिसमाचारयोगोपदेश	.... ८०१
६५	संसक्तचिकित्सावर्णन	.... ८०२
६६	संसारयोगोपदेशवर्णन....	.... ८०५
६७	मोक्षस्वरूपोपदेशवर्णन	.... ८१०
६८	आत्मविचारवर्णन	.... ८१४
६९	निरास्पदमौनविचारवर्णन	.... ८१७
७०	मुक्तामुक्तविचारवर्णन	.... ८२५
७१	संसारसागरयोगोपदेशवर्णन	.... ८२९
७२	जीवन्मुक्तवर्णन	.... ८३१
७३	जीवन्मुक्तिज्ञानबंधवर्णन	.... ८३४
७४	सम्यक्‌ज्ञानवर्णन	.... ८३८
७५	चित्तोपशमयोगवर्णन	.... ८३९
७६	चित्तशांतिप्रतिपादन	.... ८४३
७७	वीतवोपाख्याने चित्तानुशासनवर्णन	८४४
७८	वीतवोपाख्याने अनुशासनयोगोपदेश	८५०

सर्गांक.	सर्गनाम.	पृष्ठांक.
७९	” चित्तोपदेशवर्णन	८५३
८०	” मनोयज्ञवर्णन	८५६
८१	वीतवोपाख्यानेवीतवसमाधियोगोपदेशवर्णन	८५८
८२	” इंद्रियनिर्वाणवर्णन....	८६०
८३	वीतवनिर्वाणयोगोपदेशवर्णन	८६४
८४	वीतवोपाख्यानसमाप्तिवर्णन	८६६
८५	सिद्धिलाभविचारवर्णन....	८६७
८६	ज्ञानविचारवर्णन	८७१
८७	स्मृतिबीजविचारवर्णन	८७५
८८	संशयनिराकरणोपदेशवर्णन ...	८८२
८९	मोक्षोपायवर्णन	८८६

इति.
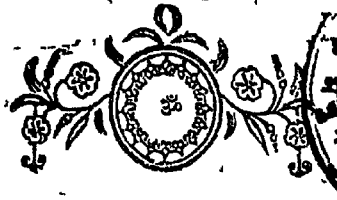
परमात्मने नमः ।

अथ श्रीयोगवासिष्ठे

वैराग्यप्रकरण प्रारंभ ।

प्रथमः सर्गः १.
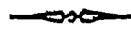
अथ कथारंभ वर्णनम् ।

सत्-चित्-आनंदरूप जो आत्मा है तिसको नमस्कार है. सो कैसा है जिसते यह सब भासत है, अरु जिसविषे यह सर्वलीन होत है, अरु जिस विषे यह सब स्थित है, तिस सत्य आत्माको नमस्कार है. ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, कर्त्ता, करण, क्रिया, जिसकरके सिद्ध होता है, ऐसा जो ज्ञानरूप आत्मा है, तिसको नमस्कार है. जिस आनंदके समुद्रके कणसों संपूर्ण विश्व आनंदवान् है, अरु जिस आनंद करि सर्व जीव जीवते हैं, तिस आनंद आत्माको नमस्कार है.

कोई एक सुतीक्ष्ण अगस्त्यमुनिका शिष्य होत भया तिसके मनमें एक संशय उत्पन्न हुआ, तिसको निवृत्त करनेके अर्थ अगस्त्यमुनिके आश्रमको गमन किया जायकर विधिसंयुक्त प्रणाम करि स्थित भया, और नम्र भावसों प्रश्न करने लगा.

सुतीक्ष्णोवाच, हे भगवन्! सर्वतत्त्वज्ञ, सर्व शास्त्रोंके ज्ञाता, एक संशय मुझको है सो तुम कृपा करके निवृत्त करो. मोक्षका कारण कर्म है, कि ज्ञान है कि दोनों हैं? याते जो मोक्षका कारण होय सो कहो.

अगस्त्योवाच, हे ब्रह्मण्य! केवल कर्म मोक्षका कारण नहीं और केवल ज्ञानते भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता. दोनों करके मोक्षकी प्राप्ति होतीहै. कर्म

करके अंतःकरण शुद्ध होता है मोक्ष नहीं होता. अरु अंतःकरणशुद्धि विना केवल ज्ञानते भी मुक्ति नहीं होती, अर्थ यह जो शास्त्रका तात्पर्य ज्ञानका निश्चय अंतःकरण शुद्ध हुए विना ज्ञानकी स्थिति नहीं होती. ताते दोनों करके मोक्षकी सिद्धि होती है. कर्म करके प्रथमअंतःकरणकी शुद्धि होती है. बहुरि ज्ञान उपजता है; तब मोक्षकी सिद्धि होती है. जैसे दोनों पंख करके पक्षी आकाशमार्गको सुखेन सों उडता है. तैसे कर्म अरु ज्ञान दोनों कर मोक्षसिद्ध होता है. हे ब्रह्मण्य ! इस अर्थके अनुसार एक पुरातन इतिहास है सो तू श्रवण कर.

एक कारण नाम ब्राह्मण अग्निवेशका पुत्र था, सो गुरुके निकट जायकर चार वेद षडङ्ग सहित अध्ययन करत भया. अध्ययन करके घरको आवत भया. और कर्मते रहित होय कर चुप रहा; अर्थ यह जो संशययुक्त होय कर्मते रहित भया तब पिताने देखा जो यह कर्म ते रहित होयकर स्थित भया है. ऐसा देखके इस प्रकार कहत भया-

अग्निवेशोवाच, हे पुत्र ! कर्मकी पालना क्यों नहीं कर्त्ता और तू कर्मके न करनेते सिद्धताको कैसे प्राप्त होवेगा ? जिसकरके तू कर्मते रहित हुआ है, सो कारण कहिदे.

कारणोवाच, हे पिताजी ! एक संशय मुझको उत्पन्न हुवा है. तिस करके मैं कर्मते चुप रहा हों, सो श्रवण करो. वेदने एक ठौर कहा है कि, जबलग जीवता रहै तब लग कर्मको करना. जो अग्निहोत्रादिक कर्म हैं, सो करताई रहै अरु और ठौर कहा है कि, धन करके मोक्ष होत नाहीं और कर्म करके मोक्ष होत नाहीं, और पुत्रादिक करके मोक्ष होत नाहीं केवल त्यागते मोक्ष होता है। इन दोनों विषे मुझको क्या कर्त्तव्य है ? यह संशय है। सो तुम कृपा करके निवृत्तकरो, कि क्या कर्तव्य है ? अगस्त्योवाच, हे सुतीक्ष्ण ! ऐसे जब कारणने पिताको कहा; तब तिसका वचन सुन अग्निवेश कहत भया.

अग्निवेशोवाच, हे पुत्र! एक कथा मुझते तू श्रवण कर जो पहिले हुईहै, तिसको सुनकर हृदय विषे धरके, आगे जो तेरी इच्छा होय सोई करना

एक सुरुचि नाम अप्सरा हती,सो जेती कुछ अप्सरा हतीं, तिनके विषे उत्तम थी. सो एक समय हिमालयके शिखरपर बैठी थी सो हिमालय पर्वत कैसा है ? कि कामना करके संपन्न जो हृदयमें विचारे, सो पावे. तहां देवता अरु किन्नरके गण अप्सराके साथ क्रीडा करते हैं और कैसा है. जहां गंगाजीका प्रवाह लहरी देत चला आवत है सो गंगा कैसी है कि, महा पवित्र जल है जिसका, ऐसे शिखरपर सुरुचि अप्सरा बैठी थी; तिसने इंद्रका दूत अंतरिक्षते चला आवत देखा.जब निकट आया, तब अप्सराने कहा. अहो सौभाग्य देवदूत ! तू देवगणमें श्रेष्ठ है तू कहांते आया और कहां जायगा? सो कृपा करके कहि दे.

देवदूतोवाच, हे सुभद्रे ! तैंने पूछा है सो श्रवण कर, अरिष्टनेमि एक राजर्षि था, वाने अपने पुत्रको राज्य देकर वैराग्य लिया, संपूर्ण विषयोंकी अभिलाषा त्याग करके गंधमादन पर्वतमें जायकर भयंकर तप करने लगा, अरु धर्मात्माथा तिसके साथ मेरा एक कार्यथा,सो कार्य करके मैं अब इंद्रके पास चला जाता हौं तिसका मैं दूत हौं संपूर्ण वृत्तांत निवेदन करनेको चला हौं.

अप्सरोवाच, हे भगवान् ! वृत्तांत कौनसाहै ? सो मुझसे कहो. मेरेको तू अति प्रिय है; यह जानकर पूछती हूं और जो महापुरुषहैं, तिनसोंकोई प्रश्न करता है, तब वह उद्वेगते रहित होकर उत्तर देता है, ताते तू कहि दे.

देवदूतोवाच, हे भद्रे ! जो वृत्तांत है सो सुन. विस्तार करके मैं तुझको कहता हौं वह जो राजागंधमादन पर्वतमें तप करने लगा, सो बड़ा तप किया. तब देवतोंके राजा जो इंद्र हैं तिसने मुझको बोलाय कर आज्ञा करी कि, हे दूत ! तू गंधमादन पर्वतमें जा. और विमान, अप्सरा, नाना प्रकारकी सामग्री,गंधर्व,यक्ष,सिद्ध, किन्नर, ताल, मृदंग आदि वादित्र, संग लेजा और वह गंधमादन पर्वत कैसा है ? जो नाना प्रकारकी लता वृक्ष करके पूर्ण है, तहां जायके राजाको विमानपर बिठायके, इहां ल्याव. हे सुन्दरी ! जब इंद्रने ऐसा कहा, तब मैं विमान अरु सामग्री सहित तहां आया. अरु राजासे कहा-हे राजन् ! तेरे कारण विमान ले आयाहूं,तापर

बैठके तू स्वर्गको चल और देवतानके भोग भोगु जब मैं ऐसे कहा तब मेरा वचन सुनकर राजा बोलत भया.

राजोवाच, हे देवदूत ! प्रथम स्वर्गका वृत्तांत तू मुझसे कह कि, तेरे स्वर्गमें दोष कहा अरु गुण कहा है ? तिनको सुनके मैं हृदयमें विचारों पाछे जो मेरी इच्छा होवेगी तो आऊँगा.

देवदूतोवाच.हे राजन् ! स्वर्गमें बड़े दिव्य भोग हैं सो स्वर्ग बडे पुण्यसों जीव पाते हैं जो बडे पुण्यवाले होते हैं, सो उत्तम सुख स्वर्गको पाते हैं,जो मध्यम पुण्यवाले हैं सुख स्वर्गको पाते हैं अरु जो कनिष्ठ पुण्यवाले हैं सो कनिष्ठ सुख स्वर्गको पाते हैं यह तो गुण स्वर्गमें है सो तोसों कहे हैं. और स्वर्गके जो दोष हैंसो सुन-हे राजन् ! जो आपने ऊंचे बैठे दृष्टि आवते हैं, अरु उत्तम सुख भोगते हैं, तिनके देखके ताप उत्पत्ति होतीहै क्योंकि, उनकी उत्कृष्टता सही नहीं जाती है अरु जो कोई अपने समान सुख भोगते हैं, तिनको देखके क्रोध उपजत है, कि मेरे समान क्यों बैठे हैं, अरु जो अपने नीचे बैठे हैं कनिष्ठ पुण्यवाले तिनको देखके आपको अभिमान उपजत है. कि, मैं इनते श्रेष्ठ हौं और एक और भी दोष है. कि जब उसके पुण्य क्षीणहोते हैं तब तिसी कालमें उसको मृत्युलोकमें गिराय देते हैं, एक क्षणभी रहने देते नहीं. हे राजन् ! यह जो दोष कहे सो स्वर्गमें हैं. जो तैंने पूंछा सो मैंने गुण अरु दोष कहे.

हे भद्रे ! जब इसप्रकार राजासे मैंने कहा तब मोको राजाने कहा हे देवदूत ! इस स्वर्गके योग्य हम नहीं हैं, अरु हमको इच्छाभी नहीं है. हम उग्र तप करेंगे. तप करके इस देहको भी त्याग देंगे. जैसे सर्प अपनी त्वचाको पुरातन जानिकै त्याग करताहै, तैसे हम भी त्याग कर देंगे, हे देवदूत ! तुम अपने विमानको जहांते लाये हो, तहां लेजाओ, हमारेतो नमस्कार हैं.

हे देवी ! जब इस प्रकार राजाने मुझको कहा, तब विमान अप्सरा आदि सबको लेके स्वर्गमें गया, अरु संपूर्ण वर्त्तमान इंद्रसे कहा. तब इंद्र प्रसन्न हुवा अरु सुंदर वाणी करके मुझसे कहत भया-हे दूत ! तू

बहुरि जहां राजा है तहां जा. वह संसारते उपराम हुआहै. इसकी अब आत्मपदकी इच्छा हुईहै. इसको साथलेके वाल्मीकिजिसने आत्मतत्त्वको आत्मा करि जाना है; तिसके पास ले जाव मेरा संदेशा कहना कि, हे महाऋषि! इस राजाको तत्त्वबोधका उपदेश करना; क्योंकि यह बोधका अधिकारी है. काहेते कि, इसको स्वर्गकी भी इच्छा नहीं, अरु औरकीभी वांछा नहीं; ताते तुम इनको तत्त्वबोधका उपदेश करो, जो तत्त्वबोधको पाय करके संसार दुःखते मुक्त होवे.

हे सुभद्रे! जब इस प्रकार देवराजने मुझसे कहा, तब मैं चला. जहां राजाथा, तहां जाइ करिके मैंने कहा-कि हे राजन्! संसार समुद्रते मोक्ष होनेके निमित्त वाल्मीकिके पास चल, वाल्मीकि तुझको उपदेश करैगा. तब तिसको साथ लेकर, मैं वाल्मीकिके स्थानपर आय प्राप्त भया. तिस स्थानमें राजाको बिठाया, अरु इंद्रका संदेश कह दिया. जो वहां वृत्तान्त भया सो सुन—जब वहां गये, अरु प्रणाम कर बैठे, तब वाल्मीकिने कहा-हे राजन् कुशल है?

राजोवाच; हे भगवान्! परम तत्त्वज्ञ और वेदांत जाननेवालोंमें श्रेष्ठ! मैं अब कृतार्थ हुआ. तुम्हारे दर्शन करके अब मुझको कुशल हुआ है अरु कछु पूछता हों. कृपा करके उत्तर कहना, जिससे संसार-बंधनते मुक्ति होय.

वाल्मीकिउवाच, हे राजन्! महारामायण औषध तुझसे कहता होंसो श्रवण करके तात्पर्य हृदय विषे धारणेका यत्न कर. जब तात्पर्य हृदय विषे धारेगा, तब जीवन्मुक्त होयकर विचरेगा, हेराजन्! वशिष्ठजी अरु रामचंद्रजीका संवाद है. तिसमें सब कथा मोक्षके उपायकी कही है. तिसको सुनके जैसे रामचंद्रजी अपने स्वभाव विषे स्थित हुए, अरु जीवन्मुक्त होयके विचरे हैं तैसे तूभी विचरेगा.

राजोवाच, हेभगवन्! रामचंद्रजी कौनथा, अरु कैसाथा, अरु कैसे होकर विचऱ्याहै? सोकृपा करके कहो.

वाल्मीकीउवाच,हेराजन्! शापके वशते, हरि जो विष्णु तिनने

छल करके मनुष्यका देह धरा सो अद्वैत ज्ञानकर संपन्न है तौभी कछुक अज्ञानको अंगीकार करके, मनुष्यका शरीर धरा था.

राजाउवाच, हे भगवन्! चिदानंदरूप जो हरि हैं तिनको शाप किस कारण हुआ, अरु किसने दिया? सो कहो.

वाल्मीकिउवाच, हे राजन्! एक कालमें सनत्कुमार जो निष्काम हैं सो ब्रह्मपुरीमें बैठे थे; अरु त्रिलोकीका पति जो विष्णु भगवान्, सो बैकुंठते उतरके ब्रह्मपुरीमें आये, तब ब्रह्मासहित सर्व सभा उठके खडीहुई अरु पूजन किया; अरु सनत्कुमारने पूजन किया नहीं तिसको देखकर विष्णु भगवान् बोलत भया—हे सनत्कुमार! तुझको निष्कामताका अभिमान है; ताते तू काम करके अवतार पावेगा, अरु स्वामिकार्तिक तेरा नाम होवेगा. जब विष्णु भगवान्ने ऐसा कहा, तव सनत्कुमार बोले हे विष्णु! सर्वज्ञताका अभिमान तुझको है. सो तेरी सर्वज्ञता कोई काल निवृत्त होवेगी, अरु अज्ञानी होवेगा. हे राजन्! एक तो यह शाप हुआ और भी सुन.

एक कालमें भृगुकी स्त्री जात रही थी; तिसके बियोग कर वह ऋषि तपायमान हुआथा. तिसको देखके विष्णुजी हँसे तब भृगुब्राह्मणने शाप दिया—हे विष्णु! मेरे तईं देखि तैंने हांसी करी है, सो मेरी नाईं तू भी स्त्रीके वियोग कर आतुर होवेगा.

एक दिन देवशर्मा ब्राह्मणने नरसिंह भगवान्को शाप दिया था, सो सुन—एक दिन नरसिंह भगवान् गंगा के तीरपर गयेथे, तहां देवशर्मा ब्राह्मणकी स्त्री थी, तिसको देखके, नरसिंहजी भयानक रूप दिखायके हँसे. तिनको देखके ऋषिकी लुगाईने भय पाय प्राण छोड़दिये तब देवशर्माने शाप दिया कि, तुमने मेरी स्त्रीका वियोग किया, ताते तुमभी स्त्रीका वियोग पाओगे.

हे राजन्! सनत्कुमार अरु देवशर्माके शाप करके विष्णु भगवान्ने मनुष्यका शरीर धरा, सो राजा दशरथके घरमें प्रगटे, हे राजन्! यह जो शरीर धराहै अरु आगे जो वृत्तान्त हुआहै, सो सावधान होय श्रवण कर. दिव्य जो है देवलोक, अरु भू जो है पृथ्वीलोक, अरु पाताललोक

ऐसी त्रिलोकीको प्रकाशता है; अरु अंतर बाहर आत्मतत्त्वकारि पूर्ण है. ऐसा अनुभवात्मक मेरा आत्मा है, तिस आत्माको नमस्कार है.

हे राजन्! यह शास्त्र जो आरंभ किया है. तिसका विषय क्या है, अरु प्रयोजन क्या है, अरु संबंध क्या है, अरु अधिकारी कौन है? सो श्रवण कर. सत्, चित्, आनंदरूप, अचिंत्य, चिन्मात्र आत्माको जनावता है, सो विषय है. अरु परमानंद आत्माकी प्राप्ति अरु अनात्म अभिमान दुःखकी निवृत्ति, यह प्रयोजन इसमें है. अरु ब्रह्मविद्या मोक्ष उपायकर आत्मपदका प्रतिपादन है, सोउ संबंधहै. अरु जिसको यह निश्चय है. कि मैं अद्वैत ब्रह्म, अनात्म देहका साथी हुआहों. सो किसी प्रकार छूटों ऐसा ज्ञानवान् है,अरु मुमुक्षु है ऐसा जो विकृति आत्मा है, सो इहां अधिकारी है.

इस शास्त्रका मोक्ष उपाय है. परंतु कैसा है? मोक्ष उपाय परमानंदकी प्राप्ति करनहारा है. जो पुरुष इसको विचारे सो ज्ञानवान् होवे. बहुरि जन्म मृत्युरूप संसारमें न आवे. हे राजन्! यह महारामायण जो है सो पावन है. श्रवणमात्रसे सब पापका नाशकर्त्ता है. जिस विषे रामकथा है सो, प्रथम मैं अपने भारद्वाज शिष्यको श्रवण कराई है.

एक समय भारद्वाज चित्तको एकाग्र करके मेरे पास आया था; तिसको मैं उपदेश किया था. तिसको श्रवण करके वचनरूपी समुद्रते साररूपी रत्नको हृदय विषे धरके एक समय सुमेरु पर्वतपर गया. तहां पितामह जो ब्रह्मा सो बैठेथे. अरु भारद्वाजने जायकर प्रणाम किया; अरु पास बैठा, अरु ब्रह्माजीको यह कथा सुनाई. तब ब्रह्माने प्रसन्न होयकर भारद्वाजसे कहा-हे पुत्र! कछु वर मांग, मैं तुझपर प्रसन्न हुवा हौं. हे राजन्! जब इस प्रकार ब्रह्माजीने कहा. तब परम उदार जिसका आशय है. ऐसा जो भारद्वाज सो कहत भया-हे भूत भविष्यके ईश्वर! जो तुम प्रसन्न हुए हो, तो यह वर देहु-कि संपूर्ण जीव संसार दुःखते मुक्त होहिं; अरु परमपदको पावहिं; सो उपाय कहो.

ब्रह्मोवाच, हे पुत्र! तू अपने गुरु वाल्मीकिके पास गमन कर. बहुरि जो तिसने आत्मबोध महारामायण अनिंदित शास्त्रका आरंभ

क्रिया है तिसको सुनकर जीव महामोह संसारसमुद्रते तरैंगे ! कैसा शास्त्र है महारामायण ? जो संसारसमुद्र तरनेको पुल है; अरु परम पावन है.

वाल्मीकिरुवाच, हे राजन् ! जब इस प्रकार कहा, तब आप परमेष्ठी ब्रह्मा, भारद्वाजको साथ लेकर मेरे आश्रममें आये. तब मैंने भले प्रकारसों इसका पूजन किया. सो ब्रह्माजी कैसे हैं ? जिसकी सर्व भूतके हितमें प्रीति है सो मुझसे कहत भये.

ब्रह्मोवाच, हेमुनि ! श्रेष्ठ वाल्मीकि यह जो रामके स्वभावके कथानका आरंभ तुमने किया है तिस उद्यमका त्याग नहीं करनाइसको आदिते अंतपर्यंत समाप्त करना. कैसा है यह मोक्षउपाय ? जो संसारूपी समुद्रके पार करनेको जहाज है. इस करिके सर्व जीव कृतार्थ होवेंगे.

वाल्मीकिरुवाच, हे राजन्.इस प्रकार ब्रह्माजी मुझसे कहिके अंतर्द्धान होयगे. जैसे समुद्रते आवर्त्त चक्र एक मुहूर्त्त पर्यंत उठके बहुरि लीन होजाताहै तैसा ब्रह्माजी अतर्द्धान होगये. तब मैं भारद्वाजसे कहा हे पुत्र ! ब्रह्माजीने क्या कहा ?

भारद्वाजोवाच, हे भगवन् ! तुमको ब्रह्माजीने ऐसा कहा कि. हे मुनिश्रेष्ठ ! तुमने रामके स्वभावके कथनका उद्यम किया है. तिसका त्याग नहीं करना; अंतपर्यंत समाप्ति करना. काहेते कि, इस संसारसमुद्रके पार करनेको यह कथा जहाज है. इसकरिके अनेकजीव कृतार्थ होवेंगे. अरु संसारसंकटते मुक्त होवेंगे.

वाल्मीकिरुवाच, हे राजन् ! जब इस प्रकार ब्रह्माजीने मुझको कहा. तब ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार मैंने ग्रंथ किया; अरु भारद्वाजको कहा हे पुत्र ! वसिष्ठजीके उपदेशको पाय कर जिसप्रकार रामजी निःशंक होइ विचरे हैं. तैसे तू भी विचर. तब उनने प्रश्न किया.

भारद्वाजोवाच, हे भगवन् ! जिसप्रकार रामचंद्र जीवन्मुक्त होकर विचरेहैं, सो आदिसों क्रम करके मुझको कहो.

वाल्मीकिरुवाच, हे भारद्वाज ! रामचंद्र, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता, कौसल्या, सुमित्रा, दशरथ ये आठों अष्टमंत्री ! अष्ट गुण आदि लेकर जीवनन्मुक्तहोय विचरे हैं, तिनके नाम सुन-रामजीसे लेके दशरथ पर्यंत

आठ तो ये कृतार्थ हुए हैं. अविरोध, परमबोधवान् भये हैं. और कृतभासी १, शतवर्धन २, शुकधाम ३, बिभीषण४, इंद्रजीत५, हनुमंत ६, वशिष्ठ७, वामदेव८ ये अष्ट मंत्री सो निःशंक होय चेष्टा करत भयेहैं, अरु सदा अद्वैतनिष्ठ हुयेहैं. इनकोकदाचित् स्वरूपते द्वैतभाव नहींफुर्या है. अनामय पदविषे स्थितिमें तृप्त रहे, जो केवल चिन्मात्र, शुद्धपद, परमपावन ताको प्राप्त हुयेहैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कथारंभवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २.

अथ तीर्थयात्रावर्णनम् ।

भारद्वाजोवाच, हे भगवन् ! जीवन्मुक्तकी स्थिति कैसी है ? अरु रामजी कैसे जीवन्मुक्त हुयेहैं ? सो आदिते लेकर अंतपर्यंत सब कहो.

वाल्मीकि उवाच, हे पुत्र ! यह जगत् जो भासता है सो वास्तविक कछु नहीं उत्पन्न भया. अविचार करके भासता है. विचार कियेतेनिवृत्त होजाता है. जैसे आकाशमें नीलता भासती है, सो भ्रम करके है जब विचारकरके देखिये तब नीलताप्रतीति दूरहोजाती है. तैसे अविचार करके जगत् भासता है अरु विचारते लीन होजाता है. हे शिष्य ! जबलग सृष्टिका अत्यंत अभाव नहीं होता, तबलग परमपदकी प्राप्ति नहीं होती. जब दृश्यका अत्यंत अभाव होय जावे, तब पाछे शुद्ध चिदाकाश आत्मसत्ता भासेगी। कोई इस दृश्यको महाप्रलयमें कदाचित् अभाव कहते हैं, परंतु मैं तुझको तीनोई कालका अभाव कहता हौं. सो सत शास्त्रकर इस शास्त्रमें श्रद्धा संयुक्त आदिते लेकर अंत पर्यंत श्रवण कर, अरु तिनको धार, तब तिसकी भ्रांति निवृत्त होय जावे. अरु अव्याकृत पदकी प्राप्ति होवे. हे शिष्य ! संसार भ्रममात्र सिद्ध है, इसको भ्रममात्र जानकर विस्मरण करना, सो मुक्ति है. अरु इसको बंधनका कारण वासना है. वासना करके भटकत फिरता है. जब

वासनाका क्षय होजाय, तब परमपदकी प्राप्ति होवे. जो वासनामें फिरता है, तिसका नाम मनहै जैसे जल शरदीकी दृढ जडता पायके बर्फ होता है. पाछे सूर्यके तापसे बहुरि गलकर जल होता है, तब केवल शुद्ध जल होय रहता है. तैसे आत्मारूपी जल है तिसविषे संसारकी सत्यतारूपी जडता शीतलताहै. तिस करके मनरूपी बर्फका पुतला हुआ है. जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होवेगा, तब संसारकी सत्यतारूपी जडता, शीतलता निवृत्त हो जावेगी.

जब संसारकी सत्यता अरु वासना निवृत्त हुई, तब मन नष्ट होजावेगा, जब मन नष्ट हुआ. तब परम कल्याण हुआ. ताते इसके बंधनका कारण वासना है. अरु वासनाके क्षय हुयेते मुक्तिहै सो वासना दोप्रकारकी है, एकशुद्ध अरुदूसरी अशुद्ध. सो अपने वास्तविकस्वरूपके अज्ञानते अनात्मा जो देहादिक, तिनमें अहंकार करना, सोजबअनात्ममें आत्म अभिमान हुआ तब नाना प्रकारकी वासना उपजतीहै. तिसकरके घटीयंत्रकी नाईं चक्र भ्रमता है. हे साधु ! यह जो पंचभूतका शरीर तू जो देखता है. सो सब वासनारूपहै. वासना सो चक्र है. जैसे मणके धागेके आश्रयते खडे होते हैं और जब धागा टूट पडा. तब मणका न्यारा न्यारा होय पडता है अरु ठहराता नहीं है.तैसे वासनाके क्षय हुए पंचभूतका शरीर नहीं रहना. ताते सब अनर्थका कारण वासनाहै अरु जो शुद्ध वासना है तिनमें जगतका अत्यन्त अभाव निश्चय होता है. हे शिष्य ! अज्ञानीका जो निश्चय है. सो वासना कर बहुरि जन्मका कारण हो जाता है. अरु ज्ञानीकी वासना है सो बहुरि जन्मका कारण नहीं होताहै. जैसे एक कच्चा बीज होता है; दूसरा दग्धबीज होताहै तिसमेंजो कच्चाहै सो बहुरि उगता है; अरु जो दग्ध हुआहै सो बहुरि नहीं उगता. तैसे अज्ञानीकी वासनाहै सो रससहित है सो जन्मका कारण है; अरु ज्ञानीकी वासना है सो रसरहित है सो जन्म का कारण नहीं. ज्ञानीकी चेष्टा स्वाभाविक गुण करके खडीहोती है.और किसी गुणके साथमिलकर अपनेमें चेष्टा नहीं देखता. खाता है, पीता है, देताहै, बोलताहै, चलता है, विचार करता है, परन्तु अंतर सदा अद्वैत निश्चेष्टको धरताहै. कदा-

चित् द्वैतभावना तिसको फुरती नहीं है. अपने स्वभावविषे स्थितहै. ताते निर्गुण अरु अरूपहै. ताकी चेष्टा जन्मका कारण नहीं है, जैसे कुम्हारका चक्र है, सो जबलग उसको फेर चढ़ावे, तबलग वह फिरताहै. और जब फेर चढावना छोड दिया, तब स्थीयमान गतिसे उतरत उतरत फिरके स्थिर रह जाता है तैसे जबलग अहंकार सहित वासना होती है, तबलग जन्म पावताहै. जब अहंकारते रहित हुआ तब बहुरि जन्म नहीं पावताहै.

हे साधु! यह जो अज्ञानरूपी वासना है, तिसको नाश करनेका उपाय एक ब्रह्मविद्या श्रेष्ठ है. ब्रह्मविद्या मोक्ष उपायका शास्त्र है. जब इसते और शास्त्रमें गिरैगा तब कल्पपर्यंतहू अव्याकृत पदको न पावेगा; अरु जो ब्रह्मविद्याका आश्रय करैगा तो सुखसों आत्मपदको प्राप्त होवेगा. हे भारद्वाज! यह मोक्षउपाय रामजी अरु वशिष्ठजीका संवाद सो विचारने योग्य है; बोधका परम कारण है ताते आद्यंत पर्यंत मोक्ष उपाय श्रवणकर. जैसे रामजी जीवन्मुक्त होय विचरे हैं सो सुन.

एक दिन रामजी विद्या पढके अध्ययन शालाते अपने गृहमें आये; अरु संपूर्ण दिन विचार करत व्यतीत करदिया. बहुरि मनमें तीर्थ, ठाकुरद्वाराका संकल्प धर पिता दशरथके पास आये. पितासों मिलके जो संपूर्ण प्रजाको सुखमें रखते थे; अरु सब प्रजा तिसके निकट रहिके सुख पाती तिस दशरथका चरण श्रीरघुनाथजीने ग्रहण किया. जैसेसुंदर कमलको हंस ग्रहण करै तैसे पिताका चरण ग्रहण किया. जैसे कमलके तरे कोमल तारियां होतीहैं, तिन तारियों सहित कमलको हंस पकडता है; तैसे दशरथजीकी अँगुरीनको रामजीने ग्रहण किया. अरु बोले कि, हे पिता! मेरा चित्त तीर्थ अरु ठाकुरद्वारके दर्शनको उठाहै. ताते तुम आज्ञा करो तो मैंतीर्थका अरु ठाकुरद्वारेका दर्शनकरआऊं. मैं तुम्हारा पुत्रहूं तुमको पालना करनी योग्य है. और आगे मैं कभी कहा नहीं; यह प्रार्थना अब करी है. ताते तुम आज्ञा देहु; जो मैंजाऊं. यह वचन मेरा फेरना नहीं. काहेते कि, ऐसा त्रिलोकीमें कोऊ नहीं है, जिसका मनोरथ इस घरते सिद्ध हुआ नहीं है; सबका मनोरथ सिद्ध हुआ है. ताते मुझको कृपा कर आज्ञा देहु.

वाल्मीकि उवाच, हे भारद्वाज ! इस प्रकार जब रामजीने कहा. तब वशिष्ठजी पास बैठथे. तिनने भी दशरथसें कहा-हे राजन् ! रामजीको आज्ञा देहु. सो तीर्थ कर आवें. क्योंकि, इनका चित्त उठा है. राजकुमार हैं, इनके साथ सेना दीजे, धन दीजे, मंत्री दीजे, ब्राह्मण दीजे, जो ये दर्शन कर आवें.

हे भारद्वाज ! जब ऐसे विचार किया, तब शुभ मुहूर्त देखकर रामजीको आज्ञा दीनी. जब चलने लगे, तब पिता अरु माताके चरण लगे. अरु सबको कंठ लगाइ रुदन करने लगे. तिनको मिलकर आगे चले. अरु लक्ष्मण आदि जो भाई हैं और मंत्री थे, तिनको साथ लेकर अरु वशिष्ठ आदि जो ब्राह्मण विधिकी जाननेवारे थे. अरु बहुत धन, बहुत सेना तिनको साथ ले चले. और दान पुण्य करके जब गृहके बाहर निकले ,तब वहांके जो लोग थे अरु स्त्रियाथीं तिन सबने रामजीके ऊपर फूल अरु फूलोंकी मालाकी वर्षा करी. सो वर्षा वरफ बरखती है ऐसी दीखतीथी. अरु रामजीकी जो मूर्ति है सो हृदयमें धरलीनी. इस प्रकार रामजी वहांसे चले. तहां ब्राह्मण अरु निर्धनोंको दान देते देते तीर्थ जो गंगा, यमुना, सरस्वती आदि देके हैं, इसमें स्नान विधि संयुक्त कर पृथ्वीके चारों कोन उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिमको दान किया. अरु चारों ओर समुद्रके स्नान किये. अरु सुमेरु पर्वतपर गये.हिमालय पर्वतपर गये. अरु शालग्राम,बद्री,केदार,आदिगंगामें स्नान किये अरु दर्शन किये. ऐसे सब तीर्थ, स्नान, दान, तप, ध्यान विधिसंयुक्त यात्रा करत भये. जसी जैसी जहां विधि थी तैसी तैसी तहां करी एक वर्ष में सम्पूर्ण यात्रा करके रामजी बहुरि घरमें आये;

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे तीर्थयात्रा वर्णनंनामद्वितीय सर्गः ॥२॥

तृतीयः सर्गः ३.

अथ विश्वामित्रागमनवर्णनम् ।

वाल्मीकि उवाच, हे भारद्वाज !जब रामजी यात्रा करके अपनी अयोध्यामें आवत भये तब नगरके वासी लोग पुरुष और स्त्री फूलनकी

वर्षा करत भये अरु जयजय शब्द मुखते उच्चारने लगे अरु प्रेमहास्य करने लगे और जैसे इंद्रका पुत्र अपने स्वर्गमें आवत है, तैसे रामचंद्रजी अपने घरमें आये. पहिले राजा दशरथको प्रणाम कर, फिर वशिष्ठजीको प्रणाम कर, फिर सब सभाके लोगोंको यथायोग्य मिले, फिर अन्तःपुरमें आवत भये तहां कौशल्या आदि जो माताथीं इनको यथा योग्य नमस्कार किये और जो भाई बांधव कुटुंब थे तिन सबको मिले.

हे भारद्वाज ! इस प्रकार रामजीके आवनका उत्साह सप्तदिन पर्यंत होता रहा. वा समयमें कोऊ मिलने आवे कोऊ कछु लेने आवे. तिनको दान पुण्य करत बाजे बजत उत्साह हुआ. भाट आदि स्तुति करने लगे तदनंतर रामजीका आचरण हुआ. सो सुन प्रातःकालमें उठके स्नान संध्यादिक सत्कर्म करते, बहुरि भोजन करते, बहुरि भाई बंधुको मिल अपने तीर्थकी कथा कहते, देवद्वारके दर्शनकी वार्त्ता करते इस प्रकार सों उत्साह कर दिन रातको बितावतेथे.

एक दिन प्रातःकालमें उठके पिताजी दशरथको देखे सो जैसे इंद्रका तेज है, तैसा तेजवान देखा. अरु वशिष्ठादिककी सभा बैठीथी, तहां वशिष्ठजीके साथ कथा वार्त्ता रामजी करते हुऐ तहां एक दिन राजा दशरथ कहत भये, हे रामजी ! तुम शिकारखेलने जायबो करो. ता समयमें रामजीकी अवस्था वर्ष १६ में थोरेक महीना कमतीथी तब राजकुमार रामजीके साथ लक्ष्मण अरु शत्रुघ्न भाई थे, भरत नहानेको गयेथे; फिर तिनके साथ स्नान संध्यादिक नित्य कर्म करके भोजन करके शिकार खेलने जाते. तहां जो जीवको दुःख देनेहारे जानवर देखे तिनको मारते अरु अवर लोकको प्रसन्न करते, इस प्रकार दिनको शिकार खेलते रात्रिको निशान बाजते अपने घरमें आवते ऐसे करत केतेक दिन बीते तामें रामजी अपने अंतःपुरमें आइ सबका त्याग करके एकांत में चिंतन करत बैठि रहते.

हे भारद्वाज!जेती कछु राजकुमारकी चेष्टा सो सबको रामजीने त्याग कर दीनी थी जेते कछु रस संयुक्त इन्द्रियोंके विषय हैं, इनको त्यागके शरीरते दुर्बल जैसे हो मुखकी कांति घट गई, पीत वर्ण होगये. जैसे

कमल सूखके पीतवर्ण हो जाता है, तैसे रामजीका मुख पीला होगया अरु जैसे सूखे कमलपर भँवरे बैठतेहैं, तैसे सूखे मुखकमलपर नेत्ररूपी भँवरे भासन लागे. सोहू शोभा होवन लागी. अरु इच्छा निवृत्त होयगई जैसे शरत्कालमें ताल निर्मल होता तैसे इच्छारूपी मलनते रहित चित्तरूपी तालहू निर्मल होता है तैसे वासना निवृत्त होते दिन दिन पै शरीर निर्मल होगया, अरु जहां बैठें तहां चितासंयुक्त बैठे रहि जावें उठें नहीं अरु बैठें तब हाथपै चिबुक धरके बैठें जब टहलुए मंत्री बहुत कहहिं, कि हे प्रभो! यह स्नान संध्याका समय हुआ है सो अब उठो, तब उठकर स्नानादिक करहिं अरु हृदयमें न विचारहिं. जेती कछु खाने पीने बोलनेपहिरनेकी क्रिया है, सो सब विरस होय गई ऐसे रामचंद्रजी भये. तब लक्ष्मण अरु शत्रुघ्नहू रामजीको संशय संयुक्त देखके तिस प्रकार हो बैठे, तब--

दशरथ यह बार्त्ता सुनके रामजीके पास आय बैठे अरु देखे तब महा कृश जैसा हो गया है इस चिंता करके आतुर हुआ कि हाय २ इनकी क्या अवस्था हुई है? इस शोकके लिये रामजीको गोदमें बैठाये अरु पूँछने लगे कोमल सुन्दर शब्द करके बोले कि हे पुत्र! तुमको क्या दुःख प्राप्त भया है जिससे तुम शोकवान् हुये हो? तब रामजीने कहा कि, हे पिता! हमको तो दुःख कोऊ नहीं है ऐसे कहिके चुप होरहा. जब केतेक दिवस इस प्रकार व्यतीत भये. तब राजा भी शोकवान् हुआ अरु सब स्त्रियांभी शोकवान् भईं. अरु राजा मंत्री मिलके विचार करने लगे कि पुत्रका किसी ठौर विवाह करना अरु यह भी विचार किया-कि क्या हुआहै जो मेरे पुत्र शोकवान् होय रहते हैं तब वशिष्ठजीसे पूँछा कि, हे मुनीश्वर! मेरे पुत्र शोक में क्यों रहते हैं? तब--

वशिष्ठजीने कहा, हे राजन्! महापुरुषको जो क्रोध होताहै. सो किसी अल्प कारण से नहीं होता. अरु मोह भी अल्प कारण से नहीं होता अरु शोक भी अल्प कारण से नहीं होता. जैसे पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, जो महाभूत हैं, सो अल्प कार्य में विकारवान नहीं होते. जब जगत्की उत्पत्ति प्रलय होती है तब विकारवान् होते हैं तैसे महापुरुष

अल्प कार्यमें विकारवान् नहीं होते. ताते हे राजन् ! तुम शोक करनेयोग्य नहीं. अरु रामजी जो शोकवान हुआ है सो भी किसी अर्थके निमित्त हो गया, पाछे इसको सुख मिलैगा, तुम शोक मत करो.

वाल्मीकिरुवाच, हे भारद्वाज ! ऐसे वशिष्ठ अरु राजा दशरथ विचार करतेथे. तिसकालमें विश्वामित्रजी अपने यज्ञके सहाय अर्थ आवत भये. राजा दशरथके गृहमें आयकर पौरियासों कहते भये; कि राजा दशरथसे कहो. गाधिका पुत्र विश्वामित्र बाहर खडे हैं तब इननें और बड़े पौरियाको जाय कहा. हे स्वामी ! एक बडा तपस्वी द्वारपै आय खडा है, उसने हमसे कहाकि राजा दशरथके पास जाय कहो, कि विश्वामित्र आये हैं. सो सुनके राजा दशरथके पास गये, अरु कहाकि विश्वामित्र, गाधिका पुत्र बाहर खडा है. अरु संपूर्ण मंडलेश्वर करपूज्य जो राजा दशरथ सबन सहित अपने सिंहासनपर बैठा है अरु बडे तेज कर संपन्न है; तिससे कहा कि विश्वामित्रने हमसे, कहा है कि दशरथके पास जाय कहो, कि विश्वामित्र बाहर खडा है-

हे भारद्वाज ! जब इस प्रकार बडे पौरियाने राजासों कहा, तब राजा सुनकर सुवर्णके सिंहासनसे उठ खडा हुआ, अरु चरणों करके चला-एकओर वशिष्ठजी, और दूसरी ओर वामदेवजी. अरु सुभटकी नांईं मंडलेश्वर स्तुति करत चले. जब जहां ते विश्वामित्रजी दृष्टि आये तब तहांते प्रणाम करने लगे. जहां पृथ्वीपर शीशराजाका लागै तहां पृथ्वीभी हीरा, मोतीकी सुंदर होय जावे. इस प्रकार शीश नमावत राजा विश्वामित्रके आगे चला. अरु बडी जटा शिरपरते कांधपर परी हैं, ऐसे विश्वामित्र अग्निकी नांईं प्रकाशितहैं, अरु शरीर सुवर्णकी नांईं प्रकाशता है, अरु हृदयमें शांति कोमल स्वभाव जाननेमें आवे ऐसे अरु महातेजवान, सुंदर कांति, अरु शांतिरूप, अरु हाथमें बांसकी लकडी अरु महा धैर्यवान ऐसे विश्वामित्रको प्रणाम करत राजा दशरथ चरणोंके ऊपर जाय गिरा जैसे सूर्य सदाशिवकोचरणों परजाय गिरेथे. तैसेमस्तक नवाय कर-कहा मेरे बड़े भाग्यहुए जोतुम्हारा दर्शनहुआहै. हमारे ऊपर तुमने बडा अनुग्रह कियाहै. हमको बडा आनंद प्राप्त हुआ है. जो अनादि, अनंत

है, आदि, मध्याअंतते रहित अविनाशीहै. ऐसा जो अकृत्रिम आनंदहै, सो तुम्हारे दर्शन कर मुझको प्राप्तहुआ दृष्टिमें आवताहै. हे भगवन् ! आज मेरे बडे भाग्य हुए हैं, जो मैं धर्मात्माके गिननेमें आऊंगा. काहेते कि जो तुम मेरे कुशलनिमित्त आये हो. हे भगवन् ! तुम्हारा आवना हमारे लक्षमें नहीं था. अरु तुमने बडा अनुग्रह किया है. जैसे सूर्य कोई कार्य करनेको पृथ्वी पर आवे, तैसे तुम मुझको दृष्टि में आवते हो. अरु सबते उत्कृष्ट दृष्टिमें आवते हो काहेते कि तुममें दो गुण हैं. एक तो क्षत्रियका स्वभाव तुम्हारेमें है, अरु दूसरा ब्राह्मणका स्वभाव भी तुम्हारे में भासता है. अरु शुभ गुण कर संपूर्ण हो. हे मुनीश्वर ! तुम क्षत्रियमेंते ब्राह्मण भये हो. ऐसी कोईकी सामर्थ्य नहीं देखी. अरु तुम्हारा शरीर प्रकाशमान दीखता है. अरु जिस मार्ग से तुम आये हो, अरु जिस मार्गमें तुम दृष्टि करत आये हो, तहां ते अमृत वृष्टि करत आये हो ऐसा दृष्टि आवता है. हे मुनीश्वर ! तुम आये सो तुम्हारे दर्शन कर मुझको बडा लाभ हुआ है.

हे भारद्वाज ! इस प्रकार राजा दशरथ विश्वामित्रसे बोले. अरु वशिष्ठजी आयकर विश्वामित्रको कंठलगायके मिले. औरजो मंडलेश्वर राजाथे सो बहुत प्रणाम कर इस प्रकार सब मिले तब विश्वामित्रको राजा दशरथ घरमें ले आये. जहां राजसिंहासन था. तहां आनकर बिठाया. अरु वशिष्ठ. वामदेव को बिठाये. और राजा दशरथने विश्वामित्रका पूजन किया. अरु अर्घ्य पादार्चन करके प्रदक्षिणा करि बहुरि वशिष्ठजीने विश्वामित्रका पूजन किया अरु विश्वामित्रने वशिष्ठजीका पूजन किया. ऐसे अन्योन्य पूजन हुआ. इस प्रकार पूजन करके सब अपने अपने आसनपर यथायोग्य बैठे. तब–

राजा दशरथ बोले, हे भगवन् ! हमारे बडे भाग्य हैं जो तुम्हारा दर्शन हुआ. जैसे कोऊ तप्तको अमृत प्राप्ति होवे. अरु जन्मांधको नेत्र प्राप्त होवें. सो आनंद पावे जैसे निर्धनको चिंतामणि प्राप्त होवे, अरु आनंदको पावे. अरु जैसे किसीका बांधव मुवा होय, सो विमान पर चढा हुआ आकाशते आवे, उसको जैसा आनंद प्राप्त होवे; तैसे

तुम्हारे दर्शन कर, मैं आनंदको प्राप्त हुआ हूं. हे मुनीश्वर! तुम्हारा आवना जिस अर्थ हुआहै, सो कृपा कर कहो. अरु जो तुम्हारा अर्थ हो सो पूर्ण हुआ जानो. काहेते कि ऐसा पदार्थ कोई नहीं है जो तुमको देना कठिन है. सब कछु मेरे विद्यमान है. सो तुम्हारा अर्थ है जो निश्चय कर जानने योग्य हो रहा है. जो कछु तुम अज्ञान करोगे सो मैं देऊंगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे विश्वामित्रागमनवर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४.

अथ विश्वामित्रेच्छावर्णनम्।

वाल्मीकि उवाच, हे भारद्वाज! जब इस प्रकार राजा दशरथने कहा, तब मुनिनमें शार्दूल जो विश्वामित्र, बहुत प्रसन्न भये. अरु रोम खडे हो आये जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाको देखके क्षीर सागर प्रसन्न होताहै तैसे प्रसन्न होकर कहत भये-हे राजशार्दूल! तुम धन्य हो! ऐसा क्यों नहोवे; जो तुम्हारेमें दो गुण श्रेष्ठ हैं एक तो रघुवंशी हो. दूसरा वशिष्ठजी तुम्हारा गुरु है; ताकी आज्ञामें चलते हो; ताते.

हे राजन्! जो कछु मेरा प्रयोजन है सो तुम्हारे आगे प्रगट करताहों. श्रवण करो. दशरात्र यज्ञका मैंने आरंभकिया है. सो जब यज्ञको करने लगताहूँ तब राक्षस खर अरु दूषण उस यज्ञको तोर डारते हैं, जहां जहां मैं जायकर यज्ञ करता हूं. तहां तहां आय कर अपवित्र जो रुधिर अरु मांस, अस्थि सो डारते हैं. सो स्थान यज्ञ करने योग्य नहीं रहता और बहुरि मैं और ठौर करने लगताहूं. तहां भी उसी प्रकार अपवित्र कर जाते हैं. तिसके नाश करनेके निमित्त मैं तुम्हारेपास आया हूँ कदाचित् ऐसे कहो कि तुम भी तो समर्थ हो तो हे राजन्! मैंने यज्ञका आरंभ कियाहै तिसका अंग क्षमाहै. जो उनको मैं शाप देऊं. तो वह भस्म होजावें, परंतु शाप क्रोध बिना होत नाहीं. अरु क्रोध कियेते यज्ञ

निष्फल होजाताहै. अरु जो मैं चुपहो रहों तो वह राक्षस अपवित्र वस्तु डार जाते हैं. ताते मैं तुम्हारी शरण आयाहों. मेरा कार्य करो हे राजन्! तेरा जो रामजी पुत्र है. सो कमलनयन काकपक्ष संयुक्त है अर्थ यह जो बालक दूसरी शिखा सहित रहे हैं. तिसको मेरे साथ देहु. जो राक्षसोंको मारैं. तब मेरा यज्ञ सफल होय. और तुमको ऐसा शोक करना नहीं चाहिये कि मेरापुत्र बालक है यह तो बड़े इंद्रके समान शूरवीर हैं. इनके समीप वह राक्षस ठहर न सकैंगे जैसे सिंहके सन्मुख मृगके बच्चे ठहर नहीं सकते, तैसे तेरे पुत्रके सन्मुख राक्षस न ठहर सकैंगे ताते मेरे साथ उनको तुम देहु. जो तुम्हारा भी धर्म रहै अरु यशभी रहै मेरा कार्य भी होवे. इसमें संदेह नहीं करना.

हे राजन्! ऐसा पदार्थ त्रिलोकीमें कोई नहीं जो रामजीका किया कछु न होवे. इसीसे मैं तेरे पुत्रको लिये जाता हूँ यह मेरे करसों ढांपा रहैगा अरु इसको कोई विघ्न मैं होनेनहींदेऊंगा. अरु जो तेरे पुत्र वस्तु हैं सो मैं जानताहूं. और वशिष्ठजीहू जानते हैं और जो ज्ञानवान त्रिकालदर्शी होवेगा, सो भी इनको जानता होयगा. और कोईकी सामर्थ नहीं है जो इनको जानसके. ताते तुम इनको मेरे साथ देहु जो मेरे कार्यकी सिद्धि होय

हे राजन्! जो समयपर कार्य होता है, सो थोरे करने सेभी बहुत सिद्धि पावता है. जैसे द्वितीयाके चंद्रमाको देखके एक तंतुका दान किया होय सो भी बहुत है पीछे वस्त्रका दान कियते भी तैसा कार्य सिद्धि नहीं होता तैसे समयपर थोड़ा कार्य भी बहुत सिद्धिको देताहै अरु समय विना बहुत कार्य भी थोरे फलको देताहै. ताते तुम मेरे साथ रामजीको दीजे.

खर, दूषण ये बडे दैत्य हैं. सो आय कर मेरा यज्ञ खंडन करते हैं; जब रामजी आवैंगे तब वह भाग जायँगे. रामजीके आगे खडे न होय सकैंगे. इनके तेजसे वह अल्प बल होजावेंगे जैसे सूर्यके तेज करिके तारागणका प्रकाश छिप जाता है. तैसे रामजीके दर्शनसे वह स्थित न रहैंगे. जैसे गरुडके आगे सर्प नहीं ठहर सकैं; तैसे रामजीके आगे राक्षस न ठर सकैंगे. देखकर भाग जायँगे. ताते तुम मेरे साथ देहु जो मेरा कार्य होवे; अरु तुम्हारा धर्म भी रहै. रामजीके निमित्त संदेह मत करना

उस राक्षसकी सामर्थ्य नहीं जो रामजीके निकट आवे. अरु मैं भी रामजीकी रक्षा करूंगा.

वाल्मीकिउवाच; हे भारद्वाज! जब विश्वामित्रने ऐसा कहा, तब राजा दशरथ सुनकर चुपरहा अरु गिरापड़ा.एक मुहूर्त्त पर्यंत पड़ा रहा.

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे विश्वामित्रेच्छा वर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ५.

अथ दशरथोक्तिवर्णनम्।

वाल्मीकि उवाच,हे भारद्वाज! एक मुहूर्त्त पीछे राजा उठे अरु महादीन से होगये, अरु महा मोहको प्राप्त हो गये, धैर्य ते रहित होकर बोले.

राजोवाच, हे मुनीश्वर! तुमने क्या कहा रामजी अभी तो कुमार हैं शस्त्रविद्या, अस्त्रविद्या भी सीखे नहीं हैं अभी तो फूलनकी शय्यापर शयन करने वारे हैं, वह युद्धको क्या जानैं. अंतःपुरमें स्त्रियनके पास बैठने वाले हैं, राजकुमार बालकनके साथ खेलनेवाले हैं, और कदाचित् रणभूमि देखीहू नहीं है, भ्रुकुटीको चढायके कदाचित् युद्ध भी नहीं किया अरु कमलकी नाईं जिसके हाथहैं, अरु कोमल जिसका शरीर है. वह राक्षसके साथ युद्ध कैसे करैगा, कहूं पत्थरका अरु कमलका भी युद्ध हुआ है। रामजीका वपु कमल समान कोमल है. अरु वह महा क्रूर पत्थरकी नाईं हैं. उनके साथ युद्धकैसे होवेगा.

हे मुनीश्वर! मैं नव सहस्र वर्षका हुआ हूं अब दशवां सहस्र लगा है वृद्ध हुआ हूं यह वृद्धावस्थामें मेरे घर पुत्र हुवे हैं. सो चारोंके मध्य रामजी कमल नयन. कछु षोडश वर्षका हुआ है. अरु मुझको बहुत प्रियतम है. अरु मेरा प्राण है, रामजी बिना मैं एक क्षणभी रहि नहीं सकता. जो तुम इनको ले जाओगे, तो मेरा प्राण निकल जायगा. मैं मृतक हो जाऊंगा.

हे मुनीश्वर! केवल मेराही ऐसा सनेह सो नहीं है. उसका भाई जो

लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न अरु उसकी माता जो हैं. सो सबहीके प्राण रामजी हैं. जो तुम रामजीको लेजाओगे तो हम सबही मर जायँगे. वियोगकरके जो हमको मारने आये हो तो लेजाओ हे मुनीश्वर ! मेरे चित्तमें रामही फुर रहा है. तिसको मैं तुम्हारे साथ कैसे देऊं. मैं उसको देखत देखत प्रसन्न होता हों जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाको देख कर क्षीर समुद्र प्रसन्न होता है. अरु चंद्रको देखकर चकोर प्रसन्न होता है. अरु मेघ बूँदको देखकर पपीहा प्रसन्न होता है तैसे रामजीको देखकर मैं प्रसन्न होता हूं. तब रामजीको वियोग कर मेरा जीवना कैसा होयगा. हे मुनीश्वर ! मेरेको रामही जैसे प्रिय स्त्री भी नहींअरु धनभी ऐसा प्रिय नहीं अरु राज्यभी ऐसा प्रिय नहीं और पदार्थ भी मुझको कोई रामके समान प्रिय नहीं है. ऐसा रामजी प्यारा है.

हे मुनीश्वर! तुम्हारे वचन सुनके बडे शोकको प्राप्त हुआ हूं मेरे बडे अभाग्य आये हैं. जो तुम्हारा आवना इस निमित्त हुआ है तुम्हारे वचन सुन कर जैसे कमलके ऊपर पत्थरकी वर्षा होय ऐसी व्यथामेरेको होती है. अरु पत्थरकी वर्षाते जैसे कमल नष्ट हो जाते हैं. तैसे तुम्हारे वचनते मेरी नष्टता हो जायगी. जैसे बडामेघ चढ आवे, तामें बडा पवन चलै तब मेघकी गंभीरताका अभाव होय जाय; तैसे तुम्हारे वचनते मेरी बडी प्रसन्नताका अभाव होय जाता है ! जैसे वसन्तऋतुकी मंजरी, ज्येष्ठ आषाढमें सूख जाती है तैसे तुम्हारे वचन सुन मेरे हृदयकी प्रसन्नता जर जाती है ! हे मुनीश्वर ! रामजीको देनेमें मैं समर्थ नहींहूं; जो तुम कहो तो एक अक्षौहणी सेना मेरी है. सो बडे शूरवीरकी है, जिसको शस्त्र-विद्या, अस्त्रविद्या, मंत्रविद्या, सब आवती है. और सबै युद्धमें चतुर हैं तिनके साथ मैं तुम्हारे संग चलता हों वहां जायके मैं उनको मारूंगा अरु हस्ती, घोडा, रथ, प्यादे, ऐसी चतुरंगिनी सेनाको साथ ले जाओ अरु जो तुम्हारे यज्ञके खंडनहारे हैं तिनको नाश करो, अरुएकके साथ मैं युद्ध न करसकूंगा, जो कदाचित् यज्ञ खंडन हारा कुबेरका भाई, अरु विश्रवाका पुत्र, रावण होवे तो उसके साथ युद्ध करनेको मैं समर्थनहीं.

हे मुनीश्वर ! आगे मेरेमें बडा पराक्रम था, वैसा त्रिलोकीमें किसीको

नहीं था. जो मेरे निकट मारनेको आता, तो वाको मैं मार देता. अब मेरी वृद्धावस्था हुई है; अरु देह जर्जरीभावको प्राप्त हुआ है. इस कारण रावणके साथ युद्ध करनेको मैं समर्थ नहीं हूं.

हे मुनीश्वर! मेरे बडे अभाग्य हैं जो तुम्हारा आना इस निमित्त हुआ है. अब मेरा वैसा पराक्रम नहीं. मैं रावण सों काँपता हों केवल मैं ही नहीं काँपता; इन्द्रादिक देवता सब रावणसे काँपते हैं; अरु राक्षस सब उसके वश वर्त्तते हैं. अब किसीको शक्ति नहीं है जो रावणके साथ युद्ध करै। इस कालमें वह बडा शूरवीर है.

हे मुनीश्वर! जब मेरी सामर्थ्यता भी नहीं रही; तो राजकुमार रामजी कैसे समर्थ होवेंगे; अरु जिस रामजीको लेने तुम आये हो, सो रोगी हो रहा है, उसको चिंता ऐसी आय लगी है, जिससे वह महादुर्बल होगया है, अरु अंतःपुरमें एकांतमें बैठा रहता है, खाना पीना इत्यादिक जो राजकुमारकी चेष्टा है सो सब उसको विरस होगई है, अरु मैं नहीं जानता कि उसको क्या दुःख प्राप्त हुआ है, जैसे कमल सूखके पीत वर्ण होजाता है, तैसा उसका मुख होगया है, उसको युद्ध करनेकी सामर्थ्यता नहीं अरु अपने स्थानते बाहरकी पृथ्वी भी नहीं देखी है, सो युद्ध कैसे करैंगे.

हे मुनीश्वर! वह युद्ध करनेको समर्थ नहीं हैं, अरु हमारे प्राण वही हैं. जो उसका वियोग होवेगा तो हमारा जीवना नहीं होवेगा, जैसे जल बिना मछली जीवती नहीं है, तैसे हम रामजी विना कैसे जीवेंगे, अरु जो राक्षसके युद्ध निमित्त कहो तो हम तुम्हारे साथ चलैं, अरु रामजी युद्ध करनेको योग्य नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे दशरथोक्तिवर्णनं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ६.

अथ रामसमाजवर्णनम् ।

वाल्मीकि उवाच, हे भारद्वाज ! जब इस प्रकार राजा दशरथने कहा, तब महादीन जैसे मोह सहित अधीर्यवान वचन सुनकर, क्रोधसों विश्वामित्र कहत भये.

विश्वामित्रोवाच, हे राजन ! तू अपने धर्मको सुमिरण कर यह प्रतिज्ञा तैंने करीहै, " जो तेरा अर्थ होवेगा सो पूर्ण करूंगा, और पूर्ण हुआ जानना" ऐसा तुमने कहा है, अब तू अपने धर्मको त्यागताहै और जो तू सिंह हुआ मृगोंकी नाईं भागता है तो भाग; परंतु आगे रघुवंशमें ऐसा कोई नहीं हुआ. जैसे चन्द्रमाके मंडलमें शीतलता होतीहै, अग्नि निकसता नहीं है, तैसे तुम्हारे कुलविषे ऐसा कदाचित् नहीं हुआ; अरु जो तू करता है तो कर, हम उठ जायँगे. काहेते कि शून्य गृहते शूनेई जाता है. परंतु यह तुमको योग्य नथा. अरु तुम बसते रहो राज्य करते रहो, अरु जो कछु होवेगा सो हम समझ लेयँगे, अरु जो अपने धर्मको तू त्यागता है, तो त्याग दे.

बाल्मीकि उवाच, हे भारद्वाज ! इस प्रकार जब अत्यंत क्रोधवान् होकर विश्वामित्र बोला, तब इसके क्रोध करनेसे पचास कोटि पृथ्वी कँपने लगी. अरु इंद्रादिक देवता भी भयको प्राप्त हुए, कि ये क्या हुआ; तब वशिष्ठ जी बोले.

वशिष्ठोवाच, हे राजन् ! इक्ष्वाकुके कुलमें सब परमार्थी हुए हैं. और तू अपने धर्मको क्यों त्यागता है. मेरे विद्यमान तैंने कहा है, "जो तुम्हारा अर्थ होवेगा, सो मैं पूर्ण करूंगा." अब तू क्यों भाजता है ? रामजीको इसके साथ दे. अरु यही तेरे पुत्रकी रक्षा करैंगे. जैसे सर्पते अमृतकी रक्षा गरुड करता है तैसे तेरे पुत्रकी रक्षा यह करेगा. अरु यह कैसा पुरुष है, सो श्रवण कर इसके समान बल किसीका नहीं. साक्षात् बलकी मूर्ति है अरु धर्मात्मा है. साक्षत् धर्मकी मूर्ति है अरु ऐसा तपस्वी कोऊ नहीं है. अरु तपकी खानि है. अरु इसके समान

कोऊ बुद्धिमान् नहीं है अरु इसकेसमान कोई शूरमा नहीं है, अरु अस्त्र शस्त्र विद्यामें भी इसके तुल्य कोऊ नहीं है. काहेते कि, जो दक्ष प्रजापतिकी दो पुत्री थीं; एक जय, अरु दूसरीसुभगा, सो ये ऋषिकोदीनी हैं, अरु जय थी, तिसमें दैत्योंके मारने निमित्त पांचसौ पुत्रोंको प्रगट किये थे, अरु सुभगाके भी पांचसौ पुत्र भये थे सो सब दैत्योंके नाश निमित्त उत्पत्ति कियेथे. सोस्त्रियां इसके विद्यमान मूर्त्ति धरके स्थितहुई हैं, ताते इसको जीतनेको कोऊ समर्थ नहीं है, जिसका साथी विश्वामित्र होवे सो त्रिलोकीमें काहू सों नहीं डरै, ताते इसके साथ तू अपना पुत्र दे, अरु संशय मतकर. किसीकी सामर्थ्य नहीं जो इसके होते तेरे पुत्रको कछु कोऊ कहिसके. इसकी दृष्टिके देखनेते दुःखका अभाव होजाता है. जैसे सूर्यके उदयते अंधकारका अभाव होजाताहै तैसे.

हे राजन्! इसके साथ तेरे पुत्रको खेद कहां होवे. तू इक्ष्वाकुके कुलका है, अरु दशरथ तेरा नामहै. सोतेरे जैसे धर्म्मात्मा जब अपने धर्ममें स्थित न रहे तो और जीवते धर्मकी पालना कैसे होयगी, जो कछु श्रेष्ठ पुरुष चेष्टा करतेहैं. तिनके अनुसार और जीव करते हैं. जो तुम सारखे अपने वचनकी पालना न करैंगे, तब और सों कहा बनैगी अरु तुम्हारे कुलमें ऐसा कबहूं नहीं हुआ. ताते अपने धर्मको त्यागना योग्य नहीं. तू अपने पुत्रको दे, अरु जो तू उनके भयकर शोकमान होवे, तोभी ना मतिकहै, और मूर्त्तिधारी काल आयकर स्थित होवे तौभी विश्वामित्रके विद्यमान तेरे पुत्रको कछु होवे नहीं, तू शोक मतकर; अपने पुत्रको इसके साथ दे, अरु जो नदेगा, तो दो प्रकारका तेराधननष्ट होवेगा-एक धन यहहै कि जो कूप, वावडी, ताल कराये होयँगे, तिनका जो पुण्य है. सो नष्ट हो जावेगा. अरु तप, व्रत, यज्ञ, दान, स्नानादिकका जो पुण्य है. अरु क्रिया है तिस सबका फल नष्ट होजावेगा, औ तेरा गृह निरर्थ होय जावेगा. ताते मोह अरु शोकको त्याग. अरु अपने धर्मका सुमिरण कर, रामजी इसकेसाथ दे, तेरे सब कार्य्य सफल होवेंगे.

हे राजन्! जो इस प्रकार तुमको करनाथा. तो प्रथमही विचारकर कहनाथा. काहेसे कि विचार विना काम करनेका परिणाम दुःख होता है. ताते इसके साथ अपने पुत्रको देहु.

वाल्मीकि उवाच, हे भारद्वाज! जब इस प्रकार वसिष्ठजीने कहा, तब राजा दशरथ धैर्यवान् होकर, भृत्योंमें जो श्रेष्ठ भृत्यथा, वाको बुलायकर कहत भया, हे महाबाहु! रामजीको ले आओ. तब इसके साथ जो चाकर अंतर बाहर आवने जावने वारा था, अरु छलते रहित था, सो राजाकी आज्ञा लेकर रामजीके निकट गया, और एक मुहूर्त्त पाछे पीछा आया, अरु कहत भया हे देव। रामजी तो बडी चिन्तामें बैठे हैं. मैंने रामजीसे वारंवार कहा कि अब चलिये, तब वह कहते हैं कि चलें हैं. ऐसे कहि कहि चुप हो रहते हैं.

हे भारद्वाज! इस प्रकार जब राजाने श्रवण किया तब कहा, रामजीके मंत्री अरु टहलुए सब बुलावो, सेवक सबको बुलाय निकटलाये, तब राजा आदरसों कोमल सुंदर वचन युक्तिसे कहत भया, हे रामजीके प्यारे! रामजीकी कहा दशा है और ऐसी दशा क्यों कर हुई है. सो सब क्रम करके कहो.

मंत्री उवाच, हे देव! हम कहा कहैं, जेते हम कछु दृष्टि आवते हैं सो सब आकार अरु प्राण देखने मात्र हम हैं. अरु हम सब मृतकहै काहेते कि हमारा स्वामी रामजी बडी चिंताको प्राप्त हुआ है. हे राजन्! जिस दिनसे रघुनाथजी तीर्थ कर आये हैं तिस दिनसे चिंताको प्राप्त भये हैं. जब उत्तम भोजन हम ले जाते हैं, और पान करनेका पदार्थ, और पहरनेका पदार्थ, अरु देखनेका पदार्थ कछु लेजाते हैं. सो सुखदाई पदार्थ रससहित तिसे देखके किसी प्रकार प्रसन्न होते हमने नहीं देखाहै. ऐसी चिंताके विषे वह लीनहैं; कि देखता भी नहीं, अरु जो देखताहै तो क्रोध करताहै. अरु सुखदाई पदार्थका निरादर करताहै, अरु अंतःपुर में इनकी माता नानाप्रकारके हीरे अरु मणि के भूषण देतीहै, तौ उनको भी डारदेताहै नहींतो किसी निर्धनको देदेताहै, प्रसन्न किसी पदार्थपै होते नहीं हैं सुंदर स्त्रिया खडी विद्यमान होती हैं. नानाप्रकारके भूषणहू सहित महा मोह करनेहारी निकट होइकर लीलाकरती हैं, कटाक्ष हू सहित प्रसन्न करने निमित्त, तौभी विषवत जानतहैं. उनकी ओर देखता भी नहीं. जैसे पपैया और जलको देखता भी नहीं जब अंतःपुर विषे निकसता है, तब उनको देखकर क्रोधवान् होता है.

हे राजन्! और कछु उसको भला नहीं लगता.किसी बडीचिंताविषे मग्नहै. और तृप्त होकर भोजन भी नहींकरता. क्षुधावंत रहता है, और न कछु पहरने, खाने पीनेहू की इच्छा रखताहै न राज्यकी इच्छाहै न किसी इंद्रिय के सुखकी इच्छा है. महा उन्मत्तकी न्याईं बैठा रहताहै. अरु जब कोई सुखदाई पदार्थ फूलादिक लेजाते हैं, तब क्रोध करता है, हम नहीं जानते कि क्या चिंता उसको भई है, एक कोठरीमें पद्मासन करि अरु हाथमें मुख धरके बैठा रहताहै. अरु जो कोऊ बडा मंत्रीआयके पूछता तब उससे कहताहै कि तुम जिसको संपदा मानते हो सोई आपदा है, जिसको आपदा जानते हो सो आपदा नहीं है, अरु नाना प्रकारके संसारके पदार्थ जो रमणीय कर जानते हो, सो सबझूठे हैं याहीमें सब डूबे हैं ये सब मृगतृष्णाके जलवतहैं; तिनको सत्य जान मूख जो हरिण सो दौरते हैं, अरु दुःख पाते हैं.

हे राजन्! कदाचित् बोलते हैं तो ऐसे बोलते हैं. और कछु उनके उरमें सुखदायी नहीं भासताहै. अरु जो हम हांसीकी वार्त्ता करते हैं. तो वह हँसता नहीं है. जिसपदार्थको प्रीति संयुक्त लेते थे तिस पदार्थको अब डारि देतेहैं अरु दिन दिनपै दुर्बल हुये जातेहैं अरु जब अंतःपुरमें स्त्रियोंके पास बैठताहै; अरु वह नानाप्रकारकी चेष्टा रामजीको प्रसन्न करनेके निमित्त देखावती हैं उनको भी देखेके प्रसन्न नहीं होता अरु जैसे मेघकी बूंदते पर्वत चलायमान नहीं होते हैं; तैसे आप चलायमान नहीं होतेहैं.अरुजो बोलताहै तो ऐसे कहताहै—न राज्य सत्य है न भोग सत्य है न जगत् सत्य है न मित्र सत्य है;मिथ्यापदार्थके निमित्त मूर्ख परे यत्न करते हैं जिनको सत्य जानते हैं अरु सुखदायक जानते हैं. सो बंधनका कारणहै. और कहा कहिये जो उनके कोई पास राजा अथवा पंडित जावे तिनको देखकर कहता है यह पशु हैं आशारूपी फांसीसे बांधे हुये हैं.

हे राजन्! जो कछु भोग्य पदार्थ हैं तिनको देखकर उसका चित्त प्रसन्न नहीं होता, अरु देखके क्रोधवान होता है जैसे पपैया मारवाडमें आवे, अरु हू मेघकी बूंद देखता नहीं है अरु खेदवान होता है, तैसे रामजी

विषय छूते खेदवान होताहै, हे राजन् ! इस करके हर्षवान नहीं होता, ताते हम जानते हैं कि इनको परमपद पानेकी इच्छा है,परन्तु कदाचित् मुखते सुना नहीं है, अरु त्यागका अभिमान भी कदाचित् सुना नहीं है, कबहूँ गाता है, अरु बोलता है तब ऐसे कहता है, हाय हाय ! मैं अनाथ मारा गयाहूं अरे मूर्ख तुम संसार समुद्रमें क्यों डूबते हो यह संसार परम अनर्थका कारण है, इसमें सुख कदाचितहू नहीं है, इससे छूटनेका उपाय करो.

हे राजन् ! ऐसा भी कभी हम सुनते हैं, अरु किसीके साथ बोलता नहीं है, न हँसता है न मंत्रीके साथ, न अपने अंतःपुरनकी स्त्रियोंके साथ, न माताके साथ बोलता है; किसी परमचितामें मग्न है, अरु किसी पदार्थकर आश्चर्यवान् नहीं होता, जो कोऊ कहै कि आकाशमें बागे लगाहै, तिसमें फूल फूले हैं तिनको मैं ले आया हूं तिसको सुनकर भी आश्चर्यवान् नहीं होता, सब भ्रम मात्र देखता है, नकिसी पदार्थसे उसको हर्ष होता है, न किसी पदार्थसे उसको शोक होताहै, किसी बडी चिंतामें मग्न है सो किसीको चिंता निवारनेमें हम समर्थ नहीं देखते हैं, वह तो चिंताकें समुद्रमें मग्न है, हे राजन् ! यह चिंता हमको लगरही है; कि रामजीको न खानेकी इच्छा है, न पहिरनेकी इच्छा है, न बोलने की, न देखनेकी इच्छारही है न किसी कर्मकी इच्छा रही है, ताते मृतक न हो जावे ऐसी हमें चिंता है अरु जो कोऊ कहता है कि तू चक्रवर्त्ती राजा है तेरो बडा आयुबल होइ, अरु बडे सुखको पाओ, तब तिसके वचन सुन कठोर बोलता है.

हे राजन्! केवल रामजीहीको ऐसी चिंता नहीं, लक्ष्मणअरु शत्रुघ्नको भी एसी चिंता लगरही है रामको देखकर जो कोऊ उनकी चिंता दूर करने हारा होवे तो करै नहीं तो बडी चिंता मध्य डूबे रहैंगे किसी पदार्थकी इच्छा उनको नहीं रहती है.

हे राजन् ! अब कहा कहते हो ? तेरा पुत्र अब अतीत ह्वै रहा है. एक वस्त्र उपरना ओढकर बैठा है ताते सोइ उपाय करो. जिससे उसकी चिंता निवृत्त होवे.

विश्वामित्रोवाच, हे साधु! जो रामजी ऐसे हैं तो हमारे पास विद्यमान लाओ, हम उसका दुःख निवृत्त करैंगे. हे राजा दशरथ! तू बडा धन्य है. कि जिसका पुत्र विवेक अरु वैराग्यको प्राप्त भया. हे राजन्! हम तेरे पुत्रको परमपदकी प्राप्ति करैंगे. अभी सब दुःख उनके मिट जायँगे. हम वसिष्ठादि जो बैठेहैं सो एक युक्तिकर उपदेश करैंगे. तिस करके उनको आत्मपदकी प्राप्ति होवेगी. तब वह दशा तेरे पुत्रकी होवेगी जो लोष्ट पत्थर अरु सुवर्णको समान जानेंगे. अरु जो कछु तुम्हारे क्षत्रियकी प्रवृत्तिका आचरणहै सो करैंगे अरु हृदयमें प्रेमते उदासीहोवेंगे ताते हे राजन्! उसकरके तुम्हारा कुल कृतकृत्य होवेगा. ताते रामजीको शीघ्र बोलावहु.

वाल्मीकि उवाच, हे भारद्वाज! ऐसे मुनींद्रके वचन सुनकर राजादशरथ मंत्री अरु नौकरोंसे कहत भया कि रामजी अरु लक्ष्मण अरु शत्रुघ्नको लेआओ. जैसे हरिणीको हरिण ले आता है तैसे ले आओ जब राजा दशरथने ऐसा कहा, तब मंत्री अरु भृत्य रामजीके पास जायके कहा; तब रामजीआये सो आवत आवत राजा दशरथ अरु वशिष्ठजी, अरु विश्वामित्रको देखे, कि, तीनोंके ऊपर चमर होयरहे हैं. अरु बड़े मंडलेश्वर बैठे हैं. तिननेहू रामजीको देखे जो शरीरते कृश होय रहे हैं जैसे महादेवजी स्वामि कार्त्तिकको आवत देखे. तैसे रामजीको आवत राजादशरथ देखत हैं. तहां रामजी आयकर राजादशरथके चरणोंपै मस्तक लगाय नमस्कार किया फिर तैसेई वशिष्ठजीकोअरु विश्वामित्रजीको नमस्कार किया. बहुरिसभामें जो ब्राह्मण बडे बड़े बैठे थे. तिनकोहू नमस्कार किये. अरु जो बड़े बडे मंडलेश्वर बैठेथे तिननेउठकर रामजीको प्रणाम किया. फिर—

राजा दशरथने रामजीको गोदमें बैठाया. अरु देखकर मस्तक चूमा अरु बहुत प्रेम पुलकित होय रामजीसों कहत भया हे पुत्र! केवल विरक्तता कर परमपदकी प्राप्ति नहीं होती है, अरु वशिष्ठजी गुरु हैं, तिनके उपदेशकी युक्ति कर परमपदकी प्राप्ति होयगी.

वशिष्ठोवाच, हे रामजी! तुम धन्यहो, अरु बड़े शूरमें हो, जो विषय

रूपी शत्रु तुमने जीते हैं जो विषय अतीत है, अरु दुष्ट है ताको तुमने जीता ताते तुम धन्य हो धन्य हो!

विश्वामित्रोवाच, हे कमलनयन राम! अपने अन्तरकी चपलता है तिसको त्याग करके, जो कछु तुम्हारा आशय होय सो प्रगट कर कहो. हे रामजी! यह जो तुमको मोह प्राप्त हुआहै सो कैसे अरु किस कारण हुआहै? अरु केताक है? सो कहो, अरु जो अब कछु तुमको बांछित होय सो कहो, हम तुमको तिसीपदमें प्राप्त करैंगे. जिसमें दुःख कदाचित् होवे नहीं. और आकाशको चूहा काटि नहीं सकता है. तैसे तुमको पीडा कदाचित् न होवेगी. हे रामजी! जब तुम्हारे सम्पूर्ण दुःख नाश कर देयँगे तुम संशय मतकरो, जोकुछ तुम्हारा वृत्तांत होय सो हमसे कहो.

वाल्मीकिरुवाच, हे भारद्वाज! जब ऐसे विश्वामित्रने कहा सो सुनकर रामजी बहुत प्रसन्न भये, अरु शोकको त्याग दिया. जैसे मेघको देखके मोर प्रसन्न होता है तैसे विश्वामित्रके वचन सुन रामजी प्रसन्न हुए अरु अपने हृदयमें निश्चय किया अब मुझको उस पदकी प्राप्ति होवेगी.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे रामसमाज-
वर्णनं नाम षष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्ग ७.
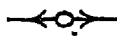
अथ रामेण वैराग्यवर्णनम्।

वाल्मीकि उवाच, हे भारद्वाज! ऐसे मुनीश्वरके वचनको रामजी सुनके बहुत प्रसन्न होयके बोले—

श्री रामोवाच, हे भगवान्! जो वृत्तांत है सो तुम्हारे विद्यमान क्रम करके कहता हौं, इस राजा दशरथके घरमें जो मैं उत्पन्न भया हों, बहुरि क्रम करके बडा हुआ हों, उपवीतपाया हों अरु चारों वेद पढ़कर ब्रह्मचर्यादि व्रतपायाहों, ता पाछे एक दिन पढके मैं घरमें आया तब मेरे

हृदयमें बात आय रही कि तीर्थाटन करों, अरु देवद्वारमें जायके देवनके दर्शन करों तब मैं पिताकी आज्ञा लेकर तीर्थको गया. अरु गंगा आदि संपूर्ण तीर्थमें स्नान किया; अरु शालिग्राम अरु केदार आदि ठाकुरके विधिसंयुक्तदर्शन किये; अरु यात्रा करके इहाँ आया. फिर उत्साह हुआ.

तब मेरे में विचार आया, कि प्रातःकाल उठके स्नान संध्यादिक कर्म करना, बहुरि भोजन करना, ऐसे इस प्रकारसों केतेकदिन व्यतीत भये, तब मेरे हृदयमें विचार उत्पन्न हुआ, सो विचार मेरे हृदयको खैंचले गया—जैसे नदीके तटपर तृण लता होते हैं, तिसको नदीका प्रवाह खैंच, लेजाता है, तैसे मेरे हृदयमें जो कछु जगत्‌की आस्थारूप तृणलता थी सो विचार रूपी प्रवाहलेगया. तब मैं जानता भया कि राज्य करके क्या है? अरु भोगते क्या है? अरु जगत् क्या है? सब भ्रम मात्र है, इसकी वासना मूर्ख रखते हैं. यह स्थावर जंगम रूपी जेता कछु जगत् है सो सब मिथ्याहै.

हे मुनीश्वर! जेते कछु पदार्थ हैं, सो मनसों करके हैं सो मनभी भ्रममात्र. अनहोता मन दुःखदायी हुआहै. मन जो पदार्थ सत्य जानकर दौरता है, अरु सुखदायक जानता है, सो मृगतृष्णाके जलवत् है. जैसे मृगतृष्णाको देखकर मृग दौरते हैं, अरु है नहीं; सो मृग दौरत दौरत थकके पड़जाता है; तौहू जल तिसको प्राप्त नहीं होता. तैसे मूर्खजीव पदार्थको सुखदायी जानकर भोगनेका यत्न करता है; अरु शांतिको नहीं पाता है. तैसे—

हे मुनीश्वर! इंद्रियन के भोग सर्पवत् हैं, जिनका मारा हुआ, जन्म मरनको पाताहै. जन्मते जन्मांतरको पाताहै. भोग अरु जगत सब भ्रममात्र है. तिन विषे जो आस्था करते हैं, सो महामूर्ख हैं ऐसा मैं विचार करके जानता हों; जो सब आगमापायी है. अर्थ यह जोआवतेहूहैं, अरु जाते हू हैं. तातें जिस पदार्थका नाश न होय. सो पदार्थ पावने योग्य है, इसी कारण से मैंने भोगका त्याग किया है.

हे मुनीश्वर! जैसे कछु संपदारूपपदार्थ भासते हैं, सो सब आपदाहैं. इनमें रंचकहू सुख नहीं है. जब इनका वियोग होता है, तब कंटककी

नांई मनमें चुभता है. जब इंद्रियको भोग प्राप्त होता है, तब रोगदोषकर जलता है; अरु जब नहीं प्राप्त होता तब तृष्णा कर जलता है. ताते भोग दुःखरूपहै. जैसे पत्थरकी शिलामेंछिद्र नहीं होता, तैसे भोगरूपी दुःखकी शिलामें रंचकभी सुखरूपी छिद्र नहीं होता है.

हे मुनीश्वर ! विषयकी तृष्णामें बहुत कालसों जलता रहा हों. जैसे हरे वृक्षके छिद्रमें रंचक अग्निधरा होय, तब धुवां होय थोरा थोरा जलता रहता है; तैसे भोगरूपी अग्नि करके मन जलता रहता है. यह विषयमें सुख कछु हू नहीं, अरु दुःख बहुतहै. इनकी इच्छाकरनी सोई मूर्खता. है जैसे खाईके ऊपर तृण अरु पात होता है. तिसकर खांई आच्छादित होय जातीहै. तिसको देखके हरिण कूद परताहै. अरु दुःख पावताहै; तैसे मूर्ख भोगकोसुखरूप जानके भोगनेकी इच्छा करताहै; जब भोगता है तब जन्मते जन्मांतर रूप खाईमें जाय परते हैं अरु दुःख पावतेहैं.

हे मुनीश्वर! भोगरूपी चोर. है सो अज्ञानरूपीरात्रिमें लूटने लगता है सो आत्मरूपी धन है तिसको ले जाता है; तिसके वियोगते महादीन रहता है. अरु जिस भोगके निमित्त यह यत्न करता है, सो दुःखरूपहै शांतिको प्राप्त नहीं होता. अरु जिस शरीरके अभिमान करके यह यत्न-करताहै, सो शरीरक्षणभंग होता है, अरु असारहै. जिसको सदा भोगकी इच्छा रहती है, सो मूर्ख अरु जडहै, इसको बोलना चालना भी ऐसाहै; जैसेसूखे बाँसके छिद्रमें पवन जाताहै; अरु पवनके वेगकर शब्द होता है तैसे उस मनुष्यकी वासनाहै.जैसे थका हुआ मनुष्य मारवाड़के मार्ग-की इच्छा नहीं करता तैसे दुःख जानकर मैं भोगकी इच्छा नहीं करताहूं.

अरु यह जो लक्ष्मीहै सो परम अनर्थकारी है. जब लग इसकी प्राप्ति नहीं होती, तब लग तिसके पावनेका यत्न होता है. अरु अनर्थ करके प्राप्ति होती है. अरु जब प्राप्ति हुई तब सब गुणका नाश कर देती है शीलता, संतोष, धर्म, उदारता, कोमलता, वैराग्य, विचार, दयादिक गुणका नाश करती है. जब ऐसा गुणका नाश हुआ, तब सुख कहांते होय. परम आपदा प्राप्त होती है. परमदुःखका कारण जानकर

मैंने इस्का त्याग किया है. हे मुनीश्वर ! इसमें गुण तब लग है जब लग लक्ष्मी नहीं प्राप्त भई, जब लक्ष्मीकी प्राप्ति भई तब सब गुण श होजाता है, जैसे वसन्तऋतुकी मंजरी हरियावल तबलग रहतीहै, ज लग ज्येष्ठ आषाढ नहीं आया; जब ज्येष्ठ आषाढ आया, तब मंजरी जर जाती है. तैसे जब लक्ष्मी प्राप्ति भई तब सब शुभ गुण जरजाते हैं. अरु मधुर वचन तब लग बोलता है, जब लग लक्ष्मीकी प्राप्ति नहीं होतीहै जब लक्ष्मीकी प्राप्ति भई कोमलताका अभाव होय कठोर होजाता है. जैसे जल पतला तब लग रहता है जब लग शीतलताका संयोग नहीं होय, जब शीतलताका संयोग होताहै, तब बर्फ होकैर कठोर दुःखदायक हो जाता है. तैसे यह जीव लक्ष्मी पाकर जड होजाता है.

हे मुनीश्वर ! जो कछु संपदाहै सो आपदाका मूल है; काहेते कि जब लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है. तब बड़े सुखको भोगता है; अरु जब तिसका अभाव होता है, तब तृष्णा करके जलता है. जन्मते जन्मान्तरको पावता है. लक्ष्मीकी इच्छा है सोई मूर्खता है यह तो क्षणभंग है. याते भोग उपजता है, अरु नाश भी होता है जैसे जलते तरंग उपजते हैं, अरु मिट जाते हैं अरु बिजुली स्थिर नहीं होती है, तैसे भोगहू स्थिर नहीं रहते. अरु पुरुषमें शुभ गुण तब लग हैं, जबलग तृष्णाका स्पर्श नहीं किया. जब तृष्णा भई तब शुभ गुणका अभाव हो जाता है. जैसे दूधमें मधुरता तब लग है. जब लग उसको सर्प ने स्पर्श नहीं किया; जब सर्प ने स्पर्श किया तब दूधहै सो विषरूप होजाता है.

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे रामेण वैराग्य वर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८.

अथ लक्ष्मीतिरस्कारवर्णनम्.

श्रीरामोवाच, हे मुनीश्वर ! लक्ष्मी देखने मात्रको ही सुंदर है, अरु जब इस्की प्राप्ति हुई. तब सद्गुणका नाशकर देतीहै. जैसे विषकी लता

देखने मात्रको सुंदर है अरु स्पर्श कियेते मार डारती है, तैसे लक्ष्मीकी प्राप्ति हुए आत्मपदते मृतक होता है. अरु महादीन होय जाता है. जैसे किसीके घरमें चिंतामणि दबी रही. ताको खोदकर लेवे नहीं, तब लग दरिद्री रहता है, तैसे अज्ञान कर ज्ञान विना महादीन जैसा हो रहता है. आत्मानंदको पाय नहीं सकता आत्मानंदके पानेका जो मार्ग है, तिसकी नाश करनहारी लक्ष्मी है. इसकी प्राप्तिते: जीव महाअंध होय जाता है.

हे मुनीश्वर ! जब दीपक प्रज्वलित होता है, तब उसका बडा प्रकाश दृष्टि आवताहै; जब दीपक बुझ जाताहै, तब प्रकाशका अभाव होय जाता है, अरु काजरकी समक्षता रहजाती है, जो वारंवार वासना उपजती थी, सो रहती है; तैसे जब इस लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, तब बडे भोग उनको भुगवाती है, अरु तृष्णा रूप काजर उससे उपजता रहता है. जब लक्ष्मीका अभाव होता है. तब वासना तृष्णाकी समक्षता छांड जाती है. तिस वासना तृष्णा करके अनेक जन्मको पाता है. शांतिको कदाचित् नहीं प्राप्त होता.

हे मुनीश्वर! जब जिसको लक्ष्मीकी प्राप्ति होतीहै, तब शांतिके उपजावनहारे गुणका नाश करतीहै. जैसे जबलग पवन नहीं चलता, तबलग मेघ रहता है, जब पवन चलाकि मेघका अभाव होजाता है, तैसे लक्ष्मी की प्राप्ति हुए गुणका अभाव होता है, अरु गर्वकी उत्पत्ति होती है.

हे मुनीश्वर ! जो शूरमा होके अपने मुखते अपनी बडाई न कहै, सो दुर्लभ है, अरु समर्थ होय किसीकी अवज्ञा न करै, सबमें समबुद्धि राखै सो दुर्लभ है. तैसे लक्ष्मीवान् होकर शुभ गुण संयुक्त होय सोभी दुर्लभहै.

हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी जो सर्प है, तिसको बढाने का स्थान लक्ष्मी रूपी दूध है, सो पीवत पवन रूपी भोगका आहार करत कदाचित् अघात नहीं. अरु महा मोहरूप उन्मत्त हस्ती है, तिसको फिरने का स्थान पर्वतकी अटवी रूपी लक्ष्मी है. अरु गुण रूप जो सूर्यमुखी कमल है, तिसकी लक्ष्मी रात्रि है, अरु भोग रूपी चंद्रमुखी कमल है,

तिनका लक्ष्मी चंद्रमा है. अरु वैराग्य रूप जो कमलिनीहै, तिके नाशकरनेहारी लक्ष्मी बर्फ है. अरु ज्ञानरूपी जो चंद्रमाहै तिनके आच्छादन करनेहारी लक्ष्मी राहु है. अरु मोहरूपी जो उलूकहै तिसकी यह रात्रिहै. अरु दुःखरूपी जो बिजुरी है तिसको लक्ष्मी आकाश है. अरु तृष्णारूपी जो लता है, तिसको बढावनहारी लक्ष्मी मेघ है, अरु तृष्णारूप जो तरग हैं, तिनकी लक्ष्मी समुद्र है. अरु भोगरूपी पिशाच है, तिसका लक्ष्मी स्थानहै. अरु तृष्णारूपी भवँरको लक्ष्मी कमलिनी है. जन्मके दुःखरूप जलको यह लक्ष्मी ताल है.

हे मुनीश्वर ! देखनेमात्रको यह सुदर लगती है अरु दुःखका कारण है. जैसे खड्गकी धारा देखने मात्रको सुंदर होती है. अरु परश कियेते नाश करती है, तैसी यह लक्ष्मी है. अरु विचाररूपीमेघका नाशकरनेमें लक्ष्मी वायु है.

हे मुनीश्वर! यह मैंने विचारकर देखाहै. इसमें सुख कछूहू नहीं. अरु संतोषरूपीमेघका नाश करनहारा यह शरत्कालहै. अरु इस मनुष्यमें शुभ गुण तबलग दृष्टि आवै, जबलग लक्ष्मीकी प्राप्ति नहीं भई. जब लक्ष्मीकी प्राप्ति भई, तब गुण नाश पाते हैं.

हे मुनीश्वर ! लक्ष्मी ऐसी दुःखदायक जानकर इसकी इच्छा मैंने त्यागदीनी है. यह भोग मिथ्या रूपहै. जैसे बिजुरी प्रगट होय छिपजाती है. तैसे यह लक्ष्मीहू प्रगट होय छिपजाती है. जैसे जल है. सो हिम है, तैसे लक्ष्मीजीकी ज्योतिहै, सो मूर्ख जडके आश्रयतेहै. इसको छलरूप जानकर मैंने त्याग किया है.

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे लक्ष्मीतिरस्कार-
वर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९.

अथ संसारसुखनिषेधवर्णनम्.

रामोवाच, हे मुनीश्वर ! जो वाको देखकर प्रसन्न होता है. सो जैसे पत्रके ऊपर जलकी बूंद नहीं रहती है. तैसे लक्ष्मी क्षणभंग है. जैसे जलके तरंग होयके नाश पातेहैं, तैसे लक्ष्मी होयके नाश पाती है.

हे मुनीश्वर! पवनको रोकना कठिन है सोभी कोऊ रोकरहै; अरु आकाशका चूरन करना अति कठिन है, सो भी कोऊ चूरन करडारै; अरु बिजलीको रोकना अति कठिन है, सोभी कोऊ रोकलेवे, परन्तु लक्ष्मी पायके कोई स्थिर होवे सो नहीं, जैसे शशाके सींग सो कोऊ मार नहीं सकता; अरु आरसीके ऊपर जैसे मोती नहीं ठहरता है. जैसे तरंगकी गांठ नहीं परत है. तैसे लक्ष्मीहू स्थिर नहीं रहती है. लक्ष्मी बिजुलीकी चमक जैसी है, तैसे होतीहू है अरु मिट भी जाती है, अरु लक्ष्मी पायके आपको अमर हुआ चाहे सो महामूर्ख जानना. अरु लक्ष्मीको पायकर जो भोगकी वांछा करत है सो महा आपदाका पात्र है; तिनको जीनेते मरना श्रेष्ठ है. जीनेकी आशा मूर्ख करते हैं, सो अपने नाशके निमित्त करते हैं. जैसे स्त्री जो गर्भकी इच्छा करती है, सो अपने नाशके निमित्त करती है.

अरु जो ज्ञानवान् पुरुष है, जिनकी परमपदमें स्थितिहै, अरु तिसकर तृप्ति पायेहैं, तिनका जीना सुखके निमित्तहै. तिनके जीनेते औरका कार्य्यभी सिद्ध होजाता है. तिनका जीना चिंतामणिकी नाईं श्रेष्ठहै. अरु जिनको सदा भोगकी इच्छा रहतीहै, और आत्मपदके विमुखहैं तिनका जीना किसी सुखके निमित्त नहीं है. वह मनुष्य नहीं, गर्दभ है, अरु जैसे वृक्ष, पक्षी, पशुका जीवनाहै, तैसे तिसका भी जीवना है.

हे मुनीश्वर! जो पुरुष शास्त्र पढाहै, अरु पाने योग्य पद नहीं पाया. तब शास्त्र उसको भाररूप है जैसे औरका भार होता है, तैसे पढनेका भी भारहै. अरु पढके विचार चर्चा करताहै, और तिसके सारको नहीं ग्रहण करता, तो यह विचार चर्चाहू भार है.

हे मुनीश्वर! मन है, सो आकाशरूप है, सो मनमें जो शांति न आईतो मनहू उसको भारहै अरु जो मनुष्य शरीरको पाया है उसका अभिमान नहीं त्यागता है तो यह शरीरभी उसको भारहै. यह शरीरका जीवना तबहीं श्रेष्ठहै, जब आत्मपदको पावे, अन्यथा उसका जीना व्यर्थ है. और आत्मपदकी प्राप्ति अभ्याससे होती है. जैसे जल पृथ्वीके खोदेते निकसता है तैसे अभ्यास कर आत्मपदकी प्राप्ति होती है. अरु

जो आत्मपदते विमुखहोय, आशाकी फांसी में फँसे हैं सो संसारमें भटकते रहते हैं.

हे मुनीश्वर! संसारके तरंग अनेक कालसों उत्पन्न होय नष्ट होय जातेहैं, तैसे यह लक्ष्मीहू क्षणभंगहै, इसको पायके जो अभिमान करतेहैं सो मूर्ख हैं जैसे बिल्ली चूहाको पकड़नेके लिये परी रहती है, तैसे लक्ष्मी उनको नरकमें डारनेके लिये घरमें परी रहतीहै. जैसे अंजलीमें जल नहीं ठहरता, तैसे लक्ष्मी चली जाती है, ऐसी क्षणभंग लक्ष्मी अरु शरीरको पायकर जो भोगकी तृष्णा करते हैं, सो महामूर्ख हैं. सो मृत्युके मुखमें परे हुए जीनेकी आशा करते हैं. जैसे सर्पके मुखमें मेढक पड़ता है सो मच्छरको खानेकी इच्छा करता है, याते सो महामूर्ख है, तैसे यह पुरुष मृत्युके मुखमें पराहुआ भोगकी वांछा करता है, सो महामूर्ख है.

अरु युवा अवस्था नदीके प्रवाहकी नाईं चली जातीहै, बहुरि वृद्धावस्था प्राप्त होती है, तामें महादुःख प्रगट होते हैं, अरु शरीर जर्जर होय जाता है; फिर मरता है. इक क्षणहूँ मृत्यु इनको विसारता नहीं है, सदाई देखत रहताहै, जैसे महाकामी पुरुषको सुन्दर स्त्री मिलती है, तब उसको देखनेका त्याग नहीं करता, तैसे मृत्यु मनुष्यको देखे बिना नहीं रहता है.

हे मुनीश्वर! मूर्ख पुरुषका जीना दुःखकेनिमित्त है. जैसे वृद्धमनुष्यका जीवना दुःखका कारणहै, तैसे अज्ञानीका जीवना दुःखका कारण है. उसको बहुत जीवनेतें मरना श्रेष्ठहै. जिस पुरुषने मनुष्य शरीर पायकर आत्मपदपानेका यत्न नहीं किया तिनने आपई अपना नाश किया है; सो आत्महत्यारा है.

हे मुनीश्वर! यह माया बहुत सुंदर भासती है अरु आखिर नाशको पाती है. जैसे वृक्षको अंतरते घुण खाय जाता है अरु बाहरते बहुत सुन्दर दीखता है; तैसे यह पुरुष बाहरते सुंदर दृष्टि आता है अरु अंतरते इसको तृष्णा खाय जाती है. जो पदार्थको सत्य अरु सुखरूप जानकर सुखके निमित्त आश्रय करता है, सो सुखी नहीं होता है. जैसे नदीमें सर्पको पकरके पार उतरा चाहै, सो पार नहीं उतरता है, वह मूर्खता

डूबेईगा, तैसे जो संसारके पदार्थको सुखरूप जानकर आश्रय रता है,सो सुख नहीं पाता संसारके समुद्रमेंही डूबजाता है.

हे मुनीश्वर! यह संसार इंद्रधनुषकी नाईं है. जैसे इंद्र धनुष बहुत रंगका दृष्टिमें आताहै; अरु तिसते अर्थ सिद्धि कछु नहीं होती है; तैसे यह संसार भ्रममात्र है. इसमें सुखकी इच्छा रखनी व्यर्थ है. इस प्रकार जगत्को मैंने अस्तरूप जानकर निर्वासना होनेकी इच्छा करी है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे संसारसुखनिषेधवर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०.

अथ अहंकारदुराशावर्णनम्.

श्रीरामउवाच, हे मुनीश्वर! यह जो अहंकार उदय हुआ सो अज्ञानते महादुष्ट है. अरु यही परमशत्रु है. इसने मेरेको भार प्राप्त किया है अरु मिथ्या है जेते कछु दुःखहैं तिन सबकी खानि अहंकारहै जबलग अहंकार है,तबलग पीडाकी उत्पत्तिका अभाव कदाचित् नहीं होता है.

हे मुनीश्वर! जो कछु मैंने अहंकारसों भजन किया अरु पुण्य किया है, अरु जो लिया दिया है, और कछु किया है, सो सब व्यर्थ है. इसकर परमार्थकी सिद्धि कछु नहीं है. जैसे राखमें आहुति धरी व्यर्थ होजातीहै तैसे जानत हौं. अरु जेते कछु दुःख हैं तिनका बीज अहंकार है, इसका नाश होवे. तब कल्याण होवे. ताते तुम इसका उपाय मुझको कहो, जिसकर अहंकार निवृत्त होवे.

हे मुनीश्वर! जो वस्तु सत्यहै तिसका त्याग करनेमें दुःख होजाताहै. अरु जो वस्तु नाशवान् अरु भ्रमकरके दिखती है,तिसके त्याग करनेते आनंदहै. अरु शांति रूप जो चंद्रमाहै तिसको आच्छादन करनेका अहंकाररूपी राहुहै. जब राहु चंद्रमाका ग्रहण करताहै, तब उसकी शीतलता अरु प्रकाश ढपजाता है तैसे जब अहंकार उपजताहै, तब समता ढप जाती है. जब अहंकाररूपी मेघ गर्जके बरसता है तब

तृष्णारूपी कटकमंजरी बढ जाती है, सो कदाचित् घटत नहीं. जब अहंकारका नाश होवे. तब तृष्णाका अभाव होवे. जैसे जबलग मेघहै तबलग बिजुरी है. जब विवेकरूपी पवन चलै, तब अहंकाररूपी मेघका अभाव होयके बिजुरी नाश पाती है. जैसे जब लग तेल अरु बातीहै, तब लग दीपका प्रकाशहै; जब तेल बातीका नाश होताहै, तब दीपका प्रकाशभी नाश पाता है तैसे जब अहंकारका नाश होवे, तब तृष्णाका भी नाश होताहै.

हे मुनीश्वर ! परमदुःखका कारण अहंकारहै. जब अहंकारका नाश होवे, तब दुःखका भी नाश होजाय. हे मुनीश्वर ! यह जो मैं रामहों सो नहीं, अरु इच्छा भी कछु नहीं. काहेते जो मैं नहीं तो इच्छा किसको होवे. अरु इच्छा होइ तो यही होइ जो अहंकारके रहित पदकी प्राप्ति होवे. जैसे जनींद्रको अहंकारका उत्थान नहीं हुआ, तैसा मैं होऊं, ऐसी मुझको इच्छाहै.

हे मुनीश्वर ! जैसे कमलको बर्फ नाश करतीहै, तैसे अहंकार ज्ञानका नाश करताहै. जैसे पारधी जालसों पक्षीको बंधन करताहै, तिसपर पक्षी दीन होजाते हैं, तैसे अहंकाररूपी पारधीने तृष्णारूपी जाल डारके जीवको बंधन कियाहै, तिसकर महादीन होगयाहै. जैसे पक्षी अन्नके कनको सुखरूप जानकर चुगनेको आताहै, फिर चुगते फिरते जालमें बँध जाताहै, तिस बंधनकर दीन होजाताहै, तैसे यह पुरुष विषयभोगकी इच्छा कियेते तृष्णारूपी जालमें बंध होय महादीन हो जाताहै. तातें हे मुनीश्वर ! मुझको सोई उपाय कहो जिसकर, अहंकार नाश होवे. जब अहंकारका नाश होवेगा तब मैं परमसुखी होऊंगा जैसे विंध्याचल पर्वतके आश्रयते उन्मत्त हस्ती पडे गर्जतेहैं, तैसे अहंकाररूपी जो विंध्याचल पर्वतहै, तिसके आश्रयते मनरूपी उन्मत्त हस्ती नानाप्रकारके संकल्प विकल्परूपी शब्द करताहै, ताते सोई उपाय कहो जिसकर अहंकारका नाश होवे, सो अहंकार अकल्याणका मूलहै. जैसे मेघका नाश करनहाराशरत्काल है; तैसे वैराग्यका नाशकरनहारा अहंकारहै. मोहादिक विकाररूप जो सर्प हैं, तिनको रहनेके अहंकाररूपी बिलहै;

अहंकार कामीपुरुषकी नाईं है जैसे कामी पुरुष कामको भुगतताहै अरु फूलकी माला गरेमें डारके प्रसन्न होताहै, तैसे तृष्णारूपी तागा है; अरु मनुष्यरूपी फूलके मनके हैं सो तृष्णारूपी तागेके साथ पिरोयेहैं सो अहंकाररूपी कामीपुरुष गरेमें डारताहै अरु प्रसन्न होताहै.

हे मुनीश्वर! आत्मारूपी सूर्य्य है. तिसका आवरण करनेहारा मेघरूपी अहंकारहै, जब ज्ञानरूपी सूर्यउदयका काल आवे तब अहंकाररूपी बादरका नाश हो जाताहै. अरु तृष्णारूपी तुषारका भी नाश होवे.

हे मुनीश्वर! यह निश्चय कर मैंने देखाहै, कि जहां अहंकार है, तहां सब आपदा आय प्राप्त होतीहैं,जैसे समुद्रमें सब नदी आयके प्राप्त होती हैं; तैसे अहंकारमें सब आपदाकी प्राप्तिहै. ताते सोई उपायकहो जिसकर अहंकारका नाश होवे.

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे अहंकारदुराशावर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११.

अथ चित्तदौरात्म्यवर्णनम्.

श्रीरामउवाच, हे मुनीश्वर! यह जो मेराचित्त है सो काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णादिक दुःख कर जर्जरीभाव होगयाहै. अरु महांपुरुषके जो गुण वैराग्य, विचार, धैर्य, संतोष, तिनकी ओर नहीं जाता; सर्वदा विषयकी गिरदमें उडता है. जैसे मोरका पंख पवनके लागे ठहरता नहीं, तैसे यह चित्त सर्वदा भटकता फिरताहै, अरु इसको लाभ कछु प्राप्त नहीं होता. जैसे श्वान द्वार द्वारपै भटकता फिरता है, तैसे यह चित्त पदार्थके पावने निमित्त भटकता फिरता है, और प्राप्त कछु नहीं होता. अरु जो कछु प्राप्त होताहै तिसकरि तृप्त नहीं होता. अंतर तृष्णा रही आवत है. जैसे पिटारेमें जल भरिये, तासों वह पूर्ण नहीं होता, क्योंकि

छिद्रते जल निकस जाताहै; अरु पिटारा शून्यका शून्य रहता है, चित्तको भोग पदार्थप्राप्त होता है, तासों संतुष्ट नहीं होता है. तृष्णाई रहत है.

हे मुनीश्वर! यह चित्तरूपी महामोहका समुद्र है, तिसमें तृष्णारूप तरंग उठतेई रहत हैं;सो कदाचित् स्थिर नहीं होते, जैसे समुद्रमें तीक्ष्ण वेगकर तरंग होता है, सो तटके वृक्षको लागता है, अरु जलमें बहजातेहैं; तैसे चित्तरूपी समुद्रमें विषय बहिजाते हैं, वासनारूपी तरंगके वेगसों मेरा जो अचल स्वभाव था, सो चलायमान होगया है सो इस चित्तसों मैं महादीन हुआहूं जैसे जालमें परा पक्षी दीन होजाता है तैसे चित्तसे धीवरकी वासनारूपी जालमें बँधा हुआ मैं दीनहोगया हूं, जैसे मृगके समूहते भूली मृगी अकेली खेदवान होती है, तैसे मैं आत्मपदते भूला हुआ चित्तमें खेदवान हुआ हूँ.

हे मुनीश्वर! यह चित्त सदा क्षोभवान रहताहै, कदाचित् स्थिर नहीं होता, जैसे क्षीरसमुद्र मंदराचल करके क्षोभवान हुआ था, तैसे यह चित्त संकल्प विकल्प कर खेद पावतहै, जैसे पिंजरेमें आया सिंह पिंजरेमें फिरता है, तैसे वासनामें आया चित्त स्थिर नहीं होता.

हे मुनीश्वर! इस चित्तने मेरेको दूरते दूर डाराहै, जैसे भारी पवनसों सूखा तृण दूरते दूर जाय पडताहै तैसे चित्तरूपी पवनने मुझको आत्मानंदते दूर डाराहै. जैसे सूखे तृणको अग्नि जरावत है, तैसे मोको चित्त जारता है. जैसे अग्निते धूम निकलता है, तैसे चित्तरूपी अग्निते तृष्णारूपी धूम निकलता है, तिसकर मैं परम दुःख पावत हों, यह चित्त हंस नहीं बनता है, जैसे राजहंस दूध अरु जल मिलेको भिन्न २ करता है, तिसकी नाईं मैं अनात्मामें अज्ञान करके एकसा होगया हूँ; तिसको भिन्न नहीं करसकता हूँ; जब आत्मपद पानेका यत्न करता हूँ, तब अज्ञान प्राप्त करने नहीं देता. जैसे नदीका प्रवाह समुद्रमें जाता है, तिसको पहाड़ सूधे नहीं चलने देता है. अरु समुद्रकी ओर जाने नहीं देता है. तैसे मुझको चित्त आत्माकी ओरते रोकता है; सो परमशत्रुहै. हे मुनीश्वर! ताते सोई उपाय कहो, जिसकर चित्तरूपी शत्रुका नाश होवे.

यह तृष्णा मेरा भोजन करती रहती है; जैसे मृतक शरीरको श्वान अरु श्वाननी भोजन करते हैं, तैसे आत्माके ज्ञानविन मैं मृतक समान हों. जैसे बालक अपनी परछाहींको बैताल मानकर भयको पाता है. सो जब विचार करके समर्थ होता है, तब वैतालका भय पाता नहीं तैसे चित्तरूपी वैतालने मेरा स्पर्श किया है; तिसकरके मैं भयको पाता हूँ, ताते तुम सोई उपाय कहो; जिससे चित्तरूपी वैताल नष्ट होय जावे.

हे मुनीश्वर ! अज्ञान करके मिथ्या वैताल चित्तमें दृढहोरहाहै;तिसके नाश करनेको मैं समर्थ नहीं हो सकता हों, अग्निमें बैठना; सो भी मैं सुगम मानता हों, और चलके बडे पर्वतके ऊपर जाना, सोभी मैं सुगम जानता हों. अरु बडे वज्रका चूरन करना यह भी मैं सुगम मानता हों, परन्तु चित्तका जीतना महाकठिन है, ऐसा मैं जानता हों. चित्त सदाई चलायमान स्वभाववाला है. जैसे थंभकेसाथ बांधाहुआ वानर कदाचित् स्थिर होय नहीं बैठता, तैसे चित्त वासनाके मारे स्थिर कदाचित् नहीं होताहै. हे मुनीश्वर ! बडा समुद्रका पान करजाना सुगम है, अरु अग्निका भक्षण करनाभी सुगम है, और सुमेरुका उल्लंघन करना सोभी सुगम है, परन्तु चित्तको जीतना महाकठिन है, जो सदा चलरूप है. जैसे समुद्र अपना द्रवस्वभावका कदाचित् नहीं त्याग करता, अरु महाद्रवीभूत रहता है, तिसकर नानाप्रकारके तरंग होतेहैं, तैसे चित्तभी चंचलस्वभावको कभी नहीं त्यागता है, नानाप्रकारकी वासना उपजती रहतीहैं, अरु बालककी नाईं चंचलहै, सदा विषयकी ओर धावताहै कहूं पदार्थकी प्राप्ति होती है, परन्तु अंतरते सदा चंचल रहता है, जैसे सूर्यके उदय हुए ते दिन होताहै. अरु अस्त हुएते नाश पाता है, जैसे चित्तके उदयहुए त्रिलोकीकी उत्पत्ति है, अरु चित्तके लीन हुएते लीन होजाती है.

हे मुनीश्वर ! किसी समुद्रमें जल गंभीरहै, तिसमें बडेसर्प रहते हैं, सो जब कोऊ समुद्रमें प्रवेश करै, तब वे सर्प उनको काटतेहैं, तिनको विष चढ जाताहै, तिसकरके बडादुःख पाताहै, सो दृष्टांत सुनिये चित्तरूपी समुद्रहै अरु वासनारूपी जलहै; तिसमें छलरूपी सर्प है, जब

जीव उसके निकट जाताहै तब भोगरूपी सर्प उसको काटताहै तृष्णारूपी विष पसरताहै, तिसकर मरता है.

हे मुनीश्वर ! जो भोगको सुखरूपी जानकर चित्त दौरताहै, सो भोग दुःखरूपहै, जेसे तृणसों खाई आच्छादित होय जातीहै. तिसको देखकर मूर्ख मृग खानेको दौरता है तब खाईमें गिर पडताहै अरु दुःख पाताहै, तैसे चित्तरूपी मृग भोगका सुख जानकर भोगनेको लगताहै. तब तृष्णारूपी खाईमें गिर पडताहै. अरु जन्मान्तर दुःखको भोगताहै.

हे मुनीश्वर ! यह चित्त कबहूं बडा गंभीरहो बैठताहै, और जब भोगको देखताहै, तब तिनकी ओर चीलकी नाईं लगि गिर पडताहै जैसे गीदड पक्षी आकाशमें चढा फिरताहै सो जब पृथ्वीपर मांसको देखताहै, तब तहांते आय पृथ्वीपर बैठताहै अरु मांसको लेताहै, तैसे यह चित्त कभी निराला उडताहै, जब विषय देखेतब आसक्ति पाय विषयमें गिर जाताहै, अरु यह चित्त वासनारूपी शय्यामें सोता रहताहै;अरु आत्मपदमें जागता नहीं इसचित्तकी जालमें मैं पकराया हों सो कैसा जालहै तामें वासनारूपी सूत्रहै, अरु संसारकी सत्यतारूपी ग्रथि है अरु भोगरूपी तिसमें चून है. इसको देखके मैं फँसाहों, कबहूं पातालमें; कबहूं आकाशमें वासनारूपी जेवरीकर घटीयंत्रकी नाईं बँधाहों, ताते हे मुनीश्वर ! तुम सोई उपाय कहो जिसकर चित्तरूपी शत्रुको जीतों.

अब मुझको किसी भोगकी इच्छा नहीं अरु जगत्की लक्ष्मी मुझको विरस भासतीहै. जैसे चंद्रमा बादरकी इच्छा नहीं करता,अरु चतुर्मासमें आच्छदित होय जाताहै, ताते मैं भोगकी इच्छा नहीं करता और जगत्की लक्ष्मीको मैं नहीं चाहता, अरु मेरा चित्तहै सो परम शत्रु है.

हे मुनीश्वर ! महापुरुष जो जीतनेका यत्न करतेहैं सो जब चित्तको जीतें तब परम पदको पावें ताते मुझको सोई उपाय कहो, जिसकर मनको जीतों; दुःख इसके आश्रयते रहतेहैं, जैसे पर्वतपर वनहै सो पर्वतके आश्रयते रहताहै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे चित्तदौरात्म्यवर्णनं नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२.
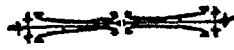
अथ तृष्णागारुडीवर्णनम्.

श्रीरामउवाच, हे ब्रह्मन्! चैतन्यरूपी आकाशमें जो तृष्णारूपी रात्रि आई है, तामें काम, क्रोध, लोभ, मोहादिक घुवड विचरतेहैं; जब ज्ञानरूप सूर्य उदय होवे तब तृष्णारूपी रात्रिका अभाव होयजावे. जब रात्रि नष्ट भई, तब मोहादिक उलूकभी नष्ट होजाते हैं जब सूर्यका उदय होताहै, तब बर्फ उष्णहोय पिघल जाताहै तैसे संतोषरूपी रसको तृष्णारूपी उष्णता सुखातीहै. बहुरि तृष्णा कैसीहै जैसे शून्य वनमें पिशाचनी अपने परिवारसहित फिरती रहती है, अरु प्रसन्न होतीहै सो वन अरु पिशाच कैसाहै, आत्मपदते शून्य जो चित्त सो भयानक शून्यवनहै तिसमें तृष्णारूपी पिशाचनीहै, अरु मोहादिक उसका परिवार है, उनको साथ लेकर फिरतीहै.

हे मुनीश्वर! चित्तरूपी पर्वतहै; तिसके आश्रयते तृष्णारूपी नदीका प्रवाह चलताहै अरु नानाप्रकारके संकल्परूपी तरंगको पसारतेहैं जैसे मेघको देखकर मोर प्रसन्न होताहै; तैसे तृष्णारूपी मोर भोगरूपी मेघको देखके प्रसन्न होताहै, ताते परमदुःखका मूल तृष्णाहै. जब मैं किसी संतोषादि गुणका आश्रय करता हों, तब तृष्णा तिसको नाश करदेतीहै. जैसे सुंदर सारंगीको चूहा तोरडारताहै; तैसे संतोषादि गुणको तृष्णा नाश करतीहै.

हे मुनीश्वर! सबते उत्कृष्ट पदमें विराजनेका मैं यत्न करता हों. तब तृष्णा विराजने नहीं देती. जैसे जालमें फँसाहुआ पक्षी आकाशमें उडनेका यत्न करता है. परंतु उड नहीं सकता है. तैसे मैं अनात्मपदमेंते आत्मपदको प्राप्त नहीं हो सकता. स्त्री, पुत्र, अरु कुटुंबने जाल बिछायाहै. तामें फँसा हों सो निकस नहीं सकता. सो आशारूपी फांसीमें बँधा हुआ, कबहूं ऊर्ध्वको जाता हों, कबहूं अधःपात होता हों, सो घटीयंत्रकी नाईं मेरी गति है. जैसे इंद्रका धनुष मेघमें मलीन होता है. सो बडाअरु बहुत रंगोंसों भरा है. परंतु मध्यते शून्यहै. तैसे तृष्णा मलिन

अंतःकरणमें होती है सो बडी है. अरु गुणरूपी रंगते रँगी है. दे
मात्रको सुन्दर है; परंतु इससे कार्य्य सिद्धि कछु नहीं होती.

हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी मेघ है, तिससे दुःखरूपीबुंद निकसते हैं. अरु तृष्णारूपी काली नागनी है; उसका स्पर्श तो कोमल है, परंतु विष करके पूर्ण है; तिसके डसेते मृतक होजाता है. अरु तृष्णारूपी बादर है. सो आत्मरूपी सूर्यके आगे आवरण करताहै. जब ज्ञानरूपी पवन निकसे तब तृष्णारूपी बादरका नाश होवे, अरु आत्मपदका साक्षात्कार होवे, अरु अज्ञानरूपी कमलको संकोच करनहारी तृष्णारूपी निशा है, अरु तृष्णारूपी महाभयानक कालीरात्रिहै, जिसकर बडे धीरजवान भी भयभीत हैं, अरु नयनवारेको भी अंधा कर डारती है, जब यह आवती है, तब वैराग्य अरु अभ्यासरूपी नेत्रको अंध कर डारती है, अर्थ यह जो सत्य असत्यको विचारने नहीं देती.

हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी डाकनी है, सो संतोषादिक पुत्रोंको मार डारती है, अरु तृष्णारूपी कंदरा है, तिसमें मोहरूपी उन्मत्त हस्ती गर्जते हैं अरु तृष्णारूपी समुद्र है, तिसमें आपदारूपी नदी आयप्रवेश करतीहैं ताते सोई उपाय मुझको कहो, जिसकर तृष्णारूपी दुःखते छूटौं.

हे मुनीश्वर ! अग्निसों भी ऐसा दुःख नहीं होता अरु इंद्रके वज्रकर भी ऐसा दुःख नहीं होता, जैसे दुःख तृष्णाकर होता है. सो तृष्णाके प्रहारसों घायल बडेदुःखको पाता है, अरु तृष्णारूपी दीपकमें परा-जरता है, तिसमें संतोषादिक पतंगे जर जाते हैं. जैसे जलमें मछली रहतीहै, सो जलमें कंकरी, रेती आदिको देख, मांस जानकर वह मुखमें लेती है, ताते उसका अर्थ सिद्धि कछु नहीं होता; तैसे तृष्णा भी जो कछु पदार्थ देखती है, तिसके पास उडती है, अरु तृप्ति किसी कर नहीं होती, अरु तृष्णारूपी एक पंखनीहै, सो सब कहूं उडजाती है, अरु स्थिर कबहूं नहीं होती, तैसे तृष्णाभी कबहूं किसी पदार्थको, कबहूं किसीको ग्रहणकरतीहै, परंतु स्थिर कबहू नहीं होती अरु तृष्णारूपी वानर है, सो कबहूं किसी वृक्षपर, कबहूं किसीके ऊपर जाता है, स्थिर कबहू नहीं होता है. जो पदार्थ नहीं प्राप्त होता तिसके

निमित्त यत्न करता है, तैसे तृष्णाहूं नाना प्रकारके पदार्थका ग्रहण करती है. अरु भोगकर तृप्त कदाचित् नहीं होती. जैसे घृतकी आहुतिकर अग्नि तृप्ति नहीं पावे, तैसे जो पदार्थ प्राप्ति योग्य नहीं है, तिसके ओर भी तृष्णा दौरती है, शांतिको नहीं पाती है.

हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी उन्मत्त नदी है, तिसमें जो बहाया पुरुष, ताको कहांका कहां ले जाती है, कबहूं तो पहारकी बाजूमें लेजाय. कबहूं दिशामें लेजाय, जैसे इनको लिये फिरती है, तैसे तृष्णारूपी नदी है, सो मुझको लिये फिरती है, अरु तृष्णारूपीनदी है. इसमें वासनारूपी अनेक तरंग उठते हैं, कदाचित् मिटते नहीं हैं अरु तृष्णारूपी नटनी है, अरु जगत्रूपी अखाडा तिसने लगाया है, तिसको शिर ऊंचा कर देखती है, अरु मूर्ख बडे प्रसन्न होते हैं, जैसे सूर्यके उदय हुए सूर्यमुखी कमल खिलके ऊंचा आताहै, तैसे मूर्ख तृष्णाको देखकर प्रसन्न होतेहैं, तृष्णारूपी वृद्ध स्त्री है, जो पुरुष इसका त्याग करताहै, तब वाके पाछे लगी फिरतीहै, कबहूं इसका त्याग नहीं करती, अरु तृष्णारूपी डोरहै, तिसके साथ जीवरूपी पशु बांधे हुएहैं, तिसकर भ्रमते फिरतेहैं, अरु तृष्णा दुष्टनीहै, जब शुभ गुणको देखे, तब तिनको मार डारतीहै, तिसके सयोगते मैं दीन होजाता हूँ, जैसे पपैया मेघको देखकर प्रसन्न होता है अरु बूंद ग्रहण करने लगता है, और मेघको जब पवन ले जाता है, तब पपैया दीन होजाता है, तैसे तृष्णा शुभगुणका नाश करती है तब मैं दीन हो जाता हों.

हे मुनीश्वर ! तृष्णाने मुझको दूरते दूर डारा है, जैसे सूखे तृणको पवन दूरते दूर डारताहै, तैसे तृष्णारूपी पवनने मुझको दूरते दूर डारा है, आत्मपदते दूर परा हों, हे मुनीश्वर ! जैसे भौंरा कमलके ऊपर जाता कबहू नीचे बैठता है, कबहूं आसपास फिरता है, अरु स्थिर नहीं होता, तैसे तृष्णारूपी भौंरा संसाररूपी कमलके नीचे ऊपर फिरता है, कदाचित् ठहरता नहीं है, जैसे मोतीका बांस होता है. तिसते अनेक मोती निकसते हैं, तैसे तृष्णारूपी बांसते जगत्रूपी अनेक मोती निकसते हैं, तिसकर लोभीका मन पूर्ण नहीं होता है, तैसे तृष्णासे

मनपूर्ण नहीं होता, दुःखरूपी रत्नका तृष्णारूपी डब्बा है, तिस अनेक दुःख रहते हैं ताते सोई उपाय कहो, जिसकर तृष्णा निवृत्त होवे.

यह तृष्णा वैराग्यसों निवृत्ति पातीहै, और किसी उपायकर निवृत्ति नहीं होती है, जैसे अंधकारका नाश प्रकाश कर होता है, और किसी पाय कर नहीं होता; तैसे तृष्णाका नाश और उपायसों नहीं है, अरु तृष्णारूपी हल है, सो गुणरूपी पृथ्वीको खोद डारता है, अरु तृष्णारूपी लताहै, सो गुणरूपी रसको पीती है, अरु तृष्णारूपी धूर है, सो अंतःकरणरूपी जलमें उछलके मलिन करती है.

हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी नदी है, सो वर्षाकालमें बढती है, फिर घट-जाती है, तैसे जब इष्ट भोगरूपी जल प्राप्त होता है, तब हर्षकर बढती है, जब भोगरूपी जल घट जाता है, तब सूखके क्षीण होजाती है. हे मुनीश्वर ! इस तृष्णाने मुझको दीन किया है, जैसे सूखे तृणको पवन उडाता है; तैसे मुझको उडाती है ताते सोई उपाय तुम कहो, जिसकर तृष्णाका नाश होवे, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवे, अरु दुःख नष्ट होवे, अरु आनंद होवे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे तृष्णागारुडीवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३.

अथ देहनैराश्यवर्णनम्.

श्रीराम उवाच, हे मुनीश्वर ! यह जो अमंगलरूप शरीर जगतमें उत्पत्ति पाया है, सो बडा अभाग्यरूप है, सदा विकारवान् मांसमज्जा कर पूर्ण है; सदा अपवित्र है, इस करके मैं कछु अर्थसिद्धि होना नहीं देखता, ताते तिस विकाररूप शरीरकी इच्छा मैं नहीं रखता.

यह शरीर न अज्ञ है, न तज्ज्ञ है, अर्थ यह न जड है न चैतन्य है, जैसे अग्निके संयोग कर लोहा अग्निवत् होता है; सो जलता भी है; परंतु आप नहीं जलता, तैसे यह देह न जड है न चैतन्य है, जड इस

कारणते नहींकि, इसते कार्य भी होता है, अरु चैतन्य इस कारणते नहीं कि इसको आपते ज्ञान कछू नहीं होता; ताते मध्यमभावमें है काहेते जो चैतन्य आत्मा इससें व्याप रहा है, सो लोह अग्निकी नाईं जानत हों, अरु आपते अपवित्ररूप अस्थि, मांस, रुधिर, मूत्र, विष्ठा करि पूर्ण अरु विकारवान्, ऐसी जो देह है सो दुःखका स्थान है, अरु इष्टके पायेते हर्षवान होती है, अरु अनिष्टके पाये ते शोकवान् होतीहै, ताते ऐसे शरीरकी मुझको इच्छानहीं.यह अज्ञान कर उपजताहै.

हे मुनीश्वर ! ऐसे अमंगलरूपी शरीरमें जो अहंपना फुरता है, सो दुःखका कारण है, यह संसारमें स्थित होकर नाना प्रकारके शब्द करता है अरु तृष्णा कबहूं नहीं धारता है; अरु अहंकाररूपी विलाडा देहमें रहा हुआ; अहं, अहं, करता है, चुप कदाचित् नहीं रहता है, हे मुनीश्वर ! जो किसीके निमित्त शब्द होवे सो सुन्दर है; अन्यथा शब्द व्यर्थ है. जैसे जयके निमित्त ढोलका शब्द सुन्दर होता है; तैसे अहंकारते रहित जो पद है; सो शोभनीकहै; और सब व्यर्थ है.

अरु शरीररूपी नौका भोगरूपी रेतीमें परीहै इसको पार होना कठिन है. जब वैराग्यरूपी जल बढै अरु प्रवाह होवे; अरु अभ्यासरूपी पतवारीका बल होवे तब संसारके पाररूपी किनारेपै पहुँचै. अरु शरीररूपी बेड़ा है, अरु संसाररूपी समुद्र और तृष्णारूपी जलमें पराहै, अरु बड़ा प्रवाहहै. अरु भोगरूपी तिसमें मगरहै, सो शरीररूपी बेडाको पार लगने नहीं देता. जब शरीररूपी बेडाके साथ वैराग्यरूपी वायु लगै, अरु अभ्यासरूपी पतवारीका बललगै, तब शरीररूपी बेडा पारको पावे, हे मुनीश्वर ! जिस पुरुषने ऐसे बेडेको उपायकर आपको संसारसमुद्रते पारकियाहै; सो सुखी भया है, अरु जिसने नहीं किया, सो परम आपदाको प्राप्त होताहै सो इस बेड़ेकर उलटे डुबेंगे जैसे बेडेमें छिद्र होवें और वामें जल प्रवेश कर आवे, तब वह डूब जाता है, अरु तिसमें जो मच्छहै, सो खाई जाताहै, सो इहां शरीररूपी बेडेका तृष्णारूपी छिद्रहै, तिस करके इहां संसार समुद्रमें डूब जाताहै अरु भोगरूपी मगर इसको खाताहै. अरु यह आश्चर्यहै कि. बेडा अपने

निकटनहीं भासता है, अरु मनुष्य सो मूर्खता करके आपको माने है, अरु तृष्णारूपी छिद्र करके दुःखपाताहै.

अरु शरीररूपी वृक्षहै, तामें भुजारूपी शाखा हैं, अरु अंगुरी इसके पत्र हैं, अरु जंघा इसके स्तंभहैं, अरु वासना इसकी जडहै. अरु सुख दुःख इसके फूलहैं, अरु तृष्णारूपी घुनहै, सो शरीररूपी वृक्षको खाता रहताहै जब इसको श्वेत फूल लगे, तब नाशका समय पाताहै कारणजो मृत्युके निकटवर्त्ती होताहै. बहुरि शरीररूपी इसके टास हैं अरु गिट इसका गुच्छाहै अरु दांत फूलहैं जंघा स्तंभहैं,अरु कर्म जलकर बढजाता है, जैसे वृक्षते जल निकसताहै, सो चिकटाहै तैसे जल शरीरके द्वार निकसता रहताहै. अरु तृष्णारूपी विषते पूर्ण सर्पिनी रहती है, अरु जो कामनाके लिये इस वृक्षका आश्रय लेताहै, तब तृष्णारूपी सर्पिनी तिसको डसतीहै. तिस विषसों वह मरि जाताहै. हे मुनीश्वर ! ऐसा जो अमंगलरूपी शरीर वृक्षहै, तिसकी इच्छा मुझको नहीं है यह परम दुःखका कारणहै.

जब लग यह पुरुष अपने परिवारमें बँधा हुआ है तबलग मुक्ति नहीं होती; जब परिवारका त्याग करै तब मुक्ति होवे. देह, इंद्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, इसका परिवार है इनमें जो अहंभावहै, ताका त्याग करै तब मुक्तिहोवे अन्यथा मुक्ति नहीं होती.

हे मुनीश्वर ! जो श्रेष्ठ पुरुषहैं, सो पवित्रही स्थानमें रहते हैं; अपवित्र में नहीं रहते. सो अपवित्र स्थान यह देहहै इसमें रहनेवाला भी अपवित्र है, अरु अस्थिरूपी इस घरमें लकड़े हैं; तामें रुधिर, मूत्र, विष्ठाका इसमें कीच लगायाहै; और मांसकी कहगील करीहै, अरु अहंकाररूपी इसमें श्वपच रहता है अरु तृष्णारूपी श्वपचनी इसकी स्त्रीहै, अरु काम, क्रोध, मोह, लोभ इसके बेटे हैं. आंत अरु विष्ठादिककरि पूर्ण भराहुआ है ऐसा जो अपवित्र स्थान अमंगलरूप जो शरीर तिसका मैं अंगीकार नहीं करता, यह शरीर रहो चाहे मत रहो. इसके साथ मेरा अब कछु प्रयोजन नहीं.

हे मुनीश्वर ! एक बडा घरहै, तिसमें बड़े पशु रहतेहैं,सो धूरको उडावते

है, सो गृहमें कोऊ जाताहै तब सींगसों मारने लगते हैं अरु धूडभी उसके ऊपर गिरती है, सो शरीररूपी बड़ा गृहहै, तिसमें इंद्रियरूपी पशु हैं, जब इस गृहमें पैठताहै, तब बडी आपदाको प्राप्त होताहै, तात्पर्य यह जो इसमें अहंभाव करताहै, तब इंद्रियरूपी पशु सो विषयरूप सींगसों मारते हैं अरु तृष्णारूपी धूड इसको मलीन करतीहै, हे मुनी-श्वर ! ऐसे शरीरको मैं अगीकार नहीं करता.

जिसमें सदा कलह पडेही रहते हैं, तिसमें ज्ञानरूपी संपदा प्रवेश नहीं होती. ऐसा जो शरीररूपी गेह हैं, तिसमें तृष्णारूपी चंडी स्त्री रहती है, सो इंद्रियरूपी द्वारसों देखती रहती है, सो सदा कलपना करत रहती है; तिसकर शमदमादिरूप संपदाका प्रवेश नहीं होता. तिस घरमें एक शय्या है; जब उसके ऊपर विश्राम करता है, तब कछुक सुख पाता है; परंतु तृष्णाका जो परिवार है सो विश्राम करने नहीं देता. सो सुषुप्तिरूपी शय्या है; जब उसमें विश्राम करता है, तब काम क्रोधादिक रुदन करते हैं. अरु ये चंडी स्त्रीका जो परिवार, काम, क्रोध, लोभ, मोह, इच्छा है सो उठाय देते हैं; विश्राम करनें नहीं देते. हे मुनीश्वर ! ऐसा दुःखका मूल जो शरीर रूपी गृह है, तिसकी इच्छा मैंने त्याग दीनी है. यह परमदुःख देनेहारा है, इसकी इच्छा मुझको नहीं है.

हे मुनीश्वर ! शरीररूपी वृक्ष है; तिसमें तृष्णारूपी कौवानी आय स्थित भईहै. सो जैसे कौवानी नीच पदार्थके पास उडती है तैसे तृष्णा-रूपी कौवानी भोगरूपी मलिन पदार्थ के पास उड़ती है. बहुरि तृष्णा बंदरीकी नाई शरीररूपी वृक्षको हिलाती है वृक्षको स्थिर होने नहीं देती अरु जैसे उन्मत्त हस्ती, कीचमें फँस जाता है, अरु निकस नहीं सकता, अरु खेदवान होताहै, तैसे अज्ञानरूपी मद कर उन्मत्त हुआ जीव शरीररूपी कीचमें फँसा है, सो निकस नहीं सकता है, पराया दुःख पावता है. ऐसे दुःख पावनेवारा शरीर है, तिसका मैं अगीकार नहीं करता.

हे मुनीश्वर ! यह शरीर अस्थि, मांस, रुधिर कारि पूर्णहै, सो अपवित्र है. जैसे हस्तीके करन सदाही हिलते हैं तैसे इसको मृत्यु परा हिलता

है. कछु कालका विलंब है, परंतु मृत्यु इसका ग्रास कर लेवेगा. तो इस शरीरका अंगीकार नहीं करता हों.

यह शरीर कृतघ्न है, भोग भुगतता है, बडे ऐश्वर्यको प्राप्त करताहै, परंतु मृत्यु इनकी सखापन नहीं करताहै. जब जीव इसको छांड कर परलोकको जाता है, तब अकेलाही जाता है, और शरीरको छोड देता है, जीव इसके सुख निमित्त अनेक यत्न करताहै, परंतु संगमें सदा नहीं रहता. ऐसा जो कृतघ्न शरीर है, इसका मैंने मनसों त्याग किया है; जो यह दुःख देनहाराहै.

हे मुनीश्वर ! और आश्चर्य देखो,—जो वाईका भोग करताहै, तिसके साथ चलता नहीं, जैसे धूर कर मार्ग भासनेते रहजाता है, तैसे यह जीव जब चलने लगता है तब शरीरके साथ क्षोभवान होता अरु वासनारूप धूर संयुक्त चलता है; परंतु दीखता नहीं कि कहां गया. जब परलोकको जाता है, तब बडा कष्ट होता है; काहेते कि, शरीरके साथ स्पर्श कियाहै.

हे मुनीश्वर ! यह शरीर क्षणभंगुर है. जैसे जलकी बूंद पत्रके ऊपर गिरती है, सो क्षणमात्र रहती है; तैसे शरीर भी क्षणभंगहै, ऐसे शरीरमें आस्था करनी सो मूर्खता है; अरु ऐसे शरीरके ऊपर उपकार करना भी दुःखके निमित्त है, सुख कुछ नहीं है. और जो धनाढ्य शरीरसों बडे भोग भुगततेहैं, अरु निर्धन थोडे भोग भुगतते हैं; परंतु जरावस्था अरु मृत्यु दोनोंको होते हैं. इसमें विशेषता कछु नहीं. शरीरका उपकार करना और भोग भुगतना सो तृष्णा करके उलटा दुःखका कारण है, जैसे कोऊ नागिनी घरमें रखके उसको दूध पिलावे, सोई आखिर उसको काटके मारैगी, तैसे जीवने तृष्णारूपी नागिनीके साथ सखाई करी है, सो मरैगा, क्योंकि नाशवंत है. इसके निमित्त जो भोग भुगतनेका यत्न करना सो मूर्खता है. जैसे पवनका वेग आता है, अरु जाता है, तैसे यह शरीर नाशवंत है. इससों प्रीति करनी, सो दुःखका कारण है सब जीव इसकी अवस्थामें बांधे हुए हैं, इसका त्याग कोई विरलानेही किया है. जैसे कोई विरला मृग होता है, सो मरुथलके जलकी आस्था त्यागता है और सब परे भ्रमते हैं.

हे मुनीश्वर ! बिजलीका अरु दीपकका प्रकाश भी आता जाता दीखता है, परंतु इस शरीरका आदि अंत नहीं दिखता है कि, कहांते आता है, अरु कहां जाता है. जैसे समुद्रमें बुद्बुदे उपजते हैं, अरु मिट जाते हैं, तिसकी आस्था करनेते कछु लाभ नहीं, तैसे यह शरीरकी आस्था करनी योग्य नहीं. यह अत्यंत नाशरूपहै, स्थिर कदाचित् नहीं होता है. जैसे बिजुरी स्थिर नहीं होती, तैसे शरीर भी स्थिर नहीं रहता इसकी मैं आस्था नहीं करता इसका अभिमान मैंने त्यागा है. जैसे कोई सूखे तृणको त्याग देता है, तैसे मैंने अहंममता त्यागी है.

हे मुनीश्वर ! ऐसे शरीरको पुष्ट करना, सो दुःखके निमित्त है यह शरीर किसी अर्थ आवने योग्य नहीं जलावने योग्य है. जैसे लकडी जलाने बिन और काममें नहीं आती है, तैसे यह शरीरभी जड अरु गूगा जलावनेके अर्थ है. हे मुनीश्वर ! जिन पुरुषोंने काष्ठरूपी शरीरको ज्ञानाग्नि कर जलाया है; तिनका परम अर्थ सिद्ध भया है. अरु जिनने नहीं जलाया, सो परमदुःख पाया है.

हे मुनीश्वर! न मैं शरीर हों, न मेरा शरीर है, न इसका मैं हों, न यह मेरा है, अब मुझको कामना कोई नहीं है. मैं निराशी पुरुष हों. अरु शरीरके साथ मुझको प्रयोजन कछु नहीं है. ताते तुम सोई उपाय कहो जिसकर मैं परमपदकी प्राप्ति [illegible]ऊं.

हे मुनीश्वर ! जिस पुरुषने शरीरका अभिमान त्यागा है, सो परमानंदरूप है; और जिसको देहका अभिमान है सो परमदुःखी है. जेते क दुःख हैं सो शरीरके संयोग करि होते हैं. मान, अपमान, जरा, मृत्यु, दंभ, भ्रांति, मोह, शोक, आदि सर्वविकार देहके संयोगकर होतेहैं. जिसको देहमें अभिमान है तिसको धिक्कार है. और सब आपदाभी तिसको प्राप्त होती हैं. जैसे समुद्रमें नदी आयकर प्रवेश करती हैं, तैसे देहाभिमानमें सर्व आपदा आय प्रवेश करती हैं. जिसको देहका अभिमान नहीं, सो पुरुषोंमें उत्तम है, अरु वंदना करने योग्य है, ऐसेको मेरा नमस्कार है, अरु सर्व सम्पदाभी तिसको प्राप्त होती हैं. जैसे मानसरोवरमें सब हंस आय रहते हैं. तैसे जहां देहाभिमान नहीं रहा, तहां सर्व संपदा आय रहतीहैं.

हे मुनीश्वर! जैसे अपनी छायामें बालक वैताल कल्पता है, अरु कर भय पाताहै, जब इसको विचारकी प्राप्ति होती है तब वैताल अभाव होजाता है. तैसे अज्ञानकर मुझको अहंकाररूपी पिशाचने शरीरमें दृढ आस्था बताई है, ताते सोई उपाय कहो, जिस कर अहंकाररूपी पिशाचका नाश होवे अरु आस्थारूपी फांसी टूटे.

हे मुनीश्वर! प्रथम जो मुझको अज्ञानकर संयोग था, सो अहंकाररूपी पिशाचका था, तिससे अनंतर शरीरमें आस्था उपजीहै. जैसे बीजते प्रथम अंकुर होताहै, फिर अंकुरते वृक्ष होताहै तैसे अहंकारसे शरीरकी आस्था होतीहै. हे मुनीश्वर! इस अहंकाररूपी पिशाचने सब जीवनको दीन किये हैं. जैसे बालकको छायामें वैताल भासताहै अरु दीनताको प्राप्त होताहै. तैसे अहंकाररूपी पिशाचने मुझको दीन किया है सो अहंकाररूपी पिशाच अविचारते सिद्ध है, अरु विचार कियेते अभावको प्राप्त होताहै जैसे प्रकाशकर अंधकार नाश होजाता है, तैसे विचार कियेते अहंकार नाश होजाता है.

हे मुनीश्वर! जो शरीरमें आस्था रक्खीहै, सो शरीर जलके प्रवाहकी नाईं स्थिर नहीं होता, ऐसा चलहै. जैसे बिजुरीकी चमक स्थिर नहीं होती, अरु गंधर्व नगरकी आस्था व्यर्थ है तैसे शरीरकी आस्था करनी व्यर्थ है. हे मुनीश्वर! ऐसे शरीरकी आस्था करके अहंकार करते हैं, अरु जगत्के पदार्थ निमित्त यत्न करते हैं. वे महामूर्ख हैं. जैसे स्वप्न मिथ्याहै, तैसे यह जगत् मिथ्याहै. तिसको सत्य जानकर जो इसका यत्न करताहै सो अपने बंधनके निमित्त करताहै. जैसे घुरान गुफा बनाती है, सो अपने बंधनके निमित्तहै, अरु पतंग दीपककी इच्छा करताहै सो अपने नाशके निमित्त है तैसे अज्ञानी जो अपने देहका अभिमानकर भोगकी इच्छा करताहै; सो अपने नाशके निमित्त है.

हे मुनीश्वर! मैं तो इस शरीरका अंगीकार नहीं करता इस शरीरका अभिमान परमदुःख देनहाराहै. जिसको देह अभिमान नहीं रहा. तिसको भोगकी इच्छा भी न रहैगी. ताते मैं निराशहों, अरु परमपदकी इच्छाहै, जिसके पायेते बहुरि संसार समुद्रकी प्राप्ति न होवे.

इति योगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे देहनैराश्यवर्णनं नाम त्रयोदशःसर्गः १३

चतुर्दशः सर्गः १४.
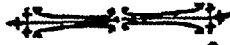
अथ बालावस्थावर्णनम्.

रामउवाच, हे मुनीश्वर! इस संसार समुद्रमें जो जन्म पायाहै, तामें बालक अवस्था इसको प्राप्त भई है, सोभी परम दुःखका मूल है; तिसमें परम दीन होजाताहै, अरु जेते अवगुण इसमें आय प्रवेश करतेहैं, सो कहताहों. अशक्तता, मूर्खता, इच्छा, चपलता, दीनता अरु दुःख, संताप एते विकार इसको आय प्राप्त होते हैं. यह बालावस्था महाविकारवान है अरु बालक पदार्थकी ओर धावता है, एक वस्तुका ग्रहणकर दूसरीको चाहताहै, स्थिर नहीं रहताहै, फिर औरमें लग जाताहै. जैसे वानर ठहरके नहीं बैठता, अरु जो कोऊ ऊपर क्रोध करताहै, तब अंतरते परा जलताहै; अरु बडी बडी इच्छा करताहै; तिसकी प्राप्ति नहीं होती; सदा तृष्णामें रहताहै अरु क्षणमें भयभीत होजाताहै; शांतिको प्राप्त नहीं होता; फिर महादीन हो जाताहै. जैसे कदली वनका हस्ती सांकरसों बांधाहुआ दीन होजाताहै;तैसे यह चैतन्य पुरुष,बालक अवस्थाकरदीन होजाताहै. जो कछु इच्छा करताहै, सो विचारविना करताहै, तिसकर दुःख पाताहै. अरु मूढ गुंग अवस्थाहै, तिसकर कछु सिद्धि नहीं होती, कोऊ पदार्थकी प्राप्ति होती है. तिसमें क्षणमात्र सुखी रहताहै, बहुरि तपने लगता है. जैसे तपती पृथ्वीपर जल डारिये तब एक क्षण शीतल होती है, फिर उसी प्रकारसों तपती है, तैसे वह भी तपता रहताहै. जैसे रात्रिके अंतमें सूर्य उदय होताहै तिसकर उलूकादि कष्टवान् होतेहैं,तैसे इस जीवको स्वरूपके अज्ञान कर बालावस्थामें कष्ट होता है.

हे मुनीश्वर! जो बालक अवस्थाकी संगति करताहै सो भी मूर्ख है काहेते कि, यह विवेकरहित अवस्थाहै, अरु सदा अपवित्र है. और सदा पदार्थकी ओर धावता है, ऐसी मूढ अरु दीन अवस्थाकी मुझको इच्छा नहीं. जिस पदार्थको देखताहै तिसकी ओर धावताहै. और क्षण क्षण अपमानको पाता है. जैसे कूकर क्षण क्षणमें द्वारकी ओर धावताहै, अरु अपमान पाता है. तैसे बालक अपमानको प्राप्त होता है, अरु बालकको

सदा माता अरु पिताका भय रहता है; बांधवका सदा भय रहता अरु आपते बडे बालकका भी भय रहता है, अरु पशु पक्षीहूका भय रहता है. हे मुनीश्वर ! ऐसी दुःखरूप अवस्थाकी मुझको इच्छा नहीं. जैसे स्त्रीके नयन चंचल हैं, अरु नदीका प्रवाह चंचल है, इसते भी मन अरु बालक चंचल हैं, ऐसे जानता हों, अत्र सब चंचलता बालकते कनिष्ठ है, बालक सबते चंचल है. जैसा मन चंचल है, तैसा बालक भी चंचल है मनका रूप बालक है.

हे मुनीश्वर ! जैसे वेश्याका चित्त एक पुरुषमें नहीं ठहरता, तैसे बालकका चित्त एक पदार्थमें नहीं ठहरता कि, इस पदार्थ कर,मेरा नाश होवेगा, ऐसा विचार भी तिसको नहीं, अरु इसकर मेरा कल्याण होवेगा सो विचार भी नहीं. ऐसेई परा चेष्टा करताहै, अरु सदा दीन रहता है; अरु सुख दुःख इच्छा दोष करके तपायमान रहता है, जैसे ज्येष्ठ आषाढमें पृथ्वी तपायमान होती है, तैसे बालक तपताई रहता है, शांतिको कदाचित् नहीं पाता.

अरु जब विद्यापढने लगताहै; तब गुरुसों बडा भयभीत होताहै,जैसे कोई यमको देखके भय पावे, और गरुडको देखके जैसे सर्प भय पावे, तैसे भयभीत होजाताहै. जब शरीरको कोई कष्ट आय प्राप्त होताहै, तब बड़े दुःखको प्राप्त होता है परन्तु दुःखके निवारणमें समर्थ नहीं होता,अरु सहनको भी समर्थ नहीं. अंतरते परा जलता है; अरु दुःख ते कछु बोल सकता नहीं जैसे वृक्ष कछु नहीं बोल सकता, अरु जैसे अपर तिर्यक् योनि दुःख पावते हैं अरु कहि नहीं सकते हैं अरु दुःखका निवारण नहीं कर सकते, न संहार कर सकते, अंतरते परे जलते हैं; तैसे बालक गूँगा मूढहुआ दुःख पाता है.हे मुनीश्वर! ऐसी जो बालककी अवस्था तिनकी जो स्तुति करताहै, सो मूर्ख है.

यह तो परमदुःखरूप अवस्था है, इसमें विवेक विचार कछु नहीं. एक खानेको पाता है, अरु रुदन करताहै, ऐसी अवगुणरूप अवस्था मुझको नहीं सुहाती है. जैसे बिजुरी अरु जलके बुदबुदे स्थिर नहीं रहते तैसे बालकहू स्थिर कदाचित नहीं होता.

हे मुनीश्वर ! यह महामूर्ख अवस्थाहै; कबहूँ कहताहै. हेपिता ! मुझको बर्फका टुकडा भूनि दे. कबहूँ कहताहैः–मुझको चंद्रमा उतार दे; ये सब मूर्खताके वचन हैं; ताते ऐसी मूर्खावस्थाको मैं अंगीकार नहीं करता; जैसे दुःखका अनुभव बालकको होता है, सो हमारे स्वप्नमें भी नहीं आया. तात्पर्य यह कि, बालावस्थामें बडा दुःख है; यह बालावस्था अवगुणका भूषणहै; सो अवगुण कर शोभती है; ऐसी नीच अवस्थाको मैं अंगीकार नहीं करता. इसकी स्तुति करनी सो मूर्खता है इसमें गुण कोई भी नहीं है.

इतिश्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे बालावस्थावर्णनं नामचतुर्दशः सर्गः १४

पंचदशः सर्गः १५.

अथ युवागारुडीवर्णनम्.

रामउवाच, हे मुनीश्वर ! दुःखरूप बालावस्थाके अनंतर जो युवा अवस्था आती है, सो नीचेते ऊंची चढतीहै, सो भी उत्तम गिनबेके निमित्त नहीं है अधिक दुःखदायक है,जब युवा अवस्था आती है, तब; कामरूपी पिशाच आय लगता है. सो कामरूपी पिशाच युवा अवस्था-रूपी गडेलेमें आय स्थित होताहै,चित्त फिरता है, अरु इच्छामें पसारता है सूर्यके उदय हुये सूर्यमुखी कमल खिल आताहै अरु पखुँरीनको पसा-रताहै, तैसे युवा अवस्थारूपी सूर्य उदय होता है. तब नाना प्रकारकी इच्छा फुरती हैं अरु कामरूपी पिशाच इसको स्त्रीमें डार देता है, तहाँ परा दुःख पाताहै जैसे कोईको अग्निके कुडमें डारदिया होय, अरु वह दुःख पावे, तैसे कामके वश हुआ दुःखको पाता है.

हे मुनीश्वर ! जो कछु विकार है, सो सब युवा अवस्थामें आयके प्राप्त हुए हैं. जैसे धनवानको देखके निर्धन सब धनकी आशा करते हैं तैसे युवा अवस्थाको देखकर सब दोष आय इकट्ठे होते हैं. अरु जो भोगको सुखरूप जानकर भोगकी इच्छा करता है, सो परम दुःखका कारण है. जैसे मद्यका घट भरा हुआ देखने मात्रको सुंदर लगता है, परंतु जन्

उसका पानकरे तब उन्मत्त हो जाय, तिस उन्मत्तता कर दीन होजाता अरु निरादरको पाताहै. तैसे यह भोग देखनेमात्रको सुदर भासता है परतु जब इसको भुगतता है, तब तृष्णाकर उन्मत्त होजाता है. अरु पराधीन हो जाताहै.

हे मुनीश्वर! यह काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार सब जो चोर हैं, सो युवारूपी रात्रिको देखकर लूटने लगते हैं, अरु आत्मज्ञानरूपी धनको चोर ले जाते हैं, तिसकर वह दीन होता है, यह पुरुष आत्मानंदके वियोग कर दीन हुआ है. हे मुनीश्वर! ऐसी जो दुःख देनहारी युवावस्था, तिसका मैं अंगीकार नहीं करता, अरु शांति जो है, सो चित्त स्थिर करनेके लिये है, सो चित्त युवा अवस्था विषयकी ओर धावता है. जैसे बाण लक्षके ओर जाता है, तब उसको विषयका संयोग होता है, सो विषयकी तृष्णा निवृत्त नहीं होती अरु तृष्णाके मारे जन्मते जन्मांतररूप दुःखको पाता है. हे मुनीश्वर! ऐसी दुःखदायक युवा अवस्थाकी मुझको इच्छा नहीं है.

हे मुनीश्वर! जेते कछु दुःख हैं, सो सब युवा अवस्था में आयकर प्राप्त होते हैं. काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, चपलता, इत्यादिक जो दुःख हैं, सो सब युवा अवस्थामें स्थिर होते हैं, जैसे प्रलयकालमें सब रोग आय स्थिर होते हैं, तैसे युवा अवस्थामें सब उपद्रव आय मिलते हैं और क्षणभंग हैं. जैसे विजुरीका चमक होयके मिटजाता है, अथवा जैसे समुद्रमें तरंग होतेहैं अरु मिट जातेहैं तैसे युवा अवस्था होयके मिट जाती है. जैसे स्वप्नमें कोई स्त्री विकारकर छल जाती है, तैसे अज्ञानकर युवा अवस्था छल जाती है.

हे मुनीश्वर! युवा अवस्था जीवकी परमशत्रु है. जो पुरुष इस शत्रुके शस्त्रते बचे हैं, वो धन्य हैं! इसके शस्त्र काम, क्रोध, हैं जो इसते छूटा है सो वज्रके प्रहार करभी छेदा न जावेगा जो इनकर बाँधा हुआ है, सो पशु है.

हे मुनीश्वर! युवावस्था देखनेमें तो सुंदर है, परंतु अंतरते तृष्णाकरके जरजारित है. जैसे वृक्ष देखनेमें तो सुंदर होय, अरु अंतरते घुन

लगा हुआ है; तैसे युवावस्था जो भोगके निमित्त यत्न करती है, सो भोग आपात रमणीय है. कारण यह कि, जबलग इंद्रिय अरु विषयका संयोगहै, तबलग अविचारित भला लगताहै, अरु जब वियोग हुआ तब दुःख होताहै. ताते भोग करके मूर्ख प्रसन्न होतेहैं, अरु उन्मत्त होतेहैं, तिनको शांति नहीं होती. अरु अंतरसे सदा तृष्णा रहतीहै. स्त्रीमें चित्तकी आसक्ति रहतीहै. जब इष्ट वनिताका वियोग होताहै, तब तिसके स्मरण करके जलताहै. जैसे वनका वृक्ष अग्नि करके जलता है तैसे युवावस्थामें इष्टवियोग करके जीव जलताहै जैसे उन्मत्त हस्ती सांकर करके बंधन पाताहै, तब स्थिर होताहै; कहूं जाय नहीं सकता; तैसे कामरूपी हस्तीहै तिसको सांकररूप युवावस्था बंधन करती है, अरु युवावस्थारूपी नदी है, तिसमें इच्छारूपी तरंग उठतेहैं सो कदाचित् शांतिको नहीं पातेहैं; अरु-

हे मुनीश्वर! यह युवावस्था बडी दुष्टहै. कोऊ बडा बुद्धिवान् होवे, अरु सदा निर्मल प्रसन्न होवे, एते गुण करके प्रसन्न होवे; तिसकी बुद्धिको भी युवावस्था मलिन कर डारतीहै. जैसे निर्मल जलकी बडी नदी होवे अरु जब वर्षाकाल आवे, तब मलीन होय जावे; तैसे युवावस्थामें बुद्धि मलीन होय जातीहै.

हे मुनीश्वर! शरीररूपी वृक्षहै तिसमें युवावस्थारूपी वल्ली प्रगट होती है; सो पुष्ट होता है, तब चित्तरूपी भँवरा आय बैठताहै; सो तृष्णारूपी तिसकी सुगंधकरके उन्मत्त होताहै अरु सब विचार भूल जाताहै. जैसे जब प्रबल पवन चलताहै तब सूखे पत्रको उडाय लेजाताहै; अरु रहने नहीं देता; तैसे युवावस्था आवती है, तब वैराग्य संतोषादिक गुणका अभाव करतीहै. अरु दुःखरूपी कमलका युवावस्थारूपी सूर्य है; युवावस्थाके उदयते सब दुःख प्रफुल्लित होजातेहैं; ताते सब दुःखका मूल युवावस्थाहै. जैसे सूर्यके उदयते सूर्यमुखी कमल खिल आतेहैं, तैसे चित्तरूपी कमल संसाररूपी पँखुरी अरु सत्यतारूपी सुगंध कर खिल आताहै. अरु तृष्णारूपी भौंरा तिसपर आय बैठताहै, अरु विषयकी सुगंध लेताहै.

हे मुनीश्वर! संसाररूपी रात्रिहै तिसमें युवावस्थारूपी तारागण

प्रकाशते हैं, कारण यह जो शरीर युवावस्थाकर शुशोभित होता है,अरु युवावस्था शरीरको जर्जरीभाव करके हो आतीहै. जैसे धानका छोटावृक्ष हरा तबलग रहता है जबलग उसको फूल नहीं आया जब फूल आते हैं तब सूखनेको लगताहै; अरु अन्नके कन परिपक्क होतेहैं, तब अन्नके छोटे वृक्ष जर्जरभावको पाते हैं, उसकी हरियावल नहीं रहसकती. तैसे जब लग जवानी नहीं आई, तबलग शरीर सुंदर कोमल रहताहै जब जवानी आई तब शरीर क्रूर होजाताहै, फेर परिपक्क होकर क्षीण होजाता है; अरु वृद्ध होताहै. ताते.

हे मुनीश्वर! ऐसी दुःखकी मूलरूप युवावस्था है तिसकी मुझको इच्छा नहीं, जैसे समुद्र बड़े जलकर पूर्ण है, तरंगको पसारताहै; अरु उछलताहै; तोभी मर्यादाका त्याग नहीं करता; ईश्वरकी आज्ञा मर्यादामें रहनेकीहै; अरु युवावस्था तो ऐसी है जो शास्त्रकी मर्यादा, अरु लोककी मर्यादा मेटके चलतीहै. अरु तिनको अपना विचार नहीं रहता. जैसे अंधकारमें पदार्थका ज्ञान नहीं होता, तैसे युवावस्थामें शुभ अशुभका त्याग नहीं होता. जिसको विचार नहीं रहा तिसको शांति कहांते होवे; सदा व्याधि तापमें जुता रहता है; जैसे जल विना मच्छको शांति नहीं होती, तैसे विचार विना सदा पुरुष जलता रहताहै.

जब युवावस्थारूप रात्रि आतीहै, तब काम पिशाच आयके गर्जता है; तिसकर इसको यही संकल्प उठते हैं; जो कोऊ कामी पुरुष आवे, तिसके साथमें यही चर्चा करों--हे मित्र! वह कैसी सुंदर है? अरु कैसे उसके कटाक्ष हैं? सो किस प्रकार मोको प्राप्त होय. हे मुनीश्वर! इस इच्छाके साथ वह सदा जरतारहता है. जैसे मरुस्थलकी नदीको देख मृग दौरता है; अरु जलकी अप्राप्ति कर जलता है तैसे कामीपुरुष विषयकी वासना करके जलता है, अरु शांति नहीं पाता है.

हे मुनीश्वर! मनुष्य जन्म उत्तम है, परंतु जिनके अभाग्य हैं, तिनको विषयते आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती. जैसे चिंतामणि कोईको प्राप्त होवे, तो तिसका निरादर करै और उसको जाने नहीं: और डारि देवे, तैसे जो पुरुष मनुष्य शरीर पाकर आत्मपद नहीं पाया,सो बडा

अभागी है; अरु मूर्खता करके अपने जीवनको व्यर्थ खोय डारता है. अरु युवावस्थामें परमदुःखका क्षेत्र अपने निमित्त बोता है, अरु जेते विकार युवावस्थामें हैं, सो सब आयके इसको प्राप्त होते हैं, मान, मोह, मद इत्यादि विकार करके पुरुषार्थका नाश करता है. हे मुनीश्वर! ऐसे युवावस्था बडे विकारको प्राप्त करती है. जैसे नदी वायुसों अनेक तरंग पसारती है, तैसे युवावस्था चित्तके अनेक कामको उठावतीहै, जैसे पंखी पंख कर बहुत उड़ता है; अथवा जैसे सिंह भुजाके बलसों पशुके मारनेको दौडताहै, तैसे चित्त युवावस्था कर विक्षेपकी ओर धावता है.

हे मुनीश्वर! समुद्रका तरना कठिन है, काहेते कि तामें जल अथाह है. अरु विस्तार भी बडा है;अरु तिसमें मच्छ, कच्छ, मगर, बडे देहधारी रहते हैं. ऐसा दुस्तर समुद्रका तरना सो मैं सुगम मानता हों, परन्तु युवावस्थाका तरना महाकठिन है; कारण यह कि, युवावस्थामें निर्दोष रहना कठिन है ऐसी संकटवारी जो युवावस्था है,तिसमें चलायमान नहीं होते सो पुरुष धन्यहैं अरु बंदना करने योग्यहैं. हे मुनीश्वर! यह युवावस्था चित्तको मलीन कर डारती है. जैसे जलकी वावड़ी है, तिसके निकट राख कांटे रहे होयँ, सो पवन चलनेते सब आय बावड़ीमें गिरैं, तैसे पवनरूपी युवावस्था दोषरूपी धूरकांटेनको चित्तरूपी बावड़ीमें डारके मलीन कर देतीहै. ऐसे अवगुण करके पूर्ण जो युवावस्था तिसकी इच्छा मुझको नहीं है.

युवावस्था! मेरे पर यही कृपा करनी, जो तेरा दर्शन नहीं होवे, तेरा आवना मैं दुःखका कारण मानता हूं. जैसे पुत्रके मरनेका संकट पिता शोप नहीं सकता अरु सुखका निमित्त नहीं देखता, तैसा तेरा आवना मैं सुखका निमित्त नहीं देखता ताते मुझपर दया करनी जो अपना दर्शन न होवे.

हे मुनीश्वर! युवावस्थाका तरना महा कठिन है. जो कोऊ यौवनवान होवे, सो नम्रता संयुक्तहोवे. और शास्त्रके गुण, वैराग्य, विचार, संतोष, शांति,इनकर संपन्न होवे सो दुर्लभहै. जैसे आकाशमें वन होना आश्चर्य है, तैसे युवावस्थामें, वैराग्य, विचार, शांति, संतोष पावना यह बडा

आश्चर्य है, ताते मुझको सोई उपाय कहो जिसकर युवावस्थाके दुःखकी मुक्ति होजाय अरु आत्मपदकी प्राप्ति होय.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे युवागारुडीवर्णनंनामपंचदशःसर्गः १५

षोडशः सर्गः १६.

अथ स्त्रीदुराशावर्णनम्.

हे मुनीश्वर! जिस काम विलासके निमित्त स्त्रीकी वांछा करता है, सो स्त्री, अस्थि, मांस, रुधिर, मूत्र, विष्ठाकारि पूर्ण है, इसीकी पूतरी बनीहुई है. जैसे यंत्रीकी बनी पूतरी होती है, सो तागेसो कर अनेक चेष्टा करती है,तैसे यह अस्थि, मांसादिककी पुतरीमें कछु और नहीं है. जो विचारकर नहीं देखता तिसको रमणीक दीखती है. जैसे पर्वतके शिखर दूरते सुंदर अरु निकटते असारहैं. पत्थरई पडे दीखते हैं, तैसे स्त्री, वस्त्र अरु भूषणसों कारि सुन्दर भासती है,अरु जो अंगको भिन्न भिन्न विचार कर देखो तो सार कछु नहीं है जैसे नागनीके अंग बहुतकोमल होता है, परंतु उसका स्पर्श करो तो काटके मार डारती है तैसे जो कोई स्त्रीको स्पर्श करते हैं तिनको नाश कर डारती है जैसे विषकी बेलि देखने मात्रको सुंदर लगती है, परंतु स्पर्श कियेते मार डारती है. जैसे हस्तीको जंजीरसे बाँधो तब जिस द्वारपैं रहता है, तहांई स्थिर रहता है, तैसे अज्ञानीका जो चित्तरूपी हस्ती है सो कामरूपी जजीरसे बँधा हुआ स्त्रीरूपी एक स्थानमें स्थिर रहता है, वहाँसे कहूं जाय नहीं सकता और जब हस्तीको महावत अंकुशका प्रहार करता है, तब बंधनको तोरके निकस जाता है तैसे यह चित्तरूपी मूर्खहस्ती है, सो महावतरूपी गुरुका उपदेशरूपी अंकुशका बारंबार प्रहार करता है तब सो भी निर्बंध होय जाता है.

हे मुनीश्वर! कामीपुरुष जो स्त्रीकी वाञ्छा करता है, सो अपने नाशके निमित्त करता है, जैसे कदली बनका हस्ती, कागजकी हस्तिनी देखकर छल पायके बंधनमें आता है, ताते परमदुःख पाता है, तैसे परमदुःखका मूल स्त्रीका संगहै, हे मुनीश्वर! जैसे वनके दाहकी अग्नि

सबको जलावती है, तैसे स्त्रीरूपी अग्नि तिसते अधिक है, काहेते जो उस अग्निके परश कियेते तप्त होते हैं, और स्त्रीरूपी अग्नि तो स्मरण मात्रमें जलाती है और जो सुख रमणीय दिखता है, सो आपात रमणीय है जब स्त्रीके सुखका वियोग होता है, तब मुर्देकी नाई होजाता है. तिस कालमें भी (स्त्रीसंयोगकाल) शव (मुर्दा) जैसा हो जाता है.

हे मुनीश्वर! यह तो अस्थि, मांस, रुधिरका पिंजरा है, सो अग्निमें भस्म होजायगा, अथवा पशु पक्षीको खानेका आहार होयगा. जिसको देखकर पुरुष प्रसन्न होता है, तिसके प्राण आकाशमें लीन होजाते हैं, ताते इस स्त्रीकी इच्छा करनी सो मूर्खता है, जैसे अग्निकी ज्वालाके ऊपर श्यामता है, तैसे स्त्रीके शीशऊपर श्यामकेशहैं. जैसे अग्निके स्पर्श कियेते जलता है, तैसे स्त्रीके स्पर्श कियेते पुरुष जलताहै. ताते जलना दोनोंमें तुल्य है. हे मुनीश्वर! इसको नाश करनहारी स्त्रीरूपी अग्नि है. जो स्त्रीकी इच्छा करते हैं सो महामूर्ख अज्ञानी हैं, सो अपने नाशके निमित्त इच्छा करते हैं, जैसे पतंग अपने नाशके निमित्त दीपककी इच्छा करते हैं, तैसे कामीपुरुष अपने नाशके निमित्त स्त्रीकी इच्छा करताहै.

हे मुनीश्वर! स्त्रीरूपी विषकी बेलि है, अरु हस्त पाँवके अग्र तिसके पत्र हैं, अरु भुजा डारी हैं, और अस्थिरूप गुच्छेहैं, नेत्रादिक इंद्रिय तिसके फूल हैं; अरु कामीपुरुषरूपी भौंरे आय बैठते हैं; अरु कामरूपी धीवरने स्त्रीरूपी जाल पसारी है; तिसपर कामीपुरुषरूपी पक्षी, आय फँसते हैं, कामरूपी धीवर तिसको फँसायकर परम कष्टप्राप्त करता है. ऐसे दुःखके देनहारी स्त्रीकी जो वांछा करते हैं; सो महामूर्ख हैं.

हे मुनीश्वर! स्त्रीरूपी सर्पनी है; जब तिसका फुंकार निकलता है, तब तिसके निकट कमल फूल सब जल जाते हैं; ऐसी स्त्रीरूपी सर्पनी है तिसका इच्छारूप फुंकार जब निकसता है, तब वैराग्यरूपी कमल जर जाते हैं, अरु जब सर्पनी डसती है तब विष चढता है. और स्त्रीरूपी सर्पनी जब चितौनि करी तब अंतरते आपेई विष चढ जाता है.

हे मुनीश्वर! जैसे व्याध छलकर मच्छीको फँसावता है, तैसे कामी

पुरुष मच्छीवत, सुंदर स्त्रीरूपीजाल देखके फँसताहै और स्नेहरूपी तागेसों कामी पुरुष बंधन पाय खैंचा चला जाता है; फिर तृष्णारूपी छुरीसों काम मार डारता है. हे मुनीश्वर! ऐसे दुःखके देनेहारी स्त्रीकी मुझको इच्छा नहीं अरु कामरूपी पारधीहै, तिसतेरागरूपी इंद्रियसों जाल बिछाय कामीपुरुषरूपी मृगकोआसक्त कर डारताहै, अरु स्त्रीतो स्नेहरूपीडोरी है; तिसकर कामी पुरुषरूप बेलसों बँधाहै. अरु स्त्रीका मुखरूपी जो चन्द्रमाहै तिसको देखकर कामी पुरुषरूपी कमलनी खिलि आतीहै जैसे चन्द्रमुखी कमल चन्द्रमाको देखकर प्रसन्न होते हैं; और सूर्यमुखी नहीं होते, तैसे यह कामी पुरुष भोगहू कर प्रसन्न होते हैं, अरु ज्ञानवान् प्रसन्न नहीं होतेहैं. जैसे नकुल सर्पको बिलमें ते निकासके मारताहै तैसे कामी पुरुषको स्त्री, आत्मानंदमेंते निकालके मार डारती है. जब स्त्रीके निकट जाता है, तब उसको भस्म कर डारती है. जैसे सूखे तृण अरु घृतको अग्नि भस्म कर डारती है; तैसे कामी पुरुषको स्त्रीरूपी नागनी भस्म कर डारती है.

हे मुनीश्वर! स्त्रीरूपी जो रात्रि है, तिसका स्नेह रूपी अंधकार है; तिसके काम क्रोधादिकउलूक अरु पिशाच हैं. हे मुनीश्वर! जो स्त्रीरूपी खड्गके प्रहारते युवारूपी संग्रामते बचा है; सो पुरुष धन्य है! तिसको मेरा नमस्कार है. स्त्रीका संयोग परमदुःखका कारण है, ताते मुझको इसकी इच्छा नहीं. हे मुनीश्वर! जो रोग होता है, तिसके अनुसार औषधि करता है, तब रोग निवृत्त होता है अरु कोऊ कुपथ्य दिये, वाका प्रबल होताहै, रोग बढ जाता है; ताते मेरे रोगके अनुसार औषधि करो— सो मेरा रोग सुनिये जरा अरु मृत्यु मुझको बडा रोगहै; तिसके नाशकी ओषधि मुझको दीजिये और स्त्री आदिक जो भोग हैं, सो सब इस रोगके वृद्धि कर्त्ता हैं जैसे अग्निमें घृत डारिये, तब बढ जाती है; तैसे भोगसों जरा मृत्यु आदिरोग बढता है; ताते इस रोगकी निवृत्तिका औषध करो, नहीं तो सबका त्याग कर वनमें जाय रहूंगा.

हे मुनीश्वर! जिसको स्त्रीहै तिसको भोगकी इच्छा भी होतीहै, और जिसको स्त्री नहीं तिसको स्त्रीकी इच्छा भी नहीं. जिसने स्त्रीका त्याग

कियाहै, तिसने संसारकाभी त्याग कियाहै; सोई सुखीहै. संसारका बीज स्त्री है, ताते मुझको स्त्रीकी इच्छा नहीं, मुझको सोई औषधि दीजिये, जिससे जरा मृत्यु आदि रोगकी निवृत्ति होय.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे स्त्रीदुराशावर्णनं नाम षोडशःसर्गः १६

सप्तदशः सर्गः १७.

अथ जरावस्थावर्णनम्.

श्रीराम उवाच, हे मुनीश्वर! बालक अवस्था तो महाजड है, अरु अशक्त है; और जब युवा अवस्था आतीहै, तब बालावस्थाको ग्रहण करलेती है. तिसके अनंतर वृद्धावस्था आती है, तब शरीर जर्जरीभूत होजाता है अरु बुद्धि क्षीण होजातीहै; बहुरि मृत्युको पाताहै. हे मुनीश्वर! इस प्रकार अज्ञानीका जीवना व्यर्थ है, कछु अर्थकी सिद्धि नहीं होतीहै जैसे नदीके तटपर वृक्ष होते हैं सो जलके प्रवाहकर जर्जरीभूत होजातेहैं तैसे वृद्धावस्थामें शरीर जर्जरीभूत होजाताहै; जैसे पवनसों पत्र उडजाता है, तैसे वृद्धावस्थामें शरीर नाश पाताहै. जेतेकछु रोगहैं, सो सब वृद्धावस्थामें आय प्राप्त होतेहैं; अरु शरीर कृश होय जाता है; अरु स्त्री पुत्रादिक सब वृद्धका त्याग करते हैं; जैसे पक्के फलको वृक्ष त्याग देताहै तैसे वृद्धको कुटुंब त्यागदेता है, अरु देखकर हँसते हैं जैसे बावरेको देख हँसके बोलतेहैं; कि, इनकीबुद्धिसब जात रही. जैसे कमलफूलनेके ऊपर बरफ पडता है, अरु कमल जर्जरीभूत होजाताहै. तैसे जरा अवस्थामें पुरुष जर्जरीभावको प्राप्त होताहै, अरु शरीर कुबरा होजाताहै; केश श्वेतहोजातेहैं; शक्ति क्षीण होजातीहै जसे चिरकालका बडा वृक्ष होताहै, तिसमें घुन होताहै; तैसे शक्ति कछु रहती नहा.

हे मुनीश्वर! औरहू सब कृति क्षीण होजातीहैं परंतु एक अशक्ति मात्र रहतीहै. जैसे बडे वृक्षपै उलूक आय रहतेहैं; तैसे इसमें क्रोड शक्ति आय रहती है. और शक्ति सब क्षीण होजाती हैं. हे मुनीश्वर! जरा अवस्था दुःखका घरहै जब जरा अवस्था आतीहै, तब सब दुःख इकट्ठे होतेहैं

तिनकर महादीन होजातेहैं. अरु युवाअवस्थाका जो कामका बल रहेताहै, सो जरामें क्षीण होजाताहै; अरु इंद्रियकी आसक्ति घट जातीहै; तिनते चपलताका अभाव होजाता है. जैसे पिताके निर्धन हुए पुत्र दीन होजातहैं; तैसे शरीर निर्बल हुए इंद्रियांहू निर्बल हो जातीहैं; और एक तृष्णा उन्मत्त हो बढ जाती है.

हे मुनीश्वर ! जब जरारूपी रात्रि आतीहै, तब खांसीरूपी गिदडी आय शब्द करती है; अरु आधिव्याधिरूपी उलूक आय निवास करते हैं. हे मुनीश्वर ! ऐसी जो नीच वृद्धावस्था है. तिसकी मुझको इच्छा नहीं यह देह जरा आयेते कूबरी होय जातीहै; जैसे फलपकनेसों वृक्ष झुक जाताहै तैसे जराके आयेते देह कुबरी होजातीहै. जो युवावस्थामें स्त्री पुत्रादिक चाहते थे, अरु टहल करते थे, सो सब उसको त्याग देते हैं; जैसे वृद्ध बैलको बैलवारा त्याग देताहै; तैसे इसको बंधु त्याग देते हैं; और देखके हँसते हैं; अरु अपमान करते हैं. तिनको ऊंटकी नाईं भासता है, हे मुनीश्वर ! ऐसी जो नीच अवस्था है तिसकी मुझको इच्छा नहीं. अब जो छु कर्तव्य मुझको कहो सो मैं करों.

इस शरीरकी तीनों अवस्थामें कोऊ सुखदाई नहीं है; क्योंकि बालावस्था महामूढ है अरु युवावस्था महा विकारवान है; अरु जराअवस्था महादुःखका पात्रहै बालावस्थाको युवावस्था ग्रहण कर लेतीहै अरु युवावस्थाको जरा अवस्था गृहण कर लेती अरु जरावस्थाको मृत्यु गृहण कर लेता है. यह अवस्था सब अल्प कालकी हैं; इनके आश्रय करके मेरेको कहा सुख होना है; ताते मुझको सोई उपाय कहो, जिसकर इस दुःखसे मुक्त होजाऊ.

हे मुनीश्वर! जब जरा अवस्था आतीहै तब मरना भी निकट आता है जैसे संध्याके आये रात्रि तत्काल आय जाती है; और जो संध्याके आये दिनकी इच्छा करतेहैं सो महामूर्ख हैं; तैसे जराके आये जीवनेकी आशा रखनी सो महामूर्खताहै. हे मुनीश्वर ! जैसे बिल्लि चितौनीकरती है, जो चूहा आवे तो पकर लेउँ तैसे मृत्यु चितवत है कि, जरा अवस्था आवे तो मैं इसका गृहण कर लेऊं अरु जरा अवस्था मानो!कालकी

सखी है. रोगरूपी मशालकर शरीररूपी मांसको सुखाती है, तब काल जो इसका स्वामी है, सो आयकर भोजन कर लेता है. अरु शरीररूपी घर है, तिसका स्वामी काल है जब काल घरमें आवे, तब तिसके आगे तीन पटरानी आती हैं; पहिली अशक्तता, दूसरी अंगमें पीडा, तीसरी खांसी, सो शीघ्र श्वासको चलावतीहै, अरु श्वेत केश होतेहैं, सो चमरकी नाई झुलते हैं. ऐसी जो कालकी सहेली है, सो प्रथमही आइ प्रवेश करती है, अरु जरारूपी कलँगी शरीरको बनावती है, तब जो वाका स्वामी कालहै, सो आय प्रवेश करता है.

हे मुनीश्वर ! जो परमनीच अवस्था है, सो जराहीहै; सो जब आतीहै, तब शरीर जर्जरीभूत कर देती है; कँपनेको लगती है अरु शरीरको निर्बल कर देतीहै अरु क्रूर कर देतीहै. जैसे कमलपर बरफकी वर्षा होवे अरु जर्जरीभूत होय जाय तैसे जरीरको शर्जरीभूत कर डारती है. जैसे वनमें बाघिन आयके शब्द करतीहै अरु मृगका नाश करतीहै, तैसे खांसी रूपी बाघिन आय मृगरूपी बलका नाश करतीहै.

हे मुनीश्वर! जब जरा आती है तब मृत्यु प्रसन्न होता है. जैसे चंद्रमाके उदयते कमलनी खिल जाती है, तैसे मृत्यु प्रसन्न होताहै, अरु यह जरा अवस्था बडी दुष्टहै, बडे बडे योद्धेहुएहैं तिनकोभी दीन करदिये हैं; यद्यपि बडे शूरमाने संग्राममें शत्रुको जीते हैं, सो उनकोहू जराने जीतलिये हैं, अरु बडे पर्वतके चूर्ण करडारे हैं ताकोहू जरा पिशाचनीने महादीन कर दिये हैं यह जरारूपी जो राक्षसी है, तिसने सबको दीन कर दिये हैं, सो सबको जीतनेवारी है.

हे मुनीश्वर ! यह जरा शरीरको अगनिकी नाईं लगती है. जैसे अगनि वृक्षमें लगतीहै, तब धूम निकसता है, तैसे शरीररूपी वृक्षमें जरारूपी अग्नि लगके तृष्णारूपी धुँवा निकसता है. जैसे डब्बेमें बडे रत्न रहते हैं. तैसे जरारूपी डब्बेमें दुःखरूपी अनेक रत्न रहते हैं. अरु जरारूपी वसंतऋतु है, तिस करके शरीररूपी वृक्षदुःखरूपी रसकरके पूर्ण होता है, जैसे हस्ती साँकरसों बँधा हुआ दीन होजाताहै; तैसे जरारूपीसाँकरकरके बँधा पुरुष दीन होजाताहै; अरु अंग सब शिथिलहो जाता है,

बल क्षीण होजाता है, अरु इंद्रियांभी निर्बल हो जाती हैं, अरु शरीर जर्जरीभावको प्राप्त होता है; परंतु तृष्णा नहीं घटती है; नित्य बढती चली जातीहै जैसे रात्रि आती है; तब सूर्यवंशी कमल सब मुँद जाते हैं; तब पिशाचनी आय विचरने लगती है अरु प्रसन्न होतीहै; तैसे जरारूपी रात्रिके आयेते सब शक्तिरूपीकमल मूँदजाते हैं अरु तृष्णा-रूपी पिशाचनी प्रसन्न होती है.

हे मुनीश्वर ! जैसे गगा तटपर वृक्ष रहते हैं, सो गंगाजलके वेगसों जर्जरीभूत होजाते हैं, तैसे जो आयुरूपी प्रवाह चलता है, तिसके वेग-कर शरीर जर्जरीभूत हो जाता है. जैसे मांसके टुकडेको देख आकाशसे उडती चील्ह नीचे आय ले जाती है, तैसे जरा अवस्थामें शरीररूपी मांसको काल ले जाता है. हे मुनीश्वर ! यह तो कालका ग्रास बना हुआ है जैसे सुंदर वृक्षको हस्ती खाय जाता है तैसे जरा अवस्थावाले शरीरको, काल देखकर भोजन कर जाता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे जराअवस्था निरूपणं नाम सप्तदशः सर्ग ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८.
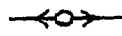
अथ कालवृत्तांतवर्णनम्.

राम उवाच, हे मुनीश्वर ! संसाररूपी गर्त है, तिसमें अज्ञानी गिरा है सो संसाररूपी गर्त अल्पहै; अरु अज्ञानी तो बडा होगयाहै. संकल्प विकल्पकी आधिक्यताते बढा है अरु जो ज्ञानवान् पुरुष हैं सो संसारको मिथ्या जानतेहैं, फिर संसाररूपी जालमें फँसते नहींहैं. अरु जो अज्ञानी पुरुष है सो संसारको सत्य जानकर संसारकी आस्थारूपी जालमें फँसताहै. अरु संसारके भोगकी वांछा करता है सो ऐसाहै जैसे दर्पणमें प्रतिबिंब देखकर बालक पकरनेकी इच्छा करताहै, तैसे अज्ञानी संसा-रको सत्य जानकर जगत्के पदार्थकी वांछा करता है. यह मेरेको होवे. यह मेरेको नहीं होवे अरु यह जो सुख है सो नाशात्मक है, अभिप्राय

यह जो आवते हैं अरु जातेहैं. सो स्थिर नहीं रहते हैं, इनका काल ग्रहण करता है. जैसे पक्के अनारको चूहा खाय जाता है, तैसे सब पदार्थनको काल खाता है.

हे मुनीश्वर ! जेते कछु पदार्थ हैं सो काल ग्रसित हैं, बडे बडे बली सुमेरु जैसे गंभीर बलवारे पुरुषोंको कालने ग्रास किये हैं जैसे सर्पको नकुल भक्षण कर जाता है, तैसे बडे बलीका ग्रास काल कर जाताहै अरु जगत्‌रूपी एक गूलरका फल है, तिसमें जो मज्जा है सो ब्रह्मादिक हैं, सो फलका जो वृक्ष है तिनका जो वन है, सो ब्रह्मरूप है, तिस ब्रह्मरूप वनमें जेते कछु वन हैं. सो सब इसका आहारहैं, सबका भक्षण काल कर जाता है.

हे मुनीश्वर ! यह काल बडा बलिष्ठ है, जो कछु देखनेमें आता है, सो सब इसने ग्रास कर लियाहै, तब औरकी कहा कहानी है और हमारे जो बडे ब्रह्मादिक तिनका भी काल ग्रास कर जाता है, जैसे मृगका ग्रास सिंह कर लेता है, और काल किसी करके जाना नहीं जाता. छिन, घरी प्रहर दिन, मास और वर्षादिक कर जानिये सो काल है और कालकी मूर्ति प्रगट नहीं है, ऐसा अप्रगटरूप है अरु किसीकी स्थिति होने नहीं देता. अरु एक बेलि कालने पसारी है, तिसकी त्वचा रात्रि है, अरु फूल तिसका दिन है, और जीवरूपी भौंरे तिसपर आय बैठते हैं.

हे मुनीश्वर ! जगत्‌रूपी गूलरका फूल है तिसमें जीवरूपी मच्छर बहुत रहते हैं, तिस फूलका भक्षण काल कर जाता है जैसे अनारका भक्षण तोता करता है, तैसे काल भक्षण करता है. अरु जगत्‌रूपी वृक्ष है, अरु जीवरूपी तिसके पत्र हैं, तिसकाकालरूपीहस्तीभक्षणकरजाता है. अरु शुभ अशुभरूपी भैंसानको कालरूपी सिंह छेद छेदके खाताहै.

हे मुनीश्वर ! यह काल महाक्रूरहै, सो किसीपर दया नहीं करता; सबका भोजन कर जाता है. जैसे मृग सब फूलनको खाय जाता है, तिससे कोऊ रहता नहीं है, परंतु एक कमल उससे बचे हैं, सो कमल कैसाहै ? शांति अरु मैत्री तिसके अंकुरहैं, अरु चेतनता मात्र प्रकाशहै इस कारणते वह बचाहै, सो कालरूपी मृग इसको पहुँच नहीं सकता. इससे

प्राप्तहुवा कालभी लीन होजाता है और जेता कछु प्रपंच है, सो सो कालके मुखमेंहै. ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, कुबेर, आदिकर सब मूर्ति कालकी धरी हुई हैं, फिर तिनको भी अंतरध्यान करदेताहै. हे मुनीश्वर ! उत्पत्ति, स्थिति, अरु, प्रलय; सबकालते होतेहैं. अनेक बेर महाकल्पकाहू ग्रहण करलेताहै, अरु अनेक बेर करैगा. अरु कालको भोजन कियेते तृप्ति कदाचित् नहीं होती; अरु कदाचित् होनहारीहू नहीं. जैसे अग्नि घृतकी आहुतिसों तृप्त नहीं होता, तैसे जगत् अरु सब ब्रह्मांडका भोजनकरतेहू काल तृप्त नहीं होता, अरु इसका ऐसा स्वभाव है, जो इंद्रको दरिद्री कर देताहै, अरु दरिद्रीको इंद्रकर देता है और सुमेरुको राई बनाताहै, अरु राईका सुमेरु करता है; सबते बडे ऐश्वर्यवारेको नीच करडारता है; सबते नीचको ऊंच करडारताहै. अरु बूँदका समुद्र करडारताहै, अरु समुद्रका बूंद करता है ऐसी शक्ति कालमें है. अरु जीवरूपी जो मच्छ हैं, तिनको शुभाशुभ कर्मरूप छुरेसों छेदत रहता है; फिर कैसा है ? जो काल कूपका चक्रहै; जीवरूपी टंटको शुभ अशुभ कर्मरूपी रसरीसों बांधकर लिये फिरता है. फिर कैसा है ! जीवरूपी वृक्षको रात्रि अरु दिनरूपी कुहारा कर छेदता है.

हे मुनीश्वर ! जेता कछु जगत् बिलास भासता है, सो सबका ग्रहण काल कर लेवेगा अरु जीवरूपीरत्नका काल डब्बा है, सो अपने उदरमें डारता जाताहै, और खेल करताहै. अरु चंद्रसूर्यरूपी गेंदको कबहूं ऊर्द्ध उछालता है, कबहू नीचे डारता है. अरु जो महापुरुष हैं सो उत्पत्तिप्रलयमें जो पदार्थ हैं तिनमें स्नेह किसीके साथ नहीं करते तिसका नाश करनेको काल समर्थ नहीं. जैसे मुंडकी माला महादेवजी गलेमें धरतेहैं तैसे यह भी जीवकी माला गरेमें डारता है.

हे मुनीश्वर ! जो बडे बडे बलिष्ठ हैं, तिनका भी काल ग्रहण कर लेता है; जैसे समुद्र बडा है, तिसका वडवाग्नि पान करलेताहै और जैसे पवन भोजपत्रको उड़ाता है, तैसा कालका बल है किसीकी सामर्थ्य नहीं, जो इसके आगे स्थित रहै.

हे मुनीश्वर ! शांति गुण प्राधान्य जो देवताहैं, अरु रजोगुण प्राधान्य

जो बडे राजाहैं, अरु तमोगुण प्राधान्य जो दैत्य राक्षसहैं, तिनमें कोऊ समर्थ नहीं, जो इसके आगे स्थित होवे. जैसे टोकनीमें अन्न अरु जल धरके अग्निपर चढाय दियेते फिर उछलतेहैं, सो अन्नके दाने कडछीकर कबहूं ऊर्ध्व और कबहूं नीचे जातेहैं, तैसे जीवरूपी अनेक दानें जगत् रूपी टोकनीमें परे हुए राग द्वेष रूपी अग्निपै चढे हैं, अरु कर्मरूपीकडछीकर कबहूं ऊर्ध्व जातेहैं, कबहूं नीचे जाते हैं.हे मुनीश्वर! यह काल किसीको स्थिर होने नहीं देता, महा कठोर है, दया किसी पर नहीं धरता इसका भय मुझको रहता है. ताते सोई उपाय मुझको कहो. जिसकर मैं कालते निर्भय होजाऊं

इतिश्री योगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालवृत्तांत निरूपणं नाम अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशतितमः सर्गः १९.

अथ कालविलासवर्णनम्.

श्रीराम उवाच हे मुनीश्वर! यह काल बडा बलिष्ठ है. जैसे राजाके पुत्र शिकार खेलने जाते हैं, तब वनमें बडे पशु पक्षी देखते हैं, फिर मारते हैं. तैसे संसाररूपी वनहै, तिसमें प्राणी मात्र पशु पक्षी हैं, जब कालरूपी राजपुत्र तिसमें शिकार खेलने आता है. तब सब जीव भयकोपाते हैं, फिर तिसकोई मारता है.

हे मुनीश्वर! यह काल महा भैरव है, सबका ग्रास कर लेता है.प्रलयमें सबका प्रलय कर डारता है. अरुइसकी जो चंडिका शक्ति है, तिसका बडा उदर है, अरु कालिका सबका ग्रास करती है, पाछे, नृत्य करती है. जैसे वनके मृगको सिंह अरु सिंहनी भोजन करते हैं और नृत्य करते हैं, तैसे जगत्रूपी वनमें जीवरूपी मृगका भोजन करके काल अरु कालिका नृत्य करते हैं. बहुरि इनते जगत्का प्रादुर्भाव होता है. नाना प्रकारके पदार्थनको रचते हैं. पृथ्वी, बगीचे,बावरी, आदि सब पदारथ इनही ते उत्पन्न होते हैं, अरु सुंदर जीवकीहू उत्पत्ति इनते होती है, और एक सम-

यमें उनका नाशभी कर देती है. सुंदर समुद्र रचके फिर वामें अग्नि लगाय देती है अरु सुंदर कमलको बनायके फिर वाके ऊपर बरफकी बरसा करती है, इत्यादि नाना पदार्थको रचिके तिनका नाश करती है. जहां बड़े स्थान बसते हैं तिनको उजाड़ कर डारती है. फिर उजाड़में बस्ती कर धरती है. अरु नाशभी करती है, स्थिर रहने किसीको नहीं देती, जैसे बागमें बानर आयके वृक्षको ठहरने नहीं देता तैसे कालरूपी बानर किसी पदार्थको स्थिररहने नहीं देता.

हे मुनीश्वर ! इस प्रकारसों सब पदार्थ कालसों कर जर्जरीभूत होते हैं, तिसका मैं आश्रय किसरीतिसों करों ? मुझको वो नाशरूप भासता है. ताते अब मुझको किसी जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालविलासवर्णनं नाम एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः २०.

अथ कालकालिकावर्णनम्.

राम उवाच, हे मुनीश्वर ! इस कालका महा पराक्रम है, इसके तेजके सन्मुख रहनेको कोई समर्थ नहीं क्षणमें ऊँचको नीचकर डारता है, अरु नीचको ऊंच कर डारताहै, तिसका निवारण कोऊ नहीं कर सकता, सब इसीके भयसे परे काँपते हैं. यह महाभैरव है. सब विश्वका ग्रास कर लेता है. अरु चंडिकारूप शक्ति है सो बलवान् है. सो नदीरूप है, तिसका उल्लंघन कोई नहीं कर सकता है, अरु महाकालरूपी काली है, तिसका बडा भयानक आकार है, अरु कालरूप जो रुद्र हैं, तिसते अभिन्नरूपी कालिका है, सो सबका पान कर लेती है; पाछे भैरव अरु भैरवनी नृत्य करते हैं सो काल कालिका कैसी है ! बडा जिसका आकाशमें शीश है, अरु जिसके पातालमें चरण हैं. दशोंदिशा जिसकी भुजा हैं; सप्त समुद्र जिसके हाथमें कंकन हैं, संपूर्ण पृथ्वीरूप तिसके हाथमें पात्र है, तिसके ऊपर जीव

है, सो भोजन योग्य है. हिमालय अरु सुमेरु पर्वत दोनों कानमें बडे रत्न हैं; चंद्रमा सूर्य जिसके लोचन हैं, अरु सब तारागण वाके मस्तकमें बिंदु हैं, अरु हाथमें त्रिशूल अरु मुशल आदि शस्त्र हैं, अरु जिसके हाथमें तद्रा फांसा है, तिसकर जीवको मारता है. ऐसी जो कालिका देवी है, सो सब जीवका ग्रास करके महाभैरव जो रुद्र है, तिसके आगे नृत्य करती है, अरु अट्ट, अट्ट ऐसा शब्द करती है;अरु जीवका भोजन करके उनकी रुंडमाला गरेमें धारण करती है; सो भैरवके आगे नृत्य करती है, अरु भैरव कैसा है ? कि जिसके सन्मुख रहनेकी शक्ति कोईमें नहीं है, अरु जहाँ उजार है तहाँ क्षणमें बस्ती करडारते हैं, अरु जहाँ बस्ती होवे तहाँ क्षणमें उजार करते हैं, इसीसे तिनका नाम देव कहते हैं, अरु जिसको कृतांत भी कहते हैं, काहेसे कि, बडे २ पदार्थ होते हैं अरु तिसका नाश भी करता है, अरु स्थिर किसीको रहने नहीं देता, तिसते इसका नाम कृतांत है; अरु नित्यरूपीहू यही है, जो यह आदि धरा है सोई कर्त्ता अरु कर्मरूप है, काहेते कि, परिणाम जिसका अनित्यरूप है, इसीते इसका कर्म नाम है, सो कैसे नाश करताहै ? जब अभावरूपी धनुष हाथमें धरता है, तिसकर राग द्वेषरूपी बाण चलाता है तिस बाणसे जर्जरीभूत करके नाश करता है, अरु उत्पत्ति नाशमें उसको यत्न भी कछु करना नहीं पडता है, इसको तो खेल जैसा है. जैसे बालक मृत्तिकाकी सेना बनाता है, फिर उठाय कर नाशभी करदेताहै, तैसे कालको उपजावने अरु नाश करनेमें यत्न करना नहीं पडता है, हे मुनीश्वर ! कालरूपी धीवर है, तिसने क्रियारूपी जाल पसारा है, तिसविषे जीवरूपी पक्षी पडे फँसते हैं, सो फँसे हुए शांतिको नहीं प्राप्त होतेहैं. हे मुनीश्वर ! यह तो सब नाशरूप पदार्थ हैं इनमें आश्रय किसका करना, जिसकर सुखी होवे ! स्थावर जंगम जगत् तो सबकालके मुखमेंहै यह सब नाशरूप मुझको दृष्टिमें आवेहैं, ताते जो निर्भयपद होय सो मुझसों कहो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालकालिकावर्णनं नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशतितमः सर्गः २१.

अथ कालविलासर्णवनम्.

श्रीराम उवाच, हे मुनीश्वर ! जेते कछु पदार्थ भासते हैं सो सब नाशरूपहैं, ताते किसकी इच्छा करों ? और कौनको आश्रंय करों ? इतनी इच्छा करनी सो मूर्खता है. अरु जेती कछु चेष्टा अज्ञानी करताहै सो सब दुःखके निमित्तहै अरु जीवनेमें अर्थकी सिद्धि कछु नहीं है, काहेते. जो बालक अवस्था होतीहै, तब मूढता रहतीहै, विचार कछु नहीं रहता. अरु जब युवा अवस्था आती है, तब मूर्खता करके विषयको सेवतेहैं, अरु मान मोहादि विकारोंसे मोहेई जाते हैं, तामें भी विचार कछु नहीं होता अरु स्थिरभी नहीं रहते, फिर दीनका दीन रहके विषयकी तृष्णा करताहै. शांतिको नहीं पाताहै.

हे मुनीश्वर ! आयुष्य जो है सो महाचंचलहै, अरु मृत्यु निकट है, वाको अन्यथा भाव नहीं होता है. हे मुनीश्वर ! जेते कछु भोग हैं सो रोगहैं, अरु जिसको संपदा जानतेहैं, सो आपदाहै, अरु जिसको सत्य कहतेहैं, सो असत्यरूप है, अरु जिस जिस स्त्री पुत्रादिकको मित्र जानतेहैं, सो सब बंधनका करताहै अरु इंद्रिय जो हैं सो महा शत्रुरूपहैं. सोमृगतृष्णाके जलवत्हैं अरु यह देह है सो विकाररूप है, अरु मन महाचंचलहै, और सदा अशांतरूप है, अरु अहंकार जो है सो महानीचहै. इसनेही दीनताको प्राप्त कियाहै इसकर जेते कछु पदार्थ इसकोसुखदायक भासते हैं, सो सब दुःखके देनहारेहैं तिसकर इसको कदाचित् शांति नहीं होती, ताते मुझको इतनी इच्छा नहीं. यद्यपि देखने मात्रको सुंदर भासते हैं, तो भी इनमें सुख कछु नहीं, सो पदार्थ स्थिर रहनेका नहीं. जैसे समुद्रमें नानाप्रकारके तरंग भासतेहैं, सोसब बडवाग्निकर नाश होतेहैं तैसे यह पदार्थभी नाशको पाते हैं. मैं अपनी आयु विषे कैसे आस्था करों.

हे मुनीश्वर ! बडे समुद्र जो दृष्टि आते हैं अरु सुमेरु आदि बडे पदार्थ हैं सो सब नाशको पाते हैं, तब हम सारिखेकी कहा वार्त्ता है और बडे बडे दैत्य राक्षसहू होयके नाश पाय गये हैं, तो हम सारिखेकी कहा

वार्त्ता है ? अरु देवता, सिद्ध, गंधर्व, हुयेहैं सो सब नाशको पाते हैं. तिनकी नाम संज्ञाभी नहीं रहती तब हम सारिखेकी कहा वार्त्ता! पृथ्वी, जल, अरु अग्नि जो दाहकशक्ति धरनेहारे अरु पवन जोहै सो वीर्य सहित सब नाश हो जायँगे, कछु इनकी सत्ताभी न रहैगी, तो हम सारिखेकी कहा वार्त्ता, अरु यम, कुबेर, वरुण, इंद्र, वडे तेजवारे हैं सो सब नाश पावेंगे तो हम सारिखेकी कहा कहानी है, और तारामंडल जो दृष्टि आते हैं, सो सब गिरपडेंगे, जैसे सूखे पात वृक्षते वायुसों गिरजाते हैं, तैसे तारे गिरतेहैं तब हम सारिखेकी कहा वार्त्ता है. हे मुनीश्वर ! ध्रुव, जो स्थिर भासता है. सो भी अस्थिर होय जायगा, अरु चंद्रमा अमृतमय मंडलका दृष्टिमें आता है और सूर्य अखंड मंडल है जिसका, ऐसा जो प्रकाशसंयुक्तदृष्टिमें आता है, सो सब नाश हो जावहिंगे, तो हम सारिखेकी कहा वार्त्ता है औरकीहू कहा वार्त्ता है यह जो बडे ईश्वर जगत्‌के अधिष्ठाता हैं तिनका भी अभाव हो जाता है. परमेष्ठी जो ब्रह्मा है, तिसका भी अभाव हो जाता है, हरि जो विष्णु सो भी हरे जायँगे, महा भैरवरूप जो इन्द्र सो भी शून्य हो जायँगे; तो हम सारिखेकी कहा वार्त्ता करनी ? अरु काल जो सबका भक्षण करने हाराहै सोभी टूक टूक होयके नाशको प्राप्त होवेगा अरु कालकी स्त्री जो नेती है, सोहू अनेतताको प्राप्त होवेगी; अरु सबका आधार जो आकाश है सो भी नाश होजायगा. तो हम सारिखेकी कहा वार्त्ता ? अरु जेता कछु जगत् अर्थ कर सिद्ध होताहै, सो सब नाश हो जावेगा. कोऊहू स्थिर रहनेका नहीं तब हम किसकी आस्था करैं, अरु किसका आश्रय करैं यह जगत् सब भ्रममात्रहै अज्ञानीकी इसमें आस्था होती है और हमारी नहीं है. कि, जगत् भ्रम कैसे उत्पन्न भयाहै, अरु मैं इतना जानता हों कि. संसारमें जितने दुःखी होते हैं, सो अहंकारने किये हैं.

हे मुनीश्वर ! इसका जो परमशत्रु अहंकार है, इस करके भटकता फिरता है. जैसे जेवरीमें बाँधा हुआ पतंग कबहू ऊर्ध्व कबहू नीचे जाता है स्थिर कबहूँ नहीं रहता. तैसे जीवहू अहंकार करके कबहूं ऊर्ध्व कबहूँ अधो जाता है. स्थिर कबहूं नहीं होता जैसे अश्वते आरूढ रथ तिनके

ऊपर बैठके सूर्य आकाश मार्गमें भ्रमता है तैसे यह जीव भ्रमता है स्थिर कदाचित् नहीं होता. हे मुनीश्वर, यह जीव परमार्थ सत्य स्वरूपते भूलाहुआ भटकता है अरु अज्ञान करके संसारमें आस्था करता है अरु भोगहूको सुखरूप जानकर तिसमें तृष्णा करता है. और जिसको सुखरूप जानता है सो रोग समान है और विषकर पूर्ण सर्प जैसे है. सो जीवका नाश करनहारे हैं. और जिसको सत्य जानता है, सो असत्य है. सब कालके मुखमें ग्रसे हुए हैं.

हे मुनीश्वर! विचार विना अपना नाश आपही करता है; काहेते कि, इसका कल्याण करनेहारा बोध है. जो सत्य विचार बोधके शरण जाय तो कल्याण होवे और जेते पदार्थ हैं, सो स्थिर कोई नहीं; इनको सत्य जानना दुःखके निमित्त है. हे मुनीश्वर! जब तृष्णा आतीहै, तब आनंद अरु धैर्यको नाश करदेती है, जैसे वायु मेघका नाश कर डारता है, तैसे तृष्णा नाश कर डारती है. ताते मुझको सोई उपाय कहो, जिसकर जगत्का भ्रम मिट जावे अरु अविनाशीपदकी प्राप्ति होवे. इस भ्रमरूप जगत्की आस्था मैं नहीं देखता; ताते इच्छा चाहे तैसी करो, परंतु सुख दुःख इसीको होने हैं सो होइँगे, मिटनेके नहीं भावे पहाडकी कंदरामें बैठो, भावे कोटमें बैठो, परंतु जो होनेका सो मिथ्या नहीं होवै है, इस निमित्त यत्न करना मूर्खता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालविलासवर्णनं नाम एकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशतितमः सर्गः २२.

अथ सर्वपदार्थाभाववर्णनम्.

रामउवाच, हे मुनीश्वर! यह जो नानाप्रकारके सुंदर पदार्थ भासते हैं. सो सब नाशरूप हैं इनकी आस्था मूर्ख करते हैं, यह तो मनकी कल्पना करके रचे हुए हैं. तिनमें किसकी आस्था करों?

हे मुनीश्वर! अज्ञानी जीवका जीवना व्यर्थ है; काहेते जो जीवनेते

उसकी अर्थसिद्धि कछु नहीं होती. जब कुमार अवस्था होती है, तब मूढ बुद्धि होती है, तिसमें विचार कछु नहीं होता. जब युवावस्था आती तब काम क्रोधादिक विकार उत्पन्न होते हैं तिसकर सदा ढांपे रहतेहैं. जैसे जालमें पक्षी बँध जाता है, अरु आकाशमार्गको देख नहीं सकता है; तैसे काम क्रोधादिक करि ढपा हुआ विचार मार्गको देख नहीं सकता जब वृद्धावस्था आती है; तब शरीर जर्जरीभूत होजाता है अरु महादीन होता है बहुरि शरीरको भी त्याग देता है. जैसे कमलके ऊपर बरफ पडता हैतब तिसको भौंरा त्याग करता है, तैसे जब शरीररूपी कमलको जराका स्पर्श होता है तब जीवरूपी भौंरा त्याग कर देता है.

हे मुनीश्वर! यह शरीर तब लग सुंदर है; जबलग वृद्धावस्था प्राप्त नहीं होती-जैसे चंद्रमाका प्रकाश राहुदैत्यने आवरण नहीं किया तबलग रहता है, जब राहु दैत्य आवरण करता है, तब प्रकाश नहीं रहता है तैसे जरा अवस्थाके आये युवा अवस्थाकी सुंदरता जाती रहती है, हे मुनीश्वर! जराके आयेते शरीर कृश होजाता है, अरु तृष्णा बढ जाती है; जैसे वर्षाकालमें नदी बढ जाती है; तैसे जरा अवस्थामें तृष्णा बढ जाती है; अरु जो पदार्थकी तृष्णा करता है, सो पदार्थ भी दुःखरूप है; तृष्णा करके आपही दुःख पाता है.

हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी समुद्र है तिसमें चित्तरूपी बेडा परा है; राग द्वेषरूपी मच्छ कबहूं ऊर्ध्व जाते हैं, कबहू नीचे आते हैं, स्थिर कदाचित् नहीं रहते. हे मुनीश्वर! कामरूपी वृक्ष है, सो वृक्षमें तृष्णारूपी लता लगती हैं. तिनमें विषयरूपी फल हैं जब जीवरूपी भौंरा तिनके ऊपर बैठता है; तब विषयरूपी बेलसों मृतक हो जाता है. हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी एक बडी नदी है; तिसमें राग द्वेषादिक बडे मच्छ रहते हैं तिस नदीमें परे हुए जीव दुःख पाते हैं, अरु जो संसारकी इच्छा करता है, सो नाशरूप है.

हे मुनीश्वर! उन्मत्त हस्ती अरु तुरंगके समूह ऐसा जो रणरूपी समुद्र है तिसको तर जाते हैं; तिसको भी मैं शूर नहीं मानता परंतु जो इंद्रियरूपी समुद्र, तिसमें मनोवृत्तिरूपी तरंग उठते हैं, ऐसे समुद्रको जो

तरजाता है, तिसको शूर मानता हों. जिसके परिणाममें दुःख होवे, तैसी क्रिया अज्ञानी जीव आरंभ करते हैं, और जिसके परिणाममें सुख है, तिसका आरंभ नहीं करताहै और कामके अर्थकी धारना करता है, ऐसे आरंभ कियेते शरीरकी शांति और सुखकी प्राप्ति नहीं होती. ऐसेई कामना करके सदा जलते रहते हैं; अनात्म पदार्थकी तृष्णा करते हैं, सो शांतिको कैसे प्राप्त होवें।

हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी नदी है; तिसमें बडा प्रवाहहै; तिसके किनारे वैराग्य अरु संतोष दोनों वृक्ष खडे हैं, सो तृष्णानदीके प्रवाहते उन दोनोंका नाश होता है. हे मुनीश्वर! तृष्णा बडी चंचल है; किसीको स्थिर होने नहीं देती. अरु मोहरूपी एक वृक्ष है, तिसके चहूँफेर स्त्रीरूपी वेलि है, सो विषकरके पूर्ण है, तिसपर चित्तरूपी भौंरा आय बैठता है, तब स्पर्शमात्रते नाश पाता है. जैसे मोरका पुच्छ हिलता रहताहै तैसे अज्ञानीका चित्त चंचल चलता है, सो मनुष्य पशु समान है; जैसे पशु दिनको जंगलमें जाय आहार करते चलते फिरते हैं, अरु रात्रिको आय घरमें खूँटासों बंधन पाते हैं तैसे मूर्ख मनुष्यहू दिनको घर छोडके व्यवहारमें फिरते हैं अरु रात्रिको आय अपने घरमें स्थिर होते हैं ताते परमार्थकी सिद्धि कछु नहीं होती जीवना वृथा गवाँते हैं.

बालक अवस्थामें शून्य रहतेहैं; अरु युवा अवस्थामें काम करि उन्मत्त होते हैं सो काम करके चित्तरूपी उन्मत्त हस्ती स्त्रीरूपी कंदरामें जाय स्थित होतेहैं; सोभी क्षणभंगुरहै. बहुरि वृद्धावस्था होतीहै, तिसकर शरीर कृश होजाताहै; जैसे बर्फते कमल जर्जरीभावको प्राप्त होताहै, तैसे जरा करके शरीर जर्जरीभावको प्राप्त होता है; अरु सब अंग क्षीण हो जाता है; अरु एक तृष्णा बढजातीहै.

हे मुनीश्वर! यह पुरुष महापशु है; सो आकाशके फूल लेनेकी इच्छा करताहै, जैसे बडे पर्वतपर चढकर आकाशका फूल लेनेकी इच्छा करताहै; सो फिर बडी कंदरा अरु वृक्षमें गिर पडताहै, तैसे यह जीव मनुष्यरूपी पर्वतपर आय रहाहै, अरु आकाशके फूलरूपी, जगतके पदार्थकी इच्छा करताहै, सो नीचेको गिर पडनेको है सो राग द्वेषरूपी

कंटक वृक्षमें जाय पडेगा हे मुनीश्वर ! जेते कछु जगत्के पदार्थ हैं सो सब आकाशके फूलकी नाईं नाशवान्हैं. इनमें आस्था करनी सो मूर्खता है; यह तो शब्दमात्र जैसाहै, तिसते अर्थ सिद्धि कछु नहीं होती अरु–

जो ज्ञानवान् पुरुषहैं, तिनको विषय भोगकी इच्छा नहीं रहती; काहेते जो आत्माके प्रकाशकर इनको मिथ्या जानतेहैं. हे मुनीश्वर ! ऐसे ज्ञानवान् पुरुष सो दुर्विज्ञेय हैं, हमको तो स्वप्नमेंभी नहीं भासते हैं. और यह विरक्तात्मा दुर्लभहै; जिनको भोगकी इच्छा नहीं है. सर्वदा ब्रह्मकी स्थितिकर भासते हैं; ऐसे पुरुषको संसारकी इच्छा कछु नहीं रहती काहेते जो यह पदार्थ सब नाशरूपहैं,हे मुनीश्वर ! पर्वतको जिस ओर देखिये तहां पत्थर कर पूर्ण दृष्टि आताहै; अरु पृथ्वी पूर्ण मृत्तिका कारि दृष्टि आती है; अरु वृक्ष काष्ठकारि पूर्ण दृष्टि आता है; समुद्र जल-कर पूर्ण दृष्टि आताहै तैसे शरीर अस्थि, मांसकर पूर्ण भासताहै ये सब पदार्थ पांचतत्त्वकारि पूर्ण हैं और नाशरूपहैं. ऐसा रूप ज्ञानी जानके किसीकी इच्छा नहीं करता.

हे मुनीश्वर ! यह जगत् सब नाशरूपहै, देखते देखते नाशको पाताहै तिसमें मैं किसका आश्रय करके सुख पाऊँ. जब युगकी सहस्र चौकरी होती हैं, तब ब्रह्माका एक दिन होताहै, तिस दिनके क्षय हुएते सब जगत्का प्रलय होताहै, बहुरि ब्रह्माहू कालकर नाश होजाताहै; अरु ब्रह्माहू जितने होगयेहैं. तिनकी संख्या नहीं होती असंख्य ब्रह्मा नाश होगये हैं तो हम सारिखेकी कहा वार्त्ता करनी है ? हम किसी भोगकी वासना नहीं करते, क्यों कि सब चलरूप है, कछु स्थिर रहनेका नहीं. सब नाशरूप है इनकी आस्था मूर्ख करते हैं. तिसके साथ हमको कछु प्रयोजन नहीं जैसे मृग मरुस्थलको देख, जल पान करनेको दौडता है अरु शांतिको नहीं पाता, तैसे मूर्ख जीव जगत्के पदार्थको सत्य मानकर तृष्णा करते हैं, परन्तु शांतिको नहीं पाते, काहेते कि, सब असाररूप है. अरु–

जो स्त्री, पुत्र, कलत्र भासते हैं, सो जबलग शरीर नष्ट नहीं हुआ तबलग भासते हैं, जब शरीर नष्ट हो जायगा तब जानिवेमेंभी न आवेंगे कि, कहां गये अरु कहाँते आयेथे ? जैसे तेल अरु बत्तीकर दीपक

प्रकाशता है तब बडा प्रकाशवान् दृष्ट आता है, पाछे जब बुझजाता है तब जाना नहीं जाता कि. कहाँ गया, तैसे बत्तीरूप बांधव हैं और तिसविषे स्नेहरूपी तेलहै, तिसकर जो शरीर भासता है सो प्रकाश हैं जब शरीररूपी दीपकका प्रकाश बुझ जाता है तब जाना नहीं जाता कि, कहां गया. हे मुनीश्वर ! यह बंधुका मिलाप है. सो जैसे तीर्थ यात्राका संग चला जाता होवे. सो सब एक क्षणमें वृक्षकी छाया नीचे बैठते हैं. फिर न्यारे न्यारे होय जाते हैं, तैसा बांधवका मिलाप है. जैसे उस यात्रामें स्नेह करना मूर्खता है, तैसे इनमेंभी स्नेह करना मूर्खता है.

हे मुनीश्वर ! अहंममताकी जेवरीके साथ बांधे हुए घटीयंत्रकी नाईं सब भ्रमते फिरते हैं. तिनको शांति कदाचित् नहीं होती. यह देखने-मात्रको चेतन दृष्ट आवता है;परंतु पशु अरु बंदर इनते श्रेष्ठ हैं. जिनकी संमति देह इंद्रियनके साथ बांधी हुई है. अरु आगमापायी है. इसमें आस्था रखनी सो महामूर्खता है; उनको आत्मपदकी प्राप्ति होनी कठिन है. जैसे पवनकर वृक्षके पात टूटके उड जाते हैं, फिर उनको वृक्षके साथ लगना कठिन है, तैसे जो देहादिक साथ बांधे हुए हैं, तिसको आत्मपद पाना कठिन है.

हे मुनीश्वर ! जब आत्मपदते विमुख होता है तब जगत्के भ्रमको देखता है अरु जब आत्मपदकी ओर आता है, तब संसार इसको बडा विरस लगता है. और ऐसा पदार्थ जगत्में कोई नहीं कि, स्थिर रहैगा. जो कछु पदार्थ हैं सो नाशको प्राप्त होते हैं, ताते मैं किसकी आस्था करों ? और किसका आश्रय करों ? सब नाशवंत भासते हैं, वह पदार्थ मुझको कहो, जिसका नाश न होवे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे सर्वपदार्थभाववर्णनं नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशतितमः सर्गः २३.

अथ जगद्विपर्ययवर्णनम्.

श्रीरामउवाच,हे मुनीश्वर ! जेता कछु स्थावर जंगम जगत् दीखता है, सो सब नाशरूप है, कछु भी स्थिर रहनेका नहीं जो खाईं थी सो

जलकर पूर्ण होगई है, अरु जो बडे जलकर समुद्र पूर्ण दीखते थे, सो खाई रूप ह्वै गये अरु जो सुंदर बडे बगीचे थे, सो आकाशकी नाईं शून्य होगये, अरु जो शून्य स्थान थे, सो सुंदर वृक्ष हुए बनकर दृष्ट आते हैं. जहां वस्ती थी तहां उजार हो गई है, अरु उजारथी तहां वस्ती होगई है, अरु जहां गढेले थे, तहां पर्वत हो गये हैं, अरु जहां बडे पर्वत थे. तहां समान पृथ्वी हो गई है. हे मुनीश्वर! इस प्रकार पदार्थ देखत विपर्यय हो जाते हैं स्थिर नहीं रहते, बहुरि मैं किसका आश्रय करों? अरु किसके पावनेका यत्न करों? यह पदार्थ तो सब नाशरूपहैं. अरु जो बडे बडे ऐश्वर्यंकर संपन्न थे, अरु जो बडे कर्त्तव्य करते थे और बडे वीर्यवान, बडे तेजवान हुए थे, सो भी मरण मात्र हो गये हैं, तब हम सारीखेकी कहा वार्त्ता है! सब नाश होते हैं, तब हमको भी घडी पलमें चले जाना है, रहना किसीको नहीं.

हे मुनीश्वर! यह पदार्थ चंचलरूप हैं, सो एकरस कदाचितहू नहीं रहते; एक क्षणमें कछु होजातेहैं; दूसरे क्षणमें कछु हो जाते हैं! एक क्षणमें दरिद्री हो जाते हैं, दूसरे क्षणमें संपदावान हो जाते हैं! एक क्षणमें जीवतै दृष्ट आते हैं. दूसरे क्षणमें मरजाते हैं. एक क्षण में मुवे भी जी उठते हैं. इस संसारकी स्थिरता कबहूँ नहीं होती. ज्ञानवान् इसकी आस्था नहीं करते. एक क्षणमें समुद्रके प्रवाहके ठिकाने मरुस्थल होजाते हैं, अरु मरुस्थलमें जलके प्रवाह होजाते हैं. हे मुनीश्र! इस जगत्का आभास स्थिर नहीं रहता, जैसे बालकका चित्त स्थिर नहीं रहता, तैसे जगत्का पदार्थ एक भी स्थिर नहीं रहता जैसे नट स्वांगको धरता है; सो कबहूं कैसा; कबहूं कैसा सो एक स्वांगमें नहीं रहता तैसे जगत्के पदार्थ अरु लक्ष्मी एकरस नहीं रहते कबहूं पुरुष स्त्री हो जाता है, कबहूँ स्त्री पुरुष हो जाती है; अरु मनुष्य पशु हो जाताहै. पशु मनुष्य हो जाता है; और स्थावरका जंगम. अरु जंगमका स्थावर हो जाताहै. मनुष्य देवता हो जाता है और देवता मनुष्य हो जाता है. इसप्रकार घटी यन्त्रकी नाईं जगत्की लक्ष्मी स्थिर नहीं रहती कबहूं ऊर्ध्वको जाती है, कबहूँ अधोको जातीहै, स्थिर कबहू नहीं रहती, सदा भटकत रहती है.

हे मुनीश्वर! जेते कछु पदार्थ दृष्टिमें आते हैं, सो सब नष्ट हो जानेके हैं. कैसेहू स्थिर रहनेको नहीं ए सब नदियां हैं सो सब वडवाग्निमें लय हो जायँगी; तैसे जेते कछु पदार्थ हैं सो सब अभावरूप वडवाग्निको प्राप्त होवेंगे. अरु बडे बलिष्ठहूँ मेरे देखते लीन होगये हैं; अरु जो बडे सुंदर स्थान सो शून्य हो गये हैं; अरु जो सुंदर ताल, अरु बगीचे मनुष्य करि पूर्ण ऐसे स्थान सो शून्य हो गये हैं; अरु जो मरुस्थलकी भूमिका सो सुंदरताको प्राप्त भई है. अरु घट पट होगये हैं; वरके सांप हो जाते हैं; सांपके वर हो जाते हैं. इस प्रकार हे विप्र! जो जगत् दृष्टिमें आता है सो कबहूं सम्पदा, कबहूं आपदा दृष्टिमें आवतीहै; अरु महा चपल दृष्टि आवते हैं. हे मुनीश्वर! ऐसे सब अस्थिररूप पदार्थ हैं. तिसका विचार विना मैं कैसे आश्रय करों, अरु किसकी इच्छा करों? सब नाशरूप हैं और—

जो यह सूर्य प्रकाशकर दृष्टिमें आता है, सो भी अंधकाररूप होजायगा. अरु अमृतकर पूर्ण जो चंद्रमा दृष्टिमें आता है, सो भी शून्य होजायगा. अरु सुमेरु आदिक जो पर्वत दृष्टि आते हैं सो सब नाश होयँगे और सब लोग नाश होजांयगे; ताते हे मुनीश्वर! और किसीकी क्या कहनी है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, जो जगत्के ईश्वर हैं सो भी शून्य हो जाँयगे, तो हम सारिखेकी कहा वार्त्ता कहनी है; जेता कछु जगत् दृष्टि आता है, सो स्त्री, पुत्र, बांधव, ऐश्वर्य, वीर्यतेज, करिकै नाना प्रकारके जीव जो भासते हैं, सो सब नाशरूप हैं; बहुरि मैं किस पदार्थका आश्रयकरों, और किसकी इच्छा करों.

हे मुनीश्वर! जो पुरुष दीर्घदर्शी हैं तिनको तो सब पदार्थ विरस हो गयेहैं; किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करते, काहेते कि, सब पदार्थ नाशरूप भासते हैं और अपनी आयुष्यको बिजुरीके चमत्कारवत् देखते हैं; जैसे विजुरीका चमत्कार होता है, तैसी शरीरकी आयुष्यहै. जिसको अपनी आयुष्यकी अप्रतीति होती है सो किसीकी इच्छा करते नहीं, जैसे किसीको बलिदान अर्थ पालतेहैं तब वह खाने, पीने, भुगतनेकी इच्छा हीं करता; तैसे जिसको अपना मरना सन्मुख भासता है, तिसको भी

किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रहती; यह सब पदार्थ आपही नाशरूपहैं; तो हम किसका आश्रयकर सुखी होवें ? जैसे कोई पुरुष समुद्रमें मच्छके आश्रय करके कहे कि, मैं इसपर बैठके समुद्रके पार जाऊंगा, अरु सुखी होऊंगा, सो मूर्खता करके डूबही मरेगा; तैसे जिस पुरुषने इस पदार्थका आश्रय लिया है; अरु अपने सुखके निमित्त जानता है सो नाशको प्राप्त होवेगा.

हे मुनीश्वर ! जो पुरुष जगत्को विचारता रहताहै तिसको यह जगत् रमणीय भासताहै, अरु रमणीय जानके नानाप्रकारके कर्म करताहै अरु जो नानाप्रकारके संकल्प करके जगत्में भटकते हैं; कबहूं ऊपर, कबहूं नीचे आते हैं, अरु स्थिर नहीं रहते; तैसे यह जीव भटकते फिरते हैं, स्थिर कबहूं नहीं रहते; अरु जिस पदार्थकी इच्छा करते हैं, सो सब कालका ग्रासरूप होगये हैं, जैसे वनमें अग्नि लगती है तब सब इंधनादिकको जारतीहै, तैसे जेते कछु पदार्थ हैं सो सब इंधनरूपी जगत् वन है; तिसको कालरूपी अग्नि लगीहै, तिसने सबको ग्रास लियाहै; बहुरि जो इस पदार्थकी इच्छा करते हैं सो महामूर्ख हैं; अरु--

जिनको आत्मविचारकी प्राप्तिहै; तिनको यह जगत् भ्रमरूप भासता है; अरु जिनको आत्मविचारको प्राप्ति नहीं है, तिनको यह जगत् रमणीय भासताहै. अरु जगत्को देखते नाश होजातेहैं स्वप्न पुरीकी नाईं संसारकी मैं कैसे इच्छा करों ? यह तो दुःखके निमित्त है जैसे मिठाईमें विष मिलाया है, तिसके भोजन करनेवाले मृत्युको प्राप्त होते हैं; तैसे विषय भुगतनेवाले नाशको प्राप्त होतेहैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे जगद्विपर्ययवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशतितमः सर्गः २४.

अथ सर्वांतप्रतिपादनवर्णनम्.

रामउवाच, हे मुनीश्वर ! इस संसारमें भोगरूपी अग्नि लगी है तिसकर सब जलतेहैं ! जैसे तालमें हाथीके पाँवसों कच्चर कमलका चूर्ण होजाताहै,

तैसे भोगसों मनुष्य दीन हो जाते हैं. तैसे काम क्रोध दुराचारसों शुभ गुण नष्ट हो जाते हैं जैसे कंटारीके पत्तेमें अरु फलमें कांटे होजाते हैं, तैसे विषयकी वासनारूपी कंटक आय लगते हैं.

हे मुनीश्वर! यह जगत् सब नाशरूप है, किसी पदार्थका स्थिर रहना नहीं है. वासनारूपी जाल, अरु इंद्रियरूपी गांठी है तिसमें पुरुष कालसों आय फँसा है सो बड़े दुःखको प्राप्त होवेगा हे मुनीश्वर! वासनारूपी सूतमें जीवरूपी मोती परोये हुए हैं, अरु मनरूपी नट आय परोयकर चैतन्यरूपी आत्माके गरेमें डारता है. जब वासनारूपी तागा टूट परा तब यह भ्रम भी निवृत्त होगया. हे मुनीश्वर! इसको भोगकी इच्छा है सो बंधनका कारण है भोगकी इच्छा कर भटकता है, शांतिको प्राप्त नहीं होता है, ताते मुझको किसी भोगकी इच्छा नहीं न राज्यकी इच्छा है. न घरकी न वनकी इच्छा है, न मरनेका दुःख मानता हों, न जीनेकर सुख मानता हों. किसी पदार्थका सुख नहीं, सुख जो होना सो आत्मज्ञानकर होना है. अन्यथा किसी पदार्थकर होता नहीं. जैसे सूर्यके उदय हुए विना अंधकारका नाश नहीं होता, तैसे आत्मज्ञान विना संसारके दुःखका नाश नहीं होता; ताते सोई उपाय मुझको कहो, जिसकर मोहका नाश होवे और मैं सुखी होऊ.

हे मुनीश्वर! भोगको भुगतनहारा जो अहंकार है, सो मैंने त्याग दिया है; फिर भोगकी इच्छा कैसी होवे. हे मुनीश्वर! इस विषयरूप सर्पने जिसका स्पर्श किया है, तिसका नाश होजाता है. अरु सर्प जिसको काटता है. सो एकबेर इसको मार डारता है; अरु विषयरूपी सर्प जिनको काटते हैं, सो अनेक जन्म पर्यंत मारतेई चले जाते हैं, ताते परम दुःखका कारण विषय भोग है; याते विषयरूपी परमविष है. अरु वज्रकरके शरीरका चूर्ण होना. सो भी मैं सहूँगा परन्तु विषयका भुगतना मेरेसों कैसेहू सहा नहीं जाता. यह मुझको दुःखदायक दृष्टिमें आता है, ताते सोई उपाय मुझको कहो, जिसकर मेरे हृदयते अज्ञानरूपी अंधकारका नाश होवे, अरु जो न कहोगे तो मैं अपनी छातीपर धीरजरूपी शिला धरके बैठा रहोंगा, परन्तु भोगकी इच्छा न करोंगा.

हे मुनीश्वर ! जेते कछु पदार्थ हैं, सो सब नाशरूप हैं; जैसे बिजुरीका चमत्कार होय छिप जाता है, अरु अंजलीमें जल नहीं ठहरता, तैसे विषयभोग अरु आयुष्य नाश हो जाते हैं, ठहरते नहीं. जैसे कंठीकर मच्छी दुःख पावती है, तैसे भोगकी तृष्णा कर जीव दुःख पावते हैं, ताते मुझको किसी पदार्थकी इच्छा नहीं जैसे किसीने मरीचिकाके जलको सत्य जान जलपानकी इच्छा करी और दौऱ्या सो जल पावत नहीं. ताते मैं किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करता.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे सर्वांतप्रतिपादनं नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

पंचविंशतितमः सर्ग. २५

अथ वैराग्यप्रयोजनवर्णनम्.

श्रीरामउवाच, हे मुनीश्वर ! संसाररूपी गढेलेमें अरु मोहरूपी कीचमें मूर्खका मन गिर जाता है, तिसकर परा दुःख पाता है, शांतवान कबहूं नहीं होता जब जरा अवस्था आती है, तब सर्व शरीर जर्जरीभूत होकर कांपने लगते हैं; जैसे पुरातन वृक्षके पत्र पवनकर हिलते हैं, जैसे जरा अवस्था कर अंग हिलते हैं, अरु तृष्णाकी वृद्धि हो जातीहै; जैसे नीमका वृक्ष ज्यों २ वृद्ध होता है त्यों त्यों कटुता बढती है, तैसे तृष्णा बढती है.

हे मुनीश्वर ! जिस पुरुषने देह, इंद्रियादिकनका आश्रय अपने सुख निमित्त लिया है, सो मूर्ख संसाररूपी अंधकूपमें गिरता है, निकस नहीं सकता; अरु अज्ञानीका चित्त भोगका त्याग कदाचित् नहीं करता है.

हे मुनीश्वर ! जगत्के पदार्थमें मेरी बुद्धि मलीन होगईहै. जैसे वर्षाकालमें नदी मलीन होती है अथवा जैसे मार्गशीर्षमासमें मंजरी सूखि जाती हैं, तैसे जगत्की शोभा देखत देखत विरस होजाती है. जैसे जगत्का पदार्थ मूर्खको रमणीय भासताहै; जैसे पानीका गढेला तृणकरि आच्छादित होता है, अरु मृगके बालक तिस तृणको रमणीय जानकर खाने जाते हैं, फिर गिर जाते हैं; तैसे यह मूर्ख भोगको रमणीय जानि भुगतके

गिर परे हैं फिर महादुःख पाते हैं. जैसे मृग मृगतृष्णाकर उडता है, सो सुखी नहीं होता, तैसे यह मृगतृष्णारूप संसारके पदार्थनके ऊपर मन-रूपी मृग उड़नहारा कैसे सुखी होवे.

हे मुनीश्वर! जगत्के पदार्थनसों मेरी बुद्धि चंचल हो गई है; ताते सोई उपाय कहो, जिसकर पर्वतकी नाईं मेरी बुद्धि निश्चल होवे. सो पद कैसा है ? कि, परमानंदके यत्नमें रहते हैं, अरु निर्भय, निराकार पद जिसके पायेते संसार कछु भी नहीं रहता है, बहुरि पावना कछु नहीं रहता है; तैसे संपूर्ण जगत्की नानाप्रकारकी रचना सब दब जाती है; तिस पद पानेका उपाय मुझको कहो. हे मुनीश्वर! ऐसे पदते मेरी बुद्धि शून्य है, ताते मैं शांतिमान नहीं होता. यह संसार अरु संसारके कर्म मोहरूप हैं; इसमें पडे हुऐ शांतिको प्राप्त नहीं होते. अरु–

जनकादिक संसारमें रहे हुए कमलकी नाईं निर्लेप रहतें हैं, तैसे शांतिमान संसारमें निर्लेप रहतेहैं. सो जैसे कोऊ कीचसों पूर्ण होय, अरु कहै कि. मुझको कीचका परश नहीं हुआ, तैसे राजाको विक्षेप-रूपी कीचमें परे हुए शांतिमान कैसे निर्लेप रहे हैं, तिसकी समुझ कहा है, सो कृपा कर कहो. अरु तुम जैसे जो संतजन हैं सो विषयको भुगतते दृष्टि आवते हैं अरु जगत्की चेष्टा सब करते हैं; सो निर्लेप कैसे रहते हैं, सो युक्ति कहो जैसे तुम जल कमलवत् रहते हो सो कहो. यह बुद्धि तो मोह करि मोही जाती है जैसे तालमें हस्ती प्रवेश करता है और पानी मलीन हो जाता है. तैसे मोह करि बुद्धि मलिन होय जाती है, ताते सोई उपाय कहो, जिसकर बुद्धि निर्मल होवे. यह संतोषमें बुद्धि स्थिर कबहूँ नहीं रहती. जैसे मूलसों कुहारे कर काटा. वृक्ष स्थिर नहीं होता, तैसे वासनासों कटी बुद्धि स्थिर नहीं रहती. हे मुनीश्वर! संसाररूपी विषूचिका मुझको लगी है, ताते सोई उपाय कहो, जिसकर दृश्यका नाश होवे, इसने मुझको बडा दुःख दिया है. अरु आत्मज्ञान कब प्रकाश होय, जिसके उदय हुए मोहरूपी अंधकारका नाश होवे. हे मुनीश्वर! जैसे बादरसों चंद्रमा आच्छादित हो जाता है, तैसे बुद्धिकी मलीनता कर मैं आच्छादित हुआ हूँ, ताते सोई उपाय कहो जिसकर आवरण दूर होवे. अरु, जो

आत्मानंद सो नित्य है, जिसके पायेते बहुरि पावना कछु नहीं रहता, इसते संपूर्ण दुःख नष्ट हो जाते हैं. अरु अंतर शीतल हो जाताहै, ऐसा जो पदहै, तिसकी प्राप्तिका उपाय मुझसे कहो. हे मुनीश्वर ! आत्मज्ञान-रूपी चंद्रमाकी मुझको इच्छा है, जिसके प्रकाशकर बुद्धिरूपी कमलनी खिल आती है, अरु जिसकी अमृतरूपी किरनकर तृप्त वृत्ति होती है, सो कहो. हे मुनीश्वर ! अब मुझको गृहमें रहनेकी इच्छा नहीं, अरु वन-विषे जानेकी भी इच्छा नहीं, मुझको तो इसी पदकी इच्छा है, जिसके पायेते भीतर शांति हो जाय.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे वैराग्यप्रयोजनवर्णनं नाम पंचविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशतितमः सर्गः २६.

अथ अनन्यत्यागवर्णनम्.

श्रीरामउवाच, हे मुनीश्वर ! जो जीवनेकी आस्था करते हैं सो मूर्खहैं, जैसे पत्रपर जलकी बूंद ठहरती नहीं तैसे आयुष्यहू क्षणभंगुर है. जैसे वर्षाकालमें दर्दुर बोलते हैं तब उनका कंठ चंचल सदा फरकता रहता है, तैसे आयुर्दा छिन छिनमें चंचल हो जाती है जैसे शिवजीके कपालमें चंद्रमाकी रेखा कछुसी है, तैसा यह शरीर है. हे मुनीश्वर ! जिसको इसमें आस्था है, सो महामूर्ख है; यह तो कालका ग्रास है. जैसे बिल्ली चूहे-को पकर लेती है, तैसे सबको काल पकर लेता है. जैसे बिल्ली चूहे-को संभाल करने नहीं देती. तैसे सबको काल अचानक ग्रहण कर लेता है, अरु किसीको भासता नहीं.

हे मुनीश्वर ! जब अज्ञानरूपी मेघ आय गर्जता है, तब लोभरूपी मोर प्रसन्न होयके नृत्य करता है. जब अज्ञानरूपी मेघ वर्षा करता है, तब दुःखरूपी मंजरी बढने लगती है; अरु लोभरूपी बिजुरी छिन-छिनमें होय होय नष्ट हो जाती है, अरु तृष्णारूपी जालमें फँसे हुए जीवरूपी पक्षी परे दुःख पाते हैं; शांतिकी प्राप्ति नहीं होती.

हे मुनीश्वर! यह जगत्‌रूपी बडा रोग लगा है तिसके निवारण करने का कौनसा पदार्थहै, जो पाने योग्यहै,जिसकर भ्रमरूपी रोग निवृत्त होवे, सोई उपाय कहो. यह जगत् मूर्खको रमणीय दीखता है,ऐसे पदार्थ पृथ्वी-पर, अरु आकाशमें, अरु देवलोकमें, अरु पातालमें कोऊ नहीं जो ज्ञानवान्‌को रमणीय दीखें. ज्ञानवान्‌को सब भ्रमरूप भासते हैं; अरु अज्ञानी जगत्‌में आस्था करता है. हे मुनीश्वर! चन्द्रमामें जो कलंक है, तिसकर शोभा सुंदर नहीं लगती, जब कलंक दूर होय जाय, तब सुंदर लगे; तैसे मेरे चित्तरूपी चंद्रमामें कामरूपी कलंक लगा है, तिसकर उज्वल नहीं भासता ताते सोई उपाय कहो; जिसकर कलंक दूर होजाय.

हे मुनीश्वर! यह चित्त बहुत चंचलहै; स्थिर कदाचित् नहीं होता. जैसे अग्निमें डारदिया पारा उडजाता है तैसे चित्तभी स्थिर नहीं होता विषयकी तरफ सदा धावता है, ताते सोई उपाय कहो, जिसकर चित्त, स्थिर होवे. और संसाररूपी वनमें भोगरूपी सर्प रहते हैं, सो जीवका दंश करतेहैं, तिनसों बचनेका उपाय कहो; अरु जेती कछु क्रियाहै, सो राग द्वेषके साथ मिली हुई है, ताते सोई उपाय कहो जिसकर राग द्वेषका प्रवेश न होय, तैसे यह संसारमें परेहैं तिसका तृष्णारूपी जलका परश न होय, ऐसा उपाय कहो; जिसकर इसको राग द्वेषका परश न होय; अरु मनमें जो मननरूपी सत्ताहै, सो युक्तिसों दूर होती है. अन्यथा दूर नहीं होती. सो निवृत्तिके अर्थ आप मेरेको युक्ति कहो; और आगे जिसको जिस प्रकार निवृत्ति हुई है, सो कहो अरु जिसप्रकार तुम्हारे अतरमें शीतलता हुई है, सो कहो. हे मुनीश्वर! जैसे तुम जानते हो सो कहो अरु जो तुम्हारे विद्यमान वह युक्ति नहीं पाई, तब मैं तो कछु नहीं जानता. तो मैं सब त्यागकर निर अहंकार होय रहोंगा जबलग वह युक्ति मुझको न प्राप्त होवेगी तबलग मैं भोजन नहीं करूंगा, अरु जलपान-भी नहीं करूंगा. अरु स्नानादिक क्रियाभी नहीं करूंगा. संपदाका कार्य भी नहीं करूँगा, और आपदाका कार्यभी नहीं करूँगा निर अहंकार होऊँगा. और ये न मेरी देह है, और न मैं देहहों सब त्याग करके बैठि रहोंगा. जैसे कागजके ऊपर मूर्ति चित्रित होतीहै, तैसे होय

रहोंगा. श्वास आते जाते आपही क्षीण होय जायँगे जैसे तेल बिना दीपक बुझता है, तैसे अर्थ विन देह होय जायगा तव महाशांतिको प्राप्त होऊँगा.

वाल्मीकि उवाच, हे भारद्वाज ! ऐसे कहि करि रामजी चुप होय रहे. जैसे वडे मेघको देखके मोर शब्द करके चुप होजाता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे अनन्यत्यागदर्शनं नाम षड्विंशतितमः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशतितमः सर्गः २७.

अथ देवसमाजवर्णनम्.

वाल्मीकि उवाच, हे पुत्र ! जव इस प्रकार रघुवंशरूपी आकाशके रामचंद्ररूपी चन्द्रमा बोले, तव सवही मौन होगये, अरु सवके रोम खडे हो आये, मानो रोमहू खडे होकर रामजीके वचन सुनतेहैं, अरु जेते कछु सभामें वैठेथे सो सव निर्वासनारूपी अमृतके समुद्रमें मग्न होगये वशिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र, आदि जो मुनीश्वर थे और जेते दृष्टिआदिक जो मत्रीथे, और राजा दशरथ अरु जेते मंडलेश्वरथे, और जेते नौकर चाकर थे और माता कौशल्या आदिक सब मौन हो गये. अर्थ यह तो अचल होगये अरु पिंजरेमें पक्षी जोथे सोभी मौन होगये अरु बगीचेमें पशु आदिथे; सोभी मौन होगये अरु चारा तृण खाता रहिगये अरु जो पक्षी आलयमें बैठे थे; सोभी सुनकर मौन होगये; अरु आकाशके पक्षी जो निकट थे; सोभी स्थिर होगये; अरु आकाशमें देव, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर, किन्नरथे; सोभी आय सुनने लगे; अरु फूलोंकी वर्षा करने लगे; सब धन्य धन्य शब्द करनेलगे. और फूलोंकी वर्षाभई सो मानो वर्फकी वर्षा होती है; अरु क्षीरसमुद्रके तरंग उछलते आवते होयँ. अरु मोतीकी मालकी वृष्टि आवत होय; और जैसे माखनके पिंड उडते होयँ. इसप्रकार आधी घडी पर्यंत फूलनकी वर्षा भई, अरु बडी सुगंध आय पसरी; अरु फूलोंपर भौंरे फिरनेलगे और वडा बिलास तिस कालमें होरहा अरु नमोनमःशब्द करने लगे.

देवउवाच; हे कमलनयन! रघुवंशी आकाशमें चंद्रमारूप आप रामजी! तुम धन्य हो! तुमने बडे श्रेष्ठ स्थान देखे हैं; अरु बहुत प्रकारके वचन सुनेहैं; याते जैसे आप वचन कहे हैं ऐसे वचन कबहूं नहीं सुने इस वचन सुनके हमारा जो देवताका अभिमान था सो सब निवृत्तभया है. अमृतरूपी वचन सुनकर हमारी बुद्धि पूर्ण होगई है. हे रामजी! जैसे वचन तुमने कहे हैं; ऐसे वचन बृहस्पति हू कहनेको समर्थ नहीं, तुम्हारे वचन परमानंदके करनहारे हैं; ताते तुम धन्य हो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे देवसमाजवर्णनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशतितमः सर्गः २८.

अथ मुनिसमाजवर्णनम्.

वाल्मीकिउवाच, हे भारद्वाज! ऐसे वचन देवता कहके विचार करत भये, रघुवंशका कुल पूजबे योग्य है; तिसमें रामजी बड़े उदार वचन मुनीश्वरके विद्यमान कहे हैं; अब जो मुनीश्वरका उत्तर होयगा, सोभी श्रवण किया चाहिये जैसे फूलके ऊपर भौंरा स्थित होते हैं, तैसे व्यास, नारद, पुलह, पुलस्त्य, आदि सब साधु सभामें आय स्थित भये; तब वशिष्ठ विश्वामित्र आदि मुनीश्वर उठके खड़े हुये, अरु तिनकी पूजा करनेलगे प्रथम पूजा राजा दशरथने करी, फिर नानाप्रकारसों सबने उनकी पूजा करी और यथायोग्य आसनके ऊपर बैठे, सो कैसेहैं! जो नारद बहुत सुंदर मूर्तिवारे हाथमें वीणा लेयके बैठे अरु श्याममूर्ति व्यास आयबैठे और नानाप्रकारके रंगोंसों रंजित वस्त्र पहिरे हुए, मानो तारामें महाश्यामघटा आई है, ऐसे अरु दुर्वासा, वामदेव, पुलह, पुलस्त्य, अरु बृहस्पतिके पिता अंगिरा, अरु भृगु और मैं भी तहां था; और ब्रह्मर्षि, राजर्षि, देवर्षि, देवता मुनीश्वर सब आयके सभामें स्थित हुए. किसीके बड़ीजटा हैं; कोई मुकुट पहरे हैं; किसीने रुद्राक्षकी माला पहरी है, किसीने मोतीकी माला पहरी हैं; किसीके कंठमें रत्नकी माला हैं; और हाथमें कमंडलु, मृगछाला किसीके महा सुंदर वस्त्र; ऐसे बड़े तपस्वी आयके बैठे तामें कोई राजसी

स्वभावके, कोई सात्विक स्वभावके; ऐसे बडे बडे आये; अरु सब विद्वत् वेद पढनहारे प्राप्त हुए. और किसीका सूर्यवत्, किसीका चंद्रवत्, किसीका तारावत् ऐसे बडे प्रकाशवाले पुरुषार्थपर यत्न करने हारे, सो यथायोग्य आसन पर स्थिर भये; और मोहनी मूर्त्ति रामजी अरु दीन स्वभाववारे हाथ जोरके सभामें बैठे तिनकी सब पूजा करत भये. कहते हैं कि, हे रामजी! तुम धन्य हो! और—

नारद सबके विद्यमान कहत भये कि हे रामजी! तुमने बडे विवेक अरु वैराग्यके वचन कहे, सो सबको प्यारे लगे; सबके कल्याण करने हारे हैं और परम बोधके कारण हैं. हे रामजी! तुम बडे बुद्धिमान् उदारात्मा दृष्टि आवते हो; अरु महा वाक्यका अर्थ तुमते प्रगट होता है, ऐसा उज्वल पात्र साधुमें और अनन्त तपस्वियोंमें कोई एक होते हैं. अरु जेते कछु मनुष्य हैं सो सब पशु जैसे दृष्टिमें आवते हैं. क्योंकि जिसको संसार समुद्रके पार होनेकी इच्छा है और जो पुरुषार्थ पर यत्न करते हैं. सोई मनुष्य हैं. हे साधो! वृक्ष तो बहुत होतेहैं; परंतु चंदन का वृक्ष कोई होता है. तैसे शरीरधारी बहुत हैं; परंतु ऐसा कोई होता है; और सब अस्थि मांसके पुतरे साथ मिले हुये भटकते फिरते हैं; सो जैसी यंत्रीकी पुतरी होती है, तैसे अज्ञानी जीव हैं; और हस्ती तो बहुत हैं; परंतु जिसके मस्तकमेंसे मोती निकसता है. सो विरलाहै. तैसे मनुष्यतो बहुत हैं, परंतु पुरुषार्थपर यत्न करनेहारे कोई होतेहैं ऐसे पात्र को थोरा अर्थ कहा भी हो बहुत जाताहै; जैसे तेलकी बूंद थोरी जलमें डारी विस्तारको पाती है; तैसे थोरे वचनसों आपके हियेमें बहुत होतेहैं; आपकी बुद्धि बहुत विशेष है; अरु दीपक जैसी प्रकाशवारी है; अरु बोधका परमपात्र है; और कहने मात्रतें आपको शीघ्र ज्ञान होवेगा अरु हमारे विद्यमान आपको ज्ञान होवेगा. ऐसा निश्चय करि जानना.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे मुनिसमाजवर्णनं नाम अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

इति योगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणं समाप्तम्.

परमात्मने नमः ।

अथ श्रीयोगवासिष्ठे

मुमुक्षुप्रकरणप्रारंभः ॥ २॥

प्रथमः सर्गः १.
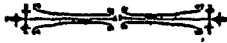
अथ शुकनिर्वाणवर्णनम्.

वाल्मीकि उवाच, हे साधो! यह जो वचन हैं सो परमानंदरूप हैं, अरु कल्याणके कर्त्ता हैं. इसमें श्रवणकी प्रीति तब उपजती है, जब अनेक जन्मके बडे पुण्य आय इकट्ठे होते हैं; जैसे कल्पवृक्षके फलको बड़े पुण्यसों पाते हैं तैसे जिसके बडे पुण्य कर्म इकट्ठे आय होते हैं. तिसकी प्रीति इन वचनोंके श्रवणमें होतीहै अन्यथा प्राप्ति नहीं होती ये वचन परम बोधके कारण हैं, हे भारद्वाज ! इस प्रकार जब नारदजीने कहा तब विश्वामित्रजी बोले.

विश्वामित्र उवाच, हे ज्ञानवानोंमें श्रेष्ठ रामजी ! जेता कछु जानने योग्य था सो तुमने जाना है, इसते जानना और नहीं रहा. अरु तिसमें विश्राम पावने निमित्त कछुक मार्जन करना है जैसे अशुद्ध आदर्शकी मलिनता दूर करी होय, तब मुख स्पष्ट भासता है; तैसे कछु उपदेशकी तुझको अपेक्षा है. हे रामजी ! तेरे जैसा भगवान् व्यासजीका पुत्र शुकदेवजी भया है, सोभी बडा बुद्धिमान् था; तिसने जो जानने योग्य था सो जाना है. अरु विश्रामके निमित्त तिसको भी अपेक्षा थी सो विश्रामको पाय शांतिमान् भये हैं.

राम उवाच. हे भगवन्! शुकजी कैसा बुद्धिमान् अरु ज्ञानवान् थे;

अरु कैसी विश्रामकी अपेक्षा थी, फिर कैसे विश्रामको पावत भये? सो कृपा करिके कहो.

विश्वामित्र उवाच, हे रामजी! अंजनके पर्वतकी नाईं जिनका आकार हैं, ऐसे जो भागवान् व्यासजी ये स्वर्णके सिंहासनपर राजा दशरथके पास बैठे हैं अरु सूर्यकी नाईं प्रकाशमान् जिसकी कांति है. तिसके पुत्र शुकजी सो सब शास्त्रके वेत्ताथे. सत्यको सत्य जानतेथे असत्यको असत्य जानते थे, सो शांतिरूप और परमानंदरूप, आत्मामें विश्राम न पावते भये तब उसको विकल्प उठा कि, जिसको मैं जाना हूं, सो न होवेगा. काहेते कि, मुझको आनंद नहीं भासता है सो संशयको धरके एक कालमें व्यासजी सुमेरु पर्वतकी कंदरामें बैठेथे, तिनके निकट आयकर कहत भये हे भगवन्! यह संसार सब भ्रमात्मक कहांसे भया है; वाकी निवृत्ति कैसे होयगी और आगे कोईको इसकी निवृत्ति भई है? सो कहो.

हे रामजी! इस प्रकार जब शुकजीने कहा, तब विद्वत् वेद शिरोमणि जो वेदव्यासजी हैं, सो तत्काल उपदेश करते भये. तब शुकजीने कहा, हे भगवन्! जो कछु तुम कहो हो, सो तो मैं आगेसों जानता हों, इसकर मुझको शांति प्राप्त नहीं होती.

हे रामजी! जब इस प्रकार शुकजीने कहा तब सर्वज्ञ जो वेदव्यासजी हैं, सो विचार करतभये कि, मेरे वचनकर इसको शांति प्राप्त न होवेगी क्योंकि, अब पिता पुत्रका संबंध भासताहै,ऐसे विचार करके व्यासजी कहते भये-हे पुत्र! मैं सर्व तत्त्वज्ञ नहीं तू राजा जनकके निकटजावे, वे सर्व तत्त्वज्ञहैं अरु शान्तात्माहैं, उनसों तेरा मोह निवृत्ति होवेगा.

हे रामजी! जब इसप्रकार व्यासजीने कहा तब शुकदेवजी वहांसों चले;तब जो मिथिला नगरी राजा जनककी थी, तिसमें आयकर राजा जनकके द्वारपै स्थित भये. तब ज्येष्ठीने जायकर राजा जनकको कहाकि, व्यासजीके पुत्र शुकजी आय खडेहैं,तब राजाने जाना कि,इसको जिज्ञासा है, तब कहा खडा रहो, तब खडेई रहे. इसी प्रकार ज्येष्ठी जाय कहा, तब सात दिन खडे रहत बीत गये, तब राजाने फिर पूँछा शुकजी खडे हैं कि,

चलते रहेहैं ? तब ज्येष्ठीने कहा खडे हैं. तब राजाने कहा आगे ले आओ; तब आगे ले आये; उस दरवज्जेपै भी सात दिन खडे रहे. बहुरि राजाने पूँछा कि, शुकजी हैं ? तब ज्येष्ठीने कहा कि, खडे हैं तब राजाने कहा अंतःपुरमें ले आओ. उसको नानाप्रकारके भोग भुगताओ. तब अंतःपुरमें लेगये, वहाँ स्त्रियनके पास सात दिन खडेरहे, तब राजाने ज्येष्ठीसे पूछा कि,तिसकी दशा कैसीहै और आगे कहा दशाथी ? तब ज्येष्ठीने कहा जो आगे निरादर करके न शोकवान हुवाथा, अरु अब भोगकर न प्रसन्न हुआ है; इष्ट अनिष्टमें समानहै. जैसे मंद पवनकरके मेरु चलायमान नहीं होवे, तैसे यह बडे भोगका निरादरकर चलायमान नहीं भये. जैसे पपैयेको मेघके जल विना नदी, ताल,आदिके जलकी इच्छा नहीं होती; तैसे उसको किसी पदार्थकी इच्छा नहीं. तब राजाने कहा इहाँ ले आओ; तब सो लेआये.

जब शुकजी आये, तब राजा जनकने उठके खडे हो प्रणाम किया. फिर दोऊ बैठ गये, तब राजाने कहाकि, हे मुनीश्वर! तुम किस निमित्त आये हो; तुमको कहा वांछा है ? सो कहो, किसकी प्राप्ति मैं करदेऊं.

श्रीशुकउवाच, हे गुरु ! यह संसारका आडंबर कैसे उत्पन्न हुआ है;-फिर कैसे शांत होवेगा, सो तुम कहो.

विश्वामित्र उवाच,हेरामजी ! जब इस प्रकार शुकदेवजीने कहा तब राजा जनकने यथाशास्त्र उपदेश जो कछु व्यासजीने कहा था, सोई कहा. बहुरि शुकजीने कहा—हे भगवन्,जो कछु तुम कहोहो,सोई मेरा पिताजी कहताथा, अरु सोई शास्त्र कहताहै और विचारसों मैं भी ऐसा जानताहों कि; यह संसार अपने चित्तमें उत्पन्न होताहै अरु चित्तका निर्वेद हुए भ्रमकी निवृत्ति होती है, फिर विश्राम मुझको नहीं प्राप्त होताहै.

जनकउवाच; हे मुनीश्वर! जो कछु मैंने कहाहै; अरु जो तुम जानतेहो, इससे और उपाय कछु है, ऐसा जानना नहीं, अरु कहनाभी नहीं यह संसार चित्तके संवेदनकर हुआ है, जब चित्त फुरनेते रहित होता है,तब भ्रमनिवृत्त होजाता है; अरु आत्मतत्त्व नित्य शुद्ध है; अरु परमानंद स्वरूप है केवल चैतन्य है तिसका अभ्यास करैगा तब तू विश्रामको

पावेगा; अरु तू मुक्ति स्वरूप है. काहेते कि,तेरा यत्न आत्माकी ओरहै, दृश्यकी ओर नहीं, ताते तू बडा उदारात्माहै. हे मुनीश्वर ! तू मोको व्यासते अधिक जान मेरे पास आयाहै; और तू मेरेते भी अधिक है; काहेते कि, हमारी चेष्टा बाहिरते दृष्ट आवती है और तुम्हारी चेष्टा बाहरते कछुभी नहीं अरु अंतरते हमारी कछुभी नहीं.

विश्वामित्र उवाच, हे रामजी ! जब इस प्रकार राजा जनकने कहा, तब शुकजी निःसंग, निःप्रयत्न निर्भय होकर चले. सुमेरु पर्वतकी कंदरामें जाय निर्विकल्प समाधि दश सहस्र वर्ष ताईं करी. बहुरि निर्वाण होगये. जैसे तेल विना दीपक निर्वाण होजाता है, तैसे निर्वाण होगये, जैसे समुद्रमें बूंद लीन होजाताहै जैसे सूर्यका प्रकाश संध्याकालमें सूर्यके पास लीन होजाता है, तैसे कलनारूप कलंकको त्यागकर ब्रह्मपदको प्राप्त भये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे शुकनिर्वाण-
वर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २.

अथ विश्वामित्रोपदेशवर्णनम्.

विश्वामित्रउवाच, हे राजा दशरथ ! जैसे शुकजी शुद्ध बुद्धिवारे थे, तैसे रामजी भी हैं. जैसे शांतिके निमित्त उसका कछुक मार्जन कर्त्तव्य था, तैसे रामजीको विश्रामके निमित्त कछुक मार्जन चाहिये; काहेतेकि, आवरण करनहारे भोग हैं; सो इच्छा तिनते निवृत्ति भई है; अरु जो कछु जानवे योग्य था सो जाना है अब हमको कछुक युक्ति करनी है, तिस करके उसको विश्राम होवेगा. जैसे शुकजीको थोडेसे मार्जन करके शांतिकी प्राप्ति भई थी, तैसे इनको भी होवेगी.

हे राजन् ! अब रामजीको भोगकी इच्छा स्पर्श नहीं करती, जैसे ज्ञानवान्को अध्यात्मक आदि दुःख स्पर्श नहीं करते, तैसे रामजीको भोगकी इच्छा स्पर्श नहीं करती भोगकी इच्छा सबको दीन करती है, इसकाही

नाम बंधन है; अब भोगकी वासनाका क्षय करना इसका ही नाम मोक्ष है. ज्यों ज्यों भोगकी इच्छा करता है, त्यों त्यों लघु हो जाता है; अरु ज्यों ज्यों भोगकी वासना क्षय होती है, त्यों त्यों गरिष्ठ होता है. जबलग इसको आत्मानंद प्रकाश नहीं होता; तबलग विषयकी वासना दूर नहीं होती; जब आत्मानंद प्राप्त होता है, तब विषय वासना कोई नहीं रहती. जैसे मरुस्थलमें लताकी उत्पत्ति नहीं होती तैसे ज्ञानवान्‌को विषय वासनाकी उत्पत्ति नहीं होती.

हे साधो ! ज्ञानवान् जो विषय भोगका त्याग करता है. सो किसी फलकी इच्छा करके नहीं करता; स्वभावतेई ज्ञानवान्‌की विषयवासना उठजाती है. जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकारका अभाव हो जाता है; तैसे रामजीको अब किसी भोग पदार्थकी इच्छा रही नहीं-अब विदितवेद्य हुआहै, अब आप विश्रामकी इच्छा चाहता है, ताते जो कहो, सोई करो, जिसकर विश्रामवान् होय.

हे राजन् ! यह जो भगवान् वशिष्ठजी हैं, इनकी युक्ति करके शांत होवेगा; अरु आगे भी सोई रघुवंश कुलके गुरु हैं, इनके उपदेश द्वारा आगे भी रघुवंशी ज्ञानवान् भये हैं.जो सर्वज्ञ हैं, अरु साक्षिरूप हैं; और त्रिकालज्ञ हैं और ज्ञानके सूर्य हैं, इनके उपदेशकर रामजी आत्मपदको प्राप्त होवेगा.

हे वशिष्ठजी ! वह ब्रह्मका उपदेश तुम्हारे स्मरणमें है. क्योंकि, जब तुम्हारा हमारा विरोध हुआथा, तब उपदेश किया.और जो सब ऋषीश्वर अरु वृक्ष कारि पूर्ण है, ऐसा जो मंदराचल पर्वतमें आयकर ब्रह्माजीने संसार वासनाके नाश निमित्त उपदेश किया था, अरु तुम्हारा हमारा विरोध था, तिसके निमित्त अरु और जीवके कल्याण निमित्त जो उपदेश किया था; अब वही उपदेश तुम रामजीको करो यह भी निर्मल ज्ञानपात्र हैं. अरु ज्ञानभी वही है; अरु विज्ञान भी वही है, अरु निर्मल युक्ति वही है कि, शुद्ध पात्रमें अर्पण होवे; अरु पात्र विना उपदेश नहीं सुहाता है, अरु जिसमें शिष्यभाव न होवे, अरु विरक्तता न होवे, ऐसा जो अपात्र मूर्ख होवे, तिसको उपदेश करना व्यर्थ है अरु जो विरक्त

होवे, अरु शिष्य भावना न होवे, तऊभी उपदेश नहीं करना; अरु दोनों करि संपन्न होवे तब करना. पात्र विना उपदेश व्यर्थ होता है; अर्थ यह है कि, अपवित्र होजाता है. जैसे गौका दूध महापवित्र है, परन्तु श्वानकी त्वचामें डारिये तब वह अपवित्र हो जाता है, तैसे अपात्रको उपदेश करना व्यर्थ है, हे मुनीश्वर! जो शिष्य वैराग्य करि संपन्न होता है, अरु उदार आत्माहै सो तुम्हारे उपदेशके योग्य है; तुम कैसे हो; कि वीतराग हो, भय अरु क्रोधते रहित हो; परम शांतिरूप हो, सो तुम्हारे उपदेशका पात्र रामजी है.

वाल्मीकि उवाच; इसप्रकार जब विश्वामित्रने कहा तब नारद अरु व्यासादिकनने साधु, साधु, करके कहा. अर्थ यह कि, भला, भला, कहा; ऐसेई यथार्थ है तब राजा दशरथके पास बहुत प्रकारके साधु बैठे हुए थे.

वशिष्ठउवाच, ब्रह्माजीके पुत्र वशिष्ठजीने तिनसे कहा कि-हे मुनीश्वर! जो कछु तुमने आज्ञा करी है; सो हमने मानी है. ऐसा समर्थ कोऊ नहीं, जो संतकी आज्ञा निवारण करै. हे साधो! जेते कछु राजा दशरथके पुत्र हैं, तिन सबके हृदयमें जो अज्ञानरूपी तम हैं; सो मैं ज्ञानरूपी सूर्यकर निवारण करोंगा; जैसे सूर्यके प्रकाशकर अंधकार दूर होताहै. हे मुनीश्वर! जो कछु ब्रह्माजीने उपदेश किया था, सो मुझको अखंड स्मरण है, सोई उपदेश करोंगा. जिसकर रामजी निःसंशय पदको प्राप्त होवेगा.

वाल्मीकि उवाच, इस प्रकार वशिष्ठजीने विश्वामित्रसे कहा ताके अनंतर मोक्षका उपाय सब रामजीको कहत भया.

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेविश्वमित्रोपदेशोनामद्वितीयः सर्गः॥२॥

तृतीयः सर्गः ३.

अथ असंख्यसृष्टिप्रतिपादनवर्णनम्

वशिष्ठउवाच, हे रामजी, जो कछु कमलज जो ब्रह्माजी, तिसने मुझको जीवके कल्याण निमित्त उपदेश किया है, सो भले प्रकार मेरे सुमिरणमें आता है; सो अब तुमको कहता हों.

श्रीरामउवाच, हे भगवन् ! कछुक प्रश्न करनेका अवसर आया है, अब एक संशयको दूर करो. मोक्ष उपाय जो कहते हो, सो सब तुम कहोगे, परंतु यह जो तुमने कहा कि, शुकदेवजी विदेहमुक्त होगये; तो भगवान् व्यासजी जो सर्वज्ञ हैं, सो विदेहमुक्त क्यों न हुए.

वशिष्ठउवाच हे रामजी ! जैसे सूर्य किरणसों त्रिसरेणु उडती देख परती हैं. तिनकी संख्या कछु नहीं होती, तैसे परम सूर्यके संवेदनरूपी किरणमें त्रिलोकीरूप त्रिसरेणु हैं सो असंख्य हैं; और अनंत होकर मिट जाते हैं; अरु और अनंत होते हैं; और अनंत त्रिलोकी ब्रह्म समुद्रमें होवेंगे; तिसकी संख्या कछु नहीं.

श्रीरामउवाच, हे भगवन् ! जो आगे व्यतीत होगये हैं और जो आगे होवेंगे तिनकी संख्या केती है अरु वर्त्तमानको तो जानता हों.

वशिष्ठउवाच, हे रामजी ! अनंत कोटि त्रिलोकीके गण उपजे हैं, अरु मिट गये हैं अरु कई होवे हैं; अरु कई होवेंगे, गिननेकी संख्या कछु नहीं. काहेते कि, जीव असंख्य हैं, अरु जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि है. जब यह जीव मृतक हो जाते हैं. तब उसी स्थानमें अपने अंतवाहक संकल्परूपी पुरविषे इसका बांधव भास आता है. अरु इसी स्थानमें परलोक भास आता है, पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, पंचभूत भासताहै, अरु नानाप्रकारकी वासनाके अनुसार अपनी अपनी सृष्टि भास आती है, बहुरि जब वहाँ ते मृतक होताहै तब वही सृष्टि भास आती है. नाम रूप संयुक्त वही जाग्रत सत्य होकर भास आतीहै. बहुरि जब वहाँते मरताहै, तब इस पचभूत सृष्टिका अभाव होजाता है और अपर भासतीहै. अरु तहांके जो जीव होतेहैं, तिनको भी इसी प्रकार अनुभव होता, इसी प्रकार एक एक जीवकी सृष्टि होतीहै, अरु मिट जाती है, तिसकी संख्या कछु नहीं, तब ब्रह्माकी सृष्टिकी संख्या कैसे होवे.

जैसे पुरुष फेर लेताहै, अरु तिसको सब पदार्थ भ्रमते दृष्टि आवतेहैं, अरु जैसे नौकामें बैठे हुये नदी तटके वृक्ष चलते दृष्टि आतेहैं, जैसे नेत्रके दोषकर आकाशमें मोतीकी माला दृष्टि आती है. जैसे स्वप्नमें सृष्टि भासतीहै, तैसे जीवको भ्रम करके यह लोक परलोक भासताहै वास्तवते

जगत् कछु उपजाई नहीं, एक अद्वैत परमात्मतत्त्व अपने आपविषे स्थितहै, तिसविषे द्वैत भ्रम अविद्या करके भासता है. जैसे बालकको अपने परछैयामें बेताल भासताहै, अरु भयको पाताहै, तैसे अज्ञानीको अपनी कल्पना जगतरूप हो भासती है.

हे रामजी ! यह व्यासदेव बत्तीस बेर मेरे देखनेमें आया है, तिसमें दशतो एक आकार रूपहैं; अरु एकही जैसी क्रिया; अरु एकही जैसे निश्चय हुआहै ? अरु अपर दश समानही सम हुएहैं. अरु बारे विलक्षण आकार विलक्षण क्रिया चेष्टावारे हुयेहैं जैसे समुद्रमें तरंग होते हैं, तिनमें कई सम अरु कई विलक्षण उपजते हैं. तैसे व्यास, हुए हैं, अरु सम जो दश हुए हैं तिनमें दश व्यास यही हैं; अरु आगे भी अष्टबेर यही होवेगा अरु बहुरि महाभारत कहैगा. बहुरि नौमी बेर ब्रह्मा होकर विदेह मुक्त होवेगा; अरु हमभी होवेंगे अरु वाल्मीकिभी होवेगा. अरु भृगुभी होवेगाअरु बृहस्पतिका पिता अंगिराभी होवेगा;इत्यादिक औरभी होवेंगे.

हे रामजी ! एक सम होते हैं, एक विलक्षण होते हैं; अरु मनुष्य, देवता, तिर्यगादिक जीव कई बेर समान होते हैं; कई बेर विलक्षण होते हैं; कई जीव समान आकार आगे जैसे कुल क्रिया सहित होतेहैं; अरु कई संकल्प कर उठते फिरतेहैं; आवना, जावना, जीवना, मरना, स्वप्न भ्रमकी नाईं दिखताहै. अरु वास्तवते कोऊ आता है, न जाता है; न जन्मताहै, न मरता है. यह भ्रम अज्ञानसों भासता है; विचार कियेते कछु निकसता नहीं, जैसे कदलीका स्तंभ देखनेमें बडा पुष्ट आता है, फिर खोल देखो तो सार कछु नहीं निकलता, तैसे जगत् भ्रम अविचार करके सिद्ध हैं; विचार कियेते कछु भासता नहीं.

हे रामजी ! जो पुरुष आत्मसत्तामें जागा है, तिसको द्वैत भ्रम नहीं भासताहै, वह आत्मदर्शी, सदा शांत आत्मा परमानंद स्वरूपहै; अरु सब कलनाते रहित है. ऐसे जीवन्मुक्तको कोई चलाय नहीं सकता ऐसे जो व्यासदेवजी हैं, तिसको सदेह मुक्ति, अरु विदेह मुक्तिकी कोऊ कलना नहीं सदा अद्वैत रूपहै; हे रामजी ! जीवन्मुक्तको सब सर्वात्मा

पूर्ण भासताहै; अरु स्वस्वरूप भासताहै. स्वरूपसार शांतिरूप अमृत करि पूर्णहै; अरु निर्वाणमें स्थित है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे असंख्यसृष्टि-
प्रतिपादनो नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४.

अथ पुरुषार्थोपक्रमवर्णनम्.

वशिष्ठ उवाच, हे रामजी! जीवन्मुक्ति अरु विदेह मुक्तिमें भेद कछु नहीं. जैसे स्थिर जल है, तोभी जल है; अरु तरंग फिरते हैं! तो भी जल है, तैसे जीवन्मुक्ति अरु विदेह मुक्तिमें भेद कछु नहीं. हे रामजी! जीवन्मुक्ति अरु विदेहमुक्तिका अनुभव तुझको प्रत्यक्ष नहीं भासता काहेते जो स्वसंवेद्य है; अरु तिनमें जो भेद भासता है; सो असम्यग्दर्शीको भासता है, ज्ञानवान्को भेद कछु नहीं भासता है; जेते वायुस्पंदरूप होता है तो भी वायु है; अरु निष्पंदरूप होता है तो भी वायुहै; उसके वायेते निश्चयविषे भेद कछु नहीं; पर अपर जीवको स्पद होती है, तो भासती है, अरु निष्पंद होतीहै, तो नहीं भासती है; तैसे ज्ञानवान् पुरुषको जीवन्मुक्ति अरु विदेह मुक्तिमें भेद कछु नहीं वह सदा अद्वैत कलनाते रहित है. जब जीवको उसका शरीर भासता है, तब जीवन्मुक्ति कहते हैं. जब शरीर अदृश्य होताहै. तब विदेहमुक्त कहते हैं; अरु उसको दोनों तुल्य हैं.

हे रामजी! अब प्रकृत प्रसंगको सुन, जो श्रवणका भूषण है-जो कछु सिद्ध होता है सो अपने पुरुषार्थ कर सिद्ध होता है; पुरुषार्थ विन सिद्ध कछु नहीं होता. और कहते हैं जो दैव करैगा सो होवेगा सो मूर्खता है. यह चन्द्रमा हृदयको शीतल अरु उल्लासकर्त्ता भासता है, सो इसमें शीतलता पुरुषार्थ कर हुई है. हे रामजी! जिस अर्थकी प्रार्थना करै, अरु यत्न करै, अरु तिसमें फिरै नहीं, तो अवश्य कर जरूर पाता है और पुरुष प्रयत्न किसका नाम हैं, सो श्रवण कर संत-

जन अरु सत्यशास्त्रके उपदेशरूप उपाय कर तिसके अनुसार चित्तका विचरना होय सो पुरुषमें यत्न है, तिससे इतर जो चेष्टा करता है, तिसका नाम उन्मत्त चेष्टा है, अरु जिस निमित्त यत्न करता है सोई पावता है. एक जीव था, सो पुरुषार्थपर यत्न करते अपुन इंद्रकी पदवी पाई; त्रिलोकी पति होय सिंहासनपर आरूढ हुआ.

हे रामचंद्र ! आत्मतत्त्वमें जो चैतन्य स्पंद, इस स्पंदरूप होकर स्फूर्ति है, सो अपने पुरुषार्थ कर ब्रह्माके पदको प्राप्त भई है, ताते देख, जिसको कछु सिद्धता प्राप्त हुई सो अपने पुरुषार्थ कर हुई है, केवल चैतन्य जो आत्मतत्त्व है, तिसमें चित्त संवेदन, यही स्पंदरूप है यह चैतन्य संवेदन अपने पुरुषार्थ करके गरुडपर आरूढ होय विष्णुरूप होता है; अरु यह चैतन्य संवेदन अपने पुरुषार्थ करके रुद्ररूपभया है, अरु अर्द्धांगमें पार्वतीको धर रहा है, अरु मस्तकमें चंद्रमाको धरा है, अरु नीलकंठ परम शांतरूप है, ताते जो कछु सिद्ध होता है सो पुरुषार्थ कर होता है.

हे रामजी ! पुरुषार्थ करके सुमेरुका चूरण किया चाहै तोभी करसकता है. जैसे पूर्व दिनमें दुष्कृत किया होय, अरु अगले दिनमें सुकृत करै, तब दुष्कृत दूर होजाताहै. जो अपने हाथ द्वारा चरणामृत भी ले नहीं सकता, अरु पुरुषार्थ करै तो वही पृथ्वी खंड खंड करनेको समर्थ होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे पुरुषार्थोपक्रमो नाम चतुर्थः सर्गः ॥४॥

पंचमः सर्गः ५.

अथ पुरुषार्थवर्णनम्.

वशिष्ठ उवाच, हे रामजी ! जो चित्त कछु वांछा करता है, अरु शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थ नहीं करता सो सुखको न पावेगा; उसकी उन्मत्त चेष्टा है; अरु पुरुषार्थ भी दो प्रकारका है. एक शास्त्र अनुसार एक शास्त्र विरुद्ध है. जो शास्त्रको त्याग करि अपनी इच्छाके अनुसार विचरता है सो सिद्धताको न पावेगा; अरु जो शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थ करता है, सो सिद्धताको प्राप्त होवेगा; अरु दुःख भी न होवेगा. अनुभव

वते स्मरण होता है, अरु स्मरणते अनुभव होता है, सो दोनों इसहीते होते हैं दैव तो कछु न हुआ.

हे रामजी! और दैव कोई नहीं, इसका किया इसको प्राप्त होताहै. परंतु जो बलिष्ठ होता है, सो तिसके अनुसार विचरता है. जो पूर्वके संस्कार बली होते हैं तो उसकी जय होती है. अरु जो विद्यमान पुरुषार्थ बली होता है, तब उसको जीति लेते हैं. जैसे एक पुरुषके दो बेटे हैं अरु जो तिनको लडावता है, तो दोनोंविषे जो बली होताहै, तिसकी जय होती है. परंतु दोनों उसके हैं; तैसे दोनों कर्म इसके हैं, जो पूर्वका संस्कार बली होता है तोई इसकी जय होती है.

हे रामजी! यह जो सत्संग करता है, अरु सत शास्त्रहूका विचार करता है, बहुरि पक्षीकी नाई संसार वृक्षहूकी ओर उडता है, तो पूर्वका संस्कार बली है. तिस कारि स्थिर हो नहीं सकता, ऐसे जानकर तैं पुरुष प्रयत्नका त्याग नहीं करना; जो पूर्वके संस्कारते अन्यथा नहीं होता? पूर्वका संस्कार बलीभी होवे, परंतु जब सत्संग करे अरु सत शास्त्रहूका दृढ अभ्यास होवे, तो पूर्वके संस्कारको पुरुष प्रयत्न जीत लेता है; जैसे पूर्वके संस्कारमें दुष्कृत किया है, सुकृत आगे किया है तो अगलेका अभाव होजाताहै, सो पुरुष प्रयत्न होता है. सो पुरुषार्थ क्याहै? अरु तिसकर सिद्ध क्या होता है? सो श्रवण करके ज्ञानवान् जो संत हैं. अरु सतशास्त्र जो ब्रह्मविद्या है; तिसके अनुसार प्रयत्न करना, तिसका नाम पुरुषार्थ है अरु पुरुषार्थ करके पावने योग्य आत्मा है जिसकारि संसार समुद्रते पार होवे.

हे रामजी! जो कछु सिद्ध होता है, सो अपने पुरुषार्थ कारि होताहै; अपर दैव कोऊ नहीं, अरु जो शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थको त्याग कारि कहता है, जो जो कछु करना है, सो दैव करैगा, सो मनुष्यमें गर्दभ है. तिसका संग न करना, उसकी संगति करनी सो दुःखका कारण है. इस पुरुषको प्रथम तो यह कर्त्तव्य है-कि, अपने वर्णाश्रमविषे शुभ आचारको ग्रहण करना, अरु अशुभका त्याग करना; बहुरि संतका संग, अरु सतशास्त्रका विचारना;और तिसके विचार कर अपने गुण दोषहूका विचार

करना; कि दिन अरु रात्रिमें शुभ क्या करता हों अरु अशुभ क्या करता हों. आगे गुण अरु दोषहूका साक्षी भूत होकर जो संतोष, धीरज, वैराग्य, विचार, अरु अभ्यास गुण हैं. तिसका बढावना अरु जो दोष विपरीत है, तिनका त्याग करना. जब ऐसे पुरुषार्थको अंगीकार करैगा, तब परमानंदरूप आत्मतत्त्वको प्राप्त होवेगा. ताते.

हे रामजी! बनके घायल हुए मृगकी नाईं नहीं होना. जो घास, तृण, पातको रसीला जानके परा चुगता है, तैसे स्त्री, पुत्र, बांधव, धनादिक-विषे मग्न हो रहना, सो नहीं होना, इनते विरक्त होना. दंतहू साथ दंतहूको चबाय कारि संसार समुद्रको पार होनेका यत्न करना. अरु बलते बंधनको तोड़ कारि निकस जाना. जैसे केसरीसिंह बल करके पिंजरेमेंते निकस जाताहै तैसे निकस जाना, सोई पुरुषार्थ है.

हे रामजी! जिसको कछु सिद्धताकी प्राप्ति हुई है. सो अपने पुरुषार्थ कर हुई है, पुरुषार्थ बिना नहीं होती, जैसे प्रकाश बिन पदार्थका ज्ञान नहीं होता जिस पुरुषने अपना पुरुषार्थ त्याग दियाहै. अरु दैवके आश्रय हुएहैं, कि हमारा दैव कल्याण करैगा, सो न होवेगा. जैसे पत्थरसों तेल निकासा चाहै, सो नहीं निकलता, तैसे उनका कल्याण दैवते न होवेगा. हे रामजी! तुमतो दैवका आश्रय त्याग कर अपने पुरुषार्थका आश्रय करो.

जिसने अपना पुरुषार्थ त्यागाहै, तिसको सुंदर कांति लक्ष्मी त्याग जातीहै. जैसे वसंतऋतुकी मंजरी वसंतऋतुके गयेते विरस होजाती है. तैसे उनकी कांति लघु होजातीहै. जिस पुरुषने ऐसे निश्चय कियाहै कि, हमारा पालनेहारा दैव है, सो पुरुष ऐसाहै, जैसे कोई अपनी भुजाको सर्प जानके भय पायके दौरतेहैं, और जानते नहीं कि अपनी भुजा है तैसे अपनेपुरुषार्थको त्यागके दैवका आश्रय लेताहै. अरु भयको पाताहै.

पुरुषार्थ नाम इसकाहै कि, संतहूका संग अरु सतशास्त्रोंका विचार करके तिनके अनुसार विचरना अरु जो तिनको त्यागके अपनी इच्छाके अनुसार विचरतेहैं. सो सुखको नहीं पावेंगे. न सिद्धताको पावेंगे. अरु जो शास्त्रके अनुसार विचरतेहैं. सो यहां भी सुख पावेंगे. अरु आगेभी

सुख पावेंगे, तैसेई सिद्धताको पावेंगे, ताते संसाररूपी जालविषे नहीं गिरना, सो पुरुषार्थ है. संतजनहूके संग अरु सतशास्त्रके अर्थ हृदयरूपी पत्रपै लिखना, बोधरूपी कानी करनी अरु विचाररूपी स्याही करनी जब ऐसे पुरुषार्थ करि लिखैगा, तब संसाररूपी जालमें न गिरैगा.

हे रामजी! जैसे यह आदिनेति हुई है, जो पटहै सो पटही है, जो घटहै सो घटही है, घटहै. सो पट नहीं. और पट है सो घट नहीं. तैसे यहभी नेति हुई है-अपने पुरुषार्थ विना परमपदकी प्राप्ति नहीं होती.

हे रामजी! जो संतहूकी संगति करता है, अरु सतशास्त्रभी विचारता है. अरु उनके अर्थमें पुरुषार्थ नहीं करता तिसकारि सिद्धता प्राप्त नहीं होती. जैसे अमृतके निकटई बैठा होवे, अरु पान किये विना अमर नहीं होता. तैसे अभ्यास किये विना सिद्धता प्राप्त नहीं होती.

हे रामजी! अज्ञानी जीव अपना जन्म व्यर्थ खोवते हैं. जब बालक होते हैं, तब मूढ अवस्थामें लीन रहते हैं, अरु युवा अवस्थामें विकारहूको सेवते हैं, अरु जरामें जर्जरीभूत होते हैं, इसी प्रकार जीवना व्यर्थ खोवतेहैं, अरु जो अपना पुरुषार्थ त्याग करके दैवका आश्रय लेताहै, सो अपने हंता होतेहैं, सुखको नहीं पावेंगे. हे रामजी! जो पुरुष व्यवहारविषे अरु परमार्थविषे आलसी हुए हैं, अरु परमार्थको त्यागके मूढ होरहे हैं, सो दीन हुएहैं, मानो पशु हैं अरु दुःखको प्राप्त हुए हैं, यह मैंने विचार करके देखा है; ताते पुरुषार्थका आश्रय करो. सत संग अरु सत शास्त्ररूपी आदर्श करके, अपने गुण करके दोषको देखके तिनका त्याग करो. अरु शास्त्रका सिद्धांत जोहै तिसका अभ्यास करो. जब दृढ अभ्यास करोगे, तब शीघ्रही आनंदवान् होगे.

वाल्मीकि उवाच, जब इस प्रकार वशिष्ठजीने कहा, तब सायंकालका समय हुआ. सब स्नानके निमित्त उठके खडे भये और परस्पर नमस्कार करके अपने २ घरको गये बहुरि सूर्यकी किरनन साथ आय स्थित भये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे पुरुषार्थवर्णनो नाम पंचमः सर्गः॥५॥

षष्ठः सर्गः ६.

अथ परमपुरुषार्थवर्णनम्.

वशिष्ठ उवाच,हे रामजी! इसका जो पूर्वका किया पुरुषार्थ है, तिसका नाम दैव है, और दैव कोऊ नहीं. जब यह सत्संग अरु सतशास्त्रका विचार पुरुषार्थ करै तब पूर्वके संस्कारको जीत लेता है. जिस पुरुप इष्ट पानेका यह शास्त्रद्वारा यत्न करैगा, तिसको अश्यमेव अपने पुरुषार्थते पावेगा; अन्यथा कछु नहीं होती, न हुई है, न होवेगी. पूर्व जो कोऊ पाप किया होता है, तिसका फल जब दुःख पावता है, तब मूर्ख कहता है, कि हाय दैव हाय दैव, हाय कष्ट, हाय कष्ट.

हे रामजी! इसका जो पुरुषार्थ पूर्वका है, तिसका नाम दैव है, और दैव कोऊ नहीं और जो कोऊ दैव कल्पतेहैं, सो मूर्ख हैं. अरु जो पूर्वके जन्म सुकृत करके आया होता है, वही सुकृत सुख होयके देखाई देताहै. जो पूर्वका सुकृत बली होता है तो उसहीकी जय होती है. जो पूर्वका दुष्कृत बली होता है, अरु शुभका पुरुषार्थ करता है, सत्संग अरु सतशास्त्रहूका विचार श्रवण करता है,तो पूर्वके संस्कारको जीत लेता है. जैसे प्रथम:दिन पाप किया होवे, दूसरे दिन बडा पुण्य करै, तो पूर्वका पाप निवृत्त हो जाताहै, तैसे जब यहां दृढ पुरुषार्थ करै, तो पूर्वके संस्कारको जीत लेता है. ताते जो कछु सिद्ध होता है, सो इसको पुरुषार्थकरके सिद्ध होता है कि, एकत्र भाव कारि प्रयत्न करना, इसीका नाम पुरुषार्थ है. जिसका यत्न एकत्र भाव:होयके करेगा तिसको अवश्यमेव प्राप्त होवेगा; जो पुरुष अपर दैवको जानके अपना पुरुषार्थ त्याग बैठा है, सो दुःखको पावेगा; शांतिवान कबहूँ न होवेगा.

हे रामजी! मिथ्या दैवके अर्थको त्यागके तुम अपने पुरुषार्थका अंगीकार करो. जो संतजन अरु सतशास्त्रहूके वचन अरु युक्ति साथ, यत्न करके आत्मपदको अभ्यास करके प्राप्त होना, इसीका नाम पुरुषार्थ है. प्रकाश करके जैसे पदार्थहूका ज्ञान होता है, तैसे पुरुषार्थ कर आत्मपदकी प्राप्ति होती है. जो पूर्वके कियेसे बडा पापी होता है; अरु इह

दृढ पुरुषार्थ कियेते उसको जीत लेता है. जैसे बड़ा मेघ होता है, अरु तिसका पवन नाश करता है. अरु जैसे वर्ष दिनहूका क्षेत्र पक्का होता है, अरु बर्फ तिसका नाश कर देता है; तैसे पूर्वका संस्कार पुरुष प्रयत्न करके नाश होता है.

रामजी! श्रेष्ठ पुरुष सोई है, जाने सत्संग अरु सतशास्त्र द्वारा बुद्धिको तीक्ष्ण करके संसार समुद्र तरवेका पुरुषार्थ किया है. अरु जिनने सत्संग अरु सतशास्त्रद्वारा बुद्धि तीक्ष्ण नहीं करी, अरु पुरुषार्थको त्याग बैठे हैं, सो पुरुष नीचते नीच गतिको पावेंगे. अरु जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, सो अपने पुरुपार्थ करके परमानंद पदको पावैंगे जिसके पायेते बहुरि दुःख नहीं होता. अरु जो देखने कारि दीन होते हैं; अरु सत्संगति अरु सतशास्त्रके अनुसार पुरुपार्थ करते हैं, सो उत्तम पदवीको प्राप्त होते दृष्टि आवते हैं. हे रामजी! जिस पुरुषने पुरुष प्रयत्न किया है, तिसको सब संपदा आय प्राप्त होती है, अरु परमानंद कारि पूर्ण हो रहतेहैं. जैसे रत्नहूकारि समुद्र पूर्ण है, तैसे वह परमानंद करके पूर्ण हुए हैं. ताते जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, सो अपने पुरुषार्थ द्वारा संसारके बंधन ते निकस जाते हैं. जैसे केसरीसिंह अपने बलसों पिंजरते निकस जाता है, तैसे वह अपने पुरुषार्थ कारि संसार बंधनते निकस जाता है,

हे रामजी! यह पुरुष और कछु न करै तब यह करै कि, अपने वर्णाश्रमके अनुसार विचरै, अरु सार पुरुषार्थ करै; जो संतहू अरु शास्त्रहूका आश्रय होवे तिसके अनुसार पुरुषार्थ करे; तब सब बंधनते मुक्त होवेगा अरु जो अपने पुरुषार्थका त्याग किया है; किसी और दैवको मानके कहता है कि, वह मेरा कल्याण करैगा; सो जन्म मरणको प्राप्त होवेगा. हे रामजी! इस जीवको संसाररूपी विषूचिका रोग है, तिसको दूर करनेका उपाय मैं कहता हों. संत जन अरु सत्शास्त्रहूके अर्थविषे दृढ भावना करनी; जो कछु तिनहूते सुना है, तिसका वारंवार अभ्यास करना; और सब कल्पना त्यागके एकांत होयके तिसका चिंतन करना, तब इसको परमपदकी प्राप्ति होवेगी; अरु द्वैत भ्रम निवृत्त हो जावेगा. अद्वैतरूप पडा भासेगा; इसकाही नाम पुरुषार्थ है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे परमपुरुषार्थ वर्णनंनाम षष्ठःसर्गः॥ ६॥

सप्तमः सर्गः ७.

अथ पुरुषार्थोपमावर्णनम्.

वशिष्ठ उवाच, हे रामजी ! अन्य पुरुषार्थ करके इसको अध्यात्मक आदि ताप आय प्राप्त होते हैं; तिसकारि शांतिको नहीं पाता. तुम रोगी नहीं होना. अपने पुरुषार्थ द्वारा जन्म मरणके बंधनते मुक्त होवो और कोई दैव मुक्ति नहीं करनेका; अपने पुरुषार्थ द्वारा संसार बंधनते मुक्त होना है. जिस पुरुषने अपने पुरुषार्थका त्याग किया है, अरु किसी और दैवको मानि करि तिसमें परायण हुआ; तिसका धर्म, अर्थ, काम नष्ट हो जावेगा. अरु नीचते नीच गतिको प्राप्त होवेगा.

हे रामजी ! शुद्ध चैतन्य जो इसका अपना आपहै, अरु वास्तवरूप है तिसके आश्रय जो आदि चित्त संवेदन स्फूर्त्ति है; जो अहं मम संवेदन होयके फुरने लगती है, बहुरि इंद्रिय अहं स्फूर्त्ति है. जब यह स्फुर्ना संत अरु शास्त्रके अनुसार होवे, तब वह पुरुष परम शुद्धताको प्राप्त होता है अरु जो संत और शास्त्रके अनुसार न होवे,तब वासनाके अनुसार भाव अभावरूप जो भ्रम जाल है, तिसविषे परा घटीयंत्रकी नाई भटकता है, शांतिवान् कबहूँ नहीं होता.

हे रामजी ! जिस किसीको सिद्धता प्राप्त हुई है, सो अपने पुरुषार्थकर हुई है; बिन पुरुषार्थ सिद्धताको प्राप्त न होवेगा जब किसी पदार्थको ग्रहण करना होता है; तब भुजा पसारिये तो ग्रहण करना होता है; अरु जो किसी देशको प्राप्त होना होवे,सो जब चले तब जाय पहुँचिये; अन्यथा नहीं होता; ताते पुरुषार्थ विना सिद्ध कछु नहीं होता जो कोऊ कहता है, दैव करैगा सो होवेगा; सो मूर्ख है. हे रामजी ! और दैव कोऊ नहीं इस पुरुषार्थका नाम दैव है. यह दैव शब्द मूर्खहूका परचावा है; जो किसी कष्ट साथ दुःख पाया; तिसको कहते हैं, दैवका किया है सो और तो दैव कोऊ नहीं.

हे रामचंद्र ! जो अपना पुरुषार्थ त्यागके दैवके आश्रय होरहेगा, सो

 को प्राप्त न होवेगा; काहेते कि, अपने पुरुषार्थ विना सिद्धता

किसीको प्राप्ति नहीं होती. अरु बृहस्पतिने जो दृढ पुरुषार्थ किया है. तब सब देवताओंके राजा इंद्रका गुरु हुआ है. अरु शुक्रजी अपने पुरुषार्थ द्वारा सर्व दैत्योंका गुरु हुआ है; अरु अवर जो समान जीव हैं, तिन-विषे जिस पुरुषने प्रयत्न किया है. सो पुरुष उत्तम हुआहै. जिसको जाते सिद्धता प्राप्त भई है; सो अपने पुरुषार्थ कारि भई है; अरु जिस पुरुषने संत अरु शास्त्रनके अनुसार पुरुषार्थ नहीं किया, सो मेरे देखते देखते बडे राजा, अरु प्रजा. धनते और विभूतिते क्षीण हो गये हैं; अरु नरकहूविषे परे जलते हैं जिस करके कछु अर्थसिद्धि होवे तिसका नाम पुरुषार्थ है, अरु जिस करके अनर्थ सिद्धि होवे; तिसका नाम अपुरुषार्थ है.

हे रामजी ! इस पुरुषको कर्तव्य यही है. कि सतशास्त्र अरु संतहूका संगकारि बुद्धि तीक्ष्णकरै, अरु शुभगुणको पुष्ट करै, दया, धीरज, संतोष, वैराग्यके अभ्यास करके बुद्धि तीक्ष्णकरै. अरु तीक्ष्ण बुद्धि करके इनको पुष्टकरै. जैसे बडे तालमें मेघ पुष्ट होताहै, बहुरि वर्षा करके मेघ तालको पुष्ट करताहै. तैसे शुभ गुण करके बुद्धि पुष्ट होती है, अरु पुष्ट बुद्धि करि शुभगुण पुष्ट होते हैं.

हे रामजी ! जो बालक अवस्थाते लेकरि अभ्यास किया होता है; उसको शुद्धता प्राप्त होती ,अर्थ यह कि दृढ अभ्यास विना शुद्धता प्राप्त नहीं होती है. जो किसी देश अथवा तीर्थ, जाना होवे. तब मार्गविषे निरआलस होके चला जावे, तो जाय पहुंचेगा. अरु जब भोजन करैगा तब क्षुधा निवृत्त होवेगी, अन्यथा नहीं होवेगी. अरु जब मुखविषे जिह्वा शुद्ध होवेगी तब पाठ स्पष्ट होवेगा; गुंगासों पाठ नहीं होता ताते जो कछु कार्य सिद्ध होताहै, सो अपने पुरुषार्थ कर सिद्ध होताहै; तूष्णीं हो रहनेते कोई कार्य सिद्ध नहीं होता. अरु सबही गुरु बैठेहैं, इनहूते पूँछ देखो, आगे जो तेरी इच्छा हो सो कर. अरु जो मुझसों पूँछे तो सब शास्त्रका सिद्धांत कहता हों जिसकरि सिद्ध ताको प्राप्त होवेगा.

हे रामजी ! संत जोहैं. ज्ञानवानपुरुष, अरु सतशास्त्रजो है,ब्रह्मविद्या तिनके अनुसार संवेदन अरु मन अरु इंद्रियोंको विचारना होवे; अरु

इससे विरुद्ध होवे तिससे वर्ज्य रखना, तिसकरके मुझको संसारका राग द्वेष स्पर्श नहीं करैगा; सबसे निर्लेप रहैगा जैसे जलते कमल निर्लेप रहता है, तैसे तू निर्लेप रहैगा.

हे रामजी ! जिस पुरुषते शांति प्राप्तहोवे. तिसकी भली प्रकार सेवा करिये, काहेते कि, उसका बडा उपकार है; जो संसार समुद्रते निकासिलेताहै. हे रामजी ! संत जन भी वही हैं, अरु सतशास्त्रभी वही हैं; जिनके विचार करि अरु संगति करि संसारते चित्त उपरति होवे;मोक्षका उपाय वही है; ताते और सब कल्पनाको त्यागके अपने पुरुषार्थको अंगीकार करो, तब जन्म मरनका भय निवृत्त होजावे.

हे रामजी ! जब यह वांछा करताहै. अरु तिसके निमित्त दृढ पुरुषार्थ करताहै; तब अवश्यमेव तिसको पावे; अरु जो बडे तेज अरु विभूति करके सपन्न तुझको दृष्टि आते हैं, अरु सुनताहै; सो अपने पुरुषार्थ करिभये हैं. अरु जो महा निकृष्ट सर्प कीट आदिक तुझको दृष्टि आतेहैं, तिनने अपने पुरुषार्थका त्याग किया है; तब ऐसे हुए हैं.

हे रामजी ! अपने पुरुषार्थको आश्रय कर; नहीं तो सर्प कीटादिक नीच योनिको प्राप्त होवेगा. जिस पुरुषने अपना पुरुषार्थ त्यागाहै और किसी दैवका आश्रय धराहै, सो महामूर्खहै.काहेते कि,यह वार्त्ता व्यवहारमें भी प्रसिद्ध है कि,अपने उद्यम किये बिना किसी पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती तो परमार्थकी प्राप्ति कैसे होवे? ताते दैवको त्यागकरि संतजन अरु सतशास्त्रोंके अनुसार यत्न करो परमपद पानेके निमित्तजो दुःखनते मुक्त होवे. हे रामजी ! जो जनार्दन विष्णुजी हैं. सो अवतार धर कर दैत्यहूको मारता है; अरु अपर चेष्टा भी करता है, परंतु पापका स्पर्श उसको नहीं होता; काहेते जो अपने पुरुषार्थ करके अक्षय पदको प्राप्त हुआहै. तुम भी पुरुषार्थका आश्रय करो;अरु संसार समुद्रको तरिजावो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे पुरुषार्थोपमावर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८.
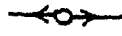
अथ परमपुरुषार्थवर्णनम्.

वशिष्ठ उवाच, हे रामजी ! यह जो दैव शब्द है सो मूर्खोंने कल्पा है, कि दैव हमारी रक्षा करैगा. हमको दैवका आकार कोऊ दृष्टि नहीं आवता, न कोऊ दैवका काल है, न दैव कछु करताही है. मूर्ख लोग दैव दैव परे कहते हैं. अपर दैव कोऊ नहीं. इसका पूर्वका कर्म ही दैव है.

हे रामजी ! जिन पुरुषोंने अपने पुरुषार्थका त्याग किया है; अरु दैवपरायण हुए हैं. कि, दैव हमारा कल्याण करैगा. सो मूर्ख हैं; काहेते जो अग्निविषे यह जाय पडे, अरु दैव इसको निकासि लेवे, तब जानिये कि, कोऊ दैव भी है, सो तो नहीं॰ अरु जो दैव करता है, तो यह स्नान, दान, भोजन, आदिहूँका त्याग करि तूष्णीं होय बैठे; आपही दैव कर जावेगा; सो भी इसके किये विना नहीं होता; ताते और दैव कोऊ नहीं अपना पुरुषार्थ ही कल्याणकर्त्ता है.

हे रामजी ! जो इसका किया कछु नहीं होता, अरु दैवही करनेहारा होता; तो शास्त्र अरु गुरुका उपदेशभी नहीं होता, सो सतशास्त्रके उपदेश करके अपने पुरुषार्थद्वारा इसको वांछित पदवी प्राप्त होती है; ताते और जो कोऊ दैव शब्द है, सो व्यर्थ है; इस भ्रमको त्याग करके संत अरु शास्त्रहूके अनुसार पुरुषार्थ करै तब दुःखनते मुक्त होवेगा. हे रामजी ! और दैव कोऊ नहीं; इसका पुरुषार्थ जो है, स्पंद, सोई दैव है.

हे रामजी ! जो कोऊ और दैव करनहारा होता तो जब इस शरीरको त्यागता है, अरु शरीर जब नाश होजाता है, क्रिया शरीरसों कछु नहीं होती काहेते जो चेष्टा करनेहारा त्याग जाता है तब दैव होता तो सभी शरीरसों चेष्टा करावता सो तो चेष्टा कछु नहीं होती, ताते जानना कि, दैव शब्द व्यर्थ है. हे रामजी ! पुरुषार्थकी वार्त्ता है, सो अज्ञानी जीवोंको भी प्रत्यक्ष है, कि अपने पुरुषार्थ विना कछु होता नहीं गोपाल भी जानता है जो मैं गौवोंको चराऊँ नहीं तो भूखाही रहूंगा, ताते और दैवके आश्रय बैठि नहीं रहता आपही चराय ले आवता है.

हे रामजी ! और दैवकी कल्पना भ्रम करके परे करते हैं, अपर दैव तो हमको कोऊ दृष्टि नहीं आवता. हस्त, पाद, शरीर, दैवका कोऊ दृष्टि नहीं आवता. अपने पुरुषार्थ कारि सिद्धता दृष्टि आती है. अरु जो कोऊ, आकारते रहित दैव कल्पिये तो नहीं बनता काहेते कि, निराकार अरु साकारका संयोग कैसे होवे ? हे रामजी ! और दैव कोऊ नहीं, अपना पुरुषार्थ दैवरूप है. जो राजा ऋद्धि, सिद्धि, संयुक्त भासता है, सो भी अपने पुरुषार्थ कारि हुए हैं.

हे रामजी ! यह जो विश्वामित्र हैं, याने दैव शब्द दूरहीते त्याग किया है; सो भी अपने पुरुषार्थ करके क्षत्रियते ब्राह्मण हुए हैं; अरु अपर जो बडे विभूतिवान हुए हैं, सो भी अपने पुरुषार्थ कारि दृष्टि आवतेहैं. हे रामजी ! जो दैव पढे विना पंडित करै तो जानिये दैवने किया, सो तो पढे विना पंडित कहूँ नहीं होता, अरु जो अज्ञानीते ज्ञानवान् होते हैं, सो भी अपने पुरुषार्थ कारि होते हैं, ताते अपर दैव कोऊ नहीं मिथ्या भ्रमको त्याग कारि, संतजन अरु सतशास्त्रहूके अनुसार संसार समुद्र तरनेका प्रयत्न करो, तेरे पुरुषार्थ विना अपर दैव कोऊ नहीं. जो अपर दैव होता तो बहुत बेर क्रिया बलभी. अपनी क्रियाको त्यागके सोइ रहता; आप दैवही पडा करैगा, सो ऐसे तो कोऊ नहीं करता; ताते अपने पुरुषार्थ विना कछु सिद्ध नहीं होता. अरु जो इसका किया कछु न होता तो पाप करनेहारे नरक न जाते, अरु पुण्य करनेहारे स्वर्ग न जाते; परन्तु पाप करनेहारे नरकमें जाते हैं, अरु पुण्य करनेहारे स्वर्गमें जाते हैं, ताते जो कछु प्राप्त होता है, सो अपने पुरुषार्थ कारि होताहै.

हे रामजी ! जो कोऊ अपर दैव करता है, ऐसा कहै तिसका शिर काटिये; अरु दैवके आश्रय जीवता रहै तो जानिये कि, कोऊ दैव है, सो तो जीवता कोऊ रहता नहीं, ताते दैव शब्दको मिथ्या भ्रम जानके संतजन अरु सतशास्त्रहूके अनुसार अपने पुरुषार्थ कारि आत्मपदविषे स्थित होवो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे परमपुरुषार्थवर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९,

अथ परमपुरुषार्थवर्णनम्.

रामउवाच ! हे भगवन्, सर्व धर्मवेत्ता ! तुम कहते हो कि, और दैव कोई नहीं, परन्तु ब्राह्मण भी दैव है ऐसा कहते हैं; और दैवका किया सब कछु होता है; अरु सुख दुःखका देनेहारा दैव है, यह लोकविषे प्रसिद्ध है.

वसिष्ठ उवाच, हे रामजी ! मैं तुझको ऐसे कहता हों, जो तेरा भ्रम निवृत्त होजावे; इसहीका कर्म किया हुआ है, शुभ अथवा अशुभ तिसका फल अवश्यमेव भोगना है. सो दैव कहो, पुरुषार्थ कहो. अपर दैव कोऊ नहीं, अरु कर्त्ता, क्रिया, कर्म आदिकहूविषे तो दैव कोऊ नहीं. और कोऊ दैवका स्थान नहीं, रूप नहीं, तो अपर दैव क्याकहिये. हे रामजी ! मूर्खहूके परचावने निमित्त दैव शब्द कहा है. जैसे आकाश शून्य है, तैसे दैवभी शून्य है.

रामउवाच, हे भगवन् ! सर्व धर्महूके वेत्ता ! तुम कहते हो कि, अपर दैव कोऊ नहीं, सो आकाशकी नाई शून्य है. सो तुम्हारे कहने परभी दैव सिद्ध होता है तुम कहते हो कि, इसके पुरुषार्थका नाम दैवहै, अरु जगत्‌विषे भी दैव शब्द प्रसिद्ध है.

वसिष्ठउवाच, हे रामजी ! मैं ऐसे तुझको कहता हों जिस करि दैव शब्द तेरे हृदयसों उठि जावे. अर्थ यह कि, शून्य होजावे, दैव. नाम अपने पुरुषार्थका है. अरु पुरुषार्थ नाम कर्मका अरु कर्मनाम वासनाका है, वासना मनते होती है. अरु मनरूपी पुरुष है. जिसकी वासना करता है, सोई इसको प्राप्त होता है. जो गांवको प्राप्ति होनेकी वासना करताहै, सो गांवको प्राप्त होता है; जो पत्तनकी वासना करताहै, सो पत्तनको प्राप्त होताहै; ताते अपर दैव कोऊ नहीं पूर्वका जो शुभ अथवा अशुभदृढ पुरुषार्थ किया तिसका परिणाम सुख दुःख अवश्य होता है, और तिसीकाही नाम दैव है.

हे रामजी ! तुम विचारकर देखो कि, अपना पुरुषार्थ कर्महूते भिन्न नहीं तो सुख दुःख देनहारा अरु लेनहारा दैव कोऊ नहीं हुआ क्योंकि

यह जो पापकी वासना करताहै. अरु शास्त्र विरुद्ध कर्म करता है, सो किसकरके करताहै ? पूर्वका जो इसका दृढ पुरुषार्थ कर्म. तिसकरके यह पाप करताहै; अरु जो पूर्वका पुण्यकर्म किया होता है तो यह शुभ मार्गविषे विचरता है.

रामउवाच, हे भगवन् ! जो पूर्वकी दृढ वासनाके अनुसार यह विचारता है कि, मैं क्या करूं ? मुझको पूर्वकी वासनाने दीन कियाहै; अब मुझको क्या कर्तव्य है ?

वसिष्ठउवाच, हे रामजी ! जो कुछ इसकी पूर्वकी वासना दृढ होरहीहै, तिसके अनुसार यह विचारणा होता है; अरु जो श्रेष्ठ मनुष्य है, सो अपने पुरुषार्थ करके पूर्वके मलीन संस्कारको शुद्ध करता है; तिसके मल दूर हो जाते हैं सतशास्त्र अरु ज्ञानहूके वचन अनुसार दृढ पुरुषार्थ करो, तब मलीन वासना दूर हो जाऐगी.

हे रामजी ! पूर्वके मलीन कर्म कैसे जानिये, अरु शुभ कर्म कैसे जानीये; सो श्रवण करिये जो चित्त विषयकी ओर धावे, अरु शास्त्र विरुद्ध मार्गकी ओर जावे अरु शुभकी ओर न धावे तो जानिये कि, पूर्वका कर्म कोई मलीन है; अरु जो संतजन अरु सतशास्त्रहूके अनुसार चेष्टाकरै, अरु संसार मार्गते विरक्त होवे, तब जानिये कि पूर्वका कर्म शुद्धहै, ताते, हे रामजी ! तुमको दोनों करके सिद्धताहै; जो पूर्वका संस्कार शुद्धहै, ताते तेरा चित्त शीघ्रही सत्संग अरु सतशास्त्रहूके वचनको ग्रहण करिलेवेगा, अरु शीघ्रही तुमको आत्मपदकी प्राप्ति होवेगी अरु जो तेरा चित्त इस शुभमार्गविषे स्थिर नहीं होसके, तो दृढपुरुषार्थ करि संसार समुद्रते पार होवो.

हे रामजी ! तू चेतनहै, जड तो नहीं अपने पुरुषार्थका आश्रय करहु मेरा भी यही आशीर्वाद है जो तुम्हारा चित्त शीघ्रही शुभ आचरणविषे स्थित होवे अरु ब्रह्मविद्याका जो सिद्धांत सारहै, तिसविषे स्थित होवे. हे रामजी ! श्रेष्ठ पुरुषभी वहीहै, जिसका पूर्वका संस्कार यद्यपि मलीनभी था, परंतु संत अरु सतशास्त्रके अनुसार दृढ पुरुषार्थ करके सिद्धताको प्राप्त भयाहै. अरु जो मूर्ख जीव है. तिसने पुरुषार्थ अपना

त्याग किया है. ताते संसारते मुक्त नहीं होते; पूर्वका जो कोऊ पाप कर्म किया होता है. तिसके मलीनता करके पापमें धावता है, अपना पुरुषार्थ त्यागनेते अंध हो जाता है; अरु विशेषकरि धावता है.

जो श्रेष्ठ पुरुषहै तिसको यह कर्तव्य है. प्रथम तो पाँचो इंद्रियाँ वश करनी; शास्त्र अनुसार तिनको वर्त्तावनी शुभ वासना दृढ़करनी; अशुभका त्याग करना, यद्यपि त्यागनी दोनों वासनाहैं. प्रथम शुभ वासनाको इकट्ठी करनी; अरु अशुभका त्याग करना जब शुद्ध वासनाकरके कषाय परिपक्क होवेंगे; अर्थ यह जो अतःकरण जब शुद्ध होवेगा, तिस हृदयविषे संत अरु शत शास्त्रका जो सिद्धांतहै, तिसका विचार उत्पन्न होवेगा, और ताते तुमको आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवेगी. तिस ज्ञानद्वारा आत्माका साक्षात्कार होवेगा; बहुरि क्रिया ज्ञानका भी त्याग हो जावेगा केवल शुद्ध अद्वैतरूप अपना आप शेष भासेगा. ताते हे रामजी! और सब कल्पनात्याग करि संतजन अरु सतशास्त्रहूके अनुसार पुरुषार्थ करो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे परमपुरुषार्थवर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०.

अथ वसिष्ठोत्पत्ति तथा वसिष्ठोपदेशागमनवर्णनम्.

वसिष्ठउवाच, हे रामजी! मेरे वचनको ग्रहण करो; सो वचन बांधव जैसे है, बांधव कहिये जो तेरे परम मित्र होवेंगे, अरु दुःखहूते तेरी रक्षा करेंगे. हे रामजी! यह जो मोक्ष उपाय तुमको कहता हों, तिसके अनुसार तू पुरुषार्थ करैगा, तब तेरा परम अर्थ सिद्ध होवेगा अरु यह चित्त जो संसारके भोगकी ओर धावता है तिस भोगरूपी खाडविषे चित्तको गिरने मत देवो भोगको निरस जानिके त्यागदेवो; वह त्याग तेरा परममित्र होवेगा. अरु त्याग भी ऐसा करो जो बहुरि भोगको ग्रहण न होय.

हे रामजी! यह मोक्ष उपाय संहिता है. चित्तको एकाग्र करके इसको श्रवण कर तिसकरि परमानंदकी प्राप्ति होवेगी प्रथम शम

अरु दमको धारि अर्थ यह जो संपूर्ण संसारकी वासनाका त्याग करहु, अरु उदारता करके तृप्त रहना, इसका नाम शम है. अरु दम अर्थ यह जो बाह्य इंद्रियको वश करना. जब इसको प्रथम धारेगा तब परमतत्त्वका विचार आय उत्पन्न होवेगा. तिस विचारते विवेकद्वारा परमपदकी प्राप्ति होवेगी जिस पदको पाय करि बहुरि दुःख कदाचित् न होवेगा; अविनाशी सुख तुझको आय प्राप्त होवेगा. ताते जो कछु मोक्ष उपाय यह संहिता है; तिसके अनुसार पुरुपार्थ करहु, तब आत्मपदको प्राप्त होवेगा पूर्व जो कछु ब्रह्माजीने हमको उपदेश किया है, सो मैं तुमको कहता हूं.

रामउवाच, हे मुनीश्वर ! तुमको जो ब्रह्माजीने उपदेश किया था, सो किस कारण किया था, अरु कैसे तुमने धारा सो कहो.

वसिष्ठ उवाच, हे रामचंद्र! शुद्ध चिदाकाश एक है अरु अनंतहै अविनाशी है, परमानंदरूप है, चिदानंद स्वरूप है, ब्रह्म है, तिसविषे संवेदन स्पंदरूप होवे है, सो विष्णु होइ कर स्थित भई है, सो विष्णुजी कैसाहै? जो स्पंद अरु निस्पंदविषे एक रस है. कदाचित् अन्यथा भावको नहीं प्राप्त हुआ जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, तैसे शुद्ध चिदाकाशते स्पंद करके विष्णु उत्पन्न हुआहै; तिस विष्णुजीके स्वर्णवत् किरण नाभिकमलते ब्रह्माजी प्रगट भया है.तिस ब्रह्माजीने ऋषि,मुनीश्वर सहित स्थावर जंगम प्रजा उत्पन्न करी, तिस मनोराज करि जगत्को उत्पन्न किया; तिस–जगत्के कोनेविषे जो जंबूद्वीप, भरतखंड है; तिसविषे मनुष्यको दुःखकरि आतुर देखि ब्रह्माजीको करुणा उपजी,जैसे पुत्रको देखि पिताको करुणा उपजती है.तब तिसके सुख निमित्त ब्रह्माजीने तप उत्पन्न किया कि सुखी होय; अरु आज्ञा करी कि, तप करो; तब तप करत भये; तिस तपकरि स्वर्गादिकहूको जाय प्राप्त होने लगे; तिन सुखहूँको भोगिकरि बहुरि गिरहिं तब दुःखी रहे. ऐसे ब्रह्माजी देखि करि सत्यवाक् धर्मको प्रतिपादन करत भये; तिनके सुखके निमित्त आज्ञा करी. तिस धर्मकी प्रतिपादन करी लोकहूको सुख प्राप्त होने लगे; तहाँ केतिक काल सुख भोग करि बहुरि गिरहिं, तब दुःखीके दुःखी रहे; बहुरि ब्रह्माजीने दान

तीर्थादिक पुण्यक्रिया उत्पन्न करके, उनको आज्ञा करी कि, इनके सेवने कारि तुम सुखी होहुगे जब वे जीव उनको सेवने लगे. तब बड़े पुण्य लोकहूको प्राप्त भये; अरु तिनके सुख भोगने लगे. बहुरि केतिक काल अपने कर्मके अनुसार भोग भोगि गिरे; तब तृष्णाकारि बहुत सुख दुःखके अनुभव करते भये; अरु दुःखकारि आतुर हुए, तब ब्रह्माजी देखत भया, कि ये जन्म अरु मरणके दुःख कारि महादीन होते हैं, ताते सोई उपाय करिये, जिसकारि उनका दुःख निवृत्ति होवे.

हे रामचंद्र ! ब्रह्माजी विचारत भया, कि इनका दुःख आत्मज्ञान विना निवृत्त नहीं होनेका; ताते आत्मज्ञानको उत्पन्न करिये, जो यह सुखी होवहिं, इस प्रकार विचार कारि आत्मतत्त्वका ध्यान करता भया आत्मतत्त्वके ध्यानते संकल्प किया; तिस ध्यानके करनेसे जो शुद्ध तत्त्वज्ञान है, तिसकी मूर्ति होकर मैं प्रगट भया. सो मैं कैसा हूँ ? ब्रह्माजी-के समान हूँ जैसे उनके हाथविषे कमंडलु है, तैसे मेरे हाथविषे कमंडलु है; जैसे उनके कंठविषे रुद्राक्षकी माला हैं, तैसे मेरे कंठमें भी रुद्राक्षकी माला है, जैसे उनके ऊपर मृगछाला है. तैसे मेरे ऊपर मृगछाला है; इस प्रकार ब्रह्माजीका अरु मेरा समान आकार है, अरु मेरा शुद्धज्ञानी स्वरूप है, मुझे जगत् कछु नहीं भासता; सुषुप्तिकी नाई जगत् मुझको भासता है, तब ब्रह्माजीने विचार किया कि, इसको मैं जीवनके कल्याण निमित्त उत्पन्न किया है; अरु यह तो शुद्धज्ञान स्वरूप है, अरु अज्ञान मार्गको उपदेश तब होवे, जब कछु प्रश्न उत्तर होवे, अरु तब मिथ्याका विचार होवे.

हे रामजी! जीवनके कल्याण निमित्त मुझको ब्रह्माजीने गोदमें बिठाया अरु शीशपै हाथ फेरा, तिस कारि मैं शीतल होगया. जैसे चंद्रमाकी किरणहू कारि शीतलता होती है तैसे मैं शीतल भया. तब ब्रह्माजी मुझको जैसे हंसहंसकर, यों कहा--हे पुत्र ! जीवनके कल्याण निमित्त एक मुहूर्त्त पर्यंत तुम अज्ञानको अंगीकार करहु. श्रेष्ठ पुरुष जो है सो औरहूके निमित्तभी अंगीकार करते आये हैं. जैसे चंद्रमा बहुत निर्मल है, परन्तु श्यामता को अंगीकार किया है तैसे तू भी एक मुहूर्त अज्ञानको अंगीकार कर.

हे रामजी ! इस प्रकार मुझको कहकर ब्रह्माजीने शाप दिया, "कि, तू अज्ञानी होवेगा" तब मैंने ब्रह्माजीकी आज्ञा मानि शापको अंगीकार किया. तब मेरा जो शुद्ध आत्मतत्त्व आपना आपथा, तिससे मैं अन्यकी नाईं होत भया, मेरी स्वभावसत्ता मुझको विस्मरण हो गई, अरु मेरा मन जागि आया; भाव, अभाव रूप जगत् मुझको भासने लगा. अरु आपको मैं वसिष्ठ अरु ब्रह्माजीका पुत्र यों जानत भया अरु नाना प्रकारके पदार्थ सहित जगत् जानत भया अरु तिनकी ओर चंचल होत भया; तब मैं संसार जालको दुःखरूप जानि करि ब्रह्माजीते पूछत भया. हे भगवन् ! यह संसार कैसे उत्पन्न भया अरु कैसे लीन होता है? हे रामजी ! जब इस प्रकार पिता ब्रह्माजीसों प्रश्न किया, तब भलीप्रकार मुझको उपदेश करत भया, तिसकरि मेरा अज्ञान नष्ट होगया. जैसे सूर्य उदय हुए, तम निवृत्त होजाता है, तैसे मेरा अज्ञान निवृत्त होगया; अरु मैं शुद्धताको प्राप्त भया. जैसे आदर्शको मार्जन करता है, अरु शुद्ध हो आवता है; तैसे मैं शुद्ध हुआ.

हे रामजी ! मैं ब्रह्माजीसे भी अधिक होत भया, तब मुझको परमेष्ठी ब्रह्माजीने आज्ञा करी-हेपुत्र ! जंबूद्वीप भरतखडमें जा, तुझको सृष्टिपर्यंत विषे अधिकार है तहाँ जाइकरि जीवनको उपदेश करहु; जिसको संसारके सुखकी इच्छा होवे, तिसको कर्ममार्गका उपदेश करना; तिसकरि स्वर्गादिक सुख भोगेंगे. अरु संसारते विरक्त होवें और जिनको आत्मपदकी इच्छा होवे, तिनको ज्ञान उपदेश करना; ताते तुम अब भुवलोकविषे जाहु. हे रामजी ! इस प्रकार मेरा उपदेश अरु उपजना हुआ है, अरु इस प्रकार मेरा आवना हुआ है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे वसिष्ठोत्पत्ति तथा वसिष्ठोपदेशागमनो नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११.

अथ वसिष्ठोपदेशवर्णनम्

वसिष्ठ उवाच, हे रामजी ! इसप्रकार पृथ्वीविषे मेरा आना भया. मैं कैसाहों ? जाको आत्मज्ञानकी वांछा होवे सो पूर्ण करिवेकेलियेब्रह्माजी

मुझको उत्पन्न करत भये. राम उवाच, हे मुनीश्वर! तिस ज्ञानकी उत्पत्तिते अनंतर जीवनकी शुद्धि कैसे भई? सो कहो.

वसिष्ठ उवाच, हे रामजी! जो शुद्ध आत्मतत्त्वहै, तिसका स्वभावरूप संवेदन स्फूर्त्तिहै, सो ब्रह्माजीरूप होकर स्थित भई है. जैसे समुद्र अपनी द्रवता करके तरंग रूप होता, तैसे ब्रह्माजी भयाहै. बहुरि संपूर्ण जगत्को उत्पन्न किया, अरु तीनों काल उत्पन्न किये, तब केता काल व्यतीतहुआ; अरु कलियुग आया, तिसकरि जीवहूकी बुद्धि मलीन होगई, अरु पापविषे विचरनेलगे, शास्त्र वेदकी आज्ञा माननेते रहगये. इस प्रकार धर्मकी मर्यादा छिपगई, अरु पाप प्रगट भया; जेती कछु राजधर्मकी मर्यादा थी, सो सब नष्ट होगई, अरु अपनी इच्छाके अनुसार जीव विचरने लगे, ताते कष्ट पावनेलगे. तिनको देखि करि ब्रह्माजीको करुणा उपजी तिस दयाको धारिकर भूलोकविषे मुझको भेजा अरु कहा. हे पुत्र! जायकरि तुम धर्मकी मर्यादा स्थापन करो, अरु जीवनको शुद्ध उपदेश करो जिसको भोगहूकी इच्छा होवे, तिसको कर्मकांडका उपदेश करना; और, जप, तप, स्नान, संध्या यज्ञादिकका उपदेश करना, अरु जो संसार विरक्त हुएहैं, अरु मुमुक्षुहैं, जिनको परमपद पानेकी इच्छाहै. तिनको ब्रह्मविद्याका उपदेश करना.

हे रामचंद्र! जिस प्रकार ब्रह्माजी मुझको आज्ञाकरि भूमिलोकविषे भेजते भये, तैसेई सनत्कुमार, नारदकोहू कहते भये, तब हम सब ऋषीश्वर इकट्ठे होकर विचारते भये कि, जगत्की मर्यादा किस प्रकार होवे, अरु जीव शुभमार्गविषे कैसे विचरहिं, तब हमने यह विचार किया कि, प्रथम राज्यहूका स्थापन करना जो जीव तिनकी आज्ञानुसार विचरहिं प्रथम दण्डकरता राजा स्थापन किया, सो कैसा राजा! जो बडा वीर्यवान्, अरु तेजवान्, बडा उदार आत्मा भया, तिस राजाहूको हम अध्यात्मिक विद्या उपदेशकरी; तिस करि परमपदको प्राप्त भये. जो परमानंदरूप अविनाशी पदहै, तिस ब्रह्मविद्याका उपदेश तिसको भया, तब सुखी भये. इसकारणते ब्रह्मविद्याका नाम राजविद्याहै. तब हमहूंने वेद, शास्त्र, श्रुति पुराणकरि धर्मकी मर्यादा स्थापनकरी, सो जप, तप, यज्ञ,

दान, स्नान, आदिक क्रियाको प्रगट कीनी. अरे जीव! तुम इनके सेवने करि सुखी होगे; तब सब फलको धारि करि तिनको सेवने लगे; तामें कोऊ विरला निरहंकारहृदय शुद्धताके निमित्त कर्म करतेथे.

हे रामजी! जो मूर्ख हैं सो कामनाके निमित्त मनमें फूलके कर्म करते हैं सो घटीयंत्रकी नाईं भटकते फिरते हैं सो कबहूँ ऊर्ध्व अरु कबहूँ नीचे आतेहैं और जो निष्काम करते हैं, तिसका हृदय शुद्ध होताहै, फिर सो ब्रह्मविद्याके अधिकारी होते हैं, ताके उपदेशद्वारा आत्मपदकी प्राप्ति होती है, इस प्रकार सो जीवन्मुक्त हुए हैं; कई राजा प्रसिद्ध हुए हैं; सो राज्यको परंपरा चलावते हमारे उपदेश द्वारा ज्ञानको प्राप्त भयेहैं, और राजा दशरथहू ज्ञानवान् भयाहै और तूभी इसी दशाको आयके प्राप्त हुआहै, सो तू सबसे श्रेष्ठ हुआहै जैसे तू विरक्तआत्मा हुआहै, तैसे आगेहू, स्वाभाविक विरक्त आत्मा भये हैं. सो स्वभावकर देह शुद्धि कर हुए हैं; इसी कारणते तू श्रेष्ठहै. जो कोऊ अनिष्ट दुःख प्राप्त होताहै, तिस कर विरक्तता उपजती है; सो तुझको नहीं भई तुझको सब इंद्रियके विषय विद्यमानहैं; तैसे होते तेरेको वैराग्य हुआहै. ताते तू श्रेष्ठहै.

हे रामजी! जो मशान आदिक कष्टके स्थान कहे; ता ठिकाने सबको वैराग्य उपजताहै. "जो कछु नहीं! मरजाना है!" तिनमें जो कोई श्रेष्ठ पुरुष होता है, सो वैराग्यको दृढ कर रखताहै और जो मूर्ख है सो फिर विषयमें आसक्त हो जाता है, ताते जिनको अकारण वैराग्य उपजताहै, सो श्रेष्ठहैं; हे रामजी! जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, सो अपने वैराग्य अरु अभ्यासके बल करके संसार बंधनते मुक्त होजाते हैं. जैसे हस्ति बंधनको तोरके अपने बलसों निकस जाता है, तब सुखी होता है; तैसे वैराग्य अभ्यासके बलकर बंधनते ज्ञानी मुक्त होता है.

हे रामजी! यह संसार बड़ा अनर्थरूपहै, जिस पुरुषने अपने पुरुषार्थ करके बंधनको नहीं तोरा, तिसको राग द्वेषरूपी अग्नि जरावत है; अरु जिन पुरुषोंने अपने पुरुषार्थ करके शास्त्र और गुरुको प्रमाण करके ज्ञान साधा है, सो उस पदको प्राप्त भये हैं. तिनको आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, ताप जलाय सकतानहीं; जैसे वर्षाकालमें बहुत वर्षाके होते

वनको दावानल जलाय नहीं सकता, तैसे ज्ञानीको अध्यात्मिक आदि ताप कष्टको नहीं देते.

हे रामजी! जिन श्रेष्ठ पुरुषोंने संसारको विरस जानकर त्याग किया है, तिनको संसारका पदार्थ गिराय नहीं सकता. अरु जो मूर्ख हैं तिनको गिराय देतेहैं, जैसे अंध्यारी चलत पवनके वेगसों वृक्ष गिर जातेहैं; परंतु कल्पवृक्ष गिरता नहीं. तैसे हे रामजी! श्रेष्ठ पुरुष वहीहै जिसको संसार विरस होगयाहै; सो केवल आत्मतत्त्वकी इच्छा करके तिसमें परायण भयेहैं, तिनकोही ब्रह्मविद्याका अधिकारहै, सोई उत्तम पुरुषहै. हे रामजी! तूभी तैसा उज्ज्वल पात्रहै, जैसे कोमल पृथ्वीमें बीज बोतेहैं, तैसे तुमको मैं उपदेश करता हों और जिसको भोगकी इच्छा है और संसारकी ओर यत्न करता है, सो पशुवत् है. श्रेष्ठपुरुष वही है जिसको संसार तरनेका पुरुपार्थ होता है.

हे रामजी! प्रश्न तिनके पास करिये, जिनको जानिये कि, मेरे प्रश्नका उत्तर देनेको समर्थहैंऔर जिसमें उत्तर देनेकी सामर्थ्यता दिखनेमें नहीं आवे, तिससों प्रश्न करना नहीं और उत्तर देनेको जो समर्थ देखिये, और तिसके वचनमें भावना न होय, तब भी तिससों प्रश्न न करिये काहेते कि, दंभकर प्रश्न करनेमें पाप होता है और गुरु भी उपदेश तिनको करता है, जो संसारते विरक्त होवे; अरु केवल आत्मपरायण होनेकी श्रद्धा होवे, अरु आस्तिक भाव होवे, ऐसा पात्र देखके उपदेश करे. हे रामजी! जो गुरु अरु शिष्य दोनों उत्तम होते हैं, तब वचन शोभते हैं. तुम उपदेशका शुद्ध पात्र हो, जेते कछु गुण शिष्यके शास्त्रमें वर्णन किये हैं; सो सब तेरेमें प्राप्त हैं और मैं उपदेश करनेमें समर्थ हों, ताते कार्य्य शीघ्र होवेगा.

हे रामजी! शुभ गुण साथ तेरी बुद्धि निर्मल होय रही है, मेरा जो सिद्धांतका सार वचनहै सो तेरे हृदयमें प्रवेश कर रहैगा. जैसे उज्ज्वल वस्त्रमें केशरका रंग शीघ्र चढ जाता है, तैसे तेरे निर्मल चित्तमें उपदेशका रंग लगैगा. जैसे सूर्यके उदयते सूर्यमुखी कमल खिलते हैं, तैसे तेरी बुद्धि शुभ गुण कर खिल आई है हे रामजी!जो कछु शास्त्रका

सिद्धांत आत्मतत्त्व मैं तुमको कहता हों, तिसमें तेरी बुद्धि शीघ्र प्रवेश करैगी जैसे निर्मल जलमें सूर्यकी कांति प्रवेश करती है. तैसे तेरी बुद्धि आत्मतत्त्वमें शुद्धता करके प्रवेश करैगी

हे रामजी ! मैं तुम्हारे आगे हाथ जोरके प्रार्थना करताहूँ, जो कछु मैं तुझको उपदेश करता हों तिसविषे तुम आस्तिक भावना करियो, कि इन वचनों कर मेरा कल्याण होवेगा, अरु जो तुमको धारना न होवे तो प्रश्न मतकरना. जो शिष्यको गुरुके वचनमें आस्तिक भावना होती है. तिसका शीघ्र कल्याण होता है, ताते मेरे वचनमें आस्तिक-भावना करियो, और जिसकर तू आत्मपदको प्राप्त होवेगा सो मैं कहता हों. प्रथम तो यह कर जिन अज्ञानी जीवनमें असत्य बुद्धिहै तिनका संग त्यागकर, अरु मोक्षद्वारके जो चार द्वारपाल हैं, तिनसों मित्र भावना कर. जब तिनसों मित्रभाव होयगा, तब वह मोक्षद्वारमें पहुँचाय देयँगे, तब आत्मदर्शन तुमको होवेगा.सो द्वारपालके नाम श्रवण कर शम, संतोष, विचार, सत्संग. यह चारों द्वारपाल हैं. जिस पुरुषने इनको वश किया है तिसको यह शीघ्र मोक्षरूपी द्वारके अंतर कर देते हैं. हे रामजी ! जो चारों वश न होवें, तो तीनोंको वश कर, अथवा दोको वश करले अथवा एकको वशकर, जो एक वश होवेगा. तो चारोई वश होजायँगे, इन चारोंका परस्पर स्नेह है, जहाँ एक आता है तहाँ चारों आयके रहते हैं.जो पुरुषने इनसे स्नेह किया है सो सुखी भया है, और जिनने इनका त्याग किया है, सो दुःखी हैं हे रामजी ! यद्यपि प्राणका त्याग होवे, तोभी एक साधन तो बल करके वश करना, एकके वश कियेते चारोंही वश होयँगे अरु तेरी बुद्धिमें शुभ गुणने आयके निवास किया है जैसे सूर्यमें सब प्रकाश आये हुए हैं तैसे संतने अरु शास्त्रने जो निर्मल गुण कहे हैं.सो सब तेरेमें प्राप्त हैं. हे रामजी! अब तू मेरे वचनका अधिकारी भयाहै, जैसे चन्द्रमाके उदयते चन्दमुखी कमल खिल आते हैं, तैसे शुभ गुण कर तेरी बुद्धि खिल आई है.

हे रामजी ! सत्संग अरु सतशास्त्र द्वारा बुद्धिको तीक्ष्ण कियेते शीघ्र आत्मतत्त्वमें प्रवेश होता है. ताते श्रेष्ठ पुरुष वही है जिसने संसारको

विरस जानके त्याग किया है. अरु संत अरु सतशास्त्रके वचन द्वारा आत्मपद पानेका यत्न करता है, सो अविनाशी पदको प्राप्त होता है और जो संसारका त्याग करके संसारकी ओर लगे हैं सो महामूर्ख जड हैं. जैसे जल शीतलता करके बर्फ होजाताहै, तैसे अज्ञानी मूर्खता करके आत्ममार्गते जड होइ रहे हैं, हे रामजी! अज्ञानीके हृदयरूपी बिलमें दुराशारूपी सर्प रहता है; सो कदाचित् शांति नहीं पाता; अरु आनंदसों कबहूँ प्रफुल्लित नहीं होता. अरु आशा करके सदा संकुचित रहता है. हे रामजी! आत्मपदके साक्षात्कारमें विशेष आवरण आशा हीहै जैसे सूर्यके आगे मेघका आवरण होताहै, तैसे आत्मतत्त्वके आगे दुराशाका आवरण है जब आशारूपी आवरण दूर होवे; तब आत्म पदका साक्षात्कार होवे. हे रामजी! आशा तब दूर होवे जब संतकी संगति अरु सतशास्त्रका विचार होवे.

हे रामजी! संसाररूपी एक बडा वृक्षहै; सो बोधरूपी खड्ग कर छेदा जाता है; जब सत्संग अरु सतशास्त्रकर तीक्ष्ण बुद्धि होवे, तब संसार, रूपी भ्रमका वृक्ष नष्ट होजाताहै. शुभ जब गुण होतेहैं, तब आत्मज्ञान आयके विराजताहै; जहाँ कमल होतेहैं. तहाँ भौंरे आयके स्थित होतेहैं तब शुभ गुणमें आत्मज्ञान रहताहै. हे रामजी! शुभ गुणरूप पवन कर जब इच्छारूपी मेघ निवृत्त होता है; तब आत्मरूपी चंद्रमाका साक्षात्कारहोताहै, जैसे चंद्रमाके उदयहुये आकाश शोभता है; तैसे आत्माके साक्षात्कार हुए तेरी बुद्धि खिलेगी.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे वसिष्ठोपदेशो नाम एकादशःसर्गः ११

द्वादशः सर्गः १२.

अथ तत्त्वज्ञमाहात्म्यवर्णनम्.

वसिष्ठ उवाच, हे रामजी! अब तू मेरे वचनका अधिकारीहै, काहेते कि, तप, वैराग्य, विचार, संतोष आदि जो शुभ गुण संत अरु शास्त्रने कहेहैं. सो सब तेरेमें प्राप्तहैं; ताते तू मेरे वचनको सुन, सो रज, तम-गुणको

त्यागकर शुद्धसात्त्विकवान् होकर सुन राजस जो विक्षेप अरु तामस जो लय निद्रामें होतहैं, सो दोऊका त्याग करके सुन जेते कछु जिज्ञासुके गुण शास्त्रमें वर्णन कियेहैं, सो सबकर तू संपन्नहै अरु जेते कछु गुरुके गुण शास्त्रमें वर्णन कियेहैं, सो सब मेरेमें हैं. जैसे रत्नकर समुद्र संपन्नहै तैसे मैं सम्पन्न हों ताते मेरे वचनका तू अधिकारीहै; और मूर्खको मेरे वचनका अधिकार नहीं. हे रामजी! जैसे चंद्रमाके उदयते चंद्रकांत मणि द्रवीभूत होती है, तब तामेंते अमृत सरता है; और पत्थरकी शिला है, तिनते द्रवीभूत नहीं होताहै; तैसे जो जिज्ञासु होताहै तिसको परमार्थ वचन लगता है, अरु अज्ञानीको नहीं लगता. हे रामजी! शिष्यतो शुद्ध पात्र होवे, अरु उपदेश करनेहारा ज्ञानवान् न होवे तो उसको आत्माका साक्षात्कार नहीं होवे, जैसे चद्रमुखी कमलनी निर्मलहोय, अरु चंद्रमा न होय तब प्रफुल्लित नहीं होती तैसे ताते तू मोक्षकापात्रहै. अरु मैं भी परम गुरुहों मेरे उपदेश कर तेरा अज्ञान नष्ट होयजावेगा.

मैं मोक्षका उपाय कहताहों, जब तिसको तू भले प्रकार बिचारेगा तब जेती कछु मलीन मनकी वृत्तिहैं, तिनका अभाव होजायगा; जैसे महाप्रलयके सूर्यकर मंदराचल पर्वत जलजाता है. ताते हे रामजी! वैराग्य अरु अभ्यासके बलकर इस मनको अपने विषे लीनकर शांता त्मा होवहु. तैंने बालकावस्थासों लेकर अभ्यास कर रक्खाहै, ताते मन उपशम पायके आत्मपदकोप्राप्त होवेगा. हे रामजी सत्संग अरु सतशास्त्र-द्वारा जोआत्मपद पायाहै, सो सुखी भयेहैं फिर तिनको दुःख नहीं लगता, काहेते जो दुःख देहाभिमानकर होताहै, सो देहका अभिमान तो उसने त्याग दिया है, तैसे जिसने देहका अभिमान त्यागदिया है अरु देहका आत्मता करके बहुरि ग्रहण नहीं करता ताते सुखी रहता है. हे रामजी! जिनने आत्मबल धरके विचारद्वारा आत्मपदको पाया है, सो अकृत्रिम आनंदकर सदा पूर्ण है, सब जगत् तिसको आनंदरूप भासताहै; अरु जो असम्यग्दर्शी हैं, तिनको जगत् अनर्थरूप भासता है, हे रामजी! संसरनरूप जो यह संसार सर्प है; सो अज्ञानीके हृदयमें दृढ होगया है सो योगरूपी गारुड़मंत्र- करके नष्ट होजाता है; अन्यथा नहीं होता,

और सर्पका विष है, सो एक जन्ममें मारता है; अरु संसरनरूप जो विष है. तिस करके अनेक जन्म पायके मरता चला आताहै, शांतिमान कदाचित् नहीं होता.

हे रामजी ! जिन पुरुषोंने सत्संग अरु सत् शास्त्रके वचनद्वारा आत्मपदको पायाहै, सो आनंदित भये हैं. अरु अंतर्बाहिर सब जगत् इनको आनंदरूप भासताहै. अरु सब क्रिया करनेमें आनंद विलास है. और जिनने सत्संग अरु सत्शास्त्रका विचार त्यागाहै, अरु संसारके सन्मुखहैं; तिसकर तिनको संसार अनर्थरूपहै सो ऐसा दुःख देताहै जैसे सर्पके दंशते दुःखी होते हैं, अरु शस्त्रकर घायल होते हैं, अरु अग्निमें पारेकी नाईं जलते हैं, अरु जेवरीके साथ बंध होते हैं. अरु अंध कूपमें गिरनेते कष्ट पाते हैं, तैसे संसारमें मनुष्य दुःख पाते हैं. हे रामजी ! जिन पुरुषोंने सत्संग अरु सतशास्त्र द्वारा आत्मपदको नहीं पाया, सो ऐसे कष्ट पाते हैं, जो नरकरूपी अग्निमें जरते हैं; अरुचिके विष पीते हैं. पाषाणकी वर्षाकर चूरण होते हैं कोल्हूमें पीस डारते हैं; अरु शस्त्र साथ कटते हैं; इत्यादिक जो बडे कष्टहैं सो तिनको प्राप्त होते हैं; हे रामजी ! ऐसा दुःख कोई नहीं ! जो इस जीवको प्राप्त नहीं होता; आत्माके प्रमादसों सब दुःख होते हैं. अरु जिन पदार्थोंको यह रमणीक जानते हैं, सो चक्रकी नाईं चंचल हैं; कबहूँ स्थिर नहीं रहते सतमार्गको त्यागकर जो इनकी इच्छा करते हैं सो महादुःखको प्राप्त होते हैं. अरु जिस पुरुषने संसारको विरस जाना है. और पुरुषार्थ की तरफ दृढ भयाहै, तिसको आत्मपदकी प्राप्ति होती है.

हे रामजी ! जिन पुरुषनको आत्मपदकी प्राप्ति भई है तिनको फिर दुःख नहीं होता; और तिनके दुःख जो नष्ट नहीं होते, तो ज्ञानके निमित्त पुरुषार्थ कोऊ नहीं करता. जो अज्ञानी हैं तिनको संसार दुःखरूपहै; अरु अज्ञानीको सब जगत् आनंदरूप है; अपने आपुई है; उनको भ्रम कोई नहीं रहता. हे रामजी ! ज्ञानवानमें नानाप्रकारकी चेष्टा भी दृष्टि आती है, तो भी सदा शांतरूप है; अरु आनंदरूप है, संसारका दुःख कोऊ नहीं स्पर्श कर सकता काहेते कि, तिनने ज्ञानरूपी कवच पहिरा है.

हे रामजी ! ज्ञानवानको भी दुःख होता है; बडे बडे ब्रह्मर्षि, अरु राजर्षि बहुत ज्ञानवान भये हैं, सोऊ दुःख को प्राप्त होते हैं, परन्तु दुःखसों आतुर नहीं होते, क्योंकि जो ज्ञानवानने ज्ञानका कवच पहिरा है, ताते कोऊ दुःख स्पर्श नहीं करता, सदा आनंदरूप हैं. जैसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, नाना प्रकारकी चेष्टा करते, और जीवको दृष्टि आवते हैं; अरु अतरते सदा शांतरूपहैं; इस प्रकार और भी जो ज्ञानवान उत्तम पुरुषहैं, सो शांतरूप हैं ताको कर्त्ताका अभिमान कोऊ नहीं फुरता. हे रामजी ! अज्ञानरूपी जो मेघ है, तिसकर मोहरूपी कुहाडाका वृक्ष है, सो ज्ञानरूपी शरत्काल करके नष्ट होजाता है; ताते स्वसत्ताको प्राप्त होवै हैं, अरु सदा आनंदकर पूर्ण है. हे रामजी ! जो कछु क्रिया करते हैं, सो तिनके विलासरूप है, अरु सब जगत् आनंदरूप है, अरु शरीररूपी रथ, इंद्रियरूपी अश्व और मनरूपी रस्सा, तासों अश्वको खैंचता है; अरु बुद्धिरूपी रथवाही है, तिस रथमें यह पुरुष बैठा है; अरु इद्रियरूपी अश्व इसको खोटे मार्गमें डारते हैं. अरु ज्ञानवानको इंद्रियरूपी अश्व हैं सो ऐसे हैं. कि जहाँ जाते हैं, तहाँ आनंदरूप हैं, किसी ठौरमें खेद नहीं पाता; सब क्रियामें उनको विलास है; सर्वदा आनंद कर तृप्त रहते हैं,

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे तत्त्वज्ञमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३.

अथ समवर्णनम्.

वसिष्ठ उवाच; हे रामजी ! इसी दृष्टिको आश्रयकर जो हृदय पुष्ट होवे, बहुरि संसारके इष्ट अनिष्ट कर्म कर चलायमान न होवे, जिस पुरुषको इस प्रकार आत्मपदकी प्राप्ति भई है, सो परम आनंदित भये हैं; शोकके कर्त्ता नहीं है, न याचना करता है, उपाधिते रहित परम शांत रूप अमृतकर पूर्ण होय रहे हैं; सो पुरुष नाना प्रकारकी चेष्टा करते दृष्टि आते हैं, परन्तु कछु नहीं करते, जहाँ उनके मनकी वृत्ति जातीहै, तहां आत्मसत्ता भासतीहै, सो आत्मानंदकर पूर्ण होय रहेहैं. जैसे पूर्णमासीका

चंद्रमा अमृतकरि पूर्ण रहताहै, तैसे ज्ञानवान परमानंद करि पूर्ण रहता है. हे रामजी! यह जो मैंने तुमको अमृतरूपी वृत्ति कही है, इसको जब जानैगा तब तुमको साक्षात्कार होवेगा. जब जिसको आत्मज्ञानकी प्राप्ति होती है. तब सब दुःख नष्ट होजाते हैं; जैसे चंद्रमाके मंडलमें अंधकार नहीं होता, तैसे ज्ञानीको अशांति कबहूँ नहीं होती और जो कछु क्रिया करते हैं, तिसमें दुःख पाते हैं; जैसे कंकरके वृक्षमें कंटककी उत्पत्ति होती है, तैसे अज्ञानीकी दुःखकी उत्पत्ति होती है.

हे रामजी! इस जीवको मूर्खता करके बडे दुःख प्राप्त होते हैं ऐसा अद्भुत दुःख और कोई नहीं, अरु किसी आपदा करके भी ऐसा दुःख नहीं होता; जैसा दुःख मूर्खता करके पाते हैं; ऐसा दुःख कोई नहीं, हे रामजी! हाथमें ठीकरा ले चंडालके घरकी भिक्षा ग्रहण करै, और आत्मतत्त्वकी जिज्ञासा होवे, तौभी औरऐश्वर्यते श्रेष्ठ है परंतु मूर्खतासों जीवना व्यर्थ है, तिस मूर्खताको दूर करनेको मोक्ष उपाय मैं कहता हौं.

हे रामजी! यह मोक्ष उपाय परम बोधका कारणहै; कछुक बुद्धि संस्कारी होवे, अर्थ यह जो पद पदार्थके जाननेहारी होवे, अरु मोक्ष उपाय शास्त्रको विचारे, तो तिसकी मूर्खता नष्ट हो जावेगी, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवेगी. जैसा आत्मबोधका कारण यह शास्त्र है, तैसा और शास्त्र त्रिलोकी विषे कोई नहीं. नाना प्रकारके दृष्टांत सहित इतिहास हैं, जामें तिसको जब विचारेगा तब परमानंदको प्राप्त होवेगा; अज्ञानरूपी तिमिर नाश करनेको ज्ञानरूपी शलाकाहै. जैसे अंधकारको सूर्य नाश करता है तेसे अज्ञानको यह शास्त्रका विचार नाश करता है. हे रामजी! जिस प्रकार इसका कल्याण होताहै सो श्रवणकर गुरु जो ज्ञान वानहै सो शास्त्रका उपदेश करै, अरु अपने अनुभवसों ज्ञान पावे. जब गुरु अरु शास्त्र और अपना अनुभव यह तीनों इकट्ठे मिलें तब इसका कल्याण होवे; जबलग अकृत्रिम आनंदको प्राप्त नहीं भया, तबलगि दृढ अभ्यास करै; तिस अकृत्रिम आनंदको प्राप्ति करनेहारा मैं गुरु हौं, जीवमात्रका मैं परममित्र हौं, ऐसा अपर कोऊ नहीं हमारी संगति जीवको आनंद प्राप्त करनहारी है, ताते जो कछु मैं कहता हौं सो तू कर.

हे रामजी ! यह जो संसारके भोग हैं सो क्षणमात्र हैं; ताते इनको त्याग करहु;और विषयके परिणाममें दुःख अनंत हैं; इनको दुःखरूप जानकर त्याग दे, अरु हम सारिखे ज्ञानवानका संग कर, और हमारे वचनके विचारते तेरे सब दुःख नष्ट हो जायँगे. हे रामजी ! जिस पुरुषने हमारे संग प्रीति करी है, तिसको हमने आनंद पदकी प्राप्ति कर दीनीहै, जिस आनंदते ब्रह्मादिक आनंदित भये हैं और ज्ञानवानहू आनंदित भये हैं सो निर्दुःख पदको प्राप्तभये हैं. हे रामजी ! श्रेष्ठ पुरुष सोई है; जाने हमारे साथ प्रीति कीनीहै. जिसने संत अरु शास्त्रके विचारद्वारा दृश्यको अदृश्य जाना है, सो निर्भय हुआहै आत्माका प्रमाद जीवको दीन करता है;अज्ञानीका हृदयरूपी कमल तबलग सकुचा रहता है, जबलग तृष्णारूपी रात्रि होती है; जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होताहै, तब तृष्णारूपी रात्रि नष्ट हो जाती है अरु हृदयरूपी कमल, आनंद कर खिलि आते हैं.

हे रामजी !जिस पुरुषने परमार्थ मार्गको त्यागा है,अरु संसारकाखान पान आदि भोगमें मग्न हुआहै,तिसको तू मेढुकजान, जैसे कीचमें मेढुक परा शब्द करता है तैसा वह पुरुष है. हे रामजी ! यह संसार बड़ा आपदाका समुद्रहै; तामें जो कोऊ श्रेष्ठ पुरुषहै. सो सत्संग अरु सतशास्त्रके विचार करके संसार समुद्र उल्लंघताहैअरु परमानंदको प्राप्त होताहै, आदि,अंत,मध्य रहित निर्भय पदको प्राप्त होताहै;अरु जो संसारसमुद्रके सन्मुख हुआहै, सो दुःखते दुःखरूप पदको प्राप्त भयाहै, कष्टते कष्ट, नरकते नरकको प्राप्त होताहै. जैसे विषको विष जान तिसका पान करताहै,सो विष उसको नाश करताहै,तैसे जो पुरुष संसार असत्यजानके बहुरि संसारकी ओर यत्न करताहै,सो मृत्युको प्राप्त होताहै. हे रामजी ! जो पुरुष आत्मपदको कल्याणरूप जानता है,अरु आत्मपदके अभ्यास का त्यागकर संसारकी ओर धावताहै,सो जैसे किसीके घरमें अग्नि लगी, अरु तृणका घर, अरु तृणकी शय्या करिके शयन करता है, सो जैसे नाशको पावे तैसे जन्म मृत्युको प्राप्त होवहिंगे. और संसारके पदार्थ देखकर राग दोषवान् हुए हैं, सो सुख बिजुरीका चमक जैसाहै, क्योंजो होयके मिटजावे, स्थिर नहीं रहै तैसा संसारका दुःख आगमापायी है.

हे रामजी ! यह संसार अविचार करके भासताहै अरु विचार कियेते लीन होजाता है; विचार कियेते लीन जो न होता; तो तुमको उपदेश करनेका काम नहीं था; सो तो विचार कियेते लीन होजाताहै इसी कारणते पुरुषार्थ चाहिये. जैसे हाथमें दीपक होवे. अरु अंधकूपमें गिरै सो मूर्खताहै तैसे संसारके भ्रमके निवारणहारे गुरु शास्त्र विद्यमानहैं; तिनकी शरण न आवै सो मूर्ख है. हे रामजी ! जो पुरुष संतकी संगति, अरु सतशास्त्रके विचार द्वारा आत्मपदको पायाहै, सो पुरुष केवल कैवल्य भावको प्राप्त भये; अर्थ यह जो शुद्ध चैतन्यको प्राप्त हुएहैं अरु संसार भ्रम तिनकानिवृत्त होगया है.

हे रामजी ! यह संसार मनके स्मरणते उपजाहै, सो इसका कल्याण बांधव करके नहीं होना है अरु धन करके भी नहीं होनाहै, प्रजा करके भी नहीं होना है, अरु तीर्थ अरु देवद्वार करकैभी नहीं होना है ऐश्वर्य करके भी नहीं होनाहै, एक मनके जीतनेते कल्याण होताहै.

हे रामजी ! जिसको ज्ञानी परमपद कहते हैं और जिसको रसायन कहते हैं; जिसके पायेते इसका नाश नहीं होय, अरु अमर होवे, अरु सब सुखकी पूर्णता होवे, इसका साधन समता अरु संतोषहै, इनकर ज्ञान उत्पन्न होता है सो आत्मज्ञान रूपी एक वृक्ष है, तिसका फूल शांति है अरु स्थिति इसका फल है; जिस पुरुषको यह ज्ञान प्राप्त हुआ है; सो शांतिमान हुआ है; सो निर्लेप रहताहै, तिसको संसारका भावाभावरूप स्पर्श नहीं होताहै. जैसे आकाशमें सूर्य उदय होताहै, तब जगतकी क्रिया होती है, फिर जब सो अदृश्य होता है, तब जगत्की क्रिया भी लीन हो जाती है; जैसे तिस क्रिया होने न होनेमें आकाश ज्यों कात्यों है, तैसे ज्ञानवान सदा निर्लेप है; तिस आत्मज्ञानकी उत्पत्तिका उपाय यह मेरा श्रेष्ठ शास्त्र है.

हे रामजी ! जो पुरुष इस मोक्षोपाय शास्त्रको श्रद्धा संयुक्त पढै अथवा सुनै तो थांई दिनसों मोक्षका भागी होय रहै; अरु मोक्षके चार द्वारपाल हैं सो मैं तुमको कहता हों; सो इनमेंते एकहू जब अपने वश होय तब मोक्षद्वारमें इसका शीघ्र प्रवेश होवे, सो चारोंका नाम कहों, सो सुन.

हे रामजी! यह सम इसकी परम विश्रामका कारण है, अरु यह संसार जो दीखता है; सो मरुथलकी नदीवत् है, इसको देखकर मूर्ख अज्ञानीरूपी जो मृग है सो सुखरूपी जल जानकर दौरता है, अरु शांतिको नहीं प्राप्त होता जब समरूपी मेघकी वर्षा होवे, तब सुखी होवे, हे रामजी! सम सो परम आनंद है, अरु सम सो परमपद है और शिवप्रद है, जिस पुरुषने सम पायाहै सो संसार समुद्रते पार हुआ है, तिसको शत्रु सो मित्र हो जाते हैं. हे रामजी! जब चन्द्रका उदय होता है तब अमृतकी कण फूटती है; अरु शीतलता होती है, तैसे जिसके हृदयमें समरूपी चन्द्रमा उदय होता है, तिसके सब ताप मिट जाते हैं अरु परम शांतिमान होते हैं,हे रामजी! यह सम देवताके अमृत समान है, वही परम अमृत है, सम करके इसको परम शोभा प्राप्त होती है जैसे पूर्णमासीके चन्द्रमाकी कांति परम उज्ज्वल होती है, तैसे समको पायके उसकी उज्ज्वल कांति होती है, जैसे विष्णुके दो हृदय हैं, सो एकतो अपने शरीरमें है; दूसरा संतमें है तैसे इसके दो हृदय होते हैं, एक अपने शरीरमें, दूसरा सम भी इनका हृदय होताहै; ऐसा आनंद अमृतके पान कियेतेहू नहीं होता, अरु लक्ष्मीकी प्राप्तिते भी नहीं होता, जो आनंद समवानको होता है.

हे रामजी! प्राणहूते भी प्रिय कोई होवै, सो अन्तर्द्धान कर फिर प्राप्त होवे, तैसा आनंद नहीं होवे ऐसा आनंद समवानको होवे. तिसके दर्शनकरभी आनंद प्राप्तहोता है. अरु ऐसा आनंद राजाको भी नहीं होता जो बाहरते श्रेष्ठ मंत्री होताहै, अरु अतरते सुंदर स्त्रियां होतीहैं, तिन करभी ऐसा आनंद नहीं होता जैसा आनन्द सम संपन्न पुरुषको होताहै. हे रामजी! जिस पुरुषको समकी प्राप्ति भईहै, सो वंदन करने योग्य है, अरु पूजने योग्यहै; जिसको समकी प्राप्ति भई है, तिसको उद्वेग नहीं आवे, अरु लोकहूते उद्वेग नहीं पावे, उसकी क्रिया अमृत समानहै, अरु वचन उसके अमृतकी नाईं मीठे हैं; जैसे चंद्रमाकी किरण शीतल अरु अमृतरूप है; सो सबको हृदयारामहै, तैसे संत जनके वचन हैं; जिस पुरुषको समकी प्राप्ति भई है,तिसकी संगति जब इस जीवको प्राप्त होती है, तब सब परम आनंदित होते हैं.

हे रामजी! जैसे बालक माताको पायके आनंदित होताहै, तैसे जिसको समकी प्राप्ति भई है तिसका संगकर जीव अधिक आनंदवान होता है. जैसे किसीका बांधवमुवा हुआ फिर आवे, और उसको आनंद प्राप्त होवै, तिसते भी अधिक आनंद समसम्पन्न पुरुषको पायके होता है. हे रामजी! ऐसा आनंद चक्रवर्ती राज्यके पायेते भी तिसको नहीं होता. अरु त्रिलोकीका राज्य पायेते भी नहीं होता, जिसको समकी प्राप्ति भई है तिसके शत्रुभी मित्र होजातेहैं तिसकर कछु भयभीत नहीं होता अरु सर्पका भय भी तिसको नहीं रहता; सिंहका भय भी तिसको नहीं रहता औरहू किसीका भय नहीं रहता; सदा निर्भय शांतरूप रहता है; हे रामजी! जो कोऊ कष्ट आय प्राप्त होवे और कालकी अग्नि आय लगै, तौ भी सो चलायमान नहीं होता, सदा शांतरूप रहते हैं; जैसे शीतल चाँदनी चन्द्रमामें स्थित है, तैसे जो कछु शुभ गुण अरु सम्पदा हैं. सो सब समवानके हृदयमें आय स्थित होते हैं.

हे रामजी! जो पुरुष अध्यात्मिकादि तापकर जलताहै, तिसको हृदयमें समकी प्राप्ति होवे, तब ताप मिट जाते हैं. जैसे तप्त पृथ्वी वर्षा करके शीतल हो जाती है, तैसे उसका हृदय शीतल हो जाता है. जिसको! समकी प्राप्तिभई है, सो सब क्रियामें आनंदरूप है. तिसको दुःख कोऊ नहीं स्पर्श करता; जैसे वज्र शिलाको बाण वेध नहीं सकता, तैसे जिस पुरुषने समरूपी कवच पहिरा है, उसको अध्यात्मिकादि ताप वेध नहीं सकता; वह सर्वदा शीतलरूप रहता है.

हे रामजी! तपस्वी, पंडित, याज्ञिक, धनाढ्य, सो, पूजा, मान करने योग्य हैं, परंतु जिसको समकी प्राप्ति भई है सो सबसे उत्तम है. सो सबको पूजने योग्य है; उसके मनकी वृत्ति आत्मतत्त्वको ग्रहण करती हैं, अरु सब क्रियामें सोभत है. जिस पुरुषको शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह इंद्रियके विषय इष्ट अनिष्टमें राग द्वेष नहीं होता, तिसको शांतात्मा कहते हैं. हे रामजी! जो संसारके रमणीय पदार्थमें बध्यमान नहीं होता, अरु आत्मानंद कर पूर्ण है, तिसको शांतिमान कहते हैं, वाको संसारके शुभ अशुभ कर मलीनपना नहीं लगता; सदा निर्लेप

रहता है. जैसे आकाश सब पदार्थते निर्लेप है, तैसे शांतिमान सदा निर्लेप रहता है. हे रामजी ! ऐसा जो पुरुष है सो इष्ट विषयकी प्राप्तिमें हर्षवान होते नहीं, अरु अनिष्ट विषयकी प्राप्तिमें शोकवान होते नहीं अरु अंतरते सदा शांत रहते हैं; उसको कोऊ दुःख स्पर्श नहीं करता; अपने आपमें सदा परमानंदरूप रहताहै; जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नष्ट हो जाता है; तैसे शांतिके पाये सर्व दुःख नष्ट हो जाता है; सदा निर्विकार रहते हैं.

रामजी ! सो पुरुष सब चेष्टा करते दृष्टि आते हैं, परंतु सदा निर्गुणरूप हैं, कोऊ क्रिया उनको स्पर्श नहीं करती. जैसे जलमें कमल निर्लेप रहता है, तैसे शांतिवान सदा निर्लेप रहता है. हे रामजी ! जो पुरुष बडे राज सम्पदाको पायकर अरु बडी आपदाको पायकर ज्योंका त्यों अलग रहता है, सो शांतिमान कहिये. हे रामजी ! जो पुरुष शांतिते रहित है, तिसका चित्त क्षण क्षण राग द्वेष कर तपता है अरु जिसको शांतिकी प्राप्ति भई है, सो अंतर बाहिर शीतल है, अरु सदा एकरस है जैसे हिमालय सदा शीतल रहता है, तैसे वह सदा शीतल रहता है. वाके मुखकी कांति बहुत सुंदर हो जाती है, जैसे निष्कलंक चंद्रमा होवे तैसे शान्तिमान पुरुष निष्कलंक रहता है. हे रामजी ! जिनको शांति प्राप्त भई है, सो परम आनंदित हुए हैं, परम लाभ तिनको प्राप्त होता है. ज्ञानी इसीको परमपद कहते हैं जिसको पुरुषार्थ करना है, तिसको शांतिकी प्राप्ति करनी चाहिये. हे रामजी ! जैसे मैंने कहा है, तिस क्रम करके शांतिका ग्रहण करो, तब संसार समुद्रके पार पहुँचोगे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे समनिरूपणं नाम त्रयोदशःसर्गः १३

चतुर्दशः सर्गः १४.

अथ विचारवर्णनम्.

वसिष्ठउवाच, हे रामजी ! अब विचारका निरूपण सुन जब हृदय शुद्ध होताहै, तब विचार होताहै अरु शास्त्रार्थ विचारद्वारा बुद्धि तीक्ष्ण होतीहै

हे रामजी ! अज्ञानरूपी जो वन है, तिसमें आपदारूपी बेलिकी उत्पत्ति होती है. तिसको विचाररूपी खड्ग करके काटैगा; तब शांत आत्मा होवेगा, अरु मोहरूपी हस्ती है, सोजीवका हृदयकमलका खंड खंड कर डारता है अभिप्राय यह जो इष्ट अनिष्ट पदार्थमें राग द्वेषकर छेदा जाता नहीं; जब विचार रूपी सिंह प्रगटे तब मोहरूपी हस्तीका नाश करै; फिर शांतात्मा होवे.

हे रामजी ! जिसको कछु सिद्धता प्राप्त हुई है सो विचार अरु पुरुषार्थ कर भई है; जो राजा होता है, सो प्रथम विचार कर पुरुषार्थ करता है; तिसकर राज्यको प्राप्त होता है. बल, बुद्धि अरु तेज चतुर्थ जो पदार्थका आगमन, अरु पंचम पदार्थकी प्राप्ति होती है, सो पाँचोकी प्राप्ति विचारकर होतीहै. अर्थ यह जो इंद्रियोंका जीतना; अरु बुद्धि सो आत्मा व्यापिनी, अरु तेज पदार्थका आगमन; इनकी प्राप्ति विचारसों होती है. हे रामजी ! जिस पुरुषने विचारका आश्रय लिया है, सो विचारकी दृढता करके जिसकी वांछा करते हैं, तिसको पावते हैं; ताते विचार इसका परममित्र है. जो विचारवान् पुरुष है, सो आपदामें मग्न नहीं होता; जैसे तुंबी चलमें डुबत नहीं, तैसे वह आपदामें डुबत नहीं. हे रामजी! वह विचारसंयुक्त जो करताहै, देताहै, लेताहै, सो सब क्रिया सिद्धताका कारणरूप होतीहै. धर्म, अर्थ, काम मोक्ष विचारकी दृढता करके सिद्धहोतीहैं; विचाररूपी कल्पवृक्षहै, तिसमें जिसका, अभ्यास होता है सोई पदार्थकी सिद्धिको पाता है.

हे रामजी ! शुद्ध ब्रह्मका विचार ग्रहणकर, आत्मज्ञानको प्राप्त होहु; जैसे दीपकसोंकर पदार्थका ज्ञान होता है, तैसे पुरुष विचारसों कर सत्य असत्यको जानता है. असत्यको त्यागकर सत्यकी ओर यत्न कियाहै, तिसको विचारवान् कहते हैं. हे रामजी ! संसाररूपी समुद्रविषे आपदा रूपी तरंग चलतेहैं, जो विचारवान् पुरुष है, सो संसारके भाव अभावमें कष्टवान् नहीं होताहै. जो कछु विचार संयुक्त क्रिया होतीहै. तिसका परिणाम सुखहै. जो विचार विना चेष्टा होतीहै. तिसकर दुःख प्राप्त होताहै. हे रामजी ! अविचार रूपी कंटक वृक्षहै, तिसते दुःखरूपी कंटक पड़े

उत्पन्न होतेहैं; अरु अविचाररूपी रात्रिहै तिसमें तृष्णारूपी पिशाचनी आय विचरतीहै. जब विचाररूपी सूर्य उदय होताहै तब अविचाररूपी रात्रि अरु तृष्णारूपी पिशाचनी नष्ट होजाती है.

हे रामजी ! हमारा यही आशीर्वाद है कि, तुम्हारे हृदयसों अविचार रूपी रात्रि नष्टहोहु. विचाररूपी सूर्यकरके अविचारित संसार दुःखका नाश होता है; जैसे बालक अविचार करके अपनी परछैयाको बैताल कल्पके भयको पाता है, अरु विचार कियेते भय नष्ट होजाता है; तैसे अविचार करके संसार दुःखको देताहै, और सतशास्त्रकीयुक्तिकर विचार कियेते संसारभय नष्ट होजाताहै. हे रामजी ! जहाँ विचारहै; तहाँ दुःख नहीं है, जैसे जहाँ प्रकाश होता है तहाँ अंधकार नहीं रहता है, जहाँ प्रकाश नहीं तहाँ अंधकार रहता है तैसे जहाँ विचार है, तहाँ ससारभय नहीं है, अरु जहाँ विचार नहीं, तहाँसंसार भय रहता है. अरु जहाँ आत्म विचार होता है, तहाँ सुखको देनेहारे शुभगुण आयस्थित होते हैं जैसे मानससरोवरमें कमलकी उत्पत्तिहोतीहै, तैसे विचारमें शुभगुणकी उत्पत्ति होती है. जहाँ विचार नहीं तहाँ दुःखका आगमन होता है.

हे रामजी ! जो कछु अविचारकर क्रिया करते हैं, सो दुःखका कारण होता है. जैसे चूहा बिलको खोदके मृत्तिका निकासता है. सो जहाँ इकट्ठी होती हैं, तहाँ बेलिकी उत्पत्ति होती है, तैसे अविचार कर यह पुरुष मृत्तिकारूपी पापक्रियाको इकट्ठी करताहै तिसते आपदारूपी बेलि उत्पन्न होतीहै, अरु अविचाररूपी घुनका खाया सूखा वृक्ष है, तिसको सुखरूपी फल चाहते हैं, तेऊ नहीं निकसते हैं सो अविचार किसका नाम है, जिस करके शुभक्रिया न होवे, अरु जिसकर शास्त्रानुसार क्रिया न होवे, तिसका नाम अविचार है.

हे रामजी ! विवेकरूपी राजाहै, अरु विचाररूपी प्रजाहै जहाँ विवेक रूपी राजा आता है, तहाँ विचाररूपी प्रजा तिनके साथ फिरती है अरु जहाँ विचाररूपी प्रजा आतीहै, तहाँ विवेकरूपी राजाभी आताहै जो पुरुष विचार करके संपन्न है, सो पूजने योग्य है तिसको सब कोऊ नमस्कार करते हैं, जैसे द्वितीयाके चन्द्रमाको सब नमस्कार करते हैं, तैसे विचार-

वान्को सब नमस्कार करते हैं हे रामजी ! हमारे देखत देखत अल्प-बुद्धिहू विचारकी दृढताते मोक्षपदको प्राप्त भये हैं, ताते विचार सबका परममित्र है. विचारवाला पुरुष अंतर बाहिर शीतल रहते हैं; जैसे हिमालय पर्वत अंतर बाहिर शीतल रहता है, तैसे वह भी शीतल रहता है. देख ! विचार करके ऐसे पदको प्राप्त होता है. जो पद नित्य है, अरु स्वच्छ है, अनंत है, परमानंदरूप है, तिसको पायकर तिसके त्यागकी इच्छा होती नहीं औरके ग्रहणकी इच्छा नहीं होती है, उनको इष्ट अनिष्ट विषे सब समान है, जैसे तरंगके होनेमें अरु लीन होनेमें समुद्र समान रहता है, तैसे विवेकी पुरुषको इष्ट अनिष्ट विषे समता रहती है, अरु संसारभ्रम मिट जाता है; आधाराधेयते रहित केवल अद्वैत तत्त्व उसको प्राप्त होता है.

हे रामजी ! यह जगत् अपने मनके मोहते उपजता है, अरु अविचार कर दुःखदायी दीखता है, जैसे अविचार करके बालकको वैताल भासता है, तैसे इसको जगत् भासता है, जब ब्रह्म विचारकी प्राप्ति होवे तब जगत्भ्रम नष्ट हो जावे. हे रामजी ! जिसके हृदयमें विचार होता है, तहाँ समताकी उत्पत्ति होती है. जैसे बीजते अंकुर निकल आता है, तैसे विचारते समता हो आती है, अरु विचारवान पुरुष जिसकी ओर देखता है, तिस ओर आनंद दृष्टि आता है, दुःख कोऊ नहीं भासता है जैसे सूर्यको अंधकार दृष्टि नहीं आता है, तैसे विचारवानको दुःख दृष्टिमें नहीं आता, जहाँ अविचार है तहाँ दुःख है, जहाँ विचार है तहाँ सुख है, जैसे अंधकारके अभाव हुए बैतालके भयका अभाव होजाता है तैसे विचार कियेते दुःखका अभाव हो जाता है.

हे रामजी ! संसाररूपी दीर्घ रोग है; तिसका नाश करनेका विचार बडा औषध है. जिसको विचारकी प्राप्ति भई है, तिसके मुखकी कांति उज्वल हो जाती है. जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाकी उज्वल कांति होती है. तैसी विचारवानके मुखकी उज्वल कांति होती है. हे रामजी ! विचार करके इसको परमपदकी प्राप्ति होती है, जिस करि अर्थसिद्धि होवे तिसका नाम विचार है. अरु जिस करि अनर्थ सिद्धि होवे तिसका

नाम अविचार है अविचाररूपी मदिरा है, जो इसका पान करता है सो उन्मत्त हो जाता है; तिसते शुभ विचार कोऊ नहीं हो आवता शास्त्रके अनुसार जो कछु क्रिया है, सो ताते नहीं होती, ताते अविचार कारि अर्थसिद्धि नहीं होती.

हे रामजी ! इच्छारूपी रोग है, सो विचाररूपी औषध करके निवृत्त होता है. जिस पुरुषने विचार द्वारा परमार्थ सत्ताका आश्रय लिया है, सो परम शांत होजाता है. अरु हेय उपादेय बुद्धि तिसकी नहीं रहती सब दृश्यको साक्षीभूत होकर देखता है; अरु संसारके भाव अभावविषे ज्योंका त्यों रहता है; अरु उदय अस्तते रहित निःसंगरूप है. जैसे समुद्र जलकारि पूर्ण है तैसे विचारवान आत्मतत्त्व कारि पूर्ण है. जैसे अंधा कूपविषे परा हुआ हस्तके बल कारि निकसता है; तैसे संसाररूपी अंधकूपमें गिरा हुआ; विचारके आश्रय होकर विचारवान पुरुष; निकसनेको समर्थ होताहै.

हे रामजी ! राजाओंको जो कोऊ कष्ट आय प्राप्त होता है, तब वह विचार करके यत्न करते हैं; तब कष्ट निवृत्त हो जाता है; ताते; तू विचार कर देखकि किसीको कष्ट प्राप्त होता है; सो विचारते मिटता है.तुम भी विचारका आश्रय करके सिद्धिको प्राप्त होहु, सो विचार इस कर प्राप्त होता है, जो वेद अरु वेदांतके सिद्धांतको श्रवण कर पाठकर भले प्रकार विचारेगा. तब विचारकी दृढता कर आत्मतत्त्वको प्राप्त होवेगा. जैसे प्रकाश कर पदार्थका ज्ञान होता है, तैसे गुरु अरु शास्त्रके वचन कर तत्त्वज्ञान होता है, जैसे प्रकाशमें अंधको पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती हैं; तैसे गुरु अरु शास्त्रसों जो विचारशून्य होवे तिसको आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती. हे रामजी ! जो विचाररूपी नेत्रकर संपन्न हैं, सोई देखते हैं; अरु विचाररूपी नेत्रते जो रहित हैं सो अंध है.

हे रामजी ! ऐसा विचार कर कि, मैं कौनहूं, अरु यह जगत् कौनहै; अरु इसकी उत्पत्ति कैसी हुई है,अरु लीन कैसे होता है, इस प्रकार संत अरु शास्त्रके अनुसार विचार कर. सत्यको सत्य जान, अरु असत्यको असत्य जान. जिसको असत्य जाना है, तिसका त्याग कर, अरु सत्यमें

स्थित होय इसीका नाम विचार है, इस विचार कर आत्मपदकी प्राप्ति होती है हे रामजी ! विचाररूपी दिव्यदृष्टि जिसको प्राप्त भई है, तिसको सब पदार्थका ज्ञान होता है, विचारसों आत्मपदकी प्राप्ति होती है, तिसको पायेते परिपूर्ण होता है फिर शुभ अशुभ संसारमें चलायमान नहीं होता, ज्योंका त्यों रहता है. जब लग प्रारब्ध वेग होताहै, तबलग शरीरकी चेष्टा होती है, जब लग अपनी इच्छा होवे, तब लग शरीरकी चेष्टा करै, बहुरि शरीरको त्याग कर केवल शुद्ध रूप होजाता है, ताते.

हे रामजी ! ब्रह्मविचारको आश्रय कर, संसार समुद्रको तर जा. जो कोऊ रोगी होता है, सो एता रुदन नहीं करता, जेता रुदन विचार रहित पुरुष करता है, जिसको कष्ट प्राप्त होताहै, सो भी एता रुदन नहीं करता. हे रामजी ! जो पुरुष विचारते शून्यहै तिसको सब आपदा आय प्राप्त होतीहैं, जैसे सब नदी स्वभावसों समुद्रमें आय प्रवेश करती हैं, तैसे अविचारमें सब आपदा आय प्रवेश करती हैं. हे रामजी कीचका कीट होना सो भला है, अरु गर्त्तका कंटक होना सो भी भलाहै; अरु आंधरे बिलमें सर्प होना सो भलाहै, परंतु विचारते रहित होना सो भलानहींजो पुरुष विचारते रहितहै, अरु भोगमें दौरता है, सो श्वानहै.

हेरामजी ! विचारते रहित पुरुष बडे कष्टको पाताहै ताते एक क्षणहू विचारते रहित नहीं रहना. विचारसों दृढ होकर निर्भय रहना; किमैं कौन हों; अरु दृश्य क्या है; ऐसा विचार करके सत्यरूप आत्माको ज्ञानकर दृश्यका त्याग करना. हे रामजी ! जो पुरुष विचारवान् है; सो संसार भोगमें नहीं गिर जाता; अरु सत्यमें स्थित होताहै; विचार जब स्थिर होता है तब तिसते तत्त्वज्ञान होता है, तब तत्त्वज्ञानते विश्राम होता है; विश्रामते चित्तका उपशम होताहै अरु चित्तके उपदेशमते सब दुःख नाश होते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे विचारनिरूपणो नाम चतुर्दशः सर्गः॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः १५.

अथ संतोषवर्णनम्.

वशिष्ठ उवाच, हे अविचार शत्रुके नाश कर्त्ता रामजी! जिस पुरुषको संतोष प्राप्त भया है; सो परम आनंदित हुआ है अरु त्रिलोकीका ऐश्वर्य उसको तृणकी नाईं तुच्छ भासता है. हे रामजी ! जो आनंद अमृतपान कियेते नहीं होता; और जो आनंद त्रिलोकीके राज्यकर नहीं होता, तैसा आनंद संतोषवानको होता है. हे रामजी ! इच्छारूपी रात्रि है, अरु सो हृदयरूपी कमलको सकुचाय देती है; और जब संतोषरूपी सूर्य उदय होता है, तब इच्छारूपी रात्रिका अभाव हो जाता है. जैसे क्षीर समुद्र उज्ज्वलता करके शोभता है, तैसे संतोषवानकी कांति सुशोभितहोतीहै.

हे रामजी ! त्रिलोकीके राजाकी इच्छा निवृत्त न भई, तब सो दरिद्रीहै, अरु जो निर्धनहै और संतोषवानहै, सो सबका ईश्वरहै. संतोष तिसकाई नाम है, श्रवण करि जो अप्राप्त वस्तुकी इच्छा न करै, अरुप्राप्त होइ इष्ट अनिष्टमें राग द्वेष न धरै, इसका नाम संतोषहै; संतोष सोई परमपद है. संतोषवान पुरुष सदा आनंदरूपहै; अरु आत्मस्थितिसों तृप्त हुआहै तिसको और इच्छा कछु नहीं स्फुरती. अरु संतुष्टता कर तिसका हृदय प्रफुल्लित हुआहै. जैसे सूर्यके उदयहुए सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित होताहै, तैसे संतोषवान प्रफुल्लित हो जाताहै. जो अप्राप्त वस्तुहै तिसकी इच्छा नहीं करता; अरु जो अनिच्छितप्राप्त भईहै, तिसको यथाशास्त्र क्रम करके ग्रहणकरताहै, तिसका नाम संतोषवानहै. जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकर पूर्ण होताहै, तैसे संतोषवानका हृदय संतुष्टता करके पूर्ण होताहै; अरु जो संतोषते रहितहै, तिसके हृदयरूपी वनमें सदा दुःख अरु चिंतारूपी फूल फल उत्पन्न होतेई हैं.

हे रामजी ! जिसका चित्त संतोषते रहितहै, तिसको नानाप्रकारकी इच्छा जैसे समुद्रमें नानाप्रकारके तरंग होतेहैं, तैसे उपजती हैं. संतुष्टात्मा परम आनंदितहै, तिसको जगत्के पदार्थमें हेयोपादेय बुद्धि नहीं होती. हे रामजी ! जैसा आनंद संतोषवानको होता है, तैसा आनंद अष्टसिद्धिके

ऐश्वर्य करके भी नहीं होता. अरु अमृतके पान कियेते भी नहीं होता. संतोषवान् सदा शांतिरूप है; और सदा निर्मल रहता है. इच्छारूपी धूर सर्वदा उडतीथी सो संतोषरूपी वर्षाकर शांत होगई है; तिस कारणते संतोषवान् निर्मल है.

हे रामजी ! संतोषवान पुरुष सबको प्यारा लगताहै. जैसे आंबका परिपक्व फल सुंदर होताहै, अरु सबको प्यारा लगताहै, तैसा संतोषवान पुरुष सबको प्यारा लगताहै; अरु स्तुति करने योग्यहै, जिस पुरुषको संतोष प्राप्त भया है, तिसको परमलाभ भया है. हे रामजी जहाँ संतोष है, तहाँ इच्छानहीं रहती है; अरु संतोषवान भोगमें दीन होकर नहीं रहता वह उदारात्मा है; सर्वदा आनंदकर तृप्त रहता है. जैसे मेघ पवनके आयेते नष्ट होजाता है, तैसे संतोषके आयेते इच्छा नष्ट होजाती है, अरु जो सतोषवान पुरुष है, तिसको देवता, ऋषीश्वर, सब नमस्कार करते हैं अरु धन्य धन्य कहते हैं. हे रामजी ! जब इस संतोषको धरेगा, तब परम शोभा पावेगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठमुमुक्षुप्रकरणे संतोपनिरूपणो नाम पंचदशः सर्गः १५

षोडशः सर्गः १६.

अथ साधुसंगवर्णनम्.

वसिष्ठ उवाच, हे रामजी ! और जेते कछु दान तीर्थादिक साधन हैं, तिनकर आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती, साधु सगकर आत्मपदकी प्राप्ति होती है, साधुसंगरूपी एक वृक्ष है, तिसका फूल आत्मज्ञान है. जिस पुरुषने फूलकी इच्छा करी है, सो अनुभवरूपी फलको पाता है. हे रामजी ! जो पुरुप आत्मानंदते रहितहै, सो सतसंगकर आत्मानंदसों पूर्ण होते हैं, अरु अज्ञान करके जो मृत्युको पाता है सो संतके संगते ज्ञान पायकर अमर होता है, अरु जो आपदा करके दुःखी है, सो संतके-संगकर सम्पदाको पाता है, आपदारूपी कमलका नाश करनहारा सत्संगरूपी बर्फकी बर्षा है, सतसंगसों कर आत्मबुद्धि प्राप्त होती है, तिस

कर मृत्युते रहित होता है; और सब दुःखते रहित होता है; अरु परमानंदको प्राप्त होता है.

हे रामजी! संतकी संगतिकर इसके हृदयमें ज्ञानरूपी दीपक जलता है; तिसकर अज्ञानरूपी तम नष्ट हो जाताहै; अरु बडे ऐश्वर्यको प्राप्त होता है; बहुरि किसी भोग पदार्थकी इच्छा नहीं रहती अरु बोधवान होता है; सबते उत्तम पदमें विराजता है; जैसे कल्पवृक्षके निकट गयेते वांछित फलकी प्राप्ति होती है, तैसे संसारसमुद्रके पार उतारनहारे संतजन हैं. जैसे धीवर नौका करके पार लगाता है तैसे संतजन युक्ति करके संसार समुद्रते, पार करते हैं अरु मोहरूपी मेघका नाशकरनहारा संतका संग है सो पवन है; जिनको देहादिक अनात्मसों स्नेह नष्ट भया है अरु शुद्ध आत्माविषे जाकी स्थिति है; तिसकर तृप्त भये हैं, बहुरि संसारके इष्ट अनिष्टते जाकी चलायमान बुद्धि नहीं होती, सदा समता भावमें स्थित रहे हैं ऐसे संसार समुद्रके पार उतारनेमें फूल जैसे अरु आपदारूपी बेलिको जड समेत नाश करनहारे हैं.

हे रामजी। संतजन प्रकाशरूप हैं, तिनके संगते पदार्थकी प्राप्ति होती है, अरु जो अपने पुरुषार्थरूपी नेत्रते हीन हुएहैं, इनको पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती; जिस पुरुषने सत्संगका त्याग किया है सो नरकरूपी अग्निमें लकडीकी नांई जरैगा; अरु जिस पुरुषने सत्संग कियाहै, तिसको नरकरूपी अग्निका नाशकरनहारा सत्संगरूपी मेघहै. हे रामजी! सत्संगरूपी गंगा है, जाने सत्संगरूपी गंगाका स्नान किया ताको बहुरि तप दान, आदि साधनका प्रयोजन नहीं; वह सत्संग करके परमगतिको प्राप्त होनेका है ताते अपर सब उपाय त्यागकर सत्संगको खोजना जैसे निर्धन चिंतामणि आदिक धनको खोजताहै, तैसे मुमुक्षु सत्संगको खोजताहै; अध्यात्मिकादि तीन तापसों जलता है, तिसको शीतल करनेहारा सत्संग है. जैसे तपी हुई पृथ्वी मेघकर शीतल होती है, तैसे सत्संगकर हृदय शीतल होता है.

हे रामजी! मोहरूपी वृक्षका नाश करनहारा सत्संगरूप कुहाडा है; सत्संग करके यह पुरुष अविनाशी पदको प्राप्त होता है जिस पदके

पायेते और पावनेकी इच्छा नहीं रहती; ऐसा सबते उत्तम सत्संगहै. जैसे सब अप्सरानते लक्ष्मी उत्तम है, तैसे सत्संग कर्त्ता सबते उत्तम है; ताते अपने कल्याणके निमित्त सत्संग करना तुमको योग्य है.हे रामजी ! यह जो चारों मोक्षके द्वारपाल हैं,सो तुझको कहे; जो पुरुषने इनके साथ प्रीति करीहै,सो शीघ्र आत्मपदको प्राप्त होहिंगे. और जो इनकी सेवा नहीं करते सो मोक्षको प्राप्त नहीं होते.हे रामजी ! इन चारोंमेंसे एक हूँ जहाँ आता है, तहाँ तीनों औरहू आय जाते हैं; जहाँ समुद्र रहताहै,तहाँ सब नदी आय जातीहैं; तैसे तहाँ सम आताहै जहाँ संतोष, विचार, अरु सत्संग ये तीनों आय जातेहैं, जहाँ साधु संगम होताहै, तहाँ संतोष, विचार, अरु सम ये तीनों आय जातेहैं, जहाँ कल्पवृक्ष रहता है, तहाँ सब पदार्थ आय स्थित होते हैं; अरु जहाँ संतोष आता है, तहाँ सम विचार, तत्संग, ये तीनों आय जाते हैं. जैसे पूर्णमासीके चंद्रमामें गुण कला सब इकट्ठी हो जाती हैं, तैसे जहाँ संतोष आता है, तहाँ और तीनों आय जाते हैं,अरु जहाँ विचार आता है,तहाँ संतोष,उपशम अरु सत्सग, ये आय रहते हैं. जैसे श्रेष्ठ मंत्रीसों कर राज्यलक्ष्मी आय स्थित होती है, तैसे जहाँ विचार होता है, तहाँ और भी तीनों आते हैं, ताते हे रामजी ! जहाँ चारों इकट्ठे होते हैं, तहाँ परम श्रेष्ठ जानना; ताते हे रामजी ! चारों नहोहिं तो एकका तो अवश्य आश्रय करना; जब एक आवेगा, तब चारों आय स्थित होवेंगे. मोक्षकी प्राप्ति होनेके यह चार परम साधन हैं; और उपायसों मुक्ति होनेकी नहीं.

श्लोक ।

संतोषः परमो लाभः सत्सगः परमं धनम् ॥
विचारः परमं ज्ञानं शमश्च परमं सुखम् ॥१॥

हे रामजी ! यह परम कल्याण कर्त्ता हैं,सो जो इनचारों करि संपन्न है, तिसकी ब्रह्मादिक स्तुति करते हैं, ताते दंतको दंत लगाय इनका आश्रय करके मनको वश कर ले.

हे रामजी ! मनरूपी हस्ती विचारूपी अंकुश करके वश होता है, अरु मनरूपी वनमें वासनारूपी नदी चलती है; तिसके शुभ अशुभ दो

किनारे हैं; अरु पुरुषार्थ करना यह है कि, अशुभकी ओरते रोकके शुभकी ओर चलावना; जब अंतर्मुख आत्माके सन्मुख वृत्तिका प्रवाह होवेगा, तब तू परमपदको प्राप्त होवेगा. हे रामजी ! प्रथम तो पुरुषार्थ करना यहीहै कि, अविचार रूपी ऊँचाईको दूर करना; जब अविचाररूपी बेट दूर होवेगा, तब आपही प्रवाह चलेगा. हे रामजी ! दृश्यकी ओर जो प्रवाह चलता है, सो बंधनका कारण है; जब आत्माकी ओर अंतर्मुखप्रवाह होवे तब मोक्षका कारण हो जाय आगे जो तेरी इच्छा होवे सो कर. इति श्रीयोगवासिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणे साधुसंगनिरूपणंनाम षोडशःसर्गः १६

सप्तदशः सर्गः १७.

अथ षट्प्रकरणवर्णनम्.

वसिष्ठ उवाच, हे रामजी ! यह मेरे वचन हैं सो परम पावन हैं, जो विचारवान् शुद्ध अधिकारी है, तिसको यह वचन परमबोधका कारण हैं; जो पुरुष शुद्ध पात्र है, सो इन वचनोंको पायके शोभतहै; और वचनहू उसको पायके शोभा पाते हैं, जैसे मेघके अभावते शरदकालमें चंद्रमा अरु आकाश शोभतेहैं, तैसे शुद्धपात्रमें यह वचन शोभतेहैं अरु जिज्ञासु निर्मल वचनकी महिमा सुनके प्रसन्नहोता है.

हे रामजी ! तुम परमपात्र हो, अरु मेरे वचन परम उत्तम हैं; यह महारामायण मोक्षोपायक शास्त्र है, सो आत्मबोधका परम कारण है; अरु परम पावन वाक्यकी सिद्धता है; अरु युक्ति युक्तार्थ वाक्य है; अरु नानाप्रकारके दृष्टांत कहे हैं. जिनके बहुत जन्मके पुण्य आय इकट्ठे होते हैं, तिनको कल्पवृक्ष मिलता है. सो फल कर झुक पडता है; तब तिनको यह शास्त्र श्रवण होता है; अरु नीचको इनका श्रवण प्राप्त नहीं होता है, उसकी वृत्ति इनके श्रवणमें नहीं आती है; जैसे धर्मात्मा राजाकी इच्छा न्याय शास्त्रके श्रवणमें होती है; अरु जो पापात्मा राजा है, सकी इच्छा नहीं होती.

हे रामजी ! तैसे पुण्यवानकी इच्छा इसके श्रवणमें होतीहै; अरु

अधर्म की इच्छा नहीं होती; जो कोई मोक्षोपायक इसरामायणका अध्ययन करैगा, अथवा निष्काम संतके मुखते श्रद्धायुक्त श्रवण करैगा अरु आदिते लेकर अंतपर्यंत एकत्र भाव होकर विचारेगा, तब तिसका संसार भ्रम निवृत्त होजावेगा. जैसे जेवरीके जाननेते सर्पका भ्रम दूर होजाता है, तैसे अद्वैतात्मतत्त्वके जाननेते तिसका संसार भ्रम नष्ट होजावेगा. सो.

इस मोक्षोपायक शास्त्रके बत्तीस सहस्र श्लोक हैं, अरु षट प्रकरण हैं, प्रथम वैराग्य प्रकरण है, सो वैराग्यका परम कारण है. हे रामजी! मरुथलमें वृक्ष नहीं होता, परन्तु बडी वर्षा होवे तब तहाँ वृक्ष होता है; तैसे अज्ञानीका हृदय मरुस्थलकी नाई है, तिसमें वैराग्यरूपी वृक्ष नहीं होता,परन्तु यह शास्त्ररूपी जो बडी वर्षा होवे,तिसकर वैराग्यरूपी वृक्ष उत्पन्न होता है; तिसके एक सहस्र पांचसौ श्लोक हैं, तिसके अनंतर, मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण है. तिसमें परम निर्मल वचन हैं. तिस करके मलीन मणि हुई ताका मार्जन कियेते उज्वल हो आती है तैसे यह वचनते मुमुक्षुका हृदय निर्मल होता है. अरु विचारके बलते आत्मपद पानेको समर्थ होता है, तिसके एक सहस्र श्लोक हैं; तिसके अनंतर,

उत्पत्तिप्रकरण है; तिसके पंच सहस्र श्लोक हैं; तिसमें बडी सुंदरकथा दृष्टांत सहित कही हैं, जिस विचारते जगत्का सत्यताभाव मनते चलायमान रहता है, अर्थ यह जो जगत्का अत्यन्त अभावजान परता है, हे रामजी! यह जगत्में जो मनुष्य, देवता, दैत्य, पर्वत, नदी, आदि स्वर्ग लोक, पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, आदि स्थावरजंगम भासता है सो अज्ञान करकेहै, अरु इसकी उत्पत्ति कैसे भई है; जैसे जेवरीमें सर्प होता है, अरु सीपमें रूपा होता है, अरु सूर्यके किरणमें जल दीखताहै; आकाशमें तरुवर दीखता है; और जैसे दूसरा चंद्रमा दीखता है; जैसे गंधर्व नगर भासते हैं; मनोराजकी सृष्टि भासती है, अरु संकल्पपुर होताहै,अरु सुवर्णमें भूषण होता है, समुद्रमें तरंग होताहै, आकाशमें नीलता दीखतीहै, जैसे नौकामें बैठते किनारेके वृक्ष पर्वत चलते दृष्टि आते हैं, अरु बादरके चलते चंद्रमा धावता दीखताहै, और थंभमें पुतरीभास

तीहै भविष्यत नगरते आदि लेकर असत्य पदार्थ जैसे सत्य भासते हैं, तैसे सबजगत् आकाशरूपहै,अज्ञानकरके अर्थाकार भासताहै सोअज्ञान-करके उत्पत्ति देखतीहै, अरु ज्ञान करके लीनहोजाताहैजैसे निद्रामें स्वप्न सृष्टिकी उत्पत्ति होतीहै अरु जागेते निवृत्ति होजातीहै;तैसे अविद्याकरके जगत्की उत्पत्ति होतीहै, अरु सम्यक् ज्ञान करके निवृत्त होजाती;सो अविद्या कछु वस्तुहू नहीं, सर्व ब्रह्म चिदाकाशरूप है सोशुद्ध है, अनंत है;परमानंद स्वरूपहै,तिसमें न जगत् उपजताहै; न लीन होताहै,ज्यों की त्यों आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है तिसमें जगत ऐसाहै जैसे भीतमें चित्र होताहै,जैसे थंभमें पुतरियां होतीहैं, अरु हुए विना भासतीहैं, तैसे यह सृष्टि मनमें रहीहै, वास्तवते कछु बनी नहीं सब आकाशरूपहै:जब चित्तसंवेदन स्पंदरूप होताहै,तब नाना प्रकारका जगत्होयके भासताहै अरु जब निष्पंद होताहै तब जगत् मिट जाताहै, इस प्रकार जगत्की उत्पत्ति कही है.तिसके अनंतर,स्थिति प्रकरणहै तिसमें जगत्की स्थिति कहीहै; जैसे इंद्रका धनुष आकाशरूपहै और अविचार करके रंगसहित भासता है, जैसे सूर्यकी किरणमें जल भासताहै, जैसे जेवरीमें सर्प भासता है सो सब सम्यग्दृष्टि करके निवृत्त होता है,तैसे अज्ञान करके जगत्की प्रतीति होतीहै सो मनोराज करके जगत् रच लेताहै सो कछु उत्पन्न हुआ नहीं है, तैसे यह जगत् संकल्पमात्रहै, जब लग मनोराजहै, तब लग वह नगर होता है, जब मनोराजका अभाव हुआ है, तब नगरका अभाव होजाताहै. जब लग अयान होताहै,तब लग जगत्की उत्पत्ति होतीहै, जब संकल्पका लय हुआ तब जगत् का अभाव होजा-ताहै जैसे इंद्र, ब्रह्माके पुत्रहूकी:दश सृष्टि संकल्प करके स्थित भई, तैसे यह जगत्भी है, कोऊ पदार्थ अर्थरूप नहीं. हे रामजी! इस प्रकार स्थितिप्रकरण कहा है, तिसके तीनसहस्र श्लोकहैं. तिसके विचार करके जगत्की सत्यता जात रहतीहै, तिसके अनतर.

उपशम प्रकरणहै. तिसके पंच सहस्र श्लोकहैं, तिसके विचारते अहंत त्वादिक वासना लीन होजाती हैं, जैसे स्वप्नते जागेते वासना जात रहती है तैसे विचार कियेते अहंतादिक वासना लीन होती जातीहै. काहेते

कि उसके निश्चयमें जगत् नहीं रहता, जैसे एक पुरुष सोया है, तिसको स्वप्नमें जगत् भासता है, और उसके निकट जो जाग्रत पुरुष है, तिसको स्वप्नका जगत् आकाशरूपहै जब आकाशरूपहुआ तब वासना कैसे रहे, जब वासना नष्ट भई तब मनका उपशम हो जाता है, तब देखनेमात्रको उसकी सब चेष्टा होती है, और इसके मनमें अर्थरूप इच्छा नहीं होती, जैसे अग्निकी मूर्ति देखने मात्रको होती है, अर्थाकार नहीं होती; तैसे उसकी चेष्टा होती है. हे रामजी ! जब मनते इच्छा नष्ट होतीहै, तब मनभी निर्वाण होजाताहै, जैसे तेलते रहित दीपक निर्वाण होताहै, तैसे इच्छाते रहित मन निर्वाण होता है; इस प्रकार उपशम प्रकरण है; तिसके अनंतर

निर्वाण प्रकरण है. जो शेष है. तिसमें परम निर्वाण बचन कहे हैं अज्ञान करके चित्त अरु चित्तका संबंध है. सो विचार कियेते निर्वाण होजाता है. जैसे शरद कालमें मेघके अभावते शुद्ध आकाश होता है, तैसे पुरुष विचार करके निर्मल होता है. हे रामजी ! अहंकार रूपी पिशाच है, सो विचार करके नष्ट होता है. जेती कछु इच्छा स्फूर्ति है. सो निर्वाण हो जाती है, जैसे पत्थरकी शिला फुरनेतेरहित होती है तैसे ज्ञानवान इच्छाते रहित होता है. तब जेती कछु जगत्की यात्रा है, सो इसको होय चुकती है,जो कछु करना है सो कर चुकता है. हे रामजी ! शरीर होतेही वह पुरुष अशरीरी होजाताहै, अरु नाना प्रकारका जगत् तिसको नहीं भासता. जगत्की नेतीते वह रहित होता है, अहं तत्त्वादिक तमरूप जगत् तिसको नहीं भासता है; जैसे सूर्यको अंधकार दृष्टि नहीं आवता, तैसे उसको जगत् दृष्टिमें नहीं आता, अरु ऐसे बडे पदको प्राप्त होता है, जैसे सुमेरु पर्वतके किसी कोनमें कमल होता है, तिसके ऊपर भौंरा स्थित रहते हैं, तैसे ब्रह्माके किसी कोनपै जगत् तुषाररूप है. अरु जीव रूपी भौंरे तिसपर स्थित हैं, वह पुरुष अचिंत्य चिन्मात्र है, रूप अवलोकन, मन, तिसका आकाशरूप हो जाता है. तिस पदको वह प्राप्त होता है, जिस पदकी योग्य उपमा कहनेको ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र समर्थ नहीं ऐसे अनुपमताके सदृश कोऊ नहीं है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे षट्प्रकरणविवरणं नाम सप्तदशः सर्गः

अष्टादशः सर्गः १८.

अथ दृष्टांतवर्णनम्.

वसिष्ठ उवाच, हे रामजी! यह परम उत्तम वाक्य है, इसको विचारन-हारा उत्तम पदको प्राप्त होता है, जैसे उत्तम खेतमें उत्तम बीज बोयेते उत्तम फलकी उत्पत्ति होतीहै. तैसे इसको विचारनहारा उत्तम पदको प्राप्त होता है; यह वाक्य कैसे हैं जो युक्ति पूर्वक वाक्य, और युक्तिते रहित ऋषि वाक्य भी होहिं तब तिनका त्याग करिये, और युक्ति पूर्वक वाक्यका अंगीकार करिये.

हे रामजी! जो ब्रह्माके वचन युक्तिते रहित होहिं, तब तिनको भी सूखे तृणकी नाईं त्याग करिये, अरु बालकके वचन युक्ति पूर्वक होहिं, तो तिनका अंगीकार करिये, और पिताके कूपका खाराजल होवे, तो उसका त्याग करिये, और निकट मिष्ट जलका कूप होवे, तबतिसका पानकरिये, तैसे बडे अरु छोटेका विचार न करके; युक्ति पूर्वक वचनका अंगीकार करना; हे रामजी! मेरे वचन सब युक्तिपूर्वकहैं. अरु बोधके परम कारण हैं; जो पुरुष एकाग्र होयके इस शास्त्रको आदिते अंत पर्यंत पढै, अथवा पंडित सों श्रवण करके विचारे, तब तिसकी बुद्धि संस्कारित होवे.

प्रथम वैराग्य प्रकरणको विचारेगा, तब वैराग्य उपजैगा जेते कछु जगत्के रमणीय भोग पदार्थ हैं, तिनको बिरस जानैगा, अरु किसी पदार्थकी वांछा न करैगा; जब भोगमें वैराग्य होता है, तब शांतिरूप आत्मतत्त्वमें प्रतीति होती है; जब विचारकरके बुद्धि संस्कारित होवेगी, तब शास्त्रका सिद्धांत बुद्धिमें आय स्थित होवेगा; और संसार के विकाररहित बुद्धि निर्मल होवेगी, जैसे शरत् कालमें बादरके अभाव हुएते आकाश सब ओरते स्वच्छ होता है, तैसे बुद्धि निर्मल होवेगी, बहुरि आधिव्याधिकी पीडा उसको न होवेगी. हे रामजी! ज्यों ज्यों विचार दृढ होवेगा, त्यों त्यों शांतात्मा होवेगा; ताते जेते कछु संसारके यत्न हैं तिनका त्याग कर इस शास्त्रको वारंवार विचारेते चैतन्य सत्ता उदय होवेगी, त्यों त्यों लोभ मोहादिक विचारकी सत्ता नष्ट होवेगी. ज्यों ज्यों सूर्य

उदय होता है, त्यों त्यों अंधकार नष्ट होता है; तैसे विकार नष्ट होवेगा तब तिस पदकी प्राप्ति होवेगी. जिसके पायेते संसारको क्षोभ मिट जायँगे; जैसे शरदकालमें मेघ नष्ट हो जाता है, तैसे संसारके क्षोभ मिट जाते हैं.

हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुषको संसारके राग द्वेष वेधिनहीं सकते. जैसे जिस पुरुषने कवच पहिरा होय, तिसको बाण वेध नहीं सकते; उसको भोगकी इच्छा नहीं रहती; जब विषय भोग विद्यमान आयरहे, तब तिनको विषय भूत जानके बुद्धि ग्रहण नहीं करती. अर्थ जानकर बाहर नहीं निकसती, अंतर आत्मामेंही स्थित रहती है, पतिव्रता स्त्री अपने अंतःपुरते बाहर नहीं निकलती तैसे ताकी बुद्धि अंतरते बाहर नहीं निकलती, हे रामजी! बाहरते तो वह भी प्रकृतिजन्यकी नाई दृष्टि आते हैं, जो कछु अनिच्छित प्राप्त होतेहैं, तिसको भुगतता हुआ दृष्टिमें आता है; और अंतरते उसका राग द्वेष नहीं फुरता.

हे रामजी! जेता कछु जगत्की उत्पत्ति प्रलयका क्षोभहै सो ज्ञानवानको नष्ट नहीं कर सकता; जैसे चित्रकी बेलिको आंधी चलाय नहीं सकती, तैसे उसको जगत्का दुःख चलाय नहीं सकता. अरु ससारकी ओरते जड़ होजाता है; वृक्षकी नाई गंभीर हो जाता है, अरु पर्वतकी नाई स्थिर हो जाता है, अरु चंद्रमाकी नाई शीतल होजाता है. हे रामजी! सो आत्मज्ञानकरके ऐसे पदको प्राप्त होताहै, जिसके पायेते और कछु पाने, योग्य नहीं रहता, आत्मज्ञानका कारण यह मोक्षोपाय शास्त्र है, जामें नाना प्रकारके दृष्टांत कहे हैं. जो वस्तु अपरिच्छिन्न होवे, अरु देखनेमें न आई होय; तिसका न्याय देखनेमें होवे; तिसको विधिपूर्वक समुझावे उसका नाम दृष्टांतहै. हे रामजी! यह जगत् कार्यकारणरूप है; अरु आत्मा जगत्की एकता कैसे होवे; ताते जो मैं दृष्टांत कहोंगा तिसका एक अंश अंगीकार करना सब देशकर अंगीकार नहीं करना, हे रामजी! कार्य कारणकी कल्पना मूर्खने करी है, तिसको निषेध करनेके निमित्त मैं स्वप्न दृष्टांत कहोंहों; सो समुझनेते तेरे मनका संशय नष्ट होजावेगा. दृग अरु दृश्यका भेद मूर्खको भासता है; तिसके दूर करनेके अर्थ स्वप्न दृष्टांत कहोंगा; तिसके विचारने कारि मिथ्या विभाग कल्पनाका अभाव होता

है. हे रामजी ! ऐसी कल्पनाका नाशकर्त्ता यह मेरा मोक्ष उपाय शास्त्र है, जो पुरुष आदिते अंत पर्यंत विचारेगा सो संस्कारी होवेगा. जो पद पदार्थको जानने हारा होवे, अरु इसको वारंवार विचारे तब तिसका दृश्य भ्रम नाश पावे. इस शास्त्रके विचारविषे अपर किसी तीर्थ, तप, दान आदिककी अपेक्षा नहीं, जहां स्थान होवे तहां बैठे. जैसा भोजन गृह विषे होवे तैसा करै, अरु वारंवार इसका विचार करै, तब अज्ञान नष्ट होजावे. अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवे; हे रामजी ! यह शास्त्र प्रकाशरूपहै, जैसे अंधकार विषे पदार्थ नहीं दीखता, अरु दीपकके प्रकाश करि चक्षु सहित देखता है तैसे शास्त्ररूपी दीपक विचार रूपी नेत्रसहित होवे. तब आत्मपदकी प्राप्ति होवे.

हे रामजी ! आत्मज्ञान, विचार विना वर शापकरि प्राप्त नहीं होता जब विचार करि दृढ अभ्यास करिये, तब प्राप्त होताहै. ताते मोक्ष उपाय जो परम पावन शास्त्र, तिसके विचारते जगत् भ्रम नष्ट होजावेगा. जगत्के देखते देखते जगत् भाव मिट जावेगा जैसे सर्पकी मूर्त्ति लिखी होतीहै, अरु अविचार करके तिससे भय पाताहै, जब विचार करि देखिये तब सर्प भ्रम मिटजाता है, सो सर्पका आकार दृष्टि आताहै, परंतु उसका भय मिट जाताहै, तैसे यह जगत् भ्रम विचार कियेते नष्ट होजाताहै, अरु जन्म मरणका भय नहीं रहता. हे रामजी ! जन्म मरणका भयभी वडा दुःख है, परंतु इस शास्त्रके विचारते नष्ट होजाताहै. जिन्होंने इसका विचार त्यागाहै सो माताके गर्भ विषे कीट होवेंगे, अरु कष्टते नहीं छूटेंगे, अरु विचारवान् पुरुष आत्मपदको प्राप्त होवेगा, अरु जो श्रेष्ठ-ज्ञानी अनंतहै तिसको आपना रूप भासताहै, कोऊ पदार्थ आत्माते भिन्न नहीं भासता, जैसे जिसको जलका ज्ञान हुआहै, तिसको लहरी आवर्त्त सब जलरूपही भासताहै; तैसे ज्ञानवानको सब आत्मरूप भासताहै अरु इंद्रियहूके इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिमें इच्छा द्वेष नहीं करता, सदा एक रस मनके संकल्पते रहित शांतरूप होता है. जैसे मंदराचल पर्वतके निकसेते क्षीर समुद्र शांतिको प्राप्त भया, तैसे संकल्प विकल्प रहित यह पुरुष शांतिरूप होता है.

हे रामजी ! और जो तेज होताहै. सो दाहक होताहै परन्तु ज्ञानरूपी

तेज जिस घटविषे उदय होताहै, सो शीतल शांतिरूप होता है, बहुरि तिसविषे संसारका विकार कोऊ नहीं रहता. जैसे कलियुगविषे शिखावारा तारा उदयहोता है. सो कलियुगके अभाव हुए नहीं उदय होता. तैसे ज्ञानवानके चित्तमें विकार उत्पन्न नहीं होता.

हे रामजी! संसार भ्रम आत्माके प्रमादकरि उत्पन्न होताहै. सो आत्मज्ञानके प्राप्त भये यत्नविना शांत होजाता है. फूल पत्र काटनेमें भी कछु यत्न होता है; परन्तु आत्माके पावनेमें कछु यत्न नहीं होता, काहेते कि बोधरूपी बोधही करके जानताहै. हे रामजी! जो जानने मात्र ज्ञानस्वरूपहै, तिसमें स्थित होनेका क्या यत्न है, आत्मा शुद्ध अद्वैतरूप है, अरु जगत् भ्रम मात्र है. जो पूर्व अपर विचार कियेते जिसकी सत्यता न पाइये तिसको भ्रम मात्र जानिये; अरु पूर्व अपर विचार कियेते सत्यहोवे तिसका रूप जानिये, सो इस जगत्की सत्यता आदि अंतविषे नहीं है, ताते स्वप्नवत् है, जैसे स्वप्न आदि अंतमें कछु है नहीं तैसे जाग्रत् भी आदि अंतमें नहीं है, ताते जाग्रत स्वप्न दोनों तुल्य हैं.

हे रामजी! यह वार्त्ता बालक भी जानताहै; कि आदि अंतमें जिसकी सत्यता न पाइये, सो स्वप्नवत् है, जो आदि भी नहोय अरु अंतभी नरहै, तिसको मध्यमें भी असत्य जानिये, तिसविषे यह दृष्टांत कहेहैं–संकल्पपुरीवत्, ध्यान नगरकी नाईं, स्वप्नपुरीकी नाईं, वर शाप करके जो उपजताहै तिसकी नाईं, ओषधीते उपजकी नाईं इस पदार्थकी सत्यता न आदि होतीहै, न अंत होती है; अरु मध्यमें जो भासताहै, सोभी भ्रममात्रहै. तैसे यह जगत् अकारण है, अरु कार्य, कारण भाव संबंधमें भासताहै, तो कार्य कारण जगत् भया, अरु आत्मसत्ता अकारणहै; जगत् साकारहै, अरु आत्मा निराकार है.

इस जगत्का दृष्टांत जो आत्माविषे देऊंगा तिसको तुम एक अंश ग्रहण करना. जैसे स्वप्नकी सृष्टि होतीहै; तिसका पूर्व अपर भाव आत्मतत्त्वविषे मिलता है काहेते कि, अकारण है; अरु मध्य भावका दृष्टांत नहीं मिलता, काहेते कि उपमेय अकारणहै; तो तिसका इस समान दृष्टांत कैसे होवे? ताते अपने बोधके अर्थ दृष्टांतका एक अंश ग्रहण करना. हे रामजी! जो

विचारवान् पुरुषहै, सो गुरु अरु शास्त्रके श्रवण करके सुखबोधके अर्थ दृष्टांतका एक अंश ग्रहणकरतेहैं. हे रामजी! तिसको आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है, काहेते कि सारग्राहक होते हैं अरु जो अपने बोधके अर्थ दृष्टांतका एक अंश ग्रहण नहीं करते, अरु वाद करते हैं, तिसको आत्मतत्त्वकी प्राप्ति नहीं होती, ताते दृष्टांतका एकअश ग्रहण करना, सर्व भाव करके दृष्टांतको नहीं मिलावना अरु पृथक्को देखि करि तर्क नहीं करना. एक अंश दृष्टांतका आत्मबोधके निमित्त सारभूत ग्रहण करना. जैसे अंधकारमें पदार्थ परा होवे, सो दीपकके प्रकाशसों देख लेना, जो दीपकके साथ प्रयोजनहै, और ऐसे नहीं कहना कि दीपक किसका है अरु तेल बाती कैसा है, अरु किस स्थानका है, दीपकका प्रकाश ही अंगीकार करना, तैसे एक अंश दृष्टांतका आत्मबोधके निमित्त अंगीकार करना.

हे रामजी! जिस करि वाक्य अर्थ सिद्धि न होवे तिसका त्याग करना जो वचन अनुभवको प्रगट करै तिसका अंगीकार करना. जो पुरुषअपने बोधके निमित्त वचनको ग्रहण करता है सोई श्रेष्ठ है, अरु जो वादके निमित्त ग्रहण करता है सो चोगचूंच है, वह अर्थको सिद्ध नहीं करता, जो कोऊ अभिमानको लेकरि कहता है, सो हस्तीकी नाईं शिरपर माटी डारताहै, तिसका अर्थ सिद्ध नहीं होता, अरु जो अपने बोधके निमित्त वचनको ग्रहण करताहै, अरु विचार करि तिसका अभ्यास करताहै, तब वह आत्मा शांतिको पाताहै. हे रामजी ! आत्मपद पावने निमित्त अवश्यमेव अभ्यासचाहिता है; जब शम, विचार, संतोष अरु संतसमागम करि बोधकी प्राप्ति होवे, तब परमपदको पाता है.

हे रामजी ! जिसका दृष्टांत कहता है, सो एक देश लेकरि कहता है, सर्व मुख कहने करि अखडताका अभाव होय जाताहै; अरु जो सर्व मुख दृष्टांत मुखको जानिये, सो सत्यरूप होता है, ऐसे तो नहीं. आत्मा सत्यरूप है. कार्य कारणते रहित शुद्ध चैतन्यहै; तिसके लिखावने निमित्त कार्य कारण जगत्का दृष्टांत कैसे दीजिये; यह जगत्का जो दृष्टांत कहता है सो एक अंश लइ कहता है; अरु बुद्धिमान् भी दृष्टांतके एक अंशको ग्रहण करते हैं. जो श्रेष्ठ पुरुष हैं सो अपने बोधके निमित्त सारको ग्रहण

करते हैं अरु जिज्ञासुको भी यही चहिता है, कि अपने बोधके निमित्त सारको ग्रहण करै, अरु वाद न करै. जैसे क्षुधार्थीको चावल पाक आय प्राप्त होवहिं, तब भोजन करनेका प्रयोजन है; अरु उसकी उत्पत्ति अरु स्थितिका वाद करना व्यर्थ है.

हे रामजी ! वाक्य सोई है जो अनुभवको प्रगट करै. अरु जो अनुभवको प्रगट न करै तिसका त्याग करना; जो स्त्रीका वाक्य होवे अरु आत्म अनुभवको प्रत्यक्ष करै तिसका ग्रहण करना; अरु परमगुरु वेद वाक्य होवे और अनुभवको प्रगट न करै तिसका त्याग करना. जबलग विश्रामको नहीं पाया, तबलग विचार कर्तव्य है; विश्रामका नाम तुर्य पदहै; जब विश्रामकी प्राप्ति भई तब अक्षय शांति होती है. हे रामजी! जो तुर्यापद संयुक्त पुरुष है, तिसका श्रुति स्मृति उक्त कर्महूके करने कारि प्रयोजन सिद्ध कछु नहीं होता, अरु न करनेकारि कछु पाप नहीं होता, सदेह होवे, भावे विदेह होवे, गृहस्थ होवे, भावे विरक्त होवे; तिसको कर्तव्य कछु नहीं, वह पुरुष संसार समुद्रते पार हुआ है.

हे रामजी ! उपमेयको उपमा कारि जानता है, सो एक अंशको ग्रहण कारि जानताहै, तब बोधकी प्राप्ति होती है, अरु जो बोधते रहित है, सो मुक्तिको प्राप्त नहीं होता वह व्यर्थ वाद करताहै. हे रामजी ! शुद्ध स्वरूप आत्मसत्ता जिसके घटविषे विराजमान है, तिसको त्यागकारि अपर विकल्प उठावताहै सो चोगचूंश्च है अरु मूर्ख है.

हे रामजी ! जो अर्थ प्रत्यक्ष है, सो प्रमाण मानने योग्य है, और जो अनुमान, अर्थापत्ति, आदि प्रमाणसों तिसकी सत्ता प्रत्यक्ष कारि होती है. जैसे सब नदीका अधिष्ठान समुद्र है, तैसे सब प्रमाण हूका अधिष्ठान प्रत्यक्ष प्रमाणहै, सो प्रत्यक्ष क्या है, सो श्रवण करहु.

हे रामजी ! चक्षुरूपी ज्ञान संमत संवेदन है, तिस चक्षु करके विद्यमान होता है तिसका नाम प्रत्यक्ष प्रमाणहै; तिन प्रमाणहूको विषय करने हारा जीवहै; अपने वास्तव स्वरूपके अज्ञानकारि अनात्मारूपी दृश्य बनीहै तिस विषे अहंकृति करके अभिमान भयाहै. अभिमान सब दृश्य है, ताते हेयोपादेय बुद्धि भई है, अरु राग द्वेष करके परा जलता है, आपको कर्त्ता मानि बहिर्मुख हुआ भटकता है.

हे रामजी ! जब विचार करके संवेदन अंतर्मुखी होवे, तब आत्मपद प्रत्यक्ष होता है, अरु निज भावको प्राप्त होता है. परिच्छिन्न भाव नहीं रहता शुद्ध शांतिको प्राप्त होता है. तैसे स्वप्नते जागेते स्वप्नका शरीर अरु दृश्य भ्रम नष्ट होजाता है, तैसे आत्माके प्रत्यक्ष हुएते सब भ्रम मिटजाता है, अरु शुद्ध आत्मसत्ता भासती है. हे रामजी ! यह जो दृश्य अरु द्रष्टा है, सो मिथ्या है, जो द्रष्टा है सो दृश्य होता है, अरु जो दृश्य है सो द्रष्टा होता है, सो यह भ्रम मिथ्या आकाशरूप है. जैसे पवनमें स्पद शक्ति रहती है, तैसे आत्मामें संवेदन रहती है, जब संवेदन स्पंदरूप होती है तब दृश्यरूप होयके स्थित होती है, जैसे स्वप्नमें अनुभव सत्ता दृश्य रूप होयके स्थित होती है, तैसे यह दृश्य है; ताते सब आत्मसत्ता है, ऐसे विचार करि आत्मपदको प्राप्त होवहु. अरु जो ऐसे विचार करके आत्मपदको प्राप्त न होय सको, तब अहंकार जो जो उल्लेख फुरता है तिसका अभाव करो; पाछे जो शेष रहैगा सो शुद्ध बोध आत्मसत्ता है. जब शुद्ध बोधको तुम प्राप्त होहुगे, तब ऐसे चेष्टा पडी होवेगी. जैसे जंत्रीकी पुतरी संवेदन बिना चेष्टा करतीहै, तैसे देहरूपी पुतरीका पालनहारा मनरूपी संवेदन हैं तिस बिना पडी रहैगी; परंतु अहंकृतका अभाव होवेगा; ताते यत्न करके तिस पदके पानेका अभ्यास करो जो नित्य शुद्ध शांतरूप है. हे रामजी ! और दैव शब्दको त्याग करि अपना पुरुषार्थ करो, अरु आत्मपदको प्राप्त होहु. पुरुषार्थमें शूरमा है. सो आत्मपदको प्राप्त होता है, अरु जो नीचपुरुषार्थका आश्रय करताहै, सो संसार समुद्रमें डूबता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेदृष्टांतप्रमाणं नामअष्टादशः सर्गः॥ १८॥

एकोनविंशतितमः सर्गः १९.

अथ आत्मप्राप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठउवाच, हे रामजी ! जब सत्संग करके यह पुरुष शुद्ध बुद्धिकरै तब आत्मपद पानेको समर्थ होवे; प्रथम सत्संग यह है. जिसकी चेष्टा

शास्त्रहूके अनुसार होवे; तिसका संग करै; तिसके गुणहूको हृदयविषे धरै बहुरि महापुरुषके सम संतोष आदिक गुणहूँका आश्रय करै; सम संतोषादिक करि ज्ञान उपजता है, जैसे मेघहू करि अन्न उपजता है; अरु अन्न करि जगत् होता है. अरु जगतहूते मेघ होता है, तैसे सम संतोष भी हैं.शमादिक गुणकरि ज्ञान उपजता है, अरु आत्मज्ञान करि शमादिक गुण आय स्थित होते हैं. जैसे बड़े तालकरि मेघ पुष्ट होताहै, अरु मेघ करि ताल पुष्ट होताहै, तैसे शमादिक गुण करि आत्मज्ञान होताहै, अरु आत्मज्ञानते शमादिक गुण पुष्ट होते हैं, ऐसे विचारकरके सम संतोषादिक गुणोंका अभ्यास करहु, तब शीघ्रही आत्मतत्त्वको प्राप्त होवेगा . हे रामजी ! ज्ञानवान् पुरुषको शमादिक गुण स्वाभाविक आय प्राप्त होतेहैं, अरु जिज्ञासुको अभ्यास करके प्राप्त होतेहैं अरु जैसे धान्यकी पालन स्त्री करतीहै, ऊंच शब्द करतीहै जिस करि पक्षीहूको उडावती हैं जब इसप्रकार पालना करती है, तब फलको पाती है तिसकरि पुष्टहोती है, तैसे शम संतोषादिकके पालनेकरि अत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है.

हे रामजी ! इस मोक्ष उपाय शास्त्रको आदिते लेकर अंतपर्यंत विचारे तब भ्रांति निवृत्त होवे. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सर्व पुरुषार्थ कर सिद्ध होतेहैं परंतु यह मोक्ष उपाय शास्त्र परम कारण है, जो शुद्ध बुद्धिमान् पुरुष इसको विचारेगा, तिसको शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवेगी, याते इस मोक्ष उपाय शास्त्रका भलीप्रकार अभ्यास करो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे आत्मप्राप्तिवर्णनं नाम एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

समाप्तमिदं योगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणम् ।

श्रीवेङ्कटेश्वर (स्टीम्) यन्त्रालय–बंबई.

इति

योगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणं समाप्तम्।
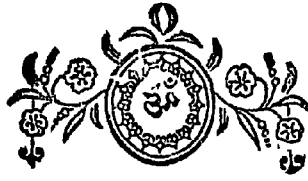
परमात्मने नमः ।

अथ श्रीयोगवासिष्ठे

तृतीयं उत्पत्तिप्रकरणम् ।

तत्र प्रथमः सर्गः १.
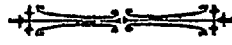
बोधहेतुवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ब्रह्म अरु ब्रह्मवेत्ता, यह सब शब्द ब्रह्मसत्ताके आश्रयते स्फुरते हैं; मैं अरु तू इद सः इत्यादिक सर्व शब्द आत्मसत्ताके आश्रयते स्फुरते हैं; जैसे स्वप्नविषे शब्द होते हैं, सो सब अनुभवसत्ताविषे होते हैं; तैसे यह भी जान अरु तिसविषे और जो विकल्प होते हैं; जो जगत् क्याहे ? अरु कैसे उत्पन्न हुवा है ? अरु किसका है ? इत्यादिक जो विकल्प हैं सो चोगचंचु है. हे रामजी ! यह सब जगत् ब्रह्मरूप है; यहां स्वप्नका दृष्टांत विचारि लेना; प्रथम मैंने मुमुक्षुप्रकरण तुझसे कहा है, अब उत्पत्तिप्रकरण कहता हों, कैसी उत्पत्ति है सो श्रवण कर. जो ज्ञान है, जो वस्तु है, जो स्वभाव है, जो क्रम है. हे रामजी ! बढ़ता भी वही पदार्थ है; जो उपजा होता है अरु घटता भी वही है; जो उपजा होता है अरु बंध अरु मोक्ष भी वही होता है; उत्तम भी वही होता है, नीच भी वही है जो उपजा होता है अरु जो उपजा न होवैगा तिसका न बढना है, न घटना है, न बंध होना है, न मोक्ष होना है, न उत्तम होना है, न नीच होना है. हे रामजी ! स्थावर जंगम जो कछु जगत् दीखता है; सो सब आकाशरूप है; द्रष्टाका जो दृश्यसाथ संयोग है इसीका नाम बंधनहै, तिस संयोगका निवृत्त होना, इसीका नाम मोक्ष है; सो तिस निवृत्तिका उपाय मैं कहता हों. देहरूपी जो जगत् है सो चिन्मात्ररूप है; और कछु उपजा नहीं अरु जो उपजा भासताहै सो ऐसे है, जैसे सुषुप्तिते स्वप्न होताहै तैसे जगत्की उत्पत्ति होतीहै; जैसे स्वप्नते

सुषुप्ति होती है तैसे जगत्का प्रलय होताहै; जो प्रलयविषे शेष रहताहै तिसकी संज्ञा व्यवहारके निमित्त यह रखता है. नित्य सत्य ब्रह्म आत्मा सच्चिदानंद इत्यादिक जिसके नाम रक्खे हैं सो सबका अपना आपरूप है; चैतन्यता करिके तिसका नाम जीव हुआ है, अरु शब्द अर्थोंको ग्रहण करने लगा है. हे रामजी ! शब्द अर्थोंको जो ग्रहण करताहै सो जीव है, अरु चैतन्यविषे जो स्पंदता हुई है:सो संकल्प विकल्परूपी मन होकारि स्थित हुवा है; तिसके संसरणकरिके देश, काल, नदियां, पर्वत, स्थावर, जगमरूप जगत् हुआ है; जैसे सुषुप्तिते स्वप्न होवै तैसे जगत् हुआ है; तिसको कोऊ अविद्या कहते हैं; कोऊ जगत् कहते हैं, कोऊ माया कहते हैं, कोऊ संकल्प कहते हैं, कोऊ दृश्य कहते हैं, अरु वास्तवमें सब ब्रह्मस्वरूप हैं, इतर कछु नहीं. जैसे स्वर्णते भूषण होताहै सो भूषण स्वर्णरूपहै, स्वर्णते इतर भूषण कछु वस्तु नहीं, तैसे जगत् अरु ब्रह्मविषे कछु भेद नहीं, अरु भेद तब होवे जो कछु जगत् उपजा होवै जो उपजाही न होवै तब भेद कैसा भासै ? अरु जो भेद भासता है सो मृगतृष्णाके जलवत है. जैसे मृगतृष्णाकी नदीके तरंग भासते हैं तहां सूर्यकी किरणही जलकी नाईं भासती हैं. जलका नाम भी नहीं तैसे आत्माविषे जगत् भासताहै, चैतन्यके अणुअणु प्रति सृष्टियां हैं; अरु कैसी हैं कि आभासरूप हैं, कछु उपजी नहीं, सर्वदा अद्वैतसत्ता अपने आपविषे स्थितहै तिसविषे जन्म मरण अरु बंधमुक्त कैसे होवै ? जेती कछु कल्पनाबंध मुक्त आदिक भासती है सो वास्तविक कछु नहीं, आत्माके अज्ञानकरके भासती हैं. हे रामजी ! और जगत् कोऊ नहीं उपजा, अपनी कल्पनाई जगतरूप होइकारि भासती है, अरु प्रमादकरिकै सत् होइ रही है, निवृत्त होना कठिन हो रहा है, अनियत नियत शब्द जो कहे हैं सो भाव्यर्थ हैं; ऐसे वचनोंकारि तौ जगत् दूर नहीं होता. हे रामजी ! युक्त अर्थ वचनोंविना दृश्य भ्रम निवृत्त नहीं होता; जो तर्कोंकरिके तप, तीर्थ, दान, स्नान, ध्यानादिक करिके जगतभ्रमको निवृत्त किया चाहते हैं सो मूर्ख हैं, इसप्रकारते तो दृढ होता है जहां जावैगा, तहां इसको

देश काल क्रिया नित्य पांचभौतिक सृष्टिही दृष्ट आवैगी; और कछु दृष्ट न आवैगा; ताते इसका नाश न होवैगा, अरु जो जगत्ते उपरांत होइ करि समाधि लगाइ बैठेगा, तब भी चिरकालते उतरैगा, बहुरि जगत्के शब्द अरु अर्थ इसको भास आवैगा; जो बहुरि अनर्थरूप संसार भासा तौ समाधिका क्या सुख हुआ ? जबलग समाधिविषे रहैगा तबलग सुख रहैगा, ताते इन उपायों करिके जगत् निवृत्त नहीं होता; जैसे कमलडोडे-विषे बीज होता है; जबलग उस बीजका नाश नहीं होता; तबलग बहुरि उत्पन्न होता है;जो वृक्षके पात तोड़िये तौ भी बीजका नाश नहीं होता तैसे तप दानादिकों करि जगत् नहीं निवृत्त होता जबलग अज्ञानरूपी-बीज नष्ट नहीं होता जब अज्ञानरूपी बीज नष्ट होवेगा तब जगत्रूपी वृक्षका अभाव हो जावैगा; और जो उपाय हैं, सो पत्तोंका तोडना है अरु और उपायोंकरि अक्षय पद नहीं प्राप्त होता, अरु अक्षय समाधि नहीं प्राप्त होती. हे रामजी ! ऐसी समाधि तौ किसीको प्राप्त होती नहीं जो शिलाकी नाईं हो जावै, मैं सब स्थान देख रहा हौं, अरु जो ऐसे ी होवे तौ भी संसारसत्ता निवृत्त न होवैगी. काहेते जो अज्ञानरूपी बीज निवृत्त नहीं भया यह समाधि ऐसी है जैसे जाग्रत्ते स्वप्न होता है अरु अज्ञानरूपी वासनाकरि सुषुप्तिते बहुरि जाग्रत् आती है. तैसे अज्ञान-रूपी वासनाकरिके समाधिते भी जाग पडता है उसको वासना खैंच ले आती है. हे रामजी ! तप समाधि आदिकोंकरि संसारभ्रम निवृत्त नहीं होता; जैसे कांजीकरिके क्षुधा किसीकी निवृत्त नहीं होती, तैसे तप समा-धिकरि चित्तकी वृत्ति एकाग्र होती है, परंतु संसार निवृत्त नहीं होता; जब लग चित्त समाधिविषे लगा है. तबलग सुख होता है; जब उठा तब बहुरि नानाप्रकारके शब्द अरु अर्थोंसंयुक्त संसार भासताहै. हे रामजी ! अज्ञानकरिके जगत् भासता है अरु विचार कियेते निवृत्त होताहै, जैसे बालकको अपने अज्ञान करि परछाहींविषे वेतालकल्पना होती है, अरु ज्ञानकरिके निवृत्त होती है, तैसे यह जगत् अविचारकरिके भासता है; विचारते निवृत्त होता है. हे रामजी ! वास्तवमें कछु जगत् उपजा नहीं असद्रूप है, जो कछु स्वरूपते उपजा होता तब निवृत्त नहीं होता; ताते

विचार करि निवृत्त होता है. ताते जानाजाता है, कि बना कछु नहीं जो वस्तु सत्य होती है तिसकी निवृत्ति नहीं होती, अरु जो असत् है सोस्थिर नहीं रहती ॥ हे रामजी ! सो सत्स्वरूप आत्माहै तिसका अभावकदाचित् नहीं होता अरु असत्रूप जो जगत् है सो स्थिर नहीं होता; यह जगत् आत्माविषे आभासरूप है, आरंभ अरु परिणामकारि कछु उपजा नहीं. जहां चैतन्य अणुहोता है, तहां सृष्टि भीं होती है, काहेते कि आभासरूप है, आत्मरूप आदर्शहै, तिसविषे अनंतसृष्टि प्रतिबिंबित होतीहै, अरु आदर्शविषे प्रतिबिंब भी तब होता है, जो दूसरा निकट होता है, अरु आत्माके निकट दूसरा कोई प्रतिबिंब नहीं होताहै; काहेते कि आभासरूप है, एकही आत्मसत्ता चैतन्यता करिकै द्वैतकी नाईं होकारि भासती है, और कछु बना नहीं; जैसे फूलविषे सुगंध होती है, अरु तिलोंविषे तेल होता है, अग्निविषे उष्णता होती है, अरु जैसे मनोराज्यकी सृष्टि होती है तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे मनोराज्यते मनोराज्यकी सृष्टि भिन्न नहीं तैसे इस जगत् आत्माते भिन्न कछु बना नहीं.

इति श्रीयोग० उत्पत्तिप्रकरणे बोधहेतुवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २.

प्रथमसृष्टिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! एक आकाशज आख्यानहै, सो श्रवणका भूषण है अरु बोधका कारण है, तिसको श्रवण कर; आकाशज एक ब्राह्मण होता भया, सो कैसा ब्राह्मण है ? शुद्ध चिदशते तिसकी उत्पत्ति भई है, धर्मनिष्ठ है अरु सदा आत्मामें स्थित रहता है; अरु भली प्रकार प्रजाकी पालना करता है, सो चिरंजीवी है; तब मृत्युदेवता विचार करत भया, कि मैं अविनाशी हौं; अरु जीव जो उपजते हैं, तिनको मैं मारता हौं; परंतु यह जो ब्राह्मण है; तिसको मैं नहीं भोजन करि सकता; मेरी शक्ति इस ब्राह्मणपर कुंठित हो गई है; जैसे खड्गकी धारा पत्थरपर चलाई कुंठित होजाती है; हे रामजी ! ऐसा विचार करकै मृत्यु ब्राह्म-

णको भोजन करनेके निमित्त उठा जैसे श्रेष्ठ पुरुष अपने आचारकर्मको नहीं त्याग करते, तैसे मृत्यु अपने कर्मोंको विचार करि चला ॥ जब ब्राह्मणके गृहविषे मृत्युने प्रवेश किया; तब उसको अग्नि जलावनेको उद्यत भया जैसे प्रलय कालविषे महातेजसंयुक्त अग्नि सर्वपदार्थोंको जलावने लगता है, तैसे तब मृत्यु दौडके आगे गया; जहां ब्राह्मण बैठा था अंतःपुरविषे जाइकरि कहने लगा;परंतु ब्राह्मणको पकडि न सका, जैसे बडा बलवान् पुरुष भी ओरके संकल्परूप पुरुषको पकड नहीं सकता; तैसे मृत्यु ब्राह्मणको पकड न सका तब मृत्यु बहुरि धर्मराजाके गृहमें आवत भया, अरु कहा ॥ हे भगवन्! जो कोऊ उपजा है तिसको मैं भोजन करता हौं परंतु एक ब्राह्मण जो आकाशते उपजा है; तिसको मैं वश नहीं कर सकता इसका क्या कारण है? ॥ यम उवाच ॥ हे मृत्यु! तू किसीको नहीं मार सकता; जो कोऊ मरता है, सो अपने कर्मोंकरि मरता है, जो कोऊ कर्मोंका कर्त्ता है तिसके मारनेका तू समर्थ होवेगा; अरु जिसका कर्म कोऊ नहीं,तिसके मारनेको समर्थ न होवैगा; ताते जाइकरि ब्राह्मणके कर्म खोजो; जब कर्म पावैगा, तब उसको मारनेको समर्थ होवैगा; अन्यथा समर्थ न होवैगा, हे रामजी! जब इस प्रकार यमने कहा तब कर्म खोजनेके निमित्त मृत्यु चला, कर्म नामहै वासनाका, वहां जाइके ब्राह्मणके कर्मोंको ढूँढने लगा; दशों दिशा देखे.ताल समुद्र बगीचे देखे, द्वीपते द्वीपांतर देखे, इत्यादिक सब स्थान देखते फिरे; परंतु ब्राह्मणके कर्मोंकी प्रतिमा कहूं न पाई. हे रामजी! मृत्यु बडा बलवंत है; परन्तु ब्राह्मणके कर्मोंको न पाया; तब मृत्यु बहुरि धर्म-राजाके पास गया; कैसा धर्मराजा है; जो संपूर्ण संशयोंका नाश करता है, अरु सदा ज्ञानस्वरूप है; तिसको मृत्यु कहत भया, हे संशयोंका नाशकर्त्ता! ब्राह्मणके कर्म मुझको कहूं नहीं दृष्ट आवते; बहुत प्रकार ढूँढ रहा हौं; जो शरीरधारी है, सो सब कर्मसंयुक्त है; इसका जो कर्म कोऊ नहीं है सो क्या कारण है? ॥ ॥ यम उवाच ॥ हे मृत्यु! इस ब्राह्मणकी उत्पत्ति शुद्ध चिदाकाशते हुई है; तहां न कोऊ कारण था, जो पदार्थ कारणविना है, सो जिसविषे भास्या है सो ईश्वररूप है; हे

मृत्यु ! शुद्ध आकाशते जो इसका होना हुआ है; तौ यह भी वही रूप है; यह ब्राह्मण भी शुद्ध चिदाकाशरूप है. अरु इसका चेतनही वपु है, इसका कर्म कोऊ नहीं, न कोऊ कर्म किया है, शुद्ध चिदाकाश इसका स्वरूप है, अपने स्वरूपते आपही इसका होना हुवा है इस कारणते इसका नाम स्वयंभू है, अरु सदा अद्वैतरूप है ॥ मृत्युरुवाच ॥ हे भगवन् ! जो यह आकाशस्वरूप है, तौ साकाररूप क्यों दृष्ट आता है. यम उवाच ॥ हे मृत्यु ! यह सदा निराकार चैतन्यवपु है, इसके साथ आकार कोऊ नहीं, अरु अहंभाव भी कोऊ इसके साथ नहीं, ताते इसका नाश कैसे होवे ? अहं त्वं कोऊ जानताही नहीं, जगत्का निश्चय भी इसकेविषे कोई नहीं, यह ब्राह्मण अचेत चिन्मात्र है, जिसके मनविषे पदार्थों का सद्भाव होता है, तिसका नाश भी होता है; जिसको जगत् भासताही नहीं, तिसका नाश कैसे होवै ? हे मृत्यु ! जो बड़ा बलीभी कोऊ होवे अरु जंजीरसे भी होवै तौ भी आकाशको बांध न सकैगा, तैसे ब्राह्मण आकाशरूप है इसका नाश कैसे होवै; ताते इसके नाश करनेका उद्यम त्याग करु, और देहधारियोंको जाइ मारौ; यह तुमसों न मरैगा ॥ हे रामजी ! ऐसे सुनकर मृत्यु आश्चर्यवत् होकारि अपने गृहविषे आया ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह तौ हमारे बडे पितामह ब्रह्माकी वार्ता तुमने कही है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! वार्ता तौ ब्रह्माकी कही है. परंतु मृत्यु अरु यमके विवादनिमित्त मैं तुझको श्रवण कराई है, इस प्रकार जब बहुत काल व्यतीत हुआ, अरु कल्पका अंतपात हुवा, तव मृत्यु सर्व भूतोंको भोजनकारि लाया; बहुरि ब्रह्माको भोजन करनेको गया; जैसे किसीका कर्म होता है अरु एकवार सिद्ध न भया, तौ छोड़ नहीं देता, बहुरि उद्यम करता है; तैसे मृत्यु भी ब्रह्माके सन्मुख गया; तब धर्मराजाने कहा ॥ हे मृत्यु ! यह जो ब्रह्मा है, सो आकाशरूप है, अरु आकाशही इसका शरीर है, तौ आकाशके पकडनेको तू कैसे समर्थ होवैगा ? ॥ यह तौ पंचभूतके शरीरते रहित है, जैसे संकल्प पुरुष होता है, तौ उसका आकाशही वपु होता है, तैसे

यह आकाशरूप है; अरु आदि अंत मध्यते रहित है; अहं त्वंके उल्लेखते रहित है, अचेल चिन्मात्र है, इसके मारनेको तू कैसे समर्थ होवैगा; अरु यह जो इसका वपु भासता है,सो ऐसे है, जैसे शिल्पीके मनविषे स्तंभकी पुतली होती है, सो सो कछु नहीं है, तैसे स्वरूपते इतर इसका होना नहीं, यह तौ ब्रह्मस्वरूप है, हमारे तुम्हारे मनविषे इसकी प्रतिमा हुई है, यह तौ निर्वपु है, जो पुरुष देहवंत होता है; तिसको ग्रहण करना सुगम होता है; अरु वंध्यापुत्रके ग्रहणको श्रम होता है; काहेते जो निर्वपु है, तैसे यह भी निर्वपु है; इसके मारनेकी कल्पनाको त्याग, और देहधारियोंको जाइकै मार ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे प्रथमसृष्टिवर्णनं नामद्वितीयःसर्गः २॥

तृतीयः सर्गः ३.

बोधहेतुवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार मृत्युको यमने कहा; ब्रह्माजी आकाशरूप है, अरु द्वैतकल्पनाते रहित है ॥ हे रामजी! शुद्धचिन्मात्र सत्ता सूक्ष्महै; जिसविषे आकाश भी पर्वतकी नाईं स्थूलहै;तिस चित्तविषे जो अहं अस्मि चैत्योन्मुखत्व हुवा है;तिसकरि अपने साथ देहको देखत भया,सो देह भी आकाशरूप है॥ हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्रविषे चैत्यका उल्लेख किसी कारणकरिके नहीं हुवा, स्वतःस्वभावही ऐसे उल्लेख आय फुरा है तिसका नाम स्वयंभू ब्रह्मा हुआ है, तिस ब्रह्माको सदाब्रह्महीका निश्चय है; ब्रह्मा अरु ब्रह्मविषे भेद कछु नहीं,जैसे समुद्र अरु तरंग विषे भेद कछु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं,फूल अरु गंधवि[illegible] भेद नहीं तैसे ब्रह्मा अरु ब्रह्मविषे भेद नहीं.जैसे जल द्रवता करिके तर[illegible]प होकरि भासता है,तैसे आत्मसत्ता चैत्यन्यताकरिकेब्रह्मा हो कारि [illegible] है, ब्रह्मा दूसरी वस्तु कछु नहीं, सदा चैतन्य आकाश है, पृथ्वी [illegible] तत्त्वोंते रहित है ॥ हे रामजी! न कोऊ इसका कारण है, न क[illegible] ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुमने जो कहा कि पृथ्वी

आदि तत्त्वोंते रहित ब्रह्माजीका वपुहै, अरु संकल्पमात्रहै, तौ स्मृतिका संस्कार इसका कारण क्यों न होवै ? जैसे हमको स्मृतिहै, और जीवोंको स्मृति है तैसे ब्रह्माको भी होवै ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! संस्कार स्मृति उसीका कारण होती है, जो आगे भी देहवान् होता है, जो पदार्थ आगे देखा होताहै, तिसकी स्मृति संस्कारते भी होतीहै अरु जो देखा नहीं होता, तिसकी स्मृति संस्कारते भी नहीं होती, सो ब्रह्माजीअद्वैत है, अजहै, आदि मध्य अंतते रहितहै, इसकी स्मृतिकारण कैसेहोवै; यह तौ शुद्ध बोधरूपहै; सो आत्मतत्त्वब्रह्मारूप हो करिस्थितहुआहै, अपनेआपते जो इसका होना हुआहै, इसीते इसका नाम स्वयंभूहै, शुद्धबोधविषे चैत्य उल्लेख हुआ है, अर्थ यह जो चित्त चैतन्यस्वरूपको नामहै अपने चित्तका संवित् कारण होवै, और दूसरा इसका कारण कोऊ नहीं; सदा निराकार है; अरु संकल्परूप इसका शरीरहै, और पृथ्वी आदिक भूतते शुद्ध अंतवाहक इसका वपु है ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जेते कछु जीव हैं, तिनके दो दो शरीर हैं, एक अंतवाहक शरीर है, दूसरा आधिभौतिक शरीर है, सो ब्रह्माका एकहि अंतवाहक शरीर कैसे है ? यह वार्त्ता स्पष्ट करि कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो सकारणरूपी जीवहैं, तिनके दो दो शरीर हैं; अरु ब्रह्माजी अकारण हैं; इस कारणते उनका एक अंतवाहकही शरीर है ॥ हे रामजी ! सुनो, जीवोंको कारण ब्रह्मा है, इस कारणते यह जीव दोनों देहोंको धरते हैं; अरु ब्रह्माजीका कारण कोऊ नहीं, अपने आपते उपजा है; इसका नाम स्वयंभू है, अरु आदि जो इनका प्रादुर्भाव हुआ है, सो अंतवाहक शरीर है, अपने स्वरूपका विस्मरण नहीं भया, सदा अपने वास्तव स्वरूपविषे स्थित है, ताते अंतवाहक है, अरु दृश्यको अपने संकल्पमात्र जानता है, अरु जिनको दृश्यविषे दृढ प्रतीति हुई है, तिनको आधिभौतिक कहते हैं; जैसे जडताकरिके जलका बरफ होता है, तैसे दृश्यकी दृढता करिके आधिभौतिक होतेहैं॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् तेरेको दृष्ट आता है, सो सब आकाशरूप है, किसी पृथ्वी आदिक भूतते रहितोंते नहीं हुआ, भ्रमकरिके आधिभौतिक भासता है; जैसे स्वप्नगर आकाशरूप है, आकाशरूप

होता है, किसी कारणसों नहीं उपजा, न किसी पृथ्वी आदिक तत्त्वोंते उपजा है; सब आकाशरूप है, अरु निद्रा दोषकरिकै आधिभौतिक होय करि भासता है, तैसे यह जाग्रत् जगत् भी अज्ञानकरिकै आधिभौतिक आकाश भासता है; जैसे स्वप्न अज्ञानकरिकै अर्थाकार भासता है, तैसे जगत् अज्ञानकरि अर्थाकार भासता है ॥ हे रामजी! यह संपूर्ण जगत् संकल्पमात्र है. और कछु बना नहीं, जैसे मनोराज्यके पर्वतआकाशरूप होते हैं; तैसे यह जगत् आकाशरूप है, वास्तव कछु बना नहीं, सब संकल्पके पुरुष हैं, सब जगत् मनते उपजा है; जैसे बीजते देशकाल करिकै अंकुर निकसता है, तैसे सब दृश्य मनते उपजता है, सो मनरूपी ब्रह्मा है, अरु ब्रह्मादि मनरूप है; तिसके संकल्पविषे संपूर्ण जगत् स्थित है; सो सब आकाशरूप है, आधिभौतिक कोऊ नहीं ॥ हे रामजी! आधिभौतिक जो आत्माविषे भासता है, सो भ्रांतिमात्र है, जैसे बालकको परछैयामें बैताल भासता है, तैसे अज्ञानीको आधिभौतिक भासता है, सो भ्रांतिमात्र है, वास्तव कछु नहीं ॥ हे रामजी! जेते कछु जीव हैं, सो सबही अंतवाहक हैं, परंतु अज्ञानीको अंतवाहकता निवृत्त होइ गई है, अरु आधिभौतिकता दृढ हो गई है, अरु जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो अंतवाहकरूप हैं ॥ हे रामजी! जिन पुरुषोंको प्रमाद नहीं हुआ, सो सदा आत्माविषे स्थित हैं, अतवाहकरूप , अरु सब जगत् आकाशरूपहै, जैसे सकल्पपुरुष होता है, जैसे गंधर्वनगर होता है, जैसे स्वप्नपुर होता है तैसे यह जगत् है, जैसे स्तंभविषे पुतलियां शिल्पी कल्पता है, जो एती पुतलियां स्तंभविषे हैं, सो पुतलियां उपजी कछु नहीं, ज्योंकी त्यों स्तंभमें स्थित हैं, पुतलीका सद्भाव शिल्पीके मनविषे होता है, तैसे सब विश्व मनविषे स्थित है, स्वरूपते कछु बना नहीं । दृश्यही मनरूप है. अरु मन दृश्यरूप है, जैसे तरंगही जलरूप हैं, जलही तरंगरूप है ॥ हे रामजी! जबलग मनका सद्भाव है, तबलग दृश्यका बीज मन है, जैसे कमलडोडेका सद्भाव उसके बीजविषे होता है, तिसकरि कमलडोडेकी उत्पत्ति होती है; तैसे जगत्का बीज मन है, सब जगत् मनते उत्पन्न होता है ॥ हे रामजी! जब तुझको स्वप्न आता है, तब तेराही चित्त

दृश्यको चेतता जाता है; और तौ कारण कोऊ हुवा नहीं, तैसे यह जगत् भी जानना; यह तेरे अनुभवकी वार्ता कही है, काहेते जो नित्य तुझको अनुभव होता है ॥ हे रामजी ! मनही जगत्का कारण है, और कोऊ नहीं जब मन उपशम होवैगा; तब दृश्यभ्रम मिट जावैगा; जबलग मन उपशम नहीं होता, तबलग दृश्यभ्रम निवृत्त नहीं होता, अरु जबलग दृश्यनिवृत्त नहीं होता, तबलग शुद्ध बोध नहीं होता; जबलग शुद्ध बोध नहीं होता; तबलग आत्मानंद नहीं होता ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बोधहेतुवर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४.
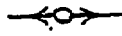
बोधहेतुवर्णनम् ।

वाल्मीकि उवाच ॥ इसप्रकार मुनिशार्दूल वसिष्ठजी कहिकारि तूष्णीं भये, अरु सर्व श्रोता वसिष्ठजीके वचनोंको श्रवण करिकै तिनके अर्थ विषे स्थित भये; इंद्रियोंकी चपलताको त्यागिकारि वृत्तिको स्थित करते भये, अरु तरंगोंके घुघर छिनकते थे, सो स्थिर हो गये, पिंजरोंविषे जो तोते थे, सो भी सुनिकारि तूष्णीं हो गये, अरु जो चपल ललना थीं, सो भी तिस कालविषे अपनी चपलताको त्याग करत भईं अरु वनके जो पशु पक्षी निकट थे, सो भी सुनिकारि तूष्णीं भये, मध्याह्नका समय हुआ, तब राजाको बडे भृत्योंने आय कहा ॥ हे राजन्! अब स्नानसंध्याका समय हुआ है, उठिकारि स्नानसंध्या करौ, जब इस प्रकार बडे भृत्योंने कहा, तब वसिष्ठजी बोले ॥ हे राजन् ! अब जो कछु कहनाथा सो कहि रहे हैं, कालि कछु बहुरि कहैंगे; तब राजाने कहा अस्तु, ऐसेही होवै, तब राजा उठिकारि अर्घ्यपाद्यनैवेद्य कारि वसिष्ठजीका पूजन करत भये, और जो ब्रह्मर्षि थे तिनकी यथायोग्य पूजा करी, तब वसिष्ठजी उठ खडे हुए, परस्पर आपसमें नमस्कार किये, अरु अपने स्थानोंको चले, आकाशचारी आकाशको गये, पृथ्वीपर रहनेवाले ब्रह्मर्षि, राजर्षि पृथ्वीपर गये, पातालवासी पातालको गये; अरु सूर्य भगवान् दिनरातकी

कल्पनाको त्यागकारि स्थिर हो रहे, अरु मंद मंद पवन सुगंधसहित चलनेलगा मानो पवन भी कृतार्थ होने आया है, तब सूर्य अस्त हुआ, और ठौरको प्रकाशने लगा, काहेते कि संतजन सब ठौरको प्रकाशतेहैं, अरु रात्री हुई, तारागण प्रकट हो आए, बहुरि अमृतरूपी किरणको धारे हुए चंद्रमा आय उदय हुआ, अंधकारका अभाव होगया, अरु राजद्वार भी चंद्रमाकी किरण साथ शीतल हो गया, मानो वसिष्ठजीके वचनोंको सुनिकर इनकी तप्तता मिट गई है, अरु सब श्रोता विचार पूर्वक रात्रिको व्यतीत करत भये, जब सूर्यकी किरण निकसीं तब अंधकार नष्ट होगया, जैसे संतोंके वचनोंकरि अज्ञानीके हृदयका तम नष्ट होता है, तैसे अंधकार नष्ट हो गया, अरु सब जगत्की क्रिया प्रगट हो आई, तब सूर्यकी किरण साथ सब श्रोता स्नानसंध्याको करिकै आय स्थित भये, खेचर, भूचर, पातालके वासी सब अपने अपने स्थानोंविषे आय बैठे, परस्पर नमस्कार किये, तब पूर्वके प्रसंगको पायकरि बोलत भये राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ऐसा जो मन है, संसाररूपी दुःखोंकी मंजरी जिसते बढतीहै, तिस मनका रूप मुझको कहौ कि वह क्याहै ? ॥ वसिष्ठ उवाच॥हे रामजी!इस मनका रूपकछु देखनेविषे नहीं आता, यह मन नाममात्रहै, वास्तवरूप इसका कछु नहीं, आकाशकी नाईं शून्य है, जैसे आकाश शून्यरूप है, तैसे मन शून्यरूप है ॥ हे रामजी ! मन आत्माविषे कछु नहीं उपजा, जैसे सूर्यविषे तेज होता है तैसे आत्मविषे मन है, जैसे वायुविषे स्पंद है, जैसे जलविषे तरंग हैं, जैसे सुवर्णविषे भूषण हैं, तैसे आत्माविषे मन है; जैसे मरीचिकाका जल है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा है, सो वास्तव कछु नहीं, तैसे मन आत्मविषे कछु वास्तव नहीं ॥ हे रामजी ! यह आश्चर्य है जो वास्तवमें कछु उपजा नहीं; अरु आकाशकी नाईं सब घटोंविषे वर्त्तता है, अरु संपूर्ण जगत् मनकरिकै भासता है, असद्रूपी जगत् जिसकरिकै भासता है, तिसका नाम मन है ॥ हे रामजी ! आत्मा शुद्ध अद्वैत है, तिसविषे द्वैतरूप जगत् जिसकारि भासता है, तिसका नाम मन है, अरु संकल्प विकल्प जो

फुरता है सो मनका रूप है, जहां जहां संकल्प फुरता है, तहां तहां मन है, जैसे जहां जहां तरंग फुरते हैं; तहां तहां जल है; तैसे जहां जहां संकल्प फुरता है, तहां तहां मन है और भी मनके नाम हैं; स्मृति कहिये, अविद्या कहिये, मलिनता कहिये, तम कहिये, ये सब इसके नाम हैं, ज्ञानवान् पुरुष जानते हैं ॥ हे रामजी ! जेती कछु जगतजाल भासती है, सो सब मनते उत्पन्न हुई है; अरु सब दृश्य मनरूप है, काहेते कि मनका रचा हुआ है, वास्तव कछु नहीं ॥ हे रामजी ! मनरूपी जो देह है, तिसका नाम अंतवाहक शरीर है, सो संकलपरूप है, अरु सब जीवोंका आदि वपु है, तिस संकल्पविषे जो दृढ आभास हुआ है, तिसकारि आधिभौतिक भासने लगा है; अरु आदि स्वरूपका प्रमाद हुआ है ॥ हे रामजी ! यह जगत् सब संकलपरूप है, स्वरूपके प्रमादकरिकै पिंडाकार भासता है; जैसे स्वप्न देहका आकार आकाशरूप है पृथ्वी आदि तत्त्वोंका अभाव होता है, परंतु अज्ञान करिकै आधिभौतिकता भासती है; सो मनहीका संसरना है; तैसे यह जगत् है; सब मनके फुरनेकारि भासता है; ॥ हे रामजी ! जहां मन है, तहां दृश्य है, जहां दृश्य है, तहां मन है, जब मन नष्ट होवै तब दृश्यभी नष्ट होवै; शुद्ध बोधमात्रविषे जो दृश्य भासता है, सोई मन है; जबलग दृश्य भासता है, तबलग मुक्त न होवेगा, जब दृश्यभ्रम नष्ट होवैगा; तब शुद्ध बोधको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! द्रष्टा दर्शन दृश्य यह जो त्रिपुटी भासती है, सो मनकारि भासती है, जैसे स्वप्नविषे त्रिपुटी भासती है, जब जागिकै उठा तब त्रिपुटीका अभाव हो जाता है, अरु अपना आप भासता है, तैसे आत्मसत्ताविषे जागे हुए अपना आप अद्वैतही भासता है, जबलग शुद्ध बोध नहीं प्राप्त भया, तबलग दृश्यभ्रम निवृत्त नहीं होता, अरु बाह्य देखता है, तब सृष्टिही दृष्ट आती है, जब अंतर देखैगा तौ भी सृष्टि दृष्टि आती है, अरु तिसको सत्य जानिकारि राग दोष कल्पना उठती है, अरु जब मन आत्मपदको प्राप्त होता है, तब दृश्यभ्रम निवृत्त हो जाता है, जैसे जब वायुकी स्पंदता मिटी, तब वृक्षके पत्रोंका हलना भी मिटि जाता है,

ताते मनरूपी दृश्यही बंधनका कारण है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह दृश्यरूपी विषूचिका रोग है, तिसकी निवृत्ति कैसे होवै सो कृपा करिकै कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! संसाररूपी वैताल जिसको लगा है; तिसकी निवृत्ति अकस्मात् करि होती है, प्रथम तौ विचार करिकै जगत्का स्वरूप जानैगा, तिसके अनंतर जब आत्मपदविषे विश्रांत होवैगा, तब तू सर्व आत्मा होवैगा, हे रामजी ! दृश्यभ्रम जो तुझको भासताहै, तिसको मैं उत्तर ग्रंथकरि निवृत्त करौंगा, इसविषे संदेह नहीं, श्रवण कर, यह दृश्य मनते उपजा है, इसका सद्भाव मनविषे हुवा है, जैसे कमलके डोडेका जो उपजना है सो कमलडोडेके बीजविषे है, तैसे संसारका उपजना स्मृतिते होता है, सो स्मृति अनुभव आकाशविषे होती है ॥ हे रामजी ! स्मृति तिस पदार्थकी होती है, जिसका अनुभव सद्भावरूप ग्रहण होता है, अरु जेता कछु जगत् तुझको भासता है, सो संकल्परूप है, कोऊ पदार्थ सद्रूप नहीं, जो वस्तु असद्रूप है, तिसकी स्थिरता नहीं होती, अरु जो सद्वस्तुहै, तिसका अभाव कदाचित् नहीं होता, जेता कछु प्रपंच भासता है, सो असद्रूप है, मनके चिंतनते उत्पन्न हुआ है, जब मन फुरनेते रहित होवै तब जगत्भ्रम निवृत्त होताहै, हे रामजी ! पृथ्वी पर्वत आदिक जगत् असद्रूप नहीं होता, तब मुक्तभी कोऊ नहीं होता, मुक्त जो होनाहै सो दृश्यभ्रमते होना है, जो दृश्यभ्रम मन नष्ट न होता, तौ मुक्त कोऊ न होता सो तौ ब्रह्मर्षि राजर्षि देवता इत्यादिक बहुतेरे मुक्त हुए हैं; इस कारणते कहते हैं; कि दृश्य असत्यरूप है, मनके संकल्पविषे स्थित है ॥ हे रामजी ! एक मनको स्थिर करि देख बहुरि अहं त्वं आदिक जगत् तुझको कछु न भासैगा, चित्तरूपी आदर्श है, तिसविषे संकल्परूपी दृश्य मलीनता है, जब मलीनता दूर होवेगी, तब आत्माका साक्षात्कार होवैगा ॥ हे रामजी ! यह दृश्यभ्रम मिथ्या उदयभयाहै जैसे गंधर्वनगर होता है, जैसे स्वप्नपुर होता है, तैसे यह जगत् भी है, जैसे शुद्ध आदर्शविषे पर्वतका प्रतिबिंब होता है, तैसे चित्तरूपी आदर्शविषे यह दृश्य प्रतिबिंबित है, मुकुरविषे जो पर्वतका प्रतिबिंब होता

है, सो आकाशरूप है, कछु पर्वतका सद्भाव नहीं, तैसे आत्माविषे जगत्‌का सद्भाव नहीं, जैसे बालकको भ्रमकरि परछाहीविषे पिशाचबुद्धि होती है, तैसे अज्ञानीको जगत् भासता है, वास्तवमें जगत् कछु नहीं ॥ हे रामजी! न कछु मन उपजा है. न कछु जगत् उपजाहै, दोनों असद्रूप हैं, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासताहै तैसे आत्मविषे जगत् भासताहै, जैसे आकाश अपनी शून्यताकरिकै पूर्णहै, जैसे समुद्र जलकरि पूर्ण है, तैसे ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित पूर्ण है; तिसविषे जगत्‌का अत्यंत अभाव है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह तुम्हारे वचन ऐसे हैं, जैसे कहिये कि वंध्याके पुत्रने पर्वत चूर्ण किया है; अरु शशेके शृंग अति सुंदर हैं, अरु रेतविषे तेल निकसता है अरु पत्थरकी शिला नृत्य करती है; अरु जैसे कहिये मूर्तिका मेघ गर्जताहै. अरु पत्थरकी पुतलियां गान करती हैं; तैसे तुम्हारे शब्द मुझको भासते हैं, तुम कहते हो दृश्य कछु उपजा नहीं अरु है ही नहीं, अरु मुझको जरामृत्यु आदिक विकारोंसहित प्रत्यक्ष भासताहै, ताते मेरे मनविषे तुम्हारे वचनोंका सद्भाव नहीं स्थित होता; अरु जो तुम्हारे निश्चयविषे इसी प्रकार है तौ अपना निश्चय मुझको भी बताओ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जो हमारे वचन हैं, सो यथार्थ हैं, हमने असत् कदाचित् नहीं कहा तुम विचार करि देखौ यह जो जगत् आडबर है, सो कारणविनाहै, जब महाप्रलय होता है, तब पाछे शुद्धचैतन्य संवित्‌रहताहै, तिसविषे कार्यकारणकल्पना कोई नहीं रहतीहै. तिसविषे जो बहुरि जगत् फुरताहै सो कारणविना फुरताहै; जैसे सुषुप्तिते स्वप्नसृष्टि फुरतीहै जैसे स्वप्नसृष्टि अकारण है तैसे यह सृष्टि भी अकारण है. हे रामजी! जिसका समवायिकारण अरु निमित्तकारण न होवे अरु प्रत्यक्ष भासै तब जानिये कि भ्रांतिरूपहै, जैसे नित्य स्वप्नका अनुभव तुझको होताहै तिसविषे नानाप्रकारके पदार्थ कार्यकारण सहित भासते हैं, अरु कारण विनाहैं, तैसे यह जगत् भी कारण विनाहै; ताते आदि कारण विना जगत् उपजाहै, जैसे गंधर्वनगर भासता है, जैसे संकल्पपुर भासता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासताहै. तैसे यह जगत् भासताहै, कोऊ पदार्थ सत् नहीं, जैसे स्वप्नविषे

राज्यपति भासते हैं अरु नानाप्रकारके पदार्थ भी भासते हैं; सो किसी कारणते तौ नहीं उपजे, सब आकाशरूप हैं; मनके संसरनेकरिके भासते हैं; तैसे यह जगत् चित्तके संसरनेकरिके भासता है; जैसे स्वप्नते और स्वप्न भासता है, बहुरि और स्वप्न भासता है, तैसे यह जगत् भासता है, तैसे जाग्रत् जगत्जाल मनकी कल्पनाकरि भासता है॥ हे रामजी! चलना, दौरना, देना, लेना, बोलना, सुनना, सूंघना इत्यादिक विषय रागद्वेषादिक जो विकार हैं, सो सब मनके फुरनेकरि होते हैं, आत्माविषे विकार कोऊ नहीं, जब मन उपशम होता है, तब सब कल्पना निवृत्त हो जाती है ताते संसारका कारण मन है॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बोधहेतुवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः॥४॥

पंचमः सर्गः ५.

प्रयत्नोपदेशवर्णन।

राम उवाच॥ हे भगवन्! मनका रूप क्या है? यह तौ मायामय है इसका होना जिसते है, सो कौन पद है?॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जब महाप्रलय होता है, तब सब जगत्का अभाव होता है, पाछे जो शेष रहता है, सो सद्रूप है, अरु आदि सर्गका भी सत्यरूप होता है तिसका नाश कदाचित् नहीं होता, सदा प्रकाशरूप है, अरु परमदेव है, शुद्ध परमात्मतत्त्व अज अविनाशी है अद्वैत है, जिसको वाणी नहीं कहि सकती, सो पद जीवन्मुक्त पावता है॥ हे रामजी! आत्मआदिक जो शब्द हैं, सो भी उद्देशविषे कल्पित हैं, स्वाभाविक कोऊ शब्द नहीं प्रवर्त्तता, शिष्यको जनावने निमित्त शास्त्रकारोंने एते नाम देवके कल्पे हैं; मुख्य तौ देवको पुरुषकरि कहते हैं, वेदांतवादी ब्रह्मकरि कहते हैं, विज्ञानवादी बौद्ध तिसको विज्ञान करिकै कहते हैं, एक कहते हैं निर्मलरूप है, शून्यवादी कहते हैं शून्यही शेष रहता है, एक कहते हैं प्रकाशरूप है, जिसके प्रकाशकरि सूर्यादिक प्रकाशते हैं, एक उसको वक्ता कहते हैं, कि आदि वेदका वक्ता वही है; अरु स्मृति

कर्त्ता कहते हैं, कि सब कछु स्मृतिकरिके वह करनेहारा है, सब कछु उसकी इच्छाकरिके हुआ है; ताते सबका कर्त्ता वही है, सर्वात्मा है, और सर्वका कर्त्ता है ॥ हे रामजी ! इत्यादिक संज्ञा तिसकी शास्त्रकारोंने करी हैं, सर्वका जो अधिष्ठानहै, सो परमदेवहै, अरु अस्ति आदि षट्ट विकारोंते रहित है, शुद्ध चैतन्य है, सूर्यवत्प्रकाशरूप है सो देव सब जगत्विषे पूर्ण हो रहा है ॥ हे रामजी ! आत्मरूपी सूर्य है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक तिसकी किरणें हैं, अरु ब्रह्मरूपी समुद्र है, तिसविषे जगत्रूपी तरंग बुद्बुद उत्पन्न होतेहैं, अरु लीन होतेहैं, अरु सर्व पदार्थ आत्माके प्रकाशकरि प्रकाशतेहैं, जैसे दीपक अपने आपकरि प्रकाशता है अरु औरोंको भी प्रकाश देताहै, तैसे आत्मा अपने प्रकाशकरि प्रकाशता है और सर्वको सत्ता देनेहारा है॥ हे रामजी ! वृक्ष जो उपजता है, सो आत्मसत्ताकरि उपजता है, आकाशविषे शून्यता तिसकी करी है, अग्निविषे उष्णता तिसकी करीहै, जलविषे द्रवता तिसकी करी है,पवनविषे स्पर्श तिसका कियाहै, सर्व पदार्थोंकी सत्ता वही है; मोरके पंखोंविषे जो रंग है; सो आत्मसत्ताकरि हुआहै, पत्थरमें मुंगे तिसीकरि हुए हैं; और पत्थरविषे जो जडता है; सो तिसीकी करी है; स्थावर जंगम जगत्का अधिष्ठानरूप ब्रह्महै॥ हे रामजी ! आत्मरूपी चंद्रमाहै, तिसकी किरणोंसों ब्रह्माण्डरूपी त्रसरेणु उत्पन्न होते हैं; सो कैसा चंद्रमा है; जो शीतलता अरु अमृतकरि पूर्ण है; ब्रह्मरूपी मेघहै, तिसते जीवरूपी बुंदां स्रवते हैं, जैसे बिजलीका प्रकाश होताहै, अरु छुप जाताहै, तैसे जगत् प्रगट होता है, अरु छुप जाताहै, सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है; सो नित्य शुद्ध बुद्ध परमानंदरूपहै, सत्य असत्यरूप पदार्थ सब आत्मसत्ता करिकै होतेहैं. हे रामजी ! तिस देवकी सत्ताकरिके जड पुर्यष्टक चैतन्य होयकरि चेष्टा करती है, जैसे चुंबक पत्थरकी सत्ताकरिके लोहा चेष्टा करता है, तैसे चैतन्यरूपी चुंबकमणिकरि देह चेष्टा करता है; सो आत्मचैतन्य नित्य है, सबका कर्त्ता आत्माही है, तिसका कर्त्ता और कोऊ नहीं, सब साथ अभेदरूप है, समान सत्ताहै, उदयअस्तते रहित है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष तिस देवको साक्षात करता है, तिसकी

सब क्रियानष्ट हो जातीहैं; अरु चिज्जडग्रंथि भेदि जातीहै, केवल बोधरूप होते हैं; तब स्वभावसत्ताविषे मन स्थित होता है, तब मृत्युको सन्मुख देखिकरि भी विह्वल नहीं होता ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह देव किसी स्थानविषे रहता नहीं, अरु कछू दूर नहीं, अपने आपविषे स्थित है॥ हे रामजी! घटघटविषे देव है; अरु अज्ञानीको दूर भासता है सो स्नान, दान, तप आदिकरिकै नहीं प्राप्त होता, ज्ञातव्यहीकरि प्राप्त होताहै, कर्तव्यताकरिके नहीं प्राप्त होता, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है,सो कर्तव्यताक रे नहीं निवृत्त होती, ज्ञातव्यकरिके निवृत्त होती है, तैसे जगत्की निवृत्ति आत्मज्ञानकरि होती है ॥ हे रामजी! कर्तव्य भी सोई है, जो प्राप्त होनेका ज्ञातव्यरूप है, अर्थ यह जो ज्ञातव्यस्वरूपकी प्राप्ति होतीहै. राम उवाच, हे भगवन्! जिस देवके जाननेते पुरुष बहुरि जन्ममरणको नहीं प्राप्त होता, सो कहाँ रहताहै? अरु किस तप क्लेशकारि तिसकी प्राप्ति होतीहै? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! किसी तपकारि देवको नहीं प्राप्त होता, अपने पुरुषप्रयत्नकारि प्राप्त होताहै,जेता कछु राग, द्वेष, तम,क्रोध, मत्सर,अभिमान सहित तप है, सो निष्फल दंभ है, इसकारि आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती ॥ हे रामजी! परम औषध सत्संगअरु सच्छास्त्रनका विचार है, जिसकारि दृश्यरूपीविषूचिका निवृत्त होतीहै, प्रथम इसका आचार भी शास्त्र अरु लोकोंके साथ अविरुद्ध होवे, अर्थ यह कि, शास्त्रोंके अनुसार होवे, अरु भोगरूपी गर्तविषे गिरै नहीं, संतोषसंयुक्त यथालाभसंतुष्ट होवै. अनिच्छित भोग प्राप्त होवै, अरु शास्त्र अविरुद्ध होवे तिसको ग्रहण करै; अरु विरुद्ध होवै तिसका त्याग करै, दीन न होवै; ऐसा जो उदारआत्मा है, तिसको शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होती है॥ हे रामजी! आत्मपद पानेका कारण सत्संग अरु सच्छास्त्रहै, सत कौनहै, जिसको सब लोक भला साधु कहते हैं अरु सच्छास्त्र सोहै,जिसविषे ब्रह्मनिरूपण होवै; ऐसे संतोंका संग अरु सच्छास्त्रोंका विचार होवै; तब शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होती है, जब यह पुरुष श्रुतिविचारद्वारा अपने परम स्वभावविषे स्थितहोताहै,तब ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र भी इसकी दया चाहतेहैं. कहते हैं कि जो यह पुरुष परब्रह्म

हुआ है। हे रामजी! सतोंका संग अरु सच्छास्त्रोंका विचार इसको निर्मल करता है, दृश्यरूप जो मैल है तिसका नाश करता है, जैसे निर्मल रेतकरिकै जलका मैल दूर होता है; अरु परम निर्मल होता है तैसे यह पुरुष निर्मल होता है; अरु चैतन्य होता है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे प्रयत्नोपदेशो नाम पंचमः सर्गः॥५॥

षष्ठः सर्गः ६.

दृश्यासत्यप्रतिपादन।

राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह देव जो तुमने कहा, जिसके जाननेते संसारबधनते मुक्त होता है; सो देव कहाँ स्थित है; अरु किस प्रकार तिसको पाताहै? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह देव दूर नहीं, शरीरविषे स्थितहै, नित्य चिन्मात्रहै; सर्वविषे पूर्ण है, अरु सर्व विश्वते रहित है, चंद्रमाको मस्तकविषे धरनहारा जो सदाशिवहै सो चिन्मात्ररूप है अरु कमलज ब्रह्मा भी चिन्मात्ररूप है; अरु कमलनाभ विष्णु भी चिन्मात्र है इद्रादिक सब चिन्मात्ररूप है, अरु सब जगत् चिन्मात्ररूप है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह तौ अज्ञानी बालक भी कहते हैं; कि आत्मा चिन्मात्र ह; यह तुम्हारे उपदेशकरि क्या सिद्ध हुआ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी यह विश्व जो चिन्मात्र तू जानता है, इसके जाननेते संसारसमुद्रको नहीं लंघ सकता, इस चैतन्यका नाम ससार है यह चैतन्य जीव है; पशु है. ससार नामरूप है, इसते जरामरणरूप तरंग उत्पन्न होते हैं, काहेते जो हेयरूप दुःख पाता है ॥ हे रामजी! चैतन्य होकरि जो चैत्यता है. सो अनर्थका कारण है, अरु चैत्यते रहित चैतन्य है; सो परमात्मा है, तिस परमात्माको जानिकारि मुक्ति होती है, तब चैत्यता मिटि जाती है ॥ हे रामजी! परमात्माके जाननेते हृदयकी चिज्जडग्रंथि टूट पडतीहै, अर्थ यह जो अह मम नष्ट होजाताहै, अरु सर्व संशय छेदे जाते हैं, सर्व कर्म क्षीण हो जाते हैं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! चित्त चैतन्योन्मुखत्व होता है, तब आगे दृश्य भासताहै,

सो स्पष्ट भासता है, इसके होते चित्तके रोकनेको कैसे समर्थ होता है, अरु दृश्य किस प्रकार निवृत्त होता है ?॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! दृश्यसंयोगी जो चैतन्य है, सो जीव है, जन्मरूपी जंगलविषे भटकता भटकता थक पडता है, इस चेतनको जो चैत्य कहते हैं; अर्थ यह कि, च्चिदाभास जीव प्रकाशी सो पंडित भी मूर्ख है यह तौ संसारी जीव है इसके जाननेते मुक्ति कैसी होवै, मुक्ति परमात्माके जाननेते होती है, अरु सर्व दुःख नाश होते हैं, जैसे विषविषूचिका रोग उत्तम औषधकारि निवृत्त होता है, तैसे परमात्माके जाननेते मुक्त होता है ॥राम उवाच॥ हे भगवन् ! परमात्माका क्या रूप हैं; जिसके जाननेते मोहरूपी समुद्रको तरता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! देशते देशांतरको निमेषविषे दूर जो संवित् जाता है,तिसको मध्य जो ज्ञानसंवित् है, सो परमात्माका रूप है,अरु जहाँ संसारका अत्यंत अभाव होता है; तिसके पीछे बोधमात्र शेष रहता है, सो रूप परमात्माका है॥हे रामजी ! जहाँ दृश्य द्रष्टा दर्शनका अभाव होता है;ऐसा जो आकाश है, सो रूप परमात्माका है, अरु जो अशून्य है, अरु शून्यकी नाईं स्थित है; जिसविषे सृष्टिका समूह शून्य है; ऐसी अद्वैत सत्ता है; सो रूप परमात्माका है॥हे रामजी ! महाचेतनरूप बड़े पर्वतकी नाईं स्थित है, अरु अजड हैं, अरु जडकी नाईं स्थित है; सो रूप परमात्माका है; सबके अंतर बाहिर स्थित है; अरु सबको प्रकाशता है; सो परमात्माका रूप है ॥ हे रामजी ! जैसे सूर्यका प्रकाशरूप है; अरु जैसे आकाश शून्यरूप है; तैसे यह जगत् आत्मारूप है॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो सर्व परमात्माही है; तौ वह क्यों नहीं भासता ? और सब जगत् भासता है; इस जगत्का निर्वाण कैसे होवे ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जगत् भ्रमकरिकै उत्पन्न हुआ है; वास्तव कछु नहीं जैसे आकाशविषे नीलता भासती है; तैसे आत्माविषे जगत् भासता है; जब जगत्का अत्यंत अभाव जानैगा तब परमात्माका साक्षात्कार होवैगा; और किसी उपायकरि नहीं होवैगा; जब दृश्यका अत्यंत अभाव करैगा तब दृश्य उसी प्रकार स्थित रहैगा; अरु तुझको परमार्थसत्ताही भासैगी ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी जो आदर्श है,

सो दृश्यके प्रतिबिंबविना कदाचित् नहीं रहता; जबलग दृश्यका अत्यंत अभाव नहीं होता तबलग परमबोधका साक्षात्कार नहीं होता ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह दृश्य जाल आडंबर मनविषे कैसे स्थित हुआ है; जैसे सरसोंके दानेविषे सुमेरुका आना आश्चर्य है; तैसे जगत्का आना मनविषे आश्चर्य है, ॥वसिष्ठ उवाच॥हे रामजी ! एक दिन तू वेद-धर्मकी प्रवृत्ति सकाम यज्ञयागादिक त्रिगुणते रहित होकरि स्थित हो; सत्संगति अरु सच्छास्त्रपरायण हो;तब एक क्षणविषे दृश्यरूपी मैल दूरमें जायगा; जैसे सूर्यकी किरणें जाननेते जलका अभाव हो जाता है; तैसे दृश्यभ्रम तेरा अभाव हो जावैगा; जब दृश्यका अभावहुआ तब द्रष्टा भी शांत होवैगा; जब दोनोंका अभाव हुआ तब पाछे शुद्ध आत्मसत्ता ही भासैगी ॥ हे रामजी ! जबलग द्रष्टा है; तबलग दृश्य है; अरु जबलगे दृश्य है तबलग द्रष्टा है; जैसे एककी अपेक्षाकरि दो होते हैं; दो हैं तौ एक है; एक है,तब दो भी हैं; एक न होवै तब दो कहाँ होवै तैसे एकके अभाव हुए दोनोंका अभाव होताहै;द्रष्टाकी अपेक्षाकरि दृश्यहै; दृश्यकी अपेक्षा करिकै द्रष्टा है; एकके अभावकरि दोनोंका अभाव हो जाता है. ॥ हे रामजी ! अहंताते आदि लेकरि जो दृश्य है सो तेरे अर्थ कार्य दूर करौंगा,मार्जन कर देवौंगा; आत्मसत्ताते जो इतर दृश्यसत्ता भासती है ॥ हे रामजी ! अनात्मा आदि लेकरि जो दृश्य है; सोई मैल है; तिसते रहित हुआ चित्तरूपी दर्पण निर्मल होवैगा; जो पदार्थ असत्य है; तिसका कदाचित् सत् नहीं होना;अरु जो पदार्थ सत् है, सो असत् कदाचित् नहीं होना; जो वस्तु सत् न होवै; तिसका मार्जन करना क्या बात है ? हे रामजी ! यह जगत् आदि उत्पन्न नहीं भया; जो कछु दृश्य भासता है; सो भ्रांतिमात्र है; सर्व निर्मल ब्रह्म चैतन्य है, जैसे सुवर्णते भूषण होता है, सो सुवर्ण भूषणते भिन्न नहीं ॥ जगत् अरु ब्रह्मविषे भेद कछु नहीं ॥ हे रामजी ! दृश्यरूपी मलके मार्जन अर्थ मैं बहुत प्रकारकी युक्ति तुझको विस्तारकरिकै कहौंगा, तिसकरि तुझको अद्वैतसत्ताका भान होवैगा, यह जगत् जो तुझको भासता है.सो किसी कारणद्वारा उपजा नहीं,जैसे मरुस्थलकी नदी भासतीहै, जैसे आकाश-

विषे दूसरा चंद्रमा भासता है; तैसे यह जगत् कारण विना भासता है; जैसे मरुस्थलविषे जल नहीं, जैसे वंध्याका पुत्र नहीं, जैसे आकाशविषे वृक्ष नहीं तैसे यह जगत् है नहीं; जो कछु देखता है, सो निरामय ब्रह्म है; यह जो कछु तुझको कहा है, सो वाणीमात्र नहीं कहा; युक्तिपूर्वक कहा है॥ हे रामजी! गुरोंकी कही युक्तिको जो मूर्खताकरि त्याग करते हैं, तिनको सिद्धांत नहीं प्राप्त होता॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे दृश्यासत्यप्रतिपादनं नाम षष्ठः सर्गः ६

सप्तमः सर्गः ७.

सच्छास्त्रनिर्णय।

राम उवाच, हे मुनीश्वर! यह युक्ति कौन है, अरु कैसे प्राप्त होतीहै! जिसके धारेते पुरुष आत्मपदको प्राप्त होता है!॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! मिथ्याज्ञान विषूचिका जगत् नामकी बहुत कालकी दृढ हो रही है; सो विचाररूपी मंत्रकरिके शांत होती है॥ हे रामजी! बोधकी सिद्धता अर्थ तुझको आख्यान कहता हौं तिसको श्रवण करके तू मुक्तात्मा होवैगा अरु जो अर्द्ध प्रबुद्ध होइकरि तू उठ जावैगा, तो तिर्यगादिक धर्मको प्राप्त होवैगा॥ हे रामजी! जिस अर्थके पानेकी इच्छा करता है; तिसके पाने अनुसार यत्न भी करे; तौ अवश्यमेव तिसको पाता है, जो थकिकरि फिरे नहीं ताते सत्संगति अरु सच्छास्त्रपरायण होवै; जब तू इनके अर्थविषे दृढ अभ्यास करैगा; तबकेतेक दिनोंविषे परमपदको पावैगा॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! आत्मबोधका कारण कौन शास्त्र है? शास्त्रोंविषे श्रेष्ठ कौन है जिसके जाननेते शोक न रहै॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे महामते रामजी! आत्मबोधका जो कारण है; सो शास्त्रविषे परम शास्त्र महारामायण है, जिसविषे बडे इतिहास हैं; जिसकरि परमबोधकी प्राप्ति होती है॥ हे रामजी! सर्व इतिहासका सार मैं तुझको कहता हौं; जिसको समझकरि जीवन्मुक्त होवैगा, अरु जगत् न भासैगा॥ जैसे स्वप्नते जागे हुए स्वप्नके पदार्थ भासते हैं; जो कछु सिद्धांत है, तिस सबका सिद्धांत

इसविषे है; अरु जो इसविषे नहीं सो औरविषेभी नहीं इसको सर्व शास्त्र विज्ञानभंडार बुद्धिमान् जानते हैं ॥ हे रामजी ! जो पुरुष श्रद्धासयुक्त इसको श्रवण करै, अरु नित्यही सुनिके विचारै, तौ उसकी बुद्धि उदार होवै; अरु परमबोधको प्राप्त होवै इसविषे संशय नहीं; अरु जिसको इस शास्त्रविषे रुचि नहीं सो पापात्माहै; उसको चाहिये कि प्रथम और शास्त्रको विचारै; तिसके अनंतर इसको विचारै;इसको विचारिकरि जीवन्मुक्त होवै; जैसे उत्तम औषधिकरि रोग शीघ्रही निवृत्त होता है; तैसे इस शास्त्रके श्रवण अरु विचारनेकरि शीघ्रही अज्ञान नष्ट होवैगा; ॥ अरु आत्मपदको प्राप्त होवैगा; हे रामजी ! आत्मपदकी प्राप्ति वरशापकी नाईं नहीं होती; जो वर देनेकरि आत्मज्ञान प्राप्त होवै, जब विचार अभ्यास करै; तब आत्मज्ञान प्राप्त होताहै ॥ हे रामजी !,दान देने करि, तपस्याकरि, वेदके पठनेकरि भी आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती; केवल आत्मविचारकरि आत्मपदकी प्राप्ति होती है; अरु संसारभ्रम अन्यथा नष्ट नहीं होता ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सच्छास्त्रनिर्णयो नामसप्तमः सर्गः ।७।।

अष्टमः सर्गः ८.

परमकारणवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषका चित्त आत्मविषे है; अरु प्राणोंकी चेष्टा भी आत्माकी ओरहै;अरु परस्पर बोधभी आत्माकाहै,अरु कहता भी आत्माकोहै;अरु तोषवान भी आत्माकरिहै;रमताभी आत्मविषेहै; ऐसा जो ज्ञाननिष्ठ जीवन्मुक्त है;सो बहुरि विदेहमुक्त होताहै ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जीवन्मुक्त अरु विदेहमुक्तका क्या लक्षण है ? जो उसकी दृष्टिको लेकरि मैं भी तैसेही करौं॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जो पुरुष सब जगत्का व्यवहार करता है, अरु हृदयमें द्वैतभ्रम शांत भया है; सो जीवन्मुक्त है, अरु जो सब क्रियाको करता है; अंतरते आकाशकी नाईं निर्लेप रहता है, सो जीवनमुक्त है जो पुरुष संसारकी दशाते

सुषुप्त भया है; अरु स्वस्वरूपविषे जगत् भया है; जगत्भ्रम जिसका निवृत्त भया है; सो जीवन्मुक्त है ॥ हे रामजी! इष्टकी प्राप्तिविषे जिसके मुखकी कांति बढती नहीं; अरु अनिष्टकी प्राप्तिविषे न्यून नहीं होती, सो पुरुष जीवन्मुक्त है, और जो पुरुष सब व्यवहार करता है; अरु अंतरमें रागद्वेषते रहित शीतल रहता है, सो जीवन्मुक्त है. हे रामजी! जो पुरुष रागद्वेषादिक संयुक्त दृष्ट आता है, इष्टविषे रागवान् दीखता है; अनिष्टविषे द्वेषवान् दृष्ट आता है, अरु अंतर सदा शांतिरूप है, सो जीवन्मुक्तहै; जिस पुरुषको अहं ममताका अभावहै, अरु बुद्धि किसीविषे लेपायमान नहीं होती सो कर्म करै अथवा न करै परंतु जीवन्मुक्त है, ॥ हे रामजी! जिन पुरुपनको मान, अपमान, भय, क्रोधविषे विकार कोई नहीं उपजता, आकाशकी नाईं शून्य हो गये हैं; सो जीवन्मुक्त हैं, जो पुरुष भोक्ता भी अंतरते अभोक्ताहैं, सचित्त दृष्टि आते हैं, अरु अचित्तहैं सो जीवन्मुक्त हैं, जिस पुरुषते लोक उद्वेगवान् नहीं होते, अरु लोकोंते वह उद्वेगवान् नहीं होता ॥ रागद्वेपभयक्रोधते रहित है, सो जीवन्मुक्त है ॥ हे रामजी! जो पुरुष चित्तके फुरनेकारि जगत्की उत्पत्ति जानता है, अरु चित्तके अफुरण हुए जगत्का प्रलय जानता है, अरु सर्वविषे समबुद्ध है, सो जीवन्मुक्त है, जो पुरुष भोगों करिकै जीवता दृष्टि आता है, अरु मृतककी नाईं स्थित है, चेष्टा करता दृष्ट आता है, पर्वतकी नाईं अचल है, सो जीवन्मुक्त है ॥ हे रामजी! जो पुरुष व्यवहार करता दृष्ट आवता है, अरु चित्तविषे इष्ट अनिष्ट विकार कोऊ नहीं सो जीवन्मुक्त है, जिस पुरुषको सब जगत् आकाशरूप भया है ॥ अरु निर्वासना बुद्धि भई, सो जीवन्मुक्त है, काहेते जो सदा आत्मस्वभावविषे स्थित है सब जगत्को ब्रह्मस्वरूप जानता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जीवन्मुक्तकी तुमने कठिन गति कही है, इष्ट अनिष्टविषे समशीतल बुद्धि कैसे होती है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इष्ट अनिष्टरूपी जगत् अज्ञानीको भासता है, ज्ञानीको सब आकाशरूप भासताहै; रागद्वेष किसीविषे नहीं होता, औरकी दृष्टिविषे चेष्टा करता दृष्टि आता है, परतु जगत्की वार्ताते सुषुप्त भया है ॥ हे रामजी! जीवन्मुक्त कोऊ काल रहि-

करि जब शरीरको त्यागता है, तब ब्रह्मपदको प्राप्त होता है, जैसे पवन स्पंदको त्याग करि निस्पंद होता है; तैसे जीवन्मुक्त पदको त्याग करि विदेह मुक्त होता है, तब ऐसे होइ करि स्थित होता है; सूर्य होइकरि तपावता वही है, ब्रह्मा होइकरि उत्पन्न करता है; विष्णु होइकरि प्रतिपालना करता है, रुद्र होयके संहार करता है, पृथ्वी होयके सब भूतोंको धारताहै, औषधि अन्नादिकोंको उत्पन्न करता है; पर्वत होयके पृथ्वीको राखता है, जल होयके द्रवता रस देता है; अग्नि होयके उष्णताको धारता है; पवन होयके पदार्थोंको सुखावता है, चंद्रमा होयके औषधियोंको पुष्ट करताहै. आकाश होयके सब पदार्थोंको ठौर देता है, मेघ होयके वर्षा करता है. स्थावर जंगम जेता कछु जगत् है, सर्वविषे आत्मा होयके स्थित होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! विदेहमुक्त शरीरके धारणते क्षोभवान् होता है. फिर जगत्विषे आवता है, त्रिलोकीका भ्रम क्यों नहीं मिटता ?॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जगत आडंबर अज्ञानीके हृदयमें स्थित है; ज्ञानवान्को सब चिदाकाशरूप हैं, विदेहमुक्त सोई रूप होता है, जहाँ उदय अस्तकी कल्पना कोऊ नहीं, केवल शुद्ध बोधमात्र है ॥ हे रामजी! यह जगत् आदिते उपजा नहीं, अज्ञानकरिके भासता है; मैं तू अरु जगत् सब आकाशरूप हैं, जैसे आकाशमें नीलता और दूसरा चंद्रमा भासते हैं, जैसे मरुस्थलमें जल भासता है; तैसे आत्मामें जगत् भासता है ॥ हे रामजी! जैसे स्वर्णमें भूषण उपजा कछु नहीं; जैसे समुद्रमें तरंग होतेहैं, तैसे आत्मामें जगत् उपजा नहीं, जेता कछु जगत्जाल है, सो मनके फुरनेते भासता है, स्वरूपते बना कछु नहीं, ज्ञानीको सदा यही निश्चय रहता है, बहुरि जगत्क्षोभ उसको कैसे भासै ॥ हे रामजी ! यह भी मैं तेरे जनावनेके मात्र कहा है नहीं तौ जगत् कहाँहै, जगत्का अत्यंत अभाव है ॥ राम उवाच हे भगवन्! जगत्के अत्यंत अभाव हुएविना आत्मबोधकी प्राप्ति नहीं होती ?॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! दृश्य द्रष्टा मिथ्या भ्रम उदय हुआ है, जब दोनोंमेंते एकका अभाव होवै, तब दोनोंकाअभाव होवै॥ जबदोनोंका अभाव होवै तब शुद्ध बोधमात्र शेष रहै, जिसप्रकार जगत्का अत्यंत अभाव होवै सो युक्ति तुझको कहौंहौं॥ हे रामजी! चिरकाल जगत् दृढ हो

रहा है सो मिथ्याज्ञान विषूचिका है, सो विचाररूपी मंत्रसों निवृत्त होता है, जैसे पर्वतका चढना अरु उतरना शनैः शनैः होता है, तैसे अविरुद्धकभ्रम चिरकालका दृढ हो रहा है, विचारकरि अनुक्रमते तिसकी निवृत्ति होती है ॥ जगत्के अत्यंत अभाव हुएविना आत्मबोध नहीं होता; सो अत्यंत अभावके निमित्त मैं युक्ति कहता हौं; तिसके समझनेते जगत्भ्रम नष्ट होवैगा; अरु जीवन्मुक्त होकरि तूं विचरैगा॥ हे रामजी ! बंधनकरि सोई बँधता है; जो उपजा होता है, अरु मुक्त भी सो होताहै; जो उपजा होताहै, यह जगत् तुझको भासता है, सो उपजा नहीं अरु मरुस्थलविषे नदी भासती है; सो उपजी नहीं, भ्रमसे भासती है, तैसे आत्मामें जगत् भासता है, सो उपजा नहीं; भ्रमकरिकै भासता है; वास्तव नहीं, जैसे अर्धमीलितनेत्र पुरुषको आकाशविषे तिरवरे भासते हैं, तैसे भ्रमकरिकै जगत् भासता है, रामजी ! जब महाप्रलय होता है; तब स्थावर, जंगम, देवता, किन्नर, दैत्य, मनुष्य, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक जगत्का अभाव होता है, ताके अनंतर जो रहता है, सो इंद्रियग्राहक सत्ता नहीं, असत्य भी नहीं, न शून्य है, न प्रकाश है, न अंधकार है, न द्रष्टा है, न दृश्य है, न केवलहै, न अकेवल है, न चेतन है, न जड है, न ज्ञान है, न अज्ञान है, न साकार है, न निराकार है, न किंचन है, न अकिंचन है, सर्व शब्दोंते रहित है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं ॥ अरु जो है तो चैत्यते रहित चेतन आत्मतत्त्वमात्रही जिसविषे अहंत्वंकी कल्पना कोऊ नहीं, ऐसे शेष रहता है; पूर्ण अपूर्ण आदिमध्यअंतते रहित है; सोई सत्ता जगत्रूप होय भासती है; और कछु जगत् बना नहीं; जैसे मरीचिकामें जल भासता है; तैसे आत्मामें जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! जब चित्त शक्ति स्पंदरूप हो भासती है तब जगदाकार भासता है। अरु जब निस्पंद होती है, तब जगत्का अभाव होता है; अरु आत्मसत्ता सदा एकरस रहती है; जैसे वायु स्पंदरूप होताहै, तब भासता है, निस्पंदरूप होता है; तब नहीं भासता परंतु वायु एकही है, तैसे चित्तसंवेदन स्पंदरूप होता है; तब जगत्रूप होय भासता है, जब निस्पंदरूप होता है, तब जगत् मिट जाता है ॥ हे रामजी ! चेतनका जानना भी तब होता है, जब संवेदन स्पंद-

रूप होता है, जैसे सुगंधिका ग्रहण आधार भूतकरि होता है, आधारभूत द्रव्यविना सुगंधिका ग्रहण नहीं होता, अरु वस्त्र श्वेत होता है, तब रंगको ग्रहण करता है; अन्यथा रंग नहीं चढता; तैसे आत्माका जानना स्पदकरि होताहै; स्पंदविना जाननेकी कल्पना भी नहीं होती, जैसे आकाशमें शून्यता भासती है; अथवा जैसे अग्निमें उष्णता भासती है; तैसे आत्मामें जगत् भासता है; अनन्यरूप है; जैसे जल द्रवतासों तरंगरूप होयके भासता है; तैसे आत्मसत्ता जगत्रूप होयके भासती है; सो आकाशवत् शुद्धहै;अरु श्रवण चक्षु नासिका त्वचा देहते रहितहै; शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधते रहित है; अरु सर्व ओरते श्रवण करता बोलता, सूंघता, स्पर्श करता रस लेता भी आपही है; आत्मरूपी सूर्यकी किरणों विषे जलरूपी त्रिलोकी फुरती भासती है, जैसे जलमें चक्र आवृत फुरते भासते हैं, सो जलते इतर कछु नहीं; जलरूपही हैं, तैसे जगत् आत्माते भिन्न कछु नहीं; आत्मारूप है॥ आत्माही जगत्रूप होकरि भासता है; रसना नहीं, अरु बोलता है; अभोक्ता है; सोई भोक्ता होयके भासता है; अफुर है सोई फुरता भासता है; अद्वैत है सोई द्वैतरूप होइकरि भासता है; निराकार है सोई साकाररूप होयके भासता है हे रामजी! सर्व शब्दते आत्मसत्ता अतीत है; सोई सर्व शब्दोंको धारती है; अन्य द्रष्टा होयके भासती है, परतु इतर कछु हुआ नहीं, कई सृष्टि समान होती हैं, कई विलक्षण होती है, परंतु स्वरूपते इतर कछु हुई नहीं; सदा आत्मरूप है; जैसे सुवर्णमें भूषण समान आकार भी होते हैं; अरु विलक्षण आकार भी होते हैं. कंकणते आदिलेके जो भूषण हैं, सो स्वर्णते इतर कछु नहीं होते, स्वर्णरूपही हैं, तैसे जगत् आत्मस्वरूप है, शुद्ध आकाशते भी निर्मल है, बोधमात्र है॥ हे रामजी! जब तिसमें तू स्थिर होवेगा, तब जगत्भ्रम मिट जावेगा, जगत् वास्तवते कछु नहीं; सदा ज्योंका त्यों आपविषे स्थित है; मनके फुरणेकरि जगत् भासता है, मनके फुरणेते रहित हुए सब कल्पना मिटि जाती है; आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों भासती है; सो सत्ता ज्योंकी त्योंही है, सबका अधिष्ठानरूप है यह जगत्

सब उसीते हुआ है, अरु वहीरूप है; सबका कारण आत्मसत्ता है,उसका कारण कोऊ नहीं, अकारण है, काहेते जो अद्वैत है, सो अजर है, अमर है. सब कल्पनाते रहित है; शुद्ध चिन्मात्ररूप है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे परमकारणवर्णनं नाम अष्टमः सर्गः८-

नवमः सर्गः ९.

परमात्मस्वरूपवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जब महाप्रलय होता है, अरु सब पदार्थ नष्ट हो जाते हैं अरु तिसके पाछे जो रहता है,सो शून्य कहिये अथवा प्रकाश कहिये; तम है नहीं, चेतन है,अथवा जीव है; मन है; नहीं, बुद्धि है; सत् असत् किंचन अकिंचन इनहूमें कोऊ तौ होवैगा ? तुम कैसे कहते हौ जो वाणीकी गम नहीं ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह तुझने बडा प्रश्न किया है; तिसको विना यत्न मैं नाश करौंगा; जैसे सूर्य उदय हुए अंधकारका नाश होता हैं; तैसे तेरे संशयका नाश होवैगा. हे रामजी ! जब महाप्रलय होता है; तब संपूर्ण दृश्यका अभाव हो जाता है, पाछे जो शेप रहता सो शून्य नहीं, अरु दृश्याभास उसविषे सदा रहता है;अरु वस्तुते कछु हुआ नहीं,जैसे स्तंभविषे शिल्पी पुतलियोंको कल्पता है कि, एती पुतलियां इस स्तंभसों निकसैंगी; सो उसविषे शिल्पी कल्पता है; वहां तौ स्तंभही है; जो स्तंभ न होवै तौ शिल्पी पुतलियां किसविषे कल्पै ? तैसे आत्मरूपी स्तंभविषे मनरूपी शिल्पी जगद्रूपी पुतलियां कल्पताहै, जो आत्मा न होवै, तब पुतलियां किसविषे कल्पै ? जैसे स्तंभविपे पुतलियां स्तंभरूप हैं; तैसे सब जगत् ब्रह्मरूप है, ब्रह्मते इतर जगतका होना नहीं, जैसे पुतलियोंका सद्भाव अरु असद्भाव स्तंभविषे हैं; काहेते जो अधिष्ठानरूप स्तंभ है, स्तंभ विना पुतलियां नहीं होती तैसे जगत् आत्मा विना नहीं होता ॥ हे रामजी ! सद्भाव हो जाता है, सो सतते होता है, असतते नहीं होता, अरु असद्भाव भी सिद्ध होता है, सो सतहीविषे होता है;असतविषे नहीं होता; ताते सत् शून्य नहीं,जो शून्य होवे तौ भासना किसविषे होवै? जैसे

सोमजलमें तरंगका सद्भाव भी होता है, अरु असद्भाव भी होता है, असद्भाव इस कारणते होता है. कि तरंग भिन्न कछु नहीं, अरु सद्भाव इस कारणते होता है कि, जलहीविषे तरंग होते हैं. संत् असद्भाव इसी कारणते जलविषे होता है तैसे जगत्का सद्भाव असद्भाव आत्माविषे होता है. शून्यविषे नहीं होता जैसे सोमजलमें कहनेमात्र तरंगहै नहीं, जल ही है, तैसे जगत् कहने मात्र है, अरु हुआ कछु नहीं एक सत्ताही है, अरु शून्यरूप अरु अशून्य भी नहीं, काहेते कि,शून्य अशून्य यह जो दोनों शब्द हैं, सो उसविषे कल्पित हैं;काहेते कि,शून्य उसको कहते हैं, जो अभावरूप होवै सद्भावते रहित, अशून्य उसको कहते हैं, जो विद्यमानता पावै सो सत्ता इन दोनोंते रहित है,अरु अशून्य भी शून्यका प्रतियोगी होता है, जो शून्य नहीं तौ अशून्य कहांते होवै ? यह दोनों अभावमात्र हैं ॥ हे रामजी ! यह जो सूर्य तारा दीपक आदिक भौतिक प्रकाश हैं, सो भी वहाँ नहीं,काहेते कि, यह प्रकाश अंधकारका विरोधी है, जो यह प्रकाश होता तौ अंधकार सिद्ध न होता सो तौ अंधकारभी सिद्ध होताहै; इसी प्रकारते कहताहै कि प्रकाश भी वहां नहीं, अरु जो कहिये तमही रहता होवेगा, तौ तम भी नहीं काहेते कि सूर्य आदिक जिसकारि प्रकाशते हैं, सो तम कैसे होवे ? आत्मप्रकाशविना सूर्यादिक भी तमरूप है, ताते न शून्य है, न अशून्य है, न प्रकाशहै, न तम है केवल आत्मतत्त्वमात्र है; जैसे स्तंभमें पुतलियां कछु हुई नहीं, तैसे आत्मामें कछु जगत् हुआ नहीं,जैसे बिल्ली अरु बिल्लीकी मज्जाविषे कछु भेद नहीं तैसे आत्मा अरु जगत्में भेद कछु नहीं जैसे जल अरु तरंगमें भेद कछु नही जैसे मृत्तिका अरु घटमें कछु भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्में कछु भेद नहीं, नाममात्र भेद है; वास्तवमें भेद कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जल अरु मृत्तिकाका दृष्टांत जो दिया है, सो आत्मविषे ऐसे भी नहीं ॥ जैसे जलमें तरंग होता है; मृत्तिकामें घट होता है, सो भी परिणामरूप होता है, अरु आत्मामें जगत्भान नहीं है, अरु जो मानसिक है, तौ आकाशरूप है; ताते जगत् कछु भिन्न नहीं रूप अवलोकन मनसा कार्यता जो कछु भासते हैं, सो सब आकाशरूप हैं आत्मसत्ताही चित्तके फुरनेकारि जगत्रूप है भासतीहै; जगत् कछु दूसरीवस्तु

नहीं जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलाभास होता है; तैसे आत्मविषे जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! स्तंभविषे जो पुतलियां कल्पता है, सो भी न होती हैं, अरु यहाँ कल्पनेवाला भी बीचकी पुतली है वह भी होवे विना भासती है ॥ हे रामजी ! जिसविषे यह जगत् भासता है तिसको शून्य कैसे कहिये ? अरु जो कहिये चैतन्य है तौ भी नहीं, काहेते कि चैतन्य जानना भी तब होता है, जब चित्कला फुरती है; जहाँ फुरना न होवे, तहाँ चैतन्यता कैसे रहै ? जैसे मिरचको खाता है तब तिसकी तिखाई भासती है; खाएविना नहीं भासती, तैसे चैतन्य जानना भी स्पंदकलाविषे होता है, आत्मविषे जानना भी नहीं ॥ चेतनताते रहित चिन्मात्र है, अक्षय सुषुप्तिरूप है; तिसको तुरीय कहते हैं; सो ज्ञेय ज्ञानवान्‌करि गम्य है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष तिसविषे स्थित हुए हैं, तिनको संसाररूपी सर्प डस नहीं सकता; वह अचैत्य चिन्मात्र होता है; जिसकी आत्माविषे स्थिति नहीं, तिसको दृश्यरूपी सर्प डसता है; आत्मसत्ताविषे तौ कछु द्वैत हुआ नहीं आत्मसत्ता आकाशतेभी स्वच्छ है, द्रष्टा दर्शन दृश्य इनकी स्वतः जो अनुभवसत्ता है, सो आत्माका रूप है; जब अभ्यास करै तब तिसको प्राप्त होवे ॥ हे रामजी ! तिसविषे द्वैतकल्पना कछु नहीं, अद्वैतमात्र है; न द्रष्टा है, न जीव है; न कोऊ विकार है, अरु न स्थूल है, न सूक्ष्म है, एक शुद्ध अद्वैतरूप है, अपने आपविषे स्थित है, जो यह चैत्यका फुरणाही आदि नहीं हुआ, चेतनकलाका तो जीव कैसे होवे ? जो जीवही नहीं तौ बुद्धि कैसे होवै ? जो बुद्धिही नहीं तौ मन इंद्रियां कैसे होवैं ? जो इंद्रियां नहीं तौ देह कैसे होवे ? जो देह नहीं तो जगत् कैसे होवै ? हे रामजी ! आत्मसत्ताविषे सब कल्पना मिट जाती हैं; तिसविषे कछु कहना नहीं बनता, पूर्ण अपूर्ण सत्‌असत्‌ते न्यारा है; भाव अभावका विचार कोऊ नहीं, आदिमध्यअंतकी कल्पना कोऊ नहीं; अजर, अमर, आनंद, अनंत, चित्तस्वरूप है; अचेत चिन्मात्र अवाच्य पद है; सूक्ष्मते भी सूक्ष्म है; आकाशते भी अधिक सूक्ष्म है, अरु स्थूलते भी स्थूल है; एक अद्वैतरूप है; अनंत चिद्रूप है ॥ रामउवाच ॥ हे भगवन् ! यह जो अचिंत्य

चिन्मात्र परमार्थ सत्ता तुमने कही, तिसका रूप बोधके निमित्त मुझको बहुरि कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब महा प्रलय होता है. तब सब जगत् नष्ट हो जाता है, परब्रह्म सत्ता शेष रहती है; तिसका रूप कहता हौं मनरूपी ब्रह्म है, जब मनकी वृत्ति क्षीण होती है, सो वृत्ति कौन है? एक प्रमाणवृत्ति है, दूजी विपर्ययवृत्ति है, तीसरी विकल्प वृत्ति है, चौथी अभाववृत्ति है, पंचम स्मरणवृत्ति है प्रमाणवृत्ति आगे तीन प्रकारकी है, एक प्रत्यक्ष द्वितीय अनुमान; धुवाँ अग्नि जाननेकी वृत्ति शब्दरूप आप्तकामिका ये तीन प्रमाणवृत्ति हैं; द्वितीयविपर्ययवृत्ति हैं होवै अरु भासै और तृतीय विकल्पवृत्ति सो शब्दज्ञान होवै अरु अर्थ-ज्ञान न होवै; जैसे कहिये चैतन्य पुरुष कहा जो एक पुरुष होवै अरु उसका द्वितीय चैतन्यस्वरूप होवै तब चैतन्य पुरुष कहा जाय, चेतन ईश्वररूप है, अरु साक्षी पुरुषरूप होवै सो जैसे सीप पडी होवै तिसविषे संशय वृत्ति होवै; साक्षीरूपी भासै साक्षीसीपीभास इसका नाम विकल्प है चतुर्थ स्मरणवृत्ति है पंचम निद्रा अभाववृत्ति है यह पंचम वृत्ति अरु इनका अभिमानी मन जो है तीन शरीरका अभिमानी अहंकाररूप तिसका जब नाश होवै तब पाछे जो रहता है, सो निश्चल सत्ता अनंत आत्मा है, असत् नहीं कहि सकता है। हे रामजी ! जब जाग्रतका अभाव होता है अरु सुषुप्ति नहीं आई, वह जो रूप है, सो परमात्माका है; अंगुष्ठको जो शीत उष्णका स्पर्श होता है तिसके अनुभव करनहारी परमात्मसत्ता है, जिसविषे द्रष्टा, दर्शन, दृश्य उपजते हैं अरु बहुरि लीन होते हैं, सो परमात्माका रूप है कैसी सत्ता है, जिस विषे चेतनता भी नहीं ॥ हे रामजी ! चैतन्य जो है जीव अरु जड जो है देहादिक, सो जिसविषे दोनों नहीं ऐसा जो अचेत चिन्मात्र है, सो परमात्मारूप है अरु जो सब व्यवहार होता है; अरु अंतर जिसके आकाशरूपहै, कोऊ क्षोभ नहीं ऐसी जो सत्ता है सो पर-मात्माका रूप है; शून्यहै परंतु शून्यताते रहितहै॥ हे रामजी ! द्रष्टा, दर्शन दृश्य जिसविषे तीनों प्रतिबिंबितहै अरु आकार है ऐसी जो सत्ता है, सो परमात्माका रूप है. स्थावरविषे जो स्थावर भावकरि व्यापा है चैतन्यविषे जो चैतन्यभावकरि व्यापा है, मनबुद्धि इंद्रियां जिसको पाय

नहीं सकतीं ऐसी जो सत्ता है, सो परमात्माका रूप है ॥ हे रामजी ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इनका जहां अभाव होजाता है, तिसके पाछे जो शेष रहता जिसविषे विकल्प कोऊ नहीं, अचेत चिन्मात्र जो सत्ता है, सो रूप परमात्माका है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेपरमात्मस्वरूपवर्णनंनाम नवमःसर्गः९

दशमः सर्गः १०.

परमार्थरूपवर्णन।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह दृश्य जो स्पष्ट भासता है, सो महाप्रलयमें कहाँ जाता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! वंध्या स्त्रीका पुत्र कहांते आता है, अरु कहां जाता है ? आकाशका वन कहांते आता है अरु कहाँ जाता है ? जैसे आकाशका वन है. तैसे यह जगत् है ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! वंध्याका पुत्र अरु आकाशका वन तीनों काल हैं नहीं, शब्दमात्र है, उपजा कछु नहीं, अरु यह जगत् स्पष्ट भासता है; सो वंध्याके पुत्र समान कैसे होवै ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे वंध्याका पुत्र अरु आकाशका वन उपजा नहीं, तैसे यह जगत् भी उपजा नहीं, जैसे संकल्पपुर होता है. जैसे स्वप्ननगर प्रत्यक्ष भासता है अरु आकाशरूप है, कोऊ पदार्थ सत् नहीं, तैसे यह जगत् आकाशरूप है. कछु उपजा नहीं. जैसे जल अरु तरंगमें भेद कछु नहीं, जैसे काजर अरु श्यामतामें भेद नहीं, तैसे अग्नि अरु उष्णतामें भेद नहीं, जैसे चंद्रमा अरु शीतलताविषे भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद नहीं सदा अपने स्वभावविषे स्थित है, जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद नहीं जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद नहीं, जैसे चंद्रमा अरु शीतलतामें भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्में भेद नहीं ॥ हे रामजी ! जगत् कछु बना नहीं, आत्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे अज्ञानकरके जगत् भासताहै, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासताहै. जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है. जैसे आकाशविषे तरवरे भासते हैं. तैसे आत्माविषे अज्ञानक[illegible]

जगत् भासता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ ॥ हे भगवन् ! दृश्यके अत्यंत अभाव विना बोधकी प्राप्ति नहीं होती, अरु जगत् स्पष्टरूप भासता है. द्रष्टा अरु दृश्य जो मनकरि उदय हुए हैं. सो भ्रम करिके हुए हैं, जो एक भी है, तो दोनों बंध हुए हैं, जब दोनोंविषे एकका अभाव होवै, तब दोनों मुक्त होवैं. काहेते कि, जहां द्रष्टा है, तहां दृश्य भी है, अरु जहां दृश्य है, तहां द्रष्टा भी है. जैसे शुद्ध आदर्श प्रतिबिंबविना नहीं होता. तैसे द्रष्टा दृश्य विना नहीं रहता. अरु दृश्य द्रष्टा विना नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! दोनों विषे एक नष्ट होवै. तब दोनों निर्वाण होवैं. ताते सोई युक्ति कहौ जिसकरि दृश्यको अत्यंत अभाव होवै. अरु आत्मबोध प्राप्त होवै. एक ऐसा भी कहते हैं. जो दृश्य आगे था अब नाश हुआ है. तब उसको भी संसारभाव दिखावैगा, अरु जिसके विद्यमान नहीं भासता, अरु अन्तर उसका सद्भाव है, तौ फेरि संसार देखैगा. जैसे सूक्ष्म बीज विषे वृक्षका सद्भाव होता है, तैसे स्मृति बहुरि संसारको दिखावैगी; अरु तुम कहते हो, जगत्का अत्यंत अभाव होता है, अरु जगत्का कारण कोऊ नहीं, आभासमात्र है; उपजा कछु नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! जिसका अत्यंत अभाव होता है, वह वस्तु वास्तव नहीं होती है; जो नहीं तौ बंधन भी किसीको हुआ नहीं, सब मुक्तस्वरूप हुवे, अरु जगत् प्रत्यक्ष भासता है, ताते सोई युक्ति कहो, जिस करि जगत्का अत्यंत अभाव होवै ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! दृश्यके अत्यंत अभाव निमित्त एक कथा श्रवण कराता हौं; जिसके अर्थ निश्चयकर समझेतें दृश्य शांत हो जावैगा; बहुरि संसार कदाचित् न उपजैगा; जैसे समुद्रविषे धूर नहीं उडती. तैसे तेरे हृदयविषे संसार न रहैगा ॥ हे रामजी ! यह जगत् तुझको भासता है सो अकारणरूप है, इसका कारण कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! जिसका कारण कोऊ न होवै; अरु भासै, तिसको जानिये कि, भ्रममात्र है, उपजा कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे सृष्टि भासती है, सो कोई कारणते उपजी नहीं, संवित्‌रूप है; तैसे स्वर्ग आदि कारणते नहीं उपजा, आभासरूप है, परमात्माका कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जो पदार्थ कारणविना भासै, सो जिस वस्तुविषे भासता है, सोई अधिष्ठानरूप जैसे तुमको स्वप्नविषे स्वप्नका

नगर होइ भासताहै, तौ और पदार्थ वहां कोऊ नहीं, आभासरूप है; संवित् ज्ञान चैत्यताकरिके नगररूप होइ भासता है; तैसे विश्व अकारण आभास आत्मसत्ताते होयके भासता है, जैसे जलविषे द्रवता है, वायुविषे स्पंदता है. जैसे जलविषे रस है, जैसे तेजविषे प्रकाश है, तैसे आत्माविषे चित्तसंवेदन है; जब चित्तसंवेदन स्पंदरूप होता है, तब जगत्रूप होकरि भासता है और जगत् कोऊ वस्तु नहीं ॥ हे रामजी! जैसे और तत्त्वोंके अणु हैं, सो और ठौर भी पायेजाते हैं, अरु आकाशका अणु और ठौर नहीं पायाजाता है, काहेते कि, आकाश शून्यरूप हैं, तैसे आत्माते इतर इस जगत्का भाव कहू नहीं पाया जाता, काहेते कि आभासरूप है, किसी कारणते उपजा नहीं, जो तू कहै कि, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंते जगत् उपजा है, तौ ऐसे कहना भी असंभव है; जैसे छायाते धूप नहीं उपजता, तैसे तत्त्वोंते जगत् नहीं उपजता, काहेते जो आदि आपही नहीं उपजे तो कारण किसका होवै? ताते सर्वदा ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है॥ हे रामजी! आत्मसत्ता जगत्का कारण नहीं, काहेते कि वह, अभूतरूप है; अरु अजडरूप है, सो भूतका अरु जडका कारण कैसे होवै? जैसे धूप परछावेका कारण नहीं तैसे आत्मसत्ता जगत्का कारण नहीं; ताते जगत् कछु हुआ नहीं तौ है क्या? वही सत्ता जगत्रूप हो करि भासतीहै, जैसे स्वर्णभूषणरूप होता है, तौ भूषण कछु उपजा नहीं, तैसे ब्रह्मसत्ता जगत्रूप होकरि भासती है, जैसे अनुभव संवित् स्वप्ननगररूप होइ भासता है, तैसे यह सृष्टि किंचनरूप है, दूसरी वस्तु कछु नहीं, सदा ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है जेता कछु जगत् स्थावरजंगमरूप भासताहै. सो आकाशरूपहै इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणेपरमार्थरूपवर्णनं नामदशमःसर्गः १०

एकादशः सर्गः ११.

जगदुत्पत्तिवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच, हे रामजी! आत्मसत्ता नित्य शुद्ध है, अजर अमर है, सदा अपने आप विषे स्थित है, तिसविषे जिस प्रकार सृष्टि उदय

भई है, सो श्रवण कर, तिसके जाननेते जगत्कल्पना मिटि जावैगी ॥ हे रामजी ! भाव अभाव, ग्रहण त्याग, स्थूल सूक्ष्म, जन्म मरण पदार्थोंकरि जीव पडा छिदता है, सो तिसते तू मुक्त होवैगा; जैसे चूहे सुमेरु पर्वतको चूर्ण नहीं करि सकते तैसे तुझको संसारके भाव अभाव पदार्थ चूर्ण न करि सकैंगे ॥ हे रामजी ! आदि शुद्ध देव अचेत चिन्मात्र है, तिसविषे चैत्यभाव सदा रहता है, काहेते कि, चैतन्यरूप है; जैसे वायुविषे स्पंद शक्ति सदा रहती है; तैसे चिन्मात्रविषे चैत्यका फुरणा रहता है; अहं अस्मि इस भावको प्राप्त हुआ है; इस कारणते तिसका नाम चैतन्य है. हे रामजी ! जबलग चैतन्य संवित् अपने स्वरूपकी ठौर नहीं आता तबलग इसका नाम जीव है, और संकल्पका नाम बीज चित्त संवित् है; तिससे सर्व भूतजात उत्पन्न हुई है ताते सबका जीव चित्त संविद् है; जीवसंवित् जब चैत्यको चेतता भया, तब प्रथम शून्य हुआ, तिसविषे शब्द गुण हुआ, तिस आदि शब्द तन्मात्रते पदवाक्यप्रमाणसहित वेद उत्पन्नभये, जेता कछु जगत्विषे शब्दहै, तिसका बीज तन्मात्रा है, जिसते सर्व वायु अरस्परस होताहै, बहुरि रूप तन्मात्रा हुई, तिससे सूर्य अग्निआदिक प्रकाश हुवाहै, बहुरि रसतन्मात्राहुई जिसते सब जल होता है, सब जलोंका बीज वही है; बहुरि गंध तन्मात्रा हुई, जिसते पूर्ण पृथ्वी होती है, सब पृथ्वीका बीज वही है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार पांचों भूत हुए हैं, पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाशते बहुरि जगत् हुआ है; सो भूत पंचीकृत भी है अरु अपचीकृत भी है, यह भूत शुद्ध चिदाकाशरूप नहीं, काहेते जो सकल्प मैलयुक्त भये हैं, तैसे इसप्रकार चिद णुविषे सृष्टियां भासती हैं, जैसे बट बीजमेंते वटका विस्तार होता है, तैसे चिद्अणुविषे सृष्टि है, कहू क्षणविषे युग भासता है, कहूं युगविपे क्षण भासता है, चिद्अणुविषे अनंत सृष्टि पडी फुरती हैं, जब चित्त संवित् चैत्योन्मुख होता है, तब अनेक सृष्टियां होय भासती हैं, अरु जब चित्त संवितआत्माकी ठौर आता है, तब आत्माके साक्षात्कार होनेकरि सत सृष्टि पिंडाकार होइ जाती हैं, अर्थ यह जो सब आत्मरूप होती हैं ॥ ताते इस जगत्का बीज सूक्ष्मभूत है; अरु इनका बीज चिद् अणुहै. हे रामजी । जैसा बीज होता है, तैसाही वृक्ष होताहै; ताते सब जगत्

चिदाकाशरूप है, संकल्प करके यह जगत् आडंबर होता है संकल्पके मिटेते सब चिदाकाश होता है, जैसे संकल्प आकाशरूपहै, तैसे जगत् भी आकाशरूप है, जो सब आत्मानुभव आकाशरूपहै, ताते क्षणविषे एकरूप होता है, जैसे संकल्पनगर अरु स्वप्नपुर होता है,तैसे यह जगत् है. हे रामजी! इस जगत्का मूल पंचभूत हैं, और तिसका बीज संवित् है, तिसका स्वरूप चिदाकाश है, ताते सब जगत् चिदाकाश है, द्वैत और कछु नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जगदुत्पत्तिवर्णनं नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२.

स्वयंभूत्पत्तिवर्णनम्.

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! परब्रह्म सम है, शांतहै, स्वच्छ है, अनंत है, चिन्मात्र है, सर्वदाकाल अपने आपविषे स्थित है; तिसविषे समअसमरूप जगत् उत्पन्न हुआ है; समरूप कहिये सजातीय रूप, असम कहिये भेदरूप, सो कैसे हुए सो सुन, प्रथम तौ तिसविषे चैत्यका फुरणा हुआ है, तिसका नाम जीव हुआ, तिसने दृश्यको चेता है; तिसकरि तन्मात्रा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध उपजे हैं, तिन्होंते पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, पांचों भूतरूपी वृक्ष हुआहै. तिस वृक्षमें ब्रह्मांडरूपी फल लगा है. ताते जगत्का कारण पंचतन्मात्राही है; अरु तन्मात्राका बीज आदि संवित् आकाश है. ताते सर्व जगत् ब्रह्मरूप हुआ है ॥ हे रामजी! जैसा बीज होता है, तैसाही फल होता है, जो इसका बीज परब्रह्म है, तौ यह भी परब्रह्म हुआ, आदि जो अचेत चिन्मात्र स्वरूप है, सो परमाकाश है. अरु जिस चैतन्य संवित्विषे जगत् भास्याहै,सो जीवाकाश है. सो यह भी शुद्ध निर्मलहै, काहेते कि,पृथ्वी आदिक भूतोंते रहित है ॥ हे रामजी! यह जगत् जो तुझको भासता है. सो सब चिदाकाशरूप है. और द्वैत वास्तवते कछु नहीं बना यह मैं तुझको ब्रह्माका-

श अरु जीवाकाश कहे हैं. अब जिसकरि इसको शरीर ग्रहण हुआ है; सो श्रवण कर ॥ हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्रते जो चैत्योन्मुखत्व हुआहै. अहं अस्मि तिस अहंभावकरिके आपको जीव अणु जानत भया. अपना जो वास्तव स्वरूप था, तिसते अन्य भावकी नाईं हुआ, तिस जीव अणुविषे अहंभाव दृढ हुआ, तिसका नाम अहंकार हुआ, तिस अहंकारकी दृढता करिके निश्चयात्मक बुद्धि हुई, तिसते आगे संकल्प विकल्परूपी मन हुआ, जब मन संसरने लगा, तब इसकी सुननेकी इच्छा करी, तिसकरि श्रवण इंद्रिय प्रगटभई, जब रूप देखनेको इच्छा करी, तब चक्षु इंद्रिय प्रगट भई, जब स्पर्शकी इच्छा करी तब त्वचा इंद्रिय प्रकट भई जब रस लेनेकी इच्छा करी तब जिह्वा इंद्रिय प्रगट भई, इसी प्रकार देह इंद्रिय चेतनता करि भासी, तिनविषे अहं प्रतीत करने लगा ॥ हे रामजी! जैसे दर्पणविषे पर्वतका प्रतिबिंब होता है, सो पर्वतते बाह्य होताहै, तैसे देह इंद्रियां बाह्य दृश्य हैं, अरु अपनेविषे भासती हैं, तिसकरि तिन्होंविषे अहं प्रतीति होती है, जैसे कूपविषे मनुष्य आपको देखे. तैसे देहविषे आपको देखता है, जैसे डब्बेविषे रत्न होता है, तैसे देहविषे आपको देखता है, सोई चिद् अणुदेह साथ मिलिकरि दृश्यको रचता है, तिस अहंकारि रूपविषे यह क्रिया भासने लगी. जैसे स्वप्नविषे दौड़ता जावै, जैसे स्थितविषे स्पंद होता है, तैसे आत्मविषे स्पंदक्रिया हुई है, सो चित्त संवित्कर हुई है. तिसका नाम स्वयम्भू ब्रह्मा हुआ, जैसे संकल्पकरि दूसरा चन्द्रमा भासता है, तैसे मनोमय जगत् भासता है, जैसे शशेके शृंग होते हैं, तैसा यह जगत् है; कछु उपजा नहीं चित्तके स्पंदविषे जगत् फुरता है; जैसे जैसे चित्त फुरा है, तैसे तैसे देश, काल, द्रव्य, स्थावर, जंगम जगत्की मर्यादा भई है; ताते सब जगत् संकल्परूप है, संकल्पते इतर जगत्का आकार कछु नहीं ॥ जब संकल्प फुरता है, तब आगे जगत् दृश्य भासता है, जब संकल्प निस्पंद होता है, तब दृश्यका अभाव होता है, हे रामजी! इस प्रकार करके यह ब्रह्मा निर्वाण हुआ है, बहुरि और उपजे हैं, ताते सब संकल्प मात्र है, जैसे नटवा नानाप्रकारके पटके स्वांगकरके बाहर निकस आता है, तैसे देख जो सब मायामात्र

है ॥ हे रामजी ! जब चित्तकी ओर संसरणता है, तब दृश्यका अंत नहीं आता, अरु जब अंतर्मुख होता है, तब सब जगत् आत्मरूप होता है; चित्तके स्पंद होनेकरि एक क्षणविषे निवृत्त होता है, क्योंकि संकल्परूपही है, ताते जो कछु जगत् भासता है, सो आकाशरूप है, उपजा कछु नहीं, आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों अपने आपविषे स्थित है जैसे स्वप्नविषे पर्वत नदियां भ्रमकरि देखती हैं. तैसे भ्रमकरिके यह जगत् भासता है, जैसे स्वप्नविषे आपको मुआ देखता है, सो भ्रममात्र हैं; तैसे यह जगत् भ्रममात्र है ॥ हे रामजी ! स्थावर जंगम जगत् कछु भासता है, सो सब चिदाकाश है, हमको तौ सदा चिदाकाशही भासता है, आदि विराट्रूप ब्रह्मा भी वास्तवते कछु उपजा नहीं; तौ जगत् कैसे उपजा होवै ? जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारके देश, काल, व्यवहार दृष्ट आतेहैं; सो अकारणरूप हैं; उपज कछु नहीं, आभासमात्र है, तैसे यह जगत् आभासमात्र है, कार्यकारण भासते हैं, तौ भी अकारण हैं ॥ हे रामजी ! हमको तौ जगत् ऐसा भासता है, जैसे स्वप्नते जागे मनुष्यको भासता है; जो वस्तु अकारण भासी है, सो भ्रांतिमात्र है, जो जगत् किसी कारणद्वारा उपजा नहीं तौ स्वप्नवत् है, जैसे संकल्पपुर भासता है, जैसे गंधर्व नगर भासता है, तैसे यह जगत् भी जान, आदि विराट् आत्मा है, सो अंतवाहकरूप है, पृथ्वी आदि तत्त्वोंते रहित है. आकाशरूप है, तौ यह जगत् अधिभूत करके कैसे होवै ? सब आकाशरूप है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे स्वयंभूत्पत्तिवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३.

सर्वब्रह्मप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह दृश्य मिथ्या असद्रूप है जो है सो निरामय ब्रह्म है, सो ब्रह्म आकाश जीवकी नाईं हुआ है, जैसे समुद्र द्रवता करके तरंगरूप होता है, तसे ब्रह्म जीवरूप होताहै, आदि जो

संवित् स्पंदरूप हुआ है, सो ब्रह्मा हुआ है; तिस ब्रह्माते आगे जीव हुए हैं, जैसे एक दीपकते बहुत दीपक होते हैं, जैसे एक संकल्पते बहुत संकल्प होते हैं, तैसे एक आदि जीवते बहुत जीव हुए हैं; जैसे स्तंभविषे शिल्पी पुतलियां कल्पता है, जो एती पुतलियां इस स्तंभविषे हैं, सो पुतलियां शिल्पीके मनविषे होती हैं, स्तंभ ज्योंका त्योंही स्थित है. तैसे सब पदार्थ आत्माविषे मन कल्पै है; वास्तवते ज्योंका त्यों आत्मा ब्रह्म है. तिन पुतलियोंविषे बडी पुतली ब्रह्मा है, और जीव छोटी पुतलियां हैं जैसे वास्तवमें स्तंभ है, पुतली कोऊ नहीं उपजी, तैसे वास्तव आत्मसत्ता है. जगत् कछु उपजा नहीं; संकल्प करिके जगत् भासता है, संकल्पके मिटेते जगत् कल्पना मिटि जाती है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! एक जीवते जो बहुत जीव हुए है; सो पर्वतविषे पाषाणकी नाईं उपजते हैं, जो पर्वतविषे अनंत पिंड आकार होते हैं, कोई जीवोंकी खाण है, जो इसप्रकार एते जीव उत्पन्न हो आते हैं, अथवा मेघविषे बूँदोंकी नाईं हैं? अथवा अग्निते विस्फुलिंगोंकी नाईं उपजते हैं ? सो कहौ; और एक जीव कौन है, जिसते संपूर्ण जीव उपजते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! न एक जीव है, न अनेक जीव हैं, यह तेरे वचन ऐसे हैं, जैसे कोऊ कहै मैं शशेके शृँग उड़ते देखे हैं, तैसे एक जीवही उपजा नहीं तो मैं अनेक कैसे कहौं ? जो कि ऐसे उपजे हैं शुद्ध अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, अनंत आत्मा है तिसविषे भेदकी कल्पना कोऊ नहीं. हे रामजी ! जो कछु जगत् तुझको भासता है, सो सब आकाशरूप है, कोऊ पदार्थ उपजा नहीं, संकल्पके फुरणेकरि जगत् भासता है जीवशब्द अरु जीवशब्दका अर्थ आत्माविषे कोऊ उपजा नहीं यह कल्पना भ्रमकरि भासती है, आत्मसत्ताही जगत्की नाईं भासतीहै, तिसविषे न एक जीव है न अनेक जीवहैं ॥ हे रामजी ! आदि जो विराट् आत्मा है, सो आकाशरूप है, तिसते और जगत् उपजा सो तुझको क्या कहौं ! जगत् विराट्रूप है, अरु विराट् जीवरूप है, अरु जीव आकाशरूप है बहुरि और जगत् क्या रहा ? अरु जीव क्या हुआ ? सब चिदाकाशरूप है, यह जेते जीव भासते हैं सो सब ब्रह्मस्वरूप हैं, और द्वैत कछु नहीं, न इनविषे कछु भेद है ॥

राम उवाच॥हे मुनीश्वर ! तुम कहते हो, आदि जीव कोऊ नहीं, तौ इन जीवोंको पालनेहारा कौन है ? जिसकी आज्ञाविषे यह पडे विचरते हैं । सो नियामक कौन है ? जो कोऊ हुआ नहीं तौ यह सर्वज्ञ अरु अल्पज्ञ क्योंकरि होता है, एकविषे यह कैसेहै ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिसको तू आदिजीव कहताहै; सो ब्रह्मरूपहै, नित्यहै, शुद्ध है, अनंतशक्ति है,अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे जगत्कल्पना कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! जो शुद्ध चिदाकाश अनंतशक्ति है, तिसविषे जो आदिचित्त किंचन हुआ है, सो शुद्ध चिदाकाश ब्रह्मसत्ताही जीवकी नाईं भासने लगी है; स्पंदद्वारा हुएकी नाईं भासती है; स्वरूपते इतर कछु हुआ नहीं, चैतन्य संवित् आदिस्पंद करके विराट् आत्मा ब्रह्मरूप होइकरि स्थित भया है, तिसते आगे संकल्पकरिके जगत् रच्याहै;तिस-विषे शुभ अशुभ कर्म रचे हैं, तिनकरि नीति रची है; जो यह शुभ है, यह अशुभ है, जैसे आदि नीति रची तैसेही महाप्रलयपर्यंत ज्योंकी त्यों चलीजात है ॥ हे रामजी! वह जो देव है, अनंतशक्ति है, तिसविषे जैसे आदि फुरणा हुआ है, तैसेही स्थित है, जो आदि सर्वशक्ति फुरी है सो तैसेही है, जो अल्पज्ञ फुरी है, सो अल्पज्ञ है ॥ हे रामजी ! इस संसारके जो पदार्थ हैं तिनोंविषे नीति शक्ति प्रधानहै; तिसके लंघनेको कोऊ समर्थ नहीं, जैसे रची है, तैसे महाप्रलयपर्यंत रहती है ॥ हे रामजी ! आदि नित्य जो विराट् पुरुष है सो अंतवाहकरूप है, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंते रहित है अरु यह जगत् भी अंतवाहकरूप है, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंते नहीं उपजा; सब संकल्परूप है; जैसे मनोराज्यका नगर शून्य होता है, तैसे यह जगत् शून्यहै ॥ हे रामजी ! इस सर्गका निमित्तकारण कोऊ नहीं, अरु समवायिकारण भी कोऊ नहीं जो पदार्थ निमित्तकारण और समवायिकारण विना दृढ आवै सो भ्रममात्र जानिये, उपजा कछु नहीं, जो पदार्थ उपजता है सो दोनों कारणकरि उपजताहै, सो जगत्का कारण कोऊ नहीं, ब्रह्मसत्ता नित्य शुद्ध अद्वैतसत्ता है, तिस-विषे कार्यकारणकी कल्पना कैसे होवै ? हे रामजी ! यह जगत् अकारण

है, भ्रांतिकरिकै भासता है, जब तुझको आत्मविचार उपजैगा, तब दृश्यभ्रम मिटि जावैगा; जैसे दीपक हाथमें लेकरि अंधकारको देखिये; तौ दृष्टि नहीं आता, तैसे विचारकरि देखैगा, तौ जगत्भ्रम मिटि जावैगा, जगत् भ्रम मनके फुरणेकरि उदय हुआ है, ताते संकल्पमात्र है, इसका अधिष्ठान ब्रह्म है, सब नामरूप ब्रह्मसत्ताविषे कल्पित हैं, षट्विकार भी ब्रह्मसत्ताविषे फुरे हैं, और सबते रहित भी हैं, शुद्ध चिदाकाशरूप है,और जगत् भी वहीरूप है, जैसे समुद्रविषे द्रवताकरिके तरंग, बुद्बुद, फेन भासता है; तैसे आत्मसत्ताविषे चित्तके फुरणेकरि जगत् भासता है, जैसे आदि चित्तविषे पदार्थसत्ता दृढ हुई है, तैसेही स्थित है; अरु आत्मा साथ अभेद है; इतर कछु नहीं, सब चिदाकाश है, इच्छा भी आकाशरूप है, देवता भी आकाशरूप हैं, समुद्र पर्वत भी आकाशरूप हैं ॥ हे रामजी! हमको सदा चिदाकाशरूपही भासता है, आत्मसत्ताही मनरूप हो भासती है, और बुद्धिरूप हो भासती है; पर्वत कंदरा सब जगत् होकरि भासताहै, सब चैत्योन्मुखत्व होताहै तब जगत् भासता है, जैसे वायु स्पंदरूप होता है तब भासता है, अरु निस्पंदरूप होता है तब नहीं भासता, तैसे जब चित्त संवेदन स्पंदरूप होता है, तब जगत् भासता है;जब चित्तसंवेदन अस्फुररूप होताहै तब जगत्कल्पना मिटजाती है॥ हे रामजी ! चिन्मात्रविषे जो चैत्यभाव हुआ है इसीका नाम जगत् है जब चैत्यते रहित हुआ, तब जगत् मिटि जाता है; जो जगत्ही न रहा तब भेदकल्पना रही सो भेदकल्पना आत्माविषे कैसे होवै? ताते न कोऊ कार्य है; न कारणहै,जगत् है,सब भ्रममात्र कल्पना है,शुद्ध चिन्मात्र अपने आपविषे स्थितहै ॥ हे रामजी ! शुद्धचिन्मात्रविषे चित्त किंचन सदा रहता है, जैसे मिरचोंके बीजविषेतीक्ष्णता सदा रहतीहै, परंतु जब खाता है तब तीक्ष्णताभासतीहै,अन्यथा नहीं भासती,तैसे जबचित्त संवेदन चैत्योन्मुखत्व होताहै;तब जीव जगत् चैतन्य भासताहै, अरु संवेदनते रहित जीवजगत् कल्पना नहीं भासती॥हे रामजी!जबसंवेदनसाथ परिच्छिन्न संकल्प मिलता है, तब जीव होता है, अरु जब इसते रहित होता है,तब शुद्ध चिदात्मा ब्रह्म होताहै,जिस पुरुषकी अशेषविषे कल्पना

मिटि गई है; अरु जिसको शुद्धनिर्विकार ब्रह्मसत्ताका साक्षात्कार हुआहै, सो पुरुष संसारभ्रमते मुक्त हुआ है; हे रामजी ! यह सब जगत् आत्माका आभासरूप है; सो आत्मा अच्छेद्य है, अदाह्य है, अक्लेद्य है, नित्यशुद्ध है, सर्वगत स्थाणुकी नाईं अचल है; सो अहंरूप है, सब जगत् चिदाकाशरूप है, हमको तौ सदा ऐसेही भासता है, अज्ञानी वादविवाद पडे करते हैं, हमको वादविवाद कोऊ नहीं, काहेते जो हमारा सब भ्रम नष्ट हो गया है ॥ हे रामजी ! यह सब जगत् ब्रह्मरूप है, और द्वैत कछु नहीं, जिनको निश्चय भया है, तिनके अंग अपना स्वरूपही है, ताते निराकार निर्वपु सत्ताके अंग अपना स्वरूप क्यों न होवै ? ताते जेता कछु प्रपंच है सो सब चिदाकाशरूप है, परंतु अज्ञानीको भिन्न भिन्न भासता है; अरु जन्ममरण आदि विकार भासता है, अरु ज्ञानवान्‌को सब आत्मरूपही भासते हैं, पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश सब आत्माके आश्रय फुरते हैं, अरु चित्तशक्तिही ऐसे होइकरि भासती है, जैसे वसतऋतु आता है, तिसविषे रसशक्तिकरिकै वृक्ष बेलियां सब प्रफुल्लित होइकरि भासती हैं; तैसे चित्तशक्ति स्पंदताकरिकै जगत्‌रूप होइकरि भासती है ॥ हे रामजी ! जैसे वायु स्पंदताकरिकै भासता है तैसे जगत् फुरणेकरि भासता है; तैसेही चित्तसंवित् जगद्रूप होइकरि भासता है ॥ इस फुरणेते जगत्‌है अपर वस्तुते जो कछु हुआ नहीं; इसीते जगत् कछु नहीं; जैसे समुद्र तरंगरूप होइ भासता है तैसे आत्मा जगत्‌रूप हो भासता है, इसते जगत् दृश्यभावकरि भासताहै; अरु संवित्‌ते कछु हुआ नहीं, परंतु वायु जड है, आत्मा चैतन्य है, अरु जल भी परिणामकरिकै तरंगरूप होता है, आत्मा अच्युत है, निराकार है ॥ हे रामजी ! चैतन्यरूप रत्न है, जगत् तिसका चमत्कार है, चैतन्यरूपी अग्नि है तिसविषे जगद्रूपी उष्णता है ॥ हे रामजी ! चैतन्यप्रकाश यह भौतिक प्रकाशरूप होकरि भासता है, इसते जगत् है, अरु वस्तुते कछु नहीं, चैतन्यसत्ता यह शून्य आकाशरूप होइकरि भासती है इस भावकरि जगत्‌है; वास्तव हुआ नहीं, इसते जगत् कछु नहीं, चैतन्यसत्ताही पृथ्वीरूप होइकरि भासती है, दृश्यविषे होता है इसते जगत् है, अरु आत्मसत्ताते इतर

कछु हुआ नहीं इसते चैतन्यबिन घन अंधकार है, तिसविषे जगतरूपी कृष्णता है, चैतन्यरूपी काजलताका पहाड है तिसका जगतरूपी प्रमाण भ्रम है, चैतन्यरूपी सूर्य है तिसविषे जगद्रूपी दिन है, आत्मरूपी समुद्र है, तिसविषे जगतरूपी तरंग है, आत्मरूपी कुसुम है, तिसविषे जगतरूपी सुगंध है, आत्मरूपी बर्फ है, तिसविषे शुक्लशीततारूपी जगत् है, आत्मरूपी बेलि है; तिसविषे जगतरूपी फूल है, आत्मरूपी स्वर्ण है, तिसविषे जगतरूपी भूषण है. आत्मरूपी पर्वत है, तिसविषे जगतरूपी जड सघनता है, आत्मरूपी अग्नि है, तिसविषे जगतरूपी प्रकाशहै, आत्मरूपी आकाशहै तिसविषे जगद्रूपी शून्यता है,आत्मरूपी ईख है तिसविषे जगतरूपी मधुरता है, आत्मरूपी दूध है, तिसविषे जगतरूपी घृत है, आत्मरूपी मधु है, तिसविषे जगतरूपी मधुरता है, आत्मारूपी सूर्यहै, तिसविषे जगतरूपी जलभासहै, हैभी अरु नहींभीहै हे रामजी ! इसप्रकार देख जो सर्व ब्रह्महै, नित्य है, शुद्ध है, परमानंद स्वरूप है, सर्वदा अपने आपविषे स्थित है, भेदकल्पना कोऊ नहीं; जैसे जल द्रवता करिके तरंगरूप होइ भासता है, तैसे ब्रह्मसत्ता जगतरूप होइ भासती है अरु न कोऊ उपजा है, न कोऊ नष्ट होता है ॥ हे रामजी ! आदि जो चित्तशक्ति स्पंदरूप होता है. सो विराटरूप ब्रह्मा है. सो भी चिदाकाशरूप है, आत्मसत्तातै इतर भावको नहीं प्राप्त भया जैसे पत्र ऊपर लीकैं होती हैं, सो पत्रते भिन्न लीकैं कछु नहीं, वस्तु वही है, पत्ररूप है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् है,कछु इतर नहीं; अरु पत्रऊपर लीकैं भी आकारहैं, ब्रह्मविषे जगत् कछु आकार नहीं. सब आकाशरूप मनविषे पडा फुरता है, जगत् कछु हुआ नहीं. जैसे शिलाविषे शिल्पी पुतलियां कल्पताहै,तैसे आत्माविषे मननें जगत् कल्पना करीहै, वास्तवते कछु हुआ नहीं. शिलाही वज्रकी नाईं पीनहै, अरु सब जगत्को धारि रही है; आकाशकी नाईं विस्ताररूप होइकरि अरु शांतरूप है, हुआ कछु नहीं; जो कछु है सो परम ब्रह्मरूपहै, जो ब्रह्मही है. तौ कल्पना कैसे होवै ? ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इस प्रकार जब मुनिशार्दूल वसिष्ठजीने कहा, तब सायंकालका समय हुआ सब सभा परस्पर नमस्कार

करिकै आश्रमको गई, बहुरि सूर्यकी किरणोंके साथ सब अपने स्थानोंपरि आन बैठे ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसर्वब्रह्मप्रतिपादनंनामत्रयोदशःसर्गः १३

चतुर्दशः सर्गः १४.

परमार्थप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आत्माविषे कछु उपजा नहीं. भ्रमकरिकै पडा भासता है; जैसे आकाशविषे भ्रम करिकै तरवरे मुक्तमाला भासते हैं, तैसे अज्ञान करिकै आत्माविषे जगत् भासता है, जैसे स्तंभविषे उकरे विना पुतलियां शिल्पीके मनविषे भासती हैं,जो एती पुतलियां स्तंभविषे हैं, सो पुतलियां कोऊ नहीं; काहेते कि किसी कारणते नहीं उपजी, तैसे चैतन्यरूपी स्तंभविषे मनरूपी शिल्पी त्रिलोकीरूपी पुतलियां कल्पता है; परंतु कछु कारणकरि उपजी नहीं, ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है जैसे सोमजलविषे त्रिकाल तरंगोंका सद्भाव होता है वास्तवते जगत्का होना कछु नहीं, चित्तके फुरणेकरि जगत् भासता है; जैसे सूर्यकी किरणें झरोखेविषे आती हैं, तिसविषे सूक्ष्म त्रसरेणु होतेहैं, तिसते भी चिद्अणु सूक्ष्म है, जैसे त्रसरेणुते सुमेरु पर्वत स्थूल है. तैसे चिद्अणुते त्रसरेणु स्थूल है, ऐसे सूक्ष्म चिद्अणुते यह जगत् पडा फुरता है, सो क्या रूप है? आकाशही रूप है, कछु उपजा नहीं, फुरणे करि जगत् भासता है ॥ हे रामजी! आकाश, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी आदिक जेता कछु जगत् भासता है, सो उपजा कछु नहीं, तो और पदार्थ उपजे कहां होवैं, सब आकाशरूप है वास्तवमें कछु उपजा नहीं, जो कछु अनुभवविषे होता है, तौ भी असत् है; जैसे स्वप्नसृष्टि अनुभव होती है तौभी उपजी कछु नहीं, असद्रूप है, तैसे यह जगत् असद्रूप है, शुद्ध निर्विकार सत्ता अपने आपविषे स्थित है; तिस सत्ताका त्याग करिकै जो अवयव अरु अवयवीके विकल्प उठावते हैं, तिनको धिक्कार है; यह सब जगत् आकाशरूप है, अरु अधिभूतक जगत् जो भासताहै, सो गंधर्वनगर स्वप्नसृष्टि-

वत् है ॥ हे रामजी ! पर्वतोंसहित जगत् भासता है, सो रत्तीमात्र भी नहीं; जैसे स्वप्नके पर्वत जाग्रत्के रत्तीभर भी नहीं होते. काहेते कि, कछु हुए नहीं, तैसे यह जगत् आत्मरूप है, भ्रांतिकरिके भासता है, जैसे संकल्पका मेघ सूक्ष्म होता हैं, तैसे यह जगत् आत्माविषे तुच्छ है; जैसे शशेके शृङ्ग असत् होते हैं, तैसे जगत् असतहै, जैसे मृगतृष्णाकी नदी असत् होती है,तैसे यह जगत् असत् है, असम्यक् ज्ञानकरिके जगत् भासता है, विचार कियेते शांति हो जाती है, शुद्ध चैतन्य सत्ताविषेजबचित्तसंवेदन होती है तब वही संवेदन जगत्रूप होय भासताहै; परंतु जगत् हुआ कछु नहीं, जैसे समुद्र अपनी द्रवता स्वभावकरिके तरंगरूप होइ भासता है; परन्तु तरंग कछु और वस्तु नहीं, जलरूप है तैसे ब्रह्मसत्ता जगत्रूप होइकरि फुरती है,सो और तौ जगत् भिन्न पदार्थ कोऊ नहीं॥ ब्रह्मसत्ता किंचनद्वारा ऐसे भासती है, जैसा बीज होता है, तैसाही अंकुर निकसता है, जैसी आत्मसत्ता है, तैसेही जगत् है, दूसरी वस्तु कोऊ नहीं, आत्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, चित्तसंवेनदके स्पंदकरिके जगत्रूप होतीहै; तिस ऊपर, हे रामजी ! एक आख्यान तुझको कहता हौं, सो श्रवणका भूषण है;तिसके समुझेते सब संशय मिटि जावैगा अरु विश्रामको प्राप्त होवैगा ॥राम उवाच॥ हे भगवन्! मेरे बोधकी वृद्धताके निमित्त मंडप आख्यान जिसपर हुआहै; तैसे संक्षेपते कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस पृथ्वीमें एक राजा पद्म होत भया है;सो कैसा था, जो कुलका कमल प्रफुल्लित था; अरु संतानवान् था, अरु बडी लक्ष्मीकरि संपन्न अरु समुद्रवत् मर्यादाके धारणेहारा, अरु दुष्टोंरूपी तमका नाशकर्त्ता, सूर्य, अरु सत् गुणोंरूपी हंसोका मानससरोवर,अरु दोषरूपी कौवोंको नाशकर्त्ता, अरु दोषरूपी तृणोंका नाशकर्त्ता अग्नि अरु प्रजाके पालनेको और शत्रुके नाश करनेको विष्णुजी, तथा मित्ररूपी चन्द्रमुखी कमलनीको चन्द्रमा था अरु सम्पूर्ण राजसी सात्त्विकी गुणोंकर सम्पन्न था, एक लीला नाम तिनकी स्त्री थी, बहुत सुन्दरथी, मानो लक्ष्मीने अवतार लिया है, सो राजाकी प्रसन्नताको देखके आप भी प्रसन्न होवै, अरु राजाको दिलगीर देखके आप भी दिलगीर होवै.

अरु राजाको क्रोधवान् देखै तब भयवान् होवै, बहुत सुशीलता संयुक्त रहै तिस साथ राजा क्रीडा करत भया; बाग जावै, ताल कदंब वृक्षों कल्पवृक्षोंके नीचे जावै, सुंदर सुंदर स्थानोंविषे जायके क्रीडा करै, बरफके मंदिर बनायके तिसविषे रहै, अरु रत्नमणिके जडे हुए स्थानोंविषे शय्या बिछाइके विश्राम करै, इस प्रकार विचरते भये बहुरि ठाकुरद्वारा तीर्थ जो जो दूर भी पुण्य स्थान थे तहां गये; इस प्रकार राजसी अरु सात्त्विकी स्थानोंविषे विचरते भये आपसमें गुह्यार्थ पावै; एक एक पद कहै, दूसरा तिसको श्लोक कारि कारि उत्तर देवै, अरु श्लोक भी ऐसे पढैं जो पढ़नेमें भाषा भासै, अर्थविषे संस्कृत हो, अरु शयनकी अरु शृंगारकी चतुराई सीखै अरु राजा चंद्रमाकी नाईं सुंदर, अरु राजसी विद्याकारि पूर्ण, हस्ती घोडे रथ आदिक चलावनेको भी विद्यावान् शास्त्रोंके चलावनेकी विद्याकारि भी संपन्न हुआ॥ इस प्रकार राजा बहुत चतुर हुआ, अरु दोनोंका परस्पर आपसमें स्नेह भया अरु दोनोंकी यौवन अवस्था हुई अरु दोनों गुणवान् भये जो राजाका चित्त और किसी ठौर न जावै, अरु रानीका चित्त भी और किसी ओर न जावै, रानी पतिव्रता अरु राजा धर्मात्मा हुआ तब एक समय रानीने विचार किया कि राजा मुझको बहुत प्रिय है, अपने प्राणोंकी नाईं प्यारा है, अरु बहुत सुंदर है, किसी प्रकार इसकी युवावस्था सदा रहै और अजर अमर रहै इसका अरु मेरा वियोग कदाचित् न होवै सोई उपाय करौं. यज्ञ करौं, दान करौं; तप करौं ऐसे विचार कारिकै ब्राह्मणों ऋषीश्वरों मुनीश्वरोंसों पूछती भई ॥ हे विप्रो ! अजर अमर नर किस प्रकार होता है। जिस प्रकार होता है, सो हमको कहो ॥ विप्रउवाच ॥ हे देवि ! जप तप आदि कारिकै सिद्धता प्राप्त होती है, परंतु अमर नहीं होता, सब जगत् नाशरूप है. इस शरीरकारि कोई स्थिर नहीं रहता ॥ हे रामजी ! इसप्रकार ब्राह्मणोंते सुनिकारि रानी भर्त्ताके वियोगते डारिकारि विचार करने लगी कि जो भर्त्तासों मैं प्रथम मरौं तो मेरे बडे भाग्य हैं, मैं सुखवान् होऊँगी; अरु जो यह प्रथम मृतक होवै तो सोई उपाय

करौं जिसकरि राजाका जीव मेरे अंतःपुरविषे ही रहै, बाह्य न जावै; मैं दर्शन करती रहौं, ताते सरस्वतीको मैं सेवौं ॥ हे रामजी! ऐसे विचार करिकै तपरूप जो सरस्वती है, तिसका पूजन करती भई, तब त्रिरात्र अरु दिनपर्यंत निराहार रहै, चतुर्थ दिनमें पारणा करै जिसप्रकार शास्त्र-विधि है, तिस प्रकार करै; देवता, ब्राह्मण, पंडित, गुरु, ज्ञानियोंकी पूजा करै; स्नान, दान, तप ध्यान, नितप्रति करै; यह नियम किया, अरु गृहविषे जिसप्रकार आगे कीर्तन करती थी, उसी प्रकार विचरै, भर्त्ताको लखावै नहीं इस प्रकार नियमसंयुक्त क्लेशते रहित तप करती भई जब तीनसौ दिन व्यतीत भये, तब प्रीतिसंयुक्त होइकरि सरस्वतीकी पूजा करी, तब वागीश्वरी प्रसन्न होइ करि दर्शन देती भई अरु कहा. हे पुत्रि! तुझने भर्त्ताके निमित्त निरंतर तप किया है, सो मैं प्रसन्न भई हौं जो तुझको अभीष्ट वर है, सो माँग ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि! तेरी जय होवै, मैं अनाथ तेरी शरण हौं, मेरी रक्षा कर; यह जन्म जरारूपी जो अग्नि है, सो बहुत प्रकारकरि जलावत है, तिसके शांति करनेको तुम चंद्रमा हो; अरु हृदयविषे जो तम है, तिसका नाश करनेको तुम सूर्य हो ॥ हे माता! मुझको दो वर देहु; एक यह वर देहु कि, जब मेरा भर्त्ता मृतक होवै, तब इसका वपु जो है; पुर्यष्टक सो बाह्य न जावै, अंतःपुरहीविषे रहै, अरु दूसरा यह वर देहु, कि, जब मेरी इच्छा तुम्हारे दर्शनकी होवै तब दर्शन देहु ॥ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ ऐसे ही होवैगा ॥ हे रामजी! इसप्रकार वर देके सरस्वती अंतर्धान भई, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिके लीन होते हैं, तैसे देवी अंतर्द्धान होगई, ऐसे सुनिकै लीला बहुत प्रसन्न भई; कालरूपी चक्र फिरता है, जिसको क्षणरूपी आरा लगा हुआ है, तिसके तीनसौ साठ कीले हैं; वर्षपर्यंत उसी ठौर बहुरि आते हैं, ऐसा जो कालचक्र है. तिसकरि राजा पद्म रणभूमि-काते फटके आय घरविषे पडा हुआ मृतक भया, तब ऐसा होगया, जैसे सूखे पत्रसों रस निकसि जाता है तैसे पुर्यष्टकके निकसनेकरि राजाका शरीर कुम्हलाइ गया, तब राणी उसके मरणकरि बहुत शोकवान् भई मुखकी कांति दूर होगई, जैसे कमलिनी जलविना कुम्हलाइ जाती है;

तैसे विलाप करने लगी, कबहूँ ऊँचेस्वरकारि रुदन करै, कबहूँ चुपकारि जावै राजाके वियोगकारि बहुत शोकवान् भई, जैसे चकवेके वियोगकारि चकवी शोकवान् होती है, जैसे सर्पके फूत्कार लगेते कोऊ मूर्च्छित होता है; तैसे शोकके श्वासोंकारि लीला मूर्च्छित हो गई, अरु व्याकुल होके प्राण त्यागने लगी; तब सरस्वतीजीने दया करिकै आकाशवाणी करी॥ हे सुंदरी! यह जो तेरा भर्त्ता मृतक भया है, तिसको तू सर्व ओरते फूलोंकारि ढांपिराख, बहुरि तुझको भर्त्ताकी प्राप्ति होवैगी; अरु यह फूल नहीं कुम्मलावैंगे तेरे भर्त्ताकी ऐसी अवस्था है, जैसे आकाशकी निर्मल कांति है, अरु तेरेही मंदिरविषे है, कहूँ गया नहीं॥ हे रामजी! इस प्रकार कृपा कारिकै जब देवीने वचन कहा, तब लीला कछुक शांतिवान् भई, जैसे जलविना मच्छी तडफती हुई मेघकी वर्षाकारिकै कछुक शांतिवान् होती है, तैसे लीला कछुक शांतिवान् होती भई, बहुरि कैसे हुई जैसे धन होवै अरु कृपणताकर धनका सुख न होवै, तैसे वचनोंकर शांतिवान् हुई, अरु भर्त्ताके दर्शनविना सब शांति न हुई. तब लीला ऐसेही करत भई, ऊपर नीचे फूलोंकारि भर्त्ताको ढाँपा, उसके पास आप भी शोकवान् होइकारि बैठी रही, अरु रुदन करने लगी, बहुरि देवीकी आराधना करी, तब अर्धरात्रिके समय देवीजी आय प्राप्त भई, अरु कहा॥ हे सुंदरि! तैंने मेरा स्मरण किस निमित्त किया है? अरु तू शोक किस कारण करती है; यह तौ सब जगत् भ्रांतिमात्र है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी होती है, तैसे यह जगत् है, अहं त्वं इदंते ले आदिक जो जगत् भासता है, सो सब कल्पनामात्र है, भ्रम करिकै भासता है, आत्माविषे हुआ कछु नहीं, तू किसका शोक करती है?॥ लीलोवाच॥ हे परमेश्वरि! मेरा भर्त्ता कहाँ स्थित है, अरु क्या रूप धरा है? तिसको मुझे मिलाउ, तिस विना मैं अपना जीना देख नहीं सकती॥ देव्युवाच॥ हे लीले! आकाश तीन हैं, एक भूताकाश है, एक चित्ताकाश है, एक चिदाकाश है; यह जो आकाश है, सो भूताकाश है, चित्ताकाशके आश्रय है, अरु चित्ताकाश चिदाकाशके आश्रय है, तेरा भर्त्ता अब भूताकाशको त्याग कारि चित्ताकाशको प्रत्यक्ष गया है; सो चित्ताकाश

चिदाकाशके आश्रय स्थित है, जब तू चिदाकाशविषे स्थित होवैगी तब सब ब्रह्मांड तुझको भासैगा; तिसविषे प्रतिबिंबित होते हैं; तहां तुझको भर्त्ताका अरु जगत्का दर्शन होवैगा ॥ हे लीले ! देशते देशांतरको क्षणविषे संवित् जाता है, तिसके मध्य जो अनुभव आकाश है; सो चिदाकाश है;जब तू संकल्पको त्याग देवै तिसते शेष रहै सो चिदाकाश है ॥ हे लीले ! यहाँ जो जीव विचरते हैं; सो पृथ्वीके आश्रय हैं, अरु पृथ्वी आकाशके आश्रय है, ताते यह सब जीव जो विचरते हैं, सो भूताकाशके आश्रय विचरते हैं, अरु चित्त जिसके आश्रयते एक क्षणविषे देशदेशांतर भटकता है, सो चित्ताकाश है ॥ हे लीले ! जब दृश्यका अत्यंत अभाव होताहै, तब परम पदकी प्राप्ति होतीहै, सो चिरकालके अभ्यासते प्राप्त होतीहै, अरु मेरा तुझको यह वर है; जो तुझको शीघ्रही प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! इस प्रकार जब ईश्वरी कहिकारि अंतर्द्धान होत भई तब लीला करिके लीला रानी निर्विकल्प समाधिविषे स्थित भई; अरु चित्त सहित देहका अहंकार त्यागिकारि उडी, जैसे पक्षी अपने गृहते उडिकारि आकाशको गमन करता है, तैसे रानी चिदाकाशको उडी, तब एक क्षणमें आकाशको प्राप्त भई जो नित्य शुद्ध अनत आत्मा है. परम शांतिरूप है, सर्वका अधिष्ठान है, तिसविषे जाइकारि भर्त्ताको देखती भई, स्पंद कल्पना ले गई थी. तिस करिकै अपने भर्त्ताको देखती भई. अरु बहुत मंडलेश्वर सिंहासनोंपर आकाशविषे देखे. अरु बडे सिंहासनपर बैठे भर्त्ताको देखती भई, चारों ओरते जय शब्द होता है. कि, हे राजा ! तेरी जय होवै ! तेरी जय होवै ! तू बहुत जीवै, अरु बडे सुंदर मंदिरको देखती भई; राजाके पूर्व दिशाको देखा तहां ब्राह्मण, ऋषीश्वर, मुनीश्वर, अनेक बैठे हैं, अरु बडी ध्वनिसों पाठ करते हैं, दक्षिण दिशाकी ओर देखा तहाँ सुंदर स्त्रियाँ बैठी हैं. अरु नाना प्रकारके भूषणसहित अनेक हैं, फिर उत्तर दिशाकी ओर देखा, तहाँ हस्ती घोडे, रथ, प्यादे चारों प्रकारकी अनंत सेना है, पश्चिमकी ओर मंडलेश्वर हैं; ऐसे देखके अरु चारों दिशामंडलेश्वर इसके आश्रय जीवके बिराजते हैं; सो देखके आश्चर्यको प्राप्त भई और नगर देखे, प्रजा देखी, सब अपने २ व्यवहारविषे स्थित हैं; बहुरि राजाकी

सभाविषे जाइ बैठी; रानी सबको देखै अरु रानीको कोऊ न देखै, जैसे औरके संकल्पपुरको नहीं देख सकता, तैसे रानीको कोऊ देख न सकै तब रानीने उसका अंतःपुर देखा, जहाँ ठाकुरद्वारे बने हुए हैं; देवताकी पूजा होती है, अरु गंध धूपसों पवनकरिकै त्रिलोकी मग्न करतीहै; राजाका यश चन्द्रमाकी नाईं बहुत हुआ, तब पूर्व दिशासों हलकारा आयके तिसने कहा ॥ हे राजन्! पूर्व दिशामें और राजाका क्षोभ हुआ है, बहुरि उत्तर दिशासों हलकारा आया, तिसने कहा ॥ हे राजन्! उत्तर दिशामें और राजाका क्षोभ हुआ है, तुम्हारे जो मंडलेश्वर हैं, सो युद्ध करते हैं, सोई प्रकार दक्षिण दिशाकी ओरसों आया; उसने भी कहा और राजाका क्षोभ हुआहै, बहुरि पश्चिम दिशासों आया; उसने कहा पश्चिम दिशामें क्षोभ हुआ है, बहुरि और आया, तिसने कहा, सुमेरु पर्वत जो देवता सिद्धोंके रहनेका स्थान हैं, तहाँ क्षोभ हुआ है, बहुरि अस्ताचल पर्वतसों आया, तिसने कहा, अस्ताचलमें क्षोभ हुआ है, तब राजाकी आज्ञाकरि बहुत सेना विद्यमान स्थित आन हुई, जैसे बडे मेघ आवैं तैसे सेना आई अरु जेते मंत्री थे, अरु नंद आदिक जो टहलुए थे और ऋषीश्वर मुनीश्वर तहाँ देखती भई, जेते भृत्य थे, सो सब सुंदर अरु वर्षाते रहित श्वेत बादरोंकी नाईं तिनके श्वेत वस्त्र देखती भई, अरु बडे वेदपाठी ब्राह्मण देखती भई जिनके शब्दकर नगारेके शब्द भी सूक्ष्म भासे ॥ हे रामजी! इसप्रकार ऋषीश्वर, मंत्री, टहलुए, बालक देखती भई, सो अपूर्व देखती भई, अरु पूर्व भी देखती भई, देखके आश्चर्यवान् हुई, चित्तविषे यह शंका उपजी कि, मेरा भर्त्ताही मूआ है, अथवा संपूर्ण नगर मृतक भया; जो परलोकविषे आए हैं. तब देखा कि, मध्याह्नका सूर्य शीशपर उदित है, अरु राजा सुंदर षोडशवर्षका है. प्रथमकी जरा अवस्थाको त्यागिकारि नूतन शरीरको धारके बैठा है, ऐसे आश्चर्यको देखके रानी बहुरि अपने गृहविषे आवती भई, तब देखा कि, अर्धरात्रि है, अपनी सहेलियोंको सोती हुई देखती भई, सहेलियोंको जगावती भई अरु कहा जिस सिंहासनपर मेरा भर्त्ता बैठता था. तिसको साफ करो, मैं तिसके ऊपर बैठती हों. अरु जिस प्रकार तिसके निकट मंत्री भृत्य आन बैठतेथे, तिसी प्रकार करौ;

इसप्रकार सुनकर सहेलियोंने बडे मंत्रीको कहा, तिन मंत्रियोंने सबको जगाया, सिंहासन झाडिकरिकै मेघकी नाईं जलकी वर्षा करी, सिंहासनके ऊपर वस्त्र बिछाए. आसपास भी वस्त्र बिछाए मसालें जगाईं. बडा प्रकाश हुआ. अंधकार नष्ट भया. जैसे अगस्त्यमुनिनें समुद्रका पान किया था तैसे अंधकारका प्रकाशने पान कर लिया. तब मंत्री, टहलुए, पंडित, ऋषीश्वर, ज्ञानवान् सब आयके स्थित हुए, जेते कछु राजाके पास थे. सो सब आयके स्थित भये. सिंहासनके निकट बैठे और लोक भी आय स्थित हुए. मानो प्रलयकालविषे समुद्रक्षोभ हुआ है. बहुरि जलसों पूर्ण हुए हैं. प्रलय हुई सृष्टि मानो अनंत उत्पन्न भई हैं. इस प्रकार मंत्री, टहलुए, पण्डित, बालक, भर्त्ताविना देखके बडे आश्चर्यको प्राप्त भई. जो एक आदर्शको दोनों ओर अन्तर्बाहिर दृष्टि भासती है इस प्रकार देखके अंतरकी वार्त्ता इनको न जनावत भई. बहुरि अंतर आइ करि कहत भई बडा आश्चर्य है. बडा आश्चर्य है. ईश्वरकी माया जानी नहीं जाती. यह क्या है ? इस प्रकार आश्चर्यवान् होइकरि सरस्वतीजीकी आराधना कीनी तब सरस्वती कुमारी कन्याका रूप धारिकरि आन प्राप्त भई. तब लीलाने कहा, हे भगवति ! मैं बारंबार पूछती हौं. तुम उद्वेगवान् नहीं होना. बडेका यह स्वभाव है. जो शिष्य बारंवार पूछै तौ भी खेदवान् नहीं होते, अब मैं पूछती हौं कि, यह जगत् क्या है ? अरु वह जगत् क्याहै, दोनोंविषे कृत्रिम कौन है ? अरु अकृत्रिम कौन है ? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! तैंने पूछा कि, कृत्रिम कौन है. अरु अकृत्रिम कौनहै. सो पाछे में तुझको कहौंगी, लीलोवाच ॥ हे देवी ! जहाँ तुम हम बैठे हैं सो अकृत्रिम है, अरु वह जो मेरे भर्त्ताका स्वर्ग है, सो कृत्रिम है. काहेते जो शून्यस्थानविषे वह सृष्टि हुई है ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! जैसा कारण होता है, तैसाही कार्य होता है, जो कारण सत् होता है, तब कार्य भी सत् होता है, अरु सत्ते असत् नहीं होता अरु असतते सत् नहीं होता, कारणते अन्य कार्य नहीं होता, ताते जैसे यह जगत् है, तैसा वह जगत् है ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! कारणते अन्य कार्यसत्ता होती है, काहेते कि. मृत्तिका जलके उठावनेको समर्थ नहीं होती, अरु जब मृत्तिकाका घट बनता है,

तब जलको उठावता है; तौ कारणते अन्य भी कार्यकी सत्ता हुई क्यों ? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! कारणते अन्य कार्यकी सत्ता तब होती है, जो सहायकारी भिन्न भिन्न होते हैं, जहाँ सहायकारी नहीं होता, तहाँ कारणते अन्य कार्यकी सत्ता नहीं, तेरे भर्ताकी सृष्टि जो भासी है, सो कारणविना भासी है, उसका जीव जो पुर्यष्टक थी, सो आकाशरूप थी, तहाँ न कोऊ समवायिकारण था न निमित्तकारण था, तिसको कृत्रिम कैसे कहिये ? जो किसीका किया होवै, तो कृत्रिम होवै, वह तौ आकाशरूप पृथ्वी आदिक तत्त्वोंते रहित है, जो समवायिकारण न होवै, तौ तिसका निमित्तकारण कैसे होवै ? ताते वह जो तेरे भर्ताका स्वर्ग है सो अकारण है ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! उस स्वर्गकी स्मृति जो संस्कार है, सो कारण क्यों न होवै ? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! स्मृति तौ कोई वस्तु नहीं, स्मृति आकाशरूप है, स्मृति नाम संकल्पका है सो संकल्प आकाशरूप है. और वस्तु कछु नहीं, मनोराज्यरूपहै. ताते उसकी सत्ता कछु नहीं; आभासरूपहै ॥ लीलोवाच ॥ हे महेश्वरी ! जो वह संकल्पमात्र आकाशरूप है, तौभी आकाशरूप है, जहां तुम हम बैठे हैं, जैसे वह है तैसे यह है, दोनों तुल्य हैं ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! जैसे तू कहती है, तैसेही है; अहं त्वं इदं यह वह संपूर्ण जगत् आकाशरूप है; भ्रांतिमात्र भासते हैं, उपजे कछु नहीं, सब आकाशमात्रहै, स्वरूपते इनका कछु सद्भाव नहीं, जो पदार्थ सत्य न होवें तौ तिनकी स्मृति कैसे सत् होवे ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि! अमूर्तिवत् मेरा भर्त्ता था, सो मूर्तिवत् हुआ अरु तिसको जगत् भासने लगा, सो कैसे भासा ? तिसका स्मृति कारण है ? या किसी और प्रकार है; यह मेरे दृश्यभ्रम निवृत्तिके निमित्त मुझको वहीरूप कहौ । देव्युवाच, हे लीले ! वह स्वर्गभी भ्रमरूपहै, यह भी भ्रमरूप है, जो यह सत् हो तौ, इसकी स्मृति सत् होवै, यह जगत् असतरूप है, जैसे यह भ्रम तुझको भासा है सो सुन; एक महाचिदाकाश है, तिसका किंचन चित्त अणु है; तिसके किसी अंशविषे जगत् है, सो जगत्‌रूपी वृक्ष है, सुमेरु तिसका स्तंभ है; सप्त लोक तिसकी डालैं हैं, आकाश

उसकी शिखा है, अरु सप्त समुद्र उसविषे रस है, तीनों लोक फल हैं; तिसविषे सिद्ध, गंधर्व, देवता, मनुष्य, दैत्यरूप मच्छर हैं, तारागण तिसके फूल हैं, तिसवृक्षके किसी छिद्रविषे एक देश है, तिसविषे एक पर्वत है, तिसके तरे एक नगर वसता है, तहाँ एक नदीका प्रवाह चलता है, तहाँ एक वसिष्ठ नाम ब्राह्मण था, सो बडा धर्मी था सदा अग्निहोत्र करता था, धन अरु विद्यासंपन्न था, कैसा ऋषीश्वर वसिष्ठ है ? विद्या अरु कर्म अरु धन पराक्रम सब तिसके समान था, परंतु ज्ञानविषे भेद था, जो खेचर वसिष्ठका ज्ञान है, तैसा भूचर वसिष्ठका न था; तिसकी स्त्रीका नाम भी अरुंधती, सो पतिव्रता थी, अरु चंद्रमाकी नाईं तिसका मुख था तिस अरुंधतीसमान विद्या, कर्म, कांति, धन, चेष्टा, पराक्रम जिसका, अरु चेतनता जो है ज्ञान सो समान था,और सब लक्षण एक समान था, वह आकाशकी अरुंधती है. यह भूमिकी अरुंधती थी. एक कालमें वसिष्ठ ब्राह्मण पर्वतके शिखरपर बैठा था. तहाँ सुंदर हरे तृणों करि शोभायमान स्थान था, एक राजा उस पर्वतके निकट शिकार खेलनेके निमित्त सब परिवार सहित चला जाता था, सो बहुत सुंदर अरु नाना प्रकारके भूषणों सहित भूषित किया हुआ, अरु शीशपर चमर होता जाता था, मानौ चंद्रमाकी किरणैं प्रसर रही हैं, अरु शिरपर अनेक प्रकारके छत्रोंकी छाया,मानौ आकाश भी रूपेका कियाहै,अरु दूजे भी बहुत हैं,अरु रत्नमणिके भूषण पहिरे हुए मंडलेश्वर साथ हैं, अरु हस्ती, घोडा, रथ,पैदल,चारों प्रकारकी सेना आगे चली जाती है,तिनकी धूल बादल होइकरि स्थित भई,अरु नौबत नगारे बाजते हैं; तिसको देखके वसिष्ठ ब्राह्मण मनविषे चिंतन करत भया कि, राजाको बडा सुख प्राप्त होता है, जो सब सौभाग्यकरिके राजा संपन्न होता है; इस प्रकार राज्य मुझको भी प्राप्त होवै,यह वांछा करता भया,मैं कब दिशाको जीतौंगा ? अरु मेरे यश साथ दश दिशा पूर्ण कब होवैंगी ? ऐसे छत्र मेरे शिरपर कब ढरैंगे ? अरु चारौं प्रकारकी सेना मेरे आगे कब चलैगी ? अरु सुंदर मंदिरोंविषे सुंदर स्त्रियोंके साथ मैं कब बिलास करौंगा ? मंद मंद पवन शीतल सुगंधता साथ कब परस होवैगा ? हे लीले ! इस प्रकार

ब्राह्मण संकल्पको धरता भया, अरु जो कछु अपने स्वकर्म हैं, सो भी करता रहै, अरु कामना हृदयविषे स्थिर हो रही तब ब्राह्मणको जराअवस्था आनि प्राप्त भई, शरीर जर्जरीभाव हुआ; जैसे कमलऊपर बर्फ पडता है. अरु कुम्हलाइ जाताहै, तैसे ब्राह्मणका शरीर कुम्हलाइ गया अरु मृत्युका समय निकट आया, तब तिसकी स्त्री भर्त्तारका मृत्यु निकट देखके कष्टवान् भई, तब उसने मेरी आराधना करी; जैसे तैंने करी तैसे उसने करी, भर्त्ताकी अजर अमरताको दुर्लभ जानके मुझसों वर माँगत भई, हे देवि ! मुझको यह वर देहु, जब मेरा भर्त्ता मृतक होवै, तब इसका जीव बाहर न जावै; तब मैंने कहा ऐसेही होवैगा; हे लीले ! जब बहुत काल व्यतीत हुआ तब ब्राह्मण मृतक हुआ, तब उसका जीव मंदिर विषे रहा; जैसे मंदिरविषे आकाश ही रहताहै. तैसे मंदिरविषे रहै. हे लीले ! जब आकाशरूप हो गये अरु जो उसकी पुर्यष्टकविषे राजाका दृढ संकल्प था, तब वह संकल्प उसको आन फुरा, जैसे बीजते अंकुर निकस आवता है; तैसे आन फुरा, तिसकरि अपने राज्यको देखता भया, सो कैसा राज्य देखता भया जो त्रिलोकीका राज्यहै; अरु परम सौभाग्य करिकै संपन्न है, दशोंदिशा यशकरिकै पूर्ण होइ रही हैं मानौ यशरूपी चंद्रमाकी यह पूर्णमासी है, अरु जैसे प्रकाश अंधकारको नाश करताहै, तैसे शत्रुरूपी अंधकारका नाशकर्त्ता प्रकाश हुआ, अरु ब्राह्मणोंका चरणोंका सिंहासन हुआ, अर्थ यह, जो ब्राह्मणोंको बहुत पूजने लगा; अरु आर्थियोंका कल्पवृक्ष हुआ, अरु स्त्रियोंको कामदेव हुआ, इत्यादिक जो सात्त्विक राजस गुण हैं, तिनोंकरि संपन्न हुआ, तिसकी स्त्री तिसको मृतक देखके बहुत शोकवान् भई, जैसे ज्येष्ठ आषाढकी मंजरी सूख जाती है, तैसे शोकवान् भई, तब यह भी शरीरको छोडके आतिवाहिक शरीर करिके भर्त्ताको जाय प्राप्त भई, जैसे नदी समुद्रको जाय प्राप्त होती है, अरु ब्राह्मणके जो पुत्र थे, सो धनयुक्त अपने गृहविषे रहे; उस ब्राह्मणको मृतक हुए अब आठ दिन हुए हैं; सो वसिष्ठ ब्राह्मण तेरा भर्त्ता पद्म हुआ, अरुंधती उसकी स्त्री तू लीला हुईहै अरु जेता कछु आकाश पर्वत समुद्र पृथ्वी त्रिलोकी है, सो वसिष्ठ ब्राह्मणके अंतःपुरविषे एक कोनेविषे स्थितहै; वहाँ तुझको

आठ दिन व्यतीत भयेहैं; सूतक भी नहीं गया; अरु यहाँ तुमने साठसहस्रवर्ष राज्य किया है; नाना प्रकारके सुंदर भोग भोगे हैं ॥ हे लीले! इस प्रकार तैने जन्म लिया है; सो मैंने सब कहा है, सो क्याहै. सब भ्रममात्र है; जेता कछु जगत् तुझको भासता है, सो आभासमात्र हैं, संकल्पकरिके पड़ा फुरता है, वस्तुगत कछु नहीं ॥ हे लीले ! जो यह जगत् सत् न हुआ तौ तिसकी स्मृति कैसे सत्य होवै ? तुम हम सब उस ब्राह्मणके मंदिरविषे स्थित हैं ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! तुम्हारे वचनको मैं असत् कैसे कहौं;जो तुम कहती हौ उस ब्राह्मणका जीव अपने गृहविषे रहा; तहाँ हम तुम बैठे हैं;अरु देश देशांतर पर्वत समुद्र लोक अरु लोकपालक सब जगत् उसीही गृहविषे हैं,सो समावते कैसेहैं? यह वचन तुम्हारे ऐसे हैं,जैसे सर्षपके दानेविषे उन्मत्त हाथी बाँधे हुएहैं; अरु सिंहोंके साथ मच्छर युद्ध करता है, अरु कमलके डोडेविषे सुमेरुपर्वत आया है, तिस कमलपर भ्रमर आन बैठा, तिसको पान करि गया; अरु स्वप्नविषे मेघ गर्जते हैं; अरु चित्र मणिके मोर नाचते हैं, ऐसी वार्त्ता कहते हौ; अरु जाग्रत्की मूर्त्ति ऊपर लिखा हुआ मोर मेघको गर्जता देखके नृत्य करता है, जैसे यह असंभव वार्त्ता है,तैसे तुम्हारा कहना मुझको असंभव भासा है॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! यह मैंने तुझको झूठ नहीं कहा, हमारा कहना कदाचित् असत् नहीं. काहेते कि, आदि परमात्माकी नीति है, जो महा पुरुष असत् नहीं कहते,इसी कारण हम असत् नहीं कहती;हम तौ धर्मका प्रतिपादन करनेहारीहैं,जहाँ धर्मकी हानि होतीहै, तहाँ हम प्रतिपादन नहीं करतीहैं, जो हम धर्मका प्रतिपादन न करैं, तो धर्मको और कैसे मानै ? हे लीले ! जैसे सोए हुएको स्वप्नविषे त्रिलोकी भास आतीहै सो अंतःकरणविषे ही होती है, अरु स्वप्नते जाग्रत् होती है, तैसे मरना भी जान जब जहाँ मृतक होता है, तहाँ जीव जो पुर्यष्टक है सो आकाशरूप होइ जाता है, बहुरि वासनाके अनुसार तिसको जगत् भासि आता है, जैसे स्वप्नविषे जगत् भासि आता है; सो क्या रूप है, आकाशरूप है,तैसे इसको भी जान ॥ हे लीले ! यह सब जगत् तेरे उस अंतःपुरविषे है, काहेते जो जगत् चित्ताकाशविषे स्थित है, जैसे आदर्शविषे प्रतिबिंब

होता है, तैसे चित्तविषे जगत् है, अरु चित्त आकाशरूप है, जो चित्त अंतःपुरविषे हुआ, तौ जगत् भी हुआ, क्यों ? हे लीले ! यह जगत् जो तुझको भासता है, सो आकाशरूप है, जैसे स्वप्ननगर भासता है, संकल्पनगर भासता है, जैसे कथाके अर्थ भासते हैं, तैसे यह जगत् भी है, जैसे मृगतृष्णाका जल भासता है, तैसे यह जगत् जान ॥ हे लीले ! वास्तवते कोई पदार्थ उपजा नहीं; भ्रमकरिके पडे भासते हैं; जैसे स्वप्नते स्वप्नांतर भासता है; बहुरि और स्वप्न देखता है; ?तैसे तुमको यह सृष्टिभ्रम भास्या है ॥ हे लीले ! यह जगत् आत्मरूप है, जहाँ चिद् अणु है; तहाँ जगत् भी है; परंतु क्या रूपहै; आभासरूप है,जैसे यह आकाशरूप है; तैसे यह जगत् भी आकाशरूप है; जिस प्रकार यह चैत्यता है; तिस प्रकार सोई भासताहै; ताते संकल्पमात्र है;जैसे स्वप्नपुर भासताहै जैसे संकल्पनगर होताहै; तैसे यह जगत् है; जैसे मरुस्थलकी नदीके तरंग भासतेहैं; तैसे यह जगत् भासताहै; ताते इसकी कल्पना त्यागके रहहु ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! तिस वसिष्ठ ब्राह्मणको मुए आठ दिन बीतेहैं; अरु हमको यहाँ साठ सहस्र वर्ष बीते हैं; यह वार्त्ता सत् कैसे जानिये; यह थोडे कालविषे बडा काल कैसे हुआ ! देव्युवाच ॥ हे लीले ! जैसे थोडे देशविषे बहुत देश आतेहैं; तैसे थोडे कालविषे बहुत काल भी आता है, अहंता ममता आदिक जेता कछु जगत् है, सो आभासमात्र है; तिसको क्रम करिके सुन. जब यह जीव मृतक होता है, तब मूर्च्छा हो जाती है, बहुरि मूर्च्छासों चेतनता फिरि आतीहै, तिसविषे यह भासता है, जो यह भासता है जो यह आधार है यह आधेय है, यह मेरा हाथहै, यह शरीर है, यह मेरा पिता है, इसका मैं पुत्र हौं; अब एते वर्षका मैं हुआहौं; यह मेरे बांधव हैं,तिनके साथ स्नेह करताहौं यह मेरा गृह है, यह मेरा कुल चिरकाल चला आता है.मरणेके अनंतर एते क्रमको देखता है ॥ हे लीले ! जिस प्रकार यह देखता है, तैसे यह भी जान,एक क्षणविषे औरका और भासने लगताहै, यह जगत् चेतनका किंचनहै, जैसे चेतन संवितविषे चैत्यता होतीहै, तैसे जगत् भासता है; जैसे स्वप्नविषे द्रष्टा,दृश्य;दर्शन तीनों भासतेहैं,तैसे आत्मसत्ताविषे यह

जगत् किंचन होता है, भ्रमकरिकै भासता है, वास्तवमें नानात्व कछु हुआ नहीं; जैसे स्वप्नविषे कारणविना नानाप्रकारका जगत् भासता है; तैसे परलोकविषे नानाप्रकारका जगत् कारणविना भासता है; सो क्या रूप है आकाशरूप है; मनके भ्रमकरिकै भासता है, तैसे यह जगत् मनके भ्रम करि भासताहै, स्वप्न जगत् अरु परलोक जगत् अरु जागृत् जगत्विषे भेद कछु नहीं, जैसे वह भ्रममात्र है; तैसे यह भ्रममात्र है वास्तवते कछु उपजा नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग कछु वास्तव नहीं, तैसे आत्माविषे जगत् कछु वास्तव नहीं, असतही सतकी नाईं भासता है; जिस कारणते उपजा नहीं, तिस कारणते अविनाशी है ॥ हे लीले। जैसे चैत्योन्मुखत्व हुए, चेतन आकाश भासता है; तैसे चैत्यताविषे भी चेतन आकाश है; काहेते जो कछु हुआ नहीं, जैसे समुद्रते तरंग होता है, सो तरंग कछु जलते इतर हुआ नहीं, जलही है; तैसे आत्माविषे जगत् कछु इतर नहीं हुआ; अरु जलविषे तरंगकी नाईं भी आत्माविषे जगत् नहीं, जैसे शशेके शृंग असत्है; तैसे जगत् असत् है कछु उपजा नहीं ॥ हे लीले ! जब यह पुरुष मृतक होता है; तब जैसा इसको देश भासता है, जैसा काल जैसी क्रिया उत्पन्न नाश भईहै, कुटुंब शरीर वर्ष आदिक नानारूप भासताहै सो क्या रूप है, आभासरूपहै, जिस प्रकार क्षण क्षणविषे एते भास आवतेहैं, तैसे कारणविना यह जगत् भास्याहै तो दृश्य, द्रष्टा भी कोऊ न हुआ यह जो देश, काल, क्रिया, द्रव्य, देह, इंद्रियां, प्राण, मन, बुद्धि सब भ्रमकरिकै भासते हैं, आत्मा उपाधिते रहित आकाशरूप है, तिसके प्रमाद करि जगत्भ्रम उदय हुआ है ॥ हे लीले ! भ्रमविषे क्या नहीं होता है, जैसे एक रात्रिविषे हरिश्चंद्रको द्वादश वर्ष भ्रमकरिकै भासे थे तैसे यहां भी थोडे कालविषे बहुत काल भास्या है, दोनों अवस्थाविषे इसको औरका और भासता है, स्वप्नविषे भी और भासता है; अरु उन्मत्तता करिकै भी औरका और भासता है, अभोक्ता अरु आपको भोक्ता मानता है; अरु भ्रमकरिकै उत्साह अरु शोकको इकट्ठा देखता है; न किसीको उत्साह होता है; अरु स्वप्नविषे मृतक भाव शोकको देखता है; अरु विछुरा हुआ होता है. सो स्वप्नविषे

मिला देखता है. अरु मिला हुआ होता है आपसे बिछुरा जानता है. और काल है तिसको भ्रमकरिके और काल देखता है; ताते देख यह सब भ्रमरूप है; जैसे भ्रमकरिके यह भासता है; तैसे यह जगत् भी भ्रमकरि भासता है; परंतु ब्रह्मते इतर कछु नहीं ताते बंधन है, न मोक्ष है, जैसे मिरचनविषे तीक्ष्णता है, तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे स्तंभविषे पुतलियां होती हैं तैसे आत्मविषे जगत् है; जैसे स्तंभविषे पुतलियां कछु हुई नहीं, स्तंभ ज्योंका त्यों है, शिल्पीके मनविषे पुतलियां हैं तैसे ब्रह्मविषे जगत् है नहीं, मनरूपी शिल्पीने जगत्-रूपी पुतलियां कल्पी हैं; आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों अपने आपविषे स्थित है; नित्य शुद्ध है, अज है, अमर है, स्वभावविषे स्थित है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मंडपाख्याने परमार्थप्रतिपादनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः १५.

विश्रांतिवर्णनम्।

देव्युवाच ॥ हे लीले! जब यह मृत्युकरि मूर्च्छा होती है, तब शीघ्रही इसको बहुरि कुल जन्म भासि आताहै. देश, काल, क्रिया, द्रव्य, अरु अपना परिवार भासि आता है, नानाप्रकारका जगत् भासि आता है, अरु वास्तव कछु नहीं, स्मृति भी असत् है, एक स्मृति अनुभवते होती है, एक स्मृति अनुभवविना भी होती है, अरु दोनों स्मृति मिथ्या हैं, जैसे स्वप्नविषे अपना देह देखता है, सो अनुभव असत् है, किसी अपने मर-नेकी स्मृति करि नहीं भासा, अरु तिस मरनेकी स्मृति भी असत् है, स्वप्नविषे कोऊ पदार्थ देखो तिसको जाग्रत्विषे स्मरण करना वह भी असत्य है; वस्तुतें कछु हुआ नहीं; ताते यह जगत् अकारणरूपहै, जो है सो चिदाकाश ब्रह्मरूप है, और न कछु विदूरथकी सृष्टि सत् है सब संकल्पमात्र है ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि! जो यह सृष्टि भ्रममात्र है, तौ वह जो विदूरथकी सृष्टि है, सो यह सृष्टिके संस्कार करिकै हुई है, अरु

यह सृष्टि उस ब्राह्मण अरु ब्राह्मणीकी स्मृति संस्कारते हुई है, तौ ब्राह्मण अरु ब्राह्मणीकी सृष्टि किसकी स्मृतिविषे हुई ?॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! वह जो वसिष्ठ ब्राह्मणकी सृष्टि है, सो ब्राह्मणके संकल्पविषे हुई है, अरु ब्रह्मा ब्राह्मणविषे फुरा है, परंतु वस्तुते कछु ब्रह्मा भी हुआ नहीं, तौ तिसकी सृष्टि क्या कहौं? इस जेती कछु सृष्टि है, सो उसी ब्राह्मणके मंदिरविषे हैं, वस्तुतें कछु हुई नहीं, सब संकल्परूप है, मनके फुरने करिके भासता है, जैसा जैसा संकल्प फुरता है, तैसा तैसा होइकरि भासता है, यह सृष्टि जो तेरे भर्त्ताको भासि आई है, सो दृढ संकल्पके भावते भासि आई है, थोडे कालकरि वहुत भ्रम होइकरि भासता है ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! जहां ब्राह्मणको मृतक हुए आठ दिन व्यतीत भये हैं; तिस सृष्टिको हम किस प्रकार देखैं ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! जब तू योगाभ्यास करै तब देखै, अभ्यासविना देखनेको समर्थ न होवैगी, काहेते जो वह सृष्टि चिदाकाशविषे फुरती है ॥ जब तू चिदाकाशविषे अभ्यास करिकै प्राप्त होवैगी तब तुझको सब सृष्टि भासि आवैगी; वह जो सृष्टि है सो औरके संकल्पविषे है, जो उसके संकल्पविषे प्रवेश करै तब उसकी सृष्टि भासै, अन्यथा नहीं भासती, जैसे एकके स्वप्नको दूसरा नहीं जानि सकता तैसे औरकी सृष्टि नहीं भासती, जब तू अंतवाहकरूप होवै तब उस सृष्टिको देखै ॥ जबलग आधिभौतिक जो है, स्थूल पंचतत्त्वोंका शरीर, तिसविषे अभ्यास है, तबलग उसको न देख सकैगी; काहेते जो निराकारको निराकार ग्रहण करता है, निराकारको आकार नहीं ग्रहण करि सकता; ताते यह जो आधिभौतिक देह सो भ्रम है, इसको त्यागकरि चिदाकाश सत्ताविषे स्थित होहु ॥ जैसे पक्षी आलयको त्यागिकरि आकाशविषे उड़ता है, तब इच्छा होवै तहां चला जाता है तैसे चित्तको एकाग्र करिके स्थूल शरीरको त्याग देहु अरु योगअभ्यासकरि आत्मसत्ताविषे स्थित होहु, जब आधिभौतिकको त्यागिकरि चिदाकाशविषे अभ्यासके बलते स्थित होवैगी; तब आवरणते रहित होवैगी; बहुरि जहां इच्छा करैगी, तहां चली जावैगी; जो कछु देखा चाहैगी, सो देखैगी॥ हे लीले ! हम सदा तिस चिदाकाशविषे

स्थित हैं, हमारा वपु चिदाकाश है; इस कारणते हमको आवरण कोऊ रोक नहीं सकता॥ हम सारखे जो उदार हैं. तिनको सदा स्वरूपविषे स्थिति है अरु सदा निवारण है; कोई कार्य हमको आवरण नहीं करि सकता; हम स्वइच्छित हैं; जहां गया चाहैं, तहां जाते हैं; सदा अंतवाहकरूप हैं; अरु तू अबलग आधिभौतिकरूप है, इस कारणते वह सृष्टि तुझको नहीं भासती अरु तू वहां जाय भी नहीं सकती॥ हे लीले! अपनाही जो संकल्प मनोराज्य होता है, तिसविषे चित्तकी वृत्ति लगी है, तिसविषे काल यह अपना शरीर नहीं भासता तो औरका कैसे भासै? जब तुझको अंतवाहकका दृढ अभ्यास होवै; अरु आधिभौतिक स्थूल शरीरकी ओर ते वैराग्य होवै; तब आधिभौतिकता मिटि जावैगी, काहेते जो आगेही सब सृष्टि अंतवाहकरूप हैं, संकल्पही दृढता करिकै आधिभौतिक भासता है, जैसे जल दृढ शीततताकरिकै बर्फरूप हो जाता है तैसे अंतवाहकते आधिभौतिक हो जाते हैं; प्रमादरूप संकल्पते वास्तवते कछु हुआ नहीं, जब वही संकल्प उलट करि सूक्ष्म अंतवाहककी ओर आता है, तब आधिभौतिकता मिटि जाती है, अंतवाहकता आन उदय होती है जब इसप्रकार तुझको निवारणरूप उदय होवैगा; तब देखनेमात्र अरु जाननेविषे यत्न कछु न होवैगा; साकार साथ निराकारको ग्रहण नहीं करि सकता, निराकारकी एकता निराकार साथ होतीहै, अन्यथा नहीं होती, जब तू अंतवाहकरूप होवैगी तब उसकी संकल्पसृष्टिविषे तेरा प्रवेश होवेगा. हे लीले! यह जगत् संकल्पभ्रममात्र है, वास्तवते कछु हुआ नहीं॥ एक अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है; द्वैत कछु है नहीं॥ लीलोवाच॥ हे देवि! जो एक अद्वैत आत्मसत्ता है; तब कलना यही दूसरी वस्तु क्या हुई यह कहौ? देव्युवाच॥ हे लीले! जैसे स्वर्णविषे भूषण कछु वस्तु नहीं, जैसे सीपीविषे रूपा दूसरी वस्तु कछु नहीं, जेवरीविषे सर्प नहीं; तैसे कलना भी कछु वस्तु नहीं॥ एक अद्वैत आत्मसत्ता सहज ज्योंकी त्योंही स्थित है, तिसविषे नानात्व भासता है, सो भ्रममात्र है, वास्तव अपना आप एक अनुभवसत्ता है॥ लीलोवाच॥ हे देवि! जो एक अनुभवसत्ता है; अरु मेरा अपना आप है; तौ मैं एता काल क्यों भ्रमती रही? ॥ देव्युवाच॥ हे लीले! अविचार भ्रम करिकै भ्रमती रही है; विचार

कियेते भ्रम शांत हो जाता है; सो भ्रम भी अरु विचार भी दोनों तेरा स्वरूप है; तूहीते उपजा है; अरु जब तुझको अपना विचार होवे; तब भ्रम निवृत्त हो जावैगा; जैसे दीपकके प्रकाशकारि अन्धकार नष्ट हो जाता है; तैसे विचारकारि द्वैतभ्रम नष्ट हो जावैगा; जैसे जेवरीके जाननेते सर्पभ्रम नष्ट हो जाता है, अरु सीपीके जाननेते रूपाभ्रम नष्ट हो जाता है, तैसे आत्माके जाननेते आधिभौतिक भ्रम शांत हो जावैगा, जब दृश्यको अत्यंताभाव जानके दृढ वैराग्य करिये, अरु आत्म स्वरूपका दृढ अभ्यास होवै. तब आत्माका साक्षात्कार होवै, भ्रम शांत हो जावै, इसकर कल्याण हो जावै ॥ हे लीले ! जब दृश्य जगत्‌विषे वैराग्य होताहै, तब वासना क्षय हो जाती है, वासना क्षय हुए शांति प्राप्त होती है, ॥हे लीले ! तू आत्मसत्ताका अभ्यास कर, तब जगत् भ्रम शांत हो जावैगा, भ्रम भी कछु वस्तु नहीं; देह आदिक भ्रम भी कछु हुआ नहीं, जैसे जेवरीके जाननेते सर्पका अभाव हो जाता है, तैसे आत्माके जाननेते देहादिकोंका अत्यंत अभाव जनाता है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे विश्रांतिवर्णनं नाम पंचदशः सर्गः १५

षोडशः सर्गः १६.

विज्ञानाभासवर्णनम्. ।

देव्युवाच ॥हे लीले ! जेते कछु शरीर तुझको भासते हैं सो स्वप्नपुरकी नाईं हैं, जैसे स्वप्नविषे शरीर भासताहै, जब स्वरूपविषे स्मृति होतीहै तब स्वप्नका शरीर वास्तव नहीं भासता; जैसे संकल्पके त्यागेते संकल्पशरीर भासता नहीं तैसे बोधकालविषे यह शरीर भासता नहीं, जैसे मनोराज्यके त्यागे मनोराज्यका शरीर भासता नहीं, तैसे यह शरीर भी भासता नहीं, जब स्वरूपका ज्ञान होवै तब यह भी वास्तव न भासैगा; जैसे स्वरूपके स्मरण हुए स्वप्नशरीर शांत हो जावै, तैसे वासनाको शांतहुए जाग्रत् शरीर भी शांत हो जाता है, जैसे स्वप्नका देह अभाव ज्ञानते असत् होता है, तैसे जाग्रत् शरीरकी भावना त्यागेते असत् भासता है,

इसके नष्ट हुए अंतवाहक देह उदय होवैगा; जैसे निद्राकरिकै स्वप्नविषे रागद्वेषको पावता है, जब पदार्थोंकी वासना बोधकर निर्बीज होती है, तब उनते मुक्त होता है, तैसे जिस पुरुषकी वासना जाग्रत् पदार्थोंविषे नष्ट भई है, सो पुरुष जीवन्मुक्त पदको प्राप्त होता है, जब उसविषे बहुरि वासना भी दृष्ट आवै, तब वह वासना भी निर्वासना है; जो सर्व कल्पनाते रहित है; तिसका नाम सत्ता सामान्य है ॥ हे लीले ! जिस पुरुषने वासना रोंकी है, अरु अज्ञान निद्राकरि आवर्या हुआ है; तब उसको सुषुप्तिरूप जान, उसकी वासना सुषुप्त है; अरु जिसकी वासना प्रगट है, जाग्रत्रूपकरि विचरती है, तिसको अधिक मोहकरि आवर्या जानिये; जो पुरुष चेष्टा करता दृष्ट आताहै, अरु जिसकी अंतरवासना नष्ट भई है, तिसको तुरीया जान ॥ हे लीले ! जो पुरुष प्रत्यक्ष चेष्टा करता है, अरु अंतरवासनाते रहित है, सो जीवन्मुक्त है, जिस पुरुषका चित्त सत् पदको प्राप्त भया है, तिसको जगत्की वासना नष्ट होजाती है जो वासना फुरती भासती है, तौ भी सत्य जानके नहीं फुरती; जब शरीरकी वासना नष्ट होती है तब आधिभौतिकता नष्ट हो जातीहै, अंतवाहकता आन प्राप्त होती है; जैसे बर्फकी पुतली सूर्यके तेज लागेते जलरूप होइ जाती है. तैसे अधिभूतकता क्षीण हो जाती है अंतवाहकता प्राप्त होती है, अब अंतवाहकता प्राप्त भई इसका शरीर अमांसमय चित्तरूप होता है. अरु सर्वका ज्ञान इसको होइ आवता है अपने जन्मांतरोंका ज्ञान भी होय आवता है, व्यतीत सृष्टिका ज्ञान भी होय आवता है अरु जहाँ जानेकी इच्छा करै तहाँ जाय प्राप्त होताहै; किसी सिद्धिके मिलनेकी इच्छा करै, अथवा कोई देखनेकी इच्छा करै, सब कछुसिद्ध होताहै, परंतु अंतवाहक बिना शक्ति नहीं होती,जब इस देहसों तेरा अहंभाव उठैगा, तब सब जगत् तुझको प्रत्यक्ष भासैगा ॥ हे लीले! जब आधिभौतिक शरीरकी वासना नष्ट भई,तब अंतवाहक देह होती है।जब अंतवाहकविषे स्थिति होतीहै, तब औरके संकल्पकी सृष्टि भासती है. ताते वासना घटावनेका यत्न कर,जब वासना नष्ट होवैगी, तब तू जीवन्मुक्त पदको प्राप्त होवैगी ॥ हे लीले ! जबलग तुझको पूर्ण बोध नहीं

प्राप्त भया, तबलग देहको यहाँ स्थापन करि वह सृष्टि चलही करि देख अंतवाहक शरीर साथ मांसमय स्थूल देहका व्यवहार सिद्ध नहीं होता, तैसे स्थूल देहसाथ सूक्ष्म कार्य नहीं होता, ताते अंतवाहक शरीरका अभ्यास कर, जब अभ्यास करैगी तब वह सृष्टि देखनेको समर्थ होवैगी॥ हे लीले! जैसे अनुभवते संस्थित सो मैंने तुझको कही है, यह वार्ता बालक भी जानते हैं, जो वर अरु शापकी नाईं नहीं जब अपना अभ्यास करैगी, तब बोधकी प्राप्ति होवैगी॥ हे लीले! सब जगत् अंतवाहकरूप है; अर्थ यह जो संकल्परूप अबोधरूप संकल्पके अभ्यास करिकै आधिभौतिक उत्पन्न हुआ है तिसकरिकै संसारकीवासना दृढ भई है, जन्म मरण आदिक जोविकार हैं; सो चित्तविषे पडे भासते हैं; जीव न मरता है; न जन्मता है; जैसे स्वप्नविषे जन्ममरण भासतेहैं; जैसे संकल्प करिकै भ्रम भासता है; तैसे जन्ममरण भ्रम करिकै भासता है; जब आत्मपदका अभ्यास करैगी; तब वह विकार मिट जावैगा, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी॥ लीलोवाच॥ हे देवि! तुमने परम निर्मल उपदेश मुझको कहा है, जिसके जाननेते दृश्यविषूचिका निवृत्त होती है, सो अभ्यास क्या है, बोधका साधन कैसे होता है, अरु अभ्यास पुष्ट कैसे होता है, अरु पुष्ट होनेसों फल क्या होता है?॥ देव्युवाच॥ हे लीले! जो कछु कोऊ करता है, जिस कालविषे, सो अभ्यासविना सिद्ध नहीं होता, सबका साधक अभ्यास है, ताते तू ब्रह्म अभ्यास कर॥ हे लीले! चित्तविषे आत्मपदकी चिंतवना होवै, कथन भी आत्माका होवै, परस्पर बोध भी आत्माका होवै, प्राणकी चेष्टाभी आत्माविषे होवै. मनन भी आत्मपदका होवै इसका नाम ब्रह्माभ्यास कहतेहैं, बुद्धिमान् चिंतना किसको कहते हैं, जो शास्त्र अरु गुरुते महावाक्य श्रवण किये हैं; तिनको युक्तिपूर्वक विचारना, अरु कथन उसको कहते हैं, जो शिष्यको उपदेश करना अन्योन्य परस्पर बोध करना, समान धर्म निश्चय चर्चा निर्णय करना, इन तीनोंमें परायण रहना, तिसका नाम बुद्धिमान् ब्रह्म अभ्यास कहते हैं; जिन पुरुषोंके पाप अंतको प्राप्त भयेहैं; अरु पुण्य बड़े हैं; सो रागद्वेषते मुक्त भयेहैं, तिनको तू ब्रह्मसेवक जान॥

हे लीले ! जिन पुरुषोंके रात्रिदिन अध्यात्मशास्त्रकी चिंतवनाविषे व्यतीत होते हैं; अरु वासनाको प्राप्त नहीं हैं, तिनको ब्रह्माभ्यासी जान वह ब्रह्म अभ्यासविषे स्थित हैं ॥ हे लीले ! जिनकी भोगवासना क्षीण भई है. अरु संसारके अभावकी भावना करते हैं, ऐसे जो विरक्त चित्त महात्मा पुरुष भव्य मूर्ति हैं, सो शीघ्रही आत्म पदको प्राप्त होते हैं, जिनकी बुद्धि वैराग्यरूपी रंगसाथ रंगी हैं, अरु आत्मानंदकी और वृत्ति धावती है, ऐसे जो उदार आत्मा हैं, सो ब्रह्म अभ्यासी कहाते हैं ॥ हे लीले ! जिन पुरुषोंने जगत्का अत्यंत अभाव जाना है, जो यह जगत् आदिते उत्पन्न हुआ नहीं ऐसे जानके दृश्यको असत् जानके त्यागते हैं, अरु परम तत्त्वको सत्य जाना है इस युक्तिविषे अभ्यास करते हैं, सो ब्रह्माभ्यासी कहाते हैं, जिन पुरुषोंको दृश्य असंभवका बोध हुआ है, रागद्वेषते रहित हैं, इस जगत्में हम हैं इस बुद्धिका भी अभावकरिके परमात्मपदविषे प्राप्त करते हैं. सो ब्रह्माभ्यासी कहाते हैं, हे लीले ! दृश्यके अभाव जानेविना रागद्वेष निवृत्त नहीं होता ॥ राग द्वेषबुद्धि लोकविषे दुःखोंको प्राप्त करती है,अरु जिसको दृश्यकी असं-भवबुद्धि प्राप्त भई है; तिसको ज्ञेय जो परमात्मतत्त्व है, तिसका ज्ञान प्राप्त होता है,जब दृढ अभ्यास तिस पदविषे होता है; तब परमात्मानंद निर्वाणपदको प्राप्त होता है; इस निमित्त यत्न करता है; सो प्राकृतहै॥ हे लीले ! बोधका साधन अभ्यास है, अरु अभ्यास शास्त्रते होता है, अरु प्रयत्नकरि पुष्ट होता है,पुष्ट हुए आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है ॥ हे लीले ! इनका नाम ब्रह्माभ्यासी ब्रह्मका सेवक कहाते हैं, सो तीन प्रका-रके हैं, एक उत्तम है, एक मध्यम है, एक प्राकृत है; उत्तम अभ्यासी वह है, जिसको बोधकला उत्पन्न हुई है; अरु दृश्यका असंभवबोध हुआ है; सो उत्तम है, अरु जिसको दृश्यका असंभवबोध हुआ है. अरु बोधकला जो नहीं उपजी तिसके अभ्यासविषे है, सो मध्यम है अरु जिसको दृश्यका असंभव नहीं हुआ अरु सदा यही हृदयविषे रहता है, जो दृश्यका असंभव होवै; ताते जिस प्रकार मैं तुझको अभ्यास कहाहै तैसे अभ्यास कियेते तू परमपदको प्राप्त होवैगी ॥ वसिष्ठ उवाच

हे रामजी ! अज्ञानरूपी निद्रा विषे यह जीव शयन कर रहा है; तिसकरि जगत्को नानाप्रकार देखता है, तैसे अविद्यारूपी निद्राते लीलाको विवेकरूपी वचनोंके जलकी वर्षा करिकै देवीने जगाई, तब अज्ञानरूपी निद्रा तिसकी नष्ट हो गई; जैसे शरत्कालविषे मेघकी कुहड नष्ट हो जाती है, तैसे लीलाका अज्ञान नष्ट भया ॥ ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इस प्रकार जब मुनीश्वरने कहा; तब सायंकालका समय हुआ; तब सर्व सभा परस्पर नमस्कार करिकै स्नानको गई, सूर्यकी किरणैं जब उदय भईं; तब बहुरि आय स्थित भये ॥

इति श्रीयोगवा०उत्प० विज्ञानाभासवर्णनं नाम षोडशः सर्गः ॥ १७ ॥

सप्तदशः सर्गः ७.

लीलाविज्ञानदेहाकाशसमागमनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार अर्द्धरात्रिके समय देवी अरु लीलाका संवाद हुआ, सब लोक सहेलियां बाहर सोए पडे थे; लीलाका भर्त्ता फूलोंविषे दावा हुआ था; तिसके पास दिव्य वस्त्र पहिरे हुए चंद्रमा की नाईं है कांति जिसकी ऐसी सुंदर देवियां सर्व कलनाको त्यागके अंगोंको संकोच करिकै समाधिविषे स्थित भईं; मानो रत्नके स्तंभसों पुतलियां उत्कीर्णकी स्थित हैं; अंतःपुर भी तिनके प्रकाशकारि प्रकाशमान भया है; बहुरि कैसी हैं; मानों कागजऊपर मूर्त्तियां लिख छोडी हैं;इस प्रकार सब दृश्यकलनाको त्यागिकै निर्विकल्प समाधिविषे स्थित भईं; जैसे कल्पवृक्षकी लता दूसरी ऋतुके आएते आगले रसको त्यागिकै दूसरी ऋतुके रसको अंगीकार करती हैं; तैसे दृश्यभ्रमको त्यागिकै आत्मतत्त्वविषे स्थित भई हैं; तब अहंताते आदि लेकरि जो दृश्यभ्रम है, सो तिनका शांत हो गया; दृश्यरूपी पिशाचके शांत हुयेते निर्मलभावको प्राप्त भईं; जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है; तैसे निर्मलभावको प्राप्त भईं ॥ हे रामजी ! यह जगत् शशेके शृंगकी नाईं असत् है; जो आदि न होवै अरु अन्त भी न रहै; जो वर्तमान दृष्ट आवै तो भी असत् जानिये ॥ जैसे मृगतृष्णाका जल

असत्य है, तैसे यह जगत् असत्य है; ऐसे जब स्वभावसत्ता हृदयविषे चिदाकाशविषे स्थित भई; तब अन्यसृष्टिके देखनेका जो संकल्प था सो आन फुरा; तिस फुरणेकरि आकाशरूप देह साथ चिदाकाशविषे उडीं, सूर्यचंद्रमाके मंडलको लघ गईं, दूरते दूर गईं, अनंत योजनपर्यंत स्थान लंघिगईं, तब बहुरि भूतोंकी सृष्टि देखी, तिसविषे प्रवेश किया॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलाविज्ञानदेहाकाशसमागमन वर्णनं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८.

आकाशगमनवर्णनम्

वसिष्ठउवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार परस्पर हाथ पकड़िकारि दूरते दूर चली जावैं; मानो एकही आसनपर दोनों चली जाती हैं. मेघोंके स्थान लंघे, अग्निके पवनके वेग नदियोंकी नाईं चलते थे, तहांते लंघिगईं, जहाँ निर्मल आकाशही भासै तहांते आगे गईं, कहूँ चंद्रमासूर्यका प्रकाशही नहीं कहूँ चंद्रमासूयका प्रकाश है; देवता विमानोंपर आरूढ फिरते हैं सिद्ध उडते फिरैं हैं; विद्याधर किन्नर गंधर्व गायन करते हैं; कहूं सृष्टि उत्पन्न होती है, कहूं प्रलय पडी होती है; शिखाधारी तारे उपद्रवकर्ता उदय हुए हैं; कहूँ प्राणी अपने व्यवहारविषे लगेहुए हैं; कहूं अनेक महापुरुष ध्यानस्थित हैं; कहूं हस्ती विचरते हैं; कहूं और पशु पक्षी विचरते हैं कहूँ दैत्य डाकिनी विचरते हैं; जोगिनियां लीला करती हैं; कहूं अंध गूँगे रहते हैं; कहूं गीध पक्षी सिंह घोडेके मुखवाले गण विचरते हैं, कहूं वरुण, कुबेर, इन्द्र, यमादिक लोकपाल बैठे हैं; अरु बडे पर्वत सुमेरु मंदराचल आदिक देखे, कहूं अनेक योजनोंपर्यंत वृक्षही चले जाते हैं; कहूँ अनेक योजनपर्यंत अविनाशी प्रकाश है; कहूं अनेक योजनपर्यंत अविनाशी अंधकार है; कहूँ जलकरि पूर्णस्थान है, कहूँ सुंदर पर्वतोंपर गंगाके प्रवाह चले जाते हैं; कहूं सुंदर बगीचे बावडियां ताल हैं; तिनोंविषे कमल लगे हुए हैं कहूँ भूतभविष्यत होना दृष्ट आवै है;

कल्पवृक्षके वन हैं; चिंतामणि अनंत हैं; कहूं शून्य स्थान हैं, भूत प्राणी कोऊ नहीं, कहूँ देवता अरु दैत्यके युद्ध बडे होतेहैं; नक्षत्रचक्र पडे फिरते हैं; कहूँ प्रलय पडा होता है; देवता विमानोंसहित पडे फिरते हैं; कहूँ स्वामिकार्तिकके राखे हुए मोरोंके समूह विचरते हैं; कहूँ कुक्कुट मोर आदिक पक्षी विद्याधरोंके वाहन पडे विचरते हैं, कहूँ यमके वाहन महिषोंके समूह विचरते हैं, कहूँ पाषाणसंयुक्त पर्वत पडे हैं, कहूँ भैरवके गण नृत्य करते हैं, कहूँ विद्युत् चमकती है, कहूँ कल्पतरु हैं, मंद मंद शीतल पवन सुगंधसमेत चलता है, कहूँ पर्वत रत्न अरु मणिकरि शोभते हैं ॥ हे रामजी ! इत्यादिक जगतोंकी जाल तिन देवियोंने देखी, जीवरूपी मच्छर त्रिलोकरूपी गूलरोंके अनंत वृक्ष देखे, तिसते अनंतर भूमंडलको देखके महीतलविषे प्रवेश किया ॥

इति श्रीयोगवा॰उत्प॰लीलोपा॰आकाशगमनवर्ण॰अष्टादशःसर्गः १८

एकोनविंशः सर्गः १९.

भूलोकगमनवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हेरामजी ! तब देवियां भूतल ग्रामविषे आवती भईं, ब्रह्मांडखप्परविषे प्रवेश किया, कैसा है ब्रह्मांड, त्रिलोकीरूपी कमल है; तिसकी अष्ट पुतलियां हैं; तिसविषे पर्वतरूपी डोडा है; चेतनतासुगंध है, नदियां समुद्र तिसके अंबुकण हैं, जब रात्रिरूपी भँवरे आन विराजते हैं. तब वह कमल सकुचाय जाते हैं, पातालरूपी कीचडविषे लगे हैं, पत्ररूपी मनुष्य देवता हैं, दैत्य राक्षस तिसके कंटकहैं; अरु डोडी उसकी शेषनाग है, जब वह हलताहै, तब भूचालन होता है; दिनकरिके प्रकाशताहै, ऐसा जो कमल है, तिसको इस प्रकार विस्तार हैं, एक लाख योजन जंबूद्वीप है, तिसके परे दूना खारा समुद्र है, तिस जलकरि द्वीपआवरण किया है, जैसे हाथको ककण होता है, तिसते आगे दूना शाकद्वीप है तिसते दूना क्षीरसमुद्र है तिसकरि वेष्टित है, तिसते आगे दूनी पृथ्वी है, तिसका नाम कुशद्वीप है; तिसते दूने घृतके समुद्रकरि वेष्टित है,

बहुरि दूनी पृथ्वी है; तिसका नाम क्रौंचद्वीप है; तहां दूना दधिका समुद्र है; तिसकारि वेष्टित हैं, बहुरि शाल्मली द्वीप है; तिसते दूना मधुका समुद्र है; बहुरि प्लक्षद्वीप है;तिसते दूना इक्षुरसका समुद्र है; बहुरि दूना पुष्कर-द्वीप है; तिसते दूना मीठे जलका समुद्र है,इसप्रकार सप्त समुद्र हैं;तिनते परे दशकोटि योजन कंचनकी पृथ्वी प्रकाशवान् है, तिसते आगे लोका-लोक पर्वत है, तिस ऊपर बड़ा शून्य बन है, तिसते परे एक बडा समुद्र है; तिसते परे दशगुणी अग्नि है, अग्निते परे दशगुणी वायु है;वायुते परेदशगुण आकाश है; आकाशते परे लक्ष योजनपर्यंत घनरूप ब्रह्मांडका कंध है; तिसको देखके दोनो फिरि आईं ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठ उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने भूलो-कगमनवर्णनं नाम एकोनविंशःसर्गः ॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः २०.

सिद्धदर्शनहेतुकथनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तहांते फिरिके वसिष्ठ ब्राह्मण और अरुंधतीका मंडल देखत भईं, बहुरि ग्राम अरु नगरकी शोभा देखी जोजाती रही है, तैसे कमलोंपर गडेकी वर्षा होवै, अरु कमलकी शोभा जातीरहै, जैसे बनमें अग्नि लगै अरु बनकी लक्ष्मी जाती रहै, जैसे अगस्त्य मुनिने समुद्रको पान करि लिया, अरु समुद्रकी शोभा जाती रही, जैसे तेल अरु बातीके पूर्ण भयेते दीपकका प्रकाश अभाव हो जाता है; जैसे वायुके चलनेकरि मेघका अभाव होता है, तैसे ग्रामकी शोभाका अभाव देखती भईं; जो कछु प्रथम शोभा थी, सो सब नष्ट हो गई थी, दासियांरुदन क-रती थीं,तब लीलाराणी जिसने चिरकाल तप ज्ञानका अभ्यास कियाथा तिसको यह इच्छा उपजी कि, मैं, अरु देवी मेरे बांधव देखैं;तब लीलाके सब संकल्प करिके बांधवलोक देखते भये, कहा जो इह बनदेवी गौरी अरु लक्ष्मी आई हैं;इनको नमस्कार करिये ॥ हे रामजी ! तब उनको वाने देखके ज्येष्ठशर्मा जो वसिष्ठका बडा पुत्र था,तिसने फूलोंकरि दो-नोके चरण पूजे, अरु कहा; हे देवि ! तुम्हारी जय होवो, हे देवियो !

यहां ब्राह्मण अरु ब्राह्मणी रहते थे तिनका परस्पर स्नेह था, मेरे पिताअरु माता थे, सो अब दोनो कालके वश स्वर्गको गए हैं, तिसकरि हम बहुत शोकवान् भए हैं, हमको त्रैलोक शून्य भासते हैं; हम सबही रुदन करते पड़े हैं;वृक्षोंपर जो पक्षी रहते थे, सोभी उनको मृतक देखके बनको चले गये पर्वतकी कंदरानसों पवन आता है,सो उन कंदरा सों रुदन कर आताहै, नदी जो वेगकरि आतीहैं,अरु तरंग उछलतेहैं,मानो वह भी रुदन करतेहैं अरु कमलोंके ऊपर जो जलके कण हैं, मानो कमलोंके नयनसे रुदनकरि जलचलता है, अरु दिशातेजो उष्ण पवनआता है, सो मानो दिशा भी उष्ण श्वासोंको छोडती हैं॥ हे देवियो।हम सबही शोकको प्राप्त भए हैं, तुम कृपा करिकै हमारा शोक निवृत्तकरो.काहेते कि, महापुरुषोंका समागम निष्फल नहीं होता, अरु महापुरुषोंके शरीर परोपकारके निमित्त हैं ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार ज्येष्ठशर्माने कहा, तब लीलाने कृपा करिकै शिरऊपर हाथ रक्खा, लीलाके हाथ रखने करि उसका सब ताप नष्ट हो गया, अंतःकरणशांतिको प्राप्त भया,जैसे ज्येष्ठ आषाढके दिनोंविषे पृथ्वी तप्त हुई, अरु तिसपर मेघकी वर्षा होती है, तब शीतल हो जाती है, तैसे उसका अंतःकरण शीतल भया, अरु जो वहांके निर्धन थे, सो तिनके दर्शन करनेकरि लक्ष्मीवान् भए,अरु शांतिको प्राप्त भए; शोक नष्ट हो गया,वृक्ष सूखे हुए थे,सो तिस समय फलसहित हो गये; राम उवाच ॥ हे भगवन् ! लीलाका पुत्र जो ज्येष्ठ शर्मा था; तिसको लीलाने मातारूपी होइकरि दर्शन क्यों न दिया ? सो कारण मुझको कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शुद्ध आत्मसत्ताविषे जो स्पंद संवेदन हुई है, सो संवेदन भूतोंका पिंडाकार होइ भासती है, अरु वास्तवते आकाशरूप है, भ्रांतिकरिकै पृथ्वी आदिक भूत भासते हैं; जैसे बालकको छायाविषे भ्रमकरिकै बैताल भासता है; तैसे संवेदनके फुरणेकरि पृथिव्यादिक भूतभासते हैं; जैसे स्वप्नविषे भ्रम करिकै पिंडाकार भासते हैं, अरु जागते आकाशरूप भासते हैं; तैसे भ्रमकेनष्ट हुए पृथ्वी आदि भूत आकाशरूप भासते हैं; जैसे स्वप्नके नगर स्वप्नकालविषे अर्थाकार भासते हैं; अग्नि जलावती है, जागेते सब शून्य होइ जाती है, तैसे अज्ञा-

नके निवृत्त हुएते यह जगत् आकाशरूप होइ जाता है, जैसे मूर्च्छा-विषे नानाप्रकारके नगर भासते हैं; जैसे परलोक जगत् भासताहै, जैसे आकाशविषे तरवरे भासते हैं अरु मुक्तमाला भासती है, जैसे नौकापर बैठेको तटके वृक्ष चलते भासतेहैं, तैसे यह जगत् भ्रमकरिकै अज्ञानीको भासता है, अरु जो ज्ञानवान् है तिसको सब चिदाकाश भासताहै, जगत् की कल्पना कोऊ नहीं फुरती,ताते लीला उसको पुत्रभाव अरु आपको माताभाव कैसे देखै ? उसका अहं अरु ममभाव नष्ट होगया था, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नष्ट होता है, तैसे लीलाका अज्ञानभ्रम नष्ट होगयाथा,सब जगत् उसको चिदाकाश भासता था, इस कारणते आप को माताभाव न जानत भई, जो उसविषे कछु ममता होती तब उसको माताभाव करदेखती, परंतु उसको यह अहंममभाव न था, इस कारणते माताभाव न देखा, न देवीरूप देखा, अरु शिरपर हाथ रक्खा, अर्थ यह जो संतोंका दयालु स्वभावहै, और मातापुत्रकी कल्पना उसविषै कछु न थी, इस कारणते उसके शिरपर हाथ रक्खा,और कल्पना कछु न थी, केवल आत्मरूप जगत् उसको भासा था ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने सिद्धदर्शन-हेतुकथनं नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशतितमः सर्गः २१.

जन्मान्तरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तिस पर्वत ऊपर जो ग्राम था, अरु तिस विषे वसिष्ठ ब्राह्मणका गृह था, तिस अंतःपुरसों देवी अरु लीला दोनों अंतर्धान हो गईं; तब वहाँके लोक कहने लगे कि; वनदेवियोंने हमारे ऊपर बडी कृपा करिकै दुःख नाश किये; अरु अंतर्धान भईं ॥ हे राम-जी ! तब दोनों आकाशविषे आकाशरूप अंतर्धान भईं; अरु परस्पर संवाद करत भईं;जैसे स्वप्नविषे संवाद होता है,तैसे उनका परस्परसंवाद हुआ ॥ देवीने कहा, हे लीले ! जो कुछ जानना था, सो तुझने जान्या है, क्यों ? अरु जो कुछ देखना था सो देखा क्यों ? यह ब्रह्मकी शक्ति

है; और कुछ पूछना होवै सो पूछौ ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! मेरा जो भर्त्ता है विदूरथ; तिसके पास मैं गई, तब उसने मेरेको क्यों न देखी, अरु मेरी इच्छाते ज्येष्ठशर्मा आदिने देखी सो कारण कहौ. देव्युवाच॥ हे लीले ! तब तेरा द्वैतभ्रम नष्ट भया न था; अरु अद्वैतको अभ्यास करि प्राप्त न भई थी, जैसे धूपमें छायाका सुख नहीं अनुभव होता, तैसे तुझको अद्वैतका अनुभव न था ॥ हे लीले ! जैसे ऋतुका फल मधु होता है; जो ज्येष्ठ आषाढ विदित होता है, अरु वर्षा आई नहीं तैसे तू थी, अर्थ यह जो संसारमार्गको लङ्घी थी; अरु अद्वैत तत्त्वको प्राप्त न भई थी, तिसकरि आत्मशक्ति तुझको प्रत्यक्ष न भई थी, ताते आगे तेरा सत्संकल्प न था अरु अब तू सत्संकल्प हुई है, अब तैंने सत्संकल्प किया है, जो तुझको ज्येष्ठशर्माने देखी; तिसकरि तुझको देखते भए, अब तू विदूरथके निकट जावै, तब पूर्ववत् तेरे साथ व्यवहार होवै ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! इस मंडप आकाशविषे मेरा भर्ता वसिष्ठ ब्राह्मण हुआ है ॥ बहुरि मृतक हुआ तब इसी लोकमंडप आकाशविषे उसको पृथ्वीलोक फुरि आया, पद्मराजा होत भया, चिरकालपर्यंत उसने चार द्वीपका राज्य किया, बहुरि मृतक हुआ, तब इसी मंडप आकाशविषे उसको जगत् भासा, अरु पृथ्वीपति हुआ, तिसका नाम विदूरथ भया ॥ हे देवि ! इसी मंडप आकाशविषे जर्जरीभाव अरु जन्ममरण हुआ, अरु अनंत ब्रह्मांड इसविषे स्थित हैं,जैसे संपुटविषे सरसोंके दाने अनेक होवैं, तैसे इसविषे ब्रह्मांड मुझको समीपही भासते हैं, भर्ताकी सृष्टि भी मुझको अब अंतर भासती है अब जो कछु तुम आज्ञा करौ सो मैं करौं ॥ देव्युवाच ॥ हे भूतलअरुंधती ! तेरे जन्म तौ बहुत विदित भए हैं, अरु अनेक तेरे भर्त्ता हुए हैं तिनविषे यह जो तेरे भर्ता हैं सो सब इस मण्डपविषे हैं; एक वसिष्ठ ब्राह्मण था, सो मृतक हुआ है, तिसका शरीर तो भस्म होगया है, बहुरि पद्मराजा हुआ, सो तेरे मंडपविषे शव पडा है; अरु तीसरा भर्त्ता संसारमण्डपविषे वसुधापति हुआ है, सो संसारसमुद्रविषे भोगरूपी कल्लोलकरि तिसकी चेतनता व्याकुल है; अरु राज्यकार्यविषे चतुर हुवा

है, आत्मपदते विमुख हुआ है; अज्ञान करिकै जानता है; कि मैं ईश्वर हौं, मेरी आज्ञा सबके ऊपर चलती है, अरु मैं बडे भोगोंको भोगनेहारा हौं, मैं सिद्ध हौं; बलवान् हौं ॥ हे लीले ! ऐसे संकल्पविकल्परूपी जेवरी साथ बांधा हुआ है, अब तू किस भर्ताके पास चलती है ! जहां तेरी इच्छा होवै तहां मैं तुझको ले जाऊं जैसे सुंगधको वायु ले जाता है, तैसे मैं तुझको ले जाऊंगी ॥ हे लीले ! जिस संसारमंडलको तू समीप करती है, सो चिदाकाशकी अपेक्षा करिकै समीप भासता है, अरु सृष्टिकी अपेक्षाकारि अनंतकोटि योजनोंका भेद है; अरु आकाशरूप है वपु तिनका, ऐसी अनंत सृष्टि पडी फुरती हैं, समुद्र अरु मंदराचल पर्वत आदिक अनंत हैं, तिन परमाणुविषे अनंत सृष्टि चिदाकाशके आश्रय पडी फुरती हैं, चिद्अणु चिद्अणुकेविषे रुचिके अनुसार सृष्टि बडे आरंभ करिकै दृष्ट आती है, अरु बडी स्थूल गिरि पृथ्वी दृष्टि आती है, अरु विचारकारि तौलिये तौ एक चावलके समान भी नहीं होती ॥ हे लीले ! नाना प्रकारके रत्नोंकारि पर्वत भी दृष्ट आते हैं; अरु आकाशरूप हैं; जैसे स्वप्नविषे चेतनका किंचन नानाप्रकारका जगत् दृष्टि आता है, तैसे यह जगत् चेतनका किंचन है, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंकारि कछु उपजा नहीं ॥ हे लीले ! आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, अपने आपविषे स्थित है, अरु जगत् आभास उपजता भी है, मिटि भी जाता है, जैसे नदीविषे नाना प्रकारके तरंग उपजते भी हैं अरु लीन भी होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् जाल उपजती है, अरु नष्ट भी हो जाती है, अरु आत्मसत्ता इनके उपजनेविषे अरु लीन होनेविषे एकरस है, आभासरूप है; वास्तव कछु नहीं ॥ लीलोवाच ॥ हे माता ! अब पूर्वकी मुझको सब स्मृति हुई है, प्रथम मैं जो राजसी जन्म ब्रह्मते पाई हौं, तिसते आदिलेकारि नानाप्रकारके मैं अष्टशत जन्म पाई हौं, सो प्रत्यक्ष मुझको भासते हैं; प्रथम जो चिदाकाशते मेरा जन्म है, सो विद्याधरकी स्त्री भई हौं, तिस जन्मविषे जो कोऊ मेरा कर्म हुआ, तिसकारि मैं भूतलविषे आन स्थित भई, तिसकारि दुःखी भई, बहुरि पक्षिणी भई, तहां जालविषे

फँसी तिसके अनंतर भिल्लिनी हुई हौं, कदंबवनविषे विचरने लगी, बहुरि वनलता भई हौं, तहां गुच्छेही मेरे स्तन थे, अरु पत्र मेरे हाथ थे, तहां एक ऋषीश्वर मुझको हाथकर स्पर्श किया करता था तिसकी पर्णकुटीमें मैं लता थी, तब मैं मृतक भई, बहुरि मैं तिसके गृहविषे पुत्री भई, तहां जो मुझसों कर्म होवै सो पुरुषहीका कर्म होवै तिसते मैं बडी लक्ष्मीकारि संपन्न राजा भई, तहां मुझसों दुष्ट कर्म हुए तिसकारि मैं बंदरी भई, कुष्ठ अंगोंकारि अष्ट वर्ष मैं वहां रही, बहुरि मैं बलद हुई; मुझको दुष्टने खेतीके हलविषे जोडी; तिसकारि दुःख पाई बहुरि भ्रमरी भई कमलोंपर जायकारि सुंगध लेती थी, बहुरि मृगी भई, चिरपर्यंत वनविषे विचरी, बहुरि एक देशका राजा भई, सौ वर्ष-पर्यंत वहां सुख भोगे, बहुरि कछुवाका जन्म लिया, बहुरि राजहंसका जन्म लिया, इस प्रकार मैं जन्मोंको धारती भई, अरु बडे कष्ट पाई ॥ हे देवि! इत्यादिक अष्ट सौ जन्म पावत फिरी हौं; संसार समुद्रविषे-वासनाकारि घटीयंत्रकी नाईं भ्रमती हौं हे देवि! अब मैं निश्चय किया है कि, आत्मज्ञान विना जन्मोंका अंत कदाचित् नहीं होता. तुम्हारी कृपातें अब निःसंकल्पपदको पावती भई हौं ॥

इति श्री योगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने जन्मांतरवर्णन नाम एकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशतितमः सर्गः २२.

गिरिग्रामवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन्! वज्रसारकी नाईं ब्रह्मांड खपर था, अनंत कोटि योजनोंपर्यंत तिसका विस्तार था, ऐसा ब्रह्मांड खपर था, ऐसे ब्रह्मांडको दोनों कैसे लंघती गईं? ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! वज्रसार ब्रह्मांड खपर कहां है, अरु कौन गया है? न कोऊ वज्रसार ब्रह्मांड है, न लंघ गया है, सब आकाशरूप है, उसी पर्वतके ग्रामविषे जो वसिष्ठ ब्राह्मणका गृह था, तिसी मंडप आकाशविषे सृष्टिका अनुभव

करत भया हौं ॥ हे रामजी ! जब वसिष्ठ ब्राह्मण मृतक भया, तब उसी मंडपाकाशके कोणेविषे आपको चारौ ओर समुद्रोंपर्यंत पृथ्वीका राजा जानत भया, जो मैं राजा पद्म हौं, अरुंधतीको लीला देखता भया, जो मेरी स्त्री है; बहुरि मृतक भया, तब उसी आकाशमंडपविषे उसको और जगत्का अनुभव भया, आपको राजा विदूरथ जानत भया, सो तू देख जो कहां गया है, अरु क्या रूप है, उसी मंडप आकाशविषे उसको सृष्टिका अनुभव भया, ताते जो सृष्टि है सो उसी वसिष्ठके चित्तविषे स्थित है, तब देवी जो ज्ञप्तिरूप है तिसकी कृपाते अपनेही देहाकाशविषे लीला उडीहै, आतिवाहिक देह जो आकाशरूपहै, तिसकरिकै उडी है, ब्रह्मांडको लंघके बहुरि उसी गृहविषे आई, जैसे स्वप्नते स्वप्नांतरको प्राप्त होवै, तैसे देख आई, ताते गई कहां, अरु आई कहां ? एकहीस्थान विषे होयके एक सृष्टिते अन्य सृष्टिको देखीहै, अरु हे रामजी! इनको ब्रह्माण्डके लंघ जानेविषे कछु यत्न नहीं, काहेते कि, उनका शरीर आतिवाहिक रूप है ॥ हे रामजी ! मनकरि लँघना चहिए; तहां लंघा जाता है, क्यों! तैसे वह प्रत्यक्ष लंघियां हैं; सत्यसंकल्परूप है, अरु वस्तुते कहैंतौ कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जैसे स्वप्नकी सृष्टि नानाप्रकारके व्यवहारोंसहित बड़ी गंभीर भासती है, अरु आभासमात्र है, तैसे यह जगत् देखे हैं, न कोऊ ब्रह्मांड है, न कोऊ जगत् है, न कोऊ कुंड है, केवल चेतनमात्रका किंचन है, और बना कछु नहीं जैसे चित्तसंवेदन फुरता है, तैसे आभास होइ भासता है, केवल वासनामात्रही जगत्है, पृथ्वीआदिक भूत कोऊ उपजा नहीं है, निरावरण ज्ञान आकाश अनंतरूप स्थित है, जैसे स्पंदअरु निस्पंद दोनोंरूप पवनही है, तैसे स्फुर अस्फुररूप आत्माही है, किंचन विषेभी ज्योंका त्यों है, शांतरूपहै, सर्वरूप चिदाकाश है, जब चित्त किंचन होता है, तब आपही जगत्रूप हो भासता है, दूसरा कछु नहीं ॥ जिन पुरुषोंने आत्माको जाना है, तिनको जगत्, आकाशते भी शून्य भासता है, अरु जिन्होंने नहीं जाना तिनको जगत् वज्रसारकीनाईं दृढ भासता है, जैसे स्वप्नविषे नगर भासते हैं, तैसे यह जगत् है, जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, जैसे सुवर्णविषे भूषण भासते हैं, तैसे आत्मा-

विषे जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! इस प्रकार देवी अरु लीला संकल्पकरिके नानाप्रकारके स्थानोंको देखती भई झरनोते जल चला आवै, बावडियां सुंदर ताल बगीचे वृक्ष देखैं, जो शब्द करते हैं, अरु सुंदर मेघ पवनसंयुक्त देखे मानौ स्वर्ग यहां आया है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने गिरिग्रामवर्णनं नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशतितमः सर्गः २३.

पुनराकाशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार देखके दोनो शीतल चित्त-ग्रामविषे वास करत भईं; भोग अरु मोक्षकरि शीतल चित्त है, अर्थ यह जो संतुष्टचित्त है, चिरकाल जो आत्माअभ्यास किया था, तिस-करि शुद्ध ज्ञानरूप होत भईं; अरु त्रिकाल ज्ञानकरि संपन्न भईं; तिस करि पूर्वकी स्मृति होत भई जो कछु अरुंधतीके शरीरकरि किया था, सो देवीको कहत भई ॥ हे देवि ! तुम्हारी कृपाते पूर्वकी स्मृति मुझको भई, जो कछु इस देशविषे मैं किया था, सो प्रगट भासता है; एक यहां ब्राह्मणी थी, तिसका शरीर वृद्ध होत भया. नाडियां दृष्ट आवैं, अरु भर्ताको बहुत प्यारी थी, अरु पुत्रोंकी माता थी, सो मैंही हौं ॥ हे देवि ! मैंने देवता ब्राह्मणोंकी पूजा करी थी, यहां मैं दूध रखती थी यहां अन्नादिकोंके वासन रखती थी, अरु मेरे पुत्र पुत्रियां जमाई दुहिते बैठते थे, यहां मैं बैठती थी, अरु भृत्योंको कहती थी कि शीघ्र ही कार्य करो , ऐसे शब्द मैं करती थी ॥ हे देवि ! यहां मैं रसोई करती थी भर्ता मेरा शाक गोबर ले आता था; अरु सर्व मर्यादा कहता था, यह मेरे हाथके चुटे बोए थे, यह वृक्ष मेरे लगाए हुए हैं, कछुक फल मैं इनसो लिये हैं कछुक रहे हैं, सो यह हैं, यहां मैं जलपान करती थी ॥ हे देवि ! मेरा भर्त्ता सब कर्मोविषे शुद्ध था, अरु आत्मस्वरूपते शून्य था, सब कर्म मुझको स्मरण होते हैं; यहां मेरा पुत्र ज्येष्ठशर्मा गृहविषे पड़ा रुदन करता है,

यहां बेलि मेरे गृहविषे विस्तरी हैं, अरु सुंदर फूल लगे हैं, इनके गुच्छे छत्रोंकी नाईंहैं, अरु झरोखे वेलिकारि आवरे हुए हैं यह मेरा मंडप आकाश है; इसविषे मेरे भर्त्ताका जीव आकाश है॥ देव्युवाच॥ हेलीले! यह जो शरीर है, तिसकी नाभिकमलते दश अंगुल ऊर्ध्व हृदयाकाश है; सो अंगुष्ठमात्र हृदयहै, तिसविषे उसका संवित् आकाश है, तिसविषे जो राजसी वासना थी, तिसकारि तिसको चारों समुद्रपर्यंत पृथ्वीका राज्य फुरि आया; कि मैं राजा हौं; यहां आठ दिन मृतक हुए बीते हैं; अरु यहां चिरकाल राज्यका अनुभव करत भयाहै ॥ हे देवि ! इसप्रकार थोडे कालविषे बहुत काल अनुभव करत भया है, अरु हमारेही मंडप विषे वह शव पड़ा है, अरु तिसकी पुर्यष्टकविषे जगत् फुरि आया है, तिसविषे आपको राजा विदूरथ जानत भया है, इस राज्यके संकल्प करि उसकी संवित् इसी मंडप आकाशविषे स्थित है, जैसे आकाशविषे गंधको लेके पवन स्थित होवै तैसे उसकी चेतनसंवित् संकल्पको लेकारि इस मंडपाकाशविषे स्थित है, उसकी संवित् इस मंडप आकाशविषे है उस राजाकी सृष्टि मुझको कोटि योजनोंपर्यंत भासती है. पर्वत मेघ अनेक योजनोंपर्यंत लंघती जाओ तब भर्त्ता के निकट प्राप्त होहु, अरु चिदाकाशकी अपेक्षा करके अपने पास भासती है, अब व्यवहार दृष्टिकारि कोटि योजनोंपर्यंत है, ताते चलौ जहां राजा विदूरथ मेरा भर्त्ता है, दूर हैं तौ भी निश्चयवानोंको निकट है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहिकारि दोनों मंडपाकाशविषे उडीं; जैसे पक्षी उडता है, तैसे उडीं, जैसे खड्गकी धारा श्याम होती है, जैसे विष्णुजी का अंग श्याम होता हैं; जैसे काजर श्याम होता है, जैसे भमरेकीपीठ श्याम होती है, तैसे आकाश श्याम है, तिस आकाशविषे अंतवाहक शरीर कारिके उडीं; मेघोंके स्थान लँघिगईं; बड़ा वायुका स्थान लँघि गईं; सूर्य चंद्रमाको लँघगईं ब्रह्मलोकपर्यंत जो देवताके स्थान थे, तिनको लंघ गईं; इसप्रकारते दूरते दूर गईं, तेशून्य आकाशविषे ऊर्ध्व जाइके अंधको देखत भईं जो सूर्य अरु चंद्रमा आदिक कोऊ नहीं भासता तब लीलाने कहा॥हे देवि! एता सूर्य आदिक प्रकाश था सो कहांगया यहां

तौ महाअंधकार है, ऐसा अंधकार है; मानो सुषुप्तिविषे ग्रहण होता है ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! हम महा, आकाशविषे आई हैं, यहां अंधकारका स्थान है; सूर्य आदिक कैसे भासैं ? जैसे अंधकूपविषे त्रसरेणु नहीं भासती; तैसे यहां सूर्य चंद्रमा नहीं भासते; अपुन बहुत ऊर्द्धको आये हैं ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! बडा आश्चर्य है जो हम दूरते दूर आई हैं जहां सूर्यादिकोंका प्रकाश नहीं भासता, इसते आगे अब कहां जाना है ? देव्युवाच ॥ हे लीले ! इसके आगे ब्रह्मांडकपाट आवैगा, सो बडा वज्रसार है, अरु अनंत कोटि योजनोंपर्यंत तिसका विस्तारहै जिसकी धूलकी कणिका भी इंद्रके वज्रसमान है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार देवी कहती थी, कि आगे ब्रह्मांडकपाट आया, महा वज्रसार अरु अनंत कोटि योजनोंपर्यंत तिसका विस्तार देखा, तिसको लंघि गई; अरु क्लेश कछु न भया, काहेते कि जैसा किसीको निश्चय होता है, तिसको तैसाही अनुभव होता है, निरावरण आकाशरूप जो देवियां हैं, सो ब्रह्मांडकपाटको लंघ गईं, तिसके परे दशगुणा जलका आवरण है, तिसके परे दशगुणा अग्नितत्त्व है, तिसके परे दशगुणा वायुहै, तिसके पर दशगुणा आकाशहै, तिसके परे परम आकाशहै, तिसका आदि मध्य अंत कोऊ नहीं, जैसे वंध्यापुत्रकी कथा चेष्टाका अंत आदि कोऊ नहीं तैसे परम आकाश है, आकाशका आदि कोऊ नहीं, नित्य शुद्ध अनंतरूप है, अपने आपविषे स्थित है, तिसका अंत लेनेको सदाशिव मनरूपी वेगिकारि कल्पपर्यंत धावै तौ भी न पावै अरु विष्णुजी गरुडपर आरूढ होइकै कल्पपर्यंत धावे तौ भी तिसका अंत न पावै अरु पवन अंत लेने को चाहै तौ न पावै, आदिमध्यअंत कलनाते रहित बोधमात्रहै

इति श्रीयो०उत्प० पुनराकाशवर्णनं नाम त्रयोविं० सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशतितमः सर्गः २४.

ब्रह्माण्डवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब पृथ्वी, आप, तेज आदिक आवरणको लंघ गईं, तब परमाणुते रहित परम आकाश उनको भासा, तिस

विषे ब्रह्मांड धूर कणिकाकी नाईं भासा,जैसे सूर्यकी किरणोंविषे त्रसरेणु भासतेहैं, सो महाशून्यको धारनेहारा परमआकाश है, अरु अपकण चिद्अणु सृष्टि जिसविषे फुरतीं हैं; ऐसा महासमुद्र है;कोई अधःको जाता है,तिसविषे कोई ऊर्ध्वको जाताहै, कोई तिर्यक् गतिको जाता है । हे रामजी! चित संवितविषे जैसा स्पंद स्फुरता है, तैसा २ आकार हो भासता है, वास्तव न कोऊ अधः है, नकोऊ ऊर्ध्व है, न कोऊ आता है, न कोऊ जाता है, केवल ज्योंकी त्यों आत्मसत्ता अपने आपविषे-स्थित है, फुरणेकरि जगत् भासता है, उत्पन्न होता है; बहुरि नष्ट होता है, जैसे बालकका संकल्प जो उपजिके नष्ट होजाता है; तैसे चेतनसंवितविषे जगत् फुरके नष्ट होजाता है. रामउवाच, हेभगवन्! अधः क्या होता है,अरु ऊर्ध्वक्याहोताहै,अरु तिर्यक्क्याभासताहै?अरुयहां क्यास्थित है? सो मुझको कहो. वसिष्ठ उवाच, हे रामजी! परमाकाश जो सत्ताहै, सो आवरणते रहित है; शुद्धबोधरूपहै,तिसविषे जगत् ऐसे भासता है,जैसे आकाशविषे भ्रांतिकरि तरुवरे भासतेहैं,तिसविषे अधः अरु ऊर्ध्व कल्पनामात्र है, जैसे हलोंके वटेके चौफेर कीडियां फिरती रहैं, अरु उनको मनविषे अध ऊर्ध्व पडा भासै, उनके मनविषे अधः ऊर्ध्वकी कल्पना हुई हैं॥हेरामजी!यह जगत् आत्माका आभासरूप है, जैसे मंदराचल पर्वत ऊपर हस्तियोंके समूह विचरते हैं, तैसे आत्माविषे अनेक जगत् फुरते हैं, जैसे मंदराचलपर्वतके आगे हस्ती होवै,तैसे ब्रह्मके आगे जगत् है, अरु वास्तवते सर्व ब्रह्मरूप है. कर्त्ता,कारण,कर्म, आदान, उपादान, अधिकरण सर्व ब्रह्मही है, यह जगत् ब्रह्मसमुद्रके तरंग हैं, तिन जगत् ब्रह्मांडोंको देवियां देखत भई;कैसे ब्रह्मांड उन्होंने देखे हैं, सो तू श्रवण कर. कई सृष्टि उत्पन्न होती देखीं, कई प्रलय होती देखीं, कई उपजनेका आरंभ देखा, जैसे नूतन अंकुर निकसता है, तैसे उपजने लगी है, कहूं जलहीजलहै, और कछु नहीं, कहूं अंधकारही है, प्रकाश कछु नहीं कहूं सर्व व्यवहार संयुक्त है, कहूं अपूर्व वेद शास्त्रके कर्म हैं, कहूं आदि ईश्वर ब्रह्माहै, तिससे सब सृष्टि हुई है, कहूँ आदि ईश्वर विष्णुहै, तिससे सब सृष्टि हुई है. कहूँ आदि ईश्वर सदाशिव है इसी प्रकार और प्रजा

पतिकरि उपजते हैं; कहूं नाथको कोऊ नहीं मानते, अनीश्वर वादी हैं, कहूँ तिर्यकही जीव रहते हैं, कहूँ देवताही रहते हैं, कहूं मनुष्यही रहते हैं कहूँ बडे आरंभ करिके संपन्न हैं, कहूँ शून्यरूप हैं, ॥ हे रामजी ! इस प्रकार अनेक सृष्टि उत्पन्न होती चिदाकाशविषे देखत भई तिनकी संख्या करनेको कोऊ समर्थ नहीं चिदात्माके आभासरूप फुरती हैं ॥ जैसी फुरणा होती है, तिसके अनुसार फुरती हैं ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे ब्रह्मांडवर्णनं नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशतितमः सर्गः २५.

गगननगरयुद्धप्रेक्षकान्वितवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार दोनों देवियां उडके राजाके जगतविषे आई, तहां अपने मंडप स्थानोंको देखत भई, जैसे सोयाहुआ जागके देखता है, तैसे अपने मण्डपविषे प्रवेश किया, तब क्या देखा जो राजाका फूलोंके साथ ढांपा हुआ शव पडा है, अरु अर्ध रात्रिका समय है, सर्व लोक गृहमें सोये पडे हैं, अरु राजा पद्मके शवके पास लीलाका शरीर था सो पडा है, अंतःपुरविषे धूप, चंदन, कपूर अगर की सुगंध भरि रहीहै, तब बिचार करत भई कि वहां चलैं, जहां राजा राज्य करताहै, तब उस भर्त्ताकी जो पुर्यष्टक थी, जिसविषे विदूरथका अनुभव हुआ था, तिस संकल्पके अनुसार विदूरथकी सृष्टि देखनेको देवीके साथ चलीं, अंतवाहक शरीर साथ आकाशमार्गको उडीं, जातेर ब्रह्माण्डकी बाटको लँघ गई, तब विदूरथके संकल्पविषे जगत्को देखत भई, जैसे तलावडीविषे सेवाल होतीहै, तैसे जगतको देखत भई, सप्तद्वीप देखे, नवखंड देखे, सुमेरु आदि पर्वत देखे, समुद्रद्वीपादिक सब रचना देखत भई, तिसविषे जबूद्वीप भरतखंड देखा, तिसविषे विदूरथ राजाका मण्डपस्थान देखत भई, तहां राजा सिद्धको देखत भई, तिसने कुछ विदूरथ राजाकी पृथ्वीकी हद भाइयोंने दबाई थी, तिनके

निमित्त सेनाको भेजी, अरु राजा विदूरथने भी सुनके सेनाको भेजी, दोनों सेना मिलके युद्ध करने लगी हैं, अरु त्रिलोकी युद्धका कौतुक देखने आई है, देवता विमानोंपर आरूढ होइके देखने लगे हैं, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर शस्त्रोंको छोडके देखनेको स्थित भए हैं, अरु विद्याधरियां अप्सरा आईं स्थित भई हैं, जो शूरमे युद्धविषे प्राणोंको त्यागैंगे; तब हम इनको स्वर्ग विषे ले जावैंगी; ऐसे विचार करि विद्याधरियां आन स्थित भईं हैं; अरु रक्त मांस भोजन करनेको भूत, राक्षस, पिशाच योगिनियां आन स्थित भई हैं॥ हे रामजी! जो पुरुष शूरमें हैं, सो तौ स्वर्गके भूषण हैं, अरु अक्षय स्वर्गको भोगैंगे; जिनका मरना धर्म पक्ष करिके संग्रामविषे होवैगा, सोई स्वर्गको जावैंगे॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! शूरमा किसको कहते हैं अरु जो युद्धकरिकै स्वर्गको नहीं प्राप्त होते सो कौन हैं?॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जो शास्त्रयुक्त युद्ध नहीं करते, अनर्थरूपी अर्थके निमित्त युद्ध करते हैं, सो नरकको प्राप्त होते हैं, अरु जो पुरुष धर्मके निमित्त युद्ध करते हैं सो शूरमे हैं, सोई स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं, अरु जो पुरुष गौके अर्थ युद्ध करते हैं, कै ब्राह्मणके अर्थ, मित्रके अर्थ शरणागतके अर्थ, युद्ध करते हैं, सो मृतक हुए स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं; और स्वर्गके भूषण कहाते हैं अरु जो राज्यपालनेके निमित्त युद्ध करते हैं, सो मुए हुए स्वर्गको प्राप्त होते हैं, उनका यश स्वर्गविषे बहुत होता है, जो पुरुष धर्मके अर्थ युद्ध करते हैं, सो अवश्य स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं, अरु जो अधर्मकरि युद्ध करते हैं, सो मृतक हुए नरकको प्राप्त होते हैं॥ हे रामजी! जो पुरुष कहते हैं, संग्रामविषे मुए सब स्वर्गको प्राप्त होते हैं, सो मूर्ख हैं, स्वर्गको वही जाते हैं, जिनका मरना धर्मके अर्थ हुआ है, अरु जो किसी भोगके अर्थ युद्ध करते हैं, सो नरकको प्राप्त होवैंगे॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे लीलोपाख्याने गगननगरयुद्धप्रेक्षकान्वितवर्णनं नाम पंचविंशतितमः सर्गः॥ २५॥

षड्विंशतितमः सर्गः २६.

रणभूमिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तब दोनों देवियां रणसंग्रामको देखत भई, क्या देखा कि महाशून्य बन है, तिसविषे दोनों सेना जुडी हैं, जैसे दो बडे समुद्र उछलिकारि परस्पर मिलने लगें तैसे सेना मिलीं तिसको यह देखनेकारि संकल्पको रचिकै दोनो विमान तिस ऊपर स्थित होके देखने लगीं, तब क्या देखा जो योद्धे आयके स्थित हुए हैं, मच्छव्यूह, गरुडव्यूह, चक्रव्यूह इस प्रकार सेनाके भाग भिन्न हुए दोनों सेनाके योद्धे एक एक होइकारि युद्ध करने लगे, प्रथम परस्पर देख जो यह बाण चलावै, ऐसे कहैं जो तू प्रथम चलाउ, उनने कहा तू प्रथम चलाउ, अरु क्रोधदृष्टिकारि स्थिर हो रहे, मानो मूर्तियां लिख छोडी हैं, तिसके अनंतर और योद्धे दोनों सेनाके आए, मानो प्रलयकालके मेघ उछले हैं, तिनके आनेकारि एक एक योद्धेकी मर्यादा दूर हो गई, इकट्ठे युद्ध करने लगे, बडे शस्त्रोंके प्रवाहके प्रहार करनेलगे, कहूं खड्गोंके प्रहार होवहिं, कुहाडे त्रिशूल भाले बरछियां कटारी छुरी चक्र गदादिक शस्त्र चलने लगे, जैसे वर्षाकालमें मेघ वर्षा करते हैं, तैसे शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी, बडे शब्द करैं, अरु शस्त्र चलावैं ॥ हे रामजी ! जेते कछु प्रलयकालके उपद्रव थे, सो इकट्ठे आन हुए; योद्धा जो थे सो जानके युद्धकी ओर आये, अरु जो कायर थे सो भागगये, ऐसा संग्राम हुआ; जो योद्धानके शिर काटे गये, तिनके हस्ती घोडे मृत्युको प्राप्त भये, जैसे कमलके फूल काटे जाते हैं तैसे तिनके शीश काटे जावैं, तब दोनों सेनाके राजा चिंता करने लगे, कि क्या होवैगा ? हे रामजी ! ऐसा युद्ध हुआ, कि रुधिरकी नदी बह चलीं; तिसविषे प्राणी बहते जावैंही, अरु बडे शब्द करैं जिन शब्दके आगे मेघोंके शब्द भी तुच्छ भासैं ॥ हे रामजी! दोनों देवियां संकल्पके विमान कल्पिके आकाशविषे स्थित हुईं, क्या देखा कि ऐसा युद्ध हुआ है जैसे महाप्रलयविषे समुद्र एकरूप हो जाते हैं अरु बिजलीकी नाईं शस्त्रोंका चमकार होता है, अरु जो शूर वीरहैं, तिनके रक्तकी

बूंदें पृथ्वीपर पडती हैं, तिन बूंदोंविषे जेते मृत्तिकाके कणके लगे होते हैं, तेते वर्ष स्वर्गको भोगेंगे, जो जो शूरमा युद्धविषे मृतक होवैं, तिनको विद्या धरियां स्वर्गको लेजावैं, अरु देवगण स्तुति करें कि, यह शूरमा स्वर्गको प्राप्त भया अक्षय स्वर्ग भोगैगा, अर्थ यह जो चिरकाल स्वर्ग सुखभोग भोगैगा ॥ हे रामजी! शूरमें स्वर्गलोकके भोग मनविषे चिंतन करि हर्षवान् होवैं, अरु युद्ध करि नाना प्रकारके शस्त्र चलावैं, अरु संहारे हैं, बहुरि युद्धके सन्मुख होवें; धैर्य धरके स्थित होवैं, जैसे सुमेरु पर्वत धैर्यवान् अचल स्थित है; तिसते भी अधिक धैर्यवान् रहैं, ऐसे संग्राम-विषे योद्धे चूर्ण होवैं, जैसे ऊखलविषे चूर्ण होती हैं. तैसे रणविषे चूर्ण होवैं, अरु बहुरि सन्मुख होवैं, अरु हाहाकार शब्द बडे होवैं, अरु हस्तीसों हस्ती परस्पर यु करैं, शब्द करैं ॥ हे रामजी ! अनेक जीव इस प्रकार नाशको प्राप्त भये, जो जो शूरमा मरैं तिनको विद्या-धरियां स्वर्गलोक लेजावें, परस्पर बडे युद्ध होवैं, खड्गवालेके साथ खड्गवाले युद्ध करैं, त्रिशूलवालेके साथ त्रिशूलवाले युद्ध करैं, जैसा २ शस्त्र किसीके पास होवै तैसेही तिसके पास युद्ध करैं जब शस्त्र पूर्ण होइ जावैं तब मुष्टिसाथ युद्ध करैं, दशदिशा युद्धकरि पूर्ण हो गईं ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे लीलोपाख्याने रणभूमिवर्णनं नाम षड्विंशतितमः सर्गः ॥ २६॥

सप्तविंशतितमः सर्गः २७.

द्वन्द्वयुद्धवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार बडा युद्ध हुआ तब शूरोंके रुधिरका प्रवाह चला, जैसे गंगाका प्रवाह तीक्ष्ण चलता है, तैसा तीक्ष्ण प्रवाह चला, तिस प्रवाहविषे हस्ती, घोडे, मनुष्य, रथ सब बहे जावैं; अरु सेना सृष्टि नाशको प्राप्त होती जावै. हे रामजी! बडा क्षोभ आनके उदय हुआ, तब राक्षस पिशाच आदिक जो तामसी जीवथे, सो भोजन करने लगे, मांस खावैं, अरु रुधिर पानकरैं, उनको उत्साह क्रिया

प्राप्त भई; जैसे मंदराचल पर्वतकरि क्षीरसमुद्रको क्षोभ हुआ था, तैसे संग्राम भूमिविषे योद्धोंको क्षोभ हुआ; रुधिरका समुद्र चला, तिसविषे हस्ती, घोड़े रथ शूरमे तरंगोंकी नाईं उछलते दृष्टि आवैं; रथवाले सों रथवाले युद्ध करैं, घोडेवाले सों घोडेवाले युद्ध करैं; हस्तिवालेसों हस्तिवाले, प्यादेसों प्यादे युद्ध करैं ॥ हे रामजी! जैसे प्रलयकालकी अग्निविषे जीव पड़े जलते हैं, तैसे जो योद्धा रणभूमिविषे आवैं, सो नाशको प्राप्त होवैं; जैसे दीपकविषे पतंग प्रवेश करता है, अथवा जैसे समुद्रविषे नदियां प्रवेश करती हैं, तैसे रणभूमिविषे दश दिशाके योद्धे प्रवेश करैं, किसीका शीश काटा जावै, अरु धड युद्ध करै, किसीकी भुजा काटी जावै, किसीके ऊपर रथ चले जावैं; हस्ती, घोडे, उलट पलट पडैं, अरु नाश हो जावैं॥ हे रामजी ! दोनों राज्योंकी सहायताके निमित्त अनेक राजा आये थे, पूर्व दिशाते आये थे, काशी मदरास देशके, मीलादेशके, मालवदेशके, सकलादेशके, कवटा देशके, किरात देशके, म्लेच्छदेशके आये थे, जिनोंके अनुसार मर्यादा नहीं, सो म्लेच्छ हैं, पारसीवाले आये, काश्मीर देशके आये, तुरक देशके आये, पञ्जाबदेशके आये, हिमालयपर्वतके आये, सुमेरुपर्वतकेआये इत्यादिक अनेक देशपाल आये, जिनके बडे भुजदंड हैं, अरु बडेकेश हैं अरु बडे भयानक रूप हैं, सब युद्ध करनेके निमित्त आये, एते मूर्तिमंतआये बडी ग्रीवावाले आये, एकटंगे पर्वतते आये, एकाचलसे एकाक्ष आये, घोडेके मुखवाले आये; श्वानके मुखवाले इसते लेकरि योद्धे आये, स्त्रीराज्यते आये, सुमेरु कैलासके राजा थे; जेते कछु पृथ्वीके राजा थे, सो सबही आये, जैसे महाप्रलयके समुद्र उछलते हैं, अरु दिशास्थान जल करि पूर्ण होते हैं, तैसे सेनाकरिके सब स्थान पूर्ण भये, दोनों ओरते युद्ध करने लगे, चक्रवालेके साथ चक्रवाले युद्ध करैं, खड्ग, कुल्हाडे, त्रिशूल छुरी, कटारी, बरछी, गदा, बाण आदिक शस्त्रोंकरि परस्पर युद्ध करने लगे, एक कहैं प्रथम मैं जाता हौं, एक कहैं मैं प्रथम जाता हौं ॥ हे रामजी ! तिस कालमें ऐसा युद्ध होने लगा जो कहनेविषे नहीं आता दौडदौडके योद्धे रणविषे जावैं, अरु मृत्युको प्राप्त होवैं, जैसे अग्निविषे घृतकी आहुति भस्म होती है, तैसे रणविषे योद्धे नाशको प्राप्त

होवैं ऐसा युद्ध हुआ, जो रुधिरका समुद्र चला तिसविषे हस्ती, घोडे, रथ, मनुष्य, तृणोंकी नाईं वहते जावैं; अरु संपूर्ण पृथ्वी रक्तमय हो गई, जैसे आंधीकरि फूल फल बूटे गिरते हैं; तैसे पृथ्वीपर कटकट शब्द करते शिर गिरैं॥ हे रामजी! जो तिसकालमें युद्ध हुआ है, सो कहनेविषे नहीं आता, सहस्रमुख जो शेषनाग है, सो वह भी युद्धके कर्मोंको वर्णन करै तौ भी संपूर्ण न करि सकैगा तब और कैसे कहैगा, सो संक्षेपते कछु श्रवण कराया है॥

इति श्रीयोगवा० लीलोपाख्यानेद्वंद्वयुद्धवर्णनंनामसप्तविंशतितमः सर्गः२७

अष्टाविंशतितमः सर्गः २८

स्मृत्यनुभववर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जब इसप्रकार युद्ध हुआ तब सूर्य अस्त हुआ, मानौ उसकी किरणैं भी शस्त्रोंके प्रहारकरि अस्तताको प्राप्त भईं, तब विदूरथ जो सेनापति है, सो मंत्रियोंको बुलाकरि कहत भया॥ हे मंत्री! अब युद्धकी शांति करिये काहेते जो सूर्य अस्त भया है, अरु योद्धे भी सब युद्ध करिकै थके हैं, रात्रिको आराम करैं, बहुरि दिनको युद्धकरैंगे ताते वस्त्र फेरौ, और अब युद्ध शांत करौ, तब मंत्रीने दोनों सेनाके मध्यविषे ऊंचे चढके वस्त्रको फेरा, कि अब युद्धको शांत करो बहुरि दिनको युद्ध करैंगे तब दोनों सेनाने युद्धका त्याग किया, अरु अपनी अपनी सेनाविषे नौवत नगारे बजवाने लगे, राजा विदूरथ भी अपने गृहविषे आय स्थित भया, रणभूमिका शांत होगई, जैसे शरत्कालविषे मेघोंतेरहित आकाश निर्मल होताहै, तैसे रणविषे संग्राम शांतिको प्राप्त भया, तब रात्रि देखके राक्षस, पिशाच, गीदड, बघाड, डाकिनी मांसका भोजन करने आये, अरु रुधिर पान करैं कईके शिर काटे गये कईके अंग काटे गये अरु पडे जीवते हैं, अरु हाय हाय सब पड़े करते हैं; सो निशाचरनकोदेखके डरने लगे; अरु कईलोक भाईमित्रोंकोदेखतेभये हेरामजी! तब राजा विदूरथ स्वर्णकेमन्दिरविषे शय्या ऊपर विश्रामकरत

भया कैसी शय्याहै, जो फूलोंसहित चंद्रमाकी नाईं शीतल और सुंदरहै, तिस ऊपर सब किवाडोंको चढाइके विश्राम किया है, अरु मंत्रियोंके साथ विचार किया कि प्रातःकालको उठके ऐसे करैंगे ऐसे विचार करिके शयन किया, मुहूर्त एकपर्यंत राजा सोया; बहुरि चिंताकरि जाग उठा, अरु दोनों देवियोंने आकाशते उतरके गृहविषे सूक्ष्म रूपसों प्रवेश किया जैसे संध्याकालमें कमलके मुख मूँदते हैं, तिनोंमें वायु प्रवेश कर जावै तैसे मन्दिरों में सूक्ष्म परमाणुके मार्गकरि प्रवेश किया॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! शरीर साथ परमाणुके रंध्रविषे देवियां कैसे प्रवेश करत भई? वह तौ कमलके तंतुते भी सूक्ष्म होते हैं, बालके अग्रते भी सूक्ष्म होते हैं. तिस मार्गविषे कैसे प्रवेश करत भईं॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! भ्रांतिकरजो अधिभूतक शरीर देह हुआ है, तिस आधिभौतिक शरीरकरि आपते सूक्ष्मरंध्रविषे प्रवेश कोऊ नहीं करि सकता है, परंतु मनरूपी शरीरको रोक कोऊ नहीं सकता॥ हे रामजी! देवी अरु लीलाका अंतवाहक शरीर था, तिसते सूक्ष्म परमाणुके मार्गसे उनको प्रवेश करनेमें कछु विचार न हुआ, जो उनको अधिभूत शरीरहोता, तौ यत्नभी होता जहां अधिभूतक न होवै, तहां यत्नकी शंका कैसे होवै? हे रामजी! और भी सब शरीर चित्तरूपी हैं, अरु जैसा निश्चय अनुभव संवित्‌विषे होता है, तैसेही सिद्धता होती है, अन्यथा नहीं होती, जिसके निश्चयविषे यह शरीरादिक आकाशरूप है, तिसको अधिभूतकताका अनुभव नहीं होता, अरु जिसके निश्चयविषे अधिभूतकता दृढ होरही है, तिसको अंतवाहकका अनुभव नहीं होता, जिस पुरुषको पूर्वार्धका अनुभव नहीं तिसको उत्तरार्धविषे गमन नहीं होता, जैसे वायुका चलना ऊर्ध्वको नहीं होता, तिरछा स्पर्श होताहै, अरु अग्निका चलना अधःको नहीं होता जलका ऊर्ध्व नहीं होता, जैसे आदि चेतनसंवित्‌विषे प्रवृत्ति भईहै, तैसे अब लग स्थित है, ताते जिसको अंतवाहकशक्ति उदय भई है, तिसको अधिभूतकता नहीं रहती अरु जिसको अधिभूतकता दृढ है, तिसको अंतवाहकशक्ति उदय नहीं होती॥ हे रामजी! जो पुरुष छायाविषे बैठा होवै तिसको धूपका अनुभव नहीं होता, अरु जो धूपविषे बैठा है

तिसको छायाका अनुभव नहीं होता, अनुभव तिसको होता है, जिसके चित्तविषे दृढता होती है, अन्यथा किसीको कदाचित् नहीं होती ॥ हे रामजी! जैसा प्रमाण चित्संवित्विषे होता है, जबलग और प्रतीति नहीं होती तबलग तैसेही सिद्धता होती है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, अरु भयकरि कंपायमान होता है, सो कँपता भी तबलगहै; जबलग सर्पका अनुभव अन्यथा नहीं होता; जब जेवरीका अनुभवउदय हुवा, तब सर्पभ्रम नष्ट होता है; तैसेही जैसा अनुभव चित्तसंवित् विषे प्रमाण दृढहोता है, तिसका अनुभव होता है; यह वार्त्ता बालक भी जानता है, जैसी जैसी चित्तकी भावना होती है. तैसाही रूप भासताहै, निश्चय और होवै; अरु अनुभव और प्रकार होवै, सो कदाचित् नहीं होता ॥ हे रामजी! जिनको यह आकार स्वप्नसंकल्पपुरकी नाईं हुए हैं सो आकाशरूप हैं, जिनको ऐसा निश्चय होवै, तिनको रोक कोऊ नहीं सकता, औरोंका भी चित्तमात्र शरीर है, अरु जैसा जैसा संवेदन दृढ भया है, तैसा तैसा आपको जानता है॥ हे रामजी! आदि सर्ग आत्माते स्वाभाविक उपजा है, सो अकारणरूप है, पाछेते प्रमाद करि द्वैत कार्य अकारणरूप होयके स्थित भया है ॥ हे रामजी! आकाश तीन हैं; एक चिदाकाश है, एक चित्ताकाश है, एक भूताकाश है; तिनविषे वास्तव एक चिदाकाश है, अरु भावना करिकै भिन्न भिन्न कलना हुई है, आदि शुद्ध चिदाकाश अचेतन चिन्मात्रविषे जो संवेदन फुराहै; तिसका नाम चित्ताकाशहै, तिसविषे यह संपूर्ण जगत् हुआ है, हे रामजी! चित्तरूपी जो शरीर है, सो सर्वगत होइकारि स्थित भया है, जैसा जैसा तिसविषे स्पंद होता है; तैसा होयके भासता है; जेते कछु सर्व पदार्थ हैं, तिनसबों विषे व्याप रहा है; त्रसरेणुके अंतर भी सूक्ष्म भावकारि स्थित भया है, आकाशके अंतर भी व्याप रहा है, जिनके पत्र फल होते हैं. जलविषे तरंग होयके स्थित भया है; अरु शैल जो पर्वतहैं; तिनके अंतरभी वही फुरता है, अरु मेघ होइकै वही वर्षता है, अरु जलते बर्फ भी चित्तही होता है, अनंत आकाश भी वही है, परमाणुरूप वही है, अंतर बाहर सर्व जगत्में यह है, जेता कछु जगत् है, सो चित्तरूपही है, अरुवास्तव

आत्मासाथ अनन्यरूपहै, जैसे समुद्र अरु तरंगविषे कछु भेद नहीं तैसे आत्मा अरु चित्तविषे कछु भेद नहीं, जिस पुरुषको ऐसे अखंड सत्ता आत्माका अनुभव हुआ है, अरु सर्गके आदि चित्तही जिसका शरीरहै, अधिभूतकताको नहीं प्राप्त भया; सो महाआकाश रूपहै, जिनको पूर्वका स्वभाव स्मरण रहा है, इस कारणते तिनका अंतवाहक शरीर है ॥ हे रामजी! जिस पुरुषको अंतबाहकविषे अहंप्रत्ययहै, तिसको सब जगत् संकल्पमात्र हो भासता है; जहांजानेकी इच्छा वह करताहै, तहां जाताहै आवरण कोऊ उसको रोक नहीं सकता; अरु जिसको आधिभौतिकविषे निश्चय है, तिसको अंतवाहक शक्ति नहीं होती ॥ हे रामजी ! सबहीअंतवाहकरूप हैं, अरु भ्रमकरके अणुहोता अधिभूतक देखते हैं; जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, स्वप्नविषे जैसे वंध्याके पुत्रका सद्भाव होताहै; तैसे आधिभौतिक जगत् भासता है, जैसे जलते शीतलताकरके वर्फहो जाता है, तैसे जीवप्रमाद करके अंतवाहकते अधिभूतक शरीर होताहै. राम उवाच ॥ हे भगवन् ! चित्तमें क्या है, अरु कैसे होता है, अरु कैसे नहीं होता,अरु यह जगत् कैसेचित्तरूपहै, अरु क्षणविषे अन्यथा कैसे हो जाता है ॥वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी!एकएक जीवप्रति चित होता है, जैसा जैसा चित्तहै तैसी तैसीशक्ति है,अरु चित्तविषेजगतभ्रमहोताहै क्षणविषे कल्प अरु संपूर्ण जगत् उदय हो आता है, अरु क्षणविषे संपूर्ण लय होता है; किसीको निमेषविषे कल्प हो आता है, किसीको क्रमकरिके भासता है, सो तू सुन ॥ हे रामजी ! जब मरनेकी मूर्च्छा होती है, तिस महाप्रलयरूप मृत्यु मूर्च्छाके अनंतर नानाप्रकारका जगत् इसको फुरि आता है, जैसे स्वप्नविषे सृष्टि फुरि आती है,जैसे संकल्पका पुर भासता है, तैसे मृत्युमूर्च्छाके अनंतर सृष्टि भासती है; जैसे महाप्रलयके अनंतर आदि विराट्रूप ब्रह्मा होता है, तैसे मृत्युके अनंतर इसको अनुभव होता है, यह भी विराट् होता है, काहेते जो इसका मनरूपी शरीर होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! मृत्युके अनंतर जो सृष्टि होती है; सो स्मृतिकरके होती है, स्मृतिविना तौ नहींहोती,जो मृत्युके अनंतर सृष्टि हुई तौ सकारणरूप हुई ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब

महाप्रलय होता है, तब हरि हरादिक सबही विदेह मुक्त होते हैं; बहुरि स्मृतिका संभव कैसे होवै ? हम आदिक जो बोध आत्मा हैं, जब विदेहमुक्त हुए, तब स्मृतिसंभव कैसे होवै, अरु अबके जो जीव हैं, तिनका जन्ममरण स्मृति कारणते होता है; काहेते कि, मोक्ष नहीं होता, मोक्षका इनको अभाव है ॥ हे रामजी ! जब यह जीव मरतेहैं, तब मृत्यु मूर्च्छा होतीहै, अरु कैवल्यभाव विषेस्थित नहीं होते, मूर्च्छाकरि इसका संवित् आकाशरूप होता है, तिसते बहुरि चित्तसंवेदन फुरि आताहै, तब क्रमकरिके जगत् फुरि आता है; जब बोध होता है; तब तन्मात्रा अरु काल क्रिया भाव अभाव स्थावर जंगम जगत् सब आकाशरूप हो जाता है, जिसका संवेदन दृश्यकी ओर धावताहै, अज्ञानजन्य तिसको मृत्यु मूर्च्छाके अनन्तर संवेदन फुरता है, तिसकरि शरीर इंद्रियांभास आतीहैं, कैसा शरीरहै, अंतवाहक शरीर है, परंतु चिरकालकी प्राप्ति करिकै आधिभौतिक होइ भासता है, तब इसको देश काल क्रिया आधार आधेय उदय होइकरि स्थित होते हैं, जैसे वायु स्पंदनिस्पंदरूपहै, जब स्पंद होता है, तब भासता है, अरु निस्पंद हुएते नहीं भासता, तैसे संवेदन करिकै जगत् भासता है, तब जानता है कि, मैं यहां उपजाहौं; जैसे स्वप्न अंगनाका स्वप्नविषे स्पर्शका अनुभव होता है, तोभी मिथ्या है, तैसे भ्रमकरिकै आपको उपजा देखता है, तौ भी मिथ्या है ॥ हे रामजी ! जहां यह जीव मृतक होता है, तहां ही जगत्भ्रम देखता है, अरु वास्तवते जीव भी आकाशरूप है, अरु जगत् भी आकाशरूप है, अरु अज्ञानकरिकै आपको उपजा मानता है, अरु आगे जगत्भ्रम देखता है, यह नगर है यह पर्वत है यह सूर्य चंद्रमा हैं, यह तारागण हैं, अरु जरा मरण आधि व्याधि संकटकरिकै व्याकुल होताहै, भाव अभाव भय स्थूल सूक्ष्म चर अचर पृथ्वी नदियां पर्वत भूत भविष्य वर्तमान क्षय अक्षय भूमिको देखता है, मैं उपजा हौं, अमुकोंका मैं पुत्रहौं, यह मेरा कुल है, यह मेरी माता है, यह मेरे बांधवहैं, एता धन हमको प्राप्त भयाहै, इत्यादिक वासना जालों विषे दुःखी होताहै, अरु कहताहै, यह सुकृत है, यह देहाकृति है, प्रथम मैं बालक था. अब मेरी यह अवस्था भई है यह मेरा वर्ण है;

इत्यादि जगत्कल्पना एक एक जीवको उदय होती है॥ हे रामजी! संसार रूपी एक वृक्ष उदय हुआ है चित्तरूपी बीज है, तारागण तिसके फूल हैं, अरु मेघ चंचल पत्रहैं, अरु जंगम, जीव, मनुष्य, देवता, दैत्य आदिक पक्षी बैठनेवाले हैं, अरु रात्रि तिस ऊपर धूर है, अरु समुद्र तिसकी तलावडी हैं, अरु पर्वत उसविषे सिलबटे हैं, अरु अनुभवरूप अंकुर है, जहां यह जीव मरता है, तहां क्षणविषे देखता है, इस प्रकार एकएकको अनेक जगत् भासते हैं॥ हे रामजी! कई कोटि ब्रह्मा अरु विष्णु, रुद्र, इंद्र, पवन, सूर्य आदिक हुए हैं; जहां सृष्टि है, तहाँ यह होते हैं, ताते चिद्अणुविषे अनेक सृष्टि हैं; जो जीव भी अनंतहुए हैं, तिन्होंविषे सुमेरु मंडल द्वीप लोक भी बहुतेरे हुए हैं, जो जो चिद्अणुविषे सृष्टिका अंत नहींतौ परब्रह्मविषे अंत कहांते आवै अरु वास्तवते है नहीं, जैसे पर्वतकी कंदराविषे शिल्पी पुतलियां कल्पै, तौ कछु है नहीं तैसे जगत् चिदाकाशविषे नहीं, मनमात्रही है॥ हे रामजी! मन अरु स्मरण भी चिदाकाशरूप है अरु चिदाकाशविषे मनन अरु स्मरण हैं, जैसे तरंग भी जलरूप हैं, अरु जलहीविषे तरंग होते हैं, जलते इतर तरंग कछु वस्तु नहीं, तैसे मनन स्मरण भी चिदाकाशरूप जान॥ हे रामजी! दृश्य कछु भिन्न वस्तु नहीं, द्रष्टाही दृश्यकी नाईं होकरि भासता है, जैसे यह मनआकाश नानाप्रकार होइ भासताहै, तैसे चिदाकाशका प्रकाश नाना प्रकारजगत् होइकरि भासता है, यह विश्व सब चिदाकाशरूप है, हमको तौ ऐसे भासता है, तुमको यह जगत् अर्थाकाररूप भासता है, इसी कारणते कहा है कि, लीला अरु सरस्वती आकाशरूपथी, अरु सर्वज्ञ थीं, स्वच्छ रूप निराकार थी, जहां चाहै तहां जाइ प्राप्त होती थी, जैसी इच्छा करै, तैसी सिद्धि होवै; काहेते कि, जिसको चिदाकाशका अनुभव हुआ है, तिसको कोऊ रोक नहीं सकता, सर्वरूप होयके जो स्थितहुआ, तिस गृहविषे प्रवेशका क्या आश्चर्य है? वह अंतवाहकरूप है॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने स्मृत्यनुभववर्णनं नाम अष्टाविंशतितमः सर्गः॥ २८॥

एकोनत्रिंशत्तमः सर्गः २९.

भ्रांतिविचार।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब दोनों देवियां राजाके अंतःपुर विषे प्रवेश करिकै संकल्पकारि सिंहासनपर चढ़के स्थित भईं, चंद्रमाकी नाईं कांति है जिनकी, अरु निर्मल कल्पवृक्षोंकी सुगंध पवनकरि शरीरको स्पर्श करत भईं, तब बडा प्रकाश अंतःपुरविषे भया, अरु शीतलताकरि व्याधि ताप शांत भया; जैसे नंदनवन होता है तैसे अंतःपुर भया, जैसे प्रातःकालविषे सूर्यका प्रकाश होताहै, तैसे देवियोंके प्रकाश करिकै अंतःपुर पूर्ण भया-मानो देवियोंके प्रकाशसों राजाके ऊपर अमृतकी सिंचना भई, तब राजा देखत भया, मानो सुमेरुके शृंगते दोनों चंद्रमा उदय हुए हैं, ऐसे देखके विस्मयको प्राप्त भया, बहुरि चिंतना करत भया कि, यह देवियां हैं, शय्याते उठ खडा भया, जैसे शेषनागकी शय्याते विष्णु भगवान् उठते हैं, तैसे उठके वस्त्रको एक ओर कारि हाथोंविषे पुष्प लिये, हाथ जोडिकै देवियोंके चरणोंपर चढाये, अरु मस्तक टेका, पद्मासन बांधिकै पृथ्वीके ऊपर बैठा अरु कहत भया हे देवियो ! तुम्हारी जय होवै, जन्मदुःख तप्तके तुम शांत करनेहारी चन्द्रमा हौ, अरु अपूर्व सूर्य हौ, अर्थ यह जो पूर्व सूर्यके प्रकाश कारि बाह्यतम नष्ट होता है; अरु तुम्हारे प्रकाशकारि अंतर अज्ञानतम भी नष्ट होता है; ताते अपूर्व सूर्य हौ, जब ऐसे राजाने पूजन कारि कहा, तिसते अनंतर मन्त्री जो राजाके पास सोये थे; जैसे नदीके तट ऊपर फूलोंका वृक्ष होवै, तैसे राजाकेपास सोये थे तिनको जन्म अरु कुलके कहावने निमित्त संकल्प कारिके देवी जगावती भई, तब मन्त्री भी उठके फूलोंकारि देवियोंको पूजनकारिकै राजाके समीप बैठ गये, तब सरस्वती कहत भई ॥ हे राजन् ! तू कौन है ? किसका पुत्र है ? अरु कबका जन्म लिया है ? हे रामजी ! जब इस प्रकार देवीने पूछा, तब निकट जो मन्त्री बैठे थे, सो बोलत भये ॥ हे देवी ! तुम्हारी कृपा कारि राजाका जन्म अरु कुल मैं कहता हौं, इक्ष्वाकुकुलविषे एक राजा होत भया है, कमलकी नाईं तिसके नेत्र थे, अरु श्रीमान् था,

अरु तिसका नाम कुंदरथ भया, तिसका पुत्र बुधरथ भया, तिसका पुत्र सिंधुरथ होत भया, तिसका पुत्र महारथ होत भया, तिसका पुत्र विष्णुरथ होत भया, तिसका पुत्र कलारथ होत भया, तिसका पुत्र सूर्यरथ होत भया, तिसका पुत्र नभरथ होत भया, तिस नभरथके पुत्र वडे पुण्यकरके विदूरथ होत भया; जैसे क्षीर समुद्रसों चंद्रमा निकसा है, तैसे सुमित्रा माताते उपजा है, जैसे गौरीजीते स्वामिकार्तिक उत्पन्न भया है, तैसे यह सुमित्राते उत्पन्न भया है ॥ हे देवि ! इसप्रकार तौ हमारा राजाका जन्म हुआ है, जब दश वर्षका भया, तव पिता इसको राज्य देकरि आप वनको उठ गया है, तिस दिनते लेकरि इसने धर्मकी मर्यादा साथ पृथ्वीकी पालना करी है, अरु बडे पुण्य किये हैं, तिन, तिन पुण्योंका फल तुम्हारा दर्शन इसको अब भया है ॥ हे देवि ! तुम्हारे दर्शनके निमित्त जो बहुत वर्ष तप करते हैं, तिनको तुम्हारा दर्शन पावना कठिन है, ताते इसके बड़े पुण्य हैं, जो तुम्हारा दर्शन प्राप्त हुआ ॥ हे रामजी ! इस प्रकार कहिकै मंत्री तूष्णीं रहत भया, तब देवीजीने कृपा करिकै राजा विदूरथके शीशपर हाथ रक्खा अरु कहा, हे राजन् ! तू अपने पूर्व जन्मको विवेकदृष्टिकरिकै देख कि, जो तू कौन है, जब इसप्रकार देवीने कहा तब राजाके हृदयविषे अज्ञान था, सो देवीके हाथ रखनेकरि निवृत्त होत भया, अरु हृदय प्रफुल्लित हुआ, ऐसे देवीके प्रसादकरि राजाको पूर्वकी स्मृति फुरआई; लीला अरु पद्मका वृत्तांत संपूर्ण स्मरण करिकै कहत भया ॥ हे देवि ! वडा आश्चर्य मैंने जाना है, कि यह जगत् मनकरि रचा है; तेरे प्रसादकरि मैंने जाना है, कि मैं राजा पद्म था, अरु लीला मेरी स्त्री थी, एक दिनमुझको मृतक हुवे ऐसे भासा, अरु यहां मैं सत्तर वर्षका भया हौं, सो भ्रमकरिकै मैंने नहीं जाना, अब प्रत्यक्ष जानता हौं, अरु अनेक कार्य मैंने किये हैं, सत्तर वर्षोंविषे सो मुझको स्मरण होते हैं, अरु प्रपितामह भी मुझको स्मरणविषे आता है, अपनी बालक अवस्था भी स्मरणविषे आती है, यौवन अवस्था भी स्मरणविषे आती है, मित्र बांधव स्मरण होते हैं, यह वडा आश्चर्य हुआ है. ॥ सरस्वत्युवाच ॥ हे राजन् ! जब यह मृतक होते हैं, तव इनको वडी मूर्च्छा होती है, तिस मूर्च्छाके

अनंतर और लोक भासि आतेहैं, एक मुहूर्तविषे वर्षोका अनुभव होताहै जैसे स्वप्नविषे एक मुहूर्तसों अनेक वर्षोंका अनुभव होताहै, तैसे मुझको मृत्यु मूर्छाके अनंतर यह लोकभ्रम भासाहै॥ हे राजन्! तू जो पद्मराजाथा; तिस अपने गृहविषे मृतक हुए तुझको एक मुहूर्त बीताहै, अरु यहां तुझको बहुतेरे वर्षोंका अनुभव भयाहै, अरु तिसते भी जो पिछला वृत्तांत है, सो श्रवण कर॥ हे राजन्! एक पहाड़के ऊपर ग्राम था; तिसविषे एक वसिष्ठ ब्राह्मण था, अरुंधती तिसकी स्त्री थी, दोनों मंदिरविषे रहते थे, तिस अरुंधतीने मुझसों वर लिया कि, जब मेरा भर्ता मृतक होवै तब उसका जीव इसही मण्डपाकाशविषे रहै॥ हे राजन्! जब वह मृतक भया तब उसकी पुर्यष्टक उसही मंदिरविषे रही, तिसके संवित्विषे राजाकी दृढ वासना थी तिस मण्डपाकाश विषे तिसको पद्मराजाकी सृष्टि फुरि आई अरु अरुंधती तिसकी स्त्री तिसको लीला होइकरि प्राप्त भई, अरु पद्मका मण्डप उस ब्राह्मणके मण्डपाकाशविषे स्थित फुरि आया, बहुरि तिस मण्डपविषे राजा पद्म तू मृतक भया तब तेरे संवित्विषे नानाप्रकारके आरंभसंयुक्त तुझको यह जगत् फुरि आया। हे राजन्! यह तो तेरा जगत् है, सो पद्मराजाके हृदयविषे फुरि आया है, अरु पद्मराजाके मंडपाकाशविषे स्थित है, सो उसही वसिष्ठ ब्राह्मणके मण्डपाकाशविषे स्थित है, अरु वही वसिष्ठब्राह्मण तू विदूरथ राजा भया है, सो कैसे स्थित है? हे राजन्! यह सब जगत् प्रतिभामात्र है, मनकी कलनाकरि भासता है, उपजा कुछ नहीं॥ विदूरथ उवाच॥ बडा आश्चर्य है जैसे मेरा यह जन्म भ्रमरूप भया, तैसे इक्ष्वाकुका कुल भ्रमरूप तैसे मेरा पिता माता सब भ्रमरूप भये, तिसविषे मैंने जन्म लिया, बहुरि बालक हुआ दश वर्षका हुआ, तब पिताने मुझको राज्य देके वनवास दिया, बहुरि मैंने दिग्विजय करिकै प्रजाकी पालना करी, शत वर्षोंका मुझको अनुभव होता है अरु अब मुझको दारुण अवस्था युद्धकी प्राप्ति आन भई है, युद्धकरिकै रात्रिको मैं गृहविषे आन स्थित भया हौं; बहुरि तुम दोनों देवियां मेरे गृहविषे आई हो, मैं तुम्हारी पूजा करत भया हौं बहुरि तुम दोनोंविषे एक देवीने कृपा करिकै मेरे शीशपर हाथ रक्खा है, तिसकरि

मुझको ज्ञानप्रकाश भया है, जैसे सूर्यके प्रकाशकरि कमल प्रफुल्लित होता है, तैसे मेरा हृदय देवीके प्रकाशकरि प्रफुल्लित भया है;तैसे इनकी कृपाते कृतकृत्य भया हौं, अब मेरा संताप सब नष्ट भया है, अरु परम निर्वाण समता सुख निर्मल पदको प्राप्त भया हौं ॥ सरस्वत्युवाच ॥ हे राजन् ! जो कछु तुझको भासा है, सो सब भ्रममात्र है, नानाप्रकारके व्यवहार अरु लोकांतरभी भ्रममात्र हैं,काहेते जो वहां तुझको मृतक हुए एक मुहूर्त व्यतीत भया है; तिसके अनंतर वही मण्डप आकाशविषे तुझको यह जगत्भासा है,अरु वह पद्मराजाकी सृष्टि ब्राह्मणके मंडपविषे स्थित है, तहां तुझको नदियां, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी आदिक भूत संपूर्ण जगत् भासि आये हैं;जैसे समुद्रविषे तरंग आवृत्त फुरि आतेहैं, तैसे जगत् भासि आयाहै॥हेराजन्!मत्युमूर्छाके अनंतर कबहुँ वही जगत् भासताहै, कबहुँ और प्रकार भासताहै,कबहुँ पूर्व अरु अपूर्व भी भासताहै,सो मनकी कल्पना करिकै भासता है वास्तवते असद्रूप है, अज्ञानकरिकै सत्की नाईं भासताहै;जैसे एक मुहूर्त शयन करिकै स्वप्नविषे बहुतेरे वर्षोंका क्रम देखताहै,तैसे जगत्का अनुभव होताहै,जैसे संकल्पपुरविषे अपना जीना बहुरि मरणा देखता है, जैसे गंधर्वनगर भ्रममात्र होता है, जैसे नौका विषे बैठे हुएको तटके वृक्ष चलते हुए भासते हैं, जैसे भ्रमणेकरिकै पर्वत पृथ्वी मंदिर भ्रमते भासते हैं,जैसे स्वप्नविषे अपना शिर काटा भ्रमकरिकै भासता है,तैसे यह जगत् भ्रमकरिकै भासता है॥ हे राजन्!अज्ञान करिकै मिथ्या कल्पना तुझको उपजी है, वास्तवते न तू मृतक भयाहै, न जन्म लिया है, शुद्धविज्ञान शांतिरूपहै, तू अपना आप जो आत्मपद है, तिसविषे स्थित हो, नानाप्रकारका जगत् अज्ञानकरि भासता है, सम्यक् ज्ञानकरिकै सर्वात्मसत्ता भासती है, आत्मसत्ताही जगत्की नाईं भासती है, जैसे बडी मणिकी किरणें नानाप्रकार होइ भासती हैं, सो मणिते इतर कछु नहीं, तैसे आत्मसत्ताका किंचन आकाशरूप जगत् भासता है, गिरि ग्राम तुम किंचनरूप हौ; जेता कछु जगत्विस्तार तुझको भासता है, सो लीला अरु पद्मराजाके मंडपाकाशविषे स्थित है, अरु वह लीला पद्मकी राजधानी उस वसिष्ठ ब्राह्मणके

मंडपाकाशविषे स्थित है ॥ हे राजन् यह जगत् वसिष्ठ ब्राह्मणके हृदय मंडपाकाशविषे पडा फुरता है, कैसा है मंडपाकाश जो आकाशविषे स्थित है, न पृथ्वी न कोऊ शैल पर्वत है, न कोऊ मेघ है, न कोऊ समुद्र है, न कोऊ मुमुक्षु है, केवल शून्यही शून्य स्थित है, और न कोऊ जगत् है, न कोऊ देखनेवाला है; यह सब भ्रांतिमात्र है ॥ हे राजन् यह सब तेरे उस मंडपाकाशविषे पडे फुरते हैं ॥ विदूरथ उवाच हे देवि! जो ऐसे हैं, तौ यह मेरे भृत्यु भी अपने आत्माविषे सत् हैं, अथवा असत् हैं, सो कहौ ॥ देव्युवाच ॥ हे राजन्! विदितवेद्य जो पुरुष है, सो शुद्ध बोधरूप है, तिसको कछु भी जगत् सत्यरूप नहीं भासता सब चिदाकाशरूपही भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्पभ्रम निवृत्त हुए नहीं भासता, तैसे जिन पुरुषोंको आत्मबोध हुआ है, अरु जगत्भ्रम निवृत्त हुआ है, तिनको जगत् सत् नहीं भासता; जैसे सूर्यकी किरणों विषे जलको असत् जानै तब बहुरि जलसत्ता नहीं भासती, तैसे जिनको आत्मबोध हुआ है, अरु जगत्को असत् जाना है, तिनको सब नहीं भासता ॥ हे राजन्! जैसे स्वप्नविषे कोऊ भ्रम करिकै अपना शीश काटा देखै, अरु जागेते स्वप्नका मरणा नहीं देखता, तैसे ज्ञानवान्को जगत् सत् नहीं भासता; जैसे स्वप्नका मरणा भ्रमकरि देखता है. तैसे अज्ञानीको जगत् सत् भासता है; परंतु वास्तव कछु नहीं; शुद्ध बोध विषे जगत्भ्रम भासता है, जैसे शरत्कालविषे मेघते रहित शुद्ध आकाश होता है, तैसे शुद्धबोधवालेको अहं त्वं आदिक व्यर्थ शब्दका अभाव होता है ॥ अरु हे राजन्! तू अरु तेरे भृत्य इत्यादिक जो यह सृष्टि है, सो सब आत्माते फुरै हैं; जैसे तू फुरा है. तैसे यह सब फुरै हैं, अरु वस्तुते कछु हुआ नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है. भ्रमकरि और कछु भासता है, शुद्धविज्ञानघनरूप तिसका शेष रहता है ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इसप्रकार जब देवी अरु विदूरथका संवाद वसिष्ठने रामजीको कहा तब सूर्यका अस्त भया; सायंकालका समय भया, सर्व सभा परस्पर नमस्कार करिकै स्नानको गई, रात्रि व्यतीत भई, तब सूर्यके किरणोंसहित सब अपनेअपने स्थानोंके ऊपर आइ के बैठे ॥ इतिश्रीयोगवासिष्ठे लीलो० भ्रांति० नामएकोनत्रिंशत्तमः सर्गः २

त्रिंशत्तमः सर्ग ३०.

स्वप्नपुरुषसत्यतावर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो पुरुष अबोध हैं, अर्थ यह जो परमपदविषे स्थित नहीं भये, तिनको जगत् वज्रसारकी नाईं दृढ भया है, जैसे मूर्ख बालकको अपनी परछाहींविषे बैताल भासता है, तैसे अज्ञानी को असत्रूप जगत सत् होय भासता है, जैसे मरुस्थल विषे मृगको असत्रूप जलाभास सत्य होइ भासता है; जैसे स्वप्नविषे क्रिया अर्थभ्रमकरिके भासती है, जैसे जिसको सुवर्णबुद्धि नहीं होती, तिसको भूषणबुद्धि सत् भासती है, जैसे नेत्र दूषणकरिके आकाशविषे मुक्तमाला भासती है, तैसे असम्यग्दर्शीको असत्रूप जगत् सत् होइ भासता है ॥ हे रामजी! यह जगत् दीर्घ कालका स्वप्न है, सोअहंता करिके दृढ जाग्रतरूप हो भासता है, वास्तवते कछु उपजा नहीं, वस्तुते परम चिदाकाश है, सर्वदा शांतिरूप है, अचिंत्य चिन्मात्रस्वरूप है, सो सब जगत् है, सर्वशक्ति सर्वात्मा है, जहां जैसा स्पंद फुरता है, तैसा जगत् होइकरि भासता है; जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है, सो स्वप्नभ्रम चिदाकाश विषे स्थितहै, तिस चिदाकाशविषे एक स्वप्नपुर फुरताहै, वह द्रष्टा हो दृश्यको देखता है, सो द्रष्टा अरु दृश्य दोनों चेतन संवित्विषे आभास रूपहैं; तैसे यह जगत् भी आभासरूपहै॥ हे रामजी ! स्वर्गकी आदिजो शुद्धआत्मसत्ता थी, तिसविषे आदि संवेदन स्पंद हुआ है, सो ब्रह्माजी है, तिसके संकल्पविषे यह सम्पूर्ण जगतस्थित है, यह संपूर्ण जगत्स्वप्नकी नाईं है, तिस स्वप्नरूपविषे तुम्हारा सद्भाव हुआ है, जैसे तुम हौ ऐसे और भी हैं; जैसे स्वप्नविषे स्वप्न नगरको और स्वप्न होवै, जैसे स्वप्ननगरवास्तव सत् नहीं होता तैसे यह जगत् भी जो दृष्ट आता है सो भ्रममात्र है, जैसे स्वप्नविषे असतही सत् होके भासता है, तैसे यह भी अहं त्वं आदिक भासते हैं; जैसे स्वप्नविषे सब कर्म होते हैं, तैसे यह भी जान ॥ राम उवाच॥ हे भगवन् ! स्वप्नते जब जागता है, तब स्वप्नके पदार्थ असत्रूप हो भासते हैं, अरु यह तौ ज्योंके त्यों रहते हैं, जब देखिये

तब ऐसे ही हैं, बहुरि जाग्रत अरु स्वप्नको तुल्य कैसे कहिये ? ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! जैसा स्वप्न है तैसा जाग्रत है, स्वप्न अरु जाग्रत्‌विषे कछु भेद नहीं, स्वप्नको भी स्वप्न असत्‌ तब जानता है; जब जागता है, जबलग जागा नहीं तबलग असत्‌ नहीं जानता, तैसे यह भी जबलग आत्मपदविषे नहीं जागा, तबलग असत्‌ नहीं भासता; जब आत्मपदविषे जागै तब यह जगत्‌ भी असत्‌रूप भासैगा ॥ हे रामजी ! यह जगत्‌-असत्‌रूप है, अरु भ्रमकरिके सत्‌की नाईं भासता है; जैसे स्वप्नकी स्त्री असत्‌रूप होती है, अरु सत्‌रूप जानता है, तैसेयह जगत्‌ भी असत्‌-रूप सत्‌ हो दिखाई देता है, आभासरूप जगत्‌ है, अरु आत्मसत्ता सर्वत्र सर्वदा अद्वैतरूप है, अरु जहां जैसा चिंतता है, तहां तैसा होकै भासता है, जैसे डब्बेविषे अनेक रत्न होते हैं, तामेंते जिसको चाहता है; तिसको लेता है, तैसे सर्वगत चिदाकाश है, जहां जैसा चिंतता है, तहाँ तैसा होइ भासता है॥ हे रामजी ! अब पूर्वका प्रसंग सुन, जब देवीने विदूरथपर अमृतरूपी ज्ञानवचनोंकी वर्षा करी तब उसके हृदयविषे विवेकरूपी सुंदर अंकुर आनि उत्पन्न भया; बहुरि सरस्वती कहत भई ॥ हे राजन्‌ ! जो कछु कहना था, सो मैंने तुझको कहा है, अरु अब रणसंग्रामविषे मृतक होना है यह मैं जानती हौं, अरु अब हम जाती हैं, लीलादिको दिखानेके निमित्त हम आई थीं सो देखा है ॥ वसिष्ठ उवाच ! हे रामजी ! जब इसप्रकार मधुरवाणी करि सरस्वतीने कहा तब बुद्धिमान्‌ जो राजा विदूरथ है सो कहतभया ॥ विदूरथ उवाच ॥ हे देवि ! अब तुम्हारा दर्शन किया, बडेका दर्शन निरर्थक नहीं होता, सो महाफल देनेहारा है॥ हे देवि ! मैं भी ऐसा हूं कि, जो अर्थी मेरेते आन प्राप्त होता, तिसको मैं निरर्थक नहीं करता, सबका अर्थ पूर्ण करि देता था अरु तुम तौ साक्षात्‌ ईश्वरी हौ, ताते यह वर मुझको देहु जो देहको त्यागिकरि लोकांतरमें पद्मके शवदेहविषे जाय प्राप्त होऊं, जैसे स्वप्नते स्वप्नान्तरको प्राप्त होता है, तैसे प्राप्त होऊं ॥ हे देवि ! जो भक्त शरणको आय प्राप्त होता है, तिसका बडे त्याग नहीं करते, उसका अर्थ सिद्ध करते हैं, ताते यही वर मुझको देहु, जो उसी देहविषे प्राप्त होऊं, मेरे मंत्री अरु भार्या अरु

लीला भी मेरे साथ होवैं॥सरस्वत्युवाच॥ हे राजन् ! ऐसेही होवैगा,पद्म राजाके शरीरविषे प्राप्त होवैगा, अरु बोधसहित निःशंक होइकरि राज्य करैगा, हमारा सेवना किसीको व्यर्थ नहीं; जैसी कामनाकरिकै कोऊ हमको सेवता है, सो तैसे फलको प्राप्त होता है.इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलो०स्वप्नपुरुषसत्यतावर्णनं नाम त्रिंशत्तमः सर्गः ॥३०॥

एकत्रिंशत्तमः सर्गः ३१.

अग्निदाहवर्णनम् ।

सरस्वत्युवाच ॥ हे राजन् ! अब तू रणविषे मृतक होवैगा, मृतक होयके पूर्वके पद्मराजाके शरीरविषे जाय प्राप्त होवैगा,अरु यह तुम्हारी भार्या अरु मंत्री भी तहां जाय प्राप्त होवैंगे ॥ हे राजन् तुम ऐसे चले जाओगे; जैसे वायु चला जाता है, अब हम जाती हैं तुम्हारा हमारा साथ कैसे होवै, जैसे अश्व अरु खर मृग अरु ऊंट हस्तीका संग नहीं होता, तैसे तुम्हारा हमारा क्या संग है ? ताते हम जाती हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार देवीने कहा, तब एक पुरुष आई निकसा, अरु कहत भया, हे राजन् ! शत्रु आए हैं, अरु चक्र गदा आदिक शस्त्रोंकी वर्षा करते आते हैं; जैसे प्रलयकालविषे मंदराचल पर्वत अस्ताचल आदिक पर्वत वायुकरि उडते हैं, तैसे शत्रु चले आते हैं, अरु सर्व दिशा सेनाकरि पूर्ण भई हैं; जैसे महाप्रलयविषे सर्व स्थान जलसों पूर्ण होते हैं, तैसे सेनाकरि सर्व स्थान पूर्ण भए हैं, अरु अग्नि भी तिसने लगाइ दई है, तिसकरि स्थान जलने लगे हैं, अरु शब्द करते हैं, अरु बाण नदीके प्रवाहकी नाईं चले आते हैं, अग्नि ऐसी लगी है, जैसे महाप्रलयकी बडवाग्नि समुद्रको शोषती है, तैसे नगरोंको जलाती है, तब दोनों देवियां अरु राजा अरु मंत्री ऊंचे होइके झरोखाविषे बैठके देखने लगे. क्या देखा, कि बडी सेना चली आती है, जैसे प्रलयकालविषे मेघ चले आते हैं, तैसे सेना चली आती है, अरु जैसे प्रलयकी अग्निकरि दिशा पूर्ण होती हैं, तैसे अग्निकी ज्वालाकरि पूर्ण भई हैं, अरु तिसते चिनगारियां उडती

हैं, मानो तारागण गिरते हैं, अंगारोंकी वर्षा होती है, तिसकारि जीव पडे जलते हैं, अरु जो सुंदर स्त्रियां नानाप्रकारके भूषणोंसहित पूर्ण थीं, सो तृणोंकी अग्निविषे पडी जलती हैं, पुरुषके देह अरु वस्त्र पडे जलते हैं अरु हाय हाय शब्द करते हैं, अरु जलते जलते बांधव पुत्र स्त्रियोंको ढूंढते हैं॥हे रामजी! यह आश्चर्य देख, जो ऐसे स्नेहकरिके जीव बांधे हुए हैं, जो मृत्युकालविषे भी स्नेहको त्याग नहीं सकते, इसप्रकार बडाक्षोभ हुआ, अरु सेनाके लोक लोकोंको मारिकै स्त्रियोंको लेजाते हैं, कई अग्निविषे जलते हैं ॥ हे रामजी ! तिस कालमें ऐसा शब्द हुआ, कि रणभूमिका शब्द छपगया, ऐसा शब्द करै, भाई हाय, पिता हाय, माता हाय, पुत्र हाय, स्त्री हाय इत्यादिक शब्दोंकारि रणभूमिका शब्द आच्छादित हो गया, अरु घोडे, गौ, बैल, ऊँट आदिक पशु इकट्ठे मिल गये; अरु अग्निकी ज्वाला वृद्ध होती जावै, बडा क्षोभ आनि उदय हुआ, जैसे महाप्रलयकी अग्नि होती है, तैसे सब स्थान अग्निकारि पूर्ण भये, तिन्होंविषे अनेक जीव अरु स्थानक पडे दग्ध होते हैं, अरु शब्द करै हैं ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने अग्निदाहवर्णनं नाम एकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ३२.

अग्निदाहवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार राजा नगरको देखता था, जो उस पुरमें लीला सहेलियोंसहित अपने दूसरे स्थानते तहां आई, जहां राजा विदूरथ था, जैसे कमलोंविषे लक्ष्मी आवै, तैसे आई; महासुंदर भूषण कछुक टूटे हुए, कछुक शिथिल हैं, अरु सहेलियोंसहित आई, एक सहेली कहत भई ॥ हे राजन्! तेरे शत्रु बहुतेरे आन पसरे हैं, अंतःपुरविषे जो स्त्री थीं, सो भी लेगये हैं; तहांसों यह लीला राणी हम चुराइ लेआई हैं, जैसे इंद्रके गृहविषे दैत्य आन पडैं, तैसे अरु इस रानीको बचाइकारि तुम्हारे पास ले आई हैं; सो हम बडा यत्न कारि ले आई हैं; अरु

लोकोंको तिन शत्रुओंने बडा कष्ट दिया है; तुम्हारे द्वारेपर जो सेना बैठीहै तिसको वह चूर्ण करते हैं, अरु नगर जलाय दिया है, लूटि लिया है ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार राजाको सहेलियोंने कहा, तब राजाने सरस्वतीजीको कहा, हे देवीजी! यह लीला तुम्हारी शरण आईहै, अरु तुम्हारे चरण कमलोंकी भ्रमरी है, इसकी रक्षा तुम करना, मैं अब युद्ध करनेको जाता हौं ॥ हे रामजी ! इसप्रकार राजा कहिकरि क्रोध संयुक्त होइकै युद्ध करनेको रणकी ओर चला; जैसे मत्त हस्ती धावता है, अथवा सिंह कंदराते निकसिकरि धावता है, तैसे अर्धरात्रिके समय राजा चला, जब वहां लीला सहेलियोंसहित आई, तब देवीकेसाथ जो प्रथम लीला थी सो देखत भई, क्या देखा, कि अपनी मूर्ति जैसाही सुंदर आकार है, जैसे आरसीविषे प्रतिबिंब होता है, तैसे देखके कहत भई ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ हे देवि ! यहां मैं क्योंकारि आन प्राप्त भई हौं, जब मैं प्रथम आई थी, तब मुझको मंत्री टहलुए पुरवासी अनेक दृष्टि आये थे, वह संशय मैंने तुझसों निवृत्त किया था, बहुरि यह जोमैं उस प्रकार कैसे आन स्थित भई हौं; यह दृश्यरूप कैसा आदर्श है, जिसके अंतरबाहिर प्रतिबिंब होता है, जैसे मंत्री टहलुए हैं, अरु मेरा स्वरूप यहहै, यह क्यों है? दृश्यभाव दो क्योंकर भासता है? यह संशय मेरा दूर करो॥ देव्युवाच हे लीले ! जैसे चित्तसंवित्‌विषे स्पंद फुरता है, तैसे तत्काल सिद्ध होता है, जिस अर्थको चिंतता चित्तसंवित् शरीरको त्यागता है, तिसी अर्थको जाय प्राप्त होता है, तिसी क्षणविषे देश, काल, पदार्थकी दीर्घता होती है; जैसे स्वप्नसृष्टि फुरि आती है, तैसे परलोकसृष्टि भास आती है ॥ हे लीले ! जब तेरा भर्त्ता मृतक होने लगा, तब इसका स्नेह जो तेरे विषे अरु मंत्रियोंविषे बहुत था, तिसकारि वही रूप सत होइकारि अपनी वासनाके अनुसार भासा; जैसे संकल्पपुर भासता है, जैसे स्वप्नसेना भासती है, तैसे यह देश, काल, पदार्थ भासै है ॥ हे लीले ! जो कोऊ पदार्थ सतरूप होइ कारि भासते हैं, सो अज्ञान कालविषे भासते हैं, ज्ञान कालविषे सब तुल्य होइके जाते हैं ॥ अधिक न्यून कोऊ नहीं रहता, जाग्रतविषे स्वप्न झूठ भासता है, स्वप्नविषे

जाग्रत्का अभाव हो जाता है, जाग्रत् शरीर मृतकविषे नाश हो जाता है, मृतक जन्मविषे असत् होय जाता है, मृतकविषे जन्म असत् होय जाता है ॥ हे लीले ! जब इस प्रकार इनको विचारि देखिये तौ सब अवस्था भ्रांतिमात्र हैं, वास्तव कोऊ नहीं ॥ हे लीले ! स्वर्गते आदि अरु महाप्रलयपर्यंत कछु हुआ नहीं, सदा ज्योंकी त्यों ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जगत्कल्पना आभासमात्र है, अज्ञानकरिकै भासती है; जैसे आकाशविषे तरुवरे भासते हैं, तैसे आत्मविषे जगत् भ्रमकरिकै भासता है; अरु वास्तवते किंचित् भी कछु नहीं, जैसे समुद्र-विषे तरंग उपजिकारि लीन होते हैं, तैसे आत्मविषे जगत् उपजिकारि लीन होते हैं, ताते अहं त्वं आदिक शब्द भ्रांतिमात्र है ॥ हे लीले ! यह जगत् मृगतृष्णाके जलवत् है, इसविषे आस्था करनी अज्ञान है, अरु भ्रांति भी कछु नहीं,जैसे घन तम विषे यक्ष भासताहै,सो यक्ष वस्तु नहीं ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, भ्रांति भी कछु वस्तु नहीं, जन्म, मृत्यु, मोह सब असत्रूप है, जेते कछु अहं त्व आदिक शब्दहैं सो महाप्रलयविषे अभाव हो जाते हैं, तिसके पाछे शुद्ध शांतरूप है, अब भी सोई जान, ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों है ॥ हे लीले ! यह जो पृथ्वी आदि भूत भासतेहैं, सो भी संवित्रूप हैं; काहेते कि चित्तसंवित् जब स्पंदरूप होती है, तब यह जगत् होयके भासता है, इस कारणते संवित्रूप है ॥ हे लीले ! जीवरूप जो समुद्र है, तिसविषे जगत्रूप तरंग उत्पन्न होतेहैं, अरुलीन भी होते हैं, अरु स्वरूपते जलरूप हैं, इतर कछु नहीं; जैसे अग्निविषे उष्णता होती है, तैसे जीवविषे सर्गहै; जो ज्ञानवान् है, तिसको सर्वात्मा भासता है, अरु अज्ञानीको भिन्न भिन्न कल्पना होती है ॥ हे लीले ! जैसे सूर्यकी किरणोंविषे त्रसरेणु भासते हैं, अथवा जैसे पवनविषे स्पंद होता है, तिसविषे सुगंध होती है, सो निराकार है, तैसे जगत् आत्माविषे निर्वपु है, भाव अभाव ग्रहण त्याग सूक्ष्म स्थूल चर अचर सर्व ब्रह्मके अवयव हैं ॥ हे लीले ! यह जगत् जो साकाररूप भासता है, सो आत्माते भिन्न नहीं; जैसे वृक्षके अंग पत्र फल टासरूप होइ भासते हैं; तैसे ब्रह्मसत्ताही जगत्रूप होइकरि भासती है, इतर कछु नहीं; जैसे चेतनसं

चित्तविषे स्पंद फुरता है. तैसे होइकारि भासता है, सो आकाशरूप संवित् ज्योंका त्यों हैं, तिसविषे और कल्पना भ्रममात्र है ॥ हे लीले ! यह जगत् भासता है, सो न सत्है. न असत्है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, जिसको असम्यक् ज्ञान होता है, तिसको जेवरीविषे सर्प भासताहै, तो असत् नहुआ, अरु जिसको सम्यक् बोध हुआ, तिसको सर्प सत् नहीं, तैसे ज्ञानकारि जगत्‌सत्यभासता है, अरु जिसको सम्यक् बोध हुआहै, तिसको सर्पसत् नहीं, तैसे अज्ञान कारि जगत् असत् नहीं भासता, आत्मज्ञान हुए सत् नहीं भासता; काहेते जो कछु वस्तु नहीं ॥ हे लीले ! जैसे जिसके अंतर स्पंद फुरता है, तिसका अनुभव करता है, जब यह जीव मृतक होता है, तब इसको क्षणविषे जगत् फुरि आताहै, किसीको अपूर्वरूप फुरि आताहै, किसीको पूर्वरूप फुरि आता है, किसीको पूर्व अपूर्व मिश्रित फुरि आता है, तिस कारणते तेरे भर्त्ताको वही मंत्री, स्त्री, सभा वासनाके अनुसार फुरिआये हैं, काहेते जो आत्मा सर्वरूप है जैसा जैसा इसविषे तीव्र स्पंद फुरता है, तैसा होइकारि भासता है॥हे लीले ! जैसे अपने मनोराज्यविषे प्रतिभा उदय हो आती है, सो सत्‌रूप हो भासती है, तैसे यह जो लीला तेरे सन्मुख बैठी है सो एही हुईहै, अरु तेरे भर्त्ताकी जो तेरेविषे तीव्र वासना थी, तिसकरि राजाको तेरा प्रतिबिंबरूप होइकारि यह लीला आनप्राप्त भई है, तुझ जैसा शील अरु आचार कुल वपु इसको प्रतिबिंब भयाहै॥ हे लीले ! सर्वगत संवित् आकाश है, जैसा जैसा उसविषे फुरना होता है, तैसा चिद्रूप आदर्शविषे प्रतिबिंब भासताहै, जेता कछु जगत्है सो चेतन दर्पणविषे प्रतिबिंब होताहै, वस्तुते मैंतू अरु जगत् आकाशभुवन पृथ्वी राजा आदिक सब आत्मारूपहैं, आत्माही जगत्‌रूप होइ भासता है, जैसे बिल्लीविषे मज्जा होती है, सो बिल्लीते इतर कछु नहीं, बिल्लीही सवरूप है; तैसे यह जगत् ब्रह्मरूप है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्ति-प्रकरणे लीलोपाख्याने अग्निदाहवर्णनं नाम द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ३३.

सत्यकामसंकल्पवर्णनम्।

देव्युवाच ॥ हे लीले ! तेरा जो भर्त्ता राजा विदूरथ है, सो रणविषे संग्रामकरिकै शरीर त्यागैगा, त्याग कारि उसही अंतःपुरविषे प्राप्तहोवैगा, अरु बहुरि राज्य करैगा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार देवीने कहा; तब विदूरथके पुरकी जो लीला है सो हाथ जोडिकै देवीको प्रणाम करत भई अरु कहत भई ॥ द्वितीयलीलोवाच ॥ हे देवि ! भगवति मैं ज्ञप्तिरूपको नित्य पूजत भईहौं,बहुरि स्वप्नविषे उसने मुझको दर्शन दिया है; जैसे वह ईश्वरी थी,तैसे तुम मुझको दृष्टि आती हौ, ताते मुझपर कृपा कारिके मनवांछित फलको देहु ॥ वसिष्ठ उवाच हे रामजी ! जब इसप्रकार विदूरथकी लीलाने कहा, तब अपने, भक्तके ऊपर प्रसन्न होइकारि देवी कहत भई ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! तैंने अनन्य होइकारि मेरी भक्ति करी है,तिसकारि तेरा शरीर भी जीर्ण भया है, अब मैं तुझ ऊपर प्रसन्न हौं, जो कछु तुझको वांछित है, सो वर माँग ॥ द्वितीयलीलोवाच ॥ जब मेरा भर्त्ता रणविषे देहकोत्याग कर जावै, तब मैं इसी शरीर साथ तिसकी भार्या होऊं ॥ देव्युवाच ॥ तुझने भली प्रकार भावनासहित पुष्पादिकनसों निर्विघ्न मेरी सेवा करी है, ताते ऐसेही होवैगा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार जब देवीने कहा, तब पूर्व लीला कहत भई ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ हे देवि!तुम तौ सत्यसंकल्प सत्यकाम ब्रह्मस्वरूपहौ, मुझको उसी शरीर साथविदूरथके गृहमें वसिष्ठ ब्राह्मणकी सृष्टिविषे क्यों न ले गई ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! मैं किसीका कछु नहीं करती, सर्व जीवके संकल्प मात्र देह हैं, अरु मैं ज्ञप्तिरूप हौं, एक एक जीवके अंतर चेतन मात्र देवता होइ कारि स्थित हौं, जो जो जीव जैसी जैसी भावनाको धरता है, तैसी तैसी तिसको सिद्धता होती है ॥ हे लीले ! जब तैंने मेरा आराधन किया था तब यह प्रार्थना करी थी कि मेरे भर्त्ताका जीव इसी आकाश मंडपविषे रहै, अरु ज्ञानकी प्राप्तिभी मुझको होवै, तब मैंने तुझको ज्ञानका

उपदेश दिया, तुझको ज्ञान प्राप्त भयाहै, अरु इसही निमित्त तैंने पूजन किया है, ताते तुझको यही प्राप्त भया है, जो देहसहित भर्त्ताके साथ जावैगी, जैसा जैसा चित्तसंवित्विषे स्पंदहढ होताहै,तैसी सिद्धता होती है॥ हे लीले! यह जो कोऊ तप करता है,तिसकी दृढता करके चिदात्माही देवता रूप होके फलको देताहै;जैसे जैसे संकलपकी तीव्रता किसीको होतीहै,चेतनसंवित्ते तिसको तैसाही फल होता है,चित्तसंवित्ते इतर किसीते किसको कदाचित् कछु फल नहीं प्राप्त होता,आत्मासर्वगत सर्वके अंतर स्थित है;जैसे जिसविषे चैत्यताका यत्न होता है, तिसको तैसाही शुभ अशुभ भाव प्राप्त होता है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सत्यकामसंकलपवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ३४.

विदूरथमानभंगवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन्! राजाविदूरथ जो देवीको कहिकरि संग्रामविषे गया था, सो क्या करत भया ?॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब राजा गृहते निकसा अरु संपूर्ण सेनाकरिके शोभता भया; जैसे ताराविषे चंद्रमा शोभता है, तैसे सेनाविषे शोभता भया; तब रथपर आरूढ सभासहित संग्रामविषे आया; कैसा रथ है, जो मोती अरु माणिकों साथ पूर्ण है, अरु आठ घोडे हैं, वायुते भी तीक्ष्ण चलते हैं, पंच ध्वजा हैं,ऐसे रथपर आरूढ हुआ, संग्रामविषे आनि पडा, जैसे सुमेरु पर्वत पंखोंसहित समुद्रविषे जाय पडै तैसे जाय पडा, तब दोनों सेना इकट्ठी होगई, जैसे प्रलयकालविषे समुद्र इकट्ठे हो जाते हैं,तैसे सेना इकट्ठी भई बडा युद्ध होने लगा अरु मेघोंकी नाईं योद्धोंके शब्द होने लगे,अरु शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी,जैसे मेघते बूंदोंकी वर्षा होती है, जैसे अग्निते चिनगारें निकसतीहैं,तैसे युद्ध करने लगे,जैसे प्रलयकालकी वडवानल अग्नि होती है, तैसे शस्त्रोंते अग्नि निकसै, तिन शस्त्रोंकरि अनेक जीव मृत्युको प्राप्त भये;जिनते वडवाग्निकी नाईं अग्नि निकसे ऐसाबडा युद्ध होने लगा, तब

विदूरथकी सेना कछुक निर्बल भई, ऊर्ध्वमें, जो दोनों लीला देवीकी दिव्यदृष्टि साथ देखतीथीं, तिन्होंने कहा ॥ हे देवि! तू तौ सर्वशक्ति है, अरु हमारेपर तेरी दयाभी है,हमारे भर्ताकी जय क्यों नहीं होती? इसका कारण कहौ॥देव्युवाच॥हे लीले! विदूरथका जो शत्रु सिद्धराजा है,तिसने चिरकाल पर्यंत जयके निमित्त मेरी पूजा करी है अरु तुम्हारे भर्ताने जयके निमित्त पूजा नहीं करी मोक्षके निमित्त पूजा करी है,ताते जीत सिद्धराजाकी होवैगी अरु तेरे भर्ताको मोक्षकी प्राप्ति होवैगी हे लीले! जिस जिस निमित्तकरि हमारी सेवना कोऊ करता है,हम तिसको तैसा-ही फल देती हैं, ताते राजा सिद्ध विदूरथको जीतिकरि राज्य करैगा वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार देवी कहती थी, फिर सेना सब देखने लगी, अरु दोनों राजोंका परस्पर तीव्र युद्ध होनेलगा ऐसे बाण चलावैं मानो दोनों विष्णु ही खडे हैं, एक बाण विदूरथने चलाया, तिसके सहस्र होगये, आगे गये तब वह भी लक्ष होगये, बाणही परस्पर युद्ध करते२टुकड़े टुकड़े होके गिर पड़े,अरु ऐसे बाण दूरतेदूर चलेजावैं जैसे दीपक निर्वाण किया नहीं भासता, तैसे बाण भासैं नहीं, तब राजा सिद्धने मोहरूपी अस्त्र चलाया,तिसके आनेकरि एक विदूरथविना सब सेना मोहित भई; जैसे उन्मत्तको कछु सुधि नहीं रहती, तैसे उनको सुधि कछु न रही, नेत्रोंते परस्पर करिकै देखतेही रहे,मानो मूर्तियां लिख छोडी हैं, तब राजा विदूरथको भी मोहका आवेश होने लगा,तब राजा विदूरथने प्रबोधरूपी शस्त्र चलाया, तिसकरि सबका मोह गया सबके देह प्रफुल्लित हो आये;जैसे सूर्यके उदय हुए सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित हो आते हैं, तब सिद्ध राजाने नागास्त्र बाण चलाया, तिसकरि अनेक नाग निकस आये,ऐसे नाग आए, मानौं पर्वत उडे आते हैं, सब दिशा नागोंकरि पूर्ण हो गईं, अरु तिनके मुखते विष अरु अग्निकी ज्वाला निकसै,तिसकरि विदूरथकी सेनानें बहुत कष्ट पाया, तब राजा विदूरथने गरुडास्त्र चलाया, तिसकरि अनेक गरुड प्रकट हो आये तिन्होंकरि सब सर्प नष्ट होगये;जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नष्ट होजाता है तैसे सर्प नष्ट भये, नागोंको नष्ट करिकै गरुड भी अंतर्धान होगये; जैसे संकल्पके

त्यागेते संकल्प सृष्टिका अभाव होजाता है,तैसे गरुडअभाव होगये;जैसे स्वप्नते जागे हुए स्वप्ननगरका अभाव हो जाता है, तैसे गरुडका अभाव हो गया जो कोऊ बाण सिद्ध चलावै,तिसको विदूरथ नष्टकरै;जैसे सूर्यतमको नाश करै अरु बडी बाणोंकी वर्षा करी,तिसकारि सिद्ध भी क्षोभको प्राप्त भया तब पिछली लीलाने झरोखेविषे देखके देवीजीको कहा ॥ हे देवि ! मेरे भर्ताका अब जय होता है, तब देवीने सुनके मुसकाय मुखते कछु न कहा,और हृदयमें कहा कि; जीवका चित्त बहुत चंचलहै, ऐसे देखते थे कि, सूर्य आय उदय हुआ,मानो सूर्य भी युद्धका कौतुक देखनेको आ-याहै, सिद्धने जो तमरूप अस्त्र चलाया तिसकरि सर्वदिशा श्याम हो गई, कछु भासा नहीं मानो काजलकी समष्टिता इकट्ठी भई है;तब विदूर-थने सूर्यका प्रकाशरूपी अस्त्र चलाया, तिसकरि सर्व तम नष्ट हो गया जैसे शरत्कालकरि श्याम घटा सब नाश हो जातीहै, शुद्ध आकाशही रहता है; जैसे आत्मज्ञानकरि लोभादिकका ज्ञानीको अभाव होजाता है, जैसे लोभरूपी कज्जलके निवृत्त हुए ज्ञानवान्‌की बुद्धि निर्मल होती है; तैसे प्रकाशकरि तम नष्ट हो गया,सर्व दिशा निर्मल भईं, अरु जैसे अगस्त्यमुनि समुद्रको पान करगये थे, तैसे प्रकाश तमका पान करि गया, तब सिद्धने वैतालरूप अस्त्र चलाया, तिसकरि विदूरथकी सेना मोहित हो गई,जिनकी महाबिकराल मूर्ति नग्नरूप परछायोंका रूप जिन-का अरु श्यामरूप भासैं, अरु ग्रहण किये न जावैं, अरु जीवके अंतर प्रवेश करि जावैं, तिनके जो रहनेके स्थान हैं,शून्य मंदिरविषे रहैं,चिक-डोंविषे, पर्वतोंविषे,मशानोविषे;इसते लेकरि जो मलिन स्थान हैं तिन्हों विषे रहते हैं,सो पिशाच कौन होते हैं; जिसकी शास्त्र उक्त क्रिया नहीं होती, मृत्युके समय सो मरिके भूत पिशाच होकरि वेताल होते हैं, सो अंतरते राग द्वेष तृष्णा भूखकरि जलते रहते हैं, अरु दृष्टिरूप इंद्रियको नहीं प्राप्त होते, ऐसे जो दुष्ट जीव होते हैं, ताते विदूरथकी सेना दुःख पावने लगी, अरु उनका जो कोऊ बडा था,सो विदूरथके निकट आने लगा;तब विदूरथने रूपका नामक अस्त्र चलाया, तब महाभयानक रूप बडे नखकेश जिह्वा उदर होठ अरु नग्नरूप तिन साथ वहा कडकड कर

भया,अरु भैरव भोजन करै, मारै महाविकराल मूर्ति रक्त भरी खप्परमें पीवै, नृत्य करै अरु सबनको दुःख देवै, तब सिद्धने क्रोधित हो राक्षस रूपी अस्त्र चलाया, तिसकरिकै कोटि राक्षस निकस आये, भयानक रूप अरु कृष्णवपु अरु जिह्वा निकसी हुई, ऐसा चमत्कार कर, जैसे श्याम मेघविषे बिजली चमत्कार करतीहैं, ऐसे अनेकराक्षस पातालते अरु दिशाते निकसिकै जो कोऊ होवै; तिसको मुखविषे पाइ ले जावैं, तिनको देखके विदूरथकी सेना बहुत भयको प्राप्त भई, जिसके सन्मुख हँसिके देखैं सो भयसों मरि जावै, तब राजा विदूरथने अपनी सेनाको कष्टवान् देखके विष्णुनामक अस्त्र चलाया, तिसकरि सब राक्षस नष्ट होगये, बहुरि राजा सिद्धने अग्नि नामक अस्त्र चलाया, तब संपूर्ण दिशाविषे अग्नि पसर गई, तिसकरि लोक जलने लगे, तब राजा विदूरथने वरुणरूपी बाण चलाया, तिसकरि अग्निका दाह सब मिट गया; जैसे संतोंके संगकरि अज्ञानीके तीनों ताप मिट जाते हैं तैसे अग्निका ताप मिट गया; तब जलकरि सब स्थान पूर्ण होगये, अरु सिद्धकी सेना बहुत जलविषे बहने लगी, तब सिद्धने शोषणमय अस्त्र चलाया, तिसकरि सब जल सूख गया; कहूँ कहूँ चिकड रह गया, बहुरि तेजोमय बाण चलाया तिसकरि चिकड़ भी सूख गया, अरु विदूरथकी सेना गरमीकरि व्याकुल होगई तपने लगी; जैसे मूर्खका हृदय क्रोधकरि जलता है, तब विदूरथने मेघनामक अस्त्र चलाया, तब मेघ वर्षने लगा अरु शीतल मंद मंद वायु चला, तिसकरि सेनाकी तपत मिट गई; जैसे आत्माकी ओर आते जीवका संसरना घटता जाता है, तैसे विदूरथकी सेना शीतल भई, तब सिद्धने वायुरूपी अस्त्र चलाया, तिसकरि सूखे पत्रकी नांई विदूरथ फिरने लगा, तब विदूरथने पहाडरूपी अस्त्र चलाया, जिसकरि पहाडोंकी वर्षा पडी होवै अरु वायुका मार्ग रोका-गया वायुका क्षोभ मिट गया, सब पदार्थ स्थिरभूत होगये,जैसे संवेदनते रहित चित्त शांत होता है, तैसे शांत हो गए अरु पहाड उडिकै सिद्धकी सेनापर पडे, तबसिद्धने वज्ररूप अस्त्र चलाया, तब पर्वत नष्ट भये; अरु वज्र पडे वर्षे; तब विदूरथने ब्रह्मअस्त्र चलाया, तब वज्र नष्ट भये, अरुब्रह्म

अस्त्र अंतर्धान होगये. हे रामजी ! इसप्रकार परस्पर इनका युद्ध होता भया, जो सिद्ध अस्त्र चलावै, तब विदूरथ उसको विदारण करै अरु जो विदूरथ चलावै तब सिद्ध विदारण कर डारै, फिर बिदूरथ राजाने एक ऐसा अस्त्र चलाया जो राजा सिद्धका रथ चूर्ण कारि डारा, घोडे भी सब पटक डारे, तब सिद्ध राजा रथते निकस खडा हुआ, बहुरि सिद्धने ऐसा अस्त्र चलाया जो विदूरथका रथ अरु घोड़े नष्ट किये, तब दोनों ढाल अरु तरवार लेकर उतर पडे, अरु युद्ध करने लगे, बहुरि दोनोंके रथवाहक और रथ ले आये, तिसके ऊपर आरूढ होकरि युद्ध करने लगे विदूरथने सिद्धको बरछी चलाई, तब उसके हृदयविषे लगी और रुधिर चला, तिसको देखि लीलाने देवी से कहा; हे देवि ! मेरे भर्त्ताका जय हुवा है ॥ हे रामजी ! इस प्रकार लीला कहती थी, तब सिद्धने बरछी चलाई सो विदूरथके हृदयविषे लगी; तिसको देखके विदूरथकी लीला शोकवान् भई अरु कहत भई ॥ हे देवि ! मेरा भर्त्ता मरता है, सिद्ध दुष्टने बडा कष्ट दिया है, ॥ हे रामजी ! ऐसे कहती थी तहां सिद्धने खड्ग चलाया, तिससे विदूरथके पाँव काटे गये, बहुरि घोडे काटे गये, तौ भी विदूरथ युद्ध करता रहा, बहुरि विदूरथके शिरपर खड्गका प्रहार किया, तब विदूरथ मूर्च्छा पायके गिर पडा, ऐसे देखके उसके सारथी जो रथके चलानेहारे, सो रथको गृहमें ले आने लगे, तब सिद्ध तिसके पीछे दौडा कि, इसका शरीर मैं ले जाऊं; जैसे बांदर कूदके पडै तैसे दौडने लगा, परंतु पकड न सका; जैसे अग्निविषे मच्छर प्रवेश नहीं करसकता, तैसे देवीके प्रभावकरि विदूरथको पकड न सका ॥

इति श्रीयो० उत्प० विदूरथमा० नाम चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशत्तमः सर्गः ३५.

मृत्युमूर्च्छानंतरप्रतिमावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तब रथवाही राजाको गृहमें ले आया स्त्रियां, मंत्री, बांधव, कुटुंबी, रुदन करने लगे, बडे शब्द होनेलगे, अरु सिद्धकी सेना लुटने लगी; हस्ती घोडे स्वामीविना फिरैं, राजा सिद्धकी

जय है, बहुरि ढँढोरा फिराया, तब सर्व ओरते शांति भई, सिद्धराजाके ऊपर छत्र होने लगा, सब पृथ्वीका राजा सिद्ध हुआ, तिसका हुकुम चला; जैसे क्षीरसमुद्र मंदराचल निकसेते शांत भया, तैसे सर्व ओर शांति भई ॥ हे रामजी! जब विदूरथ राजा गृहविषे जाय प्राप्त हुआ, तब तिसको अरु दूसरी लीलाको देखके प्रबुद्धलीला कहत भई ॥ हे देवि ! यह लीला इस शरीर साथ वहां क्योंकरि जाइ प्राप्त होवैगी, यह तो भर्त्ताको ऐसे देखके मृतकरूप हो गई है, अरु राजा भी मृत्युके निकट पड़ा है; कछुक श्वास आते जाते हैं ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! यह जेते आरंभ तू देखती है, और जो युद्ध हुआ है; तथा नानाप्रकरका जगत् है, सो सब भ्रांतिमात्रहै. अरु तेरा जो भर्त्ता पद्म था, तिसका हृदय जो मंडपाकाशविषे था, तहां यह संपूर्ण जगत् स्थित है॥ अरु वह पद्मका मंडपाकाश वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे स्थित है, अरु वह वसिष्ठ ब्राह्मणका मंडपाकाश सो चिदाकाशके आश्रय स्थित है॥ हे लीले ! यह संपूर्ण जगत् वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशकी पुर्यष्टकविषेही स्थित है, सो कैसे स्थित है, आकाशविषे ही आकाशस्थित हैं, किंचन है, तिस करिके संपूर्ण जगत् पडा फुरता है, अरु वास्तव किंचन भी कछु वस्तु नहीं,आत्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, तिस आत्मसत्ताविषे अहं त्वं जगत् भ्रमकरिकै भासता है, उपजा कछु नहीं ॥ हे लीले ! तिस वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे नानाप्रकारके स्थान हैं, अरु तिनोंविषे प्राणी आतेजाते व्यवहार होते भासते हैं; जैसे स्वप्नसृष्टिविषे नानाप्रकारके आरंभ भासते हैं, सो असत्‌रूपहैं,तैसे यह जगत् भी असत्‌रूपहै ॥ हे लीले! न यह द्रष्टा है, न आगे दृश्य है, सब भ्रमरूप है, अरु द्रष्टा, दर्शन, दृश्य सो त्रिपुटी पदार्थोंविषे है,जो दृश्य नहीं तौ द्रष्टा कैसे होवे? सब असत्‌रूप है; अरु जो इनते रहित परमपद है, सो उदय अस्तते रहित, नित्य, अज, शुद्ध,अविनाशी,अद्वैतरूप,अपने आपविषे स्थित है, जब तिसको जानता है तब दृश्य भ्रम नष्ट हो जाता है ॥ हे लीले! दृश्य भ्रम करिके भासता है,वास्तवते कछु नहीं, और न उपजैगा, जेते कछु सुमेरुआदिक पर्वतजाल भासते हैं अरु पृथ्वीआदिक तत्त्व भासते

है सोसब आकाशरूप हैं, वास्तवते कछु उपजा नहीं; जैसे स्वप्नसृष्टिप्रत्यक्ष पडी भासती है, परंतु वास्तव कछु नहीं, तैसे यह जगत भी जान ॥ हे लीले ! जीव जीवप्रति अपनी सृष्टि रहती है, परंतु तिसविषे सार कछु नहीं जैसे केलेके स्तंभसों सार कछु नहीं निकसता, तैसे सृष्टिविषे विचार कियेते सार कछु नहीं निकसता, परंतु चित्तसंवेदनके फुरनेकरि पडे भासते हैं ॥ हे लीले! तेरे भर्त्ता पद्मकी जो सृष्टि है, सो वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे स्थित है, अर्थ यह जो विदूरथका जगत् पद्मके हृदयविषे स्थित है, तहां तेरा शरीर पडा है; अरु राजापद्मका शरीर शव पडा है॥ हे लीले ! तेरे भर्त्ता पद्मकी जो सृष्टि है; सो हमको प्रादेशमात्र है, तिस प्रादेशमात्रविषे अंगुष्ठप्रमाण हृदयकमलहै, तिसविषे तेरे भर्त्ताका जीवा काश है, तिसविषे यह जगत् पडा फुरता है, सो प्रादेशमात्र भी है. अरु दूरतेदूर कोटि योजनोंपर्यंत है. मार्गविषे वज्रसारकी नाईं तत्त्वोंकाआवरण है. तिसको लंघके तेरे भर्त्ताकी सृष्टि है. जहां वह शव पडाहै, तिसके पास यह लीला जाय प्राप्त भई ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! ऐसे मार्गको लंघके वह क्षणविषे कैसे जाय प्राप्त भई; अरु जिस शरीरके साथ जानाथा सो तौ शरीर यहांही पडाहै. वह किसरूपकरिके प्राप्त भई है. अरु वहाँके लोक उसको कैसे देख जानते भयेहैं, सो संक्षेप मात्रते कहौ॥ हे लीले! इस लीलाके वृत्तांत कथाकी महिमा ऐसी है. जिसके धारेते यह जगत् भ्रमनिवृत्त हो जाता है, संक्षेपमात्र कहती हौं ॥ हे लीले ! जेता कछु जगत् भासता है, सो सब भ्रममात्र है. यह भ्रमरूप जगत् पद्मके हृदय विषे फुरताहै, तिसविषे विदूरथका जन्म भी भ्रममात्र है, अरुलीलाका प्राप्त होना भी भ्रम है, संग्राम भी भ्रमरूप है, विदूरथका मरण भी भ्रमरूप है, तिसके भ्रमरूप जगत्विषे तुम हम बैठे हैं, बहुरि लीला तू भी अरु राजा भी भ्रमरूप है, अरु मैं सर्वात्मा हौं; मुझको सदा यही निश्चय रहता है, हम जो उदय हुई, सो उदयकी नाईं उदय नहीं हुई ॥ हे लीले ! जब तेरा भर्ता मृतक होनेलगा था, तब तेरेविषे उसका स्नेह बहुत था, तिसकरि मृतक हुए भी कमलनयन युवावस्था महासुंदर भूषणोंको पहिरेहुए तू वासनाके अनुसार उसको आन प्राप्त भई ॥ हे लीले !

जब यह मृतक होता है, तब प्रथम इसका अंतवाहक शरीर होता है, पाछेते वासना कारि आधिभौतिक होता हैं, तैसे तेरा भर्ता जब मृतक हुआ तब प्रथम उसका अंतवाहक शरीर था, तिसते आधिभौतिक हो गया, जब आधिभौतिक हुआ तब प्रथम उसको जन्म भी हुआ, अरु मरण भी हुआ, जब तेरा भर्ता मृतक हुआ, तब इसको अपना जन्म अरु कुल भास आया, जन्मका अर्थ यह कि जनोंका समूह भासि आया, लीलाका जन्म भासि आया, माता पिता भासि आये, लीलाके साथ विवार भासि आया; जैसे तू पद्मको भासि आई थी तैसे वह विदूरथको भासि आये; इत्यादिक भ्रमकारि अपनी वासनाके अनुसार उसको भासि आया है ॥ हे लीले! ब्रह्म सर्वात्मा है, जैसा जैसा तिसविषे तीव्र स्पंद होता है, तैसेही सिद्ध होता है, अरु मैं जो हौं ज्ञप्तिरूप चेतनशक्ति हौं, तिस मेरेको जैसी इच्छा धारिकै पूजते हैं, तैसे फलकी प्राप्ति होती है ॥ हे लीले! जैसी जैसी इच्छा धारि कोऊ हमको पूजते हैं, तिसीको तैसी सिद्धता प्राप्त होती है, इसते लीलाने जो मुझसों वर मांगा था कि, मैं विधवा न होउँ इसी शरीरसाथ भर्ताके निकट जाऊं; तब मैंने कहा कि ऐसेही होवै, तब तिसकारि मृत्युमूर्च्छाके अनंतर तिसको अपना शरीर भासि आया, अपने शरीरसहित जहां तेरा भर्ता पद्मका शरीर शव पडा है; तहां मंडपविषे ऐसेही शरीरसाथ उसके निकट जाय प्राप्त भई ॥ हे लीले! उसको यह निश्चय रहा है कि, मैं उस शरीरसाथ आई हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने मृत्युमूर्च्छानंतरप्रतिमावर्णनं नाम पंचत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ३६.

मण्डपाकाशगमनवर्णनम्।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हेरामजी! जिसप्रकार वह लीला पद्मराजाके मंडपविषे जाय प्राप्त भई है सो श्रवण करु. जब वह लीला मृतक मूर्च्छाको प्राप्त भई, तिसके अनंतर उसको पूर्वके शरीरकी नाईं वासनाके

अनुसार अपना शरीर भासि आया, जानती भई कि मैं उसही शरीर साथ आई हौं परंतु देवीके वरको पायके आई हौं, सो कैसा शरीर है, अंतवाहक शरीर करके आकाशविषे पक्षीकी नाईं उडती जावै, तब तिसको अपने आगे कुमारी दृष्ट आई तब लीलाने कहा॥ हे देवि! तू कौनहै, तब देवीने कहा मैं ज्ञप्ति देवीकी पुत्री हौं, तेरेको पहुँचावनेके निमित्त मैं आईहौं, तब लीलाने कहा ॥ हे देवीजी ! मेरे ताईं, मेरे भर्ताके पास ले चलौ ॥ हे रामजी ! तब वह कुमारी आगे चली अरु लीला पाछे चली, दोनों आकाशमें उडीं, चिरकालपर्यंत आकाशविषे उडती भईं आगे मेघोंके स्थान आये, बहुरि वायुके स्थान आये, तिनको भी लंघ गईं बहुरि सूर्यका मंडल आया, तारामंडल आये, बहुरि और लोकपालोंके स्थान आये, तिनको लंघ गई आते ब्रह्माका लोक आया, बहुरि विष्णुका लोक आया, बहुरि रुद्रका लोक आया, तिनको भी लंघ गईं, आगे ब्रह्मांडकपाट महावज्रसारकी नाईं आया; तिसको भी लंघ गईं जैसे कुंभविषे बरफ पाइये, तिसकी शीतलता बाहिर प्रगट होती है; तैसे वह ब्रह्मांडते बाह्य निकसि गईं तिस ब्रह्मांडते दश गुण जलतत्त्व आया, तिसको भी लंघ गईं; इस प्रकार अग्नि वायु आकाशतत्त्व आवरणको भी लंघ गईं; तिसके आगे महाचेतन आकाश आया; तिसका अंत कहूं नहीं आदि अंत मध्यते रहितहै॥ हे रामजी ! जो कोटि कल्पपर्यंत गरुड उडता जावै तौ भी तिसका अंत न पावै ऐसे परमाकाशविषे गईं; तहां इनको कोटि ब्रह्मांड दृष्टि आये; जैसे वनविषे अनेक वृक्षोंके फल होते हैं, अरु परस्पर आपपरको नहीं जानते; तैसे वह सृष्टि आपको न जानै, तब एक ब्रह्मांडरूपी फलविषे दोनों प्रवेश करत भईं जैसे फलके मुखमार्गमें चीटी प्रवेश कर जाती है; तैसे यह ब्रह्मांडफलविषे प्रवेश कर गईं; तिसविषे बहुरि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रसहित त्रिलोकी देखत भईं; तिनके लोक लंघ गईं; अरु तिनके नीचे और लोकपालके स्थान लंघे; बहुरि चन्द्रमाका मण्डल तारामंडल लंघ गईं; वायु अरु मेघमंडलको लंघके उतरीं. जहां राजाका नगर था, तिसविषे जो मंडपाकाश था, अरु जहां पद्म राजाका शव फूलोंके साथ ढांपा पडा था, तहां

आय प्रवेश किया, तिसको देखत भई, तब वह कुमारी अंतर्धान होगई; जैसे मायावी पदार्थ होवैं, अरु अंतर्धान हो जावैं, तैसे अंतर्धान हो गई अरु लीला पद्मके पास बैठी रही; अरु मनविषे विचार करत भई, कि यह मेरा भर्त्ता है, वहां इसने संग्राम किया था, सो अब शूरमाकी गतिको प्राप्त भया है, इस परलोकविषे आयके शयन कारि रहा है, तिसके पास मैं भी अपने शरीरसाथ देवीजीके वर कारिकै आन प्राप्त भई हौं; मेरे जैसा अब कोऊ नहीं, मैं बडे आनंदको प्राप्त भई हौं ॥ हे रामजी ऐसे विचारके पास चमर पडा था, तिसको हाथविषे लेके भर्त्ताको चमर करने लगी; जैसे चंद्रमा किरणोंसाथ शोभा पावता है, तैसे चमर शोभा पावता है; अरु वहां देवीसों लीला पूछत भई ॥ प्रबुद्ध लीलोवाच ॥ हे देवि ! यह राजा तौ अब मृतक होता है; इसके श्वास अब थोडेसे रहे हैं, जब यहांते मृतक होके पद्मके शरीरविषे जावैगा, तब राजाके जागे हुए मंत्री टहलुए कैसे जानैंगे ? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! तबमंत्री टहलुए जो होवैंगे, तिनको द्वैतकलना कछु न भासैगी, जो आश्चर्य हुआ है, इस वृत्तांतको एक तू जानैंगी, एक मैं जानौंगी एकवह लीलाजानैंगी, और कोऊ न जानैगा, काहेते कि इसके संकलपको और कोऊ कैसे कारि जानै? ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! लीलाजो वहां जाय प्राप्त भई थी, सो शरीर तौ यहां पडा है अरु तुम्हारा उसको वरभी था, इस प्रकार इस देह साथ क्यों न जाय प्राप्त भई ? देव्युवाच ॥ हे लीले ! छाया भी कदाचित् धूपविषे गई है, अरु साँच झूठ भी कदाचित् इकट्ठा भया है, यह आदिर्नीति है, जैसे जैसे आदिनीति हुई है; तैसेही होताहै; अन्यथा नहीं होता ॥ हे लीले ! जो परछाँहीविषे वैताल कल्पना मिटी तौ परछाया वैताल इकट्ठे नहीं होते, तैसे भ्रमरूप जगत्का शरीर उस जगत्विषे नहीं जाता, जैसे दूसरेके संकलपविषे दूसरा अपने शरीर साथ जाइ नहीं सकता; काहेते जो वह और शरीर है, वह भी और शरीर है, तैसे वह उनके जगत् दर्पणविषे इनके संकलपका शरीर नहीं प्राप्त होता अरु मेरे वर कारि प्राप्त होवै, तो जब उसको मृत्युमूर्च्छा प्राप्त भई तब उसको इसही जैसा अपना शरीर भासि आया अरु उसका जो शरीर था, सो संकल्प

विषे स्थित था, सो अपना संकल्प वह साथले गई है, ताते अपने उसी शरीर साथ वह गई है; ऐसे आपको जानती भई है, कि मैं वही लीला हौं हे लीले ! आत्मसत्ता जो है, सो सर्वात्मरूप है; जैसी जैसी भावना उसविषे दृढ होती है, तैसाही रूप इसका होइ जाता है, जिसको यह हुआ, कि मैं पंचभूतकरूप हौं तिसको ऐसेही दृढ होता है, कि मैं उड नहीं सकता ॥ हे लीले ! यह लीला तो अविदित वेदन थी, अर्थ यह जो अज्ञानसहित थी आधिभौतिक भ्रम नहीं निवृत्त भया था, परंतु मेरा वर था, इस कारणते उसको मृत्यु मूर्च्छाके अनंतर भासि आया, कि मैं देवीके वर कर चली जाऊंगी, इस वासनाकी दृढता करिकै जाय प्राप्त भई है ॥ हे लीले ! यह जगत् भ्रांतिमात्र है, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रमकरि भासता है. तैसे आत्माविषे जगत् भ्रमकरि भासताहै; सब जगत् आत्माविषे अभासरूप हैं, सर्वका अधिष्ठान आत्मसत्ता अपने आपही अज्ञान करिकै दूर भासता है ॥ हे लीले ! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो सदा शांतरूप आत्मानंदकरि तृप्त रहतेहैं, अरु जो अज्ञानीहैं, सो शांति कैसे पावैं ? जैसे जिसको ताप चढा होता हैं, तिसका अंतर भी पडा जलता है, अरु तृषाभी बहुत लगती है, तैसे जिसको अज्ञानरूपी ताप चढाहुआ है; तिसका अंतर रागद्वेषकरिकै पडा जलता है, अरु विषयोंकी तृष्णारूपी तृषा भी बहुत होती है, अरु जिसका अज्ञानरूपी तम नष्ट भया है, तिसका रागद्वेषादिककरि अंतर नहीं जलता, अरु विषयकी तृष्णारूपी तृषा नष्ट भई है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने मंडपाकाशगमनवर्णन नाम षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ३७.

मृत्युविचार वर्णनम् ।

देव्युवाच हे लीले ! जो पुरुष अविदितवेद्य हैं, अर्थ यह जो जानने योग्यपदको नहीं जाना सो बडा पुण्यवान् होवै तौभी तिसको अंतवाहकता प्राप्त नहीं होती, अरु अंतवाहक शरीर भी झूठ है, काहेते कि;

संकल्परूप है,सो झूठ है, ताते जेता कछु जगत् तुझको भासता है, सो उपजा कछु नहीं; शुद्ध चिदाकाश सत्ता अपने आपविषे स्थित है॥ लीलोवाच ॥ हे देवि! जो यह सर्व जगत् संकल्पमात्र है, तौ भावरूप पदार्थ कैसे होते हैं, अरु अभावरूप कैसे होते हैं; जो अग्नि उष्णरूप है, पृथ्वी स्थिररूप है, बर्फ शीतलरूप है, आकाशकी सत्ताहै, कालकी सत्ता है, कोऊ स्थूल पदार्थ है, कोऊ सूक्ष्म पदार्थ है, ग्रहण करना, त्यागकरना, जन्म अरु मृतक होता है, मृतक हुआ बहुरि जन्मता है; इत्यादिक सत्ता कैसे भासतीहैं?॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! जब महाप्रलय होता है, तब सर्व पदार्थ अभावको प्राप्त होते हैं, अरु कालकी सत्ता नष्ट होजाती है, तिसके पाछे अनंत चिदाकाश सब कलनाते रहित बोधमात्र ब्रह्मसत्ताही रहती है, तिस चेतनमात्रसत्ताते जब चित्तसंवित् चैत्यता होती है; तब चेतन संवित्विषे आपको तेज अणु जानत भई है, जैसे स्वप्नविषे कोऊ आपको पक्षीरूप पड़ता देखै तैसे देखताहै, तिसते स्थूलता होती है, सो स्थूलता ब्रह्मांडरूप होती है, तिसविषे तेज अणु आपको ब्रह्मारूप जानती है, कि मैं ब्रह्मा हौं; बहुरि ब्रह्मारूप होइकरि जगत्को रचता है; जैसे जैसे ब्रह्मा चेतता जावै तैसे तैसे स्थिरतारूप होता जावै आदिरचनाकारि जैसे निश्चय धारा कि यह ऐसे होवै, अरु एते काल रहै; तिसका नाम नीति है, जैसे आदिही रचना नीतिकरि है सो ज्योंकी त्यों होती है; तिसके निवारणको कोऊ समर्थ नहीं अरु वस्तुते आदि ब्रह्माही अकारणरूप है, अर्थ यह जो उपजा कछु नहीं तौ जगत्का उपजना मैं कैसे कहौं?॥ हे लीले! स्वरूपते कछु उपजा नहीं; परंतु चेतन संवेदनके फुरणेविषे जगत् आकार होइके भासता है; तिसविषे जैसे निश्चय है, तैसेही स्थित है; अग्नि उष्णही है; बर्फ शीतलही है, पृथ्वी स्थिररूपही है, जैसे उपजै है, तैसेही स्थिर है॥ हे लीले! जो चेतन है, तिस ऊपर भी नीति है, जो उपदेशका अधिकारी है, अरु जो जड है, तिनोंविषे वह स्वभाव है, जो आदि चित्तसंवित्विषे आकाशका फुरणा हुआ, तब आकाशरूप होकरि स्थित भया, जब कालका स्पंद फुरता है, तब वही चेतनसंवित् कालरूप

होकारि स्थित होता है, जब वायुकी चेतनता हुई तब वही संवित् वायुरूप होकारि स्थित होता है; इसीप्रकार अग्नि जल पृथ्वीरूप होइकारि स्थित भया है; स्थूल सूक्ष्मरूप होइकारि चेतनसंवित्में स्थित हो रहा है; जैसे स्वप्नविषे चेतनसंवितही पर्वत वृक्षरूप होइकारि स्थित होता है, तैसेही चेतनसंवित जगत्रूप होइकारि स्थित भया है ॥ हे लीले! जैसे आदि नीतिविषे पदार्थोंने संकल्परूप धरे हैं तैसेही स्थित हैं, तिसके निवारणको समर्थ कोऊ नहीं; काहेते कि तीव्र अभ्यास चेतनका किया है, जब वही संवित् उलटकारि और प्रकार स्पंद होवे, तब और प्रकार होवै, अन्यथा नहीं होता ॥ हे लीले! यह जगत् सत् नहीं, जैसे संकल्प नगर भ्रमसिद्ध है, जैसे स्वप्नपुरुष असत्रूप होता है; जैसे ध्याननगर असत्रूप होता है, तैसे यह जगत् असत्रूप है, अज्ञानकारिके सत्की नाईं भासता है। जैसे स्वप्नसृष्टिके आदि सन्मात्रसत्ता होती है, तिस सन्मात्रते आभास किंचन स्वप्नसृष्टिका अकारण होता है, तैसे यह जागृत जगत्के आदि सन्मात्रसत्ता होती है, तिस सन्मात्रते आभास किंचन स्वप्नसृष्टिका अकारण होता है, तैसे यह जागृत जगत्के आदि सन्मात्र सत्ता होती है, तिसते किंचन अकारणरूप यह जगत् होता है ॥ हे लीले! यह जगत् कछु वास्तवते उपजा नहीं, असत्ही सत्की नाईं होकारि भासता है, तैसे स्वप्नकी अग्नि स्वप्नविषे असतही सत्रूप होइ भासती है, जैसे यह जगत् अज्ञानकारि असत्रूप सत्कारि भासता है, जैसे जन्म अरु मृत्यु अरु कर्मोंका फल होता है, सो तू श्रवण कर ॥ हे लीले! बड़ा अरु छोटा जो होता है, सो देश काल अरु द्रव्यकारि होता है, एक बालक अवस्थाविषे मृतक होते हैं, एक यौवन अवस्थाविषे मृतक होते हैं, जिसकी क्रिया चेष्टा देश काल द्रव्यकी यथाशास्त्र होती है, तिसकी क्रिया भी शास्त्रके अनुसार होती है, अरु जो चेष्टा शास्त्रते विरुद्ध होती है तौ आयुर्बल भी तैसा होता है, एक क्रिया ऐसी है, जिसकारि आयुकी वृद्धि होती है, एक क्रियाकर घट जाती है. इसीप्रकार देश, काल, क्रिया, द्रव्य, आयुके घटावने बढावनेवाले हैं, तिनोंकारि जीवोंके शरीर सूक्ष्म बडी अवस्थाविषे सोये हैं, यह आदि नीति रची है, युगोंकी मर्यादा

है, तैसेही है, कैसे हैं, एक सौ वर्ष दिव्य कलियुगके, दोसौ वर्ष दिव्य द्वापरके, तीनसौ त्रेताके, चारसौ सत्ययुगके, यह दिव्य वर्ष हैं, अरु लौकिक वर्ष इस प्रकार हैं, चार लाख बत्तीस हजार कलियुग है, अष्ट लाख चौंसठ हजार द्वापरयुग है, बारह लाख छान्नवे हजार त्रेता है, सतरा लाख अट्ठाईस हजार सत्ययुग है, इस प्रकार युगोंकी मर्यादा है, तिसविषे जीव अपने कर्मोंके फलकरि आयु भोगते हैं॥ हे लीले ! जो पाप करनेवाले हैं, सो मृतक होते हैं, तिनको मृत्युकालमें भी बडा कष्ट प्राप्त होता है, ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! मृतक हुए सुख अरु दुःख कैसे होता है, अरु कैसे भोगता है ? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! जीवको तीन प्रकारके मृत्यु होते हैं, एक मूर्खको मृत्यु होताहै, दूसरा धारणाभ्यासीको होता है; तीसरा ज्ञानवान्को होताहै, तिनका भिन्न भिन्न वृत्तांत सुन ॥ हे लीले ! जो धारणाभ्यासी है, सो मूर्ख भी नहीं, अरु ज्ञानवान् भी नहीं, सो जिस इष्ट देवताकी धारणा करते हैं, सो मृतक होइ करि, अर्थ यह जो शरीरको त्यागिके तिसही देवताके लोकको प्राप्त होते हैं; यह धारणाभ्यासीका मृत्यु है; अरु पूर्ण दशा नहीं प्राप्त हुई, तिनका सुख सों शरीर छूटता है, जैसे सुषुप्ति हो जाती है, तैसे धारणाभ्यासी शरीर त्यागता है, त्यागकरि सुखको भोगिकरि फेरि आत्मतत्त्वको प्राप्त होताहै अरु ज्ञानवान्का शरीर भी सुखसों छूटता है, तिसको भी यत्न कछु नहीं होता, अरु वह ज्ञानीके प्राण भी तहांही लीन होते हैं, वह विदेहमुक्त होता है, अरु जब मूर्खका मृत्यु होने लगता है, सो बड़े कष्टको प्राप्त होता है, सो मूर्ख कौन है, जिनको अज्ञानियों की संगति है, अरु शास्त्रोंके अनुसार विचारणा नहीं अरु सदा विषयोंकी ओर धावते हैं, पापाचार करते हैं, ऐसे पुरुषको शरीर त्यागनेविषे बडा कष्ट होता है ॥ हे लीले ! जब यह मृतक होने लगता है, तब पदार्थोंकरि आवरण अर्थबुद्धि जो संबंधी था तिनोंसाथ वियोग होने लगता है, अरु कंठका रुकना होता है; नेत्र फट जाते हैं, अरु शरीर कांति विरूप जैसी हो जाती है; जैसे कमलफूल काटा हुवा कुम्हलाइ जाता है. तैसे मृत्युकालमें शरीर विरूप होय जाता है; अरु

अंग पड़े टूटते हैं, प्राण नाड़ियोंसे निकसते हैं, जिन अंगोंसों तादात्म्य संबंध हुवा था, अरु पदार्थोंविषे बहुत स्नेह था, तिनोंते वियोग होने लगता है, ताते बडा कष्ट होता है, जैसे किसीको अग्निके कुंडविषे डारते कष्ट होता है, तैसे उसको कष्ट होता है, सब पदार्थ भ्रमते भासते हैं, पृथ्वी आकाशरूप अरु आकाश पृथ्वीरूप भासते हैं. महाविपर्यय दशाको प्राप्त होता है, चित्तकी चेतनता घटती जाती है, ज्यों ज्यों चित्तकी चेतनता घटती जाती है, त्यों त्यों पदार्थकी ज्ञानते अंध होता जाता है; जैसे सायंकालमें सूर्य अस्त होता है, तब नेत्र भ्रांतिमान्को दिशाका ज्ञान नहीं रहता, तैसे इसको पदार्थोंका ज्ञान नहीं रहता, अरु कष्टका अनुभव करता है, जैसे आकाशते गिरते कष्ट पावता है; जैसे पाषाणविषे पीसता कष्ट पावता है, जैसे पवनविषे तृण भ्रमता है, और कष्ट पावता है. जैसे अंधकूप विषे गिरता कष्ट पावता है, जैसे कोल्हूविषे गिरता कष्ट पावता है, जैसे खंभाणी विषे चलाया पत्थर बडा कष्ट पावताहै, जैसे रथते गिरता कष्ट पावता है, जैसे गलेमें फांसी डारते खेंचनेते कष्ट पावता है, जैसे वायुकरिके उछला तरंग वडवाग्निमें पडा जलता कष्ट पावता है, तैसे मूर्ख मृत्युकालविषे कष्ट पावता है, जब पुर्यष्टकका वियोग हुआ, तब मूर्च्छाकारि जड जैसा हो जाता है, शरीर तौ अखंडित पडा रहता है ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! जब यह मृतक होने लगता है, तब इसको मूर्च्छा कैसे होती है, शरीर तो अखंडित पडा रहता है कष्ट कैसे पावता है ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! जो कछु इस जीवने अहंकार भावको लेकारि कर्म किये हैं, सो सब इकट्ठे होते जाते हैं, समय पाइकै आप प्रगट होते है. जसे बीज बोया हुआ समय पाइकै फल आन लगता हैं, तैसे तिसको कर्मवासनासहित फल आन प्रगट होता है, जब इस प्रकार शरीर छूटने लगता है, तब शरीरकी तादात्म्यता अरु पदार्थोंके स्नेहके वियोगकरि इसको कष्ट होता है, जो प्राण अपानकी कला है. जिसके आश्रय शरीर होताहैं, सो टूटने लगता है, जिन स्थानोंविषे प्राण फुरते थे तिन स्थानों अरु नाडियोंसे निकसतेहैं, जिस स्थानते निकसते हैं, तहां बहुरि प्रवेश नहीं करते, वहां नाडियां जर्जरीभूत होजाती हैं, सब

स्थानोंको प्राणजब त्यागि जातेहैं;तब वह पुर्यष्टक शरीरको त्यागिनिर्वाण हो जाताहै, जैसे दीपक निर्वाण हो जाताहै, जैसे पत्थरकी शिला जडीभूत होती है, तैसे पुर्यष्टक शरीरको त्यागिकारि जड़ीभूतहो जातीहैं,प्राण अपानकी कला टूट पडतीहै ॥ हे लीले ! यह मरण अरु जन्मभी भ्रांतिकरिकै भासता हैं,आत्मविषे कोऊ नहीं;संवितमात्रविषे जो संवेदन फुरता है, सो अन्य स्वभावविषे सत्ताकी नाईंहोकारि स्थित होताहै, मरणअरु जन्म तिसविषे भासते हैं; जैसी जैसी वासना होती है, तिसके अनुसार सुखदुःखका अनुभव करता है,जैसे कोऊ पुरुष नदीविषे प्रवेश करताहै तिसविषे कहूँ बडा जल होताहै, कहूँ छोटा जल होताहै, कहूँ बडे तरंग होते हैं; कहूँ सोमजल होताहै, सो सब सोमजलविषे होतेहैं; तैसे जैसी वासना होती है, तिसीके अनुसार सुखदुःखका अनुभव होता है, अध, ऊर्ध्व, मध्य वासनारूपी गर्तविषे पडे गिरतेहैं; जैसे बेलविषे गंठी होती हैं, तैसे संवेदनविषे जन्ममरणकी कल्पना होतीहै, अरु शुद्ध चेतनमात्रविषे कोऊ कल्पना नहीं, अनेक शरीर नष्ट हो जातेहैं. अरु चेतनसत्ता ज्योंकी त्यों रहतीहै; जोचेतन सत्ताभी मृतक होवै, तबएकके नष्ट हुए सब नष्टहो जावैं सो ऐसे तो नहीं, चेतन सत्ता सब कछु सिद्ध होतीहै, जो वह न होवै तौ कोऊ किसीको न जानै ॥ हे लीले ! चेतनसत्ताजो है, सो न जन्मती है, न मरतीहै, सर्व कल्पनातेरहित केवल चिन्मात्रहै, तिसका किसीकालविषे कैसेनाश होवै? जन्ममरणकी कल्पना संवेदनविषे होतीहै, अचेतचिन्मात्रविषे कछु हुआ नहीं ॥हे लीले ! मृत्युसोई होताहै, जिसके निश्चयविषे मृत्युका सद्भाव होताहै, जिसके निश्चयविषे मृत्युका सद्भाव नहीं सो कैसे मरै, जब इसको दृश्यका अत्यंत अभाव होवै, तब बंधनोंते मुक्त होवै, वासनाही इसको बंधनका कारण है, जब वासनाते मुक्त होता है, तब बंधन कोऊ नहीं रहता ॥हे लीले ! आत्मविचार करि ज्ञान होताहै,अरु ज्ञान करिकै दृश्यका अत्यंत अभावहोता है, जब दृश्यका अत्यंतअभाव हुआ तब वासना नष्ट हो जाती है, यह जगत् उदय हुआनहीं; परंतु उदय हुएकी नाईं वासनाकरिकै भासताहै,

तातें वासनाका त्याग करौ; जब वासना निवृत्त होवै तब बंधन कोऊ न रहै ॥ ॥ इतिश्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मृत्युविचारवर्णनं नाम सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ३८.

संसारभ्रमवर्णनम् ।

लीलोवाच ॥ हे देवि ! यह जीव मृतक कैसे होताहै ? अरु जन्म कैसे लेता है ? मेरे बोधकी वृद्धताके निमित्त बहुरि कहौ ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! इसके अंतर पान अपानकी एक कला है, तिसके आश्रय यह शरीर रहता है, जबलग प्रारब्धकर्म होताहै, अरु जब मृतक होने लगता है, तब प्राणवायु अपने स्थानको त्यागता है, जब जिस जिस स्थानसों नाडीसों निकसता है, सो स्थान शिथिल होताहै, जब पुर्यष्टकशरीरसों निकसताहै तब प्राणकला टूट पडती है, अरु चेतनता जडीभूत हो जाती है, तब परिवारवाले लोक इसको प्रेत कहते हैं; जो मृतक हुआ प्रेत भया है ॥ हे लीले ! इसके चित्तकी चेतनता जड़ीभूत हो जाती है, केवल चैतन्य जो ब्रह्मसत्ता है, सो ज्योंकीत्यों रहती है, स्थावर जंगम सर्व जगत्‌विषे व्याप रही है, आकाश, पहाड, वृक्ष, अग्नि, वायु आदिक सर्व पदार्थोंविषे व्यापि रही है, उदय अस्ततें रहित है ॥ हे लीले ! जब इसको मृत्यु मूर्च्छा होती है, तब प्राण पवन आकाशविषे लीन होतेहैं; तिस प्राणविषे चेतनता होती है, अरु चेतनताविषे वासना होतीहैऐसी जो प्राण अरु चैतन्यसत्ताहै, सो वासनाको लेकरि आकाशविषे आकाशरूप स्थित होताहै, जैसे गंधको लेकरि आकाशविषे वायु स्थित होता है,तैसे वासनाको लेकरि चेतनता स्थित होती है॥ हे लीले ! तिस अपनीअपनी वासनाके अनुसार देशअस्थान बहुरि जगत् फुरिआताहै,तिसविषे देश, काल, क्रिया, द्रव्य करिकै देखता है, सोमृत्यु भी जीवको दो प्रकारका है, एक पापात्माका मृत्युहै, एक पुण्यात्माका मृत्यु है, बहुरि पापी भी तीन प्रकारके हैं; एक महापापी हैं, एक मध्यमपापी हैं, तीसरे

अल्पपापी हैं, ऐसेही पुण्य भी तीन प्रकारके हैं, एक महापुण्यवान् है, एक मध्यमपुण्यवान् है, तीसरा अल्पपुण्यवान्है, प्रथम पापियोंकी मृत्युसुनजब बडापापी मृतक होता है, तब मारिके जर्जरीभूत होजाता है, घन पाषाणकी नाईं सहस्र वर्षोंपर्यंत मूर्च्छाविषे पडा रहता है, कोई ऐसेजीवहैं, तिस मूर्च्छा [illegible]षे भी उनको दुःखहोता है, जैसे बाहिरइंद्रियोंको दुःख होता है तिसके रागद्वेषको लेकारि चित्तकी वृत्ति अंतर हृदयविषे जाय स्थित होतीहै, तैसे पापवासनाकादुःख अंतर होताहै: तिसकारि दुःखहोताहै, अंतरजलताहै इस प्रकार जडीभूत मूर्च्छाविषे रहता है, तिसकेअनंतर उसको बहुरि चैतन्यता फुरि आतीहै; अपनेसाथ शरीर देखता है, बहुरि नरकको जायभुगतता है, चिरकालपर्यंत नरकको भोगिकै बहुतेरे जन्म पशु आदिकोंके भुगतता है, तिसको भोगिकै मनुष्यशरीरको पाता है, महानीच अरु दरिद्री निर्धनोंकेगृहविषे जन्म लेता है, तहां भी दुःखोंकारि तप्त रहता है॥ हे लीले ! यह महापापियोंका मृत्यु तुझको कहा; अब मध्यम पापीका मृत्यु सुन, जब मध्यमपापीका मृत्यु होता है, तब वह भी वृक्षकी नाईं मूर्च्छा कारि जडीभूत होइ जाता है, अरु अंतर दुःखकारि जलता है, जडीभूतते थोडे कालविषे बहुरि चेतनताको पाता है, नरकांतरको जाय भुगतता है नरकको भोगिकै तिर्यगादिक योनिको भुगतता है; तिसको भोगिकै वासनाके अनुसार मनुष्यशरीरको पाता है, अब अल्पपापीका मृत्यु श्रवण कर ॥ हे लीले ! जब अल्पपापी मृतक होता है, तब मूर्च्छित होय जाता है, केतेक कालते उसको चेतनता आय फुरती है, चेतनताको पायके नरकको जाइकारि भुगतता है तिनको भुगतके कर्मोंके अनुसार और जन्मोंको भुगतता है, बहुरि मनुष्यशरीर आय धरता है ॥ हे लीले ! यह पापात्माके मृत्यु कहे, अब धर्मात्माके मृत्यु सुन ॥ जो महाधर्मात्मा हैं; सो जब मृतक होते हैं, तब उनके निमित्त विमान आता है, तिनपर आरूढ कारिकै स्वर्गमें ले जातेहैं; जिस इष्ट देवताकी वासना इसके हृदयविषे होती हैं; तिसके लोकविषे लेजाते हैं; तहांजाइकारि स्वर्गसुख भुगतता है, जैसे कर्म किये होते हैं; तैसे सुखको भुगतता है, कैसे स्वर्गसुख हैं, जो गंधर्व, विद्याधर, अप्सरा,

आदिकके भोग हैं, तिनको भोगिके बहुरि गिरता है, जिस फलविषेआन स्थित होता है, तिस फलका मनुष्य भोजन करता है, जब वीर्यविषेजाय स्थित होताहै, तिस वीर्यके साथ माताके गर्भविषे जाय स्थित होता है, तहां ते वासनाके अनुसार बहुरि जन्म लेता है,जो कछु भोगकी कामना होती है, तब श्रीमान् धर्मात्माके गृहविषे जन्म होता है,अरुजो भोगते निष्काम होता है; तब संतजनंके गृहविषे जन्म लेता है ॥ अब मध्यम धर्मात्माका मृत्यु सुन ॥ हे लीले ! जो मध्यम धर्मात्मा मृतक होता है तिसको शीघ्रही चेतनता फुरि आती है; अरु स्वर्गको चला जाता है, अपने पुण्यके अनुसार स्वर्गको भोगिके बहुरि गिरता है,किसी फलविषे आनि स्थित होता है; उस फलको पुरुष भोजन करता है, तब पिताके वीर्यद्वारा माताके गर्भविषे आता है,वासनाके अनुसार जन्म लेताहै,अरु जो अल्पधर्मात्मा मृतक होता है, तब उसको यह फुरि आताहै कि, मैं मृतक हुआ हौं, मेरे बांधव अरु पुत्रोंने मेरी पिंडक्रिया करी है; मैंपितर लोकको चला जाताहौं,वहां पितरलोकका अनुभवकरताहै,पितरलोकके सुख भोगके गिरता है,तबधान्यविषे आनस्थितहोताहै;जबधान्यकोपुरुष भोजन करता है, तब वीर्यरूप होयके स्थित होता है, तिस विर्यद्वारा होयके माताके गर्भविषे आता है, बहुरि वासनाके अनुसार जन्म लेता है॥हे लीले! जब पापी मृतक होता है,तब तिसको महाक्रूर मार्ग भासता है, तिस मार्गपर चलता है, चरणोंविषे कंटक चुभते हैं, शीशपर सूर्य तपता है सूर्यके धूपकरि शरीर कष्टवान् होता है अरु जो पुण्यवान् होता है,तिसको सुंदर छायाका अनुभव होता है,बावडियांअरुसुंदर स्थानोंके मार्गसों यमदूत उसको ले जाते हैं, जहां धर्मराजा बैठा है, तिसके पास ले प्राप्त करते हैं, धर्मराजा चित्रगुप्तसों पूछता है, तब चित्रगुप्त पुण्यवानोंके पुण्य प्रगट करता है; पापीके पाप प्रगट करता है, तिनकर्मोंके अनुसार स्वर्गनगरको भुगतता है;तिसको भोगिके बहुरि गिरताहै,धान्य अथवा और किसी फलविषे आन स्थित होताहै,जब उस अन्नको पुरुष भोजन करता है, तब वह स्वप्न वासनाको लेकरि वीर्यविषे आन स्थित होता है; जब पुरुषका इससाथ संयोग होता है; तब वीर्यद्वारा माताके

गर्भविषे आता है, तहां भी अपने कर्मोंके अनुसार माताके गर्भको प्राप्त होता है; माताके गर्भविषे इसको अनेक जन्मोंका स्मरण होता है, बहुरि बाहर निकसिकै बालक अवस्थाको धरता है, तब पिछली स्मृति विस्मरण हो जाती है, महामूढ अवस्थाको धरता है, परमार्थकी शुद्धि कछु नहीं होती, क्रीडा विषे मग्न होता है तिसते आगे यौवन अवस्था आती है, तब काम आदिक विकारोंविषे अंध हो जाता है, विचार कछु नहीं रहता, बहुरि वृद्ध अवस्था आती है, तब शरीर महाकृश जैसा हो जाता है, अरु रोग आन उपजते हैं. शरीर कुरूप हो जाता है. जैसे कमलोंपर बर्फ पडता है. अरु कुम्हलाइ जाते हैं, तैसे वृद्ध अवस्था, विषे शरीर कुम्हलाइ जाता है, सब शक्ति घटती जाती है, अरु तृष्णा बढती जाती है, बहुरि मृतक होने लगता है, तब कष्टवान् होता है कष्ट को भोगिकै मृतक होता है, तब वासनाके अनुसार स्वर्गनरकके भोगको प्राप्त होता; है; इसप्रकार संसार चक्रविषे वासनाके अनुसार घटीयंत्रकी नाईं भ्रमता है; स्थिर कदाचित् नहीं होता ॥ हे लीले ! इसप्रकार जीव आत्मपदके प्रमाद करिकै जन्ममरणको प्राप्त होता है; बहुरि माताके गर्भविषे आते हैं, बाल अवस्था, यौवन अवस्था, वृद्ध अवस्था, मृतक अवस्थाको प्राप्त होते हैं, बहुरि वासनाके अनुसार परलोकको देखते हैं; जाग्रत्स्वप्नकी नाईं भ्रमते अनंतर भ्रमको देखते हैं,जैसे स्वप्नते स्वप्नांतर देखता है, तैसे अपनी कल्पना करिकै जगत्भ्रम फुरता है, स्वरूपते किसीको कछु भ्रम नहीं, आकाशरूप, आकाशविषे स्थित है, भ्रम करिकै विकार भासते हैं॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! परब्रह्मविषे यह जगत् भ्रमकरि कैसे हुआ है; सो मेरे बोधकी दृढताके निमित्त कहो ॥देव्युवाच॥ हे लीले ! स्वरूपते सब आत्मरूप है, पहाडभी परमार्थघन है, वृक्षभी परमार्थघन है; पृथ्वी, आकाश, आदिक स्थावर जंगम जेता कछु जगत् है; सो सब परमार्थघन है, परमार्थसत्ता सर्व आत्मा है॥ हे लीले ! तिस सत्ता संवित् आकाशविषे जब संवेदन आभास फुरता है; तिसकरि जगत्रूप भासता है, आदिसंवेदन जो संवित्मात्रविषे हुआ है, सो ब्रह्मारूप होइकारि स्थित भया है,बहुरि जैसे वह चेतता गया है, तिसप्रकार

स्थावर जंगम जगत् होइकारि स्थित भया है ॥ हे लीले ! शरीर जो हुआ है, तिसके अंतरविषे नाडी हैं, नाडीविषे छिद्र हैं; तिन छिद्रोंविषे प्राण स्पंदरूप होइकारि विचरता है, तिसको जीव कहते हैं; जब वह जीव निकस जाता है, तब शरीर मृतक होता है ॥ हे लीले ! जैसे जैसे आदि संवित्मात्रविषे संवेदन फुरा है, तैसे अबलग स्थित है; जब चेता कि मैं जड होऊं तब जडरूप पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, पर्वत, वृक्षादिक स्थित भये जडकी भावनाकारि जड हुए, चेतनकी भावनाकारि चेतनरूप होइ कारि स्थित भए हैं ॥ हे लीले ! जिसविषे प्राणक्रिया होती है, सो जंगमरूप बोलते चलते हैं, अरु जिसविषे प्राणस्पंद क्रिया नहीं पाती, सो स्थावररूप हैं, अरु आत्मसत्ताविषे दोनों तुल्य हैं; जैसे जंगम हैं; तैसे स्थावर हैं; अरु दोनों चैतन्य हैं, जैसे जंगमविषे चैतन्यता है, तैसे स्थावरविषे चैतन्यता है, अरु जो तू कहै स्थावरविषे चेतनता भासती क्यों नहीं, तिसका उत्तर यह है॥ हे लीले! जैसे उत्तर दिशाके समुद्रवाले मनुष्यकी बोलीको दक्षिण दिशाके समुद्रवाले नहीं जानते; अरु दक्षिण दिशाके समुद्रवालेकी बोलीको उत्तर दिशाके समुद्रवाले नहीं समझ सकते तैसे स्थावरोंकी बोलीको जंगम नहीं समझ सकते, अरु जंगमोंकी बोलीको स्थावर नहीं समझ सकता परस्पर अपनी अपनी जातिविषे सब चेतन है, उसका ज्ञान उसको होता है जैसे कूपविषे दर्दुर होता है, सो औरके कूपके दर्दुरको नहीं जानता, अरु और कूपका दर्दुर उस कूपके दर्दुरको नहीं जानता, तैसे जंगमोंकी बोली स्थावर नहीं जान सकते; अरु स्थावरोंकी बोलीको जंगम नहीं जान सकते ॥ हे लीले ! जो आदि संवित्विषे संवेदन फुरा है, तैसा रूप होइकारि महाप्रलयपर्यंत स्थित है, अन्यथा नहीं होता, जब तिस संवित्विषे अवकाशका संवेदन फुरा तब आकाशरूप होइकारि स्थित भया है; जब स्पंदताको चेतता भया, तब वायुरूप होइकारि स्थित भया, जब उष्णताको चेतता भया, तब अग्निरूप होइकारि स्थित भया; जब द्रवताको चेतता भया, तब जलरूप होइकारि स्थित भया, जब गन्धकी चिंतवना करी तब पृथ्वीरूप होइकारि स्थित भया, इसप्रकार जिस

जिसको चेतता भया, सो सौ पदार्थका प्रगट भया, आत्मसत्ताविषे प्रतिबिंबित भया, वास्तवते न कोऊ स्थावर है, न जंगम है, केवल ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, अपने आपविषे स्थिर है, तिसविषे जगत् भ्रम करिके पडे भासते हैं, और दूसरी वस्तु कछु नहीं ॥ हे लीले! अब राजा विदूरथको देख जो मृतक होता है ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि! यह राजा पद्म शव शरीरवाले मंडपविषे किस मार्गसों जावैगा; अरु इसके पाछे हम किस मार्ग जावैंगे?॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! यह अपनी वासनाके अनुसार मनुष्यमार्गसे जावैगा, है, चिदाकाशरूप, परंतु अज्ञानके वश इसको दूर स्थान भासैगा; अरु हम भी इसहीके मार्गसे इसके संकल्पके साथ अपना संकल्प मिलाइके जावैंगी; जबलग संकल्पसाथ संकल्प मिलता नहीं, तबलग एकत्वभाव नहीं होता, इसीकारणते इसके संकल्प साथ हम अपना संकल्प मिलाइकरि इसहीके मार्गसे जावैंगे ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार देवीजीने लीलाको उपदेश किया, कैसा उपदेश है, मानो बोधका सूर्य उदय हुआ है, ऐसे संवाद करते थे, तहां राजा जर्जरीभूत होने लगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने संसारभ्रमवर्णनं नाम अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ॥३८॥

एकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः ३९.

मरणानंतरावस्थावर्णनम्. ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार देवी अरु लीला देखंती थी, तहां राजाके नेत्र फाटि गये, अरु शरीर निरस हो गया, अरु गिर पडा, श्वास नासिकाके मार्गसे निकस गया, तब जैसे रसते रहित पत्र होता है, अथवा जैसे काटा हुआ कमल विरस हो जाता है, तैसे राजाका शरीर निरस हो गया, जो कछु चित्तकी चेतनता थी, सो जर्जरीभूत हो गई, मृत्यु मूर्च्छारूपी अंधकूपविषे राजा जाय पडा, अरु प्राण चेतना वासना संयुक्त आकाशविषे जाय स्थिर भये, प्राणोंविषे चेतना थी अरु चेतनाविषे वासना थी सो चेतना अरु वासनासहित प्राणोंका-

शविषे जाय स्थित भये, जैसे वायु गंधको लेकरि स्थित होता है ॥ हे रामजी ! वह राजाकी पुर्यष्टक तौ जर्जरीभूत हो गई; परंतु दोनों देवियां उसको दिव्य दृष्टिसाथ देखैं, जैसे भ्रमरी गंधको देखती है, तब राजा एक मुहूर्त्तपर्यंत मूर्च्छाविषे रहा; बहुरि उसको चेतनता फुरि आई, अपने साथ शरीर भासि आया, अरु जानता भया कि मेरे बांधवोंने मेरी पिंडक्रिया करी है, तिसकरि मेरा शरीर भया है, अरु धर्मराजाके स्थानको मुझे दूत ले चले हैं ॥ हे रामजी ! इस प्रकार अनुभव करता धर्मराजाके स्थानको चला जावै, तिसके पाछे देवी अरु लीला भी चली जावैं, जैसे वायुके पाछे गंध चला जाता है,तैसे चली जावैं, जैसे गंधके पाछे दोनों भ्रमरी जावैं तैसे जावैं तब राजा विदूरथ धर्मराजाके पास जाइ प्राप्त भया, धर्मराजाने चित्रगुप्तको कहा कि इसके कर्म विचारके कहो, तब चित्रगुप्तने कहा, हे भगवन् ! इसने कोई अपकर्म नहीं किया, अरु बडे बडे पुण्य किये हैं, पाप नहीं किये हैं, अरु भगवती सरस्वतीका इसको वर है; अरु इसका शव फूलोंसाथ ढांपा हुआ है; तिस शरीरविषे भगवतीके वरकरि जाय प्रवेश करैगा ताते और इसको अब कछु कहना पूछना नहीं ॥ देवीजीके वरसाथ बांधा है ॥ हे रामजी! ऐसे उसने कहा, तब राजाको अपने स्थानते चलाय दिया, जैसे खंभाणीकर पत्थर पडा वेगसों चला जाता है, तैसेही चलाय दिया; तब आगे राजा चला जावै, तिसके पाछे दोनों देवियां चली जावैं; राजाको यह देवियां देखैं, अरु राजा इनको देख न सके, तब तीनों एक ब्रह्मांडको लंघ गये जिसका राज्य विदूरथने किया था, तिसको लंघिकरि दूसरे ब्रह्मांडविषे आए, तिसको भी लंघते पद्म राजाके देशमें आये, तिसको लंघिकरि पद्मके मंदिरविषे आये, जहां फूलोंसाथ शव ढांपा था, एक क्षणविषे देवी आन मिली; जैसे मेघको वायु आन मिलता है, जैसे सूर्यमुखी कमलको धूप आनि मिलता है, तैसे आन मिली ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! वह तौ राजा मृतक हुआथा, मृतक होइकरि तिस मार्गको कैसे पहँचानत भया जो आय प्राप्त हुआ ? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! वह विदूरथ जो मृतक भया था, सो उसकी वासना तौ नष्ट भई न थी, उस अपनी वासनाकरि अपने स्थानको आइ

प्राप्त भया ॥ हे रामजी! भ्रांतिमात्र जो जगत् है, सो चिद्अणु जीवके उदरविषे है, जैसे वटके बीजविषे अनंत वटवृक्ष होते हैं, तैसे चिद्अणुविषे अनंत जगत् है, जो अपने अन्तर स्थित हैं; तिसको क्यों न देखै जैसे जीव अपने जीवत्वका अंकुर देखता है, तैसे स्वभाव चिद्अणु त्रिलोकीको देखता है; जैसे कोऊ पुरुष किसी स्थानविषे धनको दाबि राखै अरु आप दूर देशको जावै तौ धनको वासनाकारिकै पडा देखता है; तैसे वासनाकी दृढताकारि विदूरथ देखता भया, अरु जैसे कोऊ जीव स्वप्नभ्रमकारि किसी बडे धनवान्के गृहविषे जाय उपजता है; भ्रमके शांत हुए तिसको अभाव देखता है, तैसे अनुभव करत भया ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! जिसकी वासना पाछे पिंडदानक्रिया की नहीं रहती, अरु मृतक भया है, तब वह कैसे अपने साथ शरीर देहको देखताहै, जिसकी पिंडक्रिया हुई नहीं ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! यह पुरुष पिता माताके पिंड जो करताहै, उनकी वासना इसके हृदयविषे होती है, सोई वासना फलरूप होइकारि इसको भासती है, जो मेरा शरीर है, मेरे पाछे मेरे बांधवने पिंडदान किया है, तिसकर मेरा शरीर हुआ है, अपनी वासनाकारि तिसको इसी प्रकार अनुभव होताहै ॥ हे रामजी! सदेह होवै अथवा विदेह होवै, अपनी वासनाके अनुसार इसको अनुभव होताहै; भावनाते इतर अनुभव नहीं होता, चित्तमय पुरुषहै, जो चित्तविषे पिंडकी वासना दृढ होती है, तब आपको पिंडवान्ही जानता है, जैसी भावना होती है तैसेही होता है, भावनाके वशते असत् भी सत् होजाता है; ताते पदार्थोंका कारण भावनाही है, कारण विना कार्यका उदय नहीं होता, महाप्रलयपर्यंत कारणविना कार्य होता देखा नहीं; अरु सुना भी नहीं, ताते कहा है जिसकी जैसी वासना होती है, तैसा अनुभव होता है॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जिस पुरुषको अपने पिंडदान आदिक धर्मकी वासना नहीं, वह जब मृतक होता है; तब प्रेतवासनासंयुक्त होता है, कि मैं प्रेत हुआ हौं, मैं पापी हौं, अरु पाछे तिसके बांधव उसके निमित्त धर्म क्रिया करते हैं, सो धर्मबांधवोंने पिंड क्रिया करी है, तिसकारि मेरा शरीर हुआ है, सो क्रिया उसको प्राप्त होती है, अथवा नहीं होती? बांधवोंके मनविषे दृढ भावना

भई जो इसको प्राप्त होवैगी, अरु इसके मनविषे भावना नहीं जो किस कारणते धनके अभावते अथवा पुत्रादिकोंके अभावते उसको निराश है, अरु किसी प्रभावते किसीने पिंडादिक क्रिया करी सो कैसे होत है? ॥ उसको प्राप्त होता है, अथवा नहीं होता, तुम तौ कहते हौ कि; भावना के वशते असत् भी सत् होजाताहै, यह क्या है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! भावना जो होती है, सो देश, काल, क्रिया द्रव्य, संपदा पांचों करि होती है, जैसी भावना होती है, तैसे सिद्ध होता है, जिसकी कर्तव्यता बली होती है, तिसका जय होता है, यह पुत्रदारादिक जो बांधव हैं, सो सब इसकी वासनारूप हैं, जो धर्मकी वासना होती है, तब तिसकी बुद्धिविषे प्रसन्नता उपज आतीहै, तिनके पुण्यकर्मोंकरि पूर्वभावना नष्ट हो जाती है, अरु शुभ गतिको प्राप्त होता है, जो अति बली वासना होतीहै, तिसका ही जय होता है, ताते अपने कल्याणके निमित्त शुभका अभ्यास किया चाहिये ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो क्रिया देश काल द्रव्य संपदा पांचोंकरि वासना होती है तो महाप्रलय सर्गकी आदिविषे देश काल क्रिया द्रव्य संपद कोऊ नहीं होती, जहां पांचों कारण नहीं होते, अरु तिनकी वासनाभी नहीं होती तिस अद्वैतते जगत्भ्रम बहुरि कैसे होता है?॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! महाप्रलय अरु सर्गकी आदिविषे देश काल क्रिया द्रव्य संपदा कोऊ नहीं रहती अरु निमित्तकारण समवायिकारणका अभाव होता है, अरु चिदात्मविषे जगत् कछु उपजा नहीं अरु है भी नहीं, वास्तवते दृश्यका अत्यन्त अभावहै, अरु जो कछु भासताहै, सो ब्रह्मका किंचनहै, सो ब्रह्म सत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है, ऐसे अनेक युक्तिकरि मैं तुझको कहौंगा, अब तू पूर्वकथा सुन॥ हे रामजी! जब वह दोनों देवियां तिस मंदिरविषे जाय प्राप्त भईं, तब देखत भईं कि, महाफूलोंकरि सुंदर शीतल स्थान बने हुए हैं, जैसे वसंतऋतुविषे वनभूमिका होती है, तैसे स्थान हैं, अरु प्रातःकालका समयहै, सुवर्णके कुंभ जलसाथ भरे मंगलरूपी पडे हैं, दीपकोंकी प्रभा मिटगई है, किवाड चढे हुए हैं अरु मंदिरोंविषे लोके सोए हुए हैं, तिनके श्वास आते जातेहैं, महासुंदर झरोखे हैं, ऐसे

स्थान बने हुए हैं जैसे संपूर्ण कलाकारि चंद्रमा शोभता है, तैसे भासते हैं, इंद्रके स्थान जैसे सुंदर हैं, तैसे सुंदर मंदिर हैं, जिस कमलते ब्रह्माजी उपजा है, तैसे वह कमल सुंदर हैं, तैसे ही सुंदर स्थान मंदिरको देखत भई ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मरणानंतरावस्थावर्णनं नाम एकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४०.

स्वप्नपदार्थनिवृत्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तब दोनों देवियां तिस शवके पास विदूरथकी लीलाको देखती भई; जो उसके मृत्युते प्रथम तहां आन प्राप्त भई हैं, पूर्व जैसे वस्त्र भूषण पहिरे हुए हैं, पूर्व जैसा आचार है, पूर्व जैसी सुन्दरता है, पूर्व जैसा शरीर है तिस लीलाको देखत भई; कैसा सुन्दर मुख है, जैसे चंद्रमाकी नाईं प्रकाशता है, अरु महासुन्दर फूलोंकी भूमिकेऊपर बैठी है; लक्ष्मीके समान लीला है; अरु विष्णुके समान राजा है, तिस लीलाको कछुक चिंतासहित देखत भई, जैसे दिनके समय चन्द्रमाकी मध्यम प्रभा होती है तैसे कछुक चिंतासहित राजाके दाहिनी ओर बैठी है; चिबुक हाथके आधार रक्खा है, अरु दूसरे हाथकारि राजाको चमर कर्ती है, तिस लीलाको दोनों देखत भईं अरु वह लीला इनको न देखत भई, काहेते कि यह दोनों प्रबुद्ध आत्मा थीं अरु सत् संकल्प था अरु वह लीला इनके समान प्रबुद्ध न थी, इस कारणते वह न देखत भई ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तिस मंडपविषे जो पूर्व लीला देहको स्थापन कारि अरु ध्यानविषे विदूरथकी सृष्टि देखनेको सरस्वतीकेसाथ गई थी, सो तिस देहका तुमने वर्णन कछु न किया कि उस देहकी क्या दशा भई, अरु कहां गई तिसका वृत्तांत अब कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! लीला कहां थी, अरु लीलाका शरीर कहां था, अरु तिसकी सत्ता कहां थी,वह तौ अरुंधतीके मनविषे लीलाके शरीरकी भ्रांति प्रतिभा हुई थी; जैसे मरुस्थलविषे जलकी प्रतिभा होती है, तैसे लीलाके शरीरकी प्रतिभा हुईथी ॥ हे

रामजी ! यह आधिभौतिक अज्ञानकरिकै भासता है, बोधकरिकै अधि-
भूतकता निवृत्त होइ जाती है, जब तिस लीलाको बोधविषे परिणाम
हुआ, तब तिसका अधिभूतक शरीर निवृत्त हो गया; जैसे सूर्यके तेज
कारि बरफका पुतला गलि जाता है, तैसे ज्ञानकरिकै तिसकी अधिभू-
तकता नष्ट हो गई, अरु अंतवाहकता आन उदय भई ॥ हे रामजी !
जेता कछु जगत् है, सो सब आकाशरूप है; जैसे जेवरिविषे सर्प भ्रम-
करिकै भासता है, तैसे अंतवाहकविषे अधिभूतकता भासती है, आदि
शरीर अंतवाहक है, अर्थ यह जो संकल्प मात्र तिसविषे जो दृढ भा-
वना हो गई, तिसकरि पृथ्वी आदिक तत्त्वोंका शरीर भासने लगा है,
वास्तवते न कोऊ भूत आदिक तत्त्व हैं, न कोऊ तत्त्वोंका शरीर है,
इनके शव शशेके शृंगोंकी नाईं असत् हैं, ॥ हे रामजी ! आत्माविषे
अज्ञानकरिकै अधिभूतक भासै हैं, जब आत्माका बोध होता है, तब
अधिभूतक नष्ट हो जाते हैं, जैसे कोऊ पुरुष स्वप्नविषे आपको हरिण
देखता भया; जब जागि उठा तब हरिणका शरीर दृष्ट नहीं आता, तैसे
अज्ञानकरिकै अधिभूतकता दृष्ट आई है, अरु आत्मबोध हुए अधिभूत-
कता दृष्ट नहीं आती जब सत्यका ज्ञान उदय होता है तब असत्का
ज्ञान लीन होजाताहै. जैसे जेवरीके अज्ञानते सर्प भासै अरु जेवरीके
ज्ञानकारि सर्पका ज्ञान लीन होता है तैसे संपूर्ण जगत् मनते उदय हुआहै,
अज्ञानकरिकै अधिभूतकताको प्राप्त भया, जैसे स्वप्नविषे जगत् अधि
भूतक होइ भासत है अरु जागेते स्वप्नशरीर नहीं भासता, तैसे आत्म-
ज्ञानकारि अधिभूतकता निवृत्त हो जाती है, अरु अंतवाहक शरीरभासता
है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! योगीश्वर जो अंतवाहक शरीरसाथ ब्रह्मलोक
पर्यंत आते जाते हैं, तिनके शरीर कैसे हो भासते हैं?॥ वसिष्ठ उवाच ॥
हे रामजी ! अंतवाहक शरीर ऐसे हैं, जैसे कोऊ पुरुष स्वप्नविषे होवै,
तिसको पूर्वका शरीर जाग्रतका स्मरण होवै, तब स्वप्नशरीर इसको
दृष्ट भी आता है, अरु तिसको आकाशरूप जानता है तैसे अधिभू-
तकता बोधकरिकै नष्ट हो जाती है; जैसे शरत्कालका मेघ देखने मात्र
होता है; तैसे योगीश्वर ज्ञानवान्का शरीर देखनेमात्र होता है, अरु

अदृश्यरूप है, औरको शरीर भासता है, उसको आकाशरूप भासता है, हे रामजी ! यह देहादिक आत्माविषे भ्रांतिकरिकै दृष्ट आते हैं, आत्मज्ञानकरिकै निवृत्त हो जाते हैं, जैसे जेवरीके अज्ञान करिकै सर्प भासता है, जब जेवरीका सम्यक् ज्ञान हुआ, तब सर्पभाव तिसका नहीं रहता, तैसे तत्त्वबोधके हुए, देह कहां होवै ? देहकी सत्ता कहां रहै ? दोनोंका अभावही हो जाता है, केवल ब्रह्मसत्ता अद्वैत भासतीहै, ॥ रामउवाच ॥ हे भगवन् ! अंतवाहकते अधिभूतक रूप होता है. अथवा अधिभूतकते अंतवाहकरूप होता है ? सो मुझको कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मैंने तुझको बहुत बार कहा है सो तू मेरे कहेको धारता क्यों नहीं ? मैंने आगे कहा है कि जेते कछु जीव हैं, सो सब अन्तवाहक हैं, अधिभूतक कोऊ नहीं, आदि जो शुद्ध संवित्मात्रते संवेदन आभास उठा, तिसकरिकै इस जीवका आदि शरीर अन्तवाहक संकल्परूप हुआ, जब उस विषे दृढ अभ्यास हुआ, तब वह संकल्परूपी शरीर अधिभूतक होइकरि भासने लगा, जैसे जल दृढ जड़ताकरिकै बरफरूप हो जाता है, तैसे प्रमाद करिकै संकल्पके अभ्यासते अधिभूतकरूप हो जाता है, तिस अधिभूतकके तीन लक्षण होते हैं, भारी शरीर होता है, अरु कठोर भाव होता है, शिथिल होता है, तिसविषे अहंप्रतीति होती है, इसकारणते अधिभूतक कहाता है, अरु जब तत्त्वका बोध होता है, तब अधिभूतकता आकाशरूप होजाती है, जैसे स्वप्नविषे देहते आदि लेकरि जगत् बड़ा स्पष्टरूप भासता है, अरु जब स्वप्नविषे स्वप्नका ज्ञान होता है, कि यह स्वप्न है, तब वह स्वप्नका शरीर लघु हो जाता है, अर्थ यह कि संकल्परूप हो जाता है, तैसे परमात्माके बोधते अधिभूतक शरीर निवृत्त हो जाता है, संकल्परूप भासता है ॥ हे रामजी ! जो अधिभूतकता इसको प्राप्त भई है, सो अबोधके अभ्यासकरि प्राप्त भई हैं, जब उलटके वही अभ्यासका बोध होवै तब अधिभूतकता नष्ट हो जावै; अरु अंतवाहकता उदय होवै ॥ हे रामजी ! अन्य शरीरोंको जो यह प्राप्त होता है, सो एक शरीरको त्यागिकै दूसरेका अंगीकार करता है; जैसे स्वप्नते स्वप्नांतरको प्राप्त होता है, अरु जब बोध होताहै

तब शरीर और कछु वस्तु नहीं रहता, वही अधिभूतक शरीर शांत हो जाता है, जैसे स्वप्नते जागा हुआ स्वप्नशरीर शांत हो जाता है. तैसे क्रोध हुएते अधिभूतक शरीर शांत होजाता है ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् तुझको भासता है, सो सब स्वप्नविषे भ्रममात्र है, अज्ञानकरिकै सत्की नाईं भासता है, जब आत्मबोध होवैगा, तब सब आकाशरूप होवैगा ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठउत्प० लीलो० स्वप्नप० नि० चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४१.

जीवजीवनवर्णनम्.

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब वह दोनों देवियां अन्तःपुरविषे गईं तब प्रबुद्ध लीला कहत भई हे देवीजी ! समाधिविषे लगे मुझको केता काल व्यतीत भया है, अरु मैं जो ध्यानकरिकै भूपालकी सृष्टिविषे गई थी, मेरा शरीर यहां पड़ा था, सो कैसे कहां गया ? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! अब तुझको समाधिविषे लगे एकतीस दिन व्यतीत भये हैं, अरु जब तू ध्यानविषे लगी, तब तेरा पुर्यष्टक विदूरथकी सृष्टिविषे विचरता फिरता, स शरीरकी वासना तेरी निवृत्त होगई तब यह शरीर तेरा निर्जीव होइकरि गिर पडा; जैसे रसते रहित पत्र सूख जाता है, तैसे तेरा शरीर रसतेरहित भया था, जैसे काष्ठ पाषाण होता है, तैसे हो गया था. अरु बरफकी नाईं शीतल होगया. तब देखके सबने विचार किया कि, यह मृतक भया है, इसको जलाइये, तब चंदन अरु घृत साथ लपेटके जलाय दिया ॥ बांधवजन रुदन करने लगे अरु पुत्रोंने पिंडक्रिया करी ॥ हे लीले ! आगे जो तू ध्यानते उतरती तब तुझको देखके लोक आश्चर्यवान् होते ॥ अरु अब देखके आश्चर्यवान् होवैंगे, कि राणी परलोकते बहुरि फिरि आई है ॥ हे लीले ! तुझको बोध उदय हुआ है, तिसकरि उस शरीरकी वासना नष्ट भई है, अरु अन्तवाहकविषे दृढ निश्चय भया, इस कारणते वह शरीर जीवित भया, अब जो उसके समान तेरा शरीर है; सो इस कारणते है, जो

तुझको बोध हुआ है, सो लीलावासनाविषे हुआ, कि, मैं लीला हौं, ऐसे जो तेरी वासना भई, इस कारणते तेरा शरीर तैसा रहा, इस लीलाशरीरकी तेरी वासना नष्ट भई न थी, इस कारणते तू निर्वाण न हुई, नहीं तौ विदेहमुक्त हो जाती, अब तू सत्यसंकल्प भई है, जैसे तेरी इच्छा होवै, तैसे अनुभव होवैगा ॥ हे लीले ! जैसी वासना जिसको होती है, तिसके अनुसार तिसको प्राप्त होता है, जैसे बालकको अंधकारविषे जैसी भावना होती है, तैसाही भान होता है, जो वैतालकी भावना होती है, तब वैताल होइ भासता है, परंतु वास्तव वैताल कोऊ नहीं, तैसे जेती कछु अधिभूतकता भासतीहै, सो भ्रममात्रहै, सब जीवोंका आदि शरीर अंतवाहक है,सो प्रमादकरिकै अधिभूतक भासता है ॥ हे लीले ! एक लिंग शरीर है, एक अंतवाहकशरीर है; सो दोनों संकल्प मात्र हैं, अरु इतना भेद है, लिंग शरीर संकल्परूपी मन है, तिसविषे जिसको अधिभूतकताका अभिमान हुआ है, तिसको गौरत्वरूप अरु कठोररूप अरु वर्णाश्रमका अभिमान हुआ है, जिस पुरुषको ऐसे अनात्माविषे आत्माभिमान हुआ है, तिसको अधिभूतक लिंगदेह है, अर्थ यह कि तिसकी चिंतवना सत्य नहीं होती, अरु जिसका अधिभूतकका अभिमान नहीं, सो अंतवाहक शरीर है, यह जैसी चिंतवना करता है, तैसी सिद्ध होती है ॥ हे लीले ! तू अब अंतवाहकविषे दृढ स्थित भई है, इस कारणते तेरा बहुरि उस जैसा शरीर हुआ है, अधिभूतकबुद्धि तेरी नष्ट हो गई है; वह शरीर शव होकरि गिर पडा; जैसे जलते रहित मेघ होता है, जसे सुगंधते रहित फूल होवै, तैसे तेरा शरीर हो गया अरु अब तू सत्यसंकल्प भई है, जैसी चिंतवना करै तैसे होता है ॥ हे लीले ! यह जो कमलनयनी लीला तेरे भर्ताके पास बैठी है, तिसको इस अंतःपुरके लोग सहेलियां जान नहीं सकतीं, काहेते कि मैंने इनको निद्राकरिकै मोहित करा था, जबलग मेरा दर्शन इसको न होवै तबलग इसको और कोऊ न जानि सकै, अब यह हमको देखैंगी ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! ऐसे विचारकै देवी उसको अपने संकलपसाथ ध्यान करती भई,तब उस लीलाने देखा, कि अंतःपुरविषे बडा प्रकाश होता भया, जैसे बहुतेरे

सूर्यका प्रकाश एकट्ठा होवे; अरु चंद्रमा की नाईं शीतल प्रकाश ऐसे प्रकाशवान दोनों देवियोंको देखिकै नमस्कार किया, मस्तक नमाया, अरु दोनोंको स्वर्णके सिंहासनपर बैठायके कहत भई ॥ हे जीवकी दाता! तेरी जय होवे, तैंने मेरेपर बडी कृपा करीहै; तेरे प्रसादकरि मैं यहां आई प्राप्त भई हौं ॥ देव्युवाच ॥ हे पुत्रि ! तू यहां क्यों कैसे आन प्राप्त भई है, ? अरु क्या वृत्तांत तुझने देखा है, सो कहिदे ॥ विदूरथ लीलोवाच ॥ हे देवि ! जब मेरा भर्ता संग्रामविषे घायल भया था, तिसको देखिके मैं मूर्छित भई; अरु गिर पडी, मैं मूर्छितभई, परंतु मृतक न भई तिसते अनंतर बहुरि मुझको चेतना फ़ुरि आई तब मैं अपने साथ वही शरीर देखती भई, तिस शरीरकरि मैं आकाशमार्गको उड़ी, एक कुँवारी मुझको उडाती यहां ले आई, जैसे वायु गंधको ले आता है, तैसे उडावती परलोकविषे मुझको भर्ताके पास बैठागई है, अरु आप अंतर्धान हो गई, अरु मेरा भर्ता जो संग्राम करि थका है, सो आयके सोय रहा है; अरु मैं सँभालती देखती मार्गविषे आईहौं, परंतु मुझको तुम दृष्ट कहूं न आई, यहां कृपा करि तुमने दर्शन दिया है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार सुनिके देवी प्रबुद्धलीलाको कहत भई, कि अब राजाकी जीवकलाको छोडती हौं, ऐसे कहिके जीवकलाको छोड़दीनी, तब नासिकाके मार्गसों जीवकला प्रवेश कर गई; जैसे कमलकी अंतर वायु प्रवेशकरि जावै; अथवा शरीरमें वायु प्रवेश करि जावै, तैसे शरीरमें जीव कला प्रवेश कर गई, कैसी जीवकला है, जो वासनाकरिके पूर्ण है, जैसे समुद्र जलकरिके पूर्ण होता है, तैसे पुर्यष्टक वासनाकरि पूर्ण है, ऐसा जीवकलाने शरीरविषे प्रवेश किया; तब शरीरकी कांति उज्ज्वल होत भई अंगोंविषे प्राणवायु पसर गया, जैसे वसंत ऋतुमें फूल वृक्षविषे रस पसरता है, तब सब इंद्रियां खिल आईं; जैसे वसंतऋतुविषे फूल खिल आते हैं तैसे इन्द्रियां खिल आईं तब राजा फूलोंकी शय्याते उठि खडा भया जैसे रोका हुआ विंध्याचल पर्वत उठ आवै तैसे राजा उठा, तब दोनों लीला राजाके सन्मुख आइ खडी भई तब राजाने कहा, मेरे आगे तुम कौन खडीहौ, तब प्रबुद्धलीलाने कहा, हे स्वामी ! मैं तेरी पूर्व पट्टराणी लीला हौं, सदा तेरे संग

रही हौं; जैसे शब्दके संग अर्थ रहता है, तैसे मैं तेरे संग सदा रही हौं ॥ हे राजन् ! जब तू यहां शरीर त्यागिके परलोकमें गया था, तब मेरेविषे तेरा स्नेह बहुत था; तिसकारि मेरा प्रतिबिंब यह लीला तुमको भासी थी, अब यह जो और कथाका वृत्तांत है, सो मैं तुझको कहौंगी ॥ हे राजन् ! हमारे ऊपर इस देवीने कृपा करी है, जो तुम्हारे शीशपर स्वर्णके सिंहासनपर बैठी है, यह सरस्वती सर्वकी जननी है. इसने हमारे ऊपर बडी कृपा करी है, अरु परलोकते तुझे ले आई है ॥ हे रामजी ! ऐसे सुनिके राजा प्रसन्न हुआ, अरु सरस्वतीके चरणोंपर मस्तक नमाया, अरु कहत भया ॥ राजोवाच ॥ हे सरस्वती ! तुझको मेरा नमस्कार है, तू सबकी हितकारी है, अरु तुझने मेरेपर बडा अनुग्रह किया है, अब कृपा कारि मुझको यह वर देहु, कि मेरी आयुर्बल बडी होवै, अरु निःकंटक राज्य करौं; अरु लक्ष्मी भी बहुत होवै; अरु रोग कष्ट भी न होवै, अरु मैं आत्मज्ञान कारिके संपन्न होऊं; अर्थ यह कि, भोग अरु मोक्ष दोनों देहु ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार राजाने कहा, तब देवीने उसके शीशपर हाथ धरा, अरु आशीर्वाद कहत भई ॥ देव्युवाच ॥ हे राजन् ! ऐसेही होवैगा; तेरीआयुर्बल बडी होवैगी; अरु तेरा शत्रुभी कोऊ न होवैगा; तू निःकंटक राज्य करैगा, आपदा तुझको न होवैगी, अरु तू लक्ष्मी संपदा कारि संपन्न होवैगा, अरु तेरी प्रजा भी बहुत सुखी रहैगी तुझको देखिके प्रसन्न होवैगी अरु तेरी प्रजाविषे आपदा किसीको न होवैगी अरु तू आत्मानंदकारि भी पूर्ण होवैगा ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जीवजीवनवर्णनं नाम एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४२.

निर्वाणवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार कहिके देवी अंतर्धान हो गई, तब प्रातःकालका समय हुआ. सब लोक जागि उठे, सूर्य भी उदय हुआ, सूर्यमुखी कमल खिल आये, तैसे राजा दोनों लीलाको कंठ लगावत भया; कृपाकारिके प्रसन्न भया; अरु आश्चर्यवान् भया, तब

तिस मंदिरविषे नगारे बाजने लगे, शब्द होने लगे; बहुरि बहुरि शब्द मंगल गावैं, अरु हुलास करैं, मंदिरविषे बडा हुलास आनंद आन बढा. अंगना अनेक नृत्य करने लगीं. बडा उत्साह हुआ, विद्याधर सिद्ध देवता फूलोंकी वर्षा करने लगे; अरु लोक बडे आश्चर्यको प्राप्त भये; कि लीला परलोकते आई है; अरु भर्ताको भी और आप जैसी लीलाको ले आई है ॥ हे रामजी ! यह कथा देशते देशांतरको चली गई; लोक श्रवण करिकै आश्चर्यको प्राप्त होवैं; जब इस प्रकार यह कथा प्रसिद्ध हुई; तब राजाने भी श्रवण किया; कि मैं मरिकै फेर जिया हौं; इस प्रकार विचारत भया; कि, फिर मैं अभिषेक लेहुँ॥ राजा ऐसे विचारता भया, तब मंत्री अरु मंडलेश्वरने उत्तर दक्षिण पूर्व पश्चिम चारों औरते समुद्रका जल मँगाया अरु सर्व तीर्थोंका जल मँगाया. अरु राजाको राज्यका अभिषेक किया; तब चारों समुद्रपर्यंत राजा निःकंटक राज्य करता भया; राजा अरु लीला पूर्व कथाको विचारैं. अरु आश्चर्यमान होवैं; सरस्वतीके उपदेश अरु प्रसाद अरु अपने पुरुषार्थको पायके राजा अरु दोनों लीलाओंने ऐसे सहस्र वर्षपर्यंत जीवन्मुक्त होइकै राज्य किया; कैसे राज्य किया जो मनसहित षड्इंद्रियोंको वश किया, अरु यथालाभविषे संतुष्ट रहे, दृश्यभ्रम तिनका नष्ट हो गया, ऐसे जीवन्मुक्त होके राज्य करते भये, कैसा सुंदर राजा है, जिसकी सुंदरताकी कणिका मानो चंद्रमा है, बहुरि कैसा राजा है, तिसके तेजकी कणिका मानो सूर्य है, इसप्रकार राज्य करत भए, सब प्रजाको भली प्रकार संतुष्ट करत भया, सब प्रजा राजाको देखिकै प्रसन्न होवे, बुद्धिमान् ब्राह्मणसभाको प्रसन्न करनेहारा हुआ, बहुरि विदेहमुक्त निर्वाणपदको दोनों लीला अरु तीसरा राजा प्राप्त हुए॥ इतिश्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने निर्वाणवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥४२॥

त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४३.

प्रयोजनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह दोनों कथा मैंने तुझको विस्तारकरि श्रवण कराई हैं, एक आकाशज ब्राह्मणकी, दूसरी लीलाकी, सो दृश्य

दोषके निवर्तन अर्थ कही हैं॥ हे रामजी! दृश्यकी दृढता जो होरही है, तिसको त्यागिकारि अब तू दोनों इतिहासों को संक्षेपमात्रते श्रवणकर यह जगत् जो तुझको भासता है, सो आभासरूप है, आदिते कछु उपजा नहीं, जो वस्तु सत्होतीहैं; तिसके निवारणविषे प्रयत्न होताहै, अरु जो वस्तु असत्ही होवै; तिसके निवृत्त होनेविषे यत्न कछु नहीं, इस कारणते ज्ञानवान्को सब आकाशरूप हो जाता है अरु आकाशकी नाईं स्थित होता है॥ हे रामजी! आदि जो ब्रह्मसत्ताविषे आभास संवेदन फुरा है, सो ब्रह्मारूप होइकारि स्थित भया है! सो ब्रह्मा पृथ्वी आदिक भूतोंते रहित है, जो आपही आभासरूप होवे तिसके उपजाये जगत् कैसे सत होवे? हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुष आकाशरूप है; जिसको आत्मपदका साक्षात्कार हुआ है, तिसको दृश्यभ्रमका अभाव हो जाता है, अरु जो अज्ञानी है, तिसको जगत्भ्रमस्पष्ट भासता है, शुद्ध चिदाकाशका एक अणु जीव है, तिस जीवअणुविषे यह जगत् भासता है, तिसजगत्की सृष्टिमें तुझको क्या कहौं, नीति क्या कहौं, वासना क्या कहौं, पदार्थक्याकहौं। हे रामजी! और जगत् कछु उपजा नहीं, संवेदन फुरनेकारिकै जगत् भासता है, शुद्ध संवित्विषे संवेदनरूपी नदी चली है, तिसविषे यह जगत् पडा फुरता है, जब संवेदनको यत्नकारि रोकैगा, तब दृश्यभ्रम नष्ट हो जावेगा सो प्रयत्न करना यही है कि, संवेदनको अंतर्मुख करना; जबलग आत्माका साक्षात्कार होवै, तबलग श्रवण मनन निदिध्यासन कारि दृढ अभ्यास करिये, जब साक्षात्कार हुआ तब दृश्य नष्ट हो जाते हैं॥ हे रामजी! यह सर्व जगत् जो तुझको भासता है, सो हमको अखंड ब्रह्मसत्ताही भासती हैं, जगत् मायामय है. परंतु माया भी कछु और वस्तु नहीं, ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है॥ राम उवाच॥ बडा आश्चर्य है, बडा आश्चर्य है॥ हे मुनीश्वर! तुमने मुझको परम दशा कही है, कैसा तुम्हारा उपदेश है, जो दृश्यरूपी तृणोंको नाश करता दावाग्नि है, अरु आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक तापोंको शांतकर्ता चंद्रमाहै॥ हे मुनीश्वर! तुम्हारे उपदेशकारि मैं ज्ञातज्ञेय भया हौं अरु पांच विकल्पमैंने विचारे हैं; कि यह जगत् मिथ्या है, स्वरूपते अनिर्वचनीय है, ३

आत्मविषे आभास हैं, २ इसका स्वभाव परिणामी है ३ अज्ञानकरि उपजा है ४ अरु अनादि अज्ञानपर्यंत है, ५ ऐसे जानिकै मैं शांतात्मा ज्ञानवानोंकी नाईं भया हौं अरु निर्वाण मुक्तकी नाईं भया हौं ॥ हे मुनीश्वर! और शास्त्रोंते यह तुम्हारा उपदेश आश्चर्य है; श्रवणरूपी पात्र तुम्हारे वचनरूपी अमृतकरि मैं तृप्त नहीं होता ताते यह मेरा संशय दूर करो कि, लीलाके भर्त्ताको तीन सृष्टिका अनुभव कैसे भया? प्रथम वसिष्ठकी बहुरि पद्मकी बहुरि विदूरथकी तिनकेविषे कालका व्यतिक्रम देखा कि, कहूं दिन हुआ, कहूं मास हुआ कहूं वर्षोंका अनुभव भया सो कालका व्यतिक्रम कैसे हुवा? ॥ हे मुनीश्वर! हलोहरके बटेरेविषे जल नहीं स्थित होता अरु कुंभविषे स्थित होता है, ताते स्पष्ट कर कहौ, जो तुम्हारे वचन मेरे हृदयविषे स्थित होवैं, एकबार कहनेकरि हृदयविषे स्थित नहीं होता ताते बहुरि कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! शुद्ध संवित् सबका अपना आप है, तिसविषे जैसा संवेदन फुरता है, तैसा तैसा रूप होइ भासता है, कहूं क्षणविषे कल्पोंके समूह बीते भासते हैं; कहूं कल्पविषे क्षणका अनुभव होता है॥ हे रामजी! जिसको विषविषे अमृतभावना होती है, तिसको अमृत होइ भासता है, अरु जिसको अमृतविषे विषकी भावना होती है, तब वही विषरूप होइ भासता है, किसी पुरुषका शत्रु होता है, अरु उसविषे मित्रकी भावना करता है, वह मित्ररूप होइ भासता है, अरु जिसको मित्रविषे शत्रुभावना होती है, तब वही शत्रु होइ भासता है हे रामजी! जैसा संवेदन फुरता है, तैसा स्वरूप होइ भासता है,जिसका संवेद तीव्र भाव अभ्यासकरिकै निर्मलभावको प्राप्त होता है, तिसका संकल्प सत् होता है, जैसे चेतताहै, तैसाही सिद्ध होता है,ताते संवेदनकी तीव्रता भई हेरामजी!जोकोऊ पुरुषरोगी होता है, तिसको एक रात्रि कल्पके समान व्यतीत होती है, अरुजो अरोगी होती है तिसकी रात्रि एक क्षणकी नाईं व्यतीत होती है, अरु एक मुहूर्तके स्वप्नविषे अनेक वर्षोंका अनुभव करता है, जानता है कि, मैं उपजा हौं; यह मेरे माता पिता हैं. अब मैं बडा हुआ हौं, यह मेरे बांधव हैं ॥

हे रामजी ! एक मुहूर्तविषे एते भ्रम देखता है, अरु जागे हुए एक मुहूर्त भी नहीं बीती; हरिश्चंद्रको एक रात्रिविषे बारह वर्षोंका अनुभव हुआ था, राजा लवणको एक क्षणविषे सौ वर्षका अनुभव हुआथा, तातेजैसेजैसे रूप होइकरि संवेदन फुरता है, तैसे तैसे होइकरि भासता है॥ हे रामजी! ब्रह्माके एक मुहूर्तविषे मनुष्यकी आयु व्यतीत हो जातीहै, सो ब्रह्मा एक मुहूर्तका अनुभव करता है, मनुष्य पूर्ण आयुका अनुभव करताहै, अरु जो ब्रह्मा अपनी संपूर्ण आयुका अनुभव करता है, सो विष्णुका एक दिन होता है, ब्रह्माका आयुर्बल व्यतीत होता है, अरु विष्णुको एकदिनका अनुभव होता है, ताते जैसे जैसे संवेदनविषे दृढता होती है, तैसा तैसा भान होता है ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् तू देखता है, सो संवेदन फुरणे विषे स्थित है, जब संवेदन स्थित होता है, तब न दिन भासताहै, न रात्रिभासती है, न कोऊ पदार्थ भासते हैं, न अपना शरीर भासताहै, सो केवल आत्मतत्त्व मात्र सत्ता रहती है, ताते तू देख कि, सब जगत् मनके फुरणेविषे होता है, जैसा जैसा फुरता है; तैसा तैसा रूप हो भासता है ॥ कटुकविषे जिसको मधुरकी भावना होती है, तब कटुक तिसको मधुर हो जाता है, अरु मधुरविषे जिसको कटुकभावना होती है, तब मधुर भी तिसको कटुकरूप होइ जाताहै, अरुस्वप्नविषे शून्य स्थानमें नानाप्रकारके व्यवहार होते भासते हैं, अरु अस्थिरही होताहै, स्वप्नविषे दौडता फिरता है, ताते जैसा फुरणा मनविषे होता है, तैसाही हो भासता है॥ हे रामजी! जो कोऊ पुरुष नौकाविषे बैठा होताहै, तिसको नदीके तट वृक्षोंसहित दौड़ते भासते हैं, और स्थिर पदार्थ चलतेभासते हैं, जो विचारवान् हैं, सो चलते भासनेविषे स्थिर जानते हैं, अरु जो पुरुष भ्रमता है, तिसको स्थिरीभूत मंदिर भ्रमते भासते हैं, अरु जो विचारविषे दृढ है, तिसको भ्रमते भासनेविषे भी अचलबुद्धि होती है; ताते जैसा २ निश्चय होता है, तैसा तैसा होइ भासता है ॥ हे रामजी! श्वेत पदार्थ होता है, अरु किसीके नेत्रविषे दूषण होता है, तिसको पीत वर्ण भासता है; अरु जिसके शरीरविषे वात, पित्त; कफका क्षोभ होता है, तब इसको सर्व पदार्थ विपर्यय भासते हैं, पृथ्वी आकाशरूप पड़ी

भासती है, अरु आकाश पृथ्वीरूप हो भासता है, अरु चल पदार्थ अचलरूप भासता है, अचल पदार्थ चलता भासतहै ॥ हे रामजी ! स्वप्नविषे अंगना असत्‌रूप होती है, परंतु भ्रांतिकरिकै उसको स्पर्श करती है, अरु प्रसन्न होता है, तिस कालविषे प्रत्यक्ष भासती है, अरु जैसे बालकको परछायेविषे वैताल भासता है, सो असतही सत्‌रूप होइ भासता है, अर्थ यह कि भयको देता है॥ हे रामजी ! शत्रु होता है, अरु जो तिसविषे मित्रभावना होती है, तब वह शत्रुभी मित्रसुहृद होइ भासता है, अरु जो उसविषे शत्रुभाव होता है, तब वह सुहृद शत्रुरूप होइ भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्प है नहीं; परंतु भ्रमकरिकै सर्प भासता है, अरु भयको देखताहै, अरु बांधवमेंजोउसविषेबांधवकी भावना न करै तब बांधव भीअबांधव हो भासताहै,अरु अबांधव भी सो भावनाके अभावते बांधव होजाताहै॥ हे रामजी ! शून्यस्थानमें स्वप्नविषे बड़े क्षोभ भासते हैं; और निकटवर्त्ती जागेते निकटको कछुनहीं भासता स्वप्नवालेको स्वप्नका अनुभव होता है,अरु । जागृतवालेको जागृतका अनुभव होता है, इत्यादिक पदार्थ विपर्यय होइ भासते हैं; सो भ्रमकरि भासते हैं, जब मन फुरता है तबही भासता है, तैसे लीलाके भर्त्ताको भी ऐसी सृष्टिका अनुभव हुआ, जैसे जगत्‌की मूर्त्तिका स्वप्नमें बहुत कालका अनुभव होता है, तैसे लीलाके भर्त्ताको भी हुवाथा, जैसाजैसा मनका फुरणा होता है, तैसा तैसा रूप चेतनसंवित्‌विषे भासताहै,अरु मुझको सदा ब्रह्मका निश्चय है, ताते सब जगत् हमको ब्रह्मस्वरूप भासता है, जिसको जगत्‌भ्रम दृढ है, तिसको जगत्‌हीभासता है॥हे रामजी! जेता कछु जगत् भासताहै सो आदिते कछु उपजा नहीं, सब आकाशरूप हैं, रोकनेवाली भीत कोऊ नहीं, बड़े विस्तारकरि जगत् है, परंतु स्वप्नवत् है,जैसे स्तंभविषे कोरे बिना पुतली शिल्पीके मनविषेभासती है, स्तंभविषे कछु बनी नहीं, तैसे आत्मारूपी स्तंभहै,तिसविषेसंवेदन जगत्‌रूपी पुतलियोंको रचताहै, परंतु पदार्थ कछुहुआ नहीं, आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है॥ हे रामजी ! जैसे एक स्थानविषे दो पुरुष सोए होवैं; तिनविषे एकजागृत होवै,दूसरा स्वप्नविषे होवै,जो स्वप्नविषेहै,तिसको बडे युद्ध होते पडे भासते हैं, अरु जागृतको आकाशरूप है, तैसे जो

प्रबोध आत्मज्ञानवान् है, तिनको जगत्का सुषुप्तिकी नाईं अभाव है. अरु जो अज्ञानी हैं, तिनको नानाप्रकारमें व्यवहारोंसहित जगत् स्पष्ट भासता है, जैसे वसंतऋतुविषे पत्र फूल गुच्छे रससहित भासते हैं, तैसे आत्मसत्ता चैत्यताकरिकै जगत्रूप भासती है, जैसे स्वर्णविषे द्रवता सदा रहती है; परंतु जब अग्निका संयोग होता है, तब उसविषे द्रवता भासती है ॥ हे रामजी ! आत्मा अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं, जैसे अवयवी अरु अवयवोंविषे कछु भेद नहीं; जैसे पृथ्वी अरु गंधविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगतविषे कछु भेद नहीं,ब्रह्मसत्ताही संवेदनकरिकै जगतरूप होइ भासती है, और कछु दूसरी वस्तु नहीं; जब महाप्रलय होताहै, अरु सर्ग नहीं होता तब कार्यकारणकी कल्पना कोऊ नहीं होती, केवल चिन्मात्रसत्ता होती है, तिसते जो चिदाकाश हुबरि जगत् भासताहै, तौ वही रूप हुआ अरु जो तू कहै इस जगत्का कारण स्मृति होतीहै, तौ सुन ॥ हे रामजी ! जब महाप्रलय होता है, तब ब्रह्माजी तौ विदेहमुक्त होता है, बहुरि वह जगत्का कारण कैसे होवै ? अरु जो तू स्मृतिका कारण मानै, तौ स्मृति भी अनुभवविषे होतीहै, जो स्मृतिते जगत् हुवा तौ भी अनुभवरूप हुआ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! पद्मराजाके मंत्री टहलुए सब लोक विदूरथको जाय प्राप्त हुए सो कैसे हुए यह वार्त्ता बहुरि कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! केवल चेतनसंवित् सबका अपना आप है, जैसा जैसा तिस संवित्के आश्रयते संवेदन फुरताहै, तैसा तैसा रूप होइ भासताहै ॥ हे रामजी ! जब राजा विदूरथ मृतक होने लगा, तब राजाकी वासना उनविषे बहती थी अरु मंत्री टहलुए आदिक राजाके अंग हैं, इस कारणते तैसेही मंत्रीटहलुए राजाको प्राप्त भये, जैसे मणिकी किरणें मणिके अंग हैं, तैसे मंत्री टहलुए आदिक सामग्री राजाके अंग हैं, जैसे स्वप्नविषे कोऊ आपको देखै, कि मैं इस कुलविषे ऊपजा हौं, यह मेरा कुल आचार है, मैं राजा हौं, यह मेरे मंत्री हैं, टहलुएहैं, और अनेक पदार्थहैं, तैसेही मृतकहुआ राजा विदूरथ देखत भया है ॥ हे रामजी ! जैसी जैसी भावना संवेदनविषे दृढ होती है, तैसा रूप होइ भासता है, एक चल पदार्थ होते हैं; एक अचल पदार्थ होते हैं, जो अचल पदार्थ होताहै, तिसका प्रतिबिंब

आदर्शविषे भासताहै, अरु चल पदार्थ रहता नहीं भासता, ताते उनका प्रतिबिंब नहीं भासता तैसे जिस पदार्थकी तीव्र संवेगभावना होती है, तिसका प्रतिबिंबचेतन दर्पणविषे भासता है, अन्यथा नहीं भासता, जैसे तीव्र वेगवान् बडा नद होता है, सो समुद्रको शीघ्रही जाय प्राप्त होताहै, और नहीं प्राप्त हो सकते, तैसे जिसकी दृढवासना होती है, तिसके अनुसार शीघ्र जाय पावताहै॥ हे रामजी ! अनेक वासना जिसके हृदयविषे होती हैं, अरु जिसकी तीव्रता होती है; तिसका जय होताहै. जैसे समुद्रविषे अनेक तरंग होते हैं, कई उपजते हैं, कई नष्ट होजातेहैं, कई सदृश होते हैं, कई विपर्यय होते हैं, तैसे उसको सदृश मंत्री टहलुए हुए ॥ हे रामजी ! तैसे अनेक सृष्टि एक एक चिद्अणुविषे स्थित होती हैं वास्तवते कछु नहीं, चिदाकाशही चिदाकाशविषे स्थित है, अरु यह जो जगत् भासताहै, सो आकाशहीरूपहै, जो जागृतरूप होइकरि असत्ही सत्रूपकी नाईं भासता है; जैसे पत्र फूल फल सब वृक्षरूपहैं वृक्षही ऐसे रूप होइकरि स्थित हैं, तैसे अनंतशक्ति परमात्मा अनेकरूप होइकरि भासता है ॥ हे रामजी ! द्रष्टा, दर्शन, दृश्य जो त्रिपुटी भासती हैं; सो ज्ञानीको अजन्मा पद भासती है, अरु अज्ञानीको द्वैतरूप जगत् होइकरि भासता है, कहूं शून्य भासता है, कहूं तम भासता है, कहूं प्रकाश भासता है, अरु देश, काल, क्रिया, द्रव्य, आदिक सब जगत् है सो सब आदि, अन्त मध्यते रहित स्वच्छ आत्मसत्ता अपने आप विषे स्थित है, जैसे सोमजलते तरंग भी होते हैं; सो जलही रूप हैं,तैसे अहं त्वं आदिक जगत् भी बोधरूप है, सदा अपने आपविषे स्थित है तिसविषे द्वैतकल्पनाका अभाव ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्र० लीलोपाख्याने प्रयोजनवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४४.

जगत्किंचनवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! अहं त्वं आदिक जो दृश्य भ्रांति है, सो कारण विना परमात्माते कैसे उदय हुई है? जिस प्रकार मैं समझौं तिसी

प्रकार मुझको बहुरि समझाओ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे राजजी ! जेता कछु कारणकार्य जगत् भासता है, तिसका उदय होना आदि परमात्माते सबही हुआहै, अर्थ यह जो संवेदनके फुरणेकारि इकट्ठेही पदार्थ भासिआये हैं, अरु सर्वदा सर्व प्रकार सर्वात्मा अजरूप अपने आपविषे स्थितहैं, हे रामजी ! यह सर्व शब्द अरु अर्थरूप कलना भासी है, सो ब्रह्मरूपहै, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, अरु ब्रह्मसत्ता सर्व शब्द अर्थकी कलनाते रहित अपने आपविषे स्थितहै, जैसे सुवर्णते इतर भूषण नहीं, अरु जलते इतर तरंग नहीं तैसे ब्रह्मते इतर जगत् नहीं, ब्रह्मस्वरूप है, हे रामजी ! ईश्वर जो आत्मा है, सो जगतरूपहै, जगत् ईश्वररूप है, जैसे स्वर्ण भूषणरूप है, भूषण स्वर्ण है, अर्थ यह जो स्वर्णविषे भूषणशब्द अरु अर्थकल्पित हैं, वास्तव नहीं, तैसे जगत् आत्माका आभासरूप है, वास्तवते कछु नहीं, हे रामजी ! जेता कछु जगत् है, सो ब्रह्मरूप है, ब्रह्मते इतर कछु नहीं; जैसे अवयवीते भिन्न अवयव नहीं होता, तैसे आत्माते अवयवी जेता कछुजगतहै, सो भिन्न नहीं, आत्माविषे संवेदनके फुरणेकारि तन्मात्रा फुरीहैं, आत्माविषे इनका उपजना समहुआ है, पाछे विभागकल्पना हुई है, जो तिनते भूत हुए हैं, इत्यादिक जगत्रूप कैसा है, सोआत्माते अन्य नहीं; जैसे शिलाविषे चितेरा भिन्न भिन्न पूतलीको कल्पता है. सो शिलारूपही है. इतर कछु नहीं, तैसे अहं त्वं आदिक जगत् चिद्घन आत्माविषे मनरूपीचितेरेने कल्पी है; सो चिद्घनरूपही है. इतर कछु नहीं; जैसे जलविषे तरंग स्थित होतेहैं; सो जलरूपही हैं, तरंगोंका शब्द अरु अर्थ जलविषे कोऊ नहीं. तैसे आत्माविषे जगत् स्थित है. अरु आत्मा जगत्के शब्द अरु अर्थते रहित हैं. हे रामजी ! जगत् परमपदते भिन्न नहीं; अरु परमपद जगत्विना नहीं, केवल चिद्रूपअपनेआपविषे स्थित है, अरु जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेदकछु नहीं, स्पंदअरु निस्पंद दोनों रूप वायुके हैं; अरु जब स्पंदरूप होता है, तब स्पर्शरूप होइकारि भासता है, अरु निस्पंद हुए स्पर्शनहीं भासता, तैसे जगत् अरु ब्रह्मविषे भेद कछु नहीं, अरु जब संवेदन किंचितरूप होताहै, तब जगत्रूप होइ भासता है; अरु संवेदनके निस्पंद हुएते जगत् नहीं भासता,

अरु आत्मसत्ता सदा एकरूपहै, हे रामजी ! जब संवेदन फुरणेते रहित होइकारि आत्मपदविषे स्थित होवै, तब संकल्परूप जगत् बहुरि भासै सो भी आत्मरूप भासे जैसे वायुको स्पंद निस्पंद दोनों रूप अपना आप भासता है, तैसे इसको भासता है, जैसे वायुविषे स्पंदतावायुरूप स्थित है. तैसे आत्माविषे जगत् आत्मरूपकारि स्थितहै, जैसे तेज अणुका प्रकाश मंदिरविषे होता है. तब बाहर भी प्रकाश प्रगट होताहै, तैसे जब केवल संवित् मात्रविषे संवेदन स्थित होता है; तब फुरणेविषे भी संवित्मात्रही भासता है ॥ हे रामजी ! जैसे रस तन्मात्राविषे जल स्थित होता है, तैसे आत्माविषे जगत् स्थित है, जैसे गंधतन्मात्राके अंतर संपूर्ण पृथ्वी स्थित है,तैसे किंचनरूप जगत् आत्माविषे स्थितहै, सो आत्मसत्ता निराकार चिन्मात्ररूप है, उदयअरुअस्तते रहित अपने आपविषे स्थित है, प्रपंच भ्रम तिसविषे कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनको दृढीभूत जगत् भी आकाशरूप भासता है, अरु जो अज्ञानी हैं, तिनको असत्रूप जगत् भी सत्रूप होइ भासता है॥ हे रामजी ! जैसा जैसा संवेदन चित्तसंवित्विषे फुरताहै, तैसा तैसा रूप जगत् होइ भासता है; यह जेते तत्त्व हैं. अरु तन्मात्रा हैं सो सब चित्तसंवेदनके फुरणेकारि स्थित हुएहैं; जैसाजैसा तिसविषे फुरणा होता है, सोई होइ कारि भासता है, काहेते जो आत्मा सर्वशक्तिमान् है, जिस जिस पदार्थका फुरणा फुरता है, सोई अनुभवविषे सत्रूप होइ कारि भासता है; अरु जो कछु पंचज्ञानेंद्रिय छठा मनका विषय होताहै, सो सब असत्रूप है, अरु आत्मसत्ता इनते अतीत है, अरु विश्वभी क्या रूप है, जैसे समुद्रविषे तरंग होतेहैं, तैसे आत्माविषे जगत् स्थित है; जैसे तेज अरु प्रकाश अनन्यरूपहैं, तैसे आत्मा अरु जगत्अनन्यरूप हैं, जैसे स्तंभविषे शिल्पी पुतलियां देखता है, जैसे मृत्तिकाके पिंडविषे कुलाल वर्तन देखता है, जैसे भींत ऊपर चितेरा मूर्ति रंगमें लिखताहैसो अनन्यरूप है,तैसे परमात्माविषे सृष्टि अनन्यरूप है, हे रामजी ! जैसे मरुस्थलविषे मृगतृष्णाका जलअरुतरंग असत्ही सत्रूप हो भासताहै तैसे आत्माविषे असत्रूप जगत् त्रिलोकी भासती है, जब चित्तसंवित्-

विषे संवेदन फुरताहै, तब जगत् भासताहै. अरु जब संवेदन नहीं फुरता तब जगत् भी नहीं भासता अरु जगत् कछु ब्रह्मते भिन्न नहीं;जैसे बीज अरु वृक्षविषे कछु भेद नहीं; जैसे क्षीर अरु मधुरताविषे भेद नहीं;जैसे मिरच अरु तीक्ष्णताविषे कछु भेद नहीं; जैसे समुद्र अरु तरंगविषे कछु भेद नहीं; जैसे वायु अरु स्पंदविषे कछु भेद नहीं; तैसे आत्माअरु जगत्विषे कछु भेद नहीं; जैसे अग्निविषे उष्णता स्वभाविक स्थित है, तैसे निराकार आत्माविषे सृष्टि स्वाभाविकही स्थितहै ॥ हे रामजी! यह जगत् ब्रह्मरूपी रत्नका किंचन है;जैसा जैसा किंचन होता है,तैसातैसा होइकरि भासता है, जो किंचनरूप है,अकारण हुए जो पदार्थ अकारक होता है, अरु जिस अधिष्ठानविषे भासता है, तिससों अनन्यरूपहोता है, अधिष्ठानते भिन्न उसकी सत्ता नहीं होती, तैसे यह जगत् आत्माविषे अनन्यरूप होता है,कछु उपजा नहीं; परंतु संवेदनके फुरणेकरि भासता है, जेता जगत् है, अरु वासना है, तिनका बीज संवेदन है,इसकारिजगत्भ्रम है, ताते संवेदनके अभावका पुरुषार्थ करौ,जब संवेदनका अभाव होवैगा, तब जगत्भ्रम नष्ट हो जावैगा, अरु वास्तवते न कछु उपजा है न कछु नष्ट होता है,सर्व शांतरूप चिद्घन ब्रह्मशिला घनकी नाईं अपने आपविषे स्थितहै॥हेरामजी! चित्तपरमाणुविषे चैत्यताकरिकेअनेक सृष्टि भासतीहैं,तिन सृष्टिविषे जो परमाणु हैं,तिन परमाणुओंविषे अंतर और सृष्टि स्थित है,तिनकी संख्या कछु नहीं;जैसे जलविषे तरंग अनेकहोते हैं; कईगुप्तरूप होते हैं, कई प्रगट होते हैं, सो जलकी शक्तिरूपहैं;जैसे जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति अवस्था जीवोंके अंतर स्थित हैं; कईगुप्त हैं; कई प्रगटरूप हैं॥हेरामजी! जबलग इसका संवेदन द्वैतसाथमिला हुआहै, तबलग सृष्टिका अंत नहीं,जब चित्त उपशम होवैगा, तबजगत्भ्रममिटि जावैगा,जब कछु भी भोगोंविषे वृत्ति न उपजै तब जानिये कि,आत्मपद प्राप्त होवैगा, यह श्रुतिका निश्चय है ॥ हे रामजी! ज्यों ज्योंइसका ममत्व दूर होत है, त्योंत्यों बंधनोंते मुक्त होता है; जब अहंभाव जो जीवत्वभाव है तिसका निर्वाण होता है, तब जन्मोंकी जो परंपरा संपदा है, सो भी नष्टहो जाती हैं, केवल शुद्धरूपही होता है

तब तिन पुरुषोंको स्थावरजंगमरूप जगत् सब आत्मरूपहोता है, जैसे समुद्रको तरंग बुद्बुद सब अपना आपरूप भासताहै, तैसे ज्ञानवान्को सब जगत् आत्मरूप भासता है ॥ हे रामजी! शुद्ध आत्मसत्ताविषे जो संवेदन फुरा है, सो आपको ब्रह्मारूप जानत भया है, तिस ब्रह्माने आगे भावना करिकै संकल्परूप नानाप्रकारका जगत् रचा है, तिसको असत्यरूप अंतर अनुभव करता भया है, तिसविषे कहूँ निमेष विषे अनेक युगोंका अंत भासता है, कहूं अनेक युगोंका अंत भासता है, कहूंअनेक युगोंविषे निमेषका अनुभव होता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जगत्किंचनवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४५.

दैवशब्दार्थविचारवर्णनम्.

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! चिद् परमाणुविषे जो निमेष होता है, तिसके लाखवें भागविषे जगतोंके अनेक कल्प फुरते हैं, तिन सृष्टिविषे जो परमाणु हैं, तिनविषे सृष्टि फुरती हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग फुरते हैं, सो जलरूप हैं; तरंग शब्द अरु तिसका अर्थ भ्रमरूप है, तैसेही आत्माविषे भ्रमरूप अनेक सृष्टि फुरतीहैं; जैसे मरुस्थलविषे मृगतृष्णाकीनदी चलती दृष्ट आती है, तैसे आत्माविषे यह जगत् भासता है, जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है, जैसे गंधर्वनगर भासता है, जैसेकथाकाअर्थचित्तविषे आय फुरता है, जैसे संकल्पपुर भासता है,तैसे जगत् असत्रूपसत्हो भासता है ॥ राम उवाच ॥ हे ज्ञानवानोंविषे श्रेष्ठ! जिस पुरुषको विचार द्वारा सम्यक् ज्ञान हुआ अरु निर्विकल्प आत्मपदको प्राप्ति भई है, तिसको देह अपने साथ कैसे भासता है? अरु देह उसकी कैसेरहती है. अरु देह प्रारब्धकरिकै उसका शरीर कैसे रहताहै ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आदि जो ब्रह्मशक्ति विषे संवेदन फुराहै, तिसका नाम नीति हुआ है, तिसविषे जो संभावना धारी है कि,यहपदार्थ ऐसेहोवैगा अरु इसकारि होवैगा, एता काल रहैगा, सो अनेक कल्पपर्यंत ऐसेही होताहै ?

जेता काल उसने धारा है, तेता कालका नाम नीति है, महा सत् भी तिसको कहते हैं; महाचेतना भी तिसको कहते हैं, महाशक्ति भी तिसको कहते हैं, महाअदृष्ट, महाकृपा भी तिसको कहते हैं; महाउद्भव भी तिसको कहते हैं, अर्थ यह जो अनंत ब्रह्मांडोंकी उपजानेहारी हैं, जैसा फुरणा दृढ हुआ है, तैसा रूप होइकरि स्थित है; जो यह स्थावररूपहै, यह जंगमरूप है, यह दैत्य है, यह देवता है, यह नाग है, यह नागिनीहै, ब्रह्माते आदि तृण पर्यंत जैसे तिसविषे अध्यास है, तैसे ही तिस प्रकार स्थित है, स्वरूपते ब्रह्मसत्ताका व्यभिचार कदाचित् नहीं हुआ, सदा अपने आपविषे स्थित है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं; तिनको सब ब्रह्मस्वरूप भासता है, अरु जो अज्ञानी हैं, तिनको जगत् अरु नीति भी भिन्न भासती हैं, ज्ञानवान्को सब अचल ब्रह्मसत्ताही भासती है; अज्ञानीको चलनरूप जगत् भासता है, सो जगत् कैसा है, जैसे आकाशविषे वृक्ष भासता है, जैसे शिलाके उदरविषे मूर्ति होती है, सो शिलारूपही होती है, तैसे यह जगत् ब्रह्मविषे है, जो ज्ञानवान्हैं, तिनको सर्ग अरु निमित्त सब ज्ञानरूपी भासता है; जैसे अवयवीके अवयव अपना रूप होता है, तैसे ब्रह्मसत्ताके अवयव ब्रह्म नित्य सर्गादिक अपना रूप है, हे रामजी! तिस नीतिको दैव कहते हैं, जो कछु किसीको प्राप्त होता है, सो तिस दैवकी आज्ञाकरिकै प्राप्त होता है, काहेते जो आदि यही निश्चय धराहै, जो इस साधन करि यह फल इसको प्राप्त होवेगा; जैसा साधनहोवै तैसा फल अवश्य सर्वको दैवते प्राप्त होता है, इसकारणते नीतिको दैव कहते हैं, और दैवको नीति कहते हैं॥ हे रामजी! यह पुरुष जो कछु पुरुषार्थ करता है, तिसके अनुसार फलको प्राप्त होता है, इस कारणते इसका नाम नीति है, तिसहीका नाम पुरुषार्थ है, तुम जो मुझको दैव अरु पुरुषोंका निर्णय पूछा अरु मैंने कहा, तिसकी तुम पालना करौ. इसका नाम पुरुषार्थहै, तिसका जो फल तुमको प्राप्त हुआ, तिसका नाम दैव है॥ हे रामजी! जो पुरुष ऐसे दैवपरायण हुआ, जो मुझको दैव भोजन करावैगा, सो करौंगा, अरु मौन धारिकै अक्रिय होइ बैठे, तिसको जो आइ प्राप्त होवे सोभी नीति है, अरु जो पुरुष भोगोंके निमित्त पुरुषार्थ

करता है, सो भोगोंको भोगेगा, अरु अनेक शरीरोंको मोक्षपर्यंत धारैगा यह भी नीति है॥ हे रामजी! जो आदि संवित्‌विषे संवेदन फुरिकरि भवितव्यता धरीहै, तिसही प्रकार स्थित है, तिसका भी नाम नीति है, तिस नीतिके उल्लंघनको ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक भी समर्थ नहीं, सब तिनके अनुसार स्थित हैं, तौ और कैसे उल्लंघ सकैं? हे रामजी! जो पुरुष पुरुषार्थको त्याग बैठे हैं, तिनको फल नहीं प्राप्त होता, यह भी नीति है, अरु जो पुरुष फलके निमित्त पुरुषार्थ करता है, तिसको फल प्राप्त होता है, यह भी नीति है, अरु जो प्रयत्नको त्यागिकरि निष्क्रिय होइ बैठे हैं, अरु मनकरि विषयोंकी चित्तमें वासना करते हैं, सो निष्फलही रहते हैं, अरु जो पुरुष और कर्तव्यको त्यागिकरि चित्तकी वृत्तिमें शून्य दैवपरायण हो रहे हैं, विषयोंकी चित्त वासना नहीं करते, तिनको सफलताही होती है. काहेते कि; फुरणेते रहित होना भी पुरुषार्थ है, यहनीति है, जो अर्थ चितवणेवालेको भी नहीं प्राप्त होता अरु अयाचकको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी! सोई पुरुषार्थ सफल है, जो आत्मबोधके निमित्त होवै, जब ब्रह्मसत्ताकी ओर तीव्र अभ्यास होता है, तब परमपदकी अवश्य प्राप्ति होती है, जब परमपद पाया, तब सब जगत् चिदाकाश रूप होइ भासताहै, नीति आदिक जो विस्तार कहाहै, सो सर्व भ्रमरूप है ब्रह्मसत्ताही ऐसे होइ भासती है, जैसे पृथ्वीविषे रससत्ताही तृण, वेलि, गुच्छे, फूलरूप होइकरि स्थित है, तैसे नीति आदिक सब जगत् होइ करि ब्रह्मही स्थितहै, और वस्तु कछु नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणे दैवशब्दार्थविचारवर्णनं नाम पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४६.

बीजावतारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो कछु तुझको भासता है, सो सर्व प्रकार सर्वकाल सर्व ओरते ब्रह्मतत्त्व सर्व ओर करि सर्वात्मा होइकरि स्थित भया है, सो अनत आत्मा है जब तिसविषे चित्‌शक्ति प्रगट होती

है, अर्थ यह जो शुद्ध चेतनमात्रविषे अहंफुरणा होता है, तब आगे जगत् भासता है, कहूं उपजता भासता है, कहूं नष्ट होता भासता है, कहूं हुल्लास भासता है, कहूं चित्त भासता है, कहूं अकिंचन भासताहै, कहूं प्रगट, कहूं अप्रगट भासताहै; नानाप्रकारका जगत् है, जहां जैसा तीव्र अभ्यास होता है, तहाँ तैसा होइकारि भासता है, काहेते जो आत्मा सर्व शक्ति सर्वरूप है, जैसा जैसा फुरणा तिसविषे दृढ होता है, सोई रूप होइकारि भासता है ॥ हे रामजी! यह जो नानाप्रकारकी शक्तियां कहीं हैं, सो वास्तव आत्माते इतर कछु नहीं, बुद्धिमानोंने समुझावनेके निमित्त नानाप्रकारकी विकल्पजाल कही है, आत्माविषे विकल्पजाल कोऊ नहीं, जैसे जलतरङ्गविषे कछु भेद नहीं, जैसे सुवर्णभूषणोंविषे भेद कछु नहीं, जैसे अवयवी अरु अवयवविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु शक्तिविषे भेद नहीं ॥ हे रामजी ! एक संवित् है, एक संवेदन है, संवित् जो है, सो वास्तव है, अरु संवेदन कल्पना है, जब संवित्‌विषे चिन्मात्र संवेदन फुरता है, तब वह जैसे चेतता जाता है, तैसे आगे होइकारि स्थित होता है, शुद्धचिन्मात्र संवित्‌विषे अंतर अरु बाहिर कल्पना कोऊ नहीं, जब स्वभावते किंचनरूप संवेदन होता है, तब आगे कछु देखता है, तिस देखनेकारि नानाप्रकारके आकार भासते हैं, सो और तौ कछु नहीं, सर्व ब्रह्महीहै ॥ हे रामजी । शक्ति अरु शक्तिमान्‌विषे भेद अज्ञानी देखते हैं, अरु अवयवीअवयव भेद भी कल्पते हैं, परमार्थते भेद कछु नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है; तिसके आश्रय संकल्पजाल आभास होती है; जिस संकल्पकी तीव्रता होतीहै, सो सत् होवै अथवा असत् होवै, परंतु तिसहीका भान होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बीजावतारो नाम षट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥४६॥

सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४७.

बीजांकुरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जो सर्वगत देव परमात्मा महेश्वरहै; सो स्वच्छ अनुभवपरमानंदरूपहै; आदि अंततेरहित है; तिसशुद्ध चिन्मात्र

परमानंदते प्रथम जीव उपजा नहीं; तिसते चित्त उपजा; चित्तते आगे जगत् उपजा है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! अनुभव परिणामकरिके जो शुद्ध ब्रह्मतत्त्व सर्वव्यापी द्वैतते रहित स्थित है, तिसविषे तुच्छरूप जीव कैसे सत्यताको पाता भया है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ब्रह्म सदाभास है, अर्थ यह जो असत्रूप जगत् जिसकरि सत् भासता है, अरु स्वच्छ है, अर्थ यह जो आभासरूपी जगत्ते भी रहित है, अरु बृहत् अर्थ यह जो बड़ा है, सो बडा भी दो प्रकारका है, अविद्याकृत जगत्कारि जो बडा है, सो अविद्याकी बडाई है, मिथ्या है, अरु ब्रह्म बडाई है, सो सर्वात्मकरूप है, सो सर्व देश सर्व काल सर्व वस्तुसों पूर्ण है, अविद्याकृत देशकालवस्तुते रहित निराकार है, सो ज्ञानीका विषय है, ताते बृह है, अरु परम चेतन है, अरु भैरव है, अर्थ यह जो जिसके भयकरि चंद्रमा अरु सूर्य अग्नि वायु जलअपनीमर्यादामें चलतेहैं, परमानंद अविनाशी है, सर्व ओरते पूर्ण समहै, शुद्ध है, अचिंत्यहै, अर्थ यह जो वाणीकरि कहा नहीं जाता, ऐसा परम शांत पद है, क्षोभते रहित चिन्मात्र है, ऐसी जो आत्मसत्ता ब्रह्म है, तिसका जो स्वभावसंपत् है, तिसका नाम जीव है, अर्थ यह जो शुद्ध चिन्मात्रविषे अहं ऐसे जो फुरणा है, तिसका नाम जीव है, तिस अनुभवरूपी दर्पणविषे अहंरूपी प्रतिबिंब फुरणेका नाम जीव कहते हैं, सो जीव अपने शांतपदको त्यागकी नाईं स्थित होता है, सो चिदात्माही फुरणेद्वारा आपको जीवरूप जानता भया है, जैसे समुद्रही द्रवता करिके तरंगरूप होता है; समुद्रतरंगविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्मही जीवरूप है, ब्रह्म अरुजीवविषे भेद कछु नहीं, जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद कछु नहीं, जैसे बर्फ अरु शीतलताविषे भेद कछु नहीं; तैसे ब्रह्म अरु जीवविषे भेद कछु नहीं ॥ हे रामजी! चित्तरूपी जो आत्मतत्त्व है, सो अपने स्वभाववशते मायाकरिके संवेदनसहित जीवरूप कहते हैं, सो जीव आगे फुरनेकरिके बडे विस्तारको धारता है, जैसे इंधनकरिके अग्निके बहुत अणु होते हैं, अरु बडे प्रकाशको प्राप्त होता है, तैसे जीव फुरणेकरि जगत्रूपको प्राप्त होता है, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, सो नीलत

कछु भिन्न वस्तु नहीं, तैसे अहंभावकरिकै ब्रह्मविषे जीवरूप भासता है, अरु अहंकृतिको अंगीकार करिकै कल्पित रूपकी नाईं स्थित होताहै; जैसे घनकी शून्यताकरिकै आकाशमें नीलता भासतीहै, तैसे स्वरूपके प्रमाद करिकै देशकालवस्तुके परिच्छेदसहित अहंकाररूपी जीव भासते हैं, वास्तवते चिदाकाशही चिदाकाशविषे स्थित है, जैसे वायुकरिकै समुद्र तरंगरूप होता है, तैसे संवेदनके फुरणेकरि आत्मसत्ता जीवरूप होतीहै,सो जीव चैत्योन्मुखत्वताकरिकै एती संज्ञाको पाताहै,चित्त कहिये, जीवकहिये मन बुद्धि अहंकार माया प्रकृतिसहित सब तिसहीके नामहैं, सो जीव सकल्प करिकै पंचभूत तन्मात्राकोचेतता भया,तब तिन पंच तन्मात्राके आकारते अणुरूप होइकरि स्थित भया; तिसते अनउपजेही उपजेकी नाईं स्थित भये, अरु भासने लगे, बहुरि वही चित्तसंवेदन सो अणु अंगीकारकरिकै जगत्को रचता भया, जैसे बीजते सत् अंकुर वृक्ष होता है, तैसे संवेदन विस्तारको पावत भया, प्रथम एक अंडरूपी होकरि स्थित भया, तिस अडको फोडत भया तब तिसविषे जगत् भासने लगा, जैसे गंधर्वनगर भासता है, जैसे स्वप्न-सृष्टि भासती है, तैसे जगत् भासने लगा, तिसते भिन्न भिन्न देह अरु भिन्न भिन्न नाम कल्पे, जैसे मृत्तिकाकी सेना बालक कल्पता है, तिसके भिन्न भिन्न नाम रखता है, तैसे स्थावर जंगम आदिक नाम कल्पना-करी यह पृथ्वी, यह जल, अग्नि, वायु, आकाश हैं, तिन पांचों भूतोंकी सृष्टि संकलपते उपजत भई ॥ हे रामजी ! आदि ब्रह्मते जो जीव फुरे तिसका नाम ब्रह्मा है, सो ब्रह्मा आत्माविषे आत्मरूप होइकरि स्थित है, तिसते आगे क्रमकरिकै जगत् हुआ है, जैसे वह चेतताहै, तैसा होइकरि स्थित होता है, जैसे समुद्रविषे द्रवताकरिकै तरंग होतेहैं, तैसे ब्रह्मविषे चित्त स्वभावकरिकै जीव होता है, सो जीव जब प्रमादकरिकै अनात्म भावको धरनेलगा तब कर्मोंकरि बध्यमानहोने लगा, जैसे जल जब दृढ जडताको अंगीकार करता है, तब बर्फरूप होइकरि पत्थरसमान होताहै, तैसे जीव जब अनात्मविषे अभिमान करताहै,तब कर्मोंके बंधनमें आताहै हे रामजी ! कर्मोंका बीज संकल्प है, अरु संकल्प जीवते फुरताहै,अरु

जीवत्व भाव इसको तब होता है, जब शुद्ध चेतनमात्र स्वरूपते इसका उत्थान होता है, उत्थान अर्थ यह, जब प्रमाद होताहै तब इसको प्रमाद जीवत्वभाव होता है, जब जीवत्वभाव होता है, तब आगे अनेक संकल्पकल्पना फुरती हैं; तिन संकलपकल्पनाते कर्म होते हैं; कर्मोंते जन्ममरण आदिक नानाप्रकारते विकार होते हैं; जैसे बीजते अंकुर पत्र होते हैं; आगेते फूल फल टास होते जाते हैं, तैसे संकल्प कर्मोंते नानाप्रकारके विकार होते हैं, जैसे जैसे कर्म जीव करता है, तिनके अनुसार जन्म मरण अधः ऊर्ध्वको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! कर्म नाम मनके फुरणेका है; फुरणेका नाम चित्तहै; अरु फुरणेका नाम कर्म है; फुरणेका नाम दैव है; तिसहीकारि इसको शुभ अशुभ जगत् प्राप्त होता है, सबकाआदिकारण ब्रह्म है, तिसते प्रथम मन उत्पन्न भया है; तिसही मनने संपूर्ण जगत् की रचना करी है, जैसे बीजते अंकुर होता है, बहुरि पत्र फूल फल टास होते हैं, तैसे ब्रह्मते मन अरु जगत् उपजा है ॥ इति श्रीयोगवा० उत्प० बीजांकुरवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टाचत्वारिंशः सर्गः ४८.

जीवविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आदिकारण ब्रह्मते मन उत्पन्न भयाहै; सो मन संकल्परूप है, अरु मनकारि संपूर्ण जगत् भया है, अरु मन आत्माविषे मनस्त्वभावकारिकै स्थित है, तिस मनने भाव अभावरूपी जगत् कल्पा है, जैसे गंधर्वकी इच्छाकरिकै गंधर्वनगर होता है, तैसे मनकारि जगत् होता है ॥ हे रामजी ! आत्माविषे द्वैतभेदकी कल्पना कछु नहीं, इस मनकारिकै ऐसी संज्ञा भई है, ब्रह्म अरु जीव अरु मन अरु माया कर्म जगत् द्रष्टा सब भेद मनकारि हुए हैं, आत्माविषे भेद कोऊ नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग उछलते हैं, अरु बडे विस्तारको धारते हैं, तैसे चित्तरूपी समुद्रविषे संवेदनकारिकै नानाप्रकारका जगत् विस्तारको पाता है, सो असतरूपी जगत् है, काहेते कि, स्थिर नहीं रहता,

सदा चलरूप हैं, अरु जो अधिष्ठान स्वरूपभावकरि देखिये,तौ सत्‌रूप हैं, ताते द्वैत कछु न हुआ जैसे स्वप्नका जगत् सत्‌असत्‌रूप चित्तकरिकै भासता है, तैसे सत्‌असत्‌रूप यह जगत् भासता है, सो वास्तव कछु उपजा नहीं, चित्तके भ्रमकरिकै भासता है, जैसे इंद्रजालकी बाजीविषे नानाप्रकारके वृक्ष औषधि भासते हैं, सो भ्रममात्र हैं, तैसे यह जगत् भ्रममात्र है ॥ हे रामजी ! यह जगत् दीर्घ कालका स्वप्न है, मनके भ्रम करिकै सत् होइ भासता है,जैसे स्थाणुविषे पुरुष असम्यक् ज्ञानकरिकै भासता है, अरु चोर जानके भयको प्राप्त होता है, तैसे जीव अनित्य-भावको प्राप्त होइकरि शोकको करता है,जैसे बालक भ्रमकरिकै परछाँई विषे भूत कल्पता है; अरु भयको प्राप्त होता है तैसे यह पुरुष चित्तके संयोगकरि द्वैतको कल्पिकै भयको प्राप्त होता है, जैसे विचार कियेते बैतालका भय नष्ट होता है,तैसे आत्मज्ञानकरिकै भय आदिक विकार नष्ट हो जाते हैं ॥ हे रामजी ! आत्मा अनादि दिव्यस्वरूप है, अरु अंशांशीभावते रहित है,शुद्ध चैतन्यरूप है, जब वह चेतन संवित् चैत्यो-न्मुखत्व होता है, तब चित्त, अर्थ यह जो चेतनताका लक्षण है तिसते आगे जीवकल्पना होती है, तिस जीवविषे अहंभाव होता है जो मैं हौं; जब अहंभाव हुआ, तब तिसके चित्त फुरता है, चित्तते इंद्रियें होती हैं, तिन इंद्रियोंते देहभाव होता है, तिस देह भ्रमकरि मलिन हुआ नरक स्वर्गबंध मोक्षकी कल्पना होती है,जैसे बीजते अंकुर पत्र फूल फल टास होते हैं; तैसे अहंभावते जगत् विस्तार होताहै. हे रामजी! जैसे देह अरु कर्मोंविषे कछु भेद नहीं, जैसे ब्रह्म अरु चित्तविषे कछु भेद नहीं, जैसे चित्त अरु जीवविषे कछु भेद नहीं, जैसे चित्त अरु देहविषे कछु भेद नहीं,जैसे देह अरु कर्मोंविषे कछु भेद नहीं,जैसे जीव अरु ईश्वरविषे भेद नहीं, तैसे ईश्वर अरु आत्माविषे भेद नहीं ॥ हे रामजी ! सर्व ब्रह्मस्वरूप है, द्वैत कछु नहीं ॥ इति श्रीयोग० उत्पत्तिप्रकरणे जीवविचारो नाम अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ४९.

संश्रितोपशमयोगवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो नानात्व भासता है सो वास्तव एक ब्रह्मस्वरूप है, चैत्यताकरिकै एक सो अनेक रूप हो भासता है,जैसे एक दीपते अनेक दीप होतेहैं, तैसे एक परब्रह्म अनेकरूप हो भासता है. हे रामजी ! यह असत्‌रूपी जगत् जिसविषे आभास है, तिस आत्मतत्त्वका जब पदार्थज्ञान होता है, तब चित्तविषे जो अहंभाव है, सो नष्ट हो जाता है, तिस अहंभावके नष्ट हुएते सब शोक नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! यह पुरुष चित्तरूपी है, अरु चित्तविषे जगत् हुआ है, जब चित्त नष्ट होवैगा, तब जगत्भ्रम भी नष्ट हो जावैगा, जैसे अपने चरण विषे चर्मकी जूती पहिरते हैं, तब सर्व पृथ्वी चर्मकरि लपेटी भासती है; अरु ताप कंटक मिट जाते हैं, तैसे जब चित्तको शांति प्राप्त होती है; तब सर्व जगत् शांतरूप होता है. जैसे केलेका स्तंभ होता है, तिसविषे पत्रोंते अन्य सार कछु नहीं निकसता; तैसे सब जगत् भ्रममात्र है,और सार कछु नहीं निकसता, हे रामजी ! एता भ्रम चित्तकरिकै होताहै, जो बाल अवस्थामें क्रीडा करता फिरता है, बहुरि यौवन अवस्थाको धारता है, परंतु विषयोंको सेवता है, वृद्ध अवस्थामें चिंताविषे जर्जरीभाव होता है, बहुरि मृत्युको प्राप्त होता है, कर्मोंके अनुसार नरक स्वर्गको चला जाता है ॥ हे रामजी ! यह सब मनका नृत्य है, मनही पड़ा भ्रमता है, जैसे नेत्र दूषणकरिकै आकाशविषे चद्रमा भासता है; तैसे अज्ञानकरिकै जगत्भ्रम भासताहै; जैसे मद्यपानकरिकै वृक्ष भ्रमते भासते हैं,तैसे चित्तके संयोग भ्रमकरिकै जगत् द्वैत भासता है, जैसे बालक लीला करिकै भ्रमता है; तब सब जगत्को चक्रकी नाईं भ्रमता देखता है, तैसे चित्तके भ्रमकरिकै यह जीव जगतभ्रमको देखताहै ॥हे रामजी!जब चित्त द्वैतका नहीं चेतता तब यह द्वैतभ्रम मिट जाताहै, जबलग चित्तसत्ता फुरती है, तबलग नानाप्रकारका जगत् भासता है॥शांतिकोनहीं प्राप्त होता, अरु जब घन चेतनताको प्राप्त होता है,तब शांतिको प्राप्त होताहै, अरु

जगत्भ्रम मिटि जाता है, जैसे पपैया बकता है, और शांतिमान् नहीं होता; अरु जब घन वर्षाको प्राप्त होता है, तब बकनेते शांत होता है, तैसे जब यह महाचेतन घनताको प्राप्त होता है, तब शांतिमान् होता है, व्यवहारविषे होवे अथवा तूष्णीं होरहे, सदा शांतिमान् होताहै॥ हे रामजी! जब चित्तकी चेतनता फुरती है, तब जगत् भ्रम नाना प्रकारके विकार देखता है, अरु भ्रम करिकै ऐसे देखता है, जो मैं उपजा हौं, अब बड़ा भया हौं; मरौंगा, इत्यादिक विकार असत्‌रूप अपने विषे जानता है, अरु स्वरूपते चेतन ब्रह्मते अनन्य है। जैसे वायुअरु स्पंदविषे कछु भेद नहीं तैसे ब्रह्म अरु चेतनताविषे कछु भेद नहीं. जब वायु स्पंदरूप होताहै, तब स्पर्श करिकै भासता है, तैसे चेतनता मिटती नहीं, अरु ब्रह्मकी चेतनता होवै, तब जगत्भ्रम मिटि जाता है; केवल ब्रह्मसत्ता ही पड़ी भासती है. जैसे जेवरीके अज्ञानकरिकै सर्पभ्रम होता है,अरु जेवरीके यथार्थ जाननेते सर्पभ्रम मिटिजाता है, तब जेवरी पड़ी भासती है, तैसे ब्रह्मके अज्ञानते जगत् भ्रमकरिकै भासता है; जब चित्तसों दृढ चैत्यता भासती है. तब भ्रमका पदार्थज्ञानहोता है.तब जगत्भ्रम मिटि जाता है, केवल ब्रह्मसत्ता भासती है ॥ हे रामजी ! दृश्यरूपी इसको व्याधिरोग लगा है,तिस रोगका नाशकर्त्ता संवित् मात्रहै; जबलग चित्त बहिर्मुख होइकरि दृश्यको चेतता है तबलग शांत नहीं होता, अरु जब चित्त सर्ववासनाको त्यागिकरि अंतर्मुख अपने स्वभावविषे स्थितहोवैगा तब तिसही कालमें मुक्तिरूप शांत होवैगा, इसविषेसंशयकछुनहीं, जैसे जेवरीके दूरसों देखने करि सर्प भासता है, अरु जब निकट होइकरि देखै है, तब सर्पभ्रम मिटि जाता है, जेवरीही भासती है,तैसे आत्माका विवर्तरूप जगत् है, जब बहिर्मुख होइके देखता है,तब जगत्ही भासता है, जब अंतर्मुख होइके देखताहै, तब जगत्भ्रम मिटिजाताहै, आत्मही भासता है ॥ हे रामजी! जिस जिसविषे अभिलाषा होवै,तहां तिसको त्यागि दे, जैसे निश्चयकरि मुक्ति प्राप्त होतीहै, सो त्यागनेविषे यत्नकछु नहीं.महात्मा जो पुरुष हैं,सो प्राणोंको तृणकी नाईं त्यागिदेतेहैं; अरु बडे दुःखको सहि रहते हैं, तुझको अभिलाषा त्यागनेविषे क्या कठि-

नता है ॥ हे रामजी ! आत्माके आगे अभिलाषाही आवरण है, अभिलाषाके होते आत्मा नहीं भासता है, जैसे बादलोंके आवरणकरिकै सूर्य नहीं भासता, जब बादलोंका आवरण नाश होता है, तब सूर्य भासता है, तैसे अभिलाषाके निवृत्त हुए आत्मा भासता है, ताते जो कछुअभिलाषा उठै तिसको त्याग अरु निरभिलाषा होइकरि आत्मपदविषे स्थित होइ, अरु प्रकृत आचार जो कछु देह इंद्रियोंकरि ग्रहण करना, अरु जो कछु त्याग करना होवै, तिसको त्याग करौ, अरु देहविषे ग्रहणत्यागकी बुद्धि न होवै ॥ हे रामजी ! जो तू संपूर्ण दृश्यकी इच्छा त्यागेगा तब तुझको प्रत्यक्ष आत्मपद भासैगा, जैसे हाथविषे बिल्वीफल प्रत्यक्ष होता है, जैसे नेत्रोंके आगे प्रतिबिंब प्रत्यक्ष भासताहै, तैसे अभिलाषाके त्यागते आत्मपद तुझको प्रत्यक्ष भासैगा, अरु सब जगत् भी आत्मरूप भासैगा, जैसे महाप्रलयविषे सब जगत् जलमय भासता है और कछु दृष्टही नहीं आता, तैसे आत्मपदते इतर तुझको कछु न भासैगा, आत्मतत्त्वको न जानना, इसीका नाम बंधन है, अरु आत्मपदका जानना इसीका नाम मोक्ष है, और मोक्ष कोऊ नहीं॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे संश्रितोपशमयोगो नाम एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥

पंचाशत्तमः सर्गः ५०.

सत्योपदेशवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! मन क्योंकरि उत्पन्न हुआ है ? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ब्रह्म अनंतशक्ति है, तिसविषे अनेक प्रकारका किंचन होता है, जहां जहां जैसी जैसी शक्ति फुरती है, तैसा तैसा रूप होइकरि भासता है; जब शुद्ध चिन्मात्र सत्ता चेतनविषे फुरती है, जो अहं अस्मि, तब तिस फुरनेकरि जीव कहाताहै; सो चित्तशक्ति संकल्पका कारण भासती है, जब दृश्यकी ओर फुरतीहै, तब जगत् दृश्य होइकरि भासता है, बहुरि नानाप्रकारके कार्य कारण होइ भासता है ॥ राम उवाच ॥ हे मुनिविषे श्रेष्ठ ! जो इसप्रकार है तौ दैव किसका नाम है ?

अरु कर्म क्या है ? अरु कारण किसको कहते हैं ? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! फुरणा अफुरणा दोनों चिन्मात्रसत्ताका स्वभाव है जैसे फुरणा अफुरणा दोनों वायुका स्वभावहै, परतु जब फुरता है, तब आकाशविषे स्पर्श होइ करि भासता है; जब चलनेते रहित होता है, तब शांत होजाता है, तैसे शुद्ध चिन्मात्रविषे चैत्यताका लक्षण जो है, अहं अस्मि. अर्थ यह जो मैं हौं, तब तिसका नाम स्पंदबुद्धीश्वर कहते हैं, तिसकरि जगत् दृश्यरूप हो भासता है तिस जगत् दृश्यते रहित होना तिसको निस्पंद कहतेहैं चित्तके फुरणेकरि नानाप्रकार जगत् होइ भासता है, अरु चित्तके अफुर हुए जगत्भ्रम मिटि जाताहै, नित्य शांत ब्रह्मपदकी प्राप्ति होती है. हे रामजी ! जीव अरु कर्म अरु कारण यह सब चित्त स्पंदके नाम हैं, अरु चित्तस्पंदते अनुभव भिन्न नहीं, अरु अनुभव ही चित्तस्पंद हुएकी नाईं भासता है, जीव कर्म कारणका बीजरूप चित्त स्पंद है, चित्तस्पंदकारिके आगे दृश्य होकारि भासता है, बहुरि चिदाभासद्वारा देहविषे अहंप्रतीति होती है, तिस देहविषे स्थित होइकारि चित्त संवेदन दृश्यकी ओर संसरता है; सो ससरना दो प्रकारका है, एक बडा है, एक अल्प है; तिनको ससरणेविषे अनेक जन्म व्यतीत होते हैं, अरु किन्हींको एक जन्म होताहै, आदिही फुरकर स्वरूपविषे स्थित है; तिनको प्रथम जन्म होता है; अरु जो आदि उपजिकारि प्रमादी हुएहैं; सो फुरिकारि दृश्यकी ओर चले जाते हैं; तिनको बहुतेरे जन्म होते हैं, चित्तके फुरणेकारि ऐसा अनुभव करता है, पुण्यक्रिया करिके स्वर्गको जाते हैं. पापक्रिया करि नरकको जातेहैं, इसप्रकार दृश्यभ्रमको देखतेहैं; अज्ञानकरिके बंधनविषे रहते हैं; जब ज्ञानकी प्राप्ति होती है, तब मोक्षका अनुभव करता है, सो बडा संसरना है; अरु जो एकही जन्म पायकरि आत्माकी ओर आते हैं सो अल्प संसरना है ॥ हे रामजी ! जैसे स्वर्णही भूषणरूपको धारता है, तैसे संवेद नहीं काष्ठ लोष्ट आदिक रूप होइके भासता है; इस चित्तके संयोगकरि अज अविनाशी पुरुषको नानाप्रकारके देह प्राप्त होते हैं, अरु जानता है कि मैं उपजा हौं, अब जीता हौं, बहुरि मर जाऊंगा, इत्यादिक भ्रमको देखता हूं; जैसे नौकाविषे बैठे हुएको भ्रमकारि तटके वृक्ष भ्रमते दृष्टि आते हैं, तैसे भ्रमकरिक

अपनेविषे जन्मादि अवस्था भासती है, आत्माके अज्ञान करिकै जीवको आदि कल्पना फुरती है; जैसे मथुराके राजा लवनको स्वप्नमें चंडालका भ्रम भया था, तैसे चित्तके फुरणे करिकै यह जीव जगत्भ्रमको देखतेहैं॥ हे रामजी ! यह सब जगत् मनके भ्रमकरिकै पडा भासता है, शिव जो परम तत्त्व है, सो चिन्मात्र है, तिसविषे जब चैत्योन्मुखत्व होता है, जो मैं हौं तिसका नाम जीव है, जैसे सोमजलविषे कछुक द्रवता होती है, तिसविषे चक्र फुरते हैं बहुरि तरंग होते हैं; तैसे ब्रह्मरूपी सोमजल है तिसविषे जीवरूपी चक्र फुरते हैं, बहुरि चित्तरूपी तरंग उदय होते हैं; बहुरि सृष्टिरूपी बुद्बुदे होते हैं; उपजिकरि लीन होते हैं ॥ हे रामजी ! चेतन फुरणेद्वारा जीवकी नाईं भासता है, जैसे समुद्रही द्रवता करिकै तरंगरूप होइ भासता है; चित्त चैत्यके संयोगकरि जीव कहाता है, तिस जीवते जब संकल्पका फुरणा होता है; तब मन कहाताहै; अरु संकल्प निश्चयरूप होताहै, तब बुद्धि होकरि स्थित होता है अरु जब अहंभाव होता है, तब अहं प्रतिकार कहाता है; तिस अहभावको पाइकरि तन्मात्राकी कल्पना होती है. पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश यह सूक्ष्मभूत होते हैं तिनके आगे जगत होता है ॥ हे रामजी ! असत् रूपी चित्तके संसरणे करिकै जगत्रूप होइ भासता है, जैसे नेत्रदूषणकरिकै आकाशविषे मुक्ता माला भासती है, जैसे भ्रममात्र गंधर्व नगर भासता है, जैसे स्वप्नभ्रमकरि स्वप्नजगत् भासता है, तैसे चित्तके संसरणे करिकै जगत्भ्रम भासता है ॥ हे रामजी ! शुद्ध आत्मा नित्य तृप्त शांतरूप है, अरु शम अपने आपहीविषे स्थितहै, तिसविषे चित्त सवेदनने जगत्को रचा है, तिस जगत्को भ्रमकरिकै सत्यकी नाईं देखता है, जैसे स्वप्नसृष्टिको भ्रमकरि देखता है, तैसे यह जगत् फुरनेकरि सत्य भासता है ॥ हे रामजी ! मनके संसरनेका नाम जाग्रत् है, अरु अहंकारका नाम स्वप्न है, अरु चित्त जो सजातीयरूप चेतनेवाला है, तिसका नाम सुषुप्ति है, अरु चिन्मात्रका नाम तुरीयपद है, जब शुद्ध चिन्मात्रविषे अत्यंत परिणाम होवै, तिसका नाम तुर्यातीत पद है, तिसविषे स्थित हुआ बहुरि शोकवान् कदाचित् नहीं होता, तिस ब्रह्मसत्ताते सब उदय

होते हैं; तिसविषेही सब लीन होते हैं; अरु वास्तवते न कोऊ उपजा है; न कोऊ लीन होता है; चित्तके फुरणेकारि सब भ्रम भासता है॥ जैसे नेत्रदूषणकारि आकाशविषे मुक्तामाला भासती है, तैसे चित्तके फुरणे-कारि यह जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! जैसे वृक्षके बढ़नेको आकाश ठौर देता है, जेती कछु बीजकी सत्ता होवै तेता आकाशविषे बढता जावै तैसे सबको आत्मा ठौर देता है, अकर्तारूप भी संवेदनकरिकै कर्त्ता भासता है हे रामजी ! जैसे लोहा निर्मल किया हुआ आरसीकी नाईं प्रतिबिंबको ग्रहण करता है. तैसे आत्माविषे संवेदनकरिकै जगत्का प्रतिबिंब होता है. अरु वास्तवते जगत् भी कछु दूसरी वस्तु नहीं; जैसे एक बीजही पत्र फूल फल टास होइ भासता है, तैसे आत्मा संवेदन करिकै नानारूप जगत् होइ भासता है; जैसे पत्र फूल वृक्षते भिन्न नहीं; तैसे अबोधरूप जगत् भी बोधरूप आत्माते भिन्न नहीं; अरु जो ज्ञानवान् है, तिसको अखंड सत्ता भासती है, अरु अज्ञानीको भिन्न भिन्न नामरूप सत्ता भासती है, जैसे समुद्रही तरंग बुद्बुद होइकारि भासताहै, जैसे बीजही पत्र फूल फल टास होइकारि भासता है; जो मूर्ख देखता है तौ तिनके नामरूप सत् मानता है, अरु ज्ञानवान् देखिकै एक रूपही जानताहै,तैसे जो मूर्ख अज्ञानीहैं;सो भिन्न भिन्न नामरूप जगत्को जानतेहैं. अरु ज्ञानवान्को एक ब्रह्मसत्ता अनंत भासतीहै; और जगत्भ्रम उनको कोऊ नहीं भासता है ॥ रामउवाच॥ बड़ा आश्चर्य बडा आश्चर्य है, जो असत् रूपी जगत् सत् होइकारि भासता है, अरु बडे विस्तार-कारि स्पष्ट भासता है. अरु यह जगत् ब्रह्मका आभास है; अनेक तन्मात्रा तिसके जल अरु बूँदोंकी नाईं हैं, अरु अविद्याकरके फुरती हैं, ऐसे भी मैं श्रवण किया है ॥ हे मुनीश्वर ! यह कैसे फुरणा बहिर्मुख होती है, अरु अंतर्मुख कैसे होती है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार दृश्यका अत्यंत अभाव है, अनहोते दृश्यके फुरणेकारि अनुभव होता है, शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्म सत्ताविषे फुरणेकारि जीवत्व हुआ है, सो जीवत्व असत् है, अरु सत्की नाईं होता है, अरु जीव ब्रह्मके साथ अभिन्न है, फुरणे करिकै भिन्नकी नाईं स्थित होता है, तिस जीवविषे संकल्प कलना

होती है, तब मनरूप होके स्थित होता है, अरु स्मरणकरिकै चित्त होता है, निश्चयकरिकै बुद्धि होती है; अहंभावकरिकै अहंकार होता है. बहुरि काकतालिकी नाईं चिद्अणुविषे तन्मात्रा फुर आती है, जब शब्द श्रवणकी इच्छा भई तब श्रवणइंद्रिय प्रगट भई. जब देखनेकी इच्छा भई तब नेत्र इंद्रिय प्रगट भई, गंध लेनेकी इच्छा करिकै नासिका इंद्रिय प्रगट भई, जब स्पर्शकी इच्छा भई तब त्वचा इंद्रिय प्रगट भई, जब रस लेनेकी इच्छा भई तब रसना इंद्रिय प्रगट भई, इसप्रकार पांचों इंद्रियें प्रगट भईं. भावनाकरिकै सत्ही असत्की नाईं भासने लगी है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार आदि जीव हुए हैं, तिसकी भावनाकरिकै अंतवाहक शरीर होय आये हैं, चलते भासते हैं, तौ भी अचलरूप हैं, ताते जेता कछु जगत् भासता है, सो सब ब्रह्मरूप है,इतर कछु नहीं ॥ प्रमाता भी ब्रह्म है, प्रमाण भी ब्रह्म है, प्रमेयभी ब्रह्म है अरु संवेदन ब्रह्म करिकै अनेकरूप नानाप्रकार भासते हैं, जैसा जैसा संवेदन फुरता है, तैसा तैसा रूप होइकारि भासता है, जब दृश्यको चेतता है,तब नानाप्रकारका दृश्य भासता है, अरु जब अंतर्मुख ब्रह्मको चेतता है, तब ब्रह्मरूप होइकारि भासता है ॥ हे रामजी ! दृश्य कछु उपजा नहीं, आत्मा सदा अपने आपविषे स्थित है, तौ दृश्यका असंभव हुआ तब बंधन किसको कहिये ? अरु मोक्ष किसको कहिये? विचार किसका करिये ? सर्व कल्पनाका अभाव है; यह जो तेरा प्रश्न है, तिसका उत्तर सिद्धांतकालविषे होवैगा; यहां नहीं बनैगा, जैसे कमलफूलोंकी माला जो होती है सो अपने कालविषे बनती है, समयविना शोभा नहीं देती, तैसे तेरे प्रश्न सिद्धांतकालविषे शोभा पावैंगे, समयविना सार्थ शब्द भी निरर्थक होता है,इस कारणते कहिये जो सिद्धांतकालविषे शोभा पावैंगे, सिद्धांतकालविना यह प्रश्न शोभा नहीं पाता. हे रामजी ! जेते कछु पदार्थ हैं,तिनका फल भी समय पायके होता है, समयविना नहीं होता, अब पूर्व प्रसंग सुन; हे रामजी!ब्रह्मविषे चैत्योन्मुखत्व करिकै वह आदि जीव आपको पिता माता जानत भया, जैसे स्वप्नविषे आपको कोऊ देखै तैसे ब्रह्माजी आपको जानता भया, सो ब्रह्मा प्रथम ॐशब्दको उच्चारता भया, तिस

शब्दतन्मात्राते चारों वेद देखता भया, तिसते अनंतर मनोराज्य करिकै सृष्टिको रचता भया, तब असत्‌रूप सृष्टि भावना करिकै सत्य हो भासने लगी, जैसे स्वप्नविषे सर्प भासते हैं, जैसे गंधर्वनगर भासि आवता है, तैसे असत्यरूप सृष्टि सत्य भासने लगी ॥ हे रामजी ! ब्रह्म सत्ताते जैसे ब्रह्मा आदिका उपजना भया है, तैसे और जीवों कीट आदिका उपजना भया है. जगत्‌का कारण संवेदन है, संवेदन भ्रमकरिकै जीवोंको जगत् भासता है, तिनको भौतिक शरीरविषे जो अहंप्रतीति भई है, तिसकरि अपने निश्चयके अनुसार शक्ति भईहै, ब्रह्माविषे ब्रह्माकी शक्तिका निश्चय भया है, चींटीविषे चींटीकी शक्तिका निश्चय भया है ॥ हे रामजी ! जैसी जैसी वासना संवित्‌विषे होतीहै, तिसके अनुसारही अनुभव होता है शुद्ध चिन्मात्रविषे जो चैत्योन्मुखत्व हुआ है, तिसका नाम जीव हुआ है, तिसविषे जो ज्ञानरूप सत्ता है. सो पुरुष है, तिसविषे जो फुरणा हैं सो कर्म है, जैसे जैसे फुरता है, तैसे तैसे भासता है. हे रामजी! आत्मसत्ताविषे जो अहं हुआ है, तिसका नाम चित्त है, तिसते आगे जगत् रचा है, सो भी अविचार सिद्ध है, विचार कियेते नष्ट हो जात है, जैसे अविचार करिकै अपने परछाँई विषे भूत पिशाच कल्पता है तिसते भय उत्पन्न होता है. विचार कियेते पिशाच अरु भय दोनों नष्ट हो जाते हैं॥ हे रामजी ! तैसे आत्म विचारते चित्त अरु जगत् दोनों नष्ट हो जाते हैं॥ हे रामजी ! ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे चित्त कल्पना कोऊ नहीं अरु प्रमाता, प्रमाण प्रमेय भी ब्रह्मते इतर कछु नहीं, तौ द्वैतकी कल्पना कैसे होवै। जैसे शशेके शृंग असत् हैं, तैसे आत्माते द्वैतकल्पना असत्यहै ॥ हे रामजी ! यह ब्रह्मांड भावनामात्र है, जिसको सत्य भासता है, तिसको बंधनका कारण है, जैसे घुराण अपना गृह बनाती है, सो अपने बंधनका कारण होता है, तिसविषे आप फँसि मरती है, तैसे जगत्‌को सत्य मानते हैं; तिसको अपना माननाही बंधन कर्ता है, तिसकरि जन्म मरणको देखता है, अरु जिसको जगत्‌का असत्य निश्चय हुआ है, तिसको बंधन नहीं होता, उसको उल्लास है, अरु हे रामजी ! अनुभवसत्ता सबकीअपनी आप है, तिसविषे जैसा जैसा निश्चय किया तिसको अपने अनुभवके अनुसार

पदार्थ भासते हैं, कोऊ निमेषविषे कल्पका अनुभव करते हैं; अरु वास्तवते जगत् उपजाही नहीं, जगत्का उपजना भी मिथ्या है, बढना भी मिथ्या है, रस भी मिथ्या है, रस लेनेवाला भी मिथ्या है, शुद्ध ब्रह्म सर्वगत नित्य अद्वैत सदा अपने आपविषे स्थित है; परंतु अज्ञान करिकै शुद्ध भी अशुद्ध भासता है; सर्व जगत् भी परिच्छिन्न भासता है, ब्रह्म भी अब्रह्म भासता है, नित्य भी अनित्य भासता है; अद्वैत भी द्वैत सहित भासता है ॥ हे रामजी ! अज्ञान करि ऐसा भासता है, जैसे जल अरु तरंगविषे भेद मूर्ख मानतेहैं परंतु भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद अज्ञानी देखते हैं, जैसे सुवर्ण अरु भूषणोंविषे भेद अज्ञानी देखते हैं, जैसे जेवरीविषे सर्प मूर्ख देखते है तैसे ब्रह्मविषे नानात्व मूर्ख देखते हैं, ज्ञानीको सब चिदाकाशहैं ॥ हे रामजी ! जब आत्म सत्ताविषे अनात्मरूप दृश्यकी चैत्यता होती है, तब कल्पना उत्पन्न होती है, सो कल्पना मनरूप होइकै स्थित होती है; तिसते अनंतर अहंभाव होता है, बहुरि तन्मात्राकी कल्पना होती है बहुरि शब्द अर्थकी कल्पना होती है, इसीप्रकार चिद्सत्ताविषे जैसी जैसी चैत्यता फुरती है; तैसा तैसा रूप भासने लगता है, सत् असत् पदार्थ वासनाके वशते फुरि आते हैं, जैसे स्वप्नसृष्टि फुरि आती है; सो अनुभवरूपही होती है, तैसे यह जगत् फुरि आया है, सो अनुभवरूप है, ताते सृष्टिविषे भी चिन्मात्र है, अरु चिन्मात्रहीविषे सृष्टि है, सर्वकी सत्तारूपी अंतर्बाह्य ऊर्ध्व अधः चिन्मात्रही है. प्रमाता, प्रमाण प्रमेय, सर्वपद चिन्मात्रहीविषे धारे हैं, नित्य उपशांतरूप है, समस्त जगत्की सत्तातिसहीकारि होती है, सो एकही सम है, अरु तुरीया अतीत पद है; नितही स्थित है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठ उत्पत्तिप्रकरणे सत्योपदेशो नाम पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपंचाशत्तमः सर्गः ५१.

विषूचिकाव्यवहारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रसंगऊपर एक पुरातन इतिहास है महाप्रश्नोंका समूह है सो श्रवण कर—एक महाश्याम काजलके

पर्वतकी नाईं कर्कटी नाम राक्षसी हिमालय पर्वतके शिखरके ऊपर होती भई, विषूचिका भी तिसका नाम हुआ, अथिर बिजलीकी नाईं तिसके नेत्र, अरु अग्निकी नाईं बडी जिह्वा तिसकी चमत्कार करै, बडे नख अरु ऊँचा शरीर जिसका; जो भोजन करि तृप्त कदाचित् न होवै, जैसे वडवाग्नि तृप्त नहीं होता, तैसे तृप्ति न होवै, तब उसके मनविषे उपजा कि. जंबूद्वीपके संपूर्ण जीवोंको भोजन करौं तब तृप्तहोऊं अन्यथा तृप्ति नहीं होती, अरु आपदा उद्यम कियेते दूर होती है, ताते उद्यम करौं, जो अखंड चित्त होइकारि तप करौं ॥ हे रामजी! ऐसे विचार करिकै एकांत हिमालय पर्वतकी कंदराविषे एक टंगकरि स्थित भई, दोनों भुजा ऊर्ध्वको धारी अरु नेत्र आकाशकी ओर किये, मानो मेघको पकडती है, शरीर अरु प्राण स्थित करत भई, मूर्त्तिकी नांईं हो गई, शीत अरु उष्णके क्षोभते रहित भई, पवनकरि शरीर जर्जरीभाव हुआ जब इस प्रकार सहस्र वर्ष व्यतीत भये, दारुण तप किया, तब ब्रह्माजी आये तब राक्षसीने देखके मनकरि नमस्कार किया, अरु मनविषे विचार किया जो मेरे वरके निमित्त आयेहैं, तब ब्रह्माजीने आयकर कहा हे पुत्रि! तुझने बडा तप किया है, उठ खडी हो, जो कछु चाहती है सो वर माँग ॥कर्कट्युवाच ॥ हे भगवन्! मैं लोहेकी नाईं वज्रसूचिका होऊं, जो जीवोंके हृदयविषे प्रवेश करि जाऊँ. हे रामजी! जब ऐसे मूर्ख राक्षसीने कहा, तब ब्रह्माजीने कहा, ऐसेही होवै, तेरा नाम भी प्रसिद्ध विषूचिका होवैगा ॥ हे राक्षसी! जो दुराचारी जीव होवैं, तिनके हृदयविषे तू प्राणवायुके मार्गकरि जाय प्रवेश करैगी; अरु जो गुणवान् तेरेको निवृत्त करनेके निमित्त "ॐ" मंत्रको पढैंगे, जो हिमालयके उत्तरशिखरविषे कर्कटी नाम राक्षसी विषूचिका है; सो दूर होवै, अरु दुःखी चंद्रमाके मंडलविषे चितवै कि, अमृतके कुंडविषे बैठा हौं. अरु राक्षसी हिमालयके शिखरको गई, ऐसे चिंतवन करै, इस मंत्रको पढ, शुचि पवित्र होकरि, तब तुम तिसको त्याग जाना, यह मंत्र है, तिनविषे तू प्रवेश न करि सकैगी ॥ हे रामजी! जब इसप्रकार ब्रह्माजी कहिकै आकाशको उडे, तब इंद्रके अरु सिद्धोंके मार्ग साथ गये, अरु वह मंत्रजो ब्रह्माजीने

कर्कटीको कहा था, सो सिद्धोंने श्रवण किया था, तिन्होंने तिस मंत्रको प्रसिद्ध किया, तब कर्कटीका शरीर सूक्ष्म होने लगा, जैसे संकल्पका पहाड संकल्पके क्षीण हुएते क्षीण हो जाता है,तैसे क्रमकरिकै प्रथम जो मेघवत् आकार था; सो घटिकारि वृक्षवत् हो गया, फिर पुरुषरूप, फिर हस्तमात्र, फिर प्रादेशमात्र, फिर लोहेकी सुईकी नाईं सूक्ष्म हो गई, जैसे संकल्पका तंतु होता है, तैसे हो गई ॥ हे रामजी! ऐसे रूपको कर्कटी धारती भई, तिसको देखि मूर्ख अविचारी पुरुष तृणकी नाईं शरीरको त्यागते हैं, अरु जो पुरुष परस्परको विचारते हैं, सो पाछेते कष्ट नहीं पाते, जो पूर्वापर विचारते रहित हैं, सो पाछे कष्ट पाते हैं; अनर्थ होइ-करि औरोंको कष्ट देते हैं, एक पदार्थको भला जानिकै तिसके निमित्त यत्न करते हैं, न धर्मकी ओर देखते हैं, न सुखकी ओर देखते हैं, इस प्रकार मूर्ख राक्षसीने भोजनके निमित्त बडे गंभीर शरीरको त्यागकरि तुच्छ शरीरका अंगीकार किया; सो एक शरीर सूक्ष्म हुआ, दूसरा पुर्यष्टक भया; सूक्ष्म शरीर जाको इंद्रियां ग्रहण न कर सकैं, तैसे शरीरसे कहूँ विषूचिका प्रवेश करै, कहूँ पुर्यष्टक साथ जाय प्रवेश करै, प्राणवायु साथ प्रवेश करिकै दुःख देवै, प्राणोंको विपर्यय करै, तब प्राणी कष्टको पावैं, रक्त आदिक जो रस हैं, तिनका पान करैं, एक बूंदकारि उदरपूर्ण हो जावै; परंतु तृष्णा निवृत्ति न होवै, अरु शरीरते बाह्य निकसै, तब भी कष्ट पावै, वायु चलै तिसकरि गर्तविषे गिरै, चिकडविषे गिरै, चरणोंके तले आवै, देशोंविषे रहै, घास तृणोंविषे रहै, जो नीच पापी जीव है, तिसको कष्ट देवै, अरु जो गुणवान् होवैं, तिनको कष्ट देनेको समर्थ न होवै, जो मंत्र पढै, तिसते निवृत्त हो जावै, जो आप किसी छिद्रविषे गिरै, तब जानै कि, बडे कूपविषे गिरी हौं ॥ हे रामजी! मूर्खताकरिकै एते कष्टको पाती भई ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इसप्रकार जब वसिष्ठजीने कहा, तब सूर्य अस्त भया, सायंकालका समय हुआ, सब सभा परस्पर नमस्कारकरिकै स्नानको गई, विचारसंयुक्त रात्रिको व्यतीतकरिकै सूर्यकी किरणैं जब उदय भईं, तब बहुरि आयके बैठे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे विषूचिकाव्यवहारवर्णनं नाम एकपंचाशत्तमः सर्गः ५१ ॥

द्विपंचाशत्तमः सर्गः ५२.

सूचीशरीरलाभवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इसप्रकार प्राणियोंके मारनविषे केतेक वर्ष इसको व्यतीत भये, तब उसके मनविषे विचार उत्पन्न भया, कि, बडा कष्ट है, बडा कष्ट है, यह विषूचिका शरीर मुझको कैसे प्राप्त भया है, मैं मूर्खता करिके यह वर ब्रह्माजीसों मांगा था, मूर्खता बडे दुःखको प्राप्त करती है, कैसा मेघकी नाईं मेरा शरीर था, जो सूर्यादिकको मैं आच्छादि लेती थी, मंदराचल पर्वतकी नाईं मेरा उदर कहां गया, वडवाग्निकी नाईं मेरी जीभ कहां गई, जैसे कोऊ अभागी पुरुष चिंतामणिको त्यागि देवै, अरु काचको अंगीकार करै, तैसे मैंने बडे शरीरको त्यागिकै तुच्छ शरीरका अंगीकार किया, कैसा तुच्छ है, जो एक बूंदकारि भी तृप्त हो जाता है; परंतु तृष्णा पूरी होती नहीं, उस शरीर साथ मैं निर्भय विचरती थी, यह शरीर पृथ्वीके कणके साथ भी दब जाता है अब मैं बडे कष्टको पाती हौं अब मैं मृतक होऊं तब छूटौं, परंतु मांगा मृत्यु भी हाथ नहीं आता, ताते मैं बहुरि उस शरीरके निमित्त तप करौं, वह कौन पदार्थ है, जो उद्यम कियेते हाथ न आवै ॥ हे रामजी! इस प्रकार पूर्वके शरीरके निमित्त तप करनेको समर्थ भई, तब हिमालय पर्वतके वन निरंजन स्थानविषे एक पदके आधार स्थित भई, मुख ऊर्ध्वको करिकै तप करने लगी ॥ हे रामजी! जब पवन चलै सो इसके मुखमें फल मांस जलके कणके राखै, परंतु वह अंतर ग्रहण न करै, मुखको मूँदि लेवै, पवन देखिकै आश्चर्यमान होवै कि, जो मैं सुमेरु आदिकको भी चलायमान किया है; परंतु इसका निश्चय चलायमान नहीं होता, मेघके वर्षाकारि भी चिकडविषे दब गई, परंतु ज्योंकी त्यों रही, मेघके बडे शब्दकारि भी चलायमान नहीं भई ॥ हे रामजी! इसप्रकार सहस्र वर्ष उसको व्यतीत भये, तब दृढ वैराग्यकरिकै उसका नाम चित्त निर्मल

भया, तब सब संकल्पके त्यागते तिसको परमपदकी प्राप्ति भई, अरु बडे ज्ञानका प्रकाश उदय हुआ, परब्रह्मका तिसको साक्षात्कार हुआ, तिसकरि परम पावनरूप भई, तब चित्तसूची होत भई, अर्थ यह जो चेतनविषे उसका एकत्व भाव हुआ, तिसके तपकरि सप्त लोक तपायमान हुए, तब इंद्रने नारदजीसों प्रश्न किया कि, ऐसा तप किसने कियाहै, जिसके तपकरि लोक जलने लगे हैं, तब नारदने कहा, हे इंद्र! सात सहस्र वर्ष कर्कटी नाम राक्षसीने बडा दारुण तप किया है, तिसकरिसूचिका भई थी, तिसकरि बहुत कष्ट पाया अरु लोकोंको कष्ट दिया; जैसे विराट् आत्माने सवविषे प्रवेश किया है, जैसे चित्तशक्तिने सबविषे प्रवेश कियाहै, तैसे सब देहविषे प्रवेश कियाहै, परंतु जहां मंत्रजाप होवै, ताते निवृत्त हो जावै, अरु जहां मंत्रजाप न होवै तिनके अंतर प्रवेश करिकै रक्त मांस भोजन करै, परंतु तृप्त न होवै; मनविषे तृष्णा रहै, सूक्ष्म शरीरकरि धूडविषे दबी जावै, बहुत कष्टको पाइकै विचार किया कि, उद्यमकरि सब कछु प्राप्त होता है, ताते पूर्वके शरीरके निमित्त बहुरि एकांत स्थानविषे तप जाइ करौं, तब एक गीधपक्षी वहां आन बैठा कछु भोजन करने लगा, तिसकी चंचूके मार्गसों विषूचिका अंतर चली गई,तब वह पक्षी कष्ट पाइके उड्या, वह विषूचिका उसकी पुर्यष्टकाके साथ मिलिकै उसको प्रेरिकै हिमालय पर्वतकी ओर ले चली; जैसे वायु मेघको ले जाता है, तैसे हिमालय पर्वतके वनमें ले गई, वहां इस गीधने छर्द करि डारी; जैसे योगीश्वर संवेदनको त्यागिकै निर्विकल्प पदविषे जाता है, तैसे छर्दको डारिकरि पक्षी उड गया; जैसे पेंडोई विगार पोटको त्यागिकरि सुखी होता है, तैसे पक्षी छर्दको त्यागि करि सुखी भया,तब उसी शरीर साथ विषूचिका तप करने लगी॥ हे रामजी! इसप्रकार इंद्रने सुनिकरि उसको देखनेके निमित्त पवनको चलाया, तब पवन आकाशको छोडिकै भूतलविषे उतरा; लोकालोक पर्वतको लंघिकरि स्वर्णकी पृथ्वी लंघी,फिर समुद्र,फिर द्वीपको लंघिकै क्रमसों हिमालयके वनविषे सूक्ष्म शरीर साथ उसको देखत भया, पवन चल रहा, तप रहा, परंतु चलायमान न भई, प्राणवायुका भी भोजन न करै

तब पवनने भी आश्चर्यवान् होइकै कहा हे तपस्विनी ! तू किसनिमित्त तप करती है? हे राजी ! ऐसे जब पवनने कहा तब भी विषूचिका न बोली, पवनने कहा, भगवती ! विषूचिकाने बडा तप किया है, अब कोऊ कामना इसको नहीं ऐसे कहिकै उडा,क्रमसों इंद्रके पास गया, इंद्रने विषूचिकाके दर्शनके माहात्म्यकरि पवनको कंठ लगाया, मिला, आदर किया कि, तू बडे पुण्यवान्का दर्शन कर आया है, पवनने भी सब वृत्तांत कहि सुनाया अरु कहा ॥ हे राजन् ! उसके तपतेजकरि हिमालयकी शीतलता आच्छादि गईहै,तुम और ब्रह्माजी उसकेपास चलौ, नहीं तौ उसके तपकारि जगत् जलैगा ॥ हे रामजी! जब इसप्रकार पवनने कहा तब इंद्र पवन देवता गणोंसहित ब्रह्माजीके पास आये, प्रणामकरिकै बैठ गये, तब ब्रह्माजीने कहा कि, तुम्हारा वृत्तांत मैंने जानाहै ॥ हे रामजी ! ब्रह्माजी इंद्रको कहिकारि विषूचिका जिसका नाम सूची था, तिसके पास आय प्राप्त भये, तिसकोदेखके आश्चर्यवान् हुए कि, तृणकी नाईं विषूचिकाने सुमेरुते भी अधिक धैर्य घरा है, जैसे मध्याह्नका सूर्य तेजवान् होता है, तैसे इसका तपतेज भया है, अरु परब्रह्मविषे स्थित भई है, अरु जगत् इसका अब शांत हो गया है, ताते वंदन करने योग्य है॥ हे रामजी!जब आकाशतलविषे स्थित होइकारि ब्रह्माजीने कहा, हे पुत्रि कर्कटि ! तू अब वरको ग्रहण करु,तब विषूचिका विचार करिकै कहने लगी, जो कछु जानने योग्य था, सो मैं जाना है, अरु शांतरूप भई हौं, संपूर्ण संशय मेरे नष्ट हुए हैं, अब वर साथ मेराक्या प्रयोजनहैं यह जगत् अपने संकल्पते उपजा है, जैसे बालकको अपने परछाँईविषे वैतालबुद्धि होती है, तिसकरि भयको प्राप्त होता है, तैसे मैं स्वरूपके प्रमादकारि भटकती फिरी हौं, अब इष्ट अनिष्ट जगत्की मुझको इच्छा कछु नहीं, अब मैं निर्विकल्प शांतिविषे स्थित हौं ॥ हे रामजी ! ऐसे कहिकारि सूची तूष्णीं हो रही, तब ब्रह्माजी वीतराग प्रसन्नबुद्धि उसके भावको देखिकै कहत भये ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हे कर्कटि ! तू कछुक वरको ग्रहण करु, कछुक काल तुझे भूतलविषे विचरना है, भोगोंकोभोगिकै तू विदेहमुक्त होवैगी, अब तू जीवन्मुक्त होइकारि विचरैगी,नीतिके निश्च-

यको लंघि कोऊ नहीं सकता, अरु जब तू तप करने लगीथी, तब पूर्व देह पानेका संकल्प किया था, वह संकल्प अब सफल भया है, जैसे बीजविषे वृक्षका सद्भाव होताहै, सो काल पाय विस्तारको धरता है, तैसे तेरेविषे पूर्व शरीरका संकल्प था, सो अब प्राप्त होवैगा, उसी जैसा शरीर पाइकै तू हिमालयके वनविषे विचरैगी ॥ हे पुत्रि ! तेरे तौ अनिच्छित योग हुआ है, जैसे कोऊ छायाके निमित्त आंबफलके निकट आन बैठे अरु तिसको छाया भी प्राप्त होवै अरु फल भी प्रात होवै है, तैंने शरीरकी वृद्धिवास्ते यत्न किया था सो तृप्ति करनेहारा तेरे ताईं हुआ है, अरु तेरे ताईं ब्रह्मतत्त्व हुआ है, हे पुत्री ! तू राक्षसीशरीरविषे जीवन्मुक्त होइके विचरैगी,और जन्म तुझको नहीं आवैगा, इस जन्मविषे तू परम शांत रहैगी, अरु शरत्कालके आकाशकी नाईं निर्मल होवैगी, जब तेरी वृत्ति बहिर्मुख फुरैगी, तब सब जगत् तुझको आत्मरूप भासैगा, व्यवहारविषे समाधि रहैगी, अरु समाधिविषे भी समाधि रहैगी, पापी जीवको तू भोजन करैगी, न्यायबांधव तेरा नाम होवैगा, अरु विवेकपालक तेरा देह होवैगा, ताते पूर्वके शरीरको अंगीकार कर ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ऐसे कहिकरि ब्रह्माजी अंतर्धान होत भये, तब सूचीने कहा, ऐसेही होवै, हमको दोनों तुल्य हैं, तब जैसे बीजते वृक्ष होता है, तैसे क्रमकरि तिसका शरीर बढ गया, कैसे बड़ा जो प्रथम प्रादेशमात्र हुआ, फिर हस्तमात्र, फिर वृक्षमात्र, फिर योजनमात्र हो गई, जैसे संकल्पका वृक्ष एक क्षणते बढ जाता है, तैसे उसका शरीर बढ गया ॥ इति श्रीयोग० उत्पत्तिप्रकरणे सूचीशरीरलाभो नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ५३.

राक्षसीविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे वर्षाकालका बादल सूक्ष्मते स्थूल हो जाता है, तैसे सूची सूक्ष्म शरीरते बढ़ारि कर्कटी राक्षसी होती

भई, जैसे सर्प कंचुकीको त्यागिके फिर ग्रहण नहीं करता,तैसे राक्षसीने शरीरको आत्मतत्त्वके कारण नहीं ग्रहण किया;ऐसे शरीरको पायके बहुरि पद्मासन बांधिके संवित्सत्ताविषे निर्विकल्पपदविषे स्थित भई, षट्मास पर्यंत पहाडके शिखरकी नाईं समाधिस्थित रही, बहुरि प्रारब्ध वेगकारि जाग आई, तब वृत्ति बहिर्मुख भई, तब क्षुधालग आई, काहेते कि,शरीरके स्वभाव शरीरपर्यंत रहते हैं तब विचारत भई; जो विवेकी हैं,तिनका मैं भोजन न करौंगी, तिनके भोजनते मेरा मरना श्रेष्ठ है, जो न्यायकर भोजन करने योग्य है, तिसको करौंगी, जो शरीर नष्ट होवै तौ भी न्यायविना भोजन न करौंगी, देहादिक सब संकल्पमात्र हैं,मुझे न मरनेकी इच्छा है, न जीनेकी इच्छा है ॥ हे रामजी! ऐसे विचारिकारि सूची तूष्णीं होइ बैठी,राक्षसी स्वभावका त्याग किया,तब सूर्य भगवान्‌आकाशवाणी कारि कहत भया ॥ हे कर्कटि ! तू जाइके मूढ जीवोंका भोजन कर जब तू भोजन करैगी, तब उनका कल्याण होवैगा, मूढोंका उद्धार करनाभी संतोंका स्वभाव है, जो विवेकी पुरुष हैं, तिनका तुम भोजन नहीं करना,अरु जो तेरे उपदेशकारि ज्ञानको पावैं तिनकोभी न मारना अरु जो उपदेशकारि भी बोधात्मा न होवैंतिनका भोजन करना यह न्याय है, तब राक्षसीने कहा ॥ हे भगवन् ! तुमने अनुग्रह कारिके कहा है॥ इसीप्रकार मुझको ब्रह्माजीने भी कहा था ॥ हे रामजी ! ऐसे कहि कारि सूची हिमालयके शिखरतें उतरी, तहां किरात देश था, बहुत मृग पशु रहते थे, तिनविषे विचरने लगी, रात्रि भी श्याम, अरु राक्षसी भी श्याम, अरु तमाल वृक्ष भी श्याम, महा अंधकार भासै, जैसे भ्रमरेकी पीठ श्याम होती है. मानो कज्जलका मेघ आय स्थित भया है, ऐसी श्यामताविषे किरात देशका राजा मंत्री और वीर यात्राको निकले तिनको आते देखिकै राक्षसी विचारत भई कि, मुझे भोजन आय प्राप्त भया, यह मूढ अज्ञानी हैं, इनको देह अभिमान है, इन मूर्खोंके जीनेकारि कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता,न यह लोक सिद्ध होता है, न परलोक सिद्ध होता है, ऐसे जीवोंका जीना दुःखके निमित्त है. नंको यत्नकारि भी मारना योग्यहै, इन ो पालना अनर्थके निमित्त है,

पापको उदय करते हैं, आदि ब्रह्माकी नीति है कि, पापी मारने योग्य है; अरु जो गुणवान् हैं सो मारने योग्य नहीं ॥ कदाचित् गुणवान् होवे तौ मैं न मारौंगी, गुणवान् भी दो प्रकारके हैं, जो अमानी अदंभी अहिंसक शांतिमान् हैं, सो गुणवान् हैं, अरु पुण्यकर्म करनेवाले हैं; सो भी गुणवान् हैं, अरु महागुणवान् तौ ब्रह्मवेत्ता हैं, तिनके जीनेकरि बहुतका कार्य सिद्ध होता है, जो मेरा शरीर भोजन विना नष्ट हो जावे, तौ भी गुणवान्को न मारौंगी, जो उदार पुरुष है, सो पृथ्वीका चंद्रमाहै, तिसकी संगतिकरि स्वर्ग भी होताहै, अरु मोक्ष भी होताहै, जैसे संजीवनी बूटीकरि मृतक भी जीता है, तैसे संतोंके संगकरि अमृत होता है, ताते मैं प्रश्नकरिकै इनकी परीक्षा करौं, कदाचित् यह भी गुणवान् होवैं, यह कमलनयन ज्ञानवान् भासते हैं; जो ज्ञानवान् पुरुष हैं. सो तौ पूजने योग्य हैं, अरु जो मूर्ख हैं, सो दंड देने योग्य हैं; मैं इनको भोजन करौंगी ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीविचारो नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपंचाशत्तमः सर्गः ५४.

राक्षसीविचारवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तब वह राक्षसी उनको देखिकै मेघकी नाईं गर्जने लगी अरु कहत भई, अरे अटवीरूपी आकाशके चंद्रमा सूर्य, तुम कौन हौ, बुद्धिमान् हौ, अथवा दुर्बुद्धि हौ, अरु कहां ते आये हौ ? और तुम्हारा क्या आचार है? तुम तौ मुझको ग्रास आन प्राप्त भये हौ, अब मैं तुमको भोजन करौंगी ॥ राजोवाच ॥ अरे इस भौतिक तुच्छ शरीरको पाइकरि तू कहां रहती हैं; हमको देखके जो तू गर्जती है, सो तेरा शब्द हमको भ्रमकरिकै शब्दवत् भासता है. कछु हमको भय नहीं होता ॥ हे राक्षसी ! यह शरीर तेरा मायापात्र है, इस तुच्छ स्वभावको त्यागिकरि जो कछु तेरा अर्थ है सो कहौ, हम पूर्ण करि देवैंगे ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार राजाने कहा, तब तिनके चलावने निमित्त राक्षसी

प्रलयकालके मेघोंकी नाईं बहुरि बडा शब्द करत भई, जो पहाडभी चूर्ण हो जावै, तैसा शब्द करने लगी, सबदिशा शब्दकारि भर रहीं, ग्रीवाको अरु भुजा ऊर्ध्व कारिकै भयानक शब्द करै, बिजलीकी नाईं नेत्रोंको चमकावै तिसकी मूर्ति देखके राक्षस अरु पिशाच भी कंपायमान होवैं, ऐसे भयानक स्वभावको देखके भी दोनों धैर्यविषे रहे, तब मंत्रीने कहा, अरे राक्षसी! ऐसे शब्द तू व्यर्थ करती है. इनकारि तौ तेरा प्रयोजन कछु सिद्ध न होवैगा, इस आरंभको त्यागिके अपना अर्थ होवै सो कह, बुद्धिमान् जो पुरुष होते हैं, सो तिस अर्थको ग्रहण करते हैं, जो अपना विषयभूत होताहै, जो अपना विषयभूत नहीं होता तिसके निमित्त यत्न नहीं करते सो हम तेरा विषयभूत नहीं, तुझ जैसे सहस्रही मर्दन किये हैं ॥ हे राक्षसी! हमारे धैर्यरूपी पवनकारि तुझ जैसी अनंत मक्खियां तृणवत् उडती फिरती हैं, ताते नीच स्वभावको त्याग, स्वस्थचित्त होइके जो कछु अपना प्रयोजन है, सो प्रगट करु, बुद्धिमान् जो व्यवहार करते हैं; सो स्वस्थचित्त होइके करते हैं. स्वस्थ हुएविना व्यवहार भी सिद्ध नहीं होता, यह आदि नीति है, ताते स्वस्थचित्त होइकरिअपना वृत्तांत अर्थ कहि दे. हम तेरा अर्थ सिद्ध कारि देवैंगे हमारे पासते स्वप्नविषे भी कोऊ अर्थी व्यर्थ नहीं गया, सबका अर्थ हम पूर्ण करते हैं, ताते अपना प्रयोजन कहि दे ॥ हे रामजी! जब ऐसे मंत्रीने कहा, तब राक्षसी चितवत भई कि, यह उदारआत्मा दृष्टि आतेहैं, अरु उज्वल आचारवान् हैं, अपर जीवोंके समान नहीं यह बडे प्रकाशवान् हैं अरु धैर्यवान्हैं उदारता करिकै इनके वचन ज्ञानवानोंकेसाथ मिलते हैं, अब इनको जाना है, अरु इनने मुझको जाना है, मुझसों इनका नाश भी न होवैगा. काहेते कि, यह अविनाशी पुरुष हैं, ब्रह्मसत्ताविषे स्थितहैं ताते ज्ञानवान्हैं, ऐसा निश्चय ज्ञानविना और किसीका नहीं होता, परंतु कदाचित् अज्ञानीहोवैं तो बहुरि संदेहको अंगीकारकरिके पूछतीहौं; संदेहवान् होकारि बोधवान्को नहीं पूछतेहैं, सो भी, नीचबुद्धि है॥ हे रामजी! ऐसे मनविषे धारिकै बहुरि पूछत भई, तुम कौन हो अरु तुम्हारा आचार क्या है निष्पाप महापुरुषोंको देखिके मित्रभाव उपज आता है ॥ मंत्र्युवाच ॥

हे राक्षसी ! किरात देशका यह राजा है, अरु मैं इसका मंत्री हौं, अरु रात्रिविषे तुमसारिखे दुष्टोंको मारणेनिमित्त उठे हैं, रात्रि दिनविषे हमरा यही आचार है, जो जीव धर्मोंको मर्यादाको त्यागने हारेहैं, तिनका हम नाश करते हैं, जैसे इंधनोंको अग्नि नाश करता है, तैसे हमदुष्टोंकानाश करते हैं, ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन् !यह तेरा दुष्ट मंत्रीहै,जिस राजाका मंत्री भला नहीं होता, वह राजा भी भला नहीं, अरु जिस राजाका मंत्री भला होता है, तिसकी प्रजाभी शांतिमान् होती हैं, भला मंत्रीसो कहाताहै, जो राजाको न्यायविषे अरु विवेकविषे जोडै,जो राजाविवेकी होता है, तौ शांतात्मा होता है, जो राजा शांतिमान् हुआ तब प्रजा भी शांतिमान् होती है, सब गुणोंते जो उत्तम गुण है, सो आत्मज्ञान है जो आत्माको जानता है, सोई राजा है, अरु सोई मंत्री है, जिसविषे प्रभुता भी होवै, अरु समदृष्टि होवै; अरु जो प्रभुता अरु समदृष्टिते रहित है सो न राजा है, न मंत्री है ॥ हे राजन् ! जो तुम आत्मज्ञानवान् पुरुष हो, तौ तुम कल्याणरूप हो; अरु जो ज्ञानते रहित हौ, तब मैं तुमको भोजन करौंगी तुमको छूटनेका उपाय यही है; कि मैं प्रश्नका समूह पूछती हौं; तिनका उत्तर देना, जो प्रश्नका उत्तर दिया तब मेरे पूजनेयोग्य हौ; अरु जो मेरा अर्थ होवैगा सो कहौंगी; तुम पूर्ण करौगे, अरु जो प्रश्नोंका उत्तर न दिया, तब तुम्हारा भोजन करौंगी. इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीविचारो नाम चतुःपंचशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशत्तमः सर्गः ५५.

राक्षसीप्रश्नवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार राक्षसीने कहा, तब राजाने कहा तू प्रश्न कर हम तुझको उत्तर देवैंगे॥ राक्षस्युवाच हे राजन् ! यह एक अणु कौन है, जिसते अनेक प्रकार हुए हैं ? एकके अनेक नाम हैं, अरु वह कौन अणु है, जिसविषे अनेक ब्रह्मांड होते हैं ? जैसे समुद्रविषे अनेक बुद्बुदे उपजिकरि लीन होते हैं, तैसे एक अणुविषे

अनेकब्रह्मांड उपजते हैं, अरु लीन होते हैं, अरु वह आकाश कौन है, जो पोलते रहित है, अरु वह कौन अणु है, जो न किंचित् है, न अकिंचित् है? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे तेरा अहं अरु मेरा अहं फुरता है? अरु अहं त्वं एकविषे जनाते हैं, सो कौन है? अरु वह कौन है, जो चला जाता है, अरु कदाचित् नहीं चलता? अरु सो कौन है, जो तिष्ठत् भी है, अरु अतिष्ठत् भी है, अरु वह कौन है, जो पाषाणवत् है, अरु वह कौन है, जिसने आकाशविषे चित्र किये हैं; अरु वह अग्नि कौन है, जो दाहकशक्तिते रहित है, अरु अग्निरूप है, अरु वह अग्नि कौन है, जिसते अग्नि उपजा है? अरु वह कौन अणु है, जो सूर्य, अग्नि, चंद्रमा ताराके प्रकाशते रहित है, अरु अविनाशी है? अरु वह कौन है, जो नेत्रोंकरि देखा नहीं जाता, अरु सब प्रकाशोंको उत्पन्न करता है? अरु वह कौन ज्योति है, जो फूल फल वेलिको प्रकाशती है ? अरु जन्मांधको भी प्रकाशती है? अरु वह कौन अणु है, जो आकाशादिक भूतोंको उपजाता है? अरु वह कौन अणु है; जो स्वाभाविक प्रकाशमान है? अरु वह भंडार कौन है, जिसते ब्रह्मांडरूपी रत्न उपजते हैं? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे प्रकाश अरु तम इकट्ठे रहते हैं? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे सत् असत् दोनों इकट्ठे रहते हैं? अरु वह कौन अणु है, जो दूर भी अदूर है, अरु वह कौन अणु है, जिसविषे सुमेरु आदिक पर्वत समाय रहे हैं? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे निमेषमें कल्पहै, अरु कल्पमें निमेषहै? अरु वह कौनहै, जो प्रत्यक्षहै, अरु असतरूपहै? अरु वह कौनहै, जो सत्‌रूपहै, अरु अप्रत्यक्षरूपहै? और वह कौन चेतन है, जो अचेतन है? अरु वह कौन वायु है, जो अवायुरूप है? अरु वह कौन है, जो अशब्दरूप है? अरु वह कौन है, जो सर्व है? अरु निष्किंचित् है? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे अहं नहीं अरु है भी? अरु वह कौन है, जो अनेक जन्मोंके यत्नकरि पाता है? अरु पायके कहता है, कि कछु नहीं पाया अरु सब कछु पाया है? अरु वह कौन अणु है? जिसविषे सुमेरु आदिक तीनों भुवन तृणसमान हैं? अरु वह कौन है, जो अनेक योजनोंको पूर्ण करता है? अरु वह कौन अणु है,

जिसके देखनेकरि जगत् फुरि आता है ? अरु वह कौन अणु है; जो अणुताको त्यागेविना सुमेरु आदिक स्थूल आकारको प्राप्त होताहै? अरु वह कौन अणु है, जो बालका सौवाँ भाग सुमेरुते भी ऊँचा भया है ? अरु वह कौन अणु है; जिसविषे सब अनुभव स्थित हैं? अरु वह कौन अणु है, जो अत्यंत निस्वाद है? अरु आपही सब स्वाद होता है ? अरु वह कौन अणु है, जो अपने ढांपनेको समर्थ नहीं अरु सर्वको ढांपिरहा है ? अरु वह कौन अणु है; जिसकरि सब जीवते हैं ? अरु वह कौन अणु है, जिसका अवयव कोऊ नहीं; अरु सर्व अवयवको धारि रहा है, अरु वह कौन निमेष है, जिसविषे बहुतेरे कल्प स्थित हैं? अरु वह कौन अणुहै, जिसविषे अनंत जगत् स्थितहैं, जैसे बीजविषे वृक्ष होता है? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे बीजते आदि अरु फल-पर्यंत न उदय हुए भी भासते हैं ? अरु वह कौनहै; जो प्रयोजनतें अरु कर्तृत्वते रहित है, अरु प्रयोजनवान् अरु कर्तृत्ववान्की नाईं स्थित है ? अरु वह कौन द्रष्टा है, जो दृश्यको मिलिकारि दृश्य होताहै? अरु वह कौन है, जो दृश्यके नष्ट हुए भी आपको अखंड देखता है? अरु वह कौन है, जिसके जाननेते द्रष्टा, दर्शन, दृश्य तीनों लय हो जाते हैं ? जैसे सोनेको जाननेते भूषणभाव लीन हो जाते हैं, अरु वह कौन है, जिसते भिन्न कछु नहीं, जैसे जलते भिन्न तरंगोंका अभाव है, अरु वह एकही कौन है? जो देश, काल, वस्तुके परिच्छेदते रहित सत् असत्की नाईं स्थित है? अरु वह कौन अद्वैत है ? जिसते द्वैतभी भिन्न नहीं जैसे समुद्रते तरंग भिन्न नहीं, अरु सो कौन है? जिसकेदेखते सत्ता असत्ता सब लीन होता है, अरु वह कौन है, जिसविषे भ्रमरूपी अनंतजगत् स्थित हैं, जैसे बीजविषे वृक्ष होता है, अरु वह कौन है, जो सबके अंतरहै? जैसे वृक्षविषे बीज होते हैं, अरु वह कौन है, जो सत्ता असत्तारूपी आपही भया है, जैसे बीज वृक्षरूप है; अरु वृक्ष बीजरूप है; अरु वह अणु कौन है, जिसविषे तंतु भी सुमेरुकी नाईं स्थूल है, जिसके अंतर कोटि ब्रह्मांड हैं ॥ हे राजन् ! सअणुको देखा है, तौ कहौ ॥ हे राजा ! यह मुझको संशय है, तिसको तुम अपने मुखकारि दूर करौ,

जिसके विद्यमान संशय दूर निवृत्त न होवै, तिसको पंडित नहीं कहना अरु जो ज्ञानवान् है, तिसको इन प्रश्नोंका उत्तर कहना सुगम है; इस संशयको वह शीघ्रही छेद डारताहै, अरु जो अज्ञानी हैं, तिनको उत्तर कहना कठिन है ॥ हे राजन्! जो तुम मेरे प्रश्नोंका उत्तर दिया, तौ तुम मेरे पूजने योग्य हो; अरु जो मूर्खता करिकै प्रश्नोंका उत्तर न देवोगे, अरु प्रश्नोंका विपर्यय जानोंगे, तब तुम मेरे उदररूपी जठराग्निके इंधन हौ, दोनों मेरे उदरविषे जाइ पडौगे, तिसके अनंतर तुम्हारी सब प्रजाको ग्रास करि लेउँगी. काहेते कि, मूर्ख पापियोंको मारना श्रेष्ठ है आगे पाप करनेते छूटैंगे, तुम्हारा भोजन करिकै पीछे तुम्हारी सब प्रजाको भोजन करि लेउंगी ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! श्याम मेघकी नाईं जिसका आकार है, ऐसी राक्षसी इसप्रकार कहिकरि शुद्ध आशयको लेकरि तूष्णीं भई; जैसे शरत्कालविषे मेघमंडल निर्मल होता है, तैसे निर्मल भावको प्राप्त भई ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीप्रश्नवर्णनं नाम पंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशत्तमः सर्गः ५६.

राक्षसीप्रश्नभेदवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जो अर्धरात्रिके समय महाशून्य वनविषे महाराक्षसीने महाप्रश्नोंको जब किया, तब महामंत्री तिसको उत्तर कहत भया ॥ महामंत्र्युवाच ॥ हे राक्षसी! यह जो तैंने संशयोंसों प्रश्न किये हैं तिनका मैं क्रमकरि उत्तर कहता हौं, अरु तेरे संशयको छेदन करता हौं; जैसे उन्मत्त हस्तीको केसरीसिंह नष्ट करता है, तैसे मैं तेरे संशयको छेदन करता हौं ॥ हे राक्षसी! कमलनयनी, जेते कछु तैंने प्रश्न किये हैं, सो एक परमात्माहीके किये हैं, ताते तेरा सब प्रश्नोंका एकही प्रश्न है, परंतु तुमने अनेक प्रकार कर किये हैं सो ब्रह्मवेत्ताके योग्य हैं ॥ हे राक्षसी! जो अनामाख्य है, अर्थ यह जो सर्व इंद्रियोंका विषय नहीं, अरु अगम है, अरु मनकी चिंतनाते रहित है, ऐसी सत्ता

चिन्मात्र है. अरु आकार भी सूक्ष्म है, इस कारणते सूक्ष्म कहाता है, सूक्ष्मता करिकै तिसकी अणु संज्ञा है, कछु परमाणुता करिकै तिसकी अणु संज्ञा नहीं है, काहेते कि सर्वात्मा है, तिस अणुविषे सत् असत्की नाईं जगत् स्थित है, अरु तिसही चिद्अणुविषे जब कछुक संवेदन फुरता है, तब वही संवेदन सत्य असत्य जगत्की नाईं भासता है, तिसकरिकै चित्त कहते हैं, अरु सृष्टिते पूर्व तिसविषे कछु न था, तिसकरि निष्किंचन कहाता है, अरु इंद्रियोंका विषय नहीं ताते न किंचित् है, अरु वही चिद्अणुविषे सबका आत्माहै, ताते अनंत भोक्ता पुरुष किंचन है तिसते इतर कछु नहीं, ताते न किंचन है, अरु सोइ चिद्अणु सबका आत्माहै, अरु सोइ चिद्अणु एकही आभासकरिकै अनेकरूप भासता है, जैसे सुवर्णते नाना प्रकारके भूषण भासते हैं, अरु वही चिद्अणु परमाकाशरूप है, जो आकाशते भी सूक्ष्म है अरु मनवाणीते अतीत है; सो सर्वात्मा है, शून्य कैसे होवै; सत्को जो शून्य कहते हैं, सो उन्मत्त कहाते हैं ॥ काहेते कि असत् भी सत् विना सिद्ध नहीं होता, जिसके आश्रय असत् भी सिद्ध होता है, सो सत् है, अरु वही चिद्अणु पंचकोशोंविषे छिपता नहीं, जैसे कर्पूरकी गंध प्रगट होती है, छिपती नहीं, तैसे प्रगट होताहै, पंचकोशोंविषे आत्मा छिपता नहीं, अनुभवरूप है, अरु वही चिन्मात्र सर्वरूपकरि किंचित्है, अरु अचेतन चिन्मात्र है, ताते अकिंचित् है, इंद्रियोंते रहित है, ताते निर्मल है, तिसही चिद्अणुविषे फुरणेकरि अनेक जगत् स्थित जैसे समुद्रविषे फुरणेकरिकै तरंग उपजते हैं, बहुरि लीन होते हैं; तैसे चिद्अणुविषे फुरणेकरि अनेक जगत् उपजिकै लीन होते हैं, मन अरु इंद्रियोंके अतीत है, ताते चिद्अणु शून्य कहाताहै, अपने आपहीकरि प्रकाशता है, ताते अशून्य है. हे राक्षसी ! मेरा अहं अरु तेरा अहं भयाहै, सो आत्मा एकही भया है, अहंकी अपेक्षा करिकै त्वं है, अरु त्वंकी अपेक्षा करिकै मैं परिच्छन्न हौं; परंतु दोनोंका उत्थान जो है, सो एक आत्म तत्त्वतेही हैं; तिसही चिद्अणुके बोधते ब्रह्मरूप होताहै, अरु तिसही बोधविषे अहं त्वं सब लीन होतेहैं, अथवा सर्व आपही होता है, त्रिपुटीरूप भी वही है, अरु

वही चिद्‌अणु अनेक योजनोंपर्यंत जाता है, अरु कदाचित् चलायमान नहीं भया, काहेते जो संवित् अनंतरूपहै, योजनोंके समूह तिसके अंतर हैं न कोऊ आता है, न जाता है, अपने आकाशकोशविषे सब देशकाल स्थित हैं, जिसविषे सब कछु होवै, तिसको प्राप्ति वास्तवते कहां होवै ? यह जेता जगत् है, सो तौ आत्माविषे है, फेर आत्मा कहां जावै, जैसे माताकी गोदविषे पुत्र होवै, तिसनिमित्त वह कहां जावै, तैसे आत्माविषे यह जगत् स्थित हैं, फिर आत्मांको जाता कहां कहना, अरु चलता जो भासता है, सो देहकी अपेक्षाकरि भासता है, वह कदाचित् चला नहीं, जैसे आकाशविषे घटादिक स्थित हैं, तैसे चिद्‌अणुविषे देशकाल स्थित हैं, जैसे घट एक देशते देशांतरको जावै, तौ घट गया है, आकाश नहीं गया है, घटकी अपेक्षाकरि आकाश जाता भासताहै, घटाकाश कहूं गया नहीं, काहेते जो आकाशविषे सब देश स्थित हैं, यह कहां जावै, तैसे आत्मा जाता है, अरु नहीं जाता; तिसही चिन्मात्र परमात्मविषे संवेदना आकार रचे हैं, आदि अंतते रहितविषे विचित्ररूपी जगत् रचाहै, अरु सोई चिद्‌अणु अग्निकी नाईं प्रकाशरूप है, अरु जलानेते रहित है, ज्ञान अग्निकरि प्रकाशमान है, अग्नि भी तिसते उपजा है, अरु सर्वगत वही है, अरु द्रव्योंको पचाता भी वही है; प्रलयविषे सब भूत तिसविषे लीन होते हैं, अरु पुष्कल मेघ इकट्ठा होवै तौ भी उसको आवरण नहीं करै, सदा प्रकाशरूप अरु ज्ञानरूप है, आकाशते भी निर्मल है, अरु प्रकाशरूप है, जो अग्नि भी तिसते उत्पन्न होता है, अरु सबको सत्ता देनेहारा है, सूर्यादिक भी तिसके प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, अरु अनुभवरूप हैं, नेत्रोंविना भासता है, ऐसा हृदयरूपी मंदिरका दीपक है सो आत्मा है, अनंत परम प्रकाशरूप है, अरु मन इंद्रियोंका विषय नहीं, अरु लता फूल फल आदिक सबको आत्मत्वकरिके प्रकाशता है, सबका अनुभवकर्ता वही है, काल आकाश क्रिया आदिक पदार्थको सत्ता देनेहारा वही चिद्‌अणु है, अरु सबका स्वामी कर्त्ता वही है, सबका पिता वही है, अरु सबका भोक्ता भी वही है, अरु स्वरूपते सदा अकर्त्ता अभोक्ता है रूप

जिसका, जैसे स्वप्नविषे कर्त्ता भोक्ता भासता है, अरु अकर्ता अभोक्ता है, तिसते इतर कछु नहीं, इसकारणते किंचन रूप है, जगत्को धारनेहारा है, स्वरूपते मातृ मान मेय जिसकरि प्रकाशतेहैं, उपजा कछु नहीं चिदात्माका किंचन है, किंचन करिकै जगतकी नाईं भासताहै; जो तुझने पूछा था, कि दूर अरु निकट कौनहै, सो अलखभाव करिकै दूर भी वही है; अरु चिद्रूप भावकरिकै अदूर भी वहीहै, अथवा ज्ञानकरिकै अदूर भी वही है, अरु अज्ञान करिकै दूरते दूर है, अरु अज्ञानकरिकै तमरूप अरु ज्ञानकरिकै प्रकाशरूप भी वही है,अरु तिसही चिद्अणुविषे संवेदनकरिकै सुमेरु आदिक स्थित हैं ॥ हे राक्षसी! जेता कछु जगत् भासता है सो सब संवेदनरूप है, सुमेरु आदिक पदार्थ कछु उपजे नहीं, चिद्सत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है, तिसविषे जैसा संवेदन फुरता है तैसा आकार होइ भासता है! जहां निमेषका संवेदन फुरता है, तहां निमेष कहाता है, अरु जहां संवेदन कल्पका फुरता है; तहां कल्प कहते हैं, कल्प क्रिया आदिक जगत् विलास सब निमेषविषे फुरि आयेहैं, जैसे मनके फुरणेकरिकै बहुत योजनोंपर्यंत पुरुष भास आता है, अरु जैसे अल्प मुकुरविषे बडे विस्तार नगरका प्रतिबिंब समाइजाताहै, तैसें निमेषके फुरणेविषे सब जगत् फुरि आता है, अरु निमेषविषे कल्पसमुद्र पुर अनंत योजनोंका विस्तार चिद्अणुविषे स्थित है, अरु द्वैत भ्रमते रहित है ॥ हे राक्षसी! यह जगत् स्वरूपते अवस्तुरूप है, संवेदनकरिकै भासता है; जैसे जैसे संवेदनविषे दृढ प्रतीति होतीहै, तैसा तैसा अनुभव होता है, तू देख. क्षणके स्वप्नविषे सत् असत् जगत् फुरि आताहै अरु बहुत कालका अनुभव होता है, जो दुःखी होतेहैं, तिनको थोडे कालविषे बहुत भासते हैं, अरु जो सुखी होते हैं, तिनको बहुत कालविषे थोडा काल भासता है, जैसे हरिश्चंद्रको एकरात्रिविषे द्वादश वर्षका अनुभव भया; ताते जेता जेता संवेदन दृढ होता है, तैसे देशकाल होइ भासता है, सत् भी असत्की नाईं भासताहै,जैसे सुवर्णविषे भूषणबुद्धि होती है; तब भूषण भासते हैं,अरु समुद्रविषे तरंगोंकी दृढताते तरंग भिन्न भासते हैं; तैसे निमेषविषे कल्प भासते हैं; अरु वस्तुते न निमेष है, न

कल्प है, न दूर है, न निकट है, सब चिद्‌अणु आत्माका आभास है॥ हे राक्षसी! प्रकाश अरु तम, दूर, अदूर,सब चेतना संपुटविषे रत्नोंकी नाईं है, वस्तुते अनन्यरूप है, भेदाभेद कछु नहीं ॥ हे राक्षसी! जबलग दृश्यका सद्भाव दृढ होता है, तबलग द्रष्टा नहीं भासता, जैसे जबलग भूषणबुद्धि होती है, तबलग स्वर्ण नहीं भासता, अरु जब स्वर्ण जाना तब भूषण बुद्धि नहीं रहती, स्वर्णही भासता है, तैसे जबलग दृश्यका स्पंदभाव होताहै, तबलग द्रष्टा नहीं भासता, अरु जब आत्मज्ञान होता है, तब केवल ब्रह्मसत्ता निर्मलही सद्रूपकरिकै सर्वत्र भासती है, अरु दुर्लक्षताकरिकै अर्थ यह जो मन इंद्रियोंके अविषयते असतरूप कहतेहैं, चैत्यताकरिकै तिसको चेतन कहते हैं,अरु चैत्यके अभावते अचेतनारूप कहते हैं, अर्थ यह जो चैत्यके अभावते अचैत्य चिन्मात्र कहते हैं,सो चेतन चमत्कारते जगत्‌की नाईं होइ भासता है ॥ हे राक्षसी! और जगत् तिसविषे कोऊ नहीं जैसे वायुका विरोला वृक्षाकार होय भासताहै, अरु जैसे सघन धूपकरिकै मृगतृष्णाकी नदी भासती है, तैसे एक अद्वैतचेतन है; सो घन चेतनता करिकै जगत्‌की नाईं होइ भासता है, जैसे सघन शून्यताकरिकै आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे दृढ सघन चेतनता करिकै जगत् भासता है, जैसे सूर्यकी सूक्ष्म किरणोंका किंचन मृगतृष्णाका जल होता है, तिस नदीका प्रमाण कछु नहीं; तैसे यह जगत् आस्था भासती है, सब आकाशरूप है, जैसे भ्रमकरिकै धूडके कणमें स्वर्णकी नाईं चमत्कार होते हैं; तैसे जगत्‌कल्पना चित्तके फुरनेकरिकै भासती है जैसे स्वप्नपुर अरु गंधर्वनगर आकारसहित भासते हैं, सो न सत् है, न असत् है, तैसे यह जगत् दीर्घ स्वप्न है, न सत् है, न असत्है. हे राक्षसी! जब तिसका आत्माविषे अभ्यास होवै तब यह कुंडादिक ऐसेही रहैं, अरु आकाशरूपही भासैं, स्वरूपते कुंडादिक भी आकाशरूप हैं, आकाश अरु कुंड आदिकोंविषे भेद कछु नहीं; मूढता करिकै भेद भासता है, ज्ञानीको सब चित्ताकाशरूप भासता है, हे राक्षसी! ब्रह्माते तृण पर्यंत संवेदनविषे कल्पना दृढ होरही है. तैसेही भासती है, अरु वास्तवते वही चिदाकाश प्रकाशता है; घन चेतनता करिकै वही चिदाकाश आकारोंकी

नाईं प्रकाशता है; तिसीका यह प्रकाश है; सो अनन्यरूप है; जैसे बीज अरु वृक्ष अनन्यरूप हैं, तैसे असंख्यरूप जगत् ब्रह्मसत्ताविषे स्थित है सो अनन्यरूप है, जैसे बीजविषे वृक्षका भाव स्थित है, सो आकाशरूप है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् स्थित है सो अक्षोभरूप है, अन्यभावको नहीं प्राप्त हुए, सो ब्रह्मसत्ता सब ओरते शांतरूप है, अज है, एक है, आदि मध्य अंतते रहित है, तिसविषे एक अरु द्वैतकी कल्पना कोई नहीं, अनउदयही उदय हुई है, निर्मल स्वप्रकाश आत्माही है ॥ इति श्रीयो० उत्प० राक्षसीप्रश्नभेदवर्णनं नाम षट्पचाशत्तमः सर्गः ॥५६॥

सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ५७.

परमार्थनिरूपणम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ बडा आश्चर्य है, बडा आश्चर्य है; मंत्रीने तौ यह परम पावन परमार्थ वचन कहे हैं; अब कमलनयन राजा भी कछु कहता है॥ राजोवाच ॥ हे राक्षसी ! यह जो जागृत् जगत्की प्रतीति होती है, सो इसका जब अभाव होवै तब आत्मप्रतीति होती है; जब सब संकल्पकी चैत्यताका नाश होवै; तब आत्माका साक्षात्कार होवै सो आत्मसत्ता कैसी है जिसविषे संवेदन फुरणेकारि जगत होइ भासताहै; अरु संवेदनके संकोचकारि सृष्टिका प्रलय होता है, तिसका अधिष्ठानरूप आत्मसत्ताहै तिसको वेदांतवाक्य जतावनेके अर्थ कछुक कहते हैं, काहेते जो वाणीते अतीत पद है ॥ हे राक्षसी ! यह जो द्रष्टा, दर्शन, दृश्य है; तिसके अंतर अनुभवसत्ता है; सो परमात्माहै; सो परमात्माही द्रष्टा, दर्शन, दृश्यरूप होइकारि भासता है; तिसविषे जगत् लीला है नानात्व भावकरिकै भी कछु खंडितभावको नहीं प्राप्त भया, अखंडही रहा है; तिस चिन्मात्रसत्ताको ब्रह्मकारि कहते हैं-हे भद्रे ! सोई चिद् अणु संवेदन करिके वायुरूप हुआ है; अरु वायु तिसविषे अत्यंत भ्रांतिमात्र है, काहेते कि, वह केवल शुद्ध चिन्मात्र है; जब तिसविषे शब्दका संवेदन फुरताहै, तब शब्दरूप होइ भासता है, अरु शब्दरूप तिसविषे भ्रांतिमात्र है; तिसविषे शब्द अरु

शब्दका अर्थ देखना दूरते दूर है. काहेते कि, केवल चिन्मात्रहै, तिस-विषे अहं त्वं कछु नहीं; अरु वह, निष्किंचन है, ऐसे रूप होइ करि भासता है, काहेते सो सब शक्तिरूप आत्मा है; तिसविषे जैसी प्रतिभा फुरतीहै, तैसाही होइकरि भासता है, ताते फुरणाही इस जगत्का कारण है, अरु अनेक यत्नोंकरि पावने योग्य है, सो भी आत्मसत्ताहै, जब तिसको पावता है; तब उसने कछु नहीं पाया, अरु सब कछु पाया है, तौ इस कारणते नहीं, कि आगे भी अपना आप था, अरु सब कछु पाया, इस कारणते कि आत्माके पायेते कछु और पावना नहीं रहता॥ हे राक्षसी ! अज्ञानरूपी वसंतऋतुकरिकै जन्मोंकी परंपरा वेलि तबलग बढती जाती है जबलग इसका काटनेहारा, बोधरूपी खड्ग नहीं उदय भया, जब बोधरूपी खड्ग उदय होताहै, तब जन्मरूपी वेलिको काटता है ॥ हे राक्षसी! चिद्अणु संवेदनद्वारा आपका दृश्यविषे प्राप्त करता है, जैसे किरणोंका चमत्कार जलरूप होइकारि स्थित होता है, सो शुद्धही आपको संवेदनद्वारा फुरता देखता है, तैसे चिद्अणुद्वारा जगत् हुआ है, सो मेरुते आदिलेकारि तीनों भुवन किरणोंकी नाईं स्थित होते हैं, अरु वस्तुते मायामात्र हैं, भ्रमकरिकै पडे भासते हैं, स्वप्नविषे रागीको स्वप्नस्त्रीका आलिंगन होता है, तैसे यह जगत् मनके फुरणेकरिकै पडा भासता है, सो भ्रममात्र है ॥ हे राक्षसी ! सर्व शक्तिरूप आपविषे जैसे सृष्टिका आदि फुरणा हुआ है, तैसा रूप होइ करि भासनें लगा है, जैसे संकल्प किया है तैसे स्थित भया है, ताते सब जगत् संकल्पमात्र है, जैसा जिसविषे बालकका मन लगता है, तैसा रूप उसका होइ भासता है, तैसे संवित्के आश्रय जैसा संवेदन फुरता है, तैसा रूप होइ भासता है॥हे राक्षसी ! चिद्अणु परमाणुते भी सूक्ष्म है; अरु तिसनेही सब जगत्को पूर्ण किया है, सब जगत् अनंतरूप आत्मा है, तिसविषे संवेदनकरिकै जगत्की रचना हुई है; जैसे नट नायक होता है. सो जैसे जैसे बालकको नेत्रोंकर जतावता है; तैसे वह नृत्य करता है; अरु जब वह जतावनेते ठहर जावे तब वह ठहर जावे है; तैसे चित्तके अवलोकनते करिकै सुमेरु आदिक तृणपर्यंत जगत् नृत्य

करता है; जैसे चित्तसंवेदन फुरता है; अनंतशक्ति आत्मविषे, तैसे तैसे होइ भासती है॥ हे राक्षसी! देश काल वस्तुके परिच्छेदते आत्मसत्ता रहित हैं, इसकारणते सुमेरु आदिकते स्थूल है, तृणके समान सुमेरु आदिक है, अरु बालके अग्रते सौवां भाग होवै, तैसे सूक्ष्म है, सो अल्पताकरि ऐसा सूक्ष्म नहीं, जिसविषे सरसोंका दाना भी सुमेरुवत् स्थूल है, मायाकी कला बहुत सूक्ष्म है, तिसते भी चिद्अणु सूक्ष्म है काहेते जो निर्मायिक पद परमात्मा है, जैसे स्वर्ण अरु भूषणकी शोभा समान नहीं, अर्थ यह जो स्वर्णविषे भूषण कल्पित है, समान कैसे होवै तैसे माया परमात्माके समान नहीं, काहेते कि कल्पित है॥ हे राक्षसी! जेते कछु सूर्य आदिक प्रकाश हैं, सो सब अनुभवकरि प्रकाशते हैं, इनका सद्भाव कछु न था, तिसही सत्ताकरि इनका प्रगट होना भया है, अरु बहुरि जर्जरीभूत होते हैं, प्रकाशरूप शुद्ध चिन्मात्र सत्ता है, सो सदा अपने आपविषे स्थित है, तिस चिद्अणुके अंतर बाह्य प्रकाश है अरु यह जो सूर्य चन्द्रमा अग्नि आदिक प्रकाश हैं, सो तम साथ मिले हुए हैं, अर्थ यह जो भेद रूप हैं, यह भी तमरूप हैं, काहेते जो आपेक्षिक प्रकाश है, इनोंविषे एता भेद है, जो प्रकाश शुक्लरूप है, अरु तम कृष्णरूप है, रंगका भेद है, प्रकाशरूप कोऊ नहीं, जैसे श्याम कुहिड मेघकी होती है, अरु शुक्ल कुहिड बर्फकी होती है, अरु दोनों कुहिड हैं, तैसे तम अरु प्रकाश दोनों तुल्य हैं, अरु आत्मसत्ता दोनोंको प्रकाशती है, ताते दोनोंको आश्रयभूत केवल एक आत्मसत्ता है॥ हे राक्षसी! रात्रिदिन अंतर बाहिर नदियां पहाड आदिक सब लोक आत्मसत्ताके प्रकाश करि प्रकाशतेहैं, जैसे कमल अरु नीलोत्पल दोनोंको सूर्य प्रकाशता है, कमल श्वेत है, अरु नीलोत्पल श्याम हैं,जहां श्वेत कमल है, तहां नीलोत्पलका अभावहै,अरु जहां नील कमल है, तहां श्वेतकमलका अभावहै,अरु दोनोंका प्रकाशक सूर्यहै,तैसे तम अरु प्रकाश दोनोंका प्रकाशक चिदात्माहै,जैसे रात्रि अरु दिन दोनों सूर्यकरिके सिद्ध होते हैं, तैसे तम अरु प्रकाश दोनों आत्माकरि सिद्ध होते हैं;जैसे दिन तब कहाता है. जब सूर्य उदय होता है, अरु जब सूर्य अस्त होता है, तब रात्रि होती है परंतु आत्मा तैसा नहीं; आत्मप्रकाश सदा उदय अरु

अस्तते रहित है,तिसविना कछु सिद्ध नहीं होता,सबका प्रकाशक चिद्-अणु है॥ हे राक्षसी! तिस अणुके अंतर विचित्र अनुभव अणु है,जैसे वसंतऋतुके अंतर पत्र फूल फल टास होते हैं,तैसे चिद्अणुते सब अनुभव अणु होते हैं,जैसे एक बीजते अनेक वृक्ष क्रमकरिकै हो जाते हैं,तैसे अनेक चिद्अणुते अनेक अनुभव अणु होते हैं, कई व्यतीत भयेहैं,कई वर्तमान हैं, अरु कई भविष्यत् होवैंगे, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं,सो कई अब वर्तते हैं, कई आगे होवैंगे, तैसे आत्माविषे तीनों कालकी सृष्टि वर्तती हैं,॥ हे राक्षसी! चिद्अणु आत्मा उदासीन है, अरु आसीनकी, नाईं स्थित होताहै; सबका कर्त्ता भी है, भोक्ता भी है, अरु स्पर्श किसी साथ नहीं किया, जगत्की सत्यता तिसीते उदय होती है, इस कारणते सबका कर्त्ता है,अरु सबका अपना आप है,ताते सबको भोगता है, अरु वास्तवते न उपजा है, न कछु लीन होता है, चिन्मात्रसत्ता ज्योंकी त्यों सदा अपने आपविषे स्थितहै, अरु अखंड है.सूक्ष्म है; इस कारणते किसीके साथ स्पर्श नहीं किया॥ हे राक्षसी! जेता जगत् दीखता है,सो सब आत्मरूप है,आत्मा अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं, आत्मा अरु जगत् कहने मात्र दोनों नाम हैं, वस्तुते एक आत्माही है, आत्माका चमत्कारही जगत्रूप होइ भासता है, जगत् कछु बना नहीं, चिन्मात्रसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है, और जेता कछु कहना है, सो उपदेश जतावनेके निमित्त है, वास्तवते दूसरी वस्तु कछु बनी नहीं, तीनों जगत् चिदाकाशरूप हैं॥ हे राक्षसी! द्रष्टा जब दृश्यपदको प्राप्त होता है, तब स्वाभाविक अपने भावको नहीं देखता; जैसे नेत्र जब घटको देखता है, तब घटही भासता है, अपना नेत्रत्वभाव दृष्टिमें नहीं आता; तैसे दृश्यके होते द्रष्टा नहीं भासता, अरु जब दृश्य नष्ट होवै, तब द्रष्टा भी अवास्तव है. काहेते कि, द्रष्टा भी इसको दृश्यके संबंधकारि कहाता है,जब दृश्य नष्ट हो जावै, तब द्रष्टा किसको कहिये? दृश्य विषयभूत सो होता है, जो अदृश्य है, सो विषयभूत किसीका नहीं, इस कारणते तिसविषे और कल्पना कोई नहीं बनती॥ अरु यह जगत् भी तिसका आभास है, हे राक्षसी! जैसे भोक्ता

विना भोग नहीं होते, तैसे द्रष्टाविना दृश्य नहीं होते; जैसे पिता विना पुत्र नहीं होता, तैसे एक विना द्वैत नहीं होते, हे राक्षसी! द्रष्टाको दृश्य उपजानेकी समर्थता हैं, परंतु दृश्यको द्रष्टा उपजानेकी समर्थता नहीं काहेते कि दृश्य जड है, जैसे सुवर्णते भूषण बनता है, भूषणते स्वर्ण नहीं बनता, तैसे द्रष्टाते दृश्य होता है, दृश्यते द्रष्टा नहीं होता ॥ हे राक्षसी! स्वर्णविषे जैसे भूषण हैं, तैसे द्रष्टाविषे दृश्य है, सो भ्रमरूप है, इसीसे जडरूप है, जब द्रष्टा दृश्यको देखता है, तब दृश्य भासता है, द्रष्टृत्वभाव नहीं भासता, अरु जब द्रष्टा अपने स्वभावविषे स्थित होताहै, तब दृश्य नहीं भासता, जैसे जबलग भूषणबुद्धि होतीहै तबलग स्वर्ण नहीं भासता भूषणही भासता है, अरु जब सुवर्णका ज्ञान होताहै; तब सुवर्णही भासता है, भूषण नहीं भासता, अरु एक सत्ताविषे दोनों नहीं सिद्ध होते, जैसे अंधकारविषे पुरुष देखिकरि तिसविषे पशुत्व भासै, तब जबलग पशुबुद्धि होती है, तबलग पुरुषका निश्चय नहीं होता, अरु जब निश्चय करिकै पुरुष जाना तब बहुरि पशुबुद्धि नहीं रहती, तैसे जब द्रष्टा दृश्यको देखता है, तब द्रष्टाभाव नहीं दीखता, दृश्यही भासता है, जैसे जेवरीके ज्ञानते सर्पका अभाव हो जाता है, तैसे बोधकरिकै दृश्यका अभाव होता है, तब एकही परमात्मसत्ता भासती है, द्रष्टासंज्ञा भी नहीं रहती; जैसे दूसरेकी अपेक्षा करिकै एक कहाता है, दूसरेके अभाव हुए एक कहना भी नहीं रहता, तैसे दृश्यके अभाव हुए द्रष्टा कहना नहीं रहता, शुद्ध संवित्पद मात्र शेष रहता है, तिसविषे वाणीको गम नहीं, जैसे दीपक पदार्थोंको प्रकाशता है, तैसे द्रष्टा, दर्शन अरु दृश्यको प्रकाशता है, अरु बोधकरिकै मातृ, मान, मेय त्रिपुटी लीन हो जाती हैं, जैसे सुवर्णके जाननेते भूषणकल्पनाका अभाव हो जाताहै, तैसे ज्ञानकरिकै त्रिपुटीका अभाव होजाता है, केवल शुद्ध अद्वैतरूप रहता है ॥ हे राक्षसी! परम अणु जो अत्यंत निस्वादरूप है, सो सर्व स्वादोंको उपजाता है, जहां रससहित होता है, तहां चिद्अणु करिकै होताहै, जैसे आदर्शविना प्रतिबिंब नहीं होता, तैसे सब स्वाद चिद्अणु विना नहीं होते, सबको रस देनेहारा चिद्अणुहै, सर्व आत्मभावकरिकै सबका अधिष्ठान

है, अरु सूक्ष्मते सूक्ष्म हैं ताते निस्वाद है, सोई चिद्अणु अपने गोप करणेको समर्थ नहीं, अरु सब जगत्को ढांप रक्खा है, आप किसीकारि आच्छादा नहीं जाता, सो सुन. जो चिदाकाशरूप है, अरु सब पदार्थोंको सत्ता देनेहारा है, अरु सबका आश्रयभूत है, जैसे घासके वनविषे हस्ती नहीं छिपता, तैसे आत्मा किसी पदार्थकारि नहीं छिपता ॥ हे राक्षसी ! जिसकारि सब पदार्थ सिद्ध होतेहैं, अरु सदा प्रकाशरूप हैं, सो मूर्खोंको नहीं भासता यह आश्चर्यहै, सो अनुभवरूपहै, यह सब जगत् तिसहीकारि जीता है, जैसे वसंतऋतुकारि फूल फल टास पत्र फूलते हैं, तैसे सब जगत् आत्माकारि फूलता है, वही चिदात्मा जगत्रूप होइके भासताहै, अरु सर्वात्मभावकारिकै सर्व तिसके अवयव परमार्थ निरवयवरूप निराकाररूप हैं, कछु तिसविषे उदय नहीं भया ॥ हे राक्षसी ! एक निमेपके अबोधकारिकै चिद्अणुविषे अनेक कल्पोंका अनुभव होताहै, जैसे एक क्षणके स्वप्नविषे आपको बालक बहुरि वृद्ध अवस्था देखने लगता है, अरु तीनों कल्पोंविषे जो निमेष हैं, तिनविषे अनेक कल्प व्यतीत होतेहैं, काहेते जो अधिष्ठान सर्वशक्तिमान्है, जैसा संवेदन जहां फुरता है, तैसा रूप तहां होइ भासता है, जैसे स्वप्नविषे अभोक्ताको भोक्तृत्वका अनुभव होताहै, तैसे निमिषविषे कल्पना अनुभव होता है, वासनाकारि आविष्ट हुआ अभोक्ताही आपको भोक्ता देखता है, जैसे स्वप्नविषे अपना मरण प्रत्यक्ष देखताहै, तैसे यह जगत्भ्रम भासताहै, जैसे फुरण जहां दृढ होताहै, तैसा होइकारि तहाँ भासताहै ॥ हे राक्षसी ! जेते कछु आकार भासते हैं, सो भ्रांतिमात्रहैं, जैसे निर्मल आकाशविषे नीलता भासती है, तैसेही आत्मविषे विश्व भासताहै आत्मा सर्वगत है, अरु सबका अनुभवरूप है ॥ हे राक्षसी ! तिसविषे व्याप्यव्यापकभाव भी नहीं, काहेते जो सर्व आत्मा हैं, अरु सर्वरूप भी वहीहै, जब शुद्ध चित्तसंवित्विषे संवेदन फुरताहै, तब पृथक् पृथक् भावको चेतता है, इच्छाकारिके जिस पदार्थकी उपलब्धि होती है, तिसविषे व्याप्यव्यापकभाव कल्पना होती है, वस्तुते जो इच्छा है, सोई पदार्थ भया; जैसे जलविषे द्रवता होतीहै, तिसकारि तरंग फेन बुद्बुदे होते

हैं, सो जलरूप हैं, जलते इतर तौ कछु नहीं, तैसे इच्छाकरि उपजे पदार्थ आत्मरूप हैं, इतर कछु नहीं, आत्मा देश काल वस्तुओंके परिच्छेदते रहित है, केवल शुद्ध चिन्मात्र है, अरु सर्वरूप होइकरि स्थित भया है, सबका अनुभव भी तिसविषे भया है, सो तो शुद्ध सत्तामात्रहै, तिसविषे द्वैतकल्पना कैसे कहिये ॥ हे राक्षसी ! जब कछु द्वैत होताहै, तब एक भी होता है, जो द्वैतही नहीं तो एक कैसे कहिये जैसे धूपकी अपेक्षाकरि छायाहै,अरु छायाकी अपेक्षाकरि धूप है, तैसे एककी अपेक्षाकरि द्वैत कहाता है, इस कल्पनाते रहितहै, सो चिन्मात्ररूप है, अरु जगत् भी तिसते व्यतिरिक्त नहीं, जैसे जल अरु द्रवताविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं ॥ हे राक्षसी ! नानाप्रकारके आरंभ दृष्ट आते हैं, तौ भी आत्मसत्ता सम है ॥ हे राक्षसी ! जब इसको सम्यक् बोध होता है, तब द्वैत भी अद्वैतरूप भासता है, काहेतें कि अज्ञानकरि द्वैतकल्पना होतीहै, वास्तव कछु नहीं,अज्ञानके अभावते द्वैतका भी अभाव हो जाताहै,वास्तवते ब्रह्म अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं, जैसे जल अरु द्रवताविषे भेद कछु नहीं,जैसे वायु अरु स्पंदताविषे कछु भेद नहीं जैसे आकाशविषे अरु शून्यताविषे कछु भेद नहीं तैसे आत्मा अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं ॥हे राक्षसी ! द्वैत अरु अद्वैत जानना दुःखका कारण है, द्वैत अद्वैतकी कल्पनाते रहित होना इसीको परमपद कहते हैं, अरु द्रष्टारूप जो जगत् है. सो चिद्परमाणुविषे स्थित है, तिसविषे सुमेरु आदिक स्थितहैं,तातेबडाआश्चर्य है, मायाही महाआश्चर्य है, सो चिद्परमअणुविषे त्रिलोकी परंपरा स्थित है, इसीते असभवरूप मायामय है,जैसे बीजविषे वृक्ष स्थितहै,तैसे चिद्अणुविषे जगत् स्थित है, जैसे शाखा पत्र फूल फलकरि बीज अपने बीजत्वको नहीं त्यागता अरु अखंड रहता है, तैसे चिद्अणुके अंतर जगत्का विस्तार है अरु अणुत्वभावको नहीं त्यागता, अखंडही रहता है ॥ हे राक्षसी ! बीज भी परिणामकरिकै वृक्षभावको प्राप्त होता है, अरु चिद्अणु परिणाम करिकै जगत्रूप होता है, चिद्अणुका किंचनरूप है, चिद्अणुही ऐसे दिखाई है, वास्तवते न द्वैतरूप है, न अद्वैत है, न बीज है, न अंकुर है, न

स्थूल है, न सूक्ष्म है, न कछु उपजा है, न नष्ट होता है, न अस्ति है; न नास्ति है, न सम है, न असम है, न जगत् है, न अजगत् है, केवल चिदानन्द आत्मसत्ता अचिंत्य चिन्मात्र अपने आपविषे स्थित है, सोई सर्वात्मा है, जैसी जैसी भावना होती है, तैसे तैसे हो भासता है ॥ हे राक्षसी! वह अन उदयही संवेदनके वशते उदय होकरि भासता है॥ जैसे बीजते वृक्ष अनन्यरूप अनेक होइ भासता है, तैसे एक आत्मा अनेकरूप होइ भासता है, न कछु उदय हुआ है, न मिटता है॥ हे राक्षसी! तिस चिद्अणुते भीहकी तंतु सुमेरुकी नाईं स्थूल है, जैसे भीहकी तंतुते सुमेरु स्थूलहै, तैसे चिद्अणुते भीहकी तंतु स्थूलहै, अरु दृश्यरूप है, अरु चिद्अणु दृश्य नहीं, मनसहित षट् इंद्रियोंका विषय नहीं, इस कारणते भीहकी तंतुते सूक्ष्महै, तिस चिद्अणुविषे अनंतसुमेरु आदिक स्थित हैं, सो क्या रूप है, जैसे आकाशविषे शून्यता होतीहै, तैसे आत्मविषे जगत् है ॥ हे राक्षसी! जिसको आत्माका बोध हुआ है, तिसको जगत् सुषुप्तिकी नाईं होता है, सो आत्मसत्ता सदा अद्वैतरूप है. अरु परिणामते रहित है तिसविषे मुक्त पुरुष सदा स्थित है, परमार्थते जगत् भी ब्रह्मरूप है, भिन्न भाव कछु नहीं ॥ इति श्रीयो० उत्पत्ति० सूच्युपाख्याने परमार्थनिरूपणंनाम सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ५७॥

अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः ५८.

राक्षसीसुहृदतावर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच, हे रामजी! इसप्रकार राजाके मुखते श्रवण करिके कर्कटीने बनके मर्कटीरूप जीवोंके मारनेकी चपलताका त्याग किया, अरु अंतरते शीतल भई; अरु विश्रामको प्राप्त भई, अरु अंतरते तप्तता मिट गई, अरु परमानंदको प्राप्त भई, जैसे वर्षाकालविषे मोरनी प्रसन्न होतीहै, अरु जैसे चंद्रमाको देखिके चंद्रवंशी कमल प्रफुल्लित होताहै, जैसे मेघके शब्दकरि बगली गर्भवान् होती है. तैसे राजाके वचन श्रवण करिके

कर्कटी परमानंदको प्राप्त भई ॥ राक्षस्युवाच ॥ बड़ा आश्चर्य है । बडा आश्चर्य है.हेराजा ! तुमने महापावन वचन कहेहैं, ताते तुम्हारा बोध मैंने विमल देखा है, अरु अमृतसार है, अरु बोधरूपी सूर्य है, अरु शीतल है, समरसकरि पूर्ण है, अरु शुद्ध है, रागद्वेष आदिक मलते रहित है, जसे पूर्णिमाका चंद्रमा शीतल अमृतकरि पूर्ण शुद्ध होता है, तैसे तुम्हारा बोध है, विवेकी जगत्‌विषे पूज्य है, तुम्हारे वचनों करि मेरी बुद्धि प्रफुल्लित हो आई, जैसे चंद्रमाको देखिके कमलिनी प्रफुल्लित होआती है, जैसे फूलोंके साथ मिलिकरि वायु सुगंधित होता है, जैसे सूर्यके उदय हुए सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित हो आते हैं, तैसे संतोंकी संगतिकरि बुद्धि सुखको प्राप्त होती है. हे राजन् ! वह कौन है, जो दीपक हाथविषे होवै, अरु टोयेविषे गिरै? तैसे वह कौन है, जो संतोंके संगकरि दुःखी रहै, वह कौन है.जिसके हाथविषे दीपक होवै,अरु तमको देखै,तैसे वह कौनहै,जो संतोंकी संगति करै, अरु दुःखी रहै, संतोंके संगकरि सबही दुःख नष्ट होतेहैं.हे राजन् ! तुम जो इस वनविषे आये हो, सो क्या प्रयोजनहै?तुम तौ पूजनेयोग्य हौ, अपना प्रयोजन कहौ ॥ राजोवाच ॥हे राक्षसी! मेरे नगरविषे जो मनुष्य रहते हैं, तिनको एक विषूचिका रोग आनि लगा है, तिस विषूचिकाकरि वह बहुत कष्टमान भये हैं, औषध भी बहुत करि रहे हैं, परंतु दुःख दूर नहीं होता, अरु हमने सुना है, कि एक राक्षसी है, वही जीवोंको कष्ट देती है, अरु तिसका मंत्र भी है तिस मंत्रके पढते निवृत्तहो जाती है, तिस तुमसरीखेके मारने निमित्त मैं रात्रिको वीरयात्रा करने निकसा हौं ॥ हे राक्षसी ! जो वह राक्षसी है सो तूहीं है, तौ हमारा तुम्हारा संवाद भी हुआ है, तिसका अंगीकार करिकै प्राणियोंकी हिंसा करनी छोड़ देहु; किसीको कष्ट न देहु ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन् ! तुमने सत्य कहा है, अब मैं हिंसाधर्मका त्याग किया है, किसी जीवको न मारौंगी ॥ राजोवाच ॥ हे राक्षसी ! तैंने कहा कि मैं अब किसी जीवको न मारौंगी, सो तेरा आहार तौ जीव हैं, जीवोंको मारेविना तेरे शरीरका निर्वाह कैसे होवैगा? ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन् ! छःसौ वर्ष मैं समाधिविषे स्थित रही थी,

तिसते उपरांत समाधि खुली, तब क्षुधा लगी, अब बहुरि हिमालय पर्वतकी कंदराविषे जाइकरि निश्चल समाधिविषे जुडौंगी; जैसे मूर्ति लिखी होती है, तैसी स्थित होऊंगी, जब समाधिते उतरौंगी, तब अमृतकी धारणाविषे विश्राम करौंगी, जब तिसते उतरौंगी; तब शरीरका त्याग करौंगी, परंतु हिंसा न करौंगी ॥ हे राजन्! जिसप्रकार मैं हिंसाधर्मको अंगीकार किया है, सो सुन॥ मुझको क्षुधा जब बडी लगी, तब तिसके निवारणके अर्थ हिमालय पर्वतके उत्तर शिखरऊपर एक वन है, तिसविषे एक सोनेकी शिला है, तिसके पास मैं लोहके स्तंभकी नाईं आकाश साथ जीवोंके नाशनिमित्त तप करने लगी, जब बहुत वर्ष व्यतीत भये, तब मनवांछित वर मुझको ब्रह्माजीने दिया, तब मेरे दो शरीर भये, एक आधारभूत सूर्यकी नाईं, अरु दूसरा पुर्यष्टकरूप भया, तव मैं विषूचिका नाम राक्षसी भई, तिस शरीरसाथ मैं अनेक जीवोंको भोजन करौं, अन्तर जाय प्रवेश करौं, परंतु ब्रह्माजीने मुझको कहाहै,जो गुणवान्होवैंगे,तिनपर तेरा बल न चलैगा,अरु जहां ॐमंत्रपढैंगे तहां भी तेरा बल न चलैगा तू निवृत्त हो जावैगी॥ हे राजन्! वही मंत्रका उपदेश अब तुम भी अंगीकार करौ, तिसमंत्रके पाठकरि सबके व्याधि रोग नष्ट होवेंगे,ब्रह्माजीका जो उपदेशहै, तिसको तुम नदीके तटपर जाइ कारि पवित्र होइकरि शीघ्रही ग्रहण करौ; तिसके पाठकरि तेरी प्रजाका दुःख नष्ट होजावैगा ॥ वसिष्ठ उवाच हे रामजी! इसप्रकार जब अर्धरात्रिके समय राक्षसीने कहा, तब निकटही नदीके तीरपर राजा, मंत्री, अरु राक्षसी तीनों गये, अरु अन्वयव्यतिरेककरिकै आपसमें सुहृद् भये तीनों पवित्र होइकरि नदीके तीरपर बैठे, तब जो मंत्र राक्षसीको ब्रह्माजीने उपदेश किया था, सोई मंत्र विषूचिकाप्रीतिसंयुक्त राजाको उपदेश करती भई, जिसके जपनेकरि कार्य सिद्ध होवै; तिस मंत्रका क्रमकरि उपदेश किया, अरु चलने लगी. तब राजाने कहा ॥ हे महादेवि! तू हमारी गुरु है, तुम्हारे विद्यमान हम कछु प्रार्थना करतेहैं, सो अंगीकार करना. जो महापुरुष हैं; तिनका सुंदर सुहृदपना बढता जाता है, अरु तुम्हारा शरीर भी इच्छाचारी है, ताते लघु शरीरको धारौ, मनके हरनेहारे भूषण वस्त्र-

संयुक्तस्त्रीका शरीर धारिकै कोई काल हमारे नगरविषे निवास करौ ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन् ! मैं तौ लघु आकार भी धरौंगी, परंतु मेरे भोजन देनेको तुम समर्थ न होहुगे, जो लघु स्त्रीका शरीर धरौंगी तौ भी मेरा स्वभाव राक्षसीका है, इसको तृप्त करना सामान्य जनोंकी नाईं तौ है नहीं, जैसे कछु शरीरोंका स्वभाव है सो सृष्टिपर्यंत तैसेही रहता है, अन्यथा नहीं होता ॥ राजोवाच ॥ हे कल्याणरूपी ! तू स्त्रीसमान शरीर धारिकै हमारे नगरविषे चलकरि रहु, जो चोर पापी मेरे मंडलविषे आवैंगे सो हम तेरे विद्यमान करैंगे, तब तू स्त्रीरूपको त्यागिकरि राक्षसीशरीरसाथ तिनको ले जाओ, अरु एकांत ठौर बैठ हिमालयकी कंदराविषे जाइके भोजन करना, काहेते कि, बडे भोजन करनेवालेको एकांतमें खाना सुखरूप है, तिनको भोजनकरिकै तृप्त होवैगी, तब सोय रहना, जब निद्राते जागै तब समाधिविषे स्थित होना जब समाधिते उतरै तब बहुरि हमारे पास आना, हम तेरे निमित्त बंदीजन इकट्ठेकरि रक्खैंगे तिनको ले जाना और भोजन करना, जो धर्मके निमित्त हिंसा है, सो हिंसा पापरूप नहीं, अरु जिसकी हिंसा करता है तिसका मरण भी नहीं, उसके ऊपर दया करना है काहेते कि, वह पाप करनेते छूटता है ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन् ! तुमने युक्त वचन कहे हैं, मैं स्त्रीका शरीर धरकरि तुम्हारे साथ चलती हौं, युक्तिपूर्वक वचनको सब कोऊ मानते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहिकरि राक्षसी महासुंदररूप स्त्रीका शरीर धारिकै बहुत कंकण आदिकके नानाप्रकारके भूषण धारे अरु पट वस्त्र बनाइकरि राजाके साथ चली, राजा अरु मंत्री आगे चले जावैं, अरु स्त्री पाछे चली जावै. तब तिसी रात्रिके समय राजा तिसको अपने ठाममें ले आया, और एकांत स्थानविषे तीनों जाय बैठे, रात्रिको परस्पर चर्चा करते रहे, जब प्रातःकाल हुआ, तब सौभाग्यवती स्त्री राक्षसी, राजाके अंतःपुरविषे जाइ बैठी, जो कछु स्त्रियोंका व्यवहार है, सो करती रहै, राजा अरु मंत्री अपने व्यवहारविषे लगे, जब षट्दिन व्यतीत भये, तब राजाके मंडलविषे तीन सहस्रचोर बांधे हुए थे वह सबही राजाने तिस कर्कटीके विद्यमान किये, तब

उसने राक्षसीका शरीर धारिके उनके भुजामंडलविषे लिये जैसे मेघ बूँदोंको धारता है, तैसे धारिकरि हिमालयके शिखरको चली, जैसे किसी दरिद्रीको स्वर्ण प्राप्त होता है, तब प्रसन्न होता है, तैसे वह प्रसन्न भई, अरु लेकरि हिमालयके शिखरको गई, तृप्त होइके भोजन किया, अरु सुखी होइके सोइ रही, दो दिनपर्यंत सोई रही, उपरांत जागिके समाधिविषे जुरी, पंच वर्षपर्यंत जुरी रही, तिसते जब उतरी तब बहुरि राजाके पास आई, इसही प्रकार जब आवै तब वह राजा पूजा करै, जेते कछु दुष्ट जन इकट्ठे किये होवैं, सो तिसके विद्यमान करै, वह ले जावै, अरु हिमालयकी कंदराविषे भोजन करै, भोजन करिके बहुरि ध्यानविषे जुरै, जब ध्यानते उतरै, तब बहुरि तहां आवै, बहुरि ले जावै ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जीवन्मुक्त होइकरि वह राक्षसी प्राकृत स्वभावको करते २ अनेक वर्ष व्यतीत भये, तब राजा विदेहमुक्त हुआ, बहुरि जो कोऊ उस मंडलका राजा होवै, तिस राजासाथ भी राक्षसीकी सुहृदता होवै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीसुहृदतावर्णनं नाम अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९.

सूच्याख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब राक्षसी आवै, तब किरात देशका राजा पूर्वकी नाईं उसकी पूजा करै, अरु जो कछु उनकी प्रजाविषे उत्पात होवै और विषूचिका अथवा कोई रोग होवै, सो राक्षसी निवृत्त करि देवै; इसप्रकार अनेक वर्ष व्यतीत भये तब एकवार उसको ध्यानविषे जुरे बहुत वर्ष व्यतीत भये, तब किरातदेशका राजा वाका दुःख निवारने अर्थ एक तिसकी प्रतिमा ऊँच स्थानपर स्थापन करत भया, तिस प्रतिमाका एक नाम कंदरादेवी, दूसरा नाम मंगलादेवी, तिसका ध्यान करके पूजा करनेलगे, तिसकरि भी तिसका कार्य सिद्ध होने लगा ॥ हे रामजी ! तिस प्रतिमाकेविषे वह देवी आप निवास करती भई, जो कोऊ जिस फलके निमित्त प्रतिमाकी पूजा करै, तिसका

कार्य सिद्ध होवै अरु न पूजै तौ दुःखित होवै, जब पूजन करै, तब दुःख नष्ट होवै, तिसका कार्य सिद्ध होवै, ताते जो कछु कोऊ कार्य्य करने लगै, सो प्रथम मंगलादेवीकी पूजा करै, तब उनका कार्य सिद्ध होवै, अरु विधि करिकै तिसकी पूजा करै, तिसकरि बहुत प्रसन्न होवै ॥ हे रामजी ! अबलग वही प्रतिमा किरातदेशविषे स्थित है, जिस जिस फलके निमित्त उसकी कोऊ सेवा करता है, तैसा तैसा फल उसको देती है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सूच्याख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः ६०.

मनोंकुरोत्पत्तिकथनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह आनंदित कर्कटीका आख्यान जैसे पूर्व व्यतीत भया है, तैसे मैंने तुझको कहा है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! राक्षसीका कृष्णवपु किस निमित्त था, अरु कर्कटी इसका नाम क्यों था ? जैसे हुआ है, तैसे कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह राक्षसोंके कुलकी कन्या थी, सो राक्षसोंका शुक्ल वपु भी होता है; अरु कृष्ण वपु भी होता है, रक्तपीत भी होता है ॥ हे रामजी ! एक जलजंतु कर्कट नाम प्राणी होता है, उसका श्याम आकार होता है, तिसके समान कर्कट नाम राक्षस था, तिसके समान उसकी यह पुत्री भई इस कारणते इसका नाम कर्कटी भया ॥ हे रामजी ! यहां और कर्कटीका प्रयोजन कछु न था, यहां अध्यात्मप्रसंग था, शुद्ध चेतनके निरूपणनिमित्त मैं तुझको कहा है, यह आश्चर्य है, जो असतरूप जगतके पदार्थ हैं सो सतरूप होइकरि भासतेहैं, अरु जो आत्मसत्ता सदा संपन्नरूप है, सो अविद्यमानकी नाईं भासते हैं ॥ हे रामजी ! वस्तुते तो एक अनादि अनंत परमकारण आत्मसत्ता स्थित है, तिसविषे भावनाके वास्ते जगतरूप भासता है, अरु स्वरूपते अनन्य रूप है, जैसे जल अरु तरंगविषे भिन्नता कछु नहीं; तैसे ब्रह्म अरु जगतविषे कछु भिन्नता नहीं, आत्माविषे जगत कछु द्वैतरूप हुआ नहीं, सदा आत्मसत्ता अपने आपहीविषे

स्थित है, तिसविषे जैसा जैसा चित्तस्पंद दृढ होता है, तैसा रूप होइ-
कारि भासता है, जैसे नर रतिकाको इकट्ठी करिकै तिसविषे अग्निकी
भावना करते हैं, अरु तापते हैं तब उनका शीत निवृत्त होता है, तैसे
सम स्थिर शांतरूप आत्माविषे जब जगत्की भावना फुरती है, तब
नानाप्रकारका जगत् भासता है, जैसे स्तंभविषे पुतलियां अन उदयही
शिल्पीके मनविषे उदयकी नाईं भासती हैं, तैसे भावनाके वशते जगत्
होइ भासता है, जैसे बीजविषे पत्र फूल टास गुच्छ अनन्यरूप होते हैं,
तैसे ब्रह्मविषे जगत् अनन्यरूप है, जैसे बीजवृक्षविषे कछु भेद नहीं, तैसे
ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, अविचारकरिकै भेद भासता है, विचार
कियेते जगत्भेद नष्ट होजाताहै॥ हे रामजी! अब यह विचार नहीं करना
कि, कैसे उपजा है, कहांसे आया है, अरु कबका हुआ है जैसे हुआ तैसे
हुआ, अब इसके निवृत्तिका उपाय करिये, जब तू जागैगा तब हृदयकी
चिज्जड ग्रंथि टूट जावेगी, शब्द अरु अर्थकी जेती कछु कल्पना उठतीहैं,
सो मेरे वचनोंकरि स्वरूप स्थित भयेते नष्ट हो जावैंगी॥ हे रामजी!
यह सब जगत् अनर्थरूप चित्तते उपजाहै, सो मेरे वचनोंके श्रवण कियेते
शांत हो जावैगा, इसविषे संशय नहीं करना, सब जगत् ब्रह्मतेउपजा है,
अरु सब ब्रह्महही स्वरूप है, जब तू ज्ञानविषे जागैगा तब ज्योंका त्योंही
जानैगा॥ रामउवाच॥ हे भगवन्! जो जिसते होताहै सो तिसते व्यतिरेक
होता है, अर्थ यह पंचमीविभक्तिकरि जो निरूपण करताहै, सो व्यति-
रेकके अर्थ है; जैसे कुलालते घट होता है सो कुलालते भिन्नहोताहै, तुम
कैसे कहते हौ, कि सब जगत् ब्रह्मते उपजा है, अरु ब्रह्मस्वरूपहै॥ वसिष्ठ
उवाच॥ हे रामजी! यह जगत् ब्रह्मतेउपजाहै, जेते कछु प्रतियोगीसहित शब्द-
शास्त्रोंने कहेहैं, सो दृश्यविषे हैं, शास्त्रने उपदेश जतावनेके निमित्त कहे
हैं, वास्तव यह शब्द कोऊ नहीं जैसे किसी बालकको परछाईंविषे वैताल
भासता है, अरु कोऊ पूछताहै कि, इस बालकको वैतालने किस भाग-
विषे स्थित होइकरि भय दिया है, तिसको कहता है, अमुक ठौरविषे
वैतालने भय दियाहै, सो व्यवहारके निमित्त उसको कहताहै और वैताल
तौ वहां कोऊ नहीं; तैसे आत्माके उपदेश निमित्त भेदकल्पना करीहै,

वास्तवते तिसविषे द्वैतकल्पना कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! ब्रह्मते जगत् हुआ, यह अर्थ केवल व्यतिरेकविषे नहीं होता है; जो कुलाल दंडते घट उपजाता है, सो व्यतिरेकके अर्थ है; स्वामीका टहलुआ यह भिन्नके अर्थ है, अरु यह अभिन्नरूप भी होते हैं, जैसे अवयवीके अवयव हैं, सुवर्णते भूषण हुए हैं, मृत्तिकाते घट हुए हैं, सो यह अभिन्नरूपहैं,अवयवी कोशरूप है; भूषण स्वर्णरूप है, घट मृत्तिकारूप है तैसे ब्रह्मते उपजा जगत् ब्रह्मरूपही है अरु वास्तवते भिन्न अभिन्न कारण परिणाम भाव विकार अविद्या अरु विद्या सुखदुःख आदिक मिथ्या कल्पना अज्ञानकारि उठतीहैं ॥ हे रामजी ! अबोधकरिकै भेदकल्पना हुई है, अरु ज्ञानकरिकै सव कल्पना शांत हो जातीहैं, अशब्दपद शेष रहताहै, जब तू ज्ञानयोग्य होवैगा, तब ऐसे जानैगा जो आदि मध्य अंतते रहित अविभाग अखंडरूप एक आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है, अज्ञानकरिकै अथवा जिज्ञासुको उपदेशनिमित्त द्वैतवादकल्पना है, बोध हुएते द्वैतभेद कछु नहीं रहता ॥ हे रामजी ! वाच्यवाचकभाव द्वैतविना सिद्ध नहीं होता, जब बोध हुआ तब वाच्यका मौन होता है, ताते महावाक्यके अर्थविषे निष्ठा करौ, अरु जेती कछु भेदकल्पना मनने रची है, तिनके निवृत्तिअर्थ मेरे वचन श्रवण करौ ॥ हे रामजी ! यह मन ऐसे उपजा है, जैसे गंधर्वनगर होता है, तिसते आगे जगत्की रचना करी है, जैसे मैं देखा है, तैसे तुझको दृष्टांत कहता हौं, जिसके जाननेते सब जगत् तुझको भ्रांतिमात्र भासैगा, अरु निश्चयको धारिकै जगत्की वासना दूरते त्यागिदेवैगा, बोधकरिकै सब जगत् मनका मननरूप भासैगा, अरु आत्मरूप होइकरि अपने आपविषे निवास करैगा, अर्थ यह जो जगत्की कल्पना त्यागिकरि अपने स्वभावसत्ताविषे स्थित होवैगा, ताते सावधान होइकरि सुन॥हे रामजी! यह मनरूपी बडा रोगहै, विवेकरूपी औषधकरि तिसको शांत करै अरु सव जगत् चित्तकरि कल्प्या है, सो शरीर आदिक वास्तव कछु नहीं, जैसे रेतसों तेल नहीं निकसता, तैसे जगत्ते वास्तव कछु नहीं निकसता, चित्तकरिकै भासता है, सो चित्तरूपी संसार स्वप्नकी नाईं है, अरु राग द्वेष आदिक संकल्पकरिकै युक्त है,

तिसते जो रहित हुआ , तो संसार समुद्रके पारको प्राप्त हुआ है, ताते शुभगुणोंकरिके चित्तकी शुद्धता करो, अरु जो विवेकी हैं, सो शुभकार्य करते हैं, अशुभको नहीं करते आहार अरु व्यवहार सब विचारिके करते हैं; तैसेही आर्यकी नाईं तुम सचेष्टा शास्त्रअनुसार करो, जब ऐसे अभ्यास तुमको होवैगा, तब शीघ्रही ज्ञानवान् होहुगे अरु ज्ञानके प्राप्त हुए सब कल्पना मिटिजावैंगी, आत्मस्थिति होवैगी यह सब जगत्‌रूपी चित्र मनही रचे हैं, जैसे मोरका अंडा काल पाइकरि अनेक रंगोंको धारता है; तैसे मन अनेक प्रकारके जगत्‌को धारता है, सो मन जड अरु अजडरूप है, जो मनविषे चेतनभाग है, सो सब अर्थका बीजरूपहै बीज कहिये सबका उपादान है, अरु तिसका जो जडभाग है, सो जगत्‌रूप है ॥ हे रामजी ! सर्गके आदिविषे पृथ्वी आदिक तत्त्व अविद्यमान थे, तिनको विद्यमानकी नाईं ब्रह्मा देखत भया, तैसे स्वप्नविषे जगत् विद्यमानकी नाईं भासता , तैसे देखत भया सो प्रमादकरि देखता भया जड संवेदन करि पहाड आदिक जगत् देखत भया, अरु चेतन संवेदन करि जंगमरूप जगत्‌को देखत भया, सो सब जगत् दीर्घवेदना है, वास्तवते सब देहादिक शून्यरूप हैं; सब आत्माकरि व्यापे हुए हैं, अरु तिसका शरीर कोऊ नहीं, अपने करिके जो दृश्यरूप मन चेताहै; सोई मन आत्माका शरीर है, सो आत्मा विस्तरणरूप है, अरु निर्मल स्थितहै, मन तिसका आभासरूप है, जैसे सूर्यकी किरणोंकरि जलाभास होताहै, तैसे आत्माका आभास मन है, सो मनरूपी बालक जगतरूपी पिशाचको अज्ञानकरि देखताहै, अरु ज्ञानकरिके परमात्मपद शांतरूप निरामयको देखता है ॥ हे रामजी ! जब आत्मा चैत्यताको प्राप्त होता है, तब वही चित्तरूप दृश्य द्वैत एकब्रह्मको देखता है, तिसके निवृत्तिअर्थ मैं तुझको कथा कहता हौं, तू श्रवण करु. जो वचन दृष्टांत दार्ष्टांत सहित होता है, अरु वाणी भी मधुर होती है, अरु स्पष्ट होवै तब गुरुका वचन श्रोताके हृदयविषे पसर जाता है, जैसे जलविषे तेलकी बूँद पसर जाती है, तैसे पसर जाता है, अरु जिसका वचन दृष्टांत दार्ष्टांतते रहित होता है, अरु अर्थ स्पष्ट नहीं होता अरु क्षोभसंयुक्त वचन कहता है, अरु अक्षर पूर्ण नहीं होता, सो वचन श्रोताके हृदयविषे नहीं ठहरता,

उपदेष्टाका वचन भी निष्फल होजाता है, अरु मैं तुझको आख्यान कहता हौं सो नानाप्रकारके दृष्टांतसहित मधुर वाणीसहित कहताहौं, अरु स्पष्ट अर्थ करके कहता हौं, जैसे चंद्रमा अपने गृहऊपर उदय होवै, अरु मंदिर शीतल हो जावै, तैसे मेरे स्पष्ट वचन अरु प्रकाशरूप अर्थ श्रवण कियेते तेरा भ्रम निवृत्त होजावैगा ॥

इति श्रीयो०उत्पत्तिप्र०मनोंकुरोत्पत्तिकथनं नाम षष्टितमः सर्गः ॥६०॥

एकषष्टितमः सर्गः ६१.
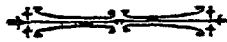
आदित्यसमागमवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! पूर्व जो मुझको ब्रह्माने सर्गका वृत्तांत कहा; सो मैं तुझको कहता हौं; एक कालमें मैं ब्रह्माजीके पास गया था अरु पूछा था कि, हे भगवन् ! ये जगत्गण कहांते आये हैं, अरु कैसे उत्पन्न भये हैं, तव पितामहजी मुझको इंद्र ब्राह्मणका आख्यान कहत भया ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हे मुनीश्वर ! यह सब जगत् मनते उपजा है, अरु मनकरिकै भासता है, जैसे जलते द्रवताकरिकै नानाप्रकारके तरंगचक्र पडे फुरते हैं; सो मनके फुरनेकरि सव जगत् फुरते हैं, अरु मनरूप हैं ॥ हे मुनीश्वर ! पूर्व कल्पविषे एक वृत्तांत देखा है, सो सुन.एक समय दिनका क्षय हुआ, मैं संपूर्ण सृष्टिको संहार करिकै एकाग्रभाव होकरि रात्रिको स्वस्थभाव होयकरि रहा, जब मेरी रात्रि व्यतीत भई, अरु मैं जागा, तब उठिकरि संध्यादिककर्म विधिसंयुक्त करत भया; अरु वडे आकाशकी ओर मैं देखत भया, सो तम अरु प्रकाशते रहित व्याप्त शून्यरूप इतरते रहित मैं देखत भया, अरु चिदाकाशविषे चित्तको जोडा, अरु सर्गके उपजानेका संकल्प चित्तविषे धारा, तव मुझको शुद्ध सूक्ष्म चिदाकाशविषे सृष्टि दृष्टि आई, सो कैसी सृष्टि भासी, जो बड़े विस्तार सहित अरु परस्पर अदृष्टरूप, जो एक सृष्टिको दूसरी न देखै अरु एक एक सृष्टिविषे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, तीनों देवता रहैं, अरु देवता, गंधर्व, किन्नर, मनुष्य, सुमेरु, मंदराचल, कैलास, हिमालय आदिक पर्वत, पृथ्वी, नदियां,

सातों समुद्र आदिक सब सृष्टिके विस्तारको मैं देखत भया, सो दश सृष्टिकी संख्या देखी, तिनविषे दश ब्रह्मा देखे, मानों मेराही प्रतिबिंबहैं, मेरीही मूर्ति कमलते उत्पन्न हुई है, अरु राजहंसके ऊपर आरूढ हुए दशही ब्रह्मा देखे, अरु भिन्न भिन्न तिनकी सृष्टि देखीं, बडे नदीके प्रवाह चलते हैं, वायु आकाशविषे चलता है, सूर्य चंद्रमा उदय होते हैं, देवता स्वर्गविषे क्रीडा करते , मनुष्य पृथ्वीविषे फिरते हैं, दैत्य नाग पातालविषे भोगोंको भोगते हैं, कालचक्र फिरता है, द्वादश मास तिसके द्वादश कोल हैं, षट् ऋतु वसंत आदिक हैं, वासनाके अनुसार शुभ अशुभ आचारकरिकै नरक स्वर्ग भोगते हैं, अरु मोक्षफलको पाते हैं, सृष्टिसृष्टिविषे सप्त द्वीप हैं, उत्पत्ति प्रलय कल्पकरि होते हैं, गंगाजीका प्रवाह है, जगत्के गलेमें यज्ञोपवीत है, कहूं ऐसे स्थित है, जहां सदा प्रकाश रहता है, कहूं अंधकार रहता है, तिसविषे स्थावर जंगम प्रजा मैं देखत भया, बिजलीकी नाईं सृष्टि उपजी है, अरु मिट जाती है, जैसे वृक्षके पत्र उपजते हैं, अरु नष्ट हो जाते हैं; अरु गंधर्वके नगरवत् सृष्टि देखी। एक एक ब्रह्मांडविषे स्थावर जंगम प्रजा देखी, जैसे गूलरके फलविषे अनेक मच्छर होते हैं, तैसे एक एक ब्रह्मांडविषे जीव देखे, आत्माविषे कालका भी अभाव है, सो क्षण लव दिन मास वर्षोंका प्रवाह चला जाता मैंने देखा ॥ हे मुनीश्वर ! अंतवाहक दृष्टि करके मैं उन सृष्टिको देखा, जब मैं चर्मदृष्टि करि देखौं, तब कछु न भासै, दिव्यदृष्टिकारि सब कछु भासै चिरकालपर्यंत मैं देखता रहा, जो कदाचित् चित्तभ्रम होवै अरु स्पष्टही भासै, तब एक सृष्टिके सूर्यको देखिकै मैं आवाहन किया, तब सूर्य मेरे निकट आइके प्राप्त भया, तिसको कहत भया ॥ हे देवदेवेश ! भास्कर तुमको कुशल है, ऐसे कहिकर मैं बहुरि कहा कि, हे सूर्य ! तू कौन है ? अरु यह सृष्टि कहांते उपजी है; यह एक जगत् है वा ऐसे अनेक जगत् हैं; जैसे तुम जानते हौ तैसे कहौ, तब वह सूर्य भी त्रिकालज्ञान रखता था, मुझको जानिकै प्रणाम किया, अरु आनंदितवाणी कहत भया ॥ भानुरुवाच ॥ हे ईश्वर ! इस दृश्यरूपी पिशाचके तुम नित्यही कारण होते हौ, तुम आपही जानते हौ; मेरेको

किसनिमित्त पूछते हौ, अरु जो लीलाके अर्थ पूछते हौ, तौ जैसे वृत्तांत हुआ है, तैसे मैं तुम्हारे विद्यमान प्रार्थना करता हौं॥ हे भगवन्! यह जो सत् असत्रूपी नानाप्रकारोंके व्यवहारोंसंयुक्त जगत् भासता है, सो सब मनके फुरनेविषे स्थित है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्प० आदित्यसमागमवर्णनं नाम एकषष्टितमः सर्गः॥ ६१॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२.

ऐंदवसमाधिवर्णनम्।

भानुरुवाच॥ हे भगवन्! तुम्हारा जो कल्पका दिन व्यतीत भया है, तिस कल्पविषे जो जंबूद्वीप था, तिसकी कोणविषे कैलास पर्वत था, तिसकी कंदराविषे स्वर्णजेष्ठ नाम एक तुम्हारा पुत्र था; सो वहां कुटी रचता भया था. तहां जाइ साधुजन निवास करते थे, तहां वेदका वेत्ता शांतरूप इंदु नाम ब्राह्मण कश्यप ऋषिके कुलते प्रगट हुआ था, सो तिस कुटीकेविषे जाइकै स्त्रीसहित निवास करत भया, तिस स्त्रीविषे प्राणोंकी नाईं स्नेह था, सो स्त्री पुत्रते रहित होत भई जैसे मरुस्थलविषे घास नहीं उपजता, तैसे उसते संतान न उपजै, अरु बहुत सुंदर पुत्रते रहित थी, जैसे शरत्कालकी वेलि बहुत सुंदर होती है, परंतु फलते शून्य होती है, तैसे वह थी, तब दोनों पुरुष अरु स्त्री पुत्रके निमित्त तप करने लगे, कैलासके निकट निर्जन स्थानमें कुंजविषे एक वृक्ष था, तिसके ऊपर चढ़ि बैठे, तहां बैठिकरि तप करने लगे, जलपान करैं, अरु भोजन कछु न करैं, इसप्रकार रात्रि दिन व्यतीत करैं, बहुरि एकही अंजली पान करनेलगे, फिर तिसका भी त्याग किया, फुरनेते रहित वृक्षकी नाईं होके बैठे रहे; तिनको तप करते त्रेता अरु द्वापर युग व्यतीत भये, तब शशिकलाधारी रुद्र तुष्टमान होइकरि तिनके निकट भवानी-शंकर दोनों आये, तिनके सन्मुख देखते भये, जो स्त्रीपुरुष दोनों वृक्षके ऊपर बैठे हैं, तब तिन्होंने शिवको देखिकै प्रणाम किया; अरु दोनों प्रफुल्लित हो आये. जैसे दिनकी तपत करि सकुचि हुई चंद्रमुखी कमलिनी ... उदय हुए प्रफुल्लित हो जाती हैं, तैसे महाहिमकी नाईं शिवको

देखिकारि प्रफुल्लित भई, मानो आकाश अरु पृथ्वी दोनों रूप धारिकै आन खडे हुए हैं, ऐसे भवानीशंकर तिस ब्राह्मणको कहते भये॥ ईश्वर उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! तू वर माँग, मैं तुझपर तुष्ट हुआ हौं, जो कछु तुझको वांछित वर है, सो तू माँग॥ हे ब्रह्माजी ! जब ऐसे शिवने कहा तब ब्राह्मण प्रफुल्लित होकारि कहत भया ॥ हे भगवन् ! देवदेवेश; मेरे गृहविषे दश पुत्र होवैं, सो बडे बुद्धिमान् होवैं, अरु कल्याणमूर्ति होवैं. जिसकारि मुझको बहुरि शोक कदाचित् न होवै ॥ भानुरुवाच ॥ हे भगवन् ! इसप्रकार जब ब्राह्मणने कहा, तब ईश्वरने कहा, ऐसे ही होवैगा ऐसे कहिकारि अंतर्धान भये, जैसे समुद्रका तरंग उछलिकै मिटजाताहै, तैसे शिव अंतर्धान भये, तब वह पुरुष स्त्री दोनों शिवके चरणोंको ग्रहण कारिकै प्रसन्न भये,जैसे सदाशिव अरु भवानीकी मूर्त्ति है,तैसे वह प्रसन्न होइकारि अपने गृहविषे आवत भये, तब ब्राह्मणी गर्भवती भई, जैसे वर्षाकालके बादल जलकारि पूर्ण होते हैं, तैसे वह गर्भकारि पूर्ण भई, समय पायके दशही पुत्र तिसको होत भये, जैसे द्वितीयाके चंद्रमाकी शोभा होती है, तैसे उनकी शोभा भई, अरु षोडश वर्षके आकारकी नाईं ब्राह्मणीका आकार रहा, वृद्धभावको न प्राप्त भई, अरु वह दशही संस्कारको ले उपजे,अरु थोडे कालविषे बड़े हो गये, जैसेवर्षाकालकी बादली थोडी भी शीघ्र बड़ी हो जाती है, तैसे वह थोडे कालविषे बड़े हो गये, जब सप्त वर्षोंके भये, तब सब वाणीके वेत्ता भये, तब उनके माता अरु पिता दोनों शरीरको त्यागिकै अपनी गतिको प्राप्त भये,वह दशही ब्राह्मण मातापितातें रहित भये,अपने गृहको त्यागिकारिकै कैलासके शिखरऊपर चढे, अरु परस्पर विचार करने लगे कि, वह कौन ईश्वर हैं, जो परमेश्वर है, अरु वह कवन ईश्वरपद है, जिसके पायेतें बहुरि दुःखी न होवै, अरु जिसका नाश भी न होवै, जिसके पायेते सबका ईश्वर होवै, तब एक भाईने कहा कि, सबते बड़ा ऐश्वर्य मंडलेश्वरका है, सबकेऊपर तिसकी आज्ञा चलती है, बहुरि दूसरे भाईने कहा; मंडलेश्वर विभूति भी कछु नहीं, काहेते कि, वह भी राजाके अधीन होता है, ताते राजाका पद बड़ा होता है,बहुरि औरभाईने कहा, राजाकी

विभूति भी कछु नहीं, काहेते कि,राजा चक्रवर्तीके अधीन होताहै, ताते चक्रवर्तीका पद बड़ा है;बहुरि और भाईने कहा चक्रवर्त्तीभी कछु नहीं,वह भी यमके अधीन होता है, ताते यमका पदबड़ा है,बहुरि और भाईने कहा कि,इंद्रके आगे यमकी विभूति कछु नहीं, ताते इंद्रका पद बडा है, तब और भाईनेकहा इन्द्रकी विभूति भी कछु नहीं ब्रह्माके एकमुहूर्त्तविषे इंद्र नष्ट होजाता है, तब सबसे ज्येष्ठ बडे भाईने कहा,जैसे मृगके समूहको मृग कहै; तैसे छोटे भाईको बुद्धिमान् बडा भाई गंभीर वचनकरि कहत भया, जेती कछु विभूति हैं,सो सब ब्रह्माके कल्पविषे नष्ट हो जाती हैं, ताते बडा ऐश्वर्य ब्रह्माजीका है, इसते बड़ा और कोऊ नहीं. हे भगवन्! इसप्रकार जब बडे भाईने कहा, तब सबने कहा, भली कही भली कही ! और फिर सबते बडे भाईसे कहा;हे तात ! जो सब दुःखका नाशकर्त्ता जगत् पूज्य ब्रह्मपद है, तिसको हम कैसे प्राप्त होवैं जिस उपायकरि प्राप्त होवैं, सो उपाय कहौ,बहुरि भाई कहत भया, हे भ्राता ! और सब भावनाको त्याग करौ अरु यह भावना निश्चयकरिके करौ कि, हम ब्रह्मा हैं, अरु पद्मासनपर बैठ हैं, मैं ब्रह्मा हौं, अरु सब सृष्टिका कर्त्ता हौं, अरु सबकी पालना कर्त्ता हौं, अरु संहार कर्त्ता मैं ही हौं, जेती कछु जगज्जाल है, तिसका आश्रयभूत मैंही हौं, सब सृष्टि मेरे अंगविषे स्थितहै;ऐसे निश्चयको धारिकै बैठो,अरु सजातीय भावनाको धारि बैठौगे तब, तुमको ब्रह्माका पद प्राप्त होवैगा ॥ हे भगवन् ! जब इस प्रकार बडे भाईने कहा, तब छोटे भाइयोंने कहा, हे तात ! तुमने यथार्थ कहा है, जैसे तुमने कहा है, तैसेही हम करते हैं, ऐसे मानिकरि बडे भाईसहित सब ध्यानविषे स्थित भए, जैसे कागजऊपर मूर्ति लिखी होती है, तैसेही दशों ध्यानविषे जुरि गये, अरु मनविषे यही चिंतवना करते भये कि मैं ब्रह्मा हौं, कमल आसन मेरा है, मैं सृष्टिकर्त्ता हौं, भोक्ता भी मैंही हौं; महेश्वर भी मैंही हौं, सांगोपांग जगत् कर्म मैंनेही रचे हैं, अरु सरस्वती गायत्रीसहित जो वेद है, सो मेरे आगे आय खडे हैं यह लोकपाल अरु सिद्धोंके मंडलोंको पालनेवाला हौंसोसबमैंनेही रचेहैं, स्वर्गलोक, भूमिलोक पाताललोक, पहाड, नदियां, समुद्र सब मैंनेही रचे हैं, अरु महाबाहु

वज्रके धारनेहारा यज्ञोंका भोक्ता इंद्र मैंनेही रचा है, अरु सूर्य मेरी आज्ञासे तपता है, अरु जगत्की मर्यादानिमित्त सब लोकपाल मैंनेही रचे हैं. जैसे गौको गोपाल पालता है; तैसे लोकपाल मेरी आज्ञा पाइ कारि जीवोंको पालते हैं, अरु जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं; बहुरि मिट जाते हैं, तैसे जगत् मुझते उपजा है; बहुरि मेरेहीविषे लीन होता है. अरु मैं सदा आत्मपदविषे स्थित हौं, अरु क्षण दिन मास वर्ष युग आदिक काल मेराही रचा हुआ है. मैंनेही सब कालके नाम रक्खे हैं; मैंही दिनको उत्पन्न करता हौं; अरु रात्रिको लीन कारिलेता हौं. सदा आत्मपदविषे स्थित हौं; पूर्ण परमेश्वर मैंही हौं ॥ हे ब्रह्माजी ! इसप्रकार वह दशही भाई भावना धारिकारि बैठे रहे; मानो कागज ऊपर मूर्ति लिख छोडी है; तैसे सब वृत्तिके जालको अंतरते त्यागिकारि एक ब्रह्माके ध्यानविषे जुरि गये ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे ऐंदवसमाधिवर्णनं नाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३.

जगद्रचनानिर्वाणवर्णनम् ।

भानुरुवाच ॥ हे भगवन् ! इसप्रकार इंद्रके दशों पुत्र पितामहकी भावना धारिकारि बैठे, तब तिनके देह धूप अरु पवन कारिकै सूख गये, जैसे ज्येष्ठ आषाढविषे कमलपत्र सूखकारि गिरपडते हैं, तैसे तिनके देह सूखकारि गिरपड़े, तब वनचर जीव तिनको भक्षण कारि गये, अरु शरीरको आपोआप खैंचे, जैसे फलको वानर पकडते हैं; अरु विदारण करते हैं तैसे इनके देहको विदारने लगे; अरु तिनकी वृत्ति ध्यानते छूटके बाह्य देहादिक अध्यासविषे न आई, ब्रह्माकी भावनाविषेही लगी रही, इसप्रकार जब चतुर्युगका अंत भया, अरु तुम्हारे कल्पदिनका क्षय होने लगा, द्वादश सूर्य तपने लगे, पुष्कल मेघ गर्जिकै वर्षने लगे, बडा भूचालन भया; वायु चलने लगा, समुद्र उछल पडे, सब जलही जल होगया सब भूत क्षयको प्राप्त भये, सबको संहार करके रात्रिको तुम आत्मपदविषे

जाय स्थित भये, तब उनके शरीरभी नष्ट होगये, अरु पुर्यष्टक उनके आकाशविषे आकाशरूप होयके ब्रह्माके संकल्पको लेकारि तीव्र भावनाके वशते दशों सृष्टिसहित दश ब्रह्मा होत भये, भिन्न भिन्न अपनी अपनी सृष्टिके ब्रह्मा भये, अब तुम जागिकारि देखो हौ जो आकाशविषे फुरते हैं ॥ हे भगवन्! तिन दश ब्राह्मणके चित्ताकाशमेंही सृष्टि स्थितहैं, तिन दशसृष्टिके मध्यविषे एक सृष्टिका सूर्य मैं हौं, आकाशविषे मेरा मंदिर है, काल जो है क्षण दिन पक्ष मास सब युग सो मुझहीकारि होते हैं, इस क्रियाविषे मुझको उन्होंने जोडा है॥ हे भगवन् ! इस प्रकार मैं तुझको दश ब्रह्मा अरु दशसृष्टि कही हैं, सो सृष्टि सब मनोमात्र हैं, आगे जैसी तुम्हारी इच्छा है, तैसे करौ भिन्न भिन्न कल्पना जगज्जाल विस्तारको प्राप्त भई है, सो इंद्रजालकी नाई है, चित्तके भ्रमकरिकै पडे भासते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जगद्रचनानिर्वाणवर्णनं नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ६४.

ऐन्दवनिश्चयकथनम् ।

ब्रह्मोवाच ॥ हे ब्राह्मण ! ब्रह्मवेत्ताविषे श्रेष्ठ, इसप्रकार जब ब्रह्माके सूर्यने ब्रह्माको कहिकारि सो तूष्णीं हुआ, तब तिसके वचनोंको विचारिकारि मैं कहत भया, हे भानु ! तुमने सृष्टि दश कहीं तिसते अब मैं क्या रचौं ? यह तौ दश सृष्टि हुई हैं, अरु दशही ब्रह्मा हैं, अब मेरे रचनेकारि क्या सिद्ध होवैगा ॥ हे मुनीश्वर ! जब इसप्रकार मैंने कहा तब सूर्य विचार कर कहत भया ॥ सूर्य उवाच ॥ हे प्रभो ! तुम तौ निरिच्छित हो, तुम्हारेविषे सृष्टि रचनेकी इच्छा कछु नहीं सृष्टिका रचना तुमको विनोदमात्र है, किसी कामनाके निमित्त नहीं रचते, तुम निष्कामरूप हो, जैसे जलकरिकै सूर्यका प्रतिबिंब होता है, जल विना प्रतिबिंबकी कल्पना नहीं होती, तैसे संवेदनकरिकै तुम्हारेविषे सृष्टिकी रचना होती है, अज्ञानीको तुम सृष्टिकर्त्ता भासते हौ, तुम सदा ज्योंके त्यों निष्क्रियरूप हो ॥ हे भगवन्! तुमको शरीरादिककी प्राप्ति

अरु त्यागविषे रागद्वेष कछु नहीं, उत्पत्ति अरु संहारकी तुम्हारेविषे कल्पना कछु नहीं, लीलामात्र तुमते सृष्टि होती है, जैसे सूर्यकरिकै दिन होता है, अरु सूर्यके अस्त होनेकरि दिन लय होता है; अरु सूर्य असंसक्तरूप है, तैसे तुम्हारेविषे संवेदनके फुरनेकरि सृष्टि होती है संवेदनके अस्फुर हुए सृष्टिका लय होता है, अरु तुम सदा असंसक्त हौ,अरु जगत्‌की रचना तुम्हारा नित्यकर्म है, तिन कर्मके त्याग कियेते तुमको कछु अपूर्व वस्तु भी प्राप्त नहीं होती, ताते जो कछु तुम्हारा नित्यकर्म है, सो तुम करौ ॥ हे जगत्पते ! महापुरुष जो होते हैं, सो जो कछु उनको प्राप्त होता है, तिसमें यथाप्राप्त असंसक्त होइकरि विचरते हैं, कार्यको करते हैं, जैसे निष्कलंक दर्पण प्रतिबिंबका अंगीकार करता है, तैसे महापुरुष यथाप्राप्त कर्मको असंसक्त होइकरि अंगीकार करते हैं, जैसे ज्ञानवान्‌को कर्म करनेविषे कछु प्रयोजन नहीं, तैसे तिसको अकरनेविषे कछु प्रयोजन नहीं; करणा अकरणा दोनों तिसको सम हैं, इस कारणते दोनोंविषे सुषुप्तिरूप हौ ॥ हे भगवन् ! तुम तौ सदा सुषुप्तिरूप हौ, तुमको उत्थान किसी प्रकार नहीं, ताते तुम सुषुप्ति प्रबोध होकरि अपने प्राकृत आचारको करौ, जो इंद्र ब्राह्मणोंके पुत्रोंकी सृष्टिको देखौ, तब भी विरुद्ध कछु नहीं, जो ज्ञानदृष्टिकरि देखौ तौ एकही ब्रह्म अद्वैत है, और कछु नहीं बना; अरु जो चित्त दृष्टिकरि देखौ तब संकल्परूप अनेक सृष्टि फुरती हैं, तिनविषे आस्था करनी क्या है? अरु जो चर्मदृष्टि करिकै देखौ तौ तुम्हारी सृष्टि भासतीही नहीं, उनके साथ तुम्हारा क्या है ? उनकी सृष्टि उनहीके चित्तविषे स्थित है, अरु उनकी सृष्टिको तुम नाश भी न करि सकोगे, काहेते कि; जो कछु इंद्रियोके साथ कर्म होता है, तिसके नाश करनेको समर्थ होता है, परंतु मनके निश्चयको नाश नहीं कर सकता ॥ हे भगवन् ! जो दृढ निश्चय जिसके चित्तविषे हो गया है, तिसको वह निवृत्त करै, तब निवृत्त होता है, और कोऊ निवारणेको समर्थ नहीं देह नष्ट होवै, परंतु निश्चय नष्ट नहीं होता, जो चिरकालका निश्चय दृढ होइ रहा, तिसका स्वरूपते नाश नहीं होता ॥ हे भगवन् ! जो मनविषे दृढ निश्चय हो रहा है, सोई पुरुषका रूपहै, तिसका निश्चय और

किसीकरि नहीं होता; जैसे जलके सींचनेकरि पर्वत नहीं चलायमान होता, तैसे चित्तका निश्चय औरकरि नहीं चलायमान होता ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे ऐंदवनिश्चयकथनं नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पंचषष्टितमः सर्गः ६५.
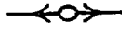
कृत्रिमेंद्रवाक्यम् ।

भानुरुवाच ॥ हे देवेश ! इसपर एक पूर्व इतिहास हुआ है, सो तुम श्रवण करौ, एक इंद्रद्युमनाम राजा था; तिसकी कमलनयनी स्त्री थी, तिसका नाम अहल्या था, तिसके नगरविषे इंद्र नाम एक पुरुष था, सो ब्राह्मणका पुत्र बहुत सुंदर बडा बलवान् था; अरु अहल्या राजाकी पट्टराणी थी, तब तिस राणीने पूर्वकी अहल्या गौतमकी स्त्री इंद्रकी कथा सुनी, तब एक सहेलीने कहा, हे राणी ! जैसे पूर्व अहल्या थी तैसे तू है, अरु जैसा वह इंद्र सुंदर था, तैसे तुम्हारे नगरविषे भी एक इंद्र ब्राह्मण है ॥ हे भगवन्! जब इसप्रकार राणीने सुना तब उस इंद्रविषे भी राणीका अनुराग हुआ, परंतु वह राणीको प्राप्त न होवै, राणीका शरीर इसी कारणते सूखता जावै, तब राजाने सुना कि इसको गरमीका कछु रोग है, तिसकेनिवारणे अर्थ केलेके पत्र और शीतलऔषध तिस को दिलवाये, परंतुउसकोवांछितपदार्थ कोऊइष्ट न आवै, खानपानशय्यादिक जेते कछु इंद्रियोंके वांछित पदार्थ हैं, सो तिसको सुखरूप कोऊ न भासैं, वह दिनदिनविषे पीत वर्ण होती जावै, अरु इंद्रके वियोगकरिकै तलफत रहै जैसे जलविना मछली मरुस्थल विषे तलफती हैं, तैसे वह तलफती रहै, अरु कहै, हा इंद्र ! हा इंद्र ! ऐसे विलाप करती रहै, लोकलाजको त्यागदीनी; उस इंद्रविषे बहुत स्नेह बढि गया, तब विचारकरि एक सखीने कहा; हे राणी! मैं इंद्र ब्राह्मणको ले आती हौं, जब इसप्रकार सखीने कहा; तब राणी सावधान हो आई, जैसे चंद्रमाको देखिकै कमलिनी खिल आती है, तैसे उसके शब्दकरि राणी खिल आई; तब वह सखी ब्राह्मणके

घर गई, इस इंद्रको प्रबोधकारिकै रात्रिके समय अहल्याके पास ले आई, तब गोप्यस्थानविषे इकट्ठे भये, तहां परस्पर लीलाकारि अरु दोनोंका चित्त परस्पर स्नेहकारि बंधायमान भया, अरु बहुत प्रसन्न भी भये, जैसे चकवी अरु चकवेका आपसमें स्नेह होता है, तैसे उनका स्नेह भया, जैसे रति अरु कामदेवका स्नेह होता है, तैसे उनका स्नेह भया, एक दूसरेविना एक क्षण भी रहि न सकै. और सब क्रिया उनकी निवृत्त होगई, अरु लज्जा भी दूर होगई, जैसे चंद्रमाको देखिकै चंद्रमुखीकमल प्रसन्न होवै, तैसे एक दूसरेको देखिकै वह प्रसन्न होवैं॥ हे भगवन्! ब्रह्माजी उस रानीका भर्त्ता भी बडा गुणवान् था, परंतु रानीने भर्ताको त्याग किया, अरु इंद्रके साथ उसका परस्पर स्नेह भया, जब राजाने उनका संपूर्ण वृत्तांत श्रवण किया, तब बलकारि इनको दंडताड़ना करावने लगा, परंतु उनको खेद कछु न होवै, जब चिक्कडविषे उनको डारै तब कमलकी नाईं ऊपरही रहैं, कष्ट कछु न होवै, बहुरि बर्फविषे उनको डारि दिये तौ भी खेदवान् न हुवे. तब राजाने कहा, हे दुर्मतियो! तुमको दुःख कछु क्यों नहीं होता? उन्होंने कहा, हमको दुःख कैसे होवै, हम तौ आपको भी नहीं जानते, तब अहल्याने कहा, मुझको सब इंद्रही भासता है, भिन्न दुःख कहाँ होवै, इंद्रने कहा मुझको सब अहल्याही भासती है, भिन्न दुःख कहां होवै, तेरे दंड करनेकारि हमको कछु दुःख नहीं होता, परस्पर हम हर्षवान् हैं, तब राजाने उनको बांध डारे, बहुरि अग्निविषे डार दिये, तौ भी जले नहीं, बहुरि हस्तिके चरणोंविषे डार दियेतोभी कष्ट कछु न भया, तब राजाने कहा, रे पापियो! तुमको अग्नि आदिकविषे दुःख क्यों नहीं होते, तब इंद्रने कहा, हे राजन्! जेती कछु जगज्जाल है, सो मनविषे स्थित है, अरु जैसा मन है, तैसा रूप पुरुषका है जैसा निश्चय मनविषे दृढ होता है, तिसको दूर करनेको कोऊ समर्थ नहीं भावै सो दंड हमको दो, परंतु कछु दुःख नहीं होवैगा, काहेते कि हमारे हृदयविषे परस्पर प्रतिभा हो रही है, जो कुछ अनिष्ट हमको होवै, तब दुःख भी होवै, अनिष्ट तौ कुछ हुआ नहीं तब दुःख कैसे होवै? हे राजन्! जो कछु मनविषे दृढ़ीभूत होता है, सोई पडा भासता है, तिसका

निश्चय दूर कोऊ नहीं करि सकता; शरीर नष्ट हो जाताहै, परंतु मनका निश्चय नाश नहीं होता॥ हे राजन्! जो मनविषे तीव्र संवेग होता है, सो वर अरु शापकरि भी दूर नहीं होता, जैसे सुमेरु पर्वतको मंद मंद वायु चलाय नहीं सकता, तैसे मनके निश्चयको कोऊ नहीं चलाय सकता, इसी कारणते कहा है कि, मेरे हृदयविषे इसकी मूर्ति स्थिरीभूत है, इसके हृदयविषे मेरी मूर्ति स्थिरीभूत है, इसको सब जगत् मैंही भासता हौं, अरु मुझको सब जगत् यही भासती है, जो कछु दूसरा भासै तब दुःख भी होवै, जैसे लोहेके कोटविषे होवै तिसको दुःख देनेको कोऊ समर्थ नहीं तैसे मुझको दुःख कोऊ नहीं, जहां मैं जाता हौं, तहां सब ओरते अहल्याही भासती है, ताते दुःख कोऊ नहीं, जैसे ज्येष्ठ आषाढकी वर्षाविषे पर्वत चलायमान नहीं होता, तैसे हमको दुःख नहीं होता ॥ हे राजन्! मनका नाम अहल्या है अरु मनका नाम इंद्र है, अरु मनने सब जगत् रचा है, जैसा जैसा मनविषे दृढ निश्चय होता है, तैसाही भासता है, सुमेरुकी नाईं स्थिर हो जाता है, नष्ट नहीं होता, जैसे पत्र, फूल, फल, टासके काटेते वृक्ष नष्ट नहीं होता, जब बीजही नष्ट होवै, तब वृक्ष नष्ट होता है, तैसे शरीरके नष्ट हुएते मनका निश्चय नष्ट नहीं होता, जब मनका निश्चय ही उलट पड़ै तबही दूर होता है, एक शरीर जब नष्ट होता है, तब और शरीर धारि लेता है, जैसे स्वप्नविषे यह शरीर रहताहै, अरु और शरीर धारिकै चेष्टा करता है तौ शरीरके अधीन हुआ क्या? तैसे शरीरके नष्ट हुए मनका निश्चय दूर नहीं होता, जब मन नष्ट होवै, तब शरीरके होते भी कछु क्रिया सिद्ध नहीं होती, ताते सबका बीज मन है, जैसे पत्र टास फल फूल तिन सबनका कारण जल है, तैसे सब पदार्थका कारण मन है, जैसा चित्त है, तैसा रूप पुरुषका है, ताते जहां जाता है, तहां सब ओरते रानी भासती है, मुझको दुःख कैसे होवै ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे कृत्रिमेंद्रवाक्यवर्णनं नाम पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ६६.

अहल्यानुरागसमाप्तिवर्णनम् ।

भानुरुवाच ॥ हे भगवन् ! इसप्रकार जब इंद्र ब्राह्मणने कहा, तब कमलनयन राजाके समीप जो भरत नाम मुनीश्वर बैठाथा, तिसको राजा कहत भया, हे सर्व धर्मोंके वेत्ता, भरत मुनीश्वर; तुम देखौ कैसे यह ढीठ पापात्मा हैं, जैसा इनका पाप है, तिनके अनुसार इनको शाप देहु, जो यह मारि जावैं, जो मरने योग्य न होवै, तिसको राजा मारै, तब राजाको पाप होता है, जैसे तिसके मरनेते पाप होता है, तैसे पापीको न मारनेते भी पाप होता है, ताते इन पापियोंको शाप देहु, जिससे नष्ट होजावैं॥ हे भगवन्! जब इसप्रकार राजा शार्दूलने कहा, तब भरत मुनिने तिनके पापको विचारिकै कहा, अरे पापियो ! तुम मर जाओ, जब इसप्रकार मुनीश्वरने कहा, तब उस इद्र ब्राह्मणने कहा, रे दुष्टो ! तुमने शाप दिया तिससे कहा होवैगा ? तिसकारिकै शरीर नष्ट होवैगा। तिस कारिकै हमारा मन तौ नष्ट होनेका नहीं तुम भावै लक्ष यत्न करौ, तिस मनकारि शरीर होवैंगे हमारेको मनके नष्ट हुए विना विपर्ययदशा नहीं होती, ऐसा कहिकारि दोनों पृथ्वीपर गिरपड़े, जैसे मूलके काटेते वृक्ष गिर पडता है, तैसे वे गिरपडे अरु वासनासंयोग जो थे, तिसकारि दोनों मृग भये ! तहां भी परस्पर स्नेहविषे रहे, बहुरि तिस जन्मको त्यागिकै पक्षीजन्मको पाया ॥ हे ब्रह्माजी ! तिस देहका भी त्याग किया, अब हमारी सृष्टिविषे तप करता पुण्यवान् ब्राह्मण अरु ब्राह्मणी भयेहैं, ताते तुम देखौ जो भरत मुनिने शाप दिया, तब उनके शरीर नष्ट हुए, परंतु मनका जो कछु निश्चय था, सो नष्ट न भया, जहां शरीर पावै, तहा दोनों इकट्ठे रहैं, आपसमें अकृत्रिम प्रेमवान् भये, सो और किसीकारि आनंदवान् न होवैं ॥ इति श्रीयो० उत्पत्तिप्रकरणे अहल्यानुरागसमाप्तिवर्णन नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥६६॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७.

जीवक्रमोपदेशवर्णनम् ।

भानुरुवाच ॥ हे नाथ ! तुम देखो कि, जैसा मनका निश्चय होता है, तिसीके अनुसार आगे भासता है, इंद्रके पुत्रकी सृष्टिवत् मनके निश्चयको कोऊ दूर नहीं कर सकता है, जगत्के पति मनही जगत्का कर्त्ता है, अरु मनही पुरुष है, मनका किया होता है, शरीरका किया कार्य नहीं होता, जो मनविषे दृढ निश्चय होता है, सो किसी औषधकरिकै दूर नहीं होता जैसे मणिविषे प्रतिबिंब होता है; सो मणिके उठायेविना दूर नहीं होता, तैसे मनके निश्चय भी किसी ओरकारि दूर नहीं होता, जब मनही उलटै तबहीं दूर होवै, इसते कहा है, जो अनेक सृष्टिके भ्रम चित्तविषे स्थित हैं, ताते हे ब्रह्माजी ! तुम भी चिदाकाशविषे सृष्टिको रचौ ॥ हे नाथ ! तीन आकाश हैं, एक भूताकाश है, एक चित्ताकाशहै, एक चिदाकाश है, सो तीनों अनंत हैं, इनका अत कहू नहीं, भूताकाश चित्ताकाशके आश्रय स्थित है, अरु चित्ताकाश चिदाकाशके आश्रय स्थित है, भूताकाश अरु चित्ताकाश ये दोनों चिदाकाशके आश्रय प्रकाशते हैं, ताते चिदाकाशके आश्रय जेती तुम्हारी इच्छा होवै, तेती सृष्टि तुम भी रचौ, चिदाकाश अनंतरूप है, इंद्र ब्राह्मणके पुत्रोंने तुम्हारा क्या लिया है ? अपना नित्य कर्म तुम भी करौ ॥ ब्रह्मोवाच॥ हे वसिष्ठजी! इसप्रकार जब सूर्यने मुझको कहा, जो सब जगत्जाल मनते उठी है, तब मैं विचारकरिकै कहा, हे भानु! तुमने युक्त वचन कहे हैं कि, एक भूताकाश है; एक चित्ताकाश है, एक चिदाकाश है, सो तीनों अनंत हैं, परंतु भूताकाश और चित्ताकाश दोनों चिदाकाशके आश्रय फुरते हैं, ताते हमभी अपने नित्यकर्मको करतेहैं, अरु जो कछु मैं तुमको कहता हौं; सो तुम भी मानौ, मेरी सृष्टिके तुम मनुप्रजापति होहु, जैसे तुम्हारी इच्छा होवै, तैसे रचौ, ऐसे जब मैं कहा, तब सूर्य मेरी आज्ञा मानिकै अपने दो शरीर करत भया, एक तौ पूर्वका सूर्यरूप किया, उस सृष्टिका सूर्य हुआ, अरु दूसरा शरीर उस स्वयंभू मनुका किया ॥ हे वसिष्ठजी ! मेरी आज्ञाके अनुसार उसने सृष्टि रची; ताते मैंने

तुझको कहा है, जो यह जगत् सब मनका रचा हुआहै, जो मनविषे दृढ निश्चय होता है; सोई सफल होता है; जैसे इंद्र ब्राह्मणकी सृष्टि हुई ॥ हे मुनीश्वर! देहके नष्ट हुए भी मनका निश्चय दूर नहीं होता, चित्तविषे वही भासि आता है, सो चित्त आत्माका किंचनरूप है, जैसे तिसविषे फुरना होता है, तैसाही होय भासता है, प्रथम जो शुद्ध संविद्रूपविषे उत्थान हुआ है, सो अंतवाहक शरीर है. बहुरि जो उसविषे दृढ अभ्यास हुआहै अरु स्वरूपका प्रमाद हुआ है, तब अधिभूतका शरीर हुए, जब अधिभूतकका अभिमानी भया तब इसका नाम जीव हुआ, अरु देहाभिमान करि नानाप्रकारकी वासना होती है; तिसके अनुसार घटीयंत्रकी नाईं भटकता है, जब बहुरि आत्माका बोध होवै; तब देहते आदि लेकरि दृश्य शांत हो जाता है ॥हे मुनीश्वर ! जेता कछु दृश्य भासता है. सो ब्रह्मकरिकै भासता है; वास्तवते न कोऊ उपजा है, न कोऊ जगत् है, यह भ्रम सब चित्तकरि रचा है, तिसके अनुसार घटीयंत्रकी नाईं भटकता है, जब बहुरि आत्माका बोध होता है, तब देहतेआदि लेकरि सब प्रपंच शांत होता है ॥ हे मुनीश्वर ! जेता कछु दृश्य भासता है, सो मनकरिकै भासता है, वास्तवते न कोऊ माया है, न कोऊ जगत् है, यह सब भ्रम भासता है ॥ हे वसिष्ठजी ! और द्वैत कछु नहीं, चित्तके फुरणेकरिकै अहं त्वं आदिक भ्रम भासता है, जैसे इंद्र ब्राह्मणके पुत्र मनके निश्चयकरिकै ब्रह्मारूप होत भये, तैसे मैं ब्रह्मा हौं; शुद्ध आत्माविषे चैत्यता होती है; सोई चैत्यता ब्रह्मारूप होइकरि स्थित है, अरु शुद्ध आत्माविषे जो चैत्यता होती है, सोई मनरूप है, तिस मनके संयोगकरि चेतनको जीव कहतेहैं, जब इसविषे जीवत्व होता है, तब अपनी देहको देखता है; बहुरि नानाप्रकारके जगतभ्रमको देखता है, जैसे इंद्र ब्राह्मणके पुत्रको सृष्टि हुई, तैसे यह जगत् है, जैसे भ्रमकरि आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, सो जगत् सत्य भी नहीं अरु असत्य भी नहीं, प्रत्यक्ष देखनेकरि सत्य भासता है, अरु नाशभावकरि असत्य है; सो सब मनविषे फुरता है. अरु मनके दो रूप हैं, एक जड़रूप है, दूसरा चेतनरूप है, जडरूप, मनका दृश्यरूप है अरु

चेतनरूप मनका ब्रह्म है, जब दृश्यकी ओर फुरता है, तब दृश्यरूप होता है, जब चेतन भावकी ओर स्थित होता है, तब जडभाव दृश्यरूप इसका नष्ट हो जाता है, जैसे स्वर्णके जाननेते भूषणभाव नष्ट हो जाता है, अरु जब जडभावविषे फुरता है, तब नानाप्रकारके जगत्को देखता है; वास्तवते ब्रह्मादि तृणपर्यंत सबही चेतनरूप है. जड तिसको कहते हैं, जो अभावरूप होवे, जैसे लकडीविषे चित्तनहीं भासता, अरु प्राणधारियोंविषे चित्त भासता है, परंतु स्वरूपते दोनों तुल्य हैं. काहेते जो सब परमात्मा करिकै प्रकाशता है॥ हे वसिष्ठजी ! स्वरूपते सब चेतनस्वरूप हैं, जो चेतनस्वरूप न होवैं, तो क्यों भासैं चेतनताकारि उपलब्धरूप होते हैं, जड अरु चेतनका विभाग अवाच्य ब्रह्मविषे नहीं पाता, जडचेतनका विभाग प्रमाद दोषकरिकै है, वास्तवते नहीं, जैसे स्वप्नविषे दो प्रकारके भूत भासते हैं,जड अरु चेतनरूप तिस रूपका प्रमाद होताहै, तिस चेतनभूत प्राणीको जड चेतनविभाग भासताहै, अरुस्वरूपदर्शीको सब एकस्वरूप है ॥ हे मुनीश्वर ! ब्रह्माविषे चैत्यता भई सो मन भया, तिस मनविषे जो चेतनभागहै;सो ब्रह्मा है, अरु जडभागहै, सो अबोध है; जब अबोधभाव होता है; तब दृश्य भ्रमको देखता है; जब चेतनभावविषे स्थित होता है;तब शुद्धरूप होता है ॥ हे मुनीश्वर ! चेतनमात्रविषे अहंकार उत्थान दृश्य है, अरु परमार्थते कछु भेद नहीं जैसे तरंग जलते भिन्न नहीं, तैसे अहं चेतनमात्रते भिन्न नहीं होता, सबकी प्रतीति ब्रह्महीविषे होती है, सो परमपद है, सब दुःखोंते रहित है, सोई शुद्ध चित्त जीव चैत्यभावको चेतता है; तब जड़भावको देखता है, जैसे स्वप्नविषे कोऊ अपना मरणा देखता है, तैसे वह चित्त जडभावको देखता है, सो आत्मा सर्वशक्तिमान् है, कर्त्ता है, तौ भी कछु नहीं करता, तिसके समान और कछु नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! यह जगत् कछु वास्तवते उपजा नहीं, चित्तके फुरनेकरिकै भासता है, जब चित्तका फुरणा होता है, तबजगज्जाल भासता है, जब चेतन आत्माविषे स्थित होता है, तब मनका जड़भाव नहीं रहता, जैसे पारसमणिके मिलापते लोहा स्वर्ण हो जाता है, बहुरि लोहभाव तिसका नहीं रहता

तैसे जब मन आत्माविषे स्थित होता है, तब मनकी जडताका दृश्य-भाव नहीं रहता, अरु जैसे सुवर्णको शोधन करता है, तब मैल जलता है, शुद्धही शेष रहता है, तैसे चित्त जब आत्माविषे स्थित होता है, तब जडभाव इसका जलजाता है, शुद्ध चेतनमात्र शेष रहता है, अरु वास्तवते पूछें तौ शुद्ध भी द्वैतविषे होता है, आत्माविषे द्वैत कछु नहीं, ताते शुद्ध कैसे होवे, जैसे आकाशके फूल वृक्ष वास्तवते कछु नहीं, तैसे शोधन भी वास्तवते कछु नहीं ॥ हे मुनीश्वर! जबलग आत्माका अज्ञान है, तबलग नानाप्रकारका जगत् भासता है, जब आत्माका बोध होता है, तब जगद्भ्रम नष्ट होजाता है, यह जगद्भ्रम चित्तविषे है, जैसा निश्चय चित्तविषे होता है, तैसाही हो भासता है, इसके ऊपर अहल्या अरु इंद्रका दृष्टांत कहा है, ताते जैसी भावना दृढ होती है, तैसा होइ भासता है ॥ हे वसिष्ठजी! जिसको यही भावना दृढ है, कि मैं देह हौं, सो पुरुष जो कछु चेष्टा करता है, सो देहके निमित्त करता है, तिस कारणते बहुत कालपर्यंत कष्ट पाता है, जैसे बालक वैतालकी कल्पना करता है, तिसकरि आप भय पावता है, तैसे देहविषे अभिमान करिकै पुरुष कष्ट पावता है, अरु जिसकी भावना देहविषे निवृत्त भई है, अरु शुद्ध चेतनभावविषे प्राप्त भई है, तिसका देहादिक जगद्भ्रम शांत हो जाता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जीवक्रमोपदेशवर्णनं नाम सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ६८.

मनोमाहात्म्यवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इसप्रकार ब्रह्माजीने मुझको कहा, तब मैं बहुरि प्रश्न किया, जो हे भगवन्! तुमने कहा जो शापविषे मंत्रादिकोंका बल होता है, सो शाप भी अचलरूप है, मिटता नहीं, सो मैं ऐसे भी देखा है, जो शापकरिकै मन, बुद्धि, इंद्रियां भी जडीभूत हो जाती हैं, ऐसे तौ नहीं, जो देहको शाप होवै, अरु मनको न होवै॥

हे भगवन्! मन अरु देह तौ अनन्यरूपहैं, जसे वायु अरु स्पंदविषे भेद नहीं, जैसे घृत अरु चिकनाईविषे भेद नहीं, तैसे मन अरु जगत्विषे भेद नहीं, अरु जो कहिये देह कछु वस्तु नहीं, चैतन्यही चित्त है, देह भी चित्तविषे कल्पित है, जैसे स्वप्नदेह होता है, जैसे मृगतृष्णाका जल होता है, जैसे दूसरा चंद्रमा भासता है, सो एकके नष्ट हुए, दोनों क्यों नहीं नष्ट होते, तैसे देहके शापकरि चाहिये कि, मनको शापभी लगि जावै, सो मैं देखा है, जो शापकरि भी जड़ीभूत हो गये हैं, अरु तुम कहते हौ, देहका कर्म मनको नहीं लगता, सो कैसे जानिये॥ब्रह्मोवाच॥ हे मुनीश्वर! ऐसा पदार्थ जगत्विषे कोऊ नहीं, जो सब कर्मको त्यागिकै पुण्यरूप पुरुषार्थ कियेते सिद्ध न होवै, पुरुषार्थ कियेते सब कछु होता है, ब्रह्मा आदि चींटीपर्यंत जिस जिसकी भावना होती है, तैसा रूप हो भासता है, अरु सब जगत्के दो शरीर हैं, एक मनरूपी शरीर है सो चंचलरूप है, दूसरा अधिभूतक मांसमय शरीर हैं, तिसका किया कार्य निष्फल है, अरु जो मनकरिकै चेष्टा होती है, सो सफल होती है॥ हे मुनीश्वर! जिस पुरुषको मांसमय शरीरकेसाथ अहंभाव है, तिसको आधि व्याधि अरु शाप भी अवश्य लगता है, अरु मांसमय शरीर जो मूक है, गूँगा है, अरु दीन है, अरु क्षणनाशी है, इसकेसाथ जिसका संयोग है, सो दीन रहता है, अरु चित्तरूपी शरीर चंचल है, अपना चित्त वश किसीको नहीं होता। अर्थ यह कि, वश करना महाकठिन है, जब दृढ वैराग्य अभ्यास होवै, तब वश होवै, अन्यथा नहीं होता, मन महाचंचल है, अरु यह जगत् मनविषे है, जैसा जैसा मनविषे निश्चय है, सो दूर नहीं होता, मांसमयका किया सफल नहीं होता, अरु जो मनविषे निश्चय है, सो दूर नहीं होता॥ हे मुनीश्वर! जिन पुरुषोंने चित्तको आत्मपदविषे स्थित किया है, तिनको अग्निविषे डारिये तौ भी दुःख कछु नहीं होता; अरु जलविषे डारिये तौ भी दुःख नहीं होता, काहेते कि, उनका चित्त बाह्य शरीरादिक भावको ग्रहण नहीं करता, आत्माविषे स्थित होता है॥ हे मुनीश्वर! जो सब भावको त्यागिकरि मनका निश्चय जिसविषे दृढ होता है, सोई भासता है; जहां मन

दृढीभूत होइकारि लगता है, तिसको वही भासता है, और किसी संसारके कष्टकारि अरु शापकारि मन चलायमान नहीं होता, अरु जो किसी दुःख शापकारि मन विपर्ययभावको प्राप्त होजावै तौ जानिये कि यह दृढ लगा न था, अभ्यासकी शिथिलता है॥ हे मुनीश्वर! मनकी तीव्रताके हिलावनेको किसी पदार्थकी शक्ति नहीं, काहेते जो सृष्टि मानसी है; ताते मनके साथ मनको समाय चित्तको परमपदविषे जोडौ जब चित्त आत्माविषे दृढ होता है, तब जगत्के पदार्थोंकारि चलायमान नहीं होता; जैसे मांडव्य ऋषीश्वर शूलीपर चढाथा, अरु तिसका जो चित्त आत्मपदविषे लगा हुआ था तिसको शूलीपर भी खेद न हुआ॥ हे मुनीश्वर! जिसविषे मन दृढ होइ कारि लगता है, तिसको चलाय कोऊ नहीं सकता, जैसे इंद्र ब्राह्मण चलायमान न भये तैसे मन आत्माविषे स्थिर हुआ, चलायमान नहीं होता॥ हे मुनीश्वर! जैसा जैसा मनविषे तीव्र भाव होता है, तिसीकी सिद्धता होती है॥ दीर्घतपा एक ऋषि था, यह अंधे कूपविषे किसीप्रकार गिर पडा, तिस कूपविषे मनकारि यज्ञ करने लगा, मनविषे दृढकारि यज्ञको किया, तिस यज्ञकरि मनविषे देवता होकारि फल इंद्रपुरीविषे भोगने लगा, अरु जैसे इंद्र ब्राह्मणके पुत्र मनुष्योंके समान थे, अरु मनविषे जो ब्रह्माकी भावना करी, तिसकारि दशही ब्रह्मा भये; अरु दशही तिनने अपनी अपनी सृष्टि रची, सो कैसी सृष्टि हैं, जो मुझकारि भी खंडित नहीं होतीं ताते जो कछु दृढ अभ्यास होता है, सो नष्ट नहीं होता और भी जो देवता महाऋषि आदि धैर्यवान् हुए हैं, जिनकी एक क्षणमात्र भी वृत्ति चलायमान नहीं होती, तिनको संसारका ताप, आधि, व्याधि, शाप, मंत्र, पाप कर्म इसते लेकारि जो संसारके क्षोभ दुःखहैं, तिनको कोऊ नहीं स्पर्श करता, जैसे कमलफूलका प्रहार शिलाको फोड़ नहीं सकता; तैसे धैर्यवानको संसारका ताप नहीं खंडन कारि सकता, अरु जिसको आधि व्याधि दुःख करते हैं, सो जानिये कि यह परमार्थदर्शनते शून्यहै. हे मुनीश्वर! जो पुरुष स्वरूपविषे सावधान भये हैं, तिनको कोई दुःख स्पर्श नहीं करते, स्वप्नविषे भी तिनको दुःखका अनुभव नहीं होता, काहेते कि तिनका चित्त साव-

धान है, ताते दृढ पुरुषार्थकरि मनके साथ मनको मारो, तिसकरि जगद्भ्रम नष्ट होजावैगा ॥ हे मुनीश्वर ! जिसको स्वरूपका प्रमाद होता है, तिसको क्षणविषे जगद्भ्रम दृढ हो जाता है, जैसे बालकको क्षणविषे वैताल भासिआता है, तैसे प्रमादकरि जगत् भासता है ॥ हे मुनीश्वर ! मनरूपी कुलाल है, अरु वृत्तिरूपी मृत्तिका है, तिस मनकरि वृत्ति अनेक आकार क्षणविषे धारती है, जैसे मृत्तिका कुलालकरि घटादिक अनेक आकारको धारती है; तैसे निश्चयके अनुसार वृत्ति अनेक आकारोंको पाती है, जैसे सूर्यविषे उलूकादिक भावनाकरिकै अंधकारको देखते हैं, अरु तिनको चंद्रमाकी किरणें भी भावनाकरि अग्निरूप भासती हैं, जिनको विषविषे अमृतकी भावना होती है, तिनको विष भी अमृतरूप होइ भासता है; इसीप्रकार कटुक अम्ल नोन भी भावनाके अनुसार भासता है, जैसा मनविषे निश्चय होता है, तैसाही इसको भासता है, मनरूपी बाजीगर है, जैसी रचना चाहता है तैसी रच लेता है, अरु मनका रचा जगत् है, सो सत्य नहीं अरु असत्य भी नहीं, प्रत्यक्ष भाषणकरि सत्य है, असत्य नहीं, अरु नष्ट भावते असत्य है, सत्य नहीं, अरु सत्य असत्य भी मनकरिकै भासता है, वास्तव कछु नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनोमाहात्म्यवर्णनं नाम अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ६९.

वासनात्यागवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार प्रथम ब्रह्माजीने मुझको कहा था, सो मैंने अब तुझको कहा है, जो प्रथम ब्रह्म अहंशब्द पदविषे स्थित था, तिसविषे चित्त हुआ, अर्थ यह जो अहं अस्मि चेतनताका लक्षण हुआ, तिसकी जब दृढ़ता हुई, तब मन हुआ, तिस मनने पंचतन्मात्राकी कल्पना करी, सो तेजाकार ब्रह्मा परमेष्ठी कहाता

है ॥ हे रामजी! सो ब्रह्माजी मनरूप है, अरु मनही ब्रह्मारूप है, तिसका रूप संकल्प है,बहुरि आगे जैसा संकल्प करता है, तैसाही होता है, तिस ब्रह्माने एक अविद्याशक्ति कल्पीहै,अनात्मविषे आत्माभिमान करना इसका नाम अविद्या है, बहुरि अविद्याकी निवृत्ति विद्या कल्पी; इसीप्रकार पहाड, तृण, जल,समुद्र, स्थावर, जंगम पूर्ण जगत्को उत्पन्न किया. इसप्रकार ब्रह्मा हुआ, अरु इसप्रकार जगत् हुआ, जैसे तुमने कहा सो जगत् कैसे उपजता है, अरु कैसे मिटजाता है सो श्रवण करहु, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, अरु समुद्रहीविषे लीन होते हैं, तैसे संपूर्ण जगत् ब्रह्मविषे उपजता है, अरु ब्रह्मविषे लीन होता है, ॥ हे रामजी ! शुद्ध आत्मसत्ताविषे जो अहंकार उल्लेख हुआ है, सो मन है, अरु सोई ब्रह्मा है, तिसहीने नानाप्रकार जगत् रचा है, सो सर्व चित्तशक्ति पसरी है सो चित्तके फुरनेकारि, नानात्व भासता है. हे रामजी! जेते कछु जीव हैं, तिन सर्वोंविषे आत्मसत्ता स्थित है, परंतु अपने स्वरूपके प्रमाद करिकै पडे भटकते हैं, जैसे वायु करिकै वनके कुंजोंविषे सूखे पात भटकते हैं तैसे कर्मरूपी वायुकरि जीव भटकतेहैं, अध अरु ऊर्ध्वविषे घटीयत्रकी नाईं अनेक जन्मोंको धरतेहैं, जब काकतालीयवत् सत्संगकी प्राप्ति होवै; अरु अपना पुरुषार्थ करै,तब मुक्त होवै, इसकी जबलग प्राप्ति नहीं भई तबलग कर्मरूपी जेवरीसाथ बाँधेहुए अनेक जन्मविषे भटकतेहैं, जब ज्ञानकी प्राप्ति होवै तबही दृश्यभ्रमते छूटैं, अन्यथा न छूटैंगे॥ हे रामजी! इसप्रकार ब्रह्माते जीव उपजते हैं, अरु मिटते हैं, अनंत संकटोंका कारण वासनाही नानाप्रकारके भ्रम दिखाती है, अरु जगत्रूपी वनकी जन्मरूपी वैतालवेलि वासना जलकरि बढतीहै, जब सम्यक्ज्ञान प्राप्त होवै; तब सोई कुठारकरिकै काटौ, जब मनविषे वासनाका क्षोभ मिटै, तब शरीररूपी अंकुर मनरूपी बीजते उपजै नहीं, जैसे भूना बीज अंकुर नहीं लेता; तैसे वासनाते रहित मन शरीरको नहीं धारता ॥ इति श्रीयो० उत्पत्तिप्रकरणे वासनात्यागवर्णनं नाम एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥६९॥

सप्ततितमः सर्गः ७०.

सर्वब्रह्मप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जेती कछु भूतजाति हैं, सो ब्रह्मते उपजी हैं, जैसे समुद्रते तरंग बुद्बुदे कई बडे कई छोटे, कई मध्यमभावके होते हैं, सो सब जल है, तैसे यह जीव ब्रह्मते उपजे हैं, सो ब्रह्मरूप हैं, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है, जैसे अग्निते चिनगारे उपजते हैं, तैसे ब्रह्मते जीव उपजतेहैं, जैसे कल्पवृक्षकी मंजरी नानारूपको धरती है, तैसे ब्रह्मते जीव हुए हैं, जैसे चंद्रमाते किरणोंका विस्तार होता है, अरु जैसे वृक्षते पत्र, फूल, फल आदिक होते हैं, तैसे ब्रह्मते जीव होते हैं, जैसे सुवर्णते अनेक भूषण होते हैं, तैसे ब्रह्मते जगत् होता है; जैसे झरनोंते जलके कणके उपजते हैं; तैसे परमात्माते भूत उपजते हैं, जैसे आकाश एकही है, तिसविषे घटमठकी उपाधिकरि घटाकाश मठाकाश कहाता है, तैसे संवेदनके फुरणेकरि जीवकल्पना होती है, जैसे जलही द्रवता करिकै तरंग आवर्तरूप होइ भासता है, तैसे ब्रह्मही संवेदनकरिकै जगद्रूप होइ भासता है, द्रष्टा दर्शन दृश्य सब ब्रह्मते उपजा है; जैसे सूर्यके तेजकरि मृगतृष्णाकी नदी भासतीहै, तैसें संवेदनकरिकै ब्रह्मविषे द्रष्टा दर्शन दृश्य त्रिपुटी भासतीहै, वास्तवते द्रष्टा दर्शन दृश्य कल्पना कोऊ नहीं । जैसे चंद्रमा अरु शीतलताविषे कछु भेद नहीं जैसे सूर्य अरु प्रकाशविषे कछु भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अ जगत्विषे कछु भेद नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजतेहैं, अरु समुद्रमेंही लीन होते हैं, तैसे जीव ब्रह्महीते उपजते हैं, अरु ब्रह्महीविषे लीन होते हैं ॥ कई सहस्रों जन्मके अनंतर प्राप्त होते हैं, कई थोडे, कई बहुत जन्मकरि प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जगत् परमात्माते हुआ है, अरु तिसकी इच्छानुसार व्यवहार करते हैं, सोई व्यवहारकी नाईं होइ भासते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सर्वब्रह्मप्रतिपादनं नाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ७१.

कर्मपौरुषयोरैक्यप्रतिपादनम्।

हे रामजी! कर्त्ता अरु कर्म यह अभिन्नरूप हैं, अरु इकट्ठेही ब्रह्मते उत्पन्न हुए हैं, जैसे फूल अरु सुगंध वृक्षते इकट्ठे उत्पन्न होते हैं, तैसे कर्त्ता अरु कर्म इकट्ठे उत्पन्न हुएहैं, जब जीव सब संकल्पकलनाको त्यागताहै; तब निर्मल ब्रह्म होता है,जैसे आकाशविषे नीलता भासती है तैसे आत्माविषे जगत्कल्पना फुरती है,आत्मा अद्वैत सदा अपने आपविषे स्थित है, अरु यह भी अज्ञानीके बोध जतावनेको कहता है, जो जीव ब्रह्मते उपजे हैं, अरु इसप्रकार सात्त्विक राजस तामस गुणोंके भेद स्थित हैं, जो ज्ञानवान् हैं,तिन्हों प्रति यह कहना भी नहीं बनता, जो ब्रह्मते उपजे हैं, तौभी दूसरा कछु नहीं, दूसरेको अंगीकार करिकै उपदेश करता है, वास्तवते ब्रह्मसत्ताविषे कोऊ कल्पना नहीं; सदा अपने स्वभावविषे स्थित है, जो ज्ञानवान् हैं, तिनको सदा ऐसेही प्रत्यक्ष भासता है, अरु अज्ञानी दूरते दूर चले जाते हैं, तिनको सुमेरु अरु मंदराचलकी नाईं आत्मा अरु जीवका अंतर भासता है, जैसे वसंतऋतुकरिकै नानाप्रकारके नूतन अंकुर उपजते हैं; अरु वसंतऋतुके अभाव हुए नष्ट होते हैं; तैसे चित्तके फुरणेकरि जीवराशि उपजते हैं, अरु चित्तके अफुर हुए नष्ट होते हैं, मन अरु कर्मविषे भेद कछु नहीं, मन अरु कर्म इकट्ठेही उत्पन्न होते हैं; जैसे वृक्षसों फल अरु सुगंध इकट्ठे उपजते हैं, तैसे आत्मासों मन अरु कर्म इकट्ठेही उपजते हैं, बहुरि आत्माविषे लीन होते हैं॥ हे रामजी! दैत्य, नाग, मनुष्य, देवता आदिक जेते कछु जीव तुझको भासते हैं, सो आत्माते उपजते हैं, अरु बहुरि आत्माविषे लीन होतेहैं, इनका उत्पत्तिकारण अज्ञान है, आत्माके अज्ञानकरिकै भटकते हैं, जब आत्मज्ञान उपजता है, तब संसारभ्रम निवृत्त हो जाता है॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! जो पदार्थ शास्त्रप्रमाणकरिकै सिद्ध है, सोई सत्य है, अरु शास्त्रप्रमाण वही है, जिसविषे रागद्वेषते रहित निर्णयहै, अरु अमानित्व अदंभित्व आदिक गुण प्रतिपादन किये है, तिस सब दृष्टिकरि जो उपदेश

किया है, सो पदार्थ प्रमाण हैं, तिनके अनुसार जो जीव विचरते हैं,सो भली उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं, अरु जो शास्त्रप्रमाणते विपरीत वर्तते हैं, सो अशुभगतिको प्राप्त होते हैं, अरु लोकविषे भी प्रसिद्ध सुनाताहै कि, कर्मोंके अनुसार जीव वर्त्तते उपते हैं, जैसे बीजते अंकुर उपजताहै, सो जैसा बीज होता है, तैसाही तिसते अंकुर उपजता है, तैसे जैसा कर्म होता है; तैसी गति इसको प्राप्त होती है, अरु कर्त्ताकरिकै कर्म होता है, यह परस्पर अभिन्न हैं; इनका इकट्ठा होना क्योंकरि होवै,कर्ताकरि कर्म होते हैं, अरु कर्मकरिकै गति प्राप्त होती हैं, अरु तुम कहते हौ मन अरु कर्म ब्रह्मते इकट्ठेही उत्पन्न हुए हैं, इसकरिकै शास्त्रके वचन अरु लोकके वचन अप्रमाण होते हैं, हे देवताविषे श्रेष्ठ! यह संशय दूर करनेको तुमही योग्य हौ, जैसे सत्य है, तैसेही कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह प्रश्न तुझने भला किया है, तिसका उत्तर मैं तुझको कहता हौं, जिसके श्रवण कियेते तुझको ज्ञानप्रकाश आवैगा ॥ हे रामजी! शुद्ध संवित्मात्र आत्मतत्त्वविषे जो संवेदन फुरा सो कर्मका बीज मन हुआ, सो सबका कर्मरूप है, तिस बीजते सब फल होते हैं, ताते कर्म अरु मनमें कछु भेद नहीं, जैसे सुगंध अरु कमलविषे कछु भेद नहीं, तैसे मन अरु कर्मविषे कछु भेद नहीं, मनविषे संकल्प होताहै, सो अंकुर कर्म ज्ञानवान् कहते हैं ॥ हे रामजी! पूर्व इसका देह मनही है, तिस मनरूपी शरीरसाथ कर्म होते हैं, सो फलपर्यंत सिद्ध होता है, मनविषे जो फुरना होता हैं, सोई क्रिया है, अरु सोई कर्म है, तिस मनकरि किया कर्म अवश्य सिद्ध होता है, अन्यथा नहीं होता, ऐसा पर्वत कोऊ नहीं, न आकाश है, न कोऊ लोकहै, जिसको प्राप्त होइकरि कर्मोंते छूटै, जो कछु मनके संकलपसाथ किया है, सो अवश्यमेव सिद्ध होता है, पूर्व जो पुरुषार्थ प्रयत्न कछु किया है, सो निष्फल नहीं होता, अवश्यमेव तिसकी प्राप्ति होती है ॥ हे रामजी! ब्रह्मविषे जो चैत्यता हुई है, सोई मन है, अरु मन कर्मरूप है, अरु सर्व लोकोंका बीज है, इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी! जब कोऊ देशते देशांतरको जाने लगता है, तब जानेका सकल्प ले जाता है, सो चलना कर्म है, ताते फुरणरूप कर्म हुआ, अरु फुरणारूप मनका है,

मन अरु कर्मविषे भेद कछु नहीं, अक्षोभ समुद्ररूपी ब्रह्म है, तिसविषे द्रवतारूपी चैत्यता है, सो चैत्यता जीवरूप है, अरु तिसहीका नाम मन है, सो मन कर्मरूप है, जैसे मन फुरता है, सोई सिद्ध होता है, जो कछु मनकरिकै कार्य करता है, सोई सिद्ध होता है, शरीरकरि चेष्टा सिद्ध नहीं होती; इसकारणते कहा है कि, मन अरु कर्मविषे भेद कछु नहीं, भिन्न भिन्न भासते हैं; सो मिथ्या कल्पना मूर्ख करते हैं,बुद्धिमान् नहीं करते, जैसे समुद्र अरु तरंगोंविषे मूर्खभेद मानते हैं, बुद्धिमान्को भेद कछु नहीं भासता, प्रथम परमात्मासों मन अरु कर्म इकट्ठेही उपजे हैं, जैसे समुद्रसे तरंग द्रवताकरि उपजते हैं, तैसे चित्तके फुरणेकरि कर्म आत्माते उपजते हैं, जैसे तरंग समुद्रविषे लीन होते हैं, तैसे मन अरु कर्म परमात्माविषेही लीन होते हैं, जैसे जो पदार्थ दर्पणके निकट होते हैं, तैसेही प्रतिबिंब भासते हैं, तैसे जो कछु मनका कर्म होता है, सो आत्मारूपी दर्पणविषे प्रतिबिंब भासता है, जैसे बर्फका रूप शीतल है, शीतलताविना बर्फ नहीं होता, तैसे चित्त कर्म है, कर्मोंविना चित्त नहीं होता,जब चित्तसों स्पंदता मिट जाती है,तब चित्त भी नष्ट हो जाता है,चित्तके नष्ट हुए कर्मभी नष्ट हो जाते हैं, अरु कर्मके नाश हुए मनका नाश होताहै. जो पुरुष मनते मुक्त हुआहै, सोई मुक्तहै, जो चित्तते मुक्त नहीं हुआ सो बंधनमें है, एकके नाश हुए दोनोंका नाश होता है, जैसे अग्निके नाश हुए उष्णता भी नाश होती है, अरु जब उष्णता नाश होती है, तब अग्नि भी नाश होता है,तैसे मनके नष्ट हुए कर्म भी नाश होते हैं, अरु कर्म नाश हुए मन भी नष्ट होता है, एकके अभाव भये दोनोंका अभाव होता है, कर्मरूपी चित्त है, अरु चित्तरूपी कर्म हैं,परस्पर अभेदरूप हैं, ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे कर्मपौरुषयोरैक्यप्रतिपादनं नाम एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ७२.

मनोसंज्ञाविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मन भावनामात्र है,भावना नाम फुर-

णेका है, अरु फुरणा क्रियारूप है, तिस क्रिया फुरणेंकरि सर्व फलकी प्राप्ति होती है॥ राम उवाच॥ हे ब्राह्मण ! इस मनका रूप विस्तारिकै कहौ, जड़ अजड़रूप मनकाहै, तिसको विशेषकारि कहौ ॥ वसिष्ठउवाच॥हेरामजी ! आत्मतत्त्व अनंतरूप सर्वशक्तिमान् है, जब तिसविषे संकल्पशक्ति फुरती है, तब तिसको मन कहते हैं, जड़ अजड़के मध्यविषे दोलायमानहोता है, तिस मिश्रितरूपका नाम मन है॥हे रामजी ! भावरूप जो पदार्थ हैं, तिसके मध्यविषे जो सत्य असत्यका निश्चय करता है, तिसकानाम मन है, तिसविषे जो यह निश्चय करना कि, मैं चिदानंदरूप नहीं, मैं कृपण हौं, देहसों मिलिकारि ऐसे फुरता है, सो मनका रूप है, जोकल्पना करता रहता है, इसते रहित मन नहीं होता, जैसे गुणोंविना गुणी नहीं रहता, तैसे कर्म कल्पनाविना मन नहीं रहता, जैसे उष्णताकी सत्ता अग्निते भिन्न नहीं पड़ती, तैसे कर्मोंकी सत्ता मनते भिन्न नहीं पाते, तथा मन अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं॥हे रामजी ! मनरूपी बीज है, तिसते संकल्परूपी नानाप्रकारके फूल होतेहैं, तिसकारिकै नानाप्रकारके शरीर होते हैं, तिसकारि संपूर्ण जगत् देखता है जैसी जैसी मनविषे वासना होती है, तिसके अनुसार फलकी प्राप्ति होती है, ताते मनका फुरणाही कर्मोंका बीज है, तिसकारि जो भिन्न क्रिया होतीहै, सो तिस वृक्षकीशाखाहै अरु नानाप्रकारके विचित्र फलहैं॥ हेरामजी ! जिस ओर मनकानिश्चय होता है, तिसी ओर कर्म इंद्रियां भी प्रवर्ततीहैं, अरु जो कर्महै, सोईमनका फुरणा है, अरु मनहीं फुरणरूप है. इसी कारणते कहाहै, कि मन कर्मरूप है, तिस मनकी एतीसंज्ञा कही हैं; मन, बुद्धि, अहंकार, कर्म, कल्पना, स्मृति, वासना; अविद्या, इंद्रियांपर्यंत प्रकृति, माया इत्यादिक कलना संसारका कारण है, चित्तको जब चैत्यका संयोग होता है; तब संसारभ्रम होता है, अरु इह जेती संज्ञा तुझको कही हैं, सो चित्तके फुरणेकारिकैकाक-तालीयवत् अकस्मात् फुरी हैं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! अद्वैततत्त्व परम संवित् आकाशविषे एती कलना कैसे हुई है, अरु तिनविषे अर्थरूप दृढता कैसे हुई है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शुद्ध संवित्मात्र जो सत्ता है, सो फुरणेकी नाईं स्थित होवै तब, तिसका नाम मन है, अरुजब वह वृत्ति निश्चयरूप होवैहै, जो भाव अभाव पदार्थोंको निश्चय करतभई,

जो यह पदार्थ ऐसा है, यह पदार्थ ऐसा है, तिस वृत्तिका नाम बुद्धि है, अनात्मविषे आत्मभाव परिच्छिन्नरूप जब मिथ्या अभिमान दृढ हुआ, तब तिसका रूप अहंकार हुआ, सोई मिथ्या अहंवृत्ति संसारबंधनका कारण है, किसी पदार्थको ग्रहण करती है, किसीको त्याग करती है, बालककी नाईं विचारते रहित धावती है, तिसका नाम चित्त है, अरु वृत्तिका फुरणा धर्म है, तिस फुरणेविषे फलको आरोप करि तिसकी ओर धावना, अरु कर्तव्यका अभिमान फुरै तिसका नाम कर्म है, अरु पूर्व जो कार्य किये हैं, तिस पदार्थको त्यागिके तिसका संस्कार चित्तविषे धारिकरि स्मरण करना, तिसका नाम स्मृति है; अथवा पूर्व तिसका अनुभव नहीं हुआ अरु हृदयविषे फुरि आवै, कि यह पूर्व मैंने किया था, तिसका नाम भी स्मृति है, अरु जिस पदार्थका अनुभव होवै, तिसका संस्कार हृदयविषे दृढ होवै, तिसके अनुसार जो चित्त फुरै, तिसका नाम वासना है ॥ हे रामजी! आत्मतत्त्व अद्वैत है; तिसविषे अविद्यमान द्वैत विद्यमान होइकरि भासता है, जिसकरि तिसका नाम अविद्या है, अरु अपने स्वरूपको भुलायकरि अपने नाशके निमित्त स्पंद चेष्टा करता है, अरु शुद्ध आत्माविषे विकल्प उठते हैं, तिसका नाम मूलअविद्या है. अरु शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इन पांचों इंद्रियोंको दिखावनेहारा परमात्मा है, अरु अद्वैततत्त्व आत्माविषे जिस दृढ जालको रचा है, तिस स्पंदकलनाका नाम प्रकृति कहाता है अरु असत्यको सत्यकी नाईं दिखाती है, अरु सत्यको असत्यकी नाईं दिखाती है, सो माया कहाती है, अरु शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये कर्म हैं, अरु जिसकरि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध होते हैं, सो कर्ता कहाताहै, सोई कार्य कारण कहाता है, अरु शुद्ध चेतन चैत्यको प्राप्त होताहै, सो कलनाकी नाईं होता है, तिस फुरणवृत्तिको विपर्यय कहै हैं, सो फुरणे करिकै संकल्पजाल उठती है, तब यह जीव कहाताहै, मन भी इसका नाम है, चित्त भी इसका नाम है, बंध भी इसका नाम है ॥ हे रामजी! परमार्थ शुद्ध चित्तही चैत्यके संयोगकरि स्वरूपते बर्फकी नाईं स्थित भया है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह मन जड है, किं वा चेतन है? सो एकरूप मुझको कहौ, जो मेरे हृदयविषे स्थित होवै ॥ वसिष्ठ उवाच ॥

हे रामजी! मन जड नहीं, अरु चेतन भी नहीं, जडचेतनकी जो गांठ है, मध्यभाव तिसका नाम मन है अरु संकल्पविकल्पविषे कल्पितरूप मन है, तिस मनते यह जगत् उत्पन्न हुआ है, जड़ अरु चेतन दोनों भावविषे दोलायमान है, अर्थ यह जो कबहूं जडभावकी ओर आता है; कबहूं चेतनभावकी ओर आता है, तिसका नाम मन है, शुद्ध चेतन-मात्रविषे जो फुरणा हुआ, तिसका नाम मन हैं; मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, जीव आदिक अनेक संज्ञाको मनही प्राप्त हुआ है; जैसे एक नटवा स्वांगोंकरिकै अनेक संज्ञाको पाता है, जिसका स्वांग ले आता है, तिसी नामकरि कहाता है, तैसे संकल्पकरिकै मन अनेक संज्ञाको पाता है, जैसे पुरुष विचित्र कर्मोंकरि अनेक संज्ञाको पाता है, पाठकरि पाठक कहाता है, रसोईकरि रसोइयाँ कहाता है, तैसे मन अनेक संक-ल्पकरि अनेक संज्ञाको पाता है॥ हे रामजी! यह जो मैंने तुझे चित्तकी अनेक संज्ञा कही हैं, सो अन्यथा अन्यथाकरि बहुत प्रकार वादियोंने नाम रक्खेहैं, जैसा २ मत है, तैसा २ स्वभाव लेकरि मन बुद्धि इंद्रियोंको मानते है, जो मनको जड़ मानते हैं; अरु जिसको मनते भिन्न मानते हैं, अरु अहंकारको भिन्न मानते हैं, सो मिथ्या कल्पना करते हैं, नैया-यिक कहते हैं, सृष्टि तत्त्वोंके सूक्ष्म परमाणुते उपजती है, जब प्रलय होता है, तब स्थूलतत्त्व लय हो जाते हैं, तिनके सूक्ष्म परमाणु दूने रहते हैं, बहुरि उत्पत्तिकालविषे वही सूक्ष्म परमाणु दूने तिगुने आदिक होइकरि स्थूलताको प्राप्त होते हैं, तिस पांचों तत्त्वोंते सृष्टि होती है, अरु सांख्यमतवाले कहते हैं, प्रकृति मायाके परणामते सृष्टि होती है, अरु चार्वाक पृथ्वी, जल, तेज, वायु चारों तत्त्वोंके इकट्ठे होनेकरि सृष्टि उपजती मानते हैं, अरु चारों तत्त्वोंके शरीरको पुरुष मानते हैं, जब तत्त्व आपोआपविषे बिछुरि जाते हैं, तब प्रलय होता है, अरु आर्हत औरही प्रकार मानते हैं, बोद्ध वैशेषिक आदिक और और प्रकारकरि मानतेहैं, पांचरात्रिक और प्रकारही मानतेहैं, परंतु सब हीका सिद्धांत एकही ब्रह्मआत्मतत्त्वहै, जैसे एकही स्थानके अनेक मार्ग होवैं सो अनेक मार्गोंकरि वही स्थानको पहुँचता हैं, तैसे अनेक मतोंका अधिष्ठान आत्मसत्ता है, अरु जो भिन्न भिन्न मत न मानिके वाद करते

हैं, सो आत्मतत्त्वके अज्ञानकरिकै करते हैं, सिद्धांत सबका एक है, तिसविषे वाद कोऊ नहीं प्रवेश करता ॥ हे रामजी ! जेते कछु मतवाले हैं, सो अपने अपने मतकी ओर मानते हैं, दूसरेका अपमान करते हैं,जैसे मार्गके चलनेवाले अपने अपने मार्गकी उपमा करते हैं, दूसरेकी नहीं करते, तैसे मनके भिन्न भिन्न रूप करिकै अनेक प्रकार जगत्को कहतेहैं एक मनकी अनेक संज्ञा हुई हैं, जैसे एक पुरुषको अनेक प्रकारकरि कहते हैं, स्नान करनेते स्नानकर्त्ता, दान करनेते दानकर्त्ता, तप करनेते तपस्वी, इत्यादि क्रियाकरिके अनेकसंज्ञा होती हैं, तैसे अनेक शक्ति मनकी कही हैं, अनेक नामकरि कहता है, मनहीका नाम जीव है, वासनाभी मनहीका नाम है, कर्म भी तिसहीका नाम है ॥ हे रामजी ! चित्तहीके फुरणेकरिकै संपूर्ण जगत् हुआ है, अरु मनहीके फुरणेकरि भासता है, जब वह पुरुष चैत्यके फुरणेते रहित होता है, तब देखता है, तौ भी कछु नहीं देखता अरु यह प्रसिद्ध जानिये जिस पुरुषको शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध जो इंद्रियोंके विषय हैं, सो इष्ट अनिष्टविषे हर्ष शोक देते हैं, जो इष्ट सुखविषे हर्ष देते हैं, अनिष्ट दुःखविषे शोक होता है, तिसका नाम जीव है, मनहीकरि सिद्ध होता है, सब अर्थोंका कारण मनही है, जो पुरुष चैत्यते छूटा है, सो मुक्तरूप है, अरु जिसको चैत्यका संयोग है, सो बंधनमें बांधा है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष इस मनको केवल जड मानते हैं, तिनको अत्यंत जड जानना, अरु जो पुरुष इस मनको केवल चेतन मानते हैं, सो भी जड हैं, यह मन केवल जड नहीं अरु केवल चेतनभी नहीं, जो एकही मनका रूप होवै; तब सुखदुःख आदिक विचित्रता न चाहिये, अरु जगत्की लीनता भी नहीं होती जो केवल चेतनही रूप होवै तब जगत्का कारण नहीं होता, अरु जो केवल जडरूप होवै तब भी जगत्का कारण नहीं होता. काहेते कि, केवल जड पाषाणरूप होता है, सो पाषाणते कछु क्रिया नहीं उत्पन्न होती, तैसे केवल जड जगत्का कारण नहीं होता, अरु मन केवल चेतन भी नहीं केवल चेतन आत्मा है, तिसविषे कर्तृत्व आदि कल्पना नहीं होती, ताते मन केवल चेतन भी नहीं, अरु केवल जड भी नहीं चेतन अरु जडके मध्य

भावमें सोई जगत्का कारण है ॥ हे रामजी ! सब अर्थोंका कारण मन है, जैसे प्रकाश पदार्थोंका कारण है, जबलग चित्त है, तब लग चैत्य भासता है; जब चित्त अचित्त होवै, तब सर्व भूतजाल लीन होजातेहैं; जैसे एकही जल रसकरिकै अनेक रूप होइ भासता है; तैसे एकही मन अनेक पदार्थरूप होइकरि भासता है, अरु अनेक संज्ञा इसको शास्त्रोंके मतवालोंने कल्पी हैं, सबका कारण मनही है, अरु मन भी परमदेव परमात्मा सर्वशक्तिकी एक शक्ति है, तिस परमात्माते यह फुरी है, जड-भाव फुरि बहुरि तिसहीविषे लीन होतीहै; जैसे ववोहा आपहीसों तंतुको पसारता है, बहुरि आपविषे लीन करिलेता है, तैसे परमात्माते जड-भाव उपजना है ॥ हे रामजी ! नित्य शुद्ध बोधरूप ब्रह्म है, सोई जब प्रकृतभावको प्राप्त होता है, तब अविद्याके वशते नानाप्रकारके जगत्को धारता है; तिसहीके सर्व पर्याय हैं. जीव, मन, चित्त, बुद्धि, अहंकारइत्यादिक संज्ञा मलिनचित्तकी होती हैं, तिनकी संख्या भिन्न भिन्न वादीने कल्पी हैं, हमको संख्यासाथ क्या प्रयोजन है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनोसंज्ञाविचारो नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ७३.

चित्तोपाख्यानवर्णनम् !

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह सब जगत् आडंबर मनहीने रचा है, सब मनरूप है, अरु मनही कर्मरूप है, यह तुम्हारे कहनेकारि मैं निश्चय किया है, परंतु इसका अनुभव कैसे होवे ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह मन भावनामात्र है, जैसे प्रचंड सूर्यका धूप होता है, सो मरुस्थलविषे जल होय भासता है, तैसे आत्माका आभासरूप मन होता है, तिस मनकारि जेता कछु जगत् भासता है, सो सब मनरूप है, कहूं मनुष्यरूप होइकारि भासता है, कहूं देवता होइके भासता है, कहूं दैत्य, कहूं यक्ष, कहूं गंधर्वरूप भया है, नागपुर पत्तन आदिक जेते कछु रूप भासते हैं, सो सबही मनकारि

विस्तारको प्राप्त भये हैं, सो कैसे हैं, तृण अरु काष्ठके तुल्य हैं, तिनके विचारनेकरि क्या है, यह सब मनकी रचना है, सो मन अविचारसिद्ध हैं विचार कियेते नष्ट होजाता है, मनके नष्ट हुएते परमात्माही शेष रहता है सो साक्षीभूत सर्वपदते अतीत है, अरु सर्वव्यापी सर्वका आश्रयभूतहै, तिसके प्रमादकरिकै मन जगत्को रचनेको समर्थ होता है, इस कारणते कहा है; कि मन अरु कर्म एकरूप हैं, अरु शरीरोंका कारण है ॥ हे रामजी ! जन्म मरण आदिक जेते कछु विकार हैं, सो मनकरिकै भासते हैं, अरु मन अविचारसिद्ध है; विचार कियेते लीन हो जाताहै, जब मन लीन हुआ, तब कर्म आदिक भ्रम भी सब नष्ट होजाता है जो इस भ्रमते छूटा सो मुक्त है, सो पुरुष बहुरि जन्म अरु मरणविषे नहीं आता, सब भ्रम उसका नष्ट हो जाता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तीन प्रकारके सात्त्विकी राजसी तामसी जीव तुमने कहे, तिनका कारण प्रथम सत्य असत्यरूपी मन कहा, सो मन अशुद्धरूप शुद्ध चिन्मात्र तत्त्वतें उपजत भया, अरु उपजिकरि बडे विस्ताररूपी विचित्र जगत्को कैसे प्राप्त भया ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आकाश तीन हैं, एक चिदाकाश है, अरु एक चित्ताकाश है, तीसरा भूताकाश है, सो आकाश भावकरिकै समानरूप है, अरु अपनी अपनी सत्ताहुई है चिदाकाश चित्ताकाशकरि नित्य उपलब्धरूप है, चेतनमात्र सबके अंतर बाहिर स्थित है, अरु अनुमातारूप है, बोधरूप है, सर्व, भूतोंविषे सम व्यापी रहा है सो चिदाकाश है अरु जो भूतोंका कारणरूप है अरु आप जिसने विस्तारा है सो चित्ताकाश कहाता है, अरु दश दिशाको विस्तारिकरि जिसका वपु परिच्छेदको नहीं प्राप्त होता, अरु शून्य है स्वरूप जिसका अरु पवन आदिक भूतोंका आश्रयभूत है, सो भूताकाश कहाता है ॥ हे रामजी ! चित्ताकाश अरु भूताकाश ये दोनों चिदाकाशते उपजे हैं; अरु सर्वका कारण हैं, जैसे दिनकरि सब कार्य होते हैं, तैसे चित्तकरि सब पदार्थ प्रगट होते हैं, सो चित्त जड़ भी नहीं अरु चेतन भी नहीं ॥ आकाश भी तिसते उपजता है॥ हे रामजी ! तीन आकाश भी अप्रबोधके विषय हैं ज्ञानीका विषय नहीं, अरु ज्ञानवान् तीन आकाश कहते हैं; सो

अज्ञानीको उपदेश जतावनेके निमित्त कहते हैं, ज्ञानवान्को एक परब्रह्म पूर्ण सर्व कल्पनाते रहित भासता है, द्वैत अरु अद्वैत शब्द भी उपदेशके निमित्त कहते हैं, प्रबोधका विषय कोई नहीं ॥ हे रामजी! जबलग प्रबोध आत्मा नहीं भया, तबलग मैं तीन आकाश कहता हौं, वास्तवते कल्पना कोऊ नहीं, जैसे दावाग्नि लगेते वन जल जाता है, सो शून्य जैसा भासता है, तैसे ज्ञानाग्निकारि जले हुए चित्ताकाश अरु भूताकाश चिदाकाशविषे शून्य कल्पना भासती है, सो फुरणेद्वारा भासतीहै, मलिन चेतन जो चैत्यताको प्राप्त होता है, इसकारि यह जगत् भासता है, जैसे इंद्रजालकी बाजी होती है, तैसे यह जगत् है, बोधहीनको यह जगत् भासता है, जैसे असम्यग्दर्शीको सीपीविषे रूपा भासता है, तैसे अज्ञानीको जगत् भासता है, आत्मतत्त्व नहीं भासता; जब दृश्यभ्रम नष्ट हो जावै, तब मुक्तरूप होवै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तोपाख्यानं नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ७४.

चित्तोपाख्यानवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जो कछु उपजा है, सो तू चित्तते उपजा जान, सो जैसे उपजा तैसे उपजा, अब तू इसके निवृत्तिवास्ते यत्न करिकै आत्मपदविषे चित्तको जोड़, तब यह जगद्भ्रम नष्ट हो जावैगा ॥ हे रामजी! यह इस चित्तऊपर एक चित्ताख्यान हुआ है सो श्रवण करु, जैसे मैंने देखा है, तैसे तुझको कहता हौं, एक महाशून्य वन था, तिसके कोऊ कोणविषे यह आकाश स्थित है, तिस उजाडविषे मैं एक पुरुष देखत भया, सो कैसा था, कि सहस्र जिसके कर अरु लोचन थे, अरु चंचलरूप अरु व्याकुलरूप अरु बडा आकार [illegible], अरु सहसही भुजाके साथ अपने शरीरको ताडना करै, मारै, [illegible] आपही कष्टमान होइकरि भागै, तब बहुतेरे योजनोंपर चला जावै, अरु दौड़ता दौड़ता थक पड़ै अंग चूर्ण हो जावैं, एक कृष्ण

रात्रिकी नाईं भयानकरूप कूपविषे जाय पड़े, जब केताक काल व्यतीत होवै, तब वहांते निकसिकारि करजूवेके वनविषे जाय पडै, तहां कंटक चुभै तब कष्ट पावै,जैसे पतंग दीपकको सुखरूप जानिकै तिसविषे प्रवेश करै अरु नाश पावै तैसे वह जहां सुखरूप जानिकै तिसविषे प्रवेश करै तहांही कष्ट पावै; बहुरि करजूवेके वनविषे जाइ पड़े, बहुरि निकसि कारि आपको हाथोंकारि प्रहार करै तब तिसकारि कष्टमान होवै; बहुरि दौड़ता दौड़ता अंधे कूपविषे जाय पड़े वहांते निकसिकारि कदलीके वनविषे जाय प्रवेश करै तिसते निकसिकारि बहुरि आपको प्रहार करने लगै, जब कदलीवनविषे जावै, तब कछुक शांतिमान् होवै, अरु प्रसन्नताको प्राप्त होवै, बहुरि दौड़े, आपको प्रहार करै, कष्टमान होइकै दूरते दूर जाइ पड़े, इसी प्रकार अपना किया आपही कष्ट भोगै, इसप्रकार भटकता फिरै, तब मैं उसको पकडिकारिकै पूंछत भया, अरे तू कौन है, अरु क्या करता हैं, अरु किस निमित्त करता है? अरु तेरा नाम क्या हैं ? अरु यहां क्यों मिथ्या जगतविषे मोहको प्राप्त हुआ है ॥ हे रामजी! जब इसप्रकार मैंने पूछा, तब वह मुझको कहत भया, कि न मैं कछु हौं, न कछु यह है, न मैं कछु करता हौं, अरु तू तौ मेरा शत्रु है, तेरे देखनेकारि मैं नाशको प्राप्त होता हौं, इस प्रकार वह कहिकारि अपने अंगोंको देखत भया, देखै अरु रुदन करै क्षणविषे उसका वपु नाश होनेलगा, मेरे देखते देखते वह पुरुष अपने अंगोंको त्यागत भया, प्रथम उसका शीश गिर पड़ा, बहुरि भुजा गिर पडीं, बहुरि वक्षस्थल, बहुरि उदर इसप्रकार क्रमकारिकै वह पुरुष अपने शरीरको त्यागत भया, जैसे स्वप्नते जागे स्वप्नका शरीर नष्ट होता है, तब मैं नीतिशक्तिको विचारकारिकै आगे गया, तब और एक पुरुष मैंने देखा, सो भी इसीप्रकार आपको आपही प्रहार करै, अरु कष्टमान होयकै दौडै, जाइकारि एक कूपविषे गिर पडे, वहांते निकसिकारि बहुरि प्रहार करै, बहुरि वनविषे जावै, कहूं करजूवेके वनविषे कबहूं कदलीके वनविषे जावै, जब कदलीवनविषे जावै, तब पुष्ट होवै, अरु हर्षको प्राप्त होवै, जब वहाँते निकसै तब बहुरि आपको प्रहार करै, बहुरि दौडै

करजूवे कदली आदिक वनोंविषे जाय पड़ै, तब उसने मुझको देखा, देखिकै प्रसन्न भया, अरु बड़े हर्षको प्राप्त भया, अरु हँसा तब तिसको रोकिकै मैंने उसी प्रकार पूँछा, जब मैंने पूछा, तब वह भी मेरे देखते देखते अपने अंगोंको त्यागत भया, त्यागते कष्टमान् हुआ, अरु हर्षमान् भी हुआ, उसको देखिकरि मैं बहुरि आगे गया, तब और एक पुरुष देखा, वह भी इसी प्रकार करता है, अपने हाथोंसे आपको प्रहार करै, बड़े अंधकूपविषे जाय पड़ै ॥ हे रामजी ! चिरकालपर्यंत मैं उसको देखत भया, जब कूपते निकसा तब मैं उसपर प्रसन्न होकरि उससों पूछत भया, जैसे उसे पूछा था, तब वह मूर्ख मुझको न जानिकै दूरते त्यागि गया और जो कछु अपना व्यवहार, था, तिसविषे जाइ लगा, तिसके अनंतर चिरकालपर्यंत मैं उस वनविषे विचरता रहा, तब उसी प्रकार मैं बहुरि पुरुष देखता रहा, जो आपही आपका नाश करै, जिसको मैं पूछौं, अरु वह मेरे पास आवै, तिसको मैं कष्टते छुडाइ देऊं, अरु आनंदको प्राप्त करौं, अरु मेरे निकटही न आवै, मुझको त्यागि जावै, उस अटवीविषे तिसका वही हाल होवै, अरु व्यवहार करै ॥ हे रामजी ! वह अटवी तुमने भी देखी है, परतु तुमने वह व्यवहार नहीं किया और उस अटवीविषे तू जाने योग्य भी नहीं, तू बालक है, अरु वह अटवी महाभयानक है, तिसको प्राप्त हुए कष्टते कष्टको प्राप्त होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तोपाख्यानं नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पंचसप्ततितमः सर्गः ७५.

चित्तोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! वह कौन अटवी है, अरु मैंने कब देखी है, अरु वे कौन हैं, अरु वे पुरुष अपने नाशके निमित्त क्यों उद्यम [illegible] थे, सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! वह अटवी दूर नहीं अरु

वे पुरुष भी दूर नहीं, यह जो गंभीर बडा आकाररूप संसार है, सो अटवी है, कैसी अटवी है, जो शून्य है, अरु विकारोंकरि पूर्ण है, अरु यह अटवी भी आत्माकरि सिद्ध होती है, अरु तिसविषे जो पुरुष रहते हैं सो सब मन हैं, दुःखरूपी चेष्टा करते हैं, अरु विवेक ज्ञानरूपी जो मैं था सो उनको पकडता था, जो मेरे निकट आते थे, सो मेरे प्रकाशकरिकै प्रफुल्लित होते थे, जैसे सूर्यके प्रकाशकरिकै सूर्यमुखी कमल खिल आते हैं, तैसे मेरे प्रबोधकरिकै वह महामति हुए, अरु वह चित्ततें उपशम हुए वे परमपदको प्राप्त हुए अरु जो मेरे निकट न आये और अविवेककरिकै मोहे हुए मेरा निरादर करत भये, सो मोहकष्टहीविषे रहे, अब तिनके अंग अरु प्रहार अरु कूप अरु करञ्जुवे अरु केलेके वनका उपमान सुन ॥ हे रामजी! जेती कछु विषय अभिलाषा हैं, सो तिस मनके अंग हैं, अरु हाथोंकरि प्रहार करना यह है, जो सकाम कर्म करते हैं, तिनकरि फटे हुए दूरते दूर दौडते हैं, सो मृतक होते हैं, सोई अधकूपविषे गिरते हैं, सो विवेकका त्याग करना यही है, इसप्रकार वे पुरुष आपसोंकरि आपही प्रहार करते भटकते फिरते हैं, अरु अभिलाषारूपी सहस्र अंगोंकरि आवरे हुए मृतक होकरि नरकरूपी कूपविषे पडे हुए जब बाह्य निकसै तब पुण्यकर्मोंकरि स्वर्गविषे जाय प्राप्त होवैं, सोई कदलीकवनसमान है, तहां कछुक सुख पावैं, तिसते जब निकसै तब करञ्जुवेके वनविषे पढैं, स्त्री पुत्र कलत्र आदिक जो कुटुम्ब है, सो करञ्जुवेके वन हैं; अरु करञ्जुवेसाथ कंटक होते हैं सो पुत्र धन अरु लोकोंकी कामना करते हैं तिनकरि पडे कष्ट पाते हैं, जब महापापकर्म करते हैं, तब नरकरूपी अंधकूपविषे पडते हैं, अरु पुण्यकर्मकरते हैं तब कदलीवनकी नाईं स्वर्गको प्राप्त होतेहैं तब कछुक उल्लासको प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी! गृहस्थाश्रम महादुःखरूप है; करञ्जुवेके वनकी नाईं है यह मनुष्य ऐसे मूर्ख हैं, जो अपने नाशके निमित्तही यत्न करते हैं बहुरि वही दुःखरूप कर्म करते हैं; अरु जो तिनविषे विहित करिकै विवेकके निकट आते हैं सो शुभ अशुभ कर्मोंके बंधनते मुक्त होइकरि परमपदको प्राप्त होते हैं; अरु जो विवेकसाथ हित नहीं करते, सो दूरते दूर भटकते हैं ॥ हे रामजी! जो पुरुष भोगभोगनेके

निमित्त यत्न करते हैं, तप आदिक पुण्यकर्म करते हैं, सो उत्तम शरीरको धारिकै स्वर्गसुख भोगते हैं अरु वह जो मुझको देखिकै मनरूपी पुरुष कहता था, जो तू हमारा शत्रु है, तुझकरि हम नष्ट होते हैं, अरु रुदन करते थे, सो विषय भोग त्यागनेके निमित्त मूर्ख चित्त कष्ट पाता है, मूर्खकी प्रीति विषयविषे होती है, तिसके त्यागनेते कष्टमान होते हैं, अरु विवेकको देखिकै रुदन करने लगते हैं. काहेते कि अर्धप्रबुद्ध हैं, जिनको परमपदकी प्राप्ति नहीं भई सो भोगोंको त्यागते कष्टमान होते हैं, अरु रुदन करते हैं, अरु जब अज्ञानको मूर्ख चित्त अर्धप्रबोध अभिलाषारूपी अंगोंको तपायमान न हुआ त्यागता है, अरु विवेकको प्राप्त होताहै, तब परम तुष्टमान हुआ हँसने लगता है, ताते विवेकको प्राप्त होइकारि संसारकी वासनाको त्यागौ तब आनंदमान होहुगे, पूर्वका स्वभाव अरु नीच चेष्टाको त्यागिकरि हँसता है कि, मैं मिथ्या चेष्टा करता था, चिरकालपर्यंत मूर्खता करिके कष्ट पाता रहा ॥ हे रामजी! इसप्रकार विवेकको प्राप्त होइकारि चित्त परमपदविषे विश्राम पाता है, तब पूर्वकी दीन चेष्टाको स्मरण करिकै हँसता है ॥ हे रामजी! जब मैं उस मनरूपी पुरुषको रोकिकारि पूछता था, अरु वह अपने अंगोंको त्यागता जाता था, सो भी सुन; मैं विवेकरूप हौं, जब उस चित्तरूपी पुरुषको मिला, तब उसके सहस्र कर अरु लोचनरूपी अभिलाषाका त्याग भया, अरु अपने प्रहार करनेते भी रहगया; अरु उसका शीश जो प्रथम गिरपडा, सो परिच्छिन्न देह अभिमानी जो अहंकार है, सोई शीश था; जब वह गिर पडा, तब दुर्वासनारूपी अंगोंको त्यागत भया, तिनको त्यागिकारि आप भी नष्ट हो गया, सो अहंकार अपनी निर्वाणताको देखत भया, अर्थ यह जो परमब्रह्मविषे लीन होगया ॥ हे रामजी! इस पुरुषको बंधनका कारण वासना है, जैसे बालक विचारते रहित चंचलरूपी चेष्टा करता है, सो कष्ट पाता है, अग्निविषे हाथ डारै गढेविषे गिर पडै; अथवा और कोऊ कार्य ऐसा करै, अरु जैसे घुराणकीट आपही अपने बैठनेकी गुफा बनाइके फँस मरती है, तैसे यह पुरुष अपनी वासनाकारि आपही बंधनमें पडता है, जैसे मर्कट लकडीविषे हाथ डारिकै कीलीको काढने लगता

, लीला करता है, तब उसका हाथ फँस पडता है, बहुरि कष्ट पाताहै, तैसे अज्ञानीको अपनी चेष्टाही बंधन करती है, काहेते जो विचारविना करता है, ताते ॥ हे रामजी! इस चित्तसाथ शास्त्र अरु संतोंके गुणोंकारि चिरपर्यंत चलौ, जो कछु शास्त्रविषे अर्थप्रतिपाद्य है, तिसकी दृढभावना करौ, जब अभ्यासकरि तेरा चित्त स्वस्थ होवैगा, तब तुझको शोक कोऊ न होवैगा ॥ हे रामजी! जब चित्त आत्मपदविषे स्थित होवैगा तब राग अरु द्वेषकारि चलायमान न होवैगा अरु जो कछु देहादिक साथ प्रच्छन्न अहंकार है, सो नष्ट होवैगा, जैसे सूर्य उदय हुए बर्फ गलि जाता है. तैसे तुच्छ अहंकार नष्ट हो जावैगा, अरु सर्व आत्माही भासैगा॥ हे रामजी! जबलग इसको आत्मज्ञान नहीं प्राप्त भया, तबलग शास्त्रके अनुसार अनिंदित आचारविषे विचारै, अरु शास्त्रके अर्थविषे अभ्यास करै, अरु मनको रागद्वेषादिकते मौन करै. तब पाछे पाने योग्य अजन्मा शुद्ध शांतरूप पदको प्राप्त होवैगा; तब सर्व शोकको तरैगा, शांतरूप होवैगा ॥ हे रामजी! जबलग आत्मतत्त्वका प्रमाद है, तबलग अनेक दुःख वृद्ध होते जाते हैं, शांति नहीं होती, अरु जब आत्मपदकी प्राप्ति हुई तब सब दुःख नष्ट हो जाते हैं॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम पंचसप्ततितमः सर्गः ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ७६.

चित्तचिकित्सावर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह चित्त परब्रह्मते उपजाहै, सो आत्मरूप है, और आत्मरूप नहीं, जैसे समुद्रते तरंग होते हैं, सो तन्मयभी हैं, अरु भिन्न भी हैं, तैसे चित्त है, जो ज्ञानवान् हैं, तिनको चित्त ब्रह्मरूपही है, इतर कछु नहीं, जैसे जिसको जलका ज्ञान है, तिसको तरंग भी जलरूप भासता है, अरु जो ज्ञानते रहित हैं, तिनको मन संसारभ्रमका कारण है, जैसे जिसको जलका ज्ञान नहीं, तिसको भिन्न भिन्न तरंग भासते हैं, तैसे जो अज्ञानी हैं, तिनको भिन्न भिन्न

जगत् भासता है, अरु ज्ञानवान्‌को केवल ब्रह्मसत्ताही भासती है ॥ हे रामजी ! जो ज्ञानवान् भेद कल्पते हैं, सो अज्ञानीको उपदेशनिमित्त भेद कल्पते हैं, अपनी दृष्टिविषे उनको सर्व ब्रह्मही भासता है, अरु मन आदिक भी तुझको भासते हैं, सो ब्रह्मसों भिन्न नहीं अनन्यरूप हैं, शक्तिरूप हैं, तिसते अन्य कोऊ पदार्थ नहीं, सर्वशक्त परब्रह्म है, सो नित्य है, अरु सब ओरते पूर्ण है, अविनाशी है तिसते अन्य कोऊ पदार्थ नहीं, सबही ब्रह्मसत्ताविषे है, सर्वशक्तिमान् आत्मा है, जैसे उसको रुचती है, सोई शक्ति प्रत्यक्ष होती है, सर्व शक्तिरूप होइकरि पसरा है, चेतनशक्ति जीवोंविषे ज्ञानरूपकरिके प्रत्यक्ष है, वायुविषे स्पंदशक्ति वही है, पत्थरविषे जडशक्ति है, जलविषे द्रवताशक्ति, अग्निविषे तेजशक्ति अरु आकाशविषे शून्यशक्ति है; भावशक्ति स्वर्गविषे है, नाश शक्ति कालविषे है, शोकविषे शोकशक्ति है, मुदिताविषे आनंदशक्ति है, वीरोंविषे वीरशक्ति है, सर्गके उपजानेविषे उत्पत्ति शक्ति वही है, कल्पके अंतविषे सर्वका नाशक वही है, नाशविषे नाशशक्ति उसकी है, इसते आदि लेकरि जेती कछु भाव अभाव पदार्थ शक्ति है, सो सब ब्रह्मकी शक्ति है, जैसे फूल, फल, वेली, पत्र, शाखा, वृक्ष, जेता कछु विस्तार है, सो बीजके अंतर्भाव होता है, तैसे सब जगत् ब्रह्मविषे स्थित होता है, जीव अरु चित्त अरु मन आदिक भी ब्रह्महीविषे ब्रह्मस्थित हैं, जैसे नानाप्रकारके पत्र, फूल, फल, बीजके अंतर स्थित होते हैं, तैसे सब ब्रह्मविषे स्थित हैं ॥ हे रामजी ! जैसे वसंतऋतुकरिके एकही रस नानाप्रकारके फूल, फल, टास, बहुत रूपोंको धारता है, तैसे एकही आकाश ब्रह्मचैतन्यताकरि जगत्‌रूप होइ भासता है, तिसविषे और देश काल आदिक विचित्रिता कोई नहीं, संपूर्ण जगत् ब्रह्म स्वरूप है, सो ब्रह्म आत्मा सर्वज्ञ है, नित्य उदितरूप है, बृहद्रूप है, अर्थ सबते बडा है, वपु जिसका ॥ हे रामचंद्रजी ! तिसविषे कछु मननकलना होतीहै, तब तिसको मन कहते हैं, जैसे आकाशविषे आँखसों तरवरे भासते हैं, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है, तैसे आत्माविषे मन है, ॥ हे रामजी ! ब्रह्मविषे जो चित्त होता है, सो मनका रूप है, तैसे मन ब्रह्मकी शक्तिरूप है, इसी कारण ब्रह्मते इतर कछु नहीं, ब्रह्मही

है, ब्रह्मते इतर कछु कल्पना करनी अज्ञान है, ब्रह्मविषे मैं ऐसा उत्थान हुआ है, इसका नाम मन है, जड अजडरूप मनते आगे जगत् हुआ, मनहीके आगे प्रतियोगी व्यवच्छेदक संख्यारूप यह सब मनके कल्पेहैं, प्रतियोगी व्यवच्छेद संख्या इनका भेद यह है, प्रतियोगी कहिये, जैसे चेतनका प्रतियोगी जड, अरु व्यवच्छेदक कहिये, जैसें घटअविच्छिन्न पट-अविच्छिन्न इत्यादिक संज्ञा कहिये, अनेक रूप जो दृश्य हैं, सो सब मनके कल्पे हैं जैसे जैसे ब्रह्मविषे दृढ मन होता है, तैसे तैसे भासता है; इंद्र ब्राह्मणके पुत्रोंकी नाई, जैसे समुद्रविषे द्रवताकरिकै तरंगचक्र होइ भासते हैं, तैसे शुद्ध चिन्मात्रविषे जीव फुरणेकरिकै नानाप्रकारका जगत् होइ भासता है, परंतु कछु हुआ नहीं, ब्रह्मही अपने आपविषे स्थित है, जैसे तरंगोंके होने अरु मिटनेविषे जल एकही रस है, तैसे जगत्के उपजने अरु मिटनेविषे ब्रह्म ज्योंका त्यों है, जैसे सूर्यकी किरणोंमें दृढ तेजकरिकै जलहो भासताहै, तैसे आत्मतत्त्वविषे विचित्रता भासती है, परंतु सदा अपने आपविषे स्थितहै॥ हे रामजी! कारण कर्म कर्ता जन्म मरणादिक जेते कछु भासते हैं, सोसब ब्रह्मरूप हैं ब्रह्मते इतर कछु नहीं, अरु आत्मा शुद्धरूप है, तिसविषे न लोभ है न मोह है, न तृष्णा है, काहेते कि अद्वैतरूप है, अरु सर्वात्मा है, जैसे सुवर्णते नानाप्रकारके भूषण हो भासते हैं, तैसे ब्रह्मते जगत् हो भासता है; जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनको सदा ऐसेही भासता है, अरु जो अज्ञानी हैं, तिनको भिन्न भिन्न कल्पना भासती है, जैसे किसीका बांधव होवे, अरु दूरते दूर देशते चिरकाल पाछे आवे, तब देशकालके व्यवधानकरि बांधवको अबांधव जानता है. तैसे अज्ञानके व्यवधानकरिकै अभिन्नरूप आत्माको भिन्नरूप जानता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि भासता है, तैसे सत्य असत्यरूप मन आत्माविषे भासता है, तिस मनने शब्द अर्थरूप भिन्न भिन्न कल्पना रची हैं, अरु आत्मतत्त्व सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे बंध मोक्ष कल्पनाका अभाव है॥ रामउवाच॥ हे भगवन्! जो मनविषे निश्चय होता है, सोई होता है, अन्यथा नहीं होता, अरु मनविषे बंधका निश्चय होता है, सो बंध कैसे सत्य है, ?॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! बंधकी कल्पना मूर्ख करते हैं, ताते

मिथ्या है, जो बंधकी कल्पना मिथ्या भई, तौ बंधकी अपेक्षाकरि जो मोक्ष है, सो भी मिथ्या है, ताते वंधमोक्षकी कल्पना मूर्ख मिथ्या करते हैं, वास्तवते न बंध है, न मोक्ष है ॥ हे महामति रामजी ! अज्ञानकरिकै अवस्तुभी वस्तुरूप होइ भासती है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, अरु ज्ञानवान्को अवस्तु सत्य नहीं भासती, जैसे जेवरीके ज्ञानते सर्प नहीं भासता, ताते बंध मोक्ष कलना मूर्खोंको भासती है, ज्ञानवान्को बंध मोक्ष कलना कोई नहीं भासती ॥ हे रामजी! आदि परमात्माते मन उपजा, तिस मननेही वंध अरु मोहकरि कल्पा है, वहुरि दृश्यप्रपंचको रचा है, सोई प्रपंच कल्पनामात्र है, बालककी कथावत् मूर्खोंको रुचती है, अर्थ यह जो विचारते रहित हैं, तिनको यह जगत् सत्य भासता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिकरणे चित्तचिकित्सावर्णनं नाम पट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ७७.

बालकाख्यायिकावर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! बालककी कथा क्या है; सो क्रमकरिकै मुझको कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामचंद्र ! एक मूर्ख बालक था, सो धात्री जो दाई, तिससों पूछता भया कि, कोई अपूर्व कथा कह; जो तुझको आती है, जो आगे न हुई होवै, सो मुझको कह ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार कहा, तब तिसके विनोदनिमित्त महाबुद्धिमती धात्री कथा कहत भई ॥ धात्र्युवाच ॥ हे पुत्र ! सुन, एक बडा शून्य नगर था, तिसका एक राजा था, तिस राजाके तीन पुत्र थे, सो पुत्र शुभ आचारवान् थे, अरु बडे सुंदर तेजवान् थे, जैसे आकाशविषे तारे हैं, तैसे सुंदर तेजवान् थे, सो दोऊ तौ उपजे न थे, अरु एक गर्भविषे आया न था, सो तीनों शुभ आचरवान् शुभ क्रियाकर्त्ता द्रव्यके अर्थ जीतनेको चले, शून्य नगरते बाहिर निकसे निर्मार्गरूप तिसके नगर थे, निर्बुद्ध अरु शोकसहित इकट्ठे जावैं, जैसे बुध अरु

शुक्र अरु शनैश्वर इकट्ठे चले, तैसे चलैं, अर्थ यह कि, इकट्ठे चलनेका दृष्टांत शुक्र शनैश्वर अरु बुधका नहीं है, निर्बुद्ध अरु शोकका ग्रहणरूप दृष्टांत है, अरु सरसोंके फूलकी नाईं तिनके अंग कोमल थे; सो मार्गमें थके, ऊपरते सूर्यकी धूप तपै, जैसे ज्येष्ठ आषाढके धूपकारि कमल कुँभलाइ जाते हैं, तैसै कुँभलाइ गये, अरु तप्त चरण कारि तपने लगे; महाशोकको प्राप्त हुए, चरणोंविषे डाभके कंटक लगे, अरु मुख धूलकारि धूसर हो गया तीनों कष्टमान होयके आये, आगे तीन वृक्ष देखे सो कैसे वृक्ष हैं, जो दो तौ उपजे नहीं, अरु तीसरेका बीजभी नहीं बोया, सो तीनों एक एक वृक्षके नीचे आइकारि विश्राम करते भये, जैसे कल्पवृक्षके नीचे स्वर्गविषे इंद्र अरु यम आइ बैठैं, तैसे आइ बैठे, अरु तिनके फल भक्षण किये, अरु फलोंका रस काटिके पान किया, अरु तिन्होंके फूलोंकी माला गलेविषे पहरी, अरु चिरकालपर्यंत तहां विश्राम किया, बहुरि चले, दूरते दूर गये, ऊपर मध्याह्नका समय हुआ, तिसकरि तपायमान हुए तब आगे तीन नदियां देखीं, तिनके निकट गये, तरंगोंकारि लीलायमान हैं, और दोनोंविषे जल कछु नहीं, अरु तीसरी सूखी पडी है, तिसविषे चिरकालपर्यंत क्रीडा करते भये, जैसे स्वर्गकी गंगाविषे ब्रह्मा, विष्णु अरु रुद्र कल्लोल करते हैं, तैसे तिसविषे कल्लोल करैं, अरु जलपान करैं जब दिन अस्त होने लगा तब वहांते चले, एक भविष्यत् नगरको देखत भये, बडी ध्वजाकारिकै संपन्न अरु रत्न मणि सुवर्णकारिकै जडी है, मानौं सुमेरुका शिखर है, तिसविषे हीरा मणिकरिकै जडा एक मंदिर देखा; कैसा मंदिर जो निर्भयरूप; अर्थ यह जो निराकाररूप है, तिसविषे जाय प्रवेश किया, तहां बहुत अंगना हैं तिस मंदिरविषे जायकारि विचारत भये, कि रसोई करिये, अरु ब्राह्मणोंको भोजन खवाइये, तब कचनकी तीन बटलोइय मँगाईं, सो कैसी कि, दोका करनेवाला उपजा नहीं, अर्थ यह कि आधारते रहितरूप, अरु तीसरी चूर्णरूप, तिस चूर्णरूप बटलोईविषे तिन्होंने षोडश सेर रसोई चढाई अरु ब्राह्मण अरु आप जो कछु विदेहरूप देह-

हीन थे, तिन्होंने अरु निर्मुख ऋषियोंने भोजन किया, तिसकरि सैकडों ब्राह्मणोंको भोजन कराये, आप भी भोजन करत भये, अर्थ यह जो षोडश सेरका एक द्रोण होता है, तीनोंने चावल रांधे, अर्थ यह कि साडे उनतालीस मन अरु चालीस सेर तिनका तोल होता है, तीनोंने साढे उनतालीस मन चार सेर घट रांधा, इसप्रकार वह तीन राजपुत्र आजपर्यंत सुखसाथ स्थित हैं ॥ हे पुत्र ! यह रमणीक कथा मैं तुझको अब सुनाई है, जब तू इसको हृदयविषे धारैगा, तब पंडित होवैगा ॥ हे रामजी ! इसप्रकार धात्रीने बालकको कथा सुनाई, तब बालकके मनविषे सांच आय गई, जैसे उस कथाका रूप संकल्पते इतर कछु न था, तैसे यह जगत् है; सब संकल्पमात्र है, अज्ञानकरिकै हृदयविषे स्थिर हो रहा है, भ्रमकरिकै इसविषे आस्था भई है, बंध मोक्ष भी कल्पनामात्रहै, संकल्पते इतर इसका स्वरूप कछु नहीं ॥ हे रामजी ! शुद्ध आत्मा निष्किंचनरूप है, सकल्पके वशते किंचनरूप हो भासता है, पृथ्वी, वायु आकाशपर्यंत नदियां देश आदिक जो पंचभूतक सृष्टि है, सो सब संकल्पमात्र है; जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकार सृष्टि भासती है, अरु है कछु नहीं, उपजी भी नहीं, तैसे यह जगत् जान. जैसे कल्पित राजपुत्र भविष्यत् नगरविषे स्थित हुए, सो रचनासंकल्प बालकको स्थिरीभूत भया, तैसेयह जगत् संकल्पमात्र मनके फुरनेकरि दृढ भया है, जैसे द्रवताकरिकै जलते तरंग होते हैं, सो जलही जलविषे है, तैसे आत्मा ही आत्माविषे स्थित है यह सब जगत् संकल्पकरि उपजा है, अरु बडे विस्तारको प्राप्त भया है, जैसे दिनकरिकै व्यवहार विस्तारको प्राप्त होता है. तैसे संकल्पजालकरि उपजा जगत् विस्तारको प्राप्त होता है, अरु चित्तका विलास है, चित्तके फुरनेकरिकै भासता है ॥ ताते हे रामजी ! संकल्परूपी मैलको त्यागिकरि निर्विकल्प आत्मतत्त्वका आश्रय करौ, जब तिस पदविषे स्थित होहुगे, तब परम शांतिकी प्राप्ति होवैगी ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बालकाख्यायिकावर्णनं नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥७७॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः ७८.

मनोनिर्वाणोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो मूढ अज्ञानी पुरुष है सो अपने संकल्पकारिकै आपही मोहको प्राप्त होता है, अरु जो पंडित है, सो मोहको नहीं प्राप्त होता; जैसे मूर्ख बालक अपने परछाईंविषे पिशाच कल्पिकरिकै भयको प्राप्त होता है, तैसे मूर्ख अपनी कल्पनाकारि दुःखी होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ब्रह्मवेत्ताविषे श्रेष्ठ, वह संकल्प क्या है, अरु छाया क्या है, जो असत्यही सत्यरूप, पिशाचकी नाईं दीखता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! पांचभौतिक शरीर परछायेकी नाईं है, काहेते कि, अपनी कल्पनाकारि रचा है, अरु अहंकाररूपी पिशाच है, जैसे मिथ्या परछायविषे पिशाचको देखिकै भयमान होता है, तैसे देहविषे अहंकारको देखिकै खेदको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! एक परमात्मा सर्वविषे स्थित है, तब अहंकार कैसे होवै, वास्तवते अहंकार कोई नहीं, परमात्माही अभेदरूप है, तिसविषे अहंबुद्धि भ्रमकरिकै भासती है, जैसे मिथ्यादर्शीको मरुस्थलविषे जल भासता है, तैसे मिथ्या ज्ञानकरिकै अहंकारकल्पना होती है, जैसे मणिका प्रकाश मणिकेऊपर पडता है, सो मणिते इतर कछु नहीं, मणिरूप है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, सो आत्माहीविषे स्थित है, जैसे जलविषे द्रवताकरिकै चक्रतरंग होइ भासते हैं, सो जलरूप हैं, तैसे आत्माविषे चित्त करिकै नानात्व होइ भासता है, सो आत्माते इतर कछु नहीं, असम्यक् दर्शन करिकै नानात्व भासता है, ताते असम्यक् दृष्टिको त्यागिकै आनंदरूपका आश्रय करौ, मोहके आरंभको त्यागिकारि शुद्ध बुद्धिसहित विचरौ; विचार करिकै सत्यको ग्रहण करौ, असत्यका त्याग करौ ॥ हे रामजी ! तुम मोहका माहात्म्य देखो, जो देह स्थूलरूप नाशवंत है, तिसके रखनेका उपाय करता है, सो रहता नहीं, अरु जिस मनरूपी शरीरके नाश हुएते कल्याण होता है, तिसको

पुष्ट करता है ॥ हे रामजी ! सब मोहका आरंभ मिथ्याभ्रमकरिकै दृढ हुआ है, अनंत आत्मतत्त्वविषे कल्पना कोऊ नहीं, कौन किसको कहे? जेता कछु नानात्व भासता है सो है नहीं, अरु जीव ब्रह्मसाथ अभिन्न है, तिस ब्रह्मतत्त्वकेविषे कौन बंध कहिये? अरु कौन मोक्ष कहियें? वास्तवते न कोऊ बंध है, न मोक्ष है काहेते कि, आत्मसत्ता अनंतरूप हैं ॥ हे रामजी! वास्तव कछु द्वैतकल्पना हुई नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे है, जो आत्मतत्त्व अनंत है, सोई अज्ञानकरिकै अन्यकी नाईं भासता है, जब अनात्मविषे आत्माभिमान करता है, तब परिच्छिन्न कल्पना होती है; तब शरीरको अच्छेदरूप जानिकै कष्टमान होता है, अरु आत्मपदविषे भेद अभेद विकार कोऊ नहीं; काहेते कि, वह नित्य शुद्धबोध अविनाशी पुरुष है ॥ हे रामजी! आत्माविषे न कोई विकार है, न बंध है, न मोक्ष है; काहेते कि, आत्मतत्त्व अनंतरूप निर्विकार अच्छेदरूप है, निराकार अद्वैतरूप है, तिसको बंधविकारकल्पना कैसी होवे? ॥ हे रामजी! देहके नष्ट हुए आत्मा नष्ट नहीं होता, जैसे चमड़ीविषे आकाश होता है, सो चमडीके नाश हुएते आकाशका नाश नहीं होता; तैसे देहके नाश हुएते आत्माका नाश नहीं होता, जैसे फूलके नाश हुएते गंध आकाशविषे लीन होता है, जैसे कमलऊपर बर्फ पडता है, तब कमल नष्ट हो जाता है, भ्रमर नाश नहीं होता, तैसे देहके नाश हुएते आत्माका नाश नहीं होता; जैसे मेघके नाश हुएते पवनका नाश नहीं होता ॥ हे रामजी! सबका शरीर मन है; सो मन आत्माकी शक्ति है, तिस मनविषे आगे यह शरीर आदिक जगत् रचा है, तिस मनका ज्ञानविना नाश नहीं होता, तौ बहुरि शरीर आदिक नष्ट हुएते आत्माका नाश कैसे होवै? ॥ हे रामजी ! शरीरके नष्ट हुएते तेरा नाश नहीं होता, तू क्यों मिथ्या शोकवान् होता है, तू तो नित्य शुद्ध ज्ञानरूप आत्मा है ॥ हे रामजी ! मेघके क्षीण हुएते पवन क्षीण नहीं होता, कमलोंके सूखेते भ्रमर नष्ट नहीं होता, तैसे देहके नष्ट हुएते आत्मा नष्ट नहीं होता संसारविषे क्रीडाकर्ता जो मन है; तिसका भी संसारविषे नाश नहीं होता तौ आत्माका नाश कैसे होवै? जैसे घटके नाश हुएते घटाकाशका नाश

नहीं होता ॥ हे रामजी ! जैसे जलका कुंडा होता है; तिसविषे सूर्यका प्रतिबिंब पडता है, तिस कुंडके नाश हुएते प्रतिबिंबका नाश नहीं होता, तिस जलको और ठौर ले जाय तब प्रतिबिंब भी चलता भासता है, तैसे देहविषे जो आत्मा स्थित है, सो देहके चलनेते चलता भासता है जैसे घटके फूटेते घटाकाश महाकाशविषे स्थित होता है, तैसे देहके नाश हुएते आत्मा निरामय पदविषे स्थित होता है ॥ हे रामजी ! सब जीवोंको देह मनरूपी है, जब मृतक होता है, तब कोई काल मुहूर्तपर्यंत देश काल पदार्थका अभाव हो जाता है, तिसके अनंतर बहुरि पदार्थ भासते हैं, तिस मूर्च्छाका नाम मृतक है और आत्माका नाश तौ नहीं होता, चित्तकी मूर्च्छाकरिके देश काल पदार्थोंका आभाव होना इसीका नाम मृतक है ॥ हे रामजी ! ससारभ्रमको रचनेहारा जो मन है, तिसका ज्ञान-रूपी अग्निकरि नाश होता है; आत्मतत्त्वका नाश कैसे होवे ॥ हे रामजी ! देश काल वस्तुकरि मनका निश्चय विपर्ययभावको प्राप्त होता है, परंतु ज्ञानविना नष्ट नहीं होता; अनेक यत्न करै ॥ हे रामजी ! जन्मकल्पित रूपका नाश नहीं होता; जगत्के पदार्थकरि आत्मसत्ताका नाश कैसे होवे तिस कारणते शोक किसीका नहीं करना ॥ हे महाबाहो ! तुमतौनित्य शुद्ध अविनाशी पुरुष हौ, यह संकल्पवासनाकरिके तेरेविषे जन्ममरण आदिक भासते हैं सो भ्रममात्र हैं; ताते इस वासनाको त्यागिकरिके शुद्ध चिदा-काशविषे स्थित होहु; जैसे गरुडपक्षी अंडेको त्यागिकरिके आकाशको उडता है, तैसे वासनाको त्यागिकरि तुम चिदाकाशविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! शुद्ध आत्माविषे जो मनन फुरता है, सोई मन है, सो मनन शक्ति इष्ट अनिष्टकरिकै इसको बंधनका कारण है, सो मन मिथ्या भ्रांतिकरिकै उदय हुआ है, जैसे स्वप्नद्रष्टा भ्रांतिमात्र होता है, तैसे जाग्रत सृष्टि भ्रांतिमात्र है ॥ हे रामजी ! यह जगत् अविद्याकरिकै बंधनमयहै; अरु दुःखका कारण है; सो अविद्याको तरना कठिन है, अविचारकरिकै अविद्या सिद्ध है, विचार कियेते नष्ट होती है, तिस अविद्याने जगत्को विस्तारा है, यह जगत् बर्फकी कंद है, जब ज्ञानरूपी अग्निका तेज होवै तब निवृत्ति हो जावैगी ॥ हे रामजी ! यह जगत् आकाशरूप है, अविद्या

भ्रांति दृष्टिकरि आकारहोइ भासताहै, असत्य अविद्याकरिकै बडे विस्तारको प्राप्त होता है, दीर्घ स्वप्न है; विचार कियेते निवृत्त हो जाता है॥ हे रामजी! यह जगत् भावनामात्रहै, वास्तवते कछु उपजा नहीं, जैसे आकाशविषे भ्रांतिकरिकै मोरपुच्छकी नाईं तरुवरे भासते हैं; तैसे भ्रांतिकरिकै जगत् भासताहै जैसे बर्फकी शिला तप्त करिकै लीन होजातीहै, तैसे आत्मविचारते जगत् लीन् हो जाताहै, जैसे बर्फकी शिला उष्णताविना शीतस्वभावको त्यागती नहीं, तैसे आत्मविचारते जगत् लीन हो जाताहै ॥ हे रामजी! यह जगत् अविद्याकरिकै बँधाहै, सो अनर्थका कारणहै, जैसेजैसे चित्त फुरता है, तैसेतैसे होय भासता है, जैसे इन्द्रजाली सुवर्णको वर्षा आदिक माया रचता है, तैसे चित्त जैसे फुरता है, तैसा होइके भासता है, जेती कछु चेष्टा आत्माके प्रमादकरिकै मन करता है, सो अपने नाशके कारण होती है, जैसे घुराणकी चेष्टा अपने बंधनका कारण होती है, तैसे मनकी चेष्टा अपने नाशके निमित्त होतीहै, अरु जैसे नटवा अपनी क्रिया करिकै नानाप्रकारके रूपोंको धारता है, तैसे मन अपने संकल्पको विकल्प करिकै नानाप्रकारके भाव अभावरूपोंको धारता है, अरु जब चित्त अपने संकल्प विकल्पको त्यागिकरि आत्माकी ओर देखताहै, तब चित्त नष्टहो जाताहै, जबलग आत्माकी ओर नहीं देखता, तबलग जगतको पसारताहै सो दुःखका कारण होता है, हे रामजी! संकल्पमात्र होना इसविषे तौ यत्न कछु नहीं, संकल्प आवरणको दूर करौ; तब आत्मतत्त्व प्रकाशैगा सङ्कल्पविकल्पही आत्मविषे आवरण हैं, जब दृश्यको त्यागौगे तब आत्मबोध प्रकाशैगा ॥ हे रामजी! मनके नाशविषे बडा आनंद उदय होताहै अरु मनके उदय हुएते बडा अनर्थ होता है, ताते मनके नाश करनेका यत्न करो, मनको बढावनेका यत्न मत करो ॥ हे रामजी! मनरूपी किसानने जगत्रूपी वन रचा है; तिस वनविषे सुखदुःखरूपी वृक्ष हैं, अरु मनरूपी सर्प तिसविषे रहता है, सो विवेकते रहित जो पुरुष हैं, तिनको भोजन करता है॥ हे रामजी! यह मन परमदुःखका कारण है, ताते इस मनरूपी शत्रुको वैराग्य अरु अभ्यासरूपी खड्ग मारौ, तबसे आत्मपदको प्राप्त होहुगे ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इसप्रकार जब वसिष्ठजीने

कहा, तब सायंकालका समय हुआ, सब श्रोता परस्पर नमस्कार करिकै स्नानको गये, बहुरि सूर्यकी किरणोंके उदय हुए अपने २ स्थानपर आय बैठे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनोनिर्वाणोपदेशवर्णनं नाम अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः ७९.

चित्तमाहात्म्यवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह चित्त भी परमात्माते उठे हैं, जैसे समुद्रते लीलाकरिकै जलकणिका होती हैं, तैसे परमात्माते मन हुआ है, बहुरि मनने जगत् रचा है, सो जगत् बडे विस्तारको प्राप्त हुआ है, छोटेको बड़ा करि लेता है, अरु बडेको छोटा करता है, जो अपना आपरूप है, तिसको अन्यकी नाईं दिखावता है, अरु जो अन्यरूप है, तिसको अपना रूप दिखाता है, अर्थ यह जो आत्माको अनात्मभाव प्राप्त करता है, अरु अनात्माको आत्मभाव प्राप्त करता है, ऐसा जो भ्रांतिरूप मन है, सो निकट वस्तुको दूर देखता है, अरु दूर वस्तुको निकट करि देखता है, जैसे निकट वस्तु स्वप्नविषे दूर होय भासती है, अरु दूर वस्तु निकट होय भासती है ॥ हे रामजी ! एक निमेषविषे मन संसारको उत्पन्न करता है, अरु निमेषविषे लीन करि लेता है, जेता कछु स्थावर जंगमरूप जगत् भासता है, सो सब मनहीते उपजता है, देश काल क्रिया द्रव्य अनेक शक्ति विपर्ययरूप मनही दिखाता है, अपने फुरणेकरिकै नानाप्रकारके भावअभावको मनही प्राप्त होता है, जैसे नट लीला करिकै नानाप्रकारके स्वांगोंको प्राप्त होता है, साँचको असाँच अरु असाँचको साँच करि दिखाताहै, तैसे मनविषे जैसा फुरना दृढ होता है, तैसे हो भासता है, जैसा जैसा निश्चय चंचल मनविषे होता है, तिनके अनुसार इंद्रिय भी विचरती हैं, अन्यथा नहीं विचरतीं ॥ हे रामजी ! जो मनकारि चेष्टा होती है, सोई सफल होती है, शरीरकी करी चेष्टा मनविना सफल नहीं होती; जैसा जैसा वेलिका बीज

होता है, तैसाही उसका फल होता है, और प्रकार नहीं होता, तैसे जो कछु मनविषे निश्चय होता है, सोई सफल होता है, जैसे बालक मृत्तिकाकी सेना बनाता है, अरु नानाप्रकारके नाम रखता है, तैसे मन भी संकल्पकारिकै जगत्को रचि लेताहै, जैसे माटीकी सेना माटीसों भिन्न नहीं, तैसे आत्माविषे नानाप्रकारका जगत् कल्पा है, सो आत्माते भिन्न कछु नहीं, जैसे मन संकल्पविषे अर्थोंको नानाप्रकार कल्पता है, तैसे यह जागृत् जगत् भी भ्रमकारि कल्पा है ॥ हे रामजी! एक गोपदविषे मन अनेक योजनको रचि लेता है, अरु कल्पका क्षण अरु क्षणका कल्प रचि लेता है, जैसा कछु मनविषे तीव्र संवेग होता है, तैसाही होइकारि भासता है, तिसको रचनेविषे विलंब नहीं लगता, रचनेको समर्थ है, जैसा तीव्र संवेग होता है, तैसाही भासता है, जेते कछु देश काल पदार्थ हैं, सो मनते उपजे हैं, सबका कारणरूप मन है, जैसे पत्र, फूल, फल, टास वृक्षते उपजे हैं, सो वृक्षरूप हैं, अरु जैसे समुद्रते लहरी, तरंग होते हैं, सो जलरूप हैं, अरु जैसे अग्नि उष्णतारूप है, तैसे नानाप्रकारके स्वभाव मनते उपजे दृष्ट आते हैं, सो मनरूप हैं ॥ हे रामजी ! कर्त्ता कर्म क्रिया, द्रष्टा दर्शन दृश्य, सब मनकाही पसारा है, जैसे सुवर्णते नानाप्रकारके भूषण भासते हैं; अरु जब सुवर्णका ज्ञान हुआ तब सर्व भूषण एक सुवर्णही भासता है, भूषणभाव नहीं भासता, तैसे जब लग आत्माका प्रमाद है, तबलग द्वैतरूप जगत् भासता है, जब आत्मज्ञान हुआ तब सब भ्रम मिटि जाता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तमाहात्म्यवर्णनं नाम एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः ८०.

नृपमोहवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अब एक वृत्तांत तुझको कहता हौं, जो पूर्व व्यतीत हुआ है; यह जगत् इंद्रजालवत् है, जैसे मनरूपी इंद्रजालविषे यह जगत् स्थित है, तैसे तू सुन॥हे रामजी ! इस पृथ्वीविषे

एक उत्तरपाद नाम देश था, तहां तिसविषे एक बड़ा वन था, तिसविषे नानाप्रकारके वृक्ष अरु फूल, फल, ताल थे, तहां विद्याधरी आयकरि कल्लोल करती थीं, अरु बड़े सुंदर स्थान थे, केलेके वृक्ष अरु खजूर अरु जोवेके वृक्ष थे, तहां मोर शब्द करते थे, और अनेक प्रकारके पक्षी शब्द करते थे, अरु अनेक प्रकारके फूलोंते सुगंध निकस रहीथी तहां विद्याधर अरु सिद्धगण देवता आय विश्राम करते थे, किन्नर आय गान करते थे, मंद पवन चलता था, तिस स्थानविषे महासुंदर रचना बनी थी, सुवर्णवत् महाकल्पवृक्ष पारिजातकवृक्ष लगे थे, तिस देशका लवण नाम राजा हरिश्चंद्रके कुलविषे उपजा, सो बडा धर्मात्मा होत भया, मानौ दूसरा सूर्य बडा तेजवान् पृथ्वीविषे आय उदय हुआ है, जेते कछु शत्रु हैं, तिन सबका कुहाडेसे नाश किया, अरु जो साधु पुरुष पुण्यवान् थे, तिनकी रक्षा करी, और दुष्टोंको मारा ॥ हे रामजी! ऐसा तेज उसका हुआ कि, जो शत्रु राजाका नामस्मरण करै तब उसको ताप चढि जावै, अरु श्रेष्ठ पुरुषकी पालना करै, तिस राजाके यशकारि संपूर्ण पृथ्वी पूर्ण भई, स्वर्गविषे देवता विद्याधर यश गावैं, लोकपाल भी जिसका यश सुनैं, सब लोकविषे उसका यश प्रसिद्ध भया ॥ हे रामजी! तिस राजाके समान और कोऊ स्वप्नविषे भी दृष्ट न आवै, कुटिलता अरु लोभ तिसविषे कछु दृष्ट न आवै, अरु बड़ा बुद्धिवान् अरु उदार था, जैसे ब्रह्माजीके कंठ हाथविषे रुद्राक्षकी माला प्रत्यक्ष पाइये तैसे उसकी उदारता अरु तेज दृष्ट आवै; सो धर्मात्मा एक दिन सभासंयुक्त बैठा था, अरु दो मुहूर्त दिन रहा तब बडे सिंहासनपर बैठा था, जैसे देवताकी सभाविषे इंद्र बैठे तैसे बैठा था, अरु मंडलेश्वरकी सेना अंतर प्रवेश करि बाहिर निकसै, स्त्रियोंका नृत्य होता था, वाजित्र वाजते थे, मधुर ध्वनि होती थी, चमर शीशपर झूलता था, मंत्री आगे खड़े थे, जैसे देवगुरु बृहस्पति है, तिसके समान राजाको मंत्री देशमंडलकी वार्ता सुनाते थे, अरु इतिहास कथाका पुस्तक वाँचिकै ढांप रक्खा था, भट्ट कवि स्तुति करते थे, तिस कालविषे एक इन्द्रजाली बाजीगर उसकी सभामें आड-

बरसंयुक्त आया; जैसे वर्षाकालका मेघ जलकरि पूर्ण हो आता है, तैसे आया, अरु राजा सुमेरुके शिखर जैसे ऊँचे आसनपर ग्रीवाको ऊँचेकर बैठा था, अरु जैसे पहाड़के ऊपर वृक्ष होता है, अरु तिसके फल लटकते हैं, तैसे राजा ऊँचे सिंहासनपर बैठा था, अरु चरण लटकते थे, तिस राजाके निकट इंद्रजाली आया, जैसे वृक्षके निकट मर्कट आते हैं. तैसे आयके कहत भया ॥ हे राजन् ! एक तुम मेरा कौतुक देखो, हे रामजी ! ऐसे कहिकरि उसने पेटारा खोला, तिसते एक मोरका पुच्छ भ्रमावने लगा, तिसते भ्रमणकरि नानाप्रकारको रचना भासने लगी, मानों परमात्माकी माया है, तिसते नानाप्रकारकी रंगोंको राजा देखत भया, जैसे इंद्रधनुष आकाशविषे भासता है, तैसे सूर्यकी किरणवत् प्रकाशवान् रंग भासने लगे, बहुरि तिसी क्षणविषे एक मंडलेश्वरका दूत आया, जैसे आकाशकेविषे तारामंडलको लंघिकरि मेघ आता है, तैसे हाथविषे घोड़ा अरु सभाको लंघिकरि आया, अरु कहता भया हे राजन् ! यह महाबलवान् घोडा मेरे राजाने तुमको दिया है, सो कैसा घोडा है, जैसे उच्चैःश्रवस् इंद्रका घोडा समुद्रके मथनेते निकसा है, तैसा यह घोड़ा है, अरु पवनकी नाईं इसका वेग है, मानो पवनकी मूर्ति है, मेरे स्वामीने कहा कि, जो उत्तम पदार्थ है, सो बडेको देना योग्य है इसकारणते यह घोडा रत्न तुमको दियाहै, तुम्हारे योग्य है, ताते लेहु ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार दूतने कहा, तब इंद्रजाली बोला, जैसे मेघ गर्जिकरि चुप होता है, अरु पाछे बबोहा बोलता है, तैसे इंद्रजाली कहा ॥ हे राजन् ! इस घोडेपर तुम आरूढ होकरि विचरौ, आप शोभा पाओगे, जैसे आकाशविषे सूर्य शोभता है, अरु जगत्को भी शोभा देता है, तैसे तुम शोभोगे ॥ हे राजन् ! तुम भी शोभोगे, अरु घोडा भी शोभैगा ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार इंद्रजालीने कहा तब राजा घोडेकी ओर देखत भया; देखिकरि मूर्छित भया, जैसे कागजपर मूर्ति लिखी होती है, तैसे दो मुहूर्तपर्यंत राजा मूर्छित हो गया॥ जैसे वीतराग मुनीश्वर परमानंद आत्मपदविषे स्थित होता है, तैसे राजा हो गया ॥ हे रामजी ! तिस राजाके भयकरिकै मंत्री भी जगावै नहीं, हाथ पाँव राजाके कछु

हिले नहीं, शिरपर चमर होवै, जैसे चिक्कडविषे कमल अचल होता है, तैसे राजा अचल होगया, जैसे मृत्तिकाको कमल स्पष्ट होता है, तैसे राजा होगया; भट कवि शब्दस्तुति करते थे, सो भी चुप हो रहे, जैसे वर्षा कालका मेघ गर्जिकारि शांत हो जाता है, तैसे शांत होगए, अरु मंत्री टहलुए सब भय संशयके समुद्रविषे डूब गए, जानत भये कि राजाके मनविषे कोऊ बडी चिंत्ता उपजी हैं, अरु सब सभाके लोक आश्चर्यमान् हुए ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे इंद्रजालोपाख्यान नृपमोहो नामाशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमः सर्गः ८१.

राजप्रबोधवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तब राजा दो मुहूर्त उपरांत चैतन्य हुआ जैसे वर्षाकालके मेघते छूटिकारि कमल प्रफुल्लित होइ आताहै. तैसे राजा जागिके सिंहासनपर कँपने लगा, जैसे भूकपविषे पर्वत हिलतेहैं, तैसे राजाके अंग हिलने लगे, जैसे समुद्रके मंथनते. मंदराचल कँपता था, तैसे कंपिकारि राजा गिरने लगा, तब मत्री अरु टहलुए भुजा पकडिके राजाको थांभते भये, जैसे प्रलयकालविषे सुमेरु गिरने लगै, अरु पासके पर्वत थांभ गिरने न देवे, तैसे राजाको गिरने न दिया; परंतु राजाकी बुद्धि व्याकुल हो गई, तब राजा बोलत भया, यह नगर किसीका है; अरु सभा किसीकी है, अरु राजा कौन है, यह क्या है ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार राजाका वचन सुना; तब मंत्री कछुक शांत भये, जैसे सूर्य राहुते छूटता है, तब कमल खिल आते हैं. अरु तिनको देखिके भ्रमर प्रसन्न होते हैं, अरु शब्द करते हैं, तैसे मंत्री टहलुए प्रसन्न होइके कहत भये, जैसे प्रलय क्षोभते भ्रमते हुए मार्कंडेय ऋषिको देवता पूछते भये तैसे पूछत भये ॥ हे राजन् ! तू क्यों व्याकुलताको प्राप्त भया है ? तेरा तौ निर्मल मनहै, तू तौ उदार आत्मा है ? हे देव ! जिन पुरुषोंकी प्रीति पदार्थविषे है; अरु आपातरमणीय

भोगोंविषे जिनका चित्त है, तिनका मन मोहविषे भर जाता है, अरु जो संतजन उदारचित्त हैं; तिनका मन निर्मल होता है, तिनका मन मोहविषे कैसे पडे ? ॥ हे देव ! जिनका चित्त भोगोंकी तृष्णाविषे बंधमानहै; तिनका मन मोहको प्राप्त होताहै; अरु जो महापुरुष संतजन हैं; तिनका मन मोहविषे डूबता नहीं; जिनका चित्त पूर्ण आत्मतत्त्वविषे स्थित हुआ है; अरु जे बडे गुणों करिकै संपन्न हैं; तिनको शरीरके रहनेविषे अरु नष्ट होनेविषे कछु मोह नहीं उपजता; अरु जिनको आत्मतत्त्वका अभ्यास नहीं प्राप्त भया; अविवेकी हैं; तिनका चित्त देशकाल, मंत्र औषधके वशकरि मोहको प्राप्त होताहै; तुम्हारा चित्त तौ विवेकभावको ग्रहण करता है; जो नित्यही नूतन उदार कथा अरु शब्द सुनते हौ; अब कैसे मोहकरि चलायमान हुए हौ ? जैसे वायुकरिकै पर्वत चलायमान होवै तैसे तुम चलायमान हुए हौ यह आश्चर्य है तुम अपनी उदारताको स्मरण करौ ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार मंत्री टहलुए कहत भये, तब राजा सावधान भया, अरु मुखकी कांति उज्ज्वल भई, जैसे शरत्कालकी मंजरी सूखी हुई वसंतऋतुविषे प्रफुल्लित होतीहै तैसे राजा नेत्रोंको खोलिकरि देखता भया, जैसे सूर्य राहुकी ओर देखता है, जैसे सर्प नोलेकी ओर देखता है, तैसे इंद्रजालकी ओर देखकरि कहा ॥ हे दुष्ट इंद्रजाल ! तैंने यह क्या कर्म किया, राजासे भी कोऊ ऐसा कर्म करता है, जैसे जलविना मछली कष्ट पायके बहुरि जलविषे प्रसन्न होवै तैसे मैं हुआ हौं, बडा आश्चर्य है, परमात्मा अनंतशक्ति है, अनेक प्रकारके पदार्थ फुरते हैं, मैं दो मुहूर्तविषे क्या भ्रम देखा; मेरा मन सदा ज्ञानके अभ्यासविषे था, सो मोह गया, तौ प्राकृत जीवोंकी बात क्या कहनी, मैंने बडा आश्चर्यभ्रम देखा है, सो सबही मुझते सुनो, यह जो इंद्रजाली है, सो मानो शंबर दैत्य है, जिसने दो मुहूर्तविषे मुझको अनेक देश, काल, पदार्थ दिखाये, जैसे ब्रह्मा एक मुहूर्त्तविषे नानाप्रकारके पदार्थ रचि लेवै, तैसे एक मुहूर्त्तविषे इसने मुझको अनेक भ्रम दिखाये हैं, सो सबही मैं तुम्हारे आगे कहता हौं, मानौ सारी सृष्टि इसके पेटारेविषे है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राजप्रबोधवर्णनं नाम एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमः सर्गः ८२.

चांडालीविवाहवर्णनम्।

राजोवाच ॥ हे साधो! इस पृथ्वीका मैं राजा हौं, सब पृथ्वीविषे मेरी आज्ञा चलती है, अरु मैं इंद्रजालकी नाईं सिंहासनपर बैठता हौं जैसे स्वर्गविषे इंद्रके आगे देवता होतेहैं, तैसे मेरे आगे भृत्य मंत्री हैं, ऐसी उदारताकरि मैं संपन्न हौं, सो मैं बडे भ्रमको देखता भया ॥ हे साधो! जब इस इंद्रजालीने पेटारेसों काढिकरि मोरके पूछको भ्रमाया, तब वह पुच्छ मुझको सूर्यकी किरणोंकी नाईं भासा, जैसे बडा मेघ गर्जिकै शांत होता है, अरु पाछेते इंद्रधनुष दृष्ट आता है, तैसे विचित्ररूप पुच्छ मुझको दृष्ट आया, तब तिसके अनंतर एक दूत घोडा ले आया, तिस घोड़ेपर मैं आरूढ भया, सो चित्तहीकरि घोडा मुझको दूरते दूर ले गया, यहांही बैठा रहा, अरु घोडा मुझको दूरते दूर ले गया, जैसे भोगोंकी वासनाकरिकै मूर्ख घरही बैठे दूरते दूर भटकते फिरैं, तैसे मुझको घोडा दूरते दूर ले गया, एक महाभयानक निर्जन देशविषे लेगया, जैसे प्रलयकालकेविषे जले हुए स्थान होते हैं, तैसे स्थानविषे मुझे ले गया, मानौं दूसरा आकाश हैं, मानौ सात समुद्र हैं, तिन समान अष्टम समुद्र है, चारों दिशोंके जो चार समुद्र वर्णनकिये हैं, तिनसमान मानौ पांचवाँ समुद्र है, महाभयानक स्थानोंको लेगया, देशोंको लंघिकरि महाअटवीविषे ले आया जैसे आकाशवत् ज्ञानीका चित्त होता है, अरु जैसे अज्ञानीका चित्त कठोर होता है, अरु शून्य होता है, तैसे स्थानविषे ले गया, जहां घास वृक्ष जीव मनुष्य कोऊ दृष्ट न आवे तहां मैं महा कष्टवान् दीनताको प्राप्त हुआ, जैसे धन अरु बांधवोंते तथा देश अरु बलते रहित पुरुष कष्ट पावता है, तैसे मैं कष्टवान् हुआ, तब दिनका अंत होगया, तहां उजाडविषे कष्टसाथ मैं रातको व्यतीत कीनी, रात्रिको पृथ्वीपर शयन किया, परंतु निद्रा न आई कल्पसमान रात्रि हो गई, दुःख रिकै जब सूर्य उदय हुआ तब मैं वहांते चला, आगे गया, पक्षियोंका शब्द सुना, बहुरी वृक्ष दृष्टि आये, परंतु खानपान कछु न पाया, तिन

वृक्षोंको देखिकै प्रसन्न भया, जैसे मरणेते छूटे पुरुष रोगकारि भी प्रसन्न होवै, तैसे मैं वृक्षोंको देखिकारि प्रसन्न हुआ. एक जामनके वृक्षका मैंने आश्रय लिया, जैसे मार्कंडेय ऋषिने प्रलयके समुद्रविषे भ्रमता हुआ वटका आश्रय लियाथा तैसे मैंने वृक्षका आश्रय किया, तब घोडा मुझको छोडिकै चल दिया, जैसे गंगाविषे डुबकी लेनेकारि पाप चल देते हैं, तैसे घोडा मुझको छोडिगया, बहुरि सूर्य अस्त भया, तहां रात्रि मैं व्यतीत करी, न कछु भोजन कियां, न जलपान किया, न स्नान किया, महादीनताको मैं प्राप्त हुआ, जैसे कोऊ बिकाया, मनुष्य दीन हो जाता है, अरु जैसे अंधकूपविषे गिरा मनुष्य कष्टवान् होवै, तैसे कष्टवान् हुआ अरु कल्पके समान रात्रि व्यतीत भई, दिन हुआ, कोऊ फूल, फल, पत्र, जल, वहां दृष्ट न आवै, जैसे मूर्खके शरीरविषे कोऊ गुण दृष्ट न आवै, तैसे वहां अन्नपान कछु दृष्ट न आवै, तब मैं आगे गया, तहां पक्षी शब्द करते थे, अरु आधा प्रहर दिन रहा, एक कन्या मुझे दृष्ट आई, तिसके हाथविषे मृत्तिकाकी मटकी, तिसविषे रँधे चावल, अरु जांबूके रसकी टीड भरी हुई ले जाती हैं, तिसको देखिकारि मैं तिसके सन्मुख आया, जैसे रात्रिके सन्मुख चंद्रमा आता है, तैसे मैं आइके कहा, हे बाले! मुझको भोजन दें, मैं क्षुधाकारिकै आतुर हौं, जो कोऊ दीन आर्तको अन्न देता है, सो बडी संपदाको प्राप्त होताहै, ताते तू भोजन मुझको देहु ॥ हे साधो! जब मैंने वारंवार कहा, तब उसने कहा, तू तौ कोल राजा भासता है; जो नानाप्रकारके भूषण वस्त्र पहिरे हुएहै, तू जो भोजन माँगता है, सो मैं न देऊँगी, ऐसे कहिकारि आगे चली जावै, अरु मैंभी तिसके पाछे जैसे छाया जावे, तैसे चला जाऊँ मैं कहता जाऊँ हे बाले! मुझे भोजन देहु, जो मेरी क्षुधा शांत होवै, तब उसने कहा ॥ हे राजन्! हम नीच लोक हैं, अपने प्रयोजनविना किसीको नहीं देते, जो तू मेरा भर्त्ता होवै, तब मैं देवौं, यह अन्न मैं पिताके निमित्त ले चली हौं, वह मशानविषे वैतालकी नाईं अवधूत होइ बैठा है, अरु धूरसे अंग भरेहैं, जो तू मेरा भर्त्ता होवै; तब मैं देती हौं, काहेते कि, भर्त्ता प्राणोंते भी प्यारा होता है, पितासों क्षमा कराय लेऊँगी ॥ हे साधो! जब चांडालीने ऐसे

कहा, तब मैंने कहा, भला मैं भर्त्ता होऊंगा, मुझे भोजन दे॥ हे साधो! ऐसा कौन है, जो ऐसी आपदाविषे अपने वर्णाश्रमके धर्मको दृढ राखै? तब उसने मुझको अर्धभाग भोजन दिया, अरु अर्ध जांबूका रस दिया, तिसका भोजन पान किया, तब कछुक शांतिमान् हुआ परंतु मेरा मोह निवृत्त न भया, तब दोनों मेरे हाथ पकडिकरि मुझको आगे लगाय लिया और अपने पिताके निकट ले गई, जैसे पापीको यमदूत ले जाते हैं, तब उसने कहा, हे पिता! यह मैंने भर्त्ता किया है, पिताने कहा, भला किया ऐसे कहकरि चावल अरु जांबूके रसका भोजन कराया, भोजन करिकै पिताने कहा॥ हे पुत्रि! इसको अपने घर ले जा, तब मुझको अपने घर ले गई, जब घरके निकट गये, तब मैंने देखा, कि अस्थि, मांस, रुधिर, बहुत पड़ा है, कुत्ते कूकुर गर्दभ हस्ती आदिक जीवोंकी खालडियां पडी हैं, तिनको लंघिकरि अपने घरविषे ले गई, जैसे पापीको नरकविषे यमदूत ले जाते हैं, एक बगीचा निकट था, तिसके आगे अपनी माताके पास मुझे ले गई, अरु कहा, हे माता! यह तेरा जवाँई हुआ है, माताने कहा, भली बात है, तब उनके घर हम विश्राम किया, उस चांडालीने मुझको भोजन दिया, तिसका भोजन किया, मानों अनेक जन्मोंके पाप भोगते हैं, बहुरि विवाहका दिन स्थापनकिया, तिस दिनविषे विवाह किया, चांडाल हँसैं, अरु नृत्य करैं, मानों मेरे पाप नृत्य करते हैं, वह चांडाली मुझको विवाहिदीनी, जैसे पापीको शासन देतेहैं तैसे चांडालीका वस्त्र आदिक पदार्थसहित मुझको विवाह कर दिया॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चांडालीविवावाहवर्णनं नाम द्व्यशीतितमः सर्गः॥ ८२॥

त्र्यशीतितमः सर्गः ८३.

इंद्रजालोपाख्यानोपद्रववर्णनम्।

राजोवाच॥ हे साधो! बहुत कहनेकरि क्या है? वहां मैं बडा चांडाल होता भया, सप्त दिन विवाहका उत्साह होता भया, तहाँ अष्टमास मैं रहा, तिसके अनंतर मैं और स्थानोंविषे रहा, तब वह चांडाली गर्भवती भई, तिसते एक कन्या उत्पन्न भई, जैसे पाप कियेते

दुःख उत्पन्न होते हैं, तैसे दुःखनाम्नी कन्या भई, अरु शीघ्रही बढ गई, जैसे मूर्खके चित्तविषे चिंता बढजाती है, बहुरि तीसरे वर्ष पाछे तिसको बालक उत्पन्न हो गया, जैसे दुर्बुद्धिते अनर्थ उत्पन्न होता है बहुरि पुत्र बहुरि कन्या उपजी, इसीप्रकार तीन पुत्र अरु तीन कन्या उत्पन्न हुए, तब मैं बड़ा चांडाल परिवारवान् हुआ, तिस चांडाली-साथ मैं चिरकालपर्यंत चांडालोंविषे विचरता रहा, जैसे ब्रह्महत्यारा नरकोंविषे चिंतासहित वसता रहै, तैसे मैं रहा, अरु तिसके साथ मेरा बहुत स्नेह भया, जैसे जालविषे पक्षी बंधायमान होता है, तैसे मैं तिन्हों-विषे बंधमान भया ॥ हे साधो ! तिनविषे मैं बडा कष्ट पाया, प्रथम जो पटका वस्त्र भी चूभता था ऐसे तिस शिरविषे मैं भार उठाऊं, अरु नीचे चरण तपायमान होवें, अरु शिरपर सूर्य तपै, रात्रिको कंटकोंपर शयन करौं, तिसकरि मैं बडे कष्टको पाता भया, ऊपर वस्त्र कोऊ प्राप्त न होवे; अरु पुरातन कौपीन जीवजंतोंके लोहूसे भरे हुए, अरु आर्द्र शिराने देवैं, अरु कुक्कुट हस्ती आदिक अशुचि पदार्थोंका भोजन करै, अरु रुधिरका पान करै ऐसी हमारी चेष्टा हुई जालसे पक्षी मारौं, केडीसे मच्छ कच्छ आदिक मारौं, अनेक प्रकारके क्रूर नीच कर्म हम करते भये; जैसी तैसी जो वस्तु पाई सो भोजन करै, विचारते हीन हम चिरकाल-पर्यंत ऐसी चेष्टा करते रहैं; अरु ऐसी अवस्था भई कि, अस्थि मांसके निमित्त हम आपसमें लडैं, पुत्र अरु स्त्री सब लडैं, अरु शीतकालमें शीतकारि कष्ट पावैं; उष्णकालमें उष्णताकारि कष्टवान् होवैं, मेरा शरीर बहुत कृश हो गया, अवस्था भी वृद्ध भई; मशानोंविषे हमारा बहुत काल व्यतीत भया, मांस अरु रक्तपान करैं, अरु जो वैतालजन आवैं, तिनके हम मारैं, जैसे चंडिकाने दैत्योंको मारा था, आंतडे अरु चमडे तले बिछाइके शयन करैं, अरु शिरके शिराने राखैं, ऐसे चिरकालपर्यंत हम चेष्टा करते रहे; बांधवोंमें स्नेह बहुत बढगया, ऐसी नीचताको भी हम प्राप्त भये, अरु तृष्णा बढती जावैं, जैसे वर्षाकालकी नदी बढती जाती है, तैसे तृष्णा बढती जावे, मृत्तिकाके पत्रोंविषे आगे चंडाल भोजन कारि जावैं, तिन्हीं वासनोंविषे हम भोजन करैं, बहुरि वर्षा होनेते

रहिगई, काल पड़ा, सूर्य तपने लगा, मानौ द्वादश सूर्य इकट्ठे तपे हैं, अरु दावाग्नि वनको लगा, वनके जीव अन्न जलके निमित्त कष्ट पाने लगे, अपने देशको छोडिके देशांतरको जावैं, वहां उपद्रव आय प्राप्त हुआ, समयविना मानौ प्रलय आया है, क्षुधा अरु तृष्णाकरिकै कई जीव मृतक हो जावैं, कई गिर पडैं, बहुत कष्ट आय पडा तब हम वहांसों निकसे; तीन पुत्र, तीन कन्या, स्त्रीसहित मैं निकला, जहां अन्न जल सुनैं, तहां जावैं, मांस खावैं, जल अथवा रक्त पान करैं, बहुरि यह भी हाथ न आवै, तब बहुत शोकवान् हुए, शरीर निरस जैसा हो गया, ऐसे कष्टवान् हुए, पुत्र पिताको न संभाले, अरु पिता पुत्रको न संभाले बांधवोंका स्नेह आपसमें छूटगया, अपने वास्ते सब दौड़े॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे इंद्रजालोपाख्याने उपद्रव-वर्णनं नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमः सर्गः ८४.

सांबरोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम्।

राजोवाच ॥ हे सभा! इसप्रकार हम चिरकाल विचरत फिरे, मेरा शरीर वृद्ध हो गया, अरु बाल बर्फकी नाईं श्वेत हो गये, जैसे सूखा पात वायुकरिकै विचरता है, तैसे हम कर्मोंके वशते भ्रमते रहे, जो कछु अपने राजाका अभिमान था, सो मुझे विस्मरण हो गया, अरु चंडालभाव मेरेविषे दृढ हो गया, तब मैं तहां कंपायमान हुआ, तुम्हारी दृष्टिमें आया, अब कछु सावधान भया, अरु शब्द तुरीयां वाजने लगे, जैसे पंखोंके टूटेते पहाड अचल भये, तैसे चंडाल कल्प मेरेविषे दृढ हो गया, अरु व्याकुलता करिकै हम महाकष्टवान् हुए. तृण, फूल, फल, जल, कहूं दृष्ट न आवै, अरु अनेक मृगतृष्णा-की नदियां दृष्ट आवें, जब वायु चलै तब रेतीके कणके उडते मेघकी नाईं दृष्ट आवैं; सब जीव कष्टमान होइके कलत्रको छोडि जावैं, कोऊ पहाडऊपर चढिकरि दुःखके निमित्त गिर गिर पडैं, जैसे चिडीका बाज

भोजन करता है, तैसे जीवोंको बिघाड भोजन करै, बहुरि एक वृक्ष पाया तिसके नीचे मैंने विश्राम किया, तब एक बालक जो सबते छोटा था; सो मेरे पास आया, अरु कहा, हे पिता, मुझको मांस देहु, जो मैं भोजन करौं, नहीं तौ मेरे प्राण निकसते हैं, तब मैंने कहा, मांस तौ है नहीं. तब वह कहत भया, भावे तहांसो देहु, तब स्नेहकारि बांधा, अरु छोटा पुत्र सबते प्यारा होता है, तिसकारि मैंने कहा, हे पुत्र ! मेरा मांस है, सो खाता है ? तब उस दुर्बुद्धिने कहा, देहु, तब मैं वनते लकडियां इकट्ठे कारिकै अग्नि जलाई, अरु कहा, हे पुत्र ! मैं अग्निविषे प्रवेश करता हौं, जब परिपक्क होऊं, तब तू भोजन करना ॥ हे सभा ! इसप्रकार मैंने स्नेहकारिके कहा, कि किसीप्रकार यह जीते रहैं ऐसे कहिकारि मैंने चिताविषे प्रवेश किया जब मुझको उष्णता लगी. तब मैं कंपायमान हुआ, तुमको दृष्ट आया, बहुरि कछुक सावधान भया, अरु शब्द तुरीयां बाजने लगीं ॥ हे साधो ! मैं इसप्रकार चरित्र देखा है, तैसे तुम्हारे आगे कहा है, जैसे मार्कंडेयने प्रलयविषे क्षोभको देखा, अरु देवताको कहा तैसे मैंने तुमको अपना वृत्तांत कहा है जब इंद्रजालीने पूछको भ्रमाया, तिसके भ्रमाणेसाथ मैं घोडेपर आरूढ भया, तिसकारि एता काल मैं भ्रमको प्रत्यक्ष देखता रहा, ताते बडा आश्चर्य है, जो मेरे जैसे विवेकवान् राजाको इसने मोहित किया है; तौ और प्राकृत जीवोंकी क्या वार्ता है, माया महाआश्चर्य है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार तेजवान् राजाने कहा, तब वह सांबरीक अंतर्धान हो गया . अरु सभाविषे जो मंत्रीते आदि लेकारि बैठे थे, सो सब आश्चर्यवान् हुए अरु देखिकै परस्पर कहने लगे, बड़ा आश्चर्य है, बड़ा आश्चर्य है, भगवान्की माया विचित्ररूप है, यह सांबरी माया नहीं, काहेते जो सांबरी अपने लोभके निमित्त दिखाता है, पाछे यत्नकरिकै धन आदिक पदार्थ मांगता है, अरु यह लियेबिना अंतर्धान हो गया है यह ईश्वरकी माया है, तिसकारि ऐसा विवेकवान् राजा मोहको प्राप्त हुआ है, जो बड़ा तेजवान् अरु शूरमा राजा मोहित भया, तौ सामान्य जीवोंकी क्या बात है ॥ हे रामजी ! ऐसे संदेहमान

होकरि सब स्थित भये, अरु मैं भी उस सभाविषे बैठा था, यह वृत्तांत मैंने प्रत्यक्ष देखा है, किसीके मुखते श्रवणकरिकै नहीं कहा॥ हे रामजी यह जो अणुरूप मन है, सो महामोह है, अरु अविद्याहै, इसके फुरणेकारि अनेक प्रकारोंका मोह दीखता है, जब यह मन उपशम होवै, तबहीं कल्याण है, ताते मन जो बहुत कल्पना उठाता है, तिसको त्यागिकारि आत्मपदविषे स्थित करौ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सांबरोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

पंचाशीतितमः सर्गः ८५.

चित्तवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आदि जो शुद्ध परमात्माते चित्तसंवेदन फुरा है, सो कलनारूप होइके स्थित भया है; तिसकारि दृश्य सत्य होइ भासता है, आत्माके प्रमादकरिकै मोहको प्राप्त हुआ है, सो चित्तके फुरणेकरिकै चिरपर्यंत जगत्‌विषे मग्न हो रहा है. सो मन असत्यरूप है, अरु मननेही संपूर्ण जगत्‌को विस्तारा है, तिसकारि अनेक दुःखको प्राप्त हुआ है, जैसे बालक अपने परछाईंविषे वैताल कल्पिकारि आपही भयवान् होता है, अरु वही मन जब संसारकी वासनाको त्यागिकारि आत्मपदमें स्थित होताहै, तब एक क्षणविषे सब दुःख नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्यकी किरणोंकारि अंधकार नष्ट हो जाता है॥ हे रामजी ! ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं जो अभ्यास कियेते प्राप्त न होवै, ताते जब आत्मपदका अभ्यास करिये तब प्राप्त होता है, आत्मपदके अभ्यास कियेते आत्मा निकट भासता है, अरु संसार दूर भासता है, अरु जब जगत्‌का अभ्यास दृढ होता है, तब जगत् निकट भासता है, आत्मा दूर भासता है॥ हे रामजी ! जो मूर्ख मनुष्यहैं, तिनको अभयपदविषे भय होताहै, जैसे पंथीको दूरते वृक्षविषे वैतालकल्पना होती है और भयको पाता है, तैसे चित्तकी वासनाकारि जीव भयको प्राप्त होता है॥ हे रामजी ! जो वासनासहित मलिनमन होता है तिसविषे नानाप्रकार संसारभ्रम

उठता है, जब आत्मपदविषे स्थित होता है, तब भ्रम मिटजाता है, अरु जैसा मनविषे निश्चय होता है, तैसाही हो भासता है, जब मित्रविषे शत्रु बुद्धि होती है, तब निश्चयकरि शत्रु हो जाता है, अरु जो मदकरि उन्मत्त होता है तिसको संपूर्ण पृथ्वी भ्रमती दृष्ट आती है, अरु व्याकुल मन होता है, तब चंद्रमा भी श्याम जैसा भासता है, जो अमृतविषे विषकी भावना होती है, तब अमृत भी विषकी नाईं भासता है, जेते कछु जागृत् पदार्थ देश, काल, क्रिया, पत्तन भासते हैं, सो मनकरि भासते हैं ॥ हे रामजी! संसारका जो कारण है, सो मोह है, तिस मोहकरिकै जीव भटकता है, ताते ज्ञानरूपी कुहाडेकरिकै वासनारूपी मलिनताको काटौ, आत्मपद पानेविषे वासनाही आवरण है ॥ हे रामजी! वासनारूपी जालकरिकै मनुष्यरूपी हरिण आवृत है, अरु संसाररूपी वनविषे भटकता है, जिस पुरुषने विचारकरिकै वासनाको नष्ट की है, तिसको परमात्मप्रकाश भासता है, जैसे बादलते रहित सूर्य प्रकाशता है; तैसे वासनारहित चित्तविषे आत्मप्रकाशता है ॥ हे रामजी! मनहीको तू पुरुष जान, देहको मनुष्य नहीं जानना, काहेते कि देह जड है, अरु मन जड अरु चेतनते विलक्षण है, जो मनकरि कार्य करता है, सो कार्य सफल होता है, जो मनकरि दिया है, अरु जो मनकरि लिया है, सोई दिया अरु लिया है, जो देहकरि किया है, सो मननेही किया है ॥ हे रामजी! यह संपूर्ण जगत् मनरूप है; मनही पर्वत है, मनही आकाश, वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी सब मनही हैं, सूर्य आदिकोंका प्रकाश मनही करि होता है, अरु शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध सब मनहीकरि ग्रहण होते हैं, अरु नानाप्रकारकी वासनाकरिकै नानाप्रकारके रूप मनही धरता है, जैसे नटवा नानाप्रकारके स्वांगोंको धरता है, तैसे नानाप्रकारके रूप मनही धरता है, लघु पदार्थको दीर्घ मनही करता है, सत्यको असत्यकी नाईं अरु असत्य जगत्के पदार्थको सत्यकी नाईं करता है, मित्रको शत्रु करता है, शत्रुको मित्र करता है ॥ हे रामजी! जैसी वृत्ति मनकी दृढ होती है, सोई सत्य होइ भासती है, हरिश्चंद्रको एक रात्रिविषे बारह वर्ष हो भासे अरु इंद्रको एक मुहूर्तविषे युगोंका अनुभव

हुआ, अरु मनहीके दृढ निश्चयते इंद्र ब्राह्मणके पुत्र दशही ब्रह्मपदको प्राप्त भये ॥ हे रामजी ! जो सुखसाथ बैठा है अरु मनविषे कोऊ चिंता आन लगी, तो सुखहीविषे उसको रौरव नरक हो जाता है, अरु जो दुःखविषे बैठा है अरु मनविषे शांत है, तो दुःख भी सुख हो जाता है; ताते जैसा निश्चय मनविषे होता है; तैसाही होइ भासता है, अरु जिस ओर मनका निश्चय होता है, तिसी ओर मन इंद्रियोंका समूह विचरता है, अरु इंद्रियोंका अधारभूत मनहै जो मन टूट पडता है, तब इंद्रियां भिन्न भिन्न हो जाती हैं, जैसे तागेके टूटते मणके भिन्न भिन्न होइ पडते हैं, तैसे मनते रहित इंद्रियां अर्थोंते रहित भिन्न होती हैं, अरु वास्तव आत्मतत्त्व सबविषे अधिष्ठान स्थित है, सो स्वच्छ निर्विकार सूक्ष्म समभाव नित्य है, अरु सबका साक्षीभूत है, अरु सब पदार्थोंका ज्ञाता है, अरु देहते भी अधिक सूक्ष्मरूप है, अर्थ यह कि अहंभावके उत्थानते रहित चिन्मात्र है, तिसविषे मनके फुरणे-करिकै ससार भासता है, वास्तव द्वैतभ्रमते रहित है, सब जगत् आत्माका किंचनमय रचा है, सबविषे चेतन शक्ति व्यापी है, वायुविषे स्पंदरूप वही है, पृथ्वीविषे कठोरता वहीहै, सूर्य अग्नि आदिकविषे प्रकाश वही है, जलविषे द्रवतारूपी वही है, आकाशविषे शून्यता वही है, सब पदा-र्थोंविषे चेतनशक्ति व्यापि रही है, सो अनेकता वास्तव नहीं, मनक-रिकै अनेकता भासती है, शुक्ल पदार्थको कृष्ण करता है, देश, काल, पदार्थ, क्रिया, द्रव्यको मनही विपर्यय करता है ॥ हे रामजी ! जैसे निश्चय मनविषे दृढ होता है, सोई सिद्ध होता है, मनविना किसी पदा-र्थका ज्ञान नहीं होता ॥ हे रामजी ! जिह्वा करिकै नानाप्रकारके भोजन करता है, परंतु मन और ठौर होता है, तब उसका स्वाद कछु नहीं आता अरु नेत्रोंकरि चित्तसहित देखता है, बहुरि रूपका ज्ञान होताहै,इस कारण मनविना किसी इंद्रियका विषय सिद्ध नहीं होता, अंधकार अरु प्रकाश भी मनविना नहीं भासता, अरु हे रामजी ! सब पदार्थ भासते हैं सो मनकरि भासते हैं, जैसे नेत्रभी होता है, परंतु प्रकाश नहीं होता; तौ नहीं भासता, तैसे विद्यमान पदार्थ मनविना नहीं भासते हैं ॥ हे रामजी इंद्रियोंते मन नहीं उपजा; परंतु मनते इंद्रियां उपजी हैं, अरु जेता

कछु इंद्रियोंका विषय दृश्य जाल है, सो सब मनते उपजा है, जिन पुरुषोंने मनको वश किया है सोई महात्मा पुरुष पंडित हैं, तिनको नमस्कार है ॥ हे रामजी ! नानाप्रकारके भूषण अरु फूल पहिरे हुए स्त्री प्रीतिसाथ कंठ मिलै, अरु जो चित्त इसका आत्मपदविषे स्थित है, तब वह उसको मृतककी कधके समान है. अर्थ यह कि, उसको इष्ट अनिष्टका राग, द्वेष कछु नहीं उपजता, इष्ट अनिष्टविषे राग द्वेष मन उपजाता है; मनके स्थित हुएते राग द्वेप कछु नहीं उपजता ॥ हे रामजी ! एक वीतराग ब्राह्मण ध्यानस्थित वनविषे बैठा था तिसके हाथको कोऊ वनचर जीव तोड ले गया. परंतु तिसको कछु कष्ट न भया; काहेते कि मन स्थिर था, यही मन फुरनेकरि सुखको भी दुःख करता है, अरु अपनेविषे स्थित हुए दुःखको भी सुख करता है ॥ हे रामजी ! कथाके श्रवणविषे बैठा है, अरु जो मन चिंतवनाविषे जाताहै तब कथाके अर्थ समझविषे नहीं आते, अरु अपने गृहविषे बैठाहै, अरु मनके संकल्प करिकै पहाड ऊपर दौड़ता टूट पडता है, तब उसको प्रत्यक्ष अनुभव होता है, सो मनका भ्रम है, जैसी फुरणा मनविषे फुरती है सोई भासती है, जैसे स्वप्नविषे एक क्षणमें नदी, पहाड, आकाश आदि पदार्थ भासने लगते हैं तैसे यह पदार्थ भासते हैं ॥ हे रामजी ! अपने अन्तर सृष्टि भी मनके भ्रमते भासती है, जैसे जलके अन्तर अनेक तरंग होते हैं, जैसे वृक्षके अन्तर पत्र, फूल, फल, टास होते हैं, तैसे एक मनके अन्तर जागृत् स्वप्न आदिक भ्रम होते हैं, तैसे सुवर्णते भूषण अन्य नहीं होते, तैसे जागृत् अरु स्वप्न अवस्था भिन्न नहीं होती, जैसे तरंग बुद्बुद जलते भिन्न नहीं, जैसे नटवा नाना प्रकारके स्वांगोंको लेकर अनेकरूप धरता है, तैसे मन वासना-करिकै अनेक रूपोंको धरता है ॥ हे रामजी ! जैसे स्पंदविषे दृढ होता है, तैसाही अनुभव होताहै, जैसे लवणराजाको भ्रम करिकै चांडालीका अनुभव भया, तैसे यह जगत्का अनुभव मनोमात्र है, चित्तके भ्रमकरिकै भासता है ॥ हे रामजी ! जैसी जैसी प्रतिमा मनविषे होती है, तैसाही इसको अनुभव होता है यह संपूर्ण जगत् मानमात्र है, जैसे तेरी इच्छा

होवै तैसे कर, जैसा जैसा फुरणा मनविषे होता है, तैसा होय भासताहै, मनके फुरणेकरि देवता भी दैत्य हो जाते हैं, अरु दैत्य भी मनके फुरणेकरि देवता हो जाते हैं मनुष्य नाग हो जाते हैं; वृक्ष हो जाते हैं, जैसे लवणराजा आपदाका अनुभव करता भया ॥ हे रामजी ! मनके फुरणे करि मरणा होता है, बहुरि मनके फुरणेकरि जन्म होता है, संकल्पकरि पुरुषते स्त्री हो जाती है, अरु स्त्रीते पुरुष हो जाता है, पिता पुत्र हो जाता है, अरु पुत्र पिता हो जाता है, जैसे नटवा शीघ्रही अपने स्वांगकरि अनेक रूपोंको धारता है, तैसे अपने संकल्पकरि मन भी अनेक रूपोंको धारता है ॥ हे रामजी ! जीव निराकार है, अरु मनकरिकै आकारकी नाईं भासताहै, तिस मनविषे जो मनन है, सो मूढताहै तिस मूढताकरिकै जो वासना हुई है, तिस वासनारूपी पवनकरिकै यह जीवरूपी पत्र भटकता है, संकल्पके वशहुआ सुख दुःख भयको प्राप्त होता है, जैसे तेल तिलोंविषे रहता है, तैसे सुख दुःख मनविषे रहते हैं; जैसे तिलोंको कोल्हूविषे पीडता है, तब तेल प्रगट भासता है, तैसे मनको मनके संयोगते सुख दुःख प्रगट भासते हैं; जो संकल्प देश, काल, क्रियाकरिकै घनत्व होता है; अरु देश काल आदिक भी मनविषे स्थित होते हैं; अरु जिनका मन फुरता है; तिनको नानाप्रकारका क्षोभवान् जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! जिनका मन आत्मपदविषे स्थित भयाहै तिनको क्षोभ भी दृढ आता है; परंतु मन आत्मपदते चलायमान नहीं होता; जैसे घोडेका असवार रणविषे जाय पडता है, तौभी घोडा उसके वश रहताहै; ॥ तैसे उसका मन जो विस्तारकी ओर जाताहै; तौभी अपने वशहीरहताहै; हे रामजी ! जब मनकी चपलता वैराग्यकरिकै दूर होतीहै; तब मन वश होइ जाताहै, जैसे बंधनोंकरिके हस्ती वश होताहै; तैसे जिस पुरुषका मन वश होताहै; अरु संसारकी ओरते निवृत्त होइकारि आत्मपदविषे स्थित भयाहै; सो श्रेष्ठ महापुरुष कहाते हैं अरु जिनका मन संसारकी ओर धावताहै सो चिक्कडके कीट हैं अरु जिसका मन अचपल है शास्त्रके अर्थरूपी संगकरि अरु संसारकी ओरते निवृत्त होकरि एकाग्रभावविषे स्थित हुआ है, अरु आत्मपदके ध्यानविषे लगा हुआ है, सो संसारके

बंधनते मुक्त होता है ॥ हे रामजी ! जब मनसों मनन दूर होता है, तब इसको शांति प्राप्त होती है, जैसे क्षीरसमुद्रते मंदराचल निकसा, तब शांतिको प्राप्त भया, जिस पुरुषका मन भोगोंकी ओर प्रवृत्त होताहै, सो पुरुष संसाररूपी विषयके वृक्षका बीज होता है ॥ हे रामजी ! जिनका चित्त स्वरूपते मूढ हुआ है, अरु संसारके भोगोंविषे लगा है, सो बडे कष्टको पाते हैं, जैसे तृण जलके चक्रविषे आया क्षोभमान होता है, तैसे यह जीव मनभावको प्राप्त हुआ भ्रमको प्राप्त होता है, ताते इस मनको स्थित करौ, जो शांतात्मा होवो ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तवर्णनं नाम पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमः सर्गः ८६.

मनःशक्तिरूपप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह चित्तरूपी महाव्याधि है, तिसकी निवृत्ति अर्थ मैं तुझको श्रेष्ठ औषध कहता हौं, सो तू सुन, यत्न भी अपना होवै, अरु आपही साध्य होता है, अरु औषध भी आप होताहै, सब पुरुषार्थ आपहीकारि सिद्ध होताहै, ताते यत्नकारिकै चित्तरूपी वैतालको नष्ट करौ॥हे रामजी ! जो कछु पदार्थ तुमको रससंयुक्त दृष्ट आवै, तिसको त्याग करौ, जब वांछित पदार्थका त्याग करौगे, तब मनकी जीत होवैगी, अचल पदको प्राप्त होहुगे, जैसे लोहेके साथ लोहेको काटता है, तैसे मनसाथ मनको काटौ, अरु यत्नकारिकै शुभ गुणोंकारिकै चित्तरूपी वैतालको दूर करौ, अवस्तु देहादिकविषे जो वस्तुकी भावना है, तिसको त्याग, अरु वस्तु आत्मतत्त्वविषे जो देहादिककी भावना है, तिसका त्याग करके आत्मतत्त्वमें भावना जोडो ॥ हे रामजी ! जैसे चित्तविषे पदार्थोंकी चिंतना होती है, तैसे आत्मपद पानेकी चिंतना कर, सत्य कर्मकी शुद्धता लेकर चित्तको यत्नकारिकै चेतनसंवित्की ओर लगाओ अरु सब वासनाको त्यागिकै एकाग्रता करौ, तब परम- ी प्राप्ति होवैगी ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषोंको अपनी इच्छा त्या

गनी कठिन हुई है, सो विषयोंके कीट हैं, काहेते जो अशुभ पदार्थ मूढताकरिकै रमणीय भासते हैं, तिन अशुभको अशुभ अरु शुभको शुभ जानना यह पुरुषार्थ है ॥ हे रामजी! शुभ अशुभ दोनों पहलवान हैं, तिन दोनोंविषे जो बली होता है, तिसका जय होता है, ताते शीघ्रही पुरुष प्रयत्न करिकै अपने चित्तको जीतौ, जब तू अचित्त होवैगा, तब यत्नविना आत्मपदको प्राप्त होवैगा, जैसे बादलोंके अभाव हुएते यत्न-विना सूर्य भास आता है, आत्मपदके आगे चित्तका फुरणा जो बादल-वत् आवरण है, सो चित्तका फुरणा जब अभाव होवैगा, तब अयत्न-सिद्ध आत्मपद भासैगा, सो चित्तके स्थित करनेका मंत्रभी आपकारि होता है, अरु जिसको अपना चित्त वश करनेकी भी शक्ति नहीं, तिसको धिक्कार है, वह मनुष्यविषे गर्दभ हैं, अपने पुरुषार्थकरिकै मनको वश करना सो अपनेसाथ परम मित्रता है, अरु अपने मनको वश कियेविना अपना आपही शत्रुहै, अर्थ यह जो मनको उपशम कियेविना घटीयंत्रकी नाईं संसारचक्रविषे भटकता है, अरु जिन मनुष्योंने मनको उपशम किया है, तिनको परमलाभ हुआ है ॥ हे रामजी! मनके मारणेका मंत्र यही है, कि दृश्यकी ओरते चित्तको निवृत्त करना, अरु आत्मचेतन संवित्विषे लगाना, ऐसाही मनको जीतनाहै, आत्मचिंतनाकरिकै चित्तको मारना, आप करिकै सुखरूप है ॥ हे रामजी! इच्छाकरिकै मन पुष्ट रहता है, जब अंतरते इच्छा निवृत्त भई, तब मन उपशम होता है, जब मन उपशम हुआ, तब गुरुशास्त्रोंके उपदेश अरु मंत्र अर्थ आदिकोंकी अपेक्षा नहीं रहती ॥ हे रामजी! जब यह पुरुष असंकल्परूपी औषधकरिकै चित्तरूपी रोगको काटै, तब तिस पदको प्राप्त होवै, जो सर्व है, अरु सर्वगत शांतरूप हैं, अरु जो देह है, सो निश्चय करिकै मूढ मनने संक-ल्पकरिकै कल्पी है, ताते पुरुषार्थकरिकै चित्तको अचित्त करौ, तब इस बंधनते छूटौगे ॥ हे रामजी! शुद्ध चित्त आकाशविषे यत्नकरिकै चित्तको जोडौ, जब चिरकाल पर्यंत मनका तीव्र संवेग आत्माकी ओर होवैगा, तब चेतन चित्तका भक्षण करि लेवैगा, जब चित्तका चित्तत्व निवृत्त हो जावैगा, तब केवल चेतन मात्रही शेष रहैगा ॥ हे रामजी! जब जगत्की

भावनाते तू मुक्त होवैगा, तब तेरी बुद्धि परमार्थ तत्त्वविषे जुडैगी अर्थ यह कि, बोधरूप हो जावैगी, ताते इस चित्तको चित्त करिकै ग्रासकरि ले, जब तू परमपुरुषार्थकरिकै चित्तको अचित्त करैगा, तब महाअद्वैतपदको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! मनके जीतनेविषे और तुझको यत्न कछु नहीं, एक संवेदनका प्रवाह उलटावना है जो दृश्यकी ओरते निवृत्तकरिकै आत्माकी ओर लगाना, इसकरि चित्त अचित्त हो जावैगा, चित्तके क्षोभते रहित होना परमकल्याण है, ताते क्षोभते रहित होहु, जिनने मनको जीता है, तिनको त्रिलोकीका जीतना तृणसमान है ॥ हे रामजी ! ऐसे शूरमा हैं, जो शस्त्रोंके प्रहारको सहते हैं, अरु अग्निकरि जलना भी सहते हैं, अरु शत्रुको मारते हैं, तब स्वाभाविक फुरणेके सहनेविषे तुझको क्या कृपणता है, जो समर्थ नहीं होता ॥ हे रामजी ! जिसको अपने चित्तके उलटावनेकी समर्थता नहीं, सो नरोंविषे अधम है, जिसका यह अनुभव होता है, कि मैं जन्मा हौं, अरु मरौंगा, मैं जीव हौं, सो असत्यरूप प्रमाद चपलता करिकै भासता है, तैसे किसी स्थानविषे बैठा होवै, अरु मनके फुरणेकारि और देशविषे कार्य करने लगै, सो भ्रमरूप है, तैसेही आपको जन्म मरण भ्रमकरिकै मानताहै ॥ हे रामजी ! यह पुरुष मनरूपी शरीरसाथ इस लोक अरु परलोकविषे भटकता है, सो मोक्ष होनेपर्यंत चित्तविषे भटकता है, जो चित्त भी मोक्षपर्यंत नाश नहीं होता, तब तुझको मृत्युका भय कैसे होता है ? तेरा स्वरूप नित्य शुद्ध बुद्ध सर्व विकारते रहित है, अरु यह लोक आदिक भ्रम चित्तविषे मनके फुरनेते उपजा है, मनते इतर चित्तका रूप कछु नहीं, अरु पुत्र भाई टहलुए आदिक जो स्नेहका स्थान हैं, तिनके क्लेशकारि आपको क्लेश मानता है, सो भी चित्तकारि मानताहै, जब चित्त अचित्त हो जावै, तब सर्व बंधनते मुक्त होवै ॥ हे रामजी ! मैंने ऊर्ध्व अध सब स्थान देखे हैं; अरु सब शास्त्र भी देखे हैं, तिसको एकांत बैठिकारि वारंवार विचारे हैं, कि शांति प्राप्त होनेको और उपाय कोई नहीं, चित्तका उपशम करनाही उपाय है, जबलग चित्त दृश्यको चितवता है, तबलग शांति प्राप्त नहीं होती, अरु जब चित्त उपशम होवै तब

इसको तिस पदविषे विश्राम होता है, जो नित्य है, अरु शुद्ध है, सर्वात्मा है, सर्वके हृदयविषे चेतन आकाश है, परम शांतरूप है, तिस पदविषे विश्राम पावैगा ॥ हे रामजी ! हृदयाकाशविषे जो चैतन्य चक्र है तिसका अर्थ यह कि, ब्रह्माकार वृत्ति है, जब मनका तीव्र संवेग तिसकी ओर होवै, तब सबही दुःखोंका अभाव हो जावै, मनका मनभाव तिस ब्रह्माकार वृत्तिरूपी चक्रकरि नष्ट हो जावैगा ॥ हे रामजी ! जो संसारके भोग मनकरि रमणीय भासते हैं, सो जब रमणीय भासैं नहीं, तब जानिये कि मनके अंग काटे हैं, जेते कछु अहं अरु त्वं आदि शब्दार्थ भासते हैं, सो सब मनोमात्र भासते हैं, जब दृढविचार करिकै इनकी अभावना होवै तब मनकी वासना नष्ट हो जावै, जैसे दात्रकरिके खेती नष्ट हो जाती है, तैसे वासना नष्ट होनेते परमतत्त्व शुद्ध भासैगा, जैसे घटाके अभाव हुए शरद्कालका आकाश निर्मल भासताहै, तैसे वासनाते रहित मन शुद्ध भासैगा ॥ हे रामजी ! मन इसका परमशत्रु है, सो मन इच्छा संकल्पकरिकै पुष्ट हो जाता है, अरु जब इच्छा कोऊ न उपजै, तब आपही निवृत्त हो जावैगा, जैसे अग्निविषे काष्ठ डारिये तब अग्नि बढ जाता है, अरु जब काष्ठ नहीं डारै, तब अग्नि आपही नष्ट हो जाता है, हे रामजी ! इस मनविषे जो संकल्प कल्पना उठती है, तिसका त्याग करै, तब तेरा मन स्वतः नष्ट होवैगा जहां शस्त्र चलते हैं, अरु अग्नि लगता है, तहां शूरमा निर्भय होयके जाय पडते हैं; अरु शत्रुको मारते हैं, प्राण जानेका भय रखते नहीं, तब तुझको संकल्प त्यागनेमें क्या भय होता है ॥ हे रामजी ! चित्त पसारनेविषे अनर्थ होता है, अरु चित्तके अस्फुरण हुएते कल्याण होता है, यह वार्ता बालक भी जानता है, जैसे पिता बालकको अनुग्रह करिकै कहता है, तैसे मैं तुझको समझाता हौं. जो मनरूपी एक शत्रुने भयको प्राप्त किया है, संकल्पकलना करिकै जेती कछु आपदाहैं, सो मनते उपजती हैं; जैसे सूर्यकी किरणों करिकै मृगतृष्णाका जल दीखता है, तैसे सब आपदा मनते दीखती हैं, जिसका मन स्थित हुआ है, तिसको क्षोभ कोऊ नहीं होता ॥ हे रामजी ! प्रलयकालका पवन चलै अरु सप्तसमुद्र

मर्यादाको त्यागिकै इकट्ठे हो जावैं अरु द्वादश सूर्य इकट्ठे होइके तपैं तौ भी मनते रहित जो पुरुष हैं, तिसको विघ्न कोऊ नहीं होता, वह सदा शान्तरूप है ॥ हे रामजी ! मनरूपी बीज है, तिसते संसारवृक्ष उपजा है सप्त लोक तिसके पत्र हैं, अरु शुभ अशुभ सुख दुःख तिसके फल हैं, सो मन संकल्पते रहित नष्ट हो जाता है, सकल्पके बढनेते अनर्थका कारण बढता है, ताते संकल्पते रहित जो चक्रवर्ती राजपद है, तिसविषे आरूढ हुआ परमपदको प्राप्त होवैगा, जिसपदविषे स्थित हुए चक्रवर्ती राजा तृणवत् भासता है ॥ हे रामजी ! मनके क्षीण होने करिकै यह परमानंद उत्तम पदको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! सतोष-करिकै मन वश होता है, तब नित्य उदयरूप निरीह परमपावन निर्मल शम अरु अनंत सर्व विकार विकल्पते रहित आत्मपद शेष रहता है; सो तुझको प्राप्त होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनः-शक्तिरूपप्रतिपादनं नाम षड्शीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमः सर्गः ८७.

सुखोपदेशकथनम् ।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! जहां जिसके मनविषे तीव्र संवेग होताहै तिसको मन देखता है; अज्ञानकरिकै जो दृश्यका तीव्र संवेग भयाहै, तिस करिकै चित्त जन्ममरणादिक विकारोंको देखता है; जिसका निश्चय मन विषे दृढ होताहै, तिसीका अनुभव करता है, जैसा मनका फुरणा फुरता है, तैसा रूप हो जाता हैं, जैसे बर्फका शीतल शुक्ल रूप है, अरु काज-लका कृष्ण रूप है, तैसे मनका रूप चंचल है॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! यह जो मनवेग अवेगका कारण चंचल रूप है, तिस मनकी चपलता जैसे निवृत्त होवैगी सो प्रकार तुम कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तू सत्य कहता है, चंचलताते रहित मन कहूं नहीं दीखता, काहेते कि मनका चंचल स्वभाव है ॥ हे रामजी ! जो मनविषे चंचल फुरणाशक्ति है, सो मानसी शक्ति है, सोई जगत् आडंबरका कारणरूप है; जैसे

वायुका स्पंद रूप है; तैसे मनका चंचल रूप है, जहां चंचलताते रहित मन है, तिसको मृतक कहते हैं ॥ हे रामजी ! तपका अरु शास्त्रका जो सिद्धांत है, सो यहीहै, मनके मृतक रूपको मोक्ष कहतेहैं, मन क्षीण हुएते सब दुःख नष्ट हो जाता हैं, जब चित्तरूपी राक्षस उठता है, तब बडे दुःखको प्राप्त होता है, चित्तके लय हुएते अनंत सुखभोग प्राप्त होते हैं, अर्थ यह कि, परमानंद स्वरूप आत्मपद प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! मनविषे जो चंचलता है, सोई अविचार सिद्धहै, विचारते नष्ट हो जाती है, चित्तकी चंचलतारूप जो वासना अंतर स्थित है, जब यह नष्ट होवैगी तब परमसारकी प्राप्ति होवैगी, ताते यत्नकरिकै चपलतारूप अविद्याका त्याग करौ, जब चपलता निवृत्त होवैगी, तब मन शांत हो जाता है, सो मनका रूप सुन॥ हे रामजी ! सत्य असत्यके मध्य जडचेतनके मध्ये जो डोलायमान है, तिसका नाम मन ॥ हे रामजी ! जब यह तीव्रताकरिकै जडकी ओर लगताहै, तब आत्माके प्रमाद करि जडरूप होजाता है, अर्थ यह कि अनात्मविषे आत्मप्रतीति होती है, अरु जब विवेक विचारविषे लगता है, तब तिस अभ्यासकरि जडता निवृत्त हो जाती है, केवल चेतन आत्मतत्त्व पडा भासता है, जैसे अभ्यास दृढ होता है, तैसा अनुभव इसको होता है, जैसे पदार्थकी एकता चित्तविषे होती है; अभ्यासके वशते चित्त तैसा रूप हो जाताहै॥ हे रामजी ! जिस पदके निमित्त मन पुरुष प्रयत्न करता है, तिस पदको प्राप्त होता है, अरु अभ्यासकी तीव्रताते भावितरूप हो जाता है, इसी कार्यते तुझको कहता हौं कि, चित्तको चित्त करिकै स्थिर करौ, अरु अशोकपदका आश्रय करौ, जेते कछु भाव अभावरूप संसारके पदार्थ हैं, सो सब मनते उपजे हैं, ताते मनके उपशम करनेका प्रयत्न करौ मनके उपशम विना और उपाय छूटनेका कोई नहीं, अरु मनको मनही निग्रह करता है, कोऊ समर्थ नहीं, जैसे राजा साथ राजाही युद्ध करता है, और कोऊ समर्थ नहीं, तैसे मनसाथ मनही युद्ध करताहै, ताते तू मनहीके साथ मनको मार,जो शांतिको प्राप्त होवै ॥ हे रामजी ! यह पुरुष बडे संसारसमुद्रविषे पडाहै,तिसविषेतृष्णारूपी तंतुने इसकाआवरणकियाहै,

तिसकारि अधःको चला जाता है, अरु रागद्वेषरूपी घूमर घेरविषे कष्ट पाता है, तिसविषे तरनेके निमित्त भी मनरूपी बेडा है, जब शुद्ध मनरूपी बेडापर आरूढ होवै, तब संसार समुद्रते पार पहुँचै, अन्यथा कष्टको प्राप्त होवै ॥ हे रामजी ! अपना मनही बंधनका कारण फाँसी है; तिसको मनही साथ छेदन करौ, सो किसप्रकार छेदिये, दृश्यकी ओर मन जो सदा धावता है, तिसते वैराग्य करै, अरु आत्मतत्त्वका अभ्यास करै, तब छूटै; और उपाय छूटनेका नहीं, जहां जैसी वासनाकारि मन आशाकारि उठै, तिसको तहांही बोधकरिकै त्यागेते तेरी अविद्या नष्ट हो जावैगी ॥ हे रामजी ! जब प्रथम भोगोंकी वासनाका त्याग करैगा, तब यत्नविना जगत्की वासना छूटि जावैगी, जब भाव अभावरूप जगत्का त्याग किया, तब निर्विकल्प सुखरूप होवैगा, जब सब दृश्यभाव पदार्थोंका अभाव होता है, तब भावना करनेहारा मन भी नष्ट होता है ॥ हे रामजी ! जो कछु संवेदन फुरताहै, इस संवेदनका होना जगत् है, अरु असंवेदन होना इसीका नाम निर्वाण है, अरु सवेदन होनेकारि दुःख है, ताते प्रयत्नकारिकै संवेदनका अभाव करना कर्तव्य है, जब भावनाकी अभावना होवै, तब कल्याण होवै, जेते कछु भाव अभाव पदार्थोंका राग द्वेष उठता है, सो मनके अबोधकारि होता है, वे पदार्थ मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या हैं, ताते इनकी आस्थाका त्याग करौ, यह सब अवस्तुरूप हैं, अरु तेरा स्वरूप नित्यतृप्त अपने आपविषे स्थित है ॥ इति श्रीयोग० उत्पत्ति० सुखोपदेशकथनं नाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ८८.

अविद्यावर्णनम्

वसिष्ठउवाच ॥ हे रामजी ! यह जो वासनाहै, सो भ्रांतिकारिकै उठीहै जैसे आकाशविषे दूसरा चन्द्रमा भ्रांतिकारिकै भासताहै, तैसे आत्माविषे जगत् भ्रांतिकारिभासताहै, इसकी वासना दूरतेत्याग करौ॥ हे रामजी ! जो ज्ञानवान्है, तिनको जगत् नहीं भासता, अरु जो अज्ञानीहैं, तिनको अविद्या-

मान विद्यमान भासता है, अरु संसार नाम करिकै संसारको अंगीकार करते हैं, अरु ज्ञानवान् सम्यक्दर्शीको आत्मतत्त्वते इतर सब अवस्तुरूप भासताहै,जैसे समुद्र द्रवता करिकै तरंग बुद्बुद होइके भासता हैं, परंतु जलते इतर कछु नहीं, तैसे अपने विकल्प करिकै भाव अभावरूप जगत्को देखता है, वस्तुते असत्यरूप है; आत्म तत्त्वही अपने आपविषे स्थितहै, सो नित्य शुद्ध सम अद्वैत तेरा अपना आपहै, न तू कर्त्ता है, न अकर्त्ता है, अरु कर्त्ता अकर्त्ता ग्रहण अरु त्याग भेदको लेकरि कहता है, तू दोनों विकल्पको त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, अरु जो कछु क्रिया आचार आय प्राप्त होवै, तिसको कर,अरु अंतरते अनासक्त होहु, अर्थ यह कि, कर्तृत्व भोक्तृत्व अपनेविषे माननेते रहित होहु,काहेते कि, कर्तव्य आदिक तब होते हैं,जब कछु ग्रहण करना होता है, कछु त्याग करना होता है, अरु ग्रहणत्याग तब होते हैं, जब पदार्थ सत्य भासता है, सो तौ यह सब पदार्थ मिथ्या इंद्रजालकी मायावत् हैं॥ हे रामजी! मिथ्या पदार्थोंविषे आस्था करनी तिसकरि ग्रहण अरु त्याग करना क्या है, सब संसारका बीज अविद्या है, सो अविद्या स्वरूपके प्रमादकरि अविद्यमानही सत्यकी नाईं हो भासती है ॥ हे रामजी! चित्त विषे चैत्यमय वासना फुरती है, सो मोहका कारण है, संसाररूपी वासनाका चक्र है, जैसे कुम्हार चक्रपर चढायके मृत्तिकाते अनेक प्रकारके घट आदिक बर्त्तन रचता है, तैसे चित्तते जो चैत्यमय वासना फुरती है, सो संसारके पदार्थोंको उत्पन्न करती है, अरु यह अविद्यारूप संसार देखनेमात्र बड़ा सुंदर भासता है, परंतु अंतरते शून्य है, अरु जैसे बाँस बडे विस्तारको प्राप्त होते हैं, अरु अंतरते शून्य है, अरु जैसे केलेका वृक्ष देखनेको विस्तारसहित भासता है, अरु अंतर तिसके सार कछु नहीं, तैसे संसार असाररूप है, अरु जैसे नदीका प्रवाह चला जाता है, तैसे संसार नाशरूप है ॥ हे रामजी! यह अविद्या कैसी है, जो पकडिये तौ ग्रहण कछु नहीं होती, अरु कोमल भासती है, अरु अत्यंत क्षीणरूपहै प्रगट आकार भी दृष्ट आते हैं, अरु मृगतृष्णाके जल समान असत्यरूप है, अविद्या माया कहूं विकाररूप भासती है, कहूं स्पष्टरूप भासती है,

कहूं दीर्घरूप भासती है, जिसकरि यह जगत् उपजता है, अरु आत्माते व्यतिरेकभावको प्राप्त होती है अरु जड है, परंतु आत्माकी सत्ता पाइके चेतन होती है, चेतनरूप भासती है, तौ भी असत्यरूप है, अरु एक निमेषके भूलने करिकै बडे भ्रमको दिखाती है, जहां निर्मल प्रकाशरूप आत्मा है, तिसविषे तमको दिखाती है, कि, मैं आत्माको नहीं जानता, जैसे उलूकको सूर्यविषे अंधकार भासता है, तैसे मूर्खोंको अनुभवरूप आत्मा नहीं भासता, जगत् भासता है, अरु स्वरूपते असत्यरूप है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी विस्तारसहित भासती है, तैसे अविद्या नाना रंग विलास, विकाररूप, विषमरूप, सूक्ष्मरूप, मृदु कहत कोमलरूप अरु कठिनरूप है, अरु स्त्रीकी नाईं चंचल है अरु क्षोभरूप सर्पिणी है, सो तृष्णारूपी जिह्वासाथ मार डारती है, अरु दीपककी शिखावत् प्रकाशमान् है, जबलग स्नेह होता है, तबलग दीपकवत् प्रज्वलित होता है, जब तेल पूर्ण भया, तब निर्वाण हो जाता है, तैसे जबलग भोगोंविषे प्रीति है, तबलग अविद्या वृद्ध रहती है जब भोगोंविषे स्नेह क्षीण भया, तब नष्ट हो जातीहै, रागरूप अविद्या तृष्णाविना नहीं रहती, अरु भोगरूप प्रकाश विजलीकी नाईं चमत्कार करती है, इनके आश्रय मैं जो कार्य करौं, सो नहीं होता, क्षणभंगुररूप है, जैसे विजली मेघके आश्रय है, तैसे अविद्या जडोंमूर्खोंके आश्रय रहती है, अरु अविद्या तृष्णा देनेहारी है, अरु भोगपदार्थ बड़े यत्नकरिकै प्राप्त होते हैं, अरु जब प्राप्त होवैं, तब अनर्थको उत्पन्न करते हैं, जो भोगोंके निमित्त यत्न करते हैं, तिनको मेरा धिक्कार है, काहेते जो भोग बडे यत्न करिकै प्राप्त होते हैं, फिर स्थिर भी नहीं रहते, अरु अनर्थको उत्पन्न करते हैं, तिनकी तृष्णाकरिकै भटकते हैं, सो महामूर्ख हैं, हे रामजी! ज्यों ज्यों उसका स्मरण होताहै त्योंत्यों अनर्थ होते हैं अरु ज्यों ज्यों इसका विस्मरण होता है, त्यों त्यों सुख होताहै इस कारणते अत्यंत सुखके निमित्त विस्मरणहै; अरु स्मरण दुःखके निमित्त है. जैसे जिसकी दृष्टिमें क्रूर स्वप्न आता है. बहुरि तिसके स्मरणविषे कष्टवान् होता है, जैसे और किसी उपद्रव प्राप्त होनेकी स्मृतिविषे अनर्थ जानता है; तैसे अविद्या जगत्के स्मरणविषे कष्ट अर्थ होता है; अविद्या

एक मुहूर्तविषे त्रिलोकीको रचिलेती है; अरु एक क्षणविषे ग्रास लेती है ॥ हे रामजी ! जो स्त्रीका वियोगवान् रोगी पुरुष होताहै, तिसको रात्रि कल्पकी नाई व्यतीत होती हैं, अरु जो बहुत सुखी होता है, तिसको रात्रि क्षणकी नाई व्यतीत हो जाती है, दुःखीको दीर्घरूप होती है, काल भी अविद्या प्रमादकरिके विपर्ययरूप हो जाता है ॥ हे रामजी ! ऐसा कोऊ पदार्थ नहीं जो अविद्याकरिके विपर्यय न होवै, शुद्ध निर्विकार निराकार अद्वैत तत्त्वविषे इसकरि कर्तृत्व भोक्तृत्वका स्पंद फुरताहै ॥ हे रामजी ! जेती कछु जगज्जाल तुझको भासता है, सो अविद्याकरि भासता है जैसे दीपकका प्रकाश इंद्रियोंको रूप दीखता है, तैसे अविद्या पदार्थोंको दिखाती है, सो सब असत्यरूप हैं, जैसे नानाप्रकारकी सृष्टि मनोराज्यविषे भासती है, अरु जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है, तिसविषे अनेक शाखासंयुक्त वृक्ष भासते हैं, सो तिसविषे असत्यरूप हैं, तैसे यह जगत् असत्यरूप है; जैसे मृगतृष्णाकी नदी बडे आडंबर सहित भासती है, तैसे यह जगत् है, जैसे मृगतृष्णाकी नदीको देखिके मूर्ख मृग पानके निमित्त दौड़ते हैं, अरु कष्टवान् होते हैं, तैसे मनुष्य नहीं दौड़ते हैं, जगत्के पदार्थोंको देखिकरि अज्ञानी दौडिके यत्न करते हैं, तैसे ज्ञानवान् यत्नतृष्णा नहीं करते, ज्यों ज्यों मूर्ख मृग दौड़ते हैं, त्यों त्यों कष्ट पाते हैं, शांतिको नहीं प्राप्त होते, तैसे अज्ञानी जगत्के भोगोंकी तृष्णा करते हैं, परंतु शांतिको नहीं प्राप्त होते, जैसे तरंग बुद्बुद सुंदर भासते हैं, परंतु ग्रहण कियेते कछु नहीं निकसते, तैसे शांतिका कारण जगत्विषे सार पदार्थ कोऊ नहीं निकसता, जड़रूप अविद्या चिदाकार हुई है, सो चेतनसाथ अभिन्नरूप है, परंतु भिन्नकी नाई स्थित भई है, जैसे बबोहा अपनी तंतुको पसारता है, बहुरि अपनेविषे लीन करि लेता है, सो तंतु बबोहेसाथ अभिन्नरूप है, परंतु भिन्नकी नाई भासती है, हे रामजी ! अग्निते धूम निकसि-करि बादलका आकार होता है; सो रसको खैंचता है, बहुरि मेघ होइकरि वर्षा करता है, तैसे अविद्या आत्माते उपजिकरि आत्माकी सत्ता पाइकरि जगत्को रचती है, तिस जगत्विषे यह जीव घटीयंत्रकी नाई भटकता है जैसे जेवरीसे बांधी हुई टीडी अध ऊर्ध्वको भटकती

है, तैसे तिनकी वासनासाथ बांधाहुआ जीव भटकता है, जैसे चिक्कडते भेह उपजती है, अरु तिसके अंतर छिद्र होते हैं, तैसे अविद्यारूपी चिक्कडते यह जगत् उपजा है, अरु विकाररूपी दृश्य इसविषे छिद्र हैं, सारभूत इसविषे कछु नहीं वही रूप है, अरु जैसे अग्नि घृत अरु इंधनके संयोगते बढता जाता है, तैसे अविद्या विषयोंकी तृष्णाकरि बढ़ती जाती हैं, जैसे अग्नि घृत अरु इंधनोंते रहित शांत हो जाता है, तैसे तृष्णाते रहित अविद्या शांत हो जाती है, जब विवेकरूपी जलका सिंचन होवै, तृष्णारूपी घृत न पडै, तब अग्निरूप अविद्या नष्ट हो जाती है, अन्यथा नहीं होती ॥ हे रामजी ! यह अविद्या दीपककी शिखावत् है, अरु तृष्णारूपी तेल करिकै अधिक प्रकाशमान् होती है, जब तृष्णारूपी तेलते रहित होवै, अरु विवेकरूपी वायु चलै; तब दीपक शिखारूप अविद्या निर्वाण हो जावैगी, अरु न जानिये कि, कहां गई अरु अविद्या कुहिडकी नाईं आवरण करती भासती है; परंतु ग्रहण करिये तौ कछु नहीं हाथ आती देखनेमात्र स्पष्ट दृष्ट आती है; परंतु विचार कियेते अणुमात्र भी नहीं रहती; जैसे रात्रिको बड़ा अंधकार भासता है, परंतु जब दीपक लेकरि देखिये तब अंधकार अणुमात्र भी नहीं दृढ आता; तैसे अविद्या विचार कियेते नहीं रहती, बहुरि कैसी है, जैसे आकाशविषे नीलता अरु दूसरा चंद्रमा भ्रांतिकरि भासता है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि भ्रममात्र भासती है, जैसे बेडीपर चढेते तटके वृक्ष किनारे चलते भासते हैं, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भ्रांति करिकै भासती है; अरु जैसे सीपीविषे रूपा अरु जेवरीविषे सर्प भ्रमकरिकै भासता है, तैसे अविद्यारूपी जगत् अज्ञानीको सत्य भासता है ॥ हे रामजी ! यह जागृत जगत् भी दीर्घकालका स्वप्न है; जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलबुद्धि मृगके चित्तविषे आईहै, तैसे जगत्की सत्यता मूर्खके चित्तविषे रहतीहै ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषोंकी पदार्थोंविषे रति आरूढ हो रही है, तिनकी भावनाकरिकै उनका चित्त खैंचताहै, अरु तिन पदार्थोंको अंगीकार करिकै बडे कष्टको पाते हैं, जैसे पक्षी आकाशको उडताहै, अरु दाणेविषे उसकी प्रीति होतीहै, चुगनेके निमित्त पृथ्वीपर आता है, जब सुखरूप जानिकै चुगने लगताहै तब जालविषे फँसता है,

बहुरि कष्टमान होता है, जैसे कणकी तृष्णा पक्षीको दुःख देती है, तैसे जीवोंको भोगोंकी तृष्णा दुःख देती है ॥ हे रामजी ! यह भोग प्रथम तौ अमृतकी नाईं सुखरूप भासते हैं, अरु परिणामविषे विषकी नाईं होते हैं, मूर्ख अज्ञानीको यह सुंदर भासते हैं, जैसे मूर्ख पतंग दीपकको सुखरूप जानिके वांछा करता है, परंतु जब दीपकसाथ स्पर्श करता है, तब नाशको प्राप्त होताहै, तैसे यह भोगोंके स्पर्शकरि जीव नाश होतेहैं; जैसे संध्याकालमें आकाशविषे लाली भासती है, तैसे अविद्याकरि जगत् भासता है, जैसे दूर वस्तु निकट भासती हैं, अरु निकट वस्तु भ्रमकरिकै दूर भासती है, जैसे स्वप्नविषे बहुत कालमें थोडा भासता है अरु थोडे कालमें बहुत भासता है, तैसे यह जगज्जाल सब अविद्याकरिकै भासता है, सो अविद्या आत्मज्ञान करिकै नष्ट हो जाती है, ताते यत्नकरिकै मनके प्रवाहको रोकौ ॥ हे रामजी! जो कछु दृश्यमान जगत् है, सो सब तुच्छरूप है; मिथ्या भावनाकरिकै जगत् अंध हुआहै, बड़ा आश्चर्य है॥ हे रामजी ! अविद्याका रूप निराकार है अरु शून्य है, तिसने सत्य होइकरि जगत्को अंध किया है. अर्थ यह कि, जो असत्रूप पदार्थोंको सत् जानिकै यत्न करते हैं, जैसे सूर्यके प्रकाशविषे उलूकको अंधकार भासता हैं, भ्रांतिकरिकै सूर्य उनको नहीं भासता, तैसे चिदानंद आत्मा सदा अनुभवकरि प्रकाशता है, अरु अविद्याकरिकै नहीं भासता है, असत्यरूप अविद्याने जगत्को अंध किया है, जो विकर्मोंको कराती है अरु विचार कियेते रहती भी नहीं; तिसकरि अपना आप नहीं भासता, बडा आश्चर्य है, जो धैर्यवान् धर्मात्माको भी अपने वश करिकै समर्थ होने नहीं देती अरु अविचारित सिद्ध अविद्यारूपी स्त्रीने पुरुषको अंध किया है, अनंत दुःखोंका विस्तार पसारती है, उत्पत्ति अरु नाश सुखदुःखको करती है, आत्माको भ्रमाती है, अनंतदुःख अज्ञान करि दिखाती है, बोधते हीन करती है, काम क्रोध उपजाती है, मनविषे वासनाकरि यही भावना वृद्ध करती है ॥ हे रामजी ! यह अविद्या कैसी है, जो निराकार अरूप है, अरु इसने जीवको बांधा है, अनहोता

जैसे स्वप्नविषे कोई आपको बांधा देखै, तैसी अविद्या है. स्वरूपते प्रमादका नाम अविद्या है, और कछु नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे अविद्यावर्णनं नाम अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

नवाशीतितमः सर्गः ८९.
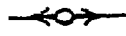
दोषपरिहारोपदेशवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन्! जेता कछु जगत् दृष्ट आता है, सो सब अविद्याकरिकै उपजा है, सो अविद्या किसभाँति निवृत्त होती है? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे बर्फकी पुतली क्षणविषे सूर्यके तेजकरिकै नष्ट हो जाती है, तैसे अविद्या आत्माके प्रकाशकरिकै नष्ट हो जाती है, जबलग आत्माका दर्शन नहीं भया, तबलग अविद्या पुरुषको भ्रम दिखाती है, अरु नानाप्रकारके दुःखोंको प्राप्त करती है, जब आत्माके दर्शनकी इच्छा होतीहै, तब वही इच्छा मोहको नाश करतीहै, जैसे धूपकरि छाया क्षीण हो जाता है, तैसे आत्मपदकी इच्छाकरि अविद्या क्षीण होजातीहै, अरु सर्वगत देव आत्माके साक्षात्कार हुएते नष्ट हो जाती है, जैसे द्वादश सूर्य उदित हुएते सब दिशाकी छाया नष्ट हो जावै ॥ हे रामजी! जो दृश्य पदार्थकी इच्छा उपजती है, इसीका नाम अविद्या है, अरु तिस इच्छाके नाशका नाम विद्या है, अरु तिस विद्याहीका नाम मोक्ष है, सो अविद्याका नाश संकल्पमात्र है, जेता कछु दृश्य पदार्थ है तिसकी इच्छा न उपजै अरु केवल चिन्मात्रविषे चित्तकी वृत्ति स्थित होवै, यह अविद्यानाशक उपाय है, जब सब वासना निवृत्त होवैं, तब आत्मतत्त्व प्रकाश आवै, जैसे रात्रिके क्षय हुएते सूर्य प्रकाशता है, तैसे वासनाके क्षय हुएते आत्मा प्रकाशता है, जैसे सूर्यके उदय हुएते नहीं जानता कि, रात्रि कहां गई, तैसे विवेकके उपजे नहीं जानता कि, अविद्या कहां गई ॥ हे रामजी! यह पुरुष संसारकी दृढ़ वासनाकरिकै बांधा है, जैसे संध्याकालविषे मूर्ख बालक परछाईंविषे वैताल कल्पिकरि भयवान् होता है, तैसे यह पुरुष अपनी वासनाकरि

भयको पाता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो कछु दृश्य है, सो अविद्याकरि हुआ है, अरु अविद्या आत्मभावकरि नाश होती है, सो आत्मा कैसा है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ चैत्योन्मुखत्वते रहित अरु सर्वगत समान अनुभवरूप ऐसा जो चेतन तत्त्व अशब्दरूप है, सो आत्मा परमेश्वर है ॥ हे रामजी! ब्रह्माते लेकरि तृणपर्यंत जो जगत् है, सो सब आत्मा है, और अविद्या कछु नहीं ॥ हे रामजी! सब देहोंविषे नित्य चेतनघन अविनाशी पुरुष स्थित है, तिसविषे मनोनाम्नी कल्पना आभास अन्यकी नाईं होइकरि भासती है, अरु आत्मतत्त्वते इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी! कोऊ न जन्मता है, न मरता है, न कोऊ विकार है, केवल आत्मतत्त्व प्रकाशसत्ता समान है; अविनाशी चैत्यते रहित शुद्ध चिन्मात्र तत्त्व अपने आपविषे स्थित है, सो नित्य सर्गगत है, शुद्ध चिन्मात्रहै, निरुपद्रव है, शांतरूप सत्ता समान निर्विकार अद्वैत आत्मा है ॥ हे रामजी! तिस एक सर्वगत देव सर्वशक्ति महात्माकी जब विभागकलनाशक्ति होती है; तिसका नाम मन है, जैसे समुद्रविषे द्रवता करिकै लहरी होती है, तैसे शुद्ध चिन्मात्रविषे जो चैत्यता होतीहै, तिसका नाम मन होताहै, संकल्पकलनाकरिकै दृश्यकी नाईं भासती है, तिसी संकल्पकल्पनाका नामअविद्या है, संकल्पहीकरि उपजी संकल्पहीकरि नाश हो जातीहै, जैसे वायुकरि अग्नि उपजता है, अरु वायुकरिही लीन होता है, तैसे संकल्पकरिकै अविद्यारूपी जगत् उपजता है अरु संकल्पहीकरि नष्ट हो जाताहै. जब चित्तकी वृत्ति दृश्यकी ओर फुरती है, तब अविद्या बढती है, जब वृत्ति दृश्यकी नष्ट हो जावै, दृश्यको त्यागिकरि स्वरूपकी ओर आवै, तब अविद्या नष्ट होजाती है ॥ हे रामजी! जब संकल्प करता है; कि, मैं ब्रह्म नहीं, तब मन दृढ बंधनमय होता है, अरु जब यही संकल्प दृढ करता है कि, सब ब्रह्म है, तब मुक्त होता है, अरु जब अनात्मविषे अहं अभिमानका संकल्प दृढ करता है, तब बंधन होता है, अरु सर्व ब्रह्मके सकल्पकरि मुक्त होता है, दृश्यका संकल्प बंध है, अरु असंकल्प मोक्ष है, आगे जैसी तेरी इच्छा होवै तैसे कर, जैसे बालक आकाशविषे स्वर्णके कमलोंकी कल्पना करै, जो सूर्यवत् प्रकाश अरु सुगंधकरि पूर्ण

है, सो भावनामात्र होते हैं, तैसे अविद्या भावनामात्र है, जो अज्ञानी जानता है, मैं कृश हौं, अति दुःखी हौं, वृद्ध हौं, हस्तपाद इंद्रियवाला हौं ऐसे व्यवहारकारि बंधमान होताहै, अरु जब ऐसे जानै कि, मैं दुःखी नहीं, न मेरा देह है, न मेरे बंधन है, तब भावनाकारि मुक्त होता, न मैं मांस हौं, न अस्थि हौं, देहते अन्य साक्षी हौं; ऐसे निश्चयवान्‌को अन्तर अविद्याते मुक्त कहते हैं; जैसे सूर्यविषे अंधकार नहीं, मणिके प्रकाशविषे अंधकार नहीं, तैसे आत्माविषे अविद्या नहीं, जैसे पृथ्वीपर स्थित पुरुष आकाशविषे नीलता कल्पता है, तैसे अज्ञानी आत्माविषे अविद्या कल्पता है, वास्तव कछु नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्‌ ! सुमेरु की छाया आकाशविषे पडती है, अथवा तमकी प्रभा है अथवा और कुछ है, यह आकाशविषे नीलता कैसे भासती है ! ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आकाशविषे नीलता है नहीं, यह शून्यता गुण है, न सुमेरुकी छाया है, अरु न तम है, आकाश पोलमात्र है ॥ हे रामजी ! यह ब्रह्मांड तेजरूप है, इसका प्रकाशही स्वरूप है; तमका स्वभाव नहीं, तम ब्रह्मांडके बाह्यहै, अन्तर नहीं, ब्रह्मांडका प्रकाश स्वभाव है, अरु यह जो नीलता भासती है, सो दृढ शून्यताकारिकै आकाशविषे नीलता भासती है, और नीलता कछु नहीं, जिसकी मंद दृष्टि है, तिसको नीलता भासती है; जिसकी दिव्यदृष्टि है, तिसको नीलता नहीं भासती, पोल भासतीहै, जैसे मंद दृष्टिको आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे अज्ञानीको अविद्या सत्य भासती है, जैसे दिव्यदृष्टिवालेको नीलता नहीं भासती, तैसे ज्ञानवान्‌को अविद्या नहीं भासती, ब्रह्मसत्ताही भासती है ॥ हे रामजी ! जहांलग इसके नेत्रोंकी दृष्टि जाती है, तहांलग अवकाश भासता है, अरु जहां वृत्ति कुंठित होतीहै, तहां इसको नीलता भासती है ॥ हे रामजी ! जैसे जिसकी दृष्टि क्षय होती है, तहां तिसको नीलता भासती है, तैसे जहां इस जीवकी आत्मादृष्टि क्षय होती है, तहां इसको अविद्यारूपी सृष्टि भासने लगती है, सो यह दुःखरूप है ॥ हे रामजी ! चेतनको छोडिकारि जो कछु स्मरण करता है, तिसका नाम अविद्या है, अरु जब चित्त अचल

होता है; तब अविद्या नष्ट हो जाती है, असंकल्प होनेकरि अविद्या नष्ट होती है, जैसे आकाशके फूल तैसे अविद्या है, यह भ्रमरूप जगत् मूर्खोंको सत्य भासता है, वास्तवते कछु नहीं, मनके फुरणेते रहित होवै, तब जगत् कछु नहीं, भावनामात्र जगत् है, तिसीका नाम अविद्या है, सो मोहका कारण है, जब वही भावना उलटिकरि आत्माकी ओर आवै, तब अविद्या नाश होवै, जो वारंवार चिंतवना करणी इसका नाम भावना है, जब भावना आत्माकी ओर वृद्ध होती है, तब आत्माकी प्राप्ति होती है, तथा अविद्या नष्ट होजातीहै, मनके संसरणेका नाम अविद्या है, जब संसरण आत्माकी ओर हुआ, तब अविद्या नष्ट भई ॥ हे रामजी! जैसे राजाके आगे मंत्री टहलुए कार्यको करते हैं, तैसे मनके आगे इंद्रियां कार्यको करती हैं॥हे रामजी ! बाह्यके विषय पदार्थोंकी भावना छोडिकै तुम अंतर आत्माकी भावना करौ, तब आत्मपदको प्राप्त होहुगे जिन पुरुषोंने अंतर आत्माकी भावनाका यत्न किया हैं, सो शांतिको प्राप्त भये हैं ॥ हे रामजी ! जो पदार्थ आदिविषे नहीं होता, सो अंतविषे भी नहीं रहता, ताते जो कछु भासता है, सो सब ब्रह्मसत्ता है, इतर कछु नहीं, जो कछु इतर भासता है, सो मननमात्र है, अरु तेरा स्वरूप निर्विकार आदिअंतते रहित ब्रह्मतत्त्वहै, तू क्यों शोक करता है, अपने पुरुषार्थकरिकै संसारके भोगवासना चित्तसों मूलते उखाडौ, अरु आत्मपदका अभ्यास करौ, जो दृश्यभ्रम मिटि जावै॥हे रामजी ! यह संसारकी वासनाका उदय होना, जरा मरण मोहको देनेहारा है, जब स्वरूपका प्रमाद होता है, तब इसको यह कल्पना उठती है, आशारूपी अनंत फाँसियोंकरि बंधमान होता है, अरु वासना वृद्ध हो जाती है, कहता है, मेरे पुत्र हैं, मेरा धन है, मेरे बांधव हैं, यह मैं हौं, वह और है, इसते लेकरि वासना तिसके चित्तविषे उत्पन्न होती है ॥ हे रामजी ! ऐसे शरीरसाथ मिलकरि यह कल्पना करता है, सो शरीर शून्यरूप है, जैसे वायुविरोलेसाथ तृण उड़ते हैं, तैसे अविद्यारूपी वासनाकरिकै शरीर उड़ते हैं, अहं त्वं आदिक जगत् सब अज्ञानीको भासता है, अरु ज्ञानवान्को केवल ब्रह्म सत्य भासता है, पृथिवी, नदियांते लेकरि जगत्

अज्ञानमात्रकरिकै भासता है, अरु ज्ञानते नष्ट हो जाता है, जैसे जेवरीके न जाननेकरि सर्प भासता है, अरु जेवरीके सम्यक् ज्ञानकरि नष्ट होता है, तैसे आत्माके अज्ञानकरिकै जगत् भासता है, अरु आत्माके सम्यक् ज्ञान हुएते जगद्भ्रम नष्ट हो जाता है, ताते आत्माकी भावना करौ ॥ हे रामजी! जेवरीविषे दो विकल्प होते हैं, एक जेवरीका, दूसरा सर्पका, सो दोनों विकल्प अज्ञानीको होते हैं, ज्ञानीको दो विकल्प नहीं होते, जो जिज्ञासु होता है, तिसकी वृत्ति सत्य अरु असत्यविषे डोलायमान होती है, अरु जो ज्ञानवान् है, तिसको विचारते रहित ब्रह्मतत्त्वही भासता है, ताते तू अज्ञानी मत होहु, ज्ञानवान् होहु, जेतीकछु जगत्की वासना हैं, इन सबको त्याग करु, तब शांतिमान् होवैगा ॥ हे रामजी! संसारभोगकी वासना भी तब होतीहै, जब अनात्मविषे आत्माभिमान होताहै, सो तू देहके साथ किसका अभिमान करता है, यह देह तौ मूक जड़है, अरु अस्थिमांसकी थैलीहै, ऐसी देह तू क्यों होताहै, जबलग देहविषे अभिमान होता है, तबलग सुख अरु दुःखको भुगतता है, अरु इच्छा करताहै, जैसे अरु लाखका संयोग होता है, अरु जैसे घट अरु आकाशका संयोग होताहै, तैसे देह अरु देहीका संयोग होताहै, जैसे चमडीके अंतर आकाश होता है, सो चमडीके नष्ट हुए आकाश नष्ट नहीं होता, अरु जैसे घटके नष्ट हुएते घटाकाश नष्ट नहीं होता, तैसे देहके नष्ट हुएते आत्मा नाश नहीं होता ॥ हे रामजी ! जैसे मृगतृष्णाकी नदी भ्रांतिकरिकै भासती है, तैसे अज्ञानकरिकै सुखदुःखकी कल्पना होतीहै, ताते सुख-दुःखकी कल्पनाको त्यागिकरि अपने स्वभावसत्ताविषे स्थित होहु. बड़ा आश्चर्य है, जो ब्रह्मतत्त्व सत्यस्वरूप है, सो मनुष्य भूल गया है, अरु जो असत्य अविद्या है, तिसको वारंवार स्मरण करता है, ऐसी अविद्याको तू मत प्राप्त होहु ॥ हे रामजी ! मनका जो मनन है, सोई अविद्या है, अरु यह अनर्थका कारण है, इसकरि जीव अनेक भ्रमको देखता है, मनके फुरणेकरि चंद्रमाका बिंब अमृतकरि पूर्ण भी नरकके अग्निसमान भासताहै, अरु बडी लहरी तरंगसहित अरु कमलोंसंयुक्तजल भी मरुस्थलकी नदीकेसमान भासताहै; जैसे स्वप्नविषे मनके फुरणेकरिकै नाना-

प्रकारके सुख अरु दुःखका अनुभव होता है, तैसे यह सब जगद्भ्रम चित्तकी वासनाकरिकै भासता है, जाग्रत् अरु स्वप्नविषे यह जीव विचित्र रचनाको देखता है, सो मनके फुरणेकरिकै देखताहै; जो स्वर्गविषे बैठा होता है, अरु स्वप्नविषे उसको नरकोंका अनुभव होता है, तैसे आनंदरूप आत्माविषे प्रमादकरि इसको दुःखका अनुभव होता है॥ हे रामजी! अज्ञानी मनके फुरणेकरिकै शून्य अणुविषे संपूर्ण जगद्भ्रमको देखता है, जैसे राजा लवण सिंहासनपर बैठा हुआ चांडालकी अवस्थाका अनुभव करत भया, ताते संसारकी वासना चित्तते त्याग देहु, यह संसारवासना बंधनका कारण है, सर्व भावोंविषे वर्तौ, परंतु राग, किसीविषे न होवै, जैसे स्फटिकमणि सब प्रतिबिंबको लेता है, परंतु रंग किसीका नहीं लेता, तैसे तुम सब कार्य करौ, परंतु द्वेष किसीविषे न होवै; ऐसा जो पुरुष है, सो निर्बंधन है, जिसको शास्त्रका उपदेश नहीं, वह निजरूप है॥ हे रामजी! जो कछु प्रकृत आचार तुमको आय प्राप्त होवै, देना, लेना, बोलना, चलना, आदिक सब कार्य करौ, परंतु अंतरते अभिमान कछु न करौ, निरभिमान होकरि कार्य करौ, यह ज्ञान सबते श्रेष्ठ है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे यथाकथितदोषपरिहारोपदेशवर्णनं नाम नवाशीतितमः सर्गः॥ ८९॥

नवतितमः सर्गः ९०.
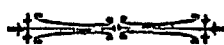
सुखदुःखभोक्तव्योपदेशकथनम्।

वाल्मीकि उवाच॥ इसप्रकार जब महात्मा पुरुष वसिष्ठजीने कहा, तब कमलनयन रामजी वसिष्ठजीकी ओर देखत भया; अरु अंतःकरण प्रफुल्लित हो आया; जैसे रात्रिके मुँदेहुए कमल सूर्यके उदय हुए प्रफुल्लित हो आते हैं, तैसे प्रफुल्लित होइ करि रामजी बोलत भये॥ राम उवाच॥ बड़ा आश्चर्य है, जो पद्मकी तंतुके साथ पर्वत बांधा है, अविद्यमान जो है, अविद्या तिसने संपूर्ण जगत् वश किया हैं, अविद्यमान जगत्‌को वज्रसारवत् दृढ किया है, सब जगत् असत्यरूप है, सत्यकी

नाईं स्थित किया है ॥ हे भगवन् ! इस संसारकी नटिनी जो माया है, तिसका रूप क्या है, अरु लवणराजा महापुण्यवान् था; सो ऐसी बडी आपदाको कैसे प्राप्त हुआ; अरु इंद्रजाल जो भ्रम दीखता भया, सो कौन था, अरु उसको अपना अर्थ कछु न था ? सो इंद्रजाल कहां गया, अरु इस देही अरु देहका संबंध कैसे हुआ है ? अरु शुभ अशुभ कर्मोंके फल भोगनेको कैसे समर्थ होता है ? एते प्रश्नोंका उत्तर मेरे बोधके निमित्त कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह देह काष्ठ माटीके समान है, जैसे स्वप्नविषे चित्तके फुरणेकरिकै देह भासता है, तैसे यह देह चित्तका कल्पित हुआ है, अरु चित्त चैत्यसंबंधकरिकै जीवपदको प्राप्त भया है, सो जीव चित्तसत्ताकरि शोभायमान है, तिस चित्तके फुरणेकरिकै संसार उपजा है, सो चित्त वानरके बालकसमान चंचल है, अरु अपने फुरणेरूप कर्मोंकरि नाना प्रकारके शरीरोंको धरता है, तिस चित्तके एते नामहैं, अहंकार, मन, जीव इत्यादिक नाम चित्तके हैं, सो चित्तही अज्ञान करिकै सुखदुःखको भोगता है, शरीर नहीं भोगता, अरु जो प्रबोध चित्त है, सो शांतरूप है, जबलग मन अप्रबोध है, अरु अविद्यारूपी निद्रा करिकै सोया है, तबलग स्वप्नरूप अनेक सृष्टिको देखता है, अरु जब अविद्या निद्राते जागता है, तब नहीं देखता है ॥ हे रामजी ! जबलग जीव अविद्यासाथ मलिन है, तबलग संसार भ्रमको देखता है, अरु जब बोधवान् हुआ, तब संसारभ्रम निवृत्त होता है, जैसे रात्रिकरि कमल मुन्दे जाते हैं, अरु सूर्यके उदय हुएते खिलि आते हैं, तैसे अविद्याकरि जगद्भ्रम देखता है, बोधकरिकै अद्वैतरूप होता है, ताते अज्ञानही दुःखका कारण है, अविवेककरिकै पंचकोश जो देह है, तिस विषे अभिमानी होइकरि जैसे कर्म करता है, तैसेही भोगता है, शुभ करता है, तब सुख भोगता है; अशुभ करता है, तब अशुभदुःख भोगता है; जैसे नटवा अपनी क्रियाकरिकै अनेक स्वांगोंको धरता है, तैसे मन अपने फुरणेकरिकै अनेक शरीरोंको धरताहै. जैसे कछु इष्ट अनिष्ट सुख दुःख हैं; सो एक मनके फुरणविषे हैं, शरीरविषे स्थित होइकरि मन करता है. जैसे रथ ऊपर आरुढ होइकरि रथवाही चेष्टा करता है, जैसे कोटरविषे बैठिकै सर्प चेष्टा करते हैं, तैसे शरीरविषे स्थित होइ

कारि मन चेष्टा करता है ॥ हे रामजी! अचलरूप शरीरको मन चंचल करता है, जैसे वृक्षको वायु चंचल करता है, तैसे जड शरीरको मन चंचल करता है, जेती कछु सुखदुःखकी कलना हैं; सो मन ही करता है, मनही भोगता हैं, मनही मनुष्य है ॥ हे रामजी! अब लवणका वृत्तांत सुन, लवण राजा मनके भ्रमणे कारिकै चांडाल हुआ, जेता कछु मन कारिकै करता है; सो सफल होता है॥ हे रामजी! एक कालमें हरिश्चंद्रके कुलते उपजा जो राजा लवण, सो एकांत बगीचेमें बैठिके विचारत भया कि, मेरा पितामह बडा राजा हुआ है, अरु मेरे बडोंने राजसूय यज्ञ किये हैं, अरु मैं भी उनके कुलविषे उत्पन्न भया हौं, मैं भी राजसूय यज्ञ करौं, इस प्रकार चिंतना कारिकै लवणने मानसी यज्ञका आरंभ किया, देवता, ऋषीश्वर, मुनीश्वर, सबनकी मनकारि पूजा करत भया, अग्नि, पवन आदिक देवताओंको पूजत भया, मंत्र अरु सामग्री जो कछु राजसूय-यज्ञका कर्म है, सो संपूर्ण करत भया, अरु मनहीकारि सब दक्षिणा देत भया, सवा वर्ष पर्यंत यज्ञ पूर्ण किया, अरु मनहीकारि तिसका फल भोगत भया, ताते हे रामजी! मनहीकारि सब कर्म होता है, अरु मनही भोगता है, जैसा चित्त है, तैसा ही पुरुष है, पूर्ण चित्तकारि पूर्ण होता है, अरु नष्ट चित्तकारि नष्ट होता है, अर्थ यह कि, जिसका चित्त आत्मतत्त्वकारि पूर्ण है, सो पूर्ण है, अरु जो आत्मतत्त्वते नष्टचित्त है; सो नष्ट पुरुषहै, हे रामजी! जिसको यह निश्चय है कि, मैं देह हौं, सो नीचबुद्धि है, अनेक दुःखको प्राप्त होवैगा, अरु जिसका चित्त पूर्ण विवेकविषे जागा है, तिसको सब दुःखोंका अभाव होजाता है, जैसे सूर्यके उदय हुएते कमलोंका सकुचना दूर हो जाता है. अरु खिलि आते हैं, तैसे विवेक-रूपी सूर्यके प्रकाशते रहित पुरुष दुःखोंकारि सकुच रहते हैं, अरु जो विवेकरूपी सूर्यके प्रकाशकारि प्रफुल्लित भये हैं, सो संसारके दुःखको तरि जाते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सुखदुःखभोक्तव्योपदेश-कथनं नाम नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

एकनवतितमः सर्गः ९१.
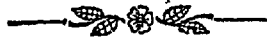
सात्त्विकजन्मावतारवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन्! राजा लवण राजसूययज्ञ मनकारि करत भया, अरु मनहीकारि तिसका फल भोगा, परंतु ऐसा साँबरी कौन था, जिसने उसको भ्रम दिखाया? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब वह साँबरी लवणराजाकी सभाविषे आया, तब मैं वहां था, मैं उसे देखा था, तब तहां मुझसों लवण अरु मंत्री पूछत भये कि, यह कौन था, तब मैंने उनको जो कछु कहा था, सो तुझको कहता हौं ॥ हे रामजी! जो पुरुष राजसूययज्ञ करता है, तिसको द्वादश वर्षकी आपदा प्राप्त होती है, तिस द्वादश वर्षमें अनेक दुःखको देखता है, तब राजा लवण जो मनकारि यज्ञ करत भया, तिसको आपदा भी मनकारि प्राप्त भई, स्वर्गते इंद्रने अपना दूत पठाया, आपदा भुगतावनेनिमित्त साँबरी आकारवान् होइकारि आया, [illegible] चांडालकी आपदा भुगताइकारि बहुरि स्वर्गको चला गया ॥ हे रामजी! जो कछु मैंने प्रत्यक्ष देखा था, सो तुझको कहा, ताते मनही करता है, अरु मनही भोगता है, जैसा जैसा दृढ संकल्प मनविषे फुरता है, तिसके अनुसार इसको सुखदुःखका अनुभव होता है. हे रामजी! जबलग चित्त फुरता है, तबलग इसको आपदा प्राप्त होती है, जैसे ज्यों ज्यों किंकरका वृक्ष बढता है, त्यों त्यों कंटक बढ़ते जाते हैं; तैसे मनके फुरणे कारि आपदा बढती जाती है, अरु जब मन स्थिर होता है, तब आपदा मिटजाती है ॥ ताते हे रामजी! इस चित्तरूपी बर्फको विवेकरूपी तप्त- कारि गालौ, तब परमसारकी प्राप्ति होवैगी; यह चित्तही परम सकल जगत् आडंबरका कारण है, तिसको तू अविद्या जान, जैसे वृक्ष, विटप, तरु; सो एकही वस्तुके नाम हैं, तैसे अविद्या, जीव, बुद्धि, अहंकार, सब फुरणेके नाम हैं, इसको विवेककारि लीन करौ ॥ हे रामजी! जैसा संक- ल्प इसविषे दृढ होता है, तैसा देखता है ॥ हे रामजी! वह कवन पदार्थ है, जो यत्न कियेते सिद्ध न होवै? जो हठकारि पाछे न फिरै तौ सब कछु सिद्धता है, जैसे बर्फके आसनोंको जलविषे डारिये तब जलकी एक-

ताही हो जाती है, तैसे आत्मबोधकारि सब पदार्थोंकी एकता हो जाती है, ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुमने कहा कि, सुखदुःख सब मनहीविषे स्थित हैं, अरु मनकी वृत्ति नष्ट हुएते सब नष्ट हो जाती है, सो चपल वृत्ति कैसे क्षय होवै? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रघुकुलश्रेष्ठ आकाशके चंद्रमा! मैं तुझको मनके उपशमकी युक्ति कहता हौं, जैसे सवारके वश घोडा होता है, तैसे मन तेरे वश रहैगा ॥ हे रामजी! सब भूत ब्रह्महीते उपजे हैं, सो तिनकी उत्पत्ति तीन प्रकारकी हैं, एक सात्त्विकी, एक राजसी, एक तामसी, प्रथम जो शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मविषे कलना उठी है, तिस बाह्यमुखी फुरणेका नाम मन हुआ, सो ब्रह्मारूपहै, सो ब्रह्मा सकलपरूप आगे संकल्प करत भया, जैसा संकल्प किया तैसा आगे देखत भया, तिसने यह भुवन आडंबर कल्पा, तिसविषे जन्म मरण सुखदुःख मोह आदिक संसरणाकल्पा, इसप्रकार अपने आरंभसंयुक्त जैसे बर्फका कणका समुद्रते उपजिकारि सूर्यके तेजकारि लीन होजावै, तैसे आरंभकारि निर्वाण हो गया, बहुरि सकलपके वशते उपजा, बहुरि लीन होगया, इसप्रकार कई अनंत कोटि ब्रह्मांड ब्रह्माते उपजि उपजि लीन हो गये हैं, अरु कई होवैंगे, अब जैसे ब्रह्मतत्त्वते उपजे हैं, अरु जैसे मुक्त होतेहैं, सो सुन॥ हे रामजी! शुद्ध ब्रह्मतत्त्वते प्रथम मनसत्ता उपजी है, सो जब आकाशको चेतती भई तब आकाश हुआ, तिसते बहुरि पवन हुआ, बहुरि अग्नि भया, तिसते आगे जल हुआ, तिसकी दृढताते पृथ्वी भई, तब चित्तशक्ति दृढ संकल्पकारि पांच भूतको प्राप्त भई, तब अंतःकरण जो सूक्ष्म प्रकृति है, सो पृथ्वी, तेज, वायुसाथ मिलकारि धान्यविषे आय प्राप्त होती है; तिसको पुरुष भोजन करते हैं, तब वह परिणाम होइकारि वीर्य रुधिररूप गर्भविषे निवास करती है; जिसते पुरुष उपजता है, सो पुरुष जन्ममात्रते वेदको पढने लगता है, बहुरि गुरुके निकट जाता है, बहुरि क्रमकारिकै तिसकी बुद्धि विवेकसों चमत्कारवान् हो जाती है, ग्रहण अरु त्याग शुभ अशुभविषे विचार उसको उपजता है, तब निर्मल अंतःकरणसहित पुरुष स्थिर होताहै, तब क्रमकारिकै सप्त भूमिका चंद्रमाकी नाईं तिसके चित्तविषे प्रकाशती हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठ उत्पत्तिप्रकरणे सात्त्विकजन्मावतारो नाम एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमः सर्गः ९२.

अज्ञानभूमिकावर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे सर्व शास्त्रोंके तत्त्ववेत्ता भगवन् ! कैसे वह सप्त भूमिका ज्ञानसे निवास करनेहारी हैं, सो संक्षेपते मुझको कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सप्त भूमिका अज्ञानकी हैं, अरु सप्त भूमिका ज्ञानकी हैं, तिनके अंतर्गत और अवस्था बहुत हैं, तिनकी संख्या कछु नहीं; ज्ञानकी अज्ञानकी असंख्य हैं; परंतु सप्तके अंतर्गत हैं, ॥ हे रामचंद्र ! आत्मरूपी वृक्ष है, अपना पुरुषार्थरूपी वसंत-ऋतु है, तिसकारि दो प्रकारकी वेलि उत्पन्न होती हैं, एक शुभ अरु एक अशुभ है, तिस पुरुषार्थरूपी रसके बढनेकारि फलकी प्राप्ति होती है, अब ज्ञान किसको कहते हैं, सो सुन; प्रथम शुद्ध चिन्मात्रविषे चैत्य दृश्य फ़ुरणेते रहित होइकारि स्थित होना इसीका नाम ज्ञान है, अरु शुद्ध चिन्मात्र अद्वैतविषे अहं संवेदना उठती है, सो स्वरूपते गिरना है, सोई अज्ञानदशा है, हे रामचंद्र ! यह मैंने तुझको संक्षेपते ज्ञान अरु अज्ञानका लक्षण कहा है, शुद्ध चिन्मात्रविषे जिनकी निष्ठा है, अरु सत्य स्वरूपते चलायमान नहीं होता, अरु राग द्वेष किसी-विषे नहीं, सो ज्ञानी है, अरु ऐसे शुद्ध चिन्मात्र स्वरूपते जो गिरे हैं, सो अज्ञानी है, जगत्के पदार्थोंविषे मग्न है, सो अज्ञानी है, इसते परे मोह कोऊ नहीं, न हुआ है, यही परम मोह है, अरु स्वरूपस्थिति किसका नाम है, एक अर्थको छोडिकै जो संवित् और अर्थको प्राप्त होता है, जैसे जागृतको त्यागकारि सुषुप्तिको प्राप्त होता है, तिसके मध्यविषे जो निर्मननरूप सत्ता है, तिसविषे स्थित होना, सो स्वरू-पस्थिति कहाती है ॥ हे रामचंद्र ! भलीप्रकार सर्व संकल्प जिसके शांत हुए हैं, अरु शिलाके अंतरवत् शून्य हैं, कैसी शून्यता है कि, निद्रा अरु जडताते रहित है, तिस सत्ताविषे स्थित होना सो स्वरूप-स्थिति कही है, कैसा स्वरूप है, अहं त्वं आदिक फ़ुरणेते रहित है, भेदविकारते रहित है, जडते रहित अचैत्य चिन्मात्र है, सो आत्मस्व-

रूप कहाता है, तिस तत्त्वते फिरिकरि जो जीवोंकी अवस्था हुई है, सो सुन ॥ हे रामचंद्र ! बीजजागृत् १, जागृत् २, महाजागृत् ३, जागृत्-स्वप्न ४, पंचम स्वप्न ५, स्वप्नजागृत्६, सुषुप्ति ७, ये सप्तप्रकार मोहकी अवस्था हैं, इनके अंतर्गत और अनेक हैं, मुख्य ये सप्त हैं, अब इनके लक्षण सुन ॥ हे रामजी ! प्रथम जो शुद्ध चिन्मात्र अशब्द पद तत्त्वसों चेतनताका अहं है, तिसका भविष्यत् जीव नाम होता है, सो आदि सर्व पदार्थोंका बीजरूप है, सो तिसका नाम बीज जागृत् है, अरु तिसके अनंतर जो अहं अरु यह मेरा इत्यादिक प्रतीति दृढ़ हो गई, जन्मांतरविषे भासै, तिसका नाम जागृत् है, अरु यह है, सो है, मैं हौं, इत्यादिक शब्दसाथ तन्मय होना, और जन्मांतरविषे जो यह दृढ प्रतीति हो जावै, तिसका नाम महाजागृत् है, अरु महाजागृत्विषे बैठे हुए मन फुरता है, मनोराज्यविषे वह फुरणा दृढ हो भासै, अथवा अदृढ होवै, सो जागृत् स्वप्न कहाता है, अरु दूसरा चंद्रमा भासै, सीपीविषे रूपा भासै, मृगतृष्णाका जल भासै, इत्यादिक विपर्यय भासना सो जागृत् स्वप्न है, अरु निद्रा आई तिसविषे मन फुरणे लगा, नाना-प्रकारके पदार्थ चित्तके फुरणेकारि भासने लगे, जब जाग उठा तब कहता है, मैं अल्पकालविषे केते पदार्थ देखे, निद्राकालविषे जो पदार्थ देखे थे, तिनको असत्यरूप जागृत्में जानता भया, तिस निद्राकालविषे फुर-णेका नाम स्वप्न है, अरु स्वप्न आया, तिसविषे दीर्घकाल बीत गया, प्रफुल्लित अपना बड़ा वपु देखत भया, तिसविषे अहं मम भाव दृढ हुआ, अरु आपको सत्य जानिकरि जन्म मरण आदिक देखता भया, यहां देह रहै, अथवा न रहै; तिसका नाम स्वप्नजागृत् है, वह स्वप्न महाजागृत् रूपको प्राप्त होताहै यह स्वप्नजागृत् है; अरु इस छवीं अव-स्थाका जहां अभाव हो जावै; जडरूपहोवै; अरु भविष्यत् होवै; तिसका नाम सुषुप्ति है; तिस अवस्थाविषे घास, पत्थर, वृक्ष आदिक स्थित हैं ॥ हे रामजी ! यह अज्ञानकी सप्त भूमिका कही हैं, तिनके एकएकविषे अवस्थाभेद हैं ॥ हे रामचंद्र ! स्वप्न चिरकालकरिके

जागृतरूप हो जाता है, तिसके अंतर्गत और स्वप्न जागृत् है, तिसके अंतर और है इसप्रकार एकएकके अंतर अनेक हैं, यह मोहकी घनता है, तिसकारि जीव भ्रमते हैं, जैसे जल नीचेते नीचेको चला जाता है, तैसे मोहते अनंतर मोहको पातेहैं॥ हे रामजी! यह तुझको अज्ञानकी अवस्था कही हैं, नानाप्रकारका मोहभ्रम विकार हैं, तिनते तू विचारिकारि मुक्त होहु, जब तू महात्मा पुरुष आत्मविचार करिकै निर्मल बोधवान् होवैगा, तब इस भ्रमको तर जावैगा,॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे अज्ञानभूमिकावर्णनं नाम द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमः सर्गः ९३.

ज्ञानभूमिकोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामचंद्र! अब तू ज्ञानकी सप्तभूमिका सुन, भूमिका कहिये चित्तकी अवस्था सो ज्ञानकी भूमिका जाननेते बहुरि मोहरूप चिकड़विषे डूबता नहीं ॥ हे रामचंद्र ! मतोंवाले भूमिकाको बहुत प्रकारकरि कहते हैं, अरु मेरा अभिमत पूछे तौ यह है, इसकारि सुगम निर्मल बोधको प्राप्त होता है, स्वरूपविषे जागनेका नाम ज्ञान है, तिस ज्ञानकी सप्त भूमिका हैं अरु जो मुक्त इन सप्त भूमिकाके परे हैं, सो विदेहमुक्त हैं ॥ अब भूमिकाके नाम भेद सुन ॥ प्रथम शुभेच्छा, दूसरी विचारणा, तीसरी तनुमानसा, चतुर्थ सत्त्वापत्ति, पंचम असंसक्ति, षष्ठी पदार्थाभाविनी, सप्तम तुरीया ॥ इसके सारको प्राप्त हुआ बहुरि शोक नहीं करता, अब इसका अर्थ श्रवण करु ॥ हे रामजी! जिसको यह विचार फुरि आवै कि, मैं महामूढ हो रहा हौं, मेरी बुद्धि सत्यविषे नहीं, अरु संसारकी ओर लगी है, ऐसे विचार करिकै सच्छास्त्र अरु सज्जनोंकी संगति वैराग्यपूर्वक सत्यकी इच्छा होवै, इसका नाम शुभेच्छा है, अरु सच्छास्त्रोंको विचारणा अरु संतोंकी संगति अरु विषयोंते वैराग्य सत्यमार्गका अभ्यास इनसहित सत्य आचारविषे प्रवर्त्तना, सत्यको सत्य जानना, अरु अस-

त्यको असत्य जानिकरि त्याग करना इसका नाम विचार है, विचार अरु शुभेच्छासहित तत्त्वका अभ्यास करना, अरु इंद्रियोंके विषयोंते वैराग्य करना अरु मन सूक्ष्म होता है, सो तीसरी भूमिकाका नाम तनुमानसा है, तीन भूमिकाका अभ्यास करना, अरु इंद्रियोंके अर्थते वैराग्य करना जगत्‌ते वैराग्य करना अरु श्रवण मनन निदिध्यासनकरि सत्य आत्माविषे स्थित होना, इसका नाम सत्त्वापत्ति है, तामें सत्य आत्माका अभ्यास होता है यह चार भूमिका जो हैं संयमरूप तिसका फल जो है शुद्ध विभूति, तिस फलविषे असंसक्त रहना, तिसका नाम असंसक्ति है, दृश्यका विस्मरण अरु आत्मारामीपना अंतरबाहिरते नानाप्रकारके पदार्थोंका तुच्छ भासना, तिसका नाम पदार्थाभाविनी है, सो छठी भूमिका है ॥ हे रामचंद्र ! चिरपर्यंत जो छठी भूमिकाका अभ्यासकरि भेदकलनाका अभाव हो जाताहै, स्वरूपविषे दृढ परिणाम होता है, छःभूमिका जहां एकताको प्राप्त होवैं, तिसका नाम तुरीया है, यह जीवन्मुक्तकी अवस्थाहै, जीवन्मुक्त तुरीया पदविषे स्थितहैं, अर्थ यह कि तीन भूमिका जगत्‌की जागृत् अवस्थामें हैं, अरु चौथी तत्त्वज्ञानीकीहै, अरु पाँचवींछठी अरु सातवीं जीवन्मुक्तकी अवस्था हैं, अरु तुरीयातीत पदविषे विदेहमुक्त होता है ॥ हे रामचंद्र ! जो पुरुष महाभाग्यवान् है, सो सप्तभूमिकाविषे स्थित होता है, सो आत्मारामी महापुरुष परमपदको प्राप्त होता है ॥ हे रामचंद्र ! जो जीवन्मुक्त पुरुष है, सो सुखदुःखविषे मग्न नहीं होते, शांतरूप होइके अपने प्रकृत आचारको करते हैं, अथ वा नहीं करते, तौ भी तिनको बंधन कछु नहीं, तिनको क्रियाका बोध कछु नहीं रहता, जैसे सुषुप्त पुरुषके निकट जाइके क्रिया करै, तब बोध कछु नहीं, तैसे उसको क्रियाबोध कछु नहीं; सुषुप्तिवत् उन्मीलितलोचन हैं ॥ हे रामचंद्र ! जैसे सुषुप्त पुरुषको रूप अरु इंद्रियाँ इनका अभाव हो जाता है, तैसे सप्त भूमिकाविषे अभाव हो जाता है, इह सप्त भूमिका ज्ञानकी ज्ञानवान्‌का विषय हैं, पशु वृक्ष म्लेच्छवत् जो मूर्ख हैं, अरु पापाचारी हैं, तिनके चित्तविषे इनका अधिकार नहीं होता, जिसका मन निर्मल है, तिसको इन भूमिकाविषे अधिकार है, अरु पशु म्लेच्छ आदिको भी

इनका अभ्यास होवै तब वह भी मुक्त हो जाते हैं, इसविषे संशय कछु नहीं है ॥ हे रामचंद्र ! आत्मज्ञानकारि जिनके हृदयकी गांठ टूटि गई है, तिनको संसार मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या भासता है, वह मुक्तरूप हैं, अरु जो संसारते विरक्त होइकारि इन भूमिकाविषे आये हैं, अरु मोहरूपी समुद्रको तरे नहीं, पूर्णपदको प्राप्त नहीं भये, अरु सप्त भूमिकाविषे किसी भूमिकाविषे लगेहैं, सो भी आत्मपदको पाइकारि पूर्ण आत्मा होवैंगे, हे रामचंद्र ! ए सप्त भूमिकाको प्राप्त हुए हैं, कोऊ एक भूमिकाको, कोऊ दूसरीको, कोऊ तीसरीको प्राप्त हुए हैं, कोऊ चौथी, कोऊ पाँचवीं, कोऊ छठीको अरु कोऊ अर्ध भूमिकाको प्राप्त भया है, कोऊ ग्रहविषे स्थित है, कोऊ वनविषे है, कोऊ तापसी है, कोऊ अतीत है, इसते आदि लेकारि सो पुरुष धन्यहैं, अरु बड़े शूरमें वही हैं, जो बड़े दिक्पाल हस्तीहैं, अरु बड़े बडे शूरमे हैं, सो तिनके शूरत्व आगे तृणवत् हैं, काहेते जो और शूरत्व सुगम है, परंतु इंद्रियांरूपी शत्रुको जीतना कठिन है, जिन पुरुषोंने इनको जीता है, सो बडे शूरमे हैं, जिस पुरुषने किसी भूमिकाको जीतीहै सो वंदना करने योग्यहै तिसको चक्रवर्ती राजा जानना, राज्य अरु और बड़ा ईश्वर विभूति सब तिनको तृणवतहै, वह परमपदको प्राप्त हुए हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे ज्ञानभूमिकोपदेशवर्णनं नाम त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमः सर्गः ९४.

युक्तोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे सुवर्णविषे भूषण फुरै अरु सो अपना सुवर्णभाव भूलि जावै अरु कहै मैं भूषण हौं, तैसे चित्तसंवेदन जिस स्वरूपते फुरा है, तिसते भूलिकारि अहंवेदना हुई है, ताते अहंकाररूप धरा है, जो मैं यह कछु हौं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सुवर्णविषे जो भूषण होते हैं, सो मैं जानता हौं; परंतु आत्माविषे अहंभाव कैसे होता है, सो कहो ? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामचंद्र ! अहंकार आदिकोंका जो

होना है सो असत्यरूप आगमापायी है, तिसका कछु भिन्नरूप नहीं, यह आत्माका चमत्कार है, वास्तवते द्वैत कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे अधऊर्ध्व जलही जल है, और कछु नहीं, तैसे परम तत्त्वविषे और विभागकल्पना कोई नहीं, शांतरूप है, जैसे समुद्रविषे द्रवताकरिकै तरंग आदिक भासते हैं, तैसे संवेदनकरिकै जगद्भ्रम भासते हैं, आत्माविषे नानाप्रकारका भ्रम भासता है, परंतु और कछु नहीं जैसे सुवर्णविषे भूषण भासते हैं, जैसे जलविषे द्रवता और वायुविषे स्पंद भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, फुरणेते रहित शांतरूप परमपद है ॥ हे रामजी ! जैसे मृत्तिकाकी सेना होती है, तिसविषे हस्ती घोड़ा पशुही होते हैं, सो सब मृत्तिकारूप हैं, इतर कछु नहीं, तैसे सब [illegible]गत् आत्मरूप है; भ्रमकरिकै नानात्व भासता है, आत्माही पूर्णरूप [illegible] आपविषे स्थित है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे ब्रह्म- [illegible]ह्म स्थित है, सत्यविषे सत्य स्थित है, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब [illegible] तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे स्वप्नविषे दूर पदार्थ अदूर [illegible] अरु अदूर दूर भासते हैं, सो भ्रममात्र है, तैसे आत्माविषे [illegible]ष्टिकरि जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! असत्य जगत् भ्रमक- [illegible]प भासता है, वस्तुते असत्यरूप है, जैसे दर्पणविषे नग- [illegible]ब होवै, जैसे मृगतृष्णाका जल होता है, जैसे आकाशमें [illegible]ा भासता है, तैसे यह जगत् आत्माविषे भासता है, जैसे [illegible]योगकरि आकाशविषे नगर भासै, तैसे यह असत्यरूप जगत् [illegible]रिकै सत्य भासता है, जबलग आत्मविचाररूपी अग्निकरि अविद्यारूपी वल्लीको तू नहीं जलावैगा, तबलग जगत्रूपी बेलि निवृत्त न होवैगी, अनेक प्रकारके सुखदुःख दिखावैगी, जब विचार करिकै मूल सहित इसको जलावैगा, तब शांतपदको प्राप्त होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे युक्तोपदेशो नाम चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

पंचनवतितमः सर्गः ९५.

चांडालीशोकवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामचंद्र! जैसे सुवर्णविषे भूषण होतेहैं, सो मिथ्या-रूप हैं, तैसे आत्माविषे अहं त्वं आदिक अविद्यारूपहैं, जो लवणकी कथा तैंने सुनी है, सो अब बहुरि सुन ॥ हे रामजी! वह जो लवण राजा था, सो दूसरे दिन विचार करने लगा कि, यह जो मुझको भ्रम भासा है; परंतु सत्यरूप होइकारि देखा है, देश नगर मनुष्य आदिक पदार्थ मुझको प्रत्यक्ष दृष्ट आये हैं; सो बहुरि जायकारि देखौं कि, कैसी वार्त्ता है? ऐसे विचारकारिकै दिग्विजय मान कारिकै मंत्री अरु सेनाको साथ, लेकारि दक्षिण दिशाकी ओर चला; देशको लंघता लंघता विंध्या बड़े पर्वतको जाय प्राप्त हुआ; पूर्व अरु दक्षिणके समुद्रके मध्यविषे अट तृण-भ्रमता भ्रमता जाय प्राप्त हुआ; जैसे आकाशकी वीथियोंविषे सूर्य शत्रुको है, तैसे राजा भ्रमता देखता भया; जो वृत्तांत अरु देश ग्राम शूरमे हैं भ्रमविषे देखे थे, सो प्रत्यक्ष देखता भया; तब विस्मयको प्राप्त यहै तिसके देव! यह क्या है, जो कछु मैं भ्रमविषे देखा था, सो अब मुझ सब तिनको भासताहै, यह बडा आश्चर्य है! ऐसे विचारिकै आगे गया उत्पत्तिप्रक-देखा कि, अग्निकारि वृक्ष जले हैं, अरु अकाल दुर्भिक्ष पड ९३ ॥ कारि जो संबंधी देखे थे, तिनकी चेष्टाके स्थान देखे, अरु सुनी इसप्रकार देखते देखते आगे गया, तो क्या देखा कि रीरकी सासु बैठी रुदन करती है, हे देव! मेरा पुत्र कहां गया तुम कहां गये? मेरी कन्या जीर्णदेह हो गई है चंद्रमाकी नाईं जिसका मुख, ऐसा राजकुमार था, अरु मृगनयनी मेरी बेटी थी; अरु दुहिता दुहितियां थीं सो दुर्भिक्षताकारि सब जाते रहे; तिनके यह खानेके पदार्थ हैं, चेष्टाके स्थान हैं, रतिकाकी माला कंठविषे डारते थे, अरु चेष्टा करते थे, जीवोंके मांस खाते थे, अरु रुधिरपान करते थे, वह कहां गये? इसते लेकारि पुत्र, पुत्री, भर्त्ता, जँवाईका नाम लेकारि रुदन करै और लोग आय बैठें, वह भी रुदन करैं, तब राजाने

उसको रुदनते छुडाई अरु वृत्तांत पूछने लगा कि, तू किसनिमित्त रुदन करती है; किससे तेरा वियोग हुआ है? ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चांडालीशोकवर्णनं नाम पंचनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमः सर्गः ९६.
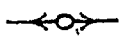
चित्ताभावप्रतिपादनम् ।

चांडाल्युवाच ॥ हे राजन् ! एक काल वर्षा होनेते रहिगई, काल पडा, जीवोंको बड़ा दुःख प्राप्त भया, सब मेरे पुत्र, अरु दुहिते, दुहितियां, जँवाई, भर्त्ता आदिक बांधव थे, सो निकस गये वह कहूं कष्टको पावत जगरिगये, उनके वियोग करिकै मैं दुःखी होइकरि रुदन करती हौं; तिन [illegible]ना मैं शून्य होगई हौं, जैसे विछुरी हुई कुंज कुम्हलाती है, तैसे मैं कुम्हलाती हौं ॥ हे रामचंद्र ! जब इसप्रकार चांडालीने कहा, तब राजा विस्मयको प्राप्त भया, अरु मंत्रीके मुखकी ओर देखने लगा, जैसे कागजके ऊपर पुतली होती हैं; तैसे राजा होगया, विचारै और आश्चर्यवान् होवै, उस चांडालीसों वारंवार पूछै, वह बहुरि कहै, और राजा आश्चर्यवान् होवै तब राजा उसको यथायोग्य धन देकरि चिरपर्यंत रहा, बहुरि अपने राजमंदिरको आता भया, जब प्रातःकाल हुआ, तब सभाविषे राजा मु[illegible]सों पूँछत भया ॥ हे मुनीश्वर ! यह स्वप्न मुझको प्रत्यक्ष कैसे [illegible] [illegible]सको देखिकारि मैं आश्चर्यवान् हुआ हौं; जब इसप्रकार राजाने [illegible] मैंने प्रश्नानुसार उसको युक्तिसों उत्तर दिया, उसके चित्तका संशय [illegible]किया, जैसे मेघको वायु दूर करै, सो तुझको कहता हौं ॥ हे राम[illegible] ! अविद्या ऐसी है; जो असत्यको शीघ्रही सत्य दिखाती है अरु [illegible]को असत्य करि दिखाती है, बडे भ्रमको दिखानेहारी है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! स्वप्न सत्य कैसे हुआ, यह मेरे चित्तविषे भारी संशय स्थित भया है, तिसको दूर करौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! [illegible]सविषे क्या आश्चर्य है ? अविद्याविषे सब कछु बनता है, स्वप्नविषे तू [illegible]त्यक्ष देख कि, घटते पट हो जाता है, अरु पटते घट हो जाता है,

स्वप्नमें अरु मृत्युविषे मूर्च्छाके अनंतर बुद्धि विपर्यय हो जाती है, वासनाकरि वेष्टित जिनका चित्त है, तिनको जैसा संवेदन फुरता है, तैसे भासता है ॥ हे रामजी ! जिनका चित्त स्वरूपते गिरा है, तिनको अविद्या अनेक भ्रम दिखाती है ॥ हे रामजी ! जैसे मद्यपान करनेवाला अरु विष पीनेवाला भ्रमको प्राप्त होता है तैसे अविद्याकरि जीव भ्रमको प्राप्त होता है; एक और राजा था, तिसको यह अवस्था प्राप्त हुई थी सो सब लवण राजाके चित्तविषे फुर आई, जैसे उसकी चेष्टा हुई थी तैसे इसको फुरि आई, तब जानता भया कि, मैंने यह क्रिया करी है जैसे अभोक्ता पुरुष आपको स्वप्नविषे भोक्ता देखता है कि, मैं राजा हुआ हौं, अरु तृप्त हौं, अरु भूखा सोयाहौं अरु सोया तौ अकर्त्तारूप अरु आपको कर्त्ता देखता है कि, यह क्रिया मैंने करी है; स्वप्नविषे जैसे देशांतर को जावै, तब अचलरूपही चलता भासता है, तैसे लवणको फुरि आया, सो प्रतिमा भासमात्र है, सभाविषे बैठे चांडालीके [illegible] लवणको फुरि आई, अथवा विंध्याचल पर्वतके चांडालोंको [illegible] प्रतिमा फुरी, लवणके चित्तका भ्रम उनको दृढ हो गया है, [illegible] सदृश भ्रम अनेकको फुरि आता है, स्वप्न सदृश होता [illegible] जेवरीविषे अनेकको सर्प भासता है, इसी प्रकार अने[illegible] एक भ्रम अनेक हो भासता है ॥ हे रामजी ! जेते कछु प[illegible] हैं, तिनकी सत्तारूप संवेदन है, जैसे तिसविषे संकल्प [illegible] तैसे होइकरि भासता है, जो पदार्थ सत्यरूप होइ भासता [illegible] होता है, अरु असत्यरूप हो भासता है, सो असत्य हो जा[illegible] ही पदार्थ संवेदनरूपहैं, तीनोंकाल संवेदनकरि उपजेहैं, इनका [illegible]सका है, सब पदार्थ अविद्यारूपहैं, अरु जैसे रेतीविषे तेल है, तैसे [illegible] अविद्याहै, आत्माको अविद्याका संबंध कदाचित् नहीं, काहेते [illegible] संबंध तिसका होता है, जो समरूप होता है, जैसे काष्ठ अरु ल[illegible] संबंध होता है, सो आकारसहित है, जो आकारते रहित होवै, तिसका संबंध कैसे होवै ? जैसे प्रकाश अरु तमका संबंध नहीं होता, चेतनके साथ चेतनका संबंध होता है, सो सजातीयरूपका संबंध होता है, बिजातीयका संबन्ध नहीं होता; ताते अविद्यारूप देहका आत्माके साथ

[illegible]शत्रुको [illegible] शूरमे हैं, [illegible] तिसको [illegible]ब तिनको [illegible]त्पत्तिप्रक- [illegible] ॥ [illegible]हिता [illegible]ता [illegible]रू-

संबंध नहीं, जो जड़के साथ आत्माका संबंध होवै तो आत्मा जड़ होवै, सो तौ आत्मा सदा चेतनरूप है, सर्वदा अनुभवकरिकै प्रकाशता है, तिसको जड़ कैसे कहिये ? जैसे स्वादको जिह्वा ग्रहण करती है, और अंग नहीं करते, तैसे चेतनके साथ चेतनकी, जडके साथ जडकी, जलके साथ जलकी, माटीकेसाथ माटीकी, अग्निकेसाथ अग्निकी, प्रकाशकेसाथ प्रकाशकी, तमकेसाथ तमकी, इसीप्रकार सर्व पदार्थोंकी सजातीयके साथ एकता होती है, विजातीयकी नहीं होती, ताते सब चैतन्याकाश है, और पाषाणादिक दृश्यवर्ग कोऊ नहीं भ्रमकरिकै इनके आकार भानरूप भासते हैं, जैसे स्वर्णबुद्धिको त्यागिकरि नानाकारके भूषण भासते हैं, तैसे जब अहंवेदना आत्माविषे फुरती है, जग अनेकरूप होइकरि विश्व भासता है॥ जैसे सुवर्णकी ओर देखिये तब ...नी स्वर्णरूप भासते हैं, तैसे जब ब्रह्मसत्ताकी ओर देखिये तब कुम्हल...तत् ब्रह्मरूप भासता है, जैसे मृत्तिकाकी सेना बालकको अनेक-विस्मय...ती है, अरु बुद्धिमान्का एक मृत्तिकारूप है, तैसे अज्ञानीको जके ऊपर नानारूप भासता है, ज्ञानवान्को एक ब्रह्मसत्ताही भासती है, होवै, उस ब्रह्म है, जो द्रष्टा दर्शन दृश्य, जिसविषे फुरे हैं, इनके वान् होवै ...नते रहित जो सत्ता है, सो ब्रह्मसत्ता है ॥ हे रामचंद्र ! अपने राज... जड़रूप है, अरु शिलाके कोशवत् निर्विकल्प है, तन्मयरूप राजा ...स जब स्थित होवै, जब समाधिविषे रहै, अथवा उत्पत्ति न ...स... तुझको सब वही रूप भासैगा॥ हे रामचंद्र ! जो पुरुष निर्मन स्थित भया है, सो शरीरके इष्टविषे हर्षवान् नहीं होता, अरु संशय ... शोकवान् नहीं होता, निर्मनरूप होइकारि स्थित होता है, रामजी ...वत् नगरविषे जीव वसते हैं, अरु अनेक चिंताकरि संयुक्त सत्यत हैं, सो सब तिसके चित्तविषे स्थित होते हैं, जैसे पुरुष देशांतरको जाते हैं, ताको अनेक पदार्थ मार्गविषे इष्ट अनिष्टरूप भासते हैं, परंतु जहां जाना है, तिसकी ओर वृत्ति रहती है, मार्गके पदार्थोंविषे उनको राग द्वेष नहीं होता, तैसे तू हो जा, जैसे पत्थरसों जल नहीं निकसता, तैसे जलसों अग्नि नहीं निकसता, तैसे आत्माविषे चित्त नहीं, अविचार

भ्रमकरिकै चित्त जानता है, विचारकरिकै नहीं पाता, जैसे भ्रमकरिकै आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे आत्माविषे चित्त भासता है, वास्तवते कछु नहीं, सो सत्ता नित्य शुद्ध परमानंदस्वरूप अपने आपविषे स्थित अनुभवरूप है, तिसके विस्मरणकरिकै दुःखको प्राप्त होता है, सो महामूर्ख है, तिसको अमृतरूपी चंद्रमाविषे अग्नि प्राप्त होता है, ताते ॥ हे रामचंद्र! तू सावधान होउ, यह जो फुरणा उठती है, इसीका नाम चित्त है, और तौ चित्त कोऊ नहीं, इस चित्तको दूरते त्याग करौ, जो तू है, सोई स्थित है॥ हे रामचंद्र! असत्यरूप चित्तही संसार है, तिसको असत्य जानिकै त्याग नहीं करता है, सो आकाशके वनविषे विचरता है; तिसको धिक्कार है, अरु जिसका मननभाव नष्ट हुआ है, सो महापुरुष संसारके पारको प्राप्त हुए हैं, परमपद निश्चितरूप हैं॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्ताभावप्रतिपादनं नाम षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥

सप्तनवतितमः सर्गः ९७.

परमार्थनिरूपणम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह पुरुष भूमिकाको जैसे प्राप्त होता है तिसका क्रम सुन; प्रथम जन्मते पुरुषको कछुक बोध होता है, बहुरि क्रमकरिकै बड़ा होकरि संतोंकी संगति करता है, सदा दृश्यरूप जो संसारका प्रवाह है, तिसके तरनेको सत्य शास्त्र अरु संतजनोंकी संगतिविना समर्थ नहीं होता, जब संतोंका संग अरु सच्छास्त्रोंका विचार करणे लगता है, तब इसको ग्रहण अरु त्यागकी बुद्धि उपजती है कि, यह कर्तव्यहै, अरु यह त्यागने योग्य है; यह विचार उपजता है इसका नाम शुभेच्छा है, जब यह इच्छा हुई, तब शास्त्रद्वारा इसको विचार उपजता है कि, यह शुभ है, अरु यह अशुभ है; शुभको ग्रहण करना, अशुभका त्याग करना; यथाशास्त्र विचरना इसका नाम विचार है, जब सम्यक् विचार दृढ होता है, तब मिथ्यारूप संसारकी वासना त्यागता है, अरु सत्यविषे

स्थित होता है, इसका नाम तनुमानसा है, जब संसारकी वासना क्षीण होती है, अरु सत्यका दृढ़ अभ्यास होता है, तब तिस वैराग्य अरु अभ्यास करि सम्यक् ज्ञान उपजता है, आत्माका साक्षात्कार होता है, तिसका नाम सत्त्वापत्ति है, मनते वासना नष्ट हो जाती है अरु तिस-करि सिद्धि आदिक पदार्थ प्राप्त होते हैं, तिनकी प्राप्तिविषे भी संसक्ति नहीं होती, स्वरूपविषे सदा सावधान रहता है, सिद्धि आदिक पदार्थ प्रारब्धकरि प्राप्त होते हैं, तिनको स्वप्नरूप जानता है और कर्मोंके फल विषे बंधमान नहीं होता, इसका नाम असंसक्ति है; इसके अनंतर मनकी तनुता हो गई, अरु स्वरूपकी ओर चित्तका परिणाम होता है, तब दृढ़ परिणाम करिकै व्यवहारका भी अभाव हो जाता है, जो पलपलविषे कर्म करना, अथवा प्रारब्धवेगकरि करता है; परंतु उसके चित्तविषे फुरणा कछु नहीं फुरती, मन क्षीणभावको प्राप्त होता है, कर्ता हुआ भी वह कछु करता नहीं, देखता है तौ भी नहीं देखता, अर्ध सुषुप्त-वत् होता है, कर्तव्यकी भावना नहीं फुरती, मन नहीं फुरता, इसका नाम पदार्थाभाविनी योगभूमिका है, इसविषे चित्त लीन हो जाता है, इस अवस्थाविषे जो अभ्यास होता है, सो स्वाभाविक चित्तका जब केतिक काल इस अभ्यासविषे व्यतीत होता है; अरु अंतरते पदार्थोंका अभाव दृढ होता है, तब तुरीयारूप होता है, तब जीवन्मुक्त कहाताहै, इष्टको पायके हर्षवान् नहीं होता, अरु तिसकी निवृत्तिविषे शोकवान् नहीं होता, केवल विगतसंदेह होता है, सो उत्तम पदको प्राप्त होता है ॥ हे रामचंद्र! तू भी अब ज्ञातज्ञेय हुआ है, जो कछु जानने योग्य है, सो तुझने ज्योंका त्यों जाना है, सब पदार्थोंकी भावना तेरी तनु-ताको प्राप्त भई है, अब तेरे साथ शरीर रहै अथवा न रहै, हर्षशोकते रहित तू निरामय आत्मा हैं, तू स्वच्छ आत्मतत्त्वविषे स्थित है, सर्वगत सदा उद्योतरूप है, जन्म मरण जरा सुख दुःखते रहित तू आ-त्मरूप है, बोधरूप शोकते रहित है, तू अद्वैतरूप अपने आपविषे स्थित है, देह उदय भी होता है, अरु लीन भी हो जाता है, देश काल वस्तुके भेदते रहित जो आत्मा है, सो उदय अरु अस्त कैसे होवे ? हे रामचंद्र ! तू अविनाशी है, आपको नाशरूप जानिकरि शोक काहेको

करता है, तू अमृत स्वच्छरूप है, जैसे घटके फुरणेकरि घटाकाश नाश नहीं होता, तैसे शरीरके नाश हुएते तू नाश नहीं होता; जैसे सूर्यकी किरणोंके जानेते मृगतृष्णाके जलका नाश हो जाता है, कछु किरणैं नाश नहीं होतीं, तैसे हे रामचंद्र ! जेते कछु जगत्के पदार्थ भासते हैं, सो असत्यरूप हैं, तिनकी वासना भ्रांति करिकै होतीहै, तू तौ अद्वैतरूप है, यह सब तेरी छायामात्र है, तू किसकी वांछा करता है, शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये जो पाँचों विषयरूप दृश्य हैं, सो तुझते भिन्न रंचकमात्र भी नहीं, सब तेरा स्वरूप है, तू भ्रमको मत प्राप्त होहु ॥ हे रामजी ! सर्वशक्ति आत्मा है, सोई आभास करिकै अनेकरूप करिकै भासता है, जैसे आकाशविषे शून्यता शक्ति है, सो आकाशते भिन्न नहीं, तैसे आत्माविषे सर्वशक्ति है, जो जगत् द्वैतरूप होइकरि भासता है, सोई चित्त करिकै दृढ हुआ है, सो तीन प्रकारके क्रमकरि त्रय लोक जगत् जीवको भ्रम हुआ है, एक सात्त्विक, एक राजस, एक तामस, जब इन तीनोंको उपशम होवै, तब कल्याण होता है, जब वासना क्षय होवै, तब तिसके कर्म क्षय हो जाते हैं, तिसकरि भी भ्रम नाश हो जाता है, चित्तके संसरणेका नाम वासना है, सो कर्म संसार मायामात्र है, इसके नष्ट हुएते सब शांत हो जाता है ॥ हे रामजी ! यह संसार घटीयंत्रकी नाईं है, जीवरूपी टीडी वासनारूपी रस्सीके साथ बँधी हुई भ्रमती है, तू आत्म विचाररूपी शस्त्रकरिकै यत्नसों इसको काट, अरु अविद्याको जबलग जानता नहीं, तबलग यह बड़े मोहभ्रमको दिखाती है; अरु जब इसको जानताहै, तब बड़े सुखको प्राप्त करती है, अर्थ यह कि जबलग अविद्याको वस्तुते नहीं जानता कि, क्या है ? तबलग संसार सत्य भासता है तिसविषे अनेक भ्रम भासते हैं, जब इसको स्वरूपते जाना कि, वस्तु कछु नहीं, भ्रमरूप है, तब संसारवृत्तिको त्याग करता है अरु स्वरूपको प्राप्त होता है, यह संसार भ्रमते उपजा है, अरु उसीकरि भोग भोगता है, लीला करताहै, बहुरि ब्रह्महीविषे लीन हो जाता है ॥ हे रामचंद्र ! शिवतत्त्व जो है; सो अनंतरूप है, अरु अप्रमेय निर्दुःखरूप है, सब भूततत्त्वते उपजते हैं, जैसे जलते तरंग अरु अग्निते उष्णता होती है, तैसे ब्रह्मते जगत् होता है, अरु तिसविषे स्थित है सो वही रूप है, सो सबका आत्मा है, आत्माही ब्रह्मकरि कहाता है; तिसके जाननेते जगत् जानता है,

अरु तीनों लोकोंको जाननेते उसको नहीं जानता अच्युत निर्वाणरूप है, तिसके जाननेनिमित्त शास्त्रकारोंने ब्रह्म आत्मा आदिक नाम कल्पे हैं, वास्तवते नामसंज्ञा कोऊ नहीं ॥ हे रामचंद्र ! जो पुरुष रागद्वेषते रहित है, इंद्रियों अरु विषयोंके संयोगवियोगविषे द्वेषको नहीं प्राप्तहोता जो एक चेतन शुद्ध सवित् अनुभवरूप है, अविनाशी अरु आकाशते भी स्वच्छ निर्मल है, तिसविषे जगत् ऐसे स्थित है, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब होता है, अन्तर्बाह्यरूप होइकारि स्थित है, ऐसे जो जानता है, तौ लोभ मोहादिकते भिन्न नहीं, अरु बोध आत्माते व्यतिरेक नहीं, वही रूप है, ताते द्वैतरूप कछु नहीं ॥ हे रामचंद्र ! देहते रहित निर्विकल्प चेतन तेरा आकार है, लज्जा मोह आदिक विकार तुझको कहां है, तू आदिरूप है, लज्जा हर्ष भय आदिक असत्यरूप हैं, तू क्यों दुर्बुद्धि मूर्खकी नाईं विकल्प जालको प्राप्त होता है, तू चेतन आत्मा अखंडरूप है; देहके खंडित हुएते आत्माका अभाव नहीं होता, असम्यक्दर्शी भी ऐसे मानते हैं, तो बोधवानोंकी क्या कहानी है? हे रामचद्र! चित्तसंवेदन जो जानता है, तिसके अनुभव करनेवाली जो सत्ता है जो सूर्यके मार्ग कारिकै भी नहीं रोकी जाती, तिसको तू चित्तसत्ता जान, सोई पुरुष है, शरीर पुरुषरूप नहीं ॥ हे रामचंद्र ! शरीर सत्य होवै अथवा असत्य होवै, पुरुष तौ शरीर नहीं, देहके रहने अरु नष्ट होनेकारि आत्मा ज्योंका त्योंही है; अरु यह जो सुखदुःखको ग्रहण करते हैं, सो देह इंद्रियादिक चिदात्माको नहीं ग्रहण करते, जिन पुरुषोंका अज्ञानकारिकै देहविषे अभिमान हुआ है, तिनको सुखदुःखका अभिमान होता है; ज्ञानवान्को नहीं होता, आत्माको दुःख स्पर्श नहीं करता, सब विकारोंते रहित है, मनके मार्गते अतीत शून्यकी नाईं स्थित है, तिसको सुख दुःख कैसे होवैं ? अरु देहसाथ मिला हुआ भासता है, सो स्वरूपको त्यागिकारि दृश्यके चेतनेकारि देहादिक भ्रम भासते हैं, अरु वासनाके अनुसार देहके साथ संबंध होता है, जैसे भ्रमर अरु कमलोंका संयोग होता है, सो देहपिंजरेके नाश हुएते आत्माका नाश तौ नहीं होता; जैसे कमलके नाश हुएते भ्रमरका नाश नहीं होता ताते तू क्यों वृथा शोक करता है ॥ हे रामजी ! जगत्को

असत्य जानिकरि अभावना करै, मन निरिच्छित हो; साक्षीभूत सम स्वच्छ निर्विकल्प चिदात्माविषे जगत् होइ भासताहै, जैसे मणि प्रकाशरूप होइ भासता है, बहुरि जगत् अरु आत्माका संबंध कैसे होवै ? जैसे अनिश्चित दर्पणविषे प्रतिबिंब आय प्राप्त होता है, तैसे आत्माको जगत्का संबंध भासता है ॥ जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब द्वैतरूप होता है, तैसे आत्माविषे जगत्भेद भी अभेदरूप है, जैसे सूर्यके उदयकरि सब जीवोंकी क्रिया होती है, जैसे दीपककरिकै पदार्थोंका ग्रहण होता है, तैसे आत्मसत्ताकरि, जगत् पदार्थका अनुभव होता है, यह जगत् चैतन्य तत्त्वके स्वभावतें उपजा है, प्रथम आत्माते मन उपजा है, तिस मनकरि यह जगज्जाल रचा है, वास्तवते आत्मसत्ताविषे आत्मसत्ता स्थित है; जैसे शून्याकाश शून्यताविषे स्थित है, तिसविषे जगत् भासा है; सो ऐसे है, जैसे आकाशविषे नीलता; इंद्रधनुष भासता है; सो नानारूप होता है; परंतु स्वरूपते शून्य है, हुआ तौ कछु नहीं, तैसे यह जगत् कछु हुआ नहीं ॥ हे रामचंद्र ! यह जगत् चित्तविषे स्थित है; सो चित्त संकल्परूप है, जब संकल्प क्षय होता है, तब चित्त नष्ट हो जाता है, जब चित्त नष्ट हुआ तब संसाररूपी कुहिड नष्ट हो जाती है, निर्मल शरत्कालके आकाशवत् आत्मसत्ता प्रकाशती है. सो चेतनमात्र सत्ता एक अज आदि अन्त मध्यते रहित है, तिसते स्पंद फुरा है; सो संकल्परूप ब्रह्मा होकरि स्थित भया है, तिसते आगे नानाप्रकारका जगत् रचा है, सो जगत् शून्यरूप है, मूर्ख बालकको सत्यरूप भासता है, जैसे बालकको परछाईंविषे वैताल भासता है, जैसे जीवोंको अज्ञानकरि देहाभिमान होता है, असत्यरूपही सत्य होइकरि भासता है, जब सम्यक् ज्ञान होता है, तब लीन हो जाता है, अपने आपते उपजिकरि लीन हो जाता है. जैसे समुद्रते तरंग उपजिकरि समुद्रविषे लीन होता है; तैसे आत्माविषे जगत् उपजिकरि आत्माविषे लीन होता है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे आर्षे महारामायणे शतसाहस्र्यां संहितायामुत्पत्तिप्रकरणे मोक्षोपाये परमार्थनिरूपणं नाम सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे तृतीयमुत्पत्तिप्रकरणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

॥ ॐ सच्चिदानन्दाय नमः ॥

अथ श्रीयोगवासिष्ठे चतुर्थं स्थितिप्रकरणम् ४.

प्रथमः सर्गः १.

जगन्निराकरणवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अब स्थितिप्रकरण श्रवण कर, जिसके सुननेते जगत् निर्वाणताको प्राप्त होवै; कैसा है, जगत्? अहंता है आदि जिसके ऐसा जो दृश्यरूप जगत् है, सो भ्रांतिमात्र है, जैसे आकाशविषे नानाप्रकारके रंगसहित इंद्रधनुष भासता है, सो असत्‌रूप है; तैसे यह जगत् है, जैसे द्रष्टाविना अनुभव होता है, अरु जैसे निद्राविना स्वप्न भासता है, जैसे भविष्यत् नगर चित्तके फुरणेकरि भासताहै, तैसे भ्रमकरिकै जगत् चित्तविषे स्थित हुआ है, जैसे वानर रतिकाको इकट्ठी करि अग्निकी कल्पना करते हैं, सो तिसकरि शीत निवृत्त नहीं होता, भावनामात्र अग्नि होता है, तैसे यह जगत् भावनामात्र है, जैसे आकाशविषे रत्नमणिका प्रकाश अरु गंधर्वनगर भासता है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है, तैसे यह जगत् असत्‌रूप भ्रमकरिकै सत्‌रूप हो भासता है, जैसे संकल्प दृढ अनुभवकरिकै भासता है, तौ भी असत्‌रूप है, जैसे कथाके अर्थ चित्तविषे भासते हैं, तैसे निःसाररूप जगत् चित्तविषे साररूप हो भासता है, जैसे स्वप्नविषे पहाड, नदियां भास आती हैं, तैसे सब बडे भूत भी भासते हैं, तौ भी आकाशवत् शून्यरूप हैं, जैसे स्वप्नविषे अंगनाके साथ प्रेम करताहै, सो अर्थते रहित असत्‌रूप है, जैसे मूर्तिके लिखे अग्नि सूर्य होते हैं, परंतु तिनते अर्थ सिद्ध कछु नहीं होता तैसे यह जगत् भी प्रत्यक्ष भासता है; परंतु वास्तव कछु नहीं, अर्थते रहित है, जैसे चित्रकी लिखी कमलिनी सुगंधते रहित होती है, तैसे यह जगत् शून्यरूप है, जैसे आकाशविषे इंद्रधनुष भासता है, जैसे केलेका स्तंभ सुंदर भासताहै; परंतु तिसविषे सार कछु नहीं निकसता; तैसे यह जगत् देखनेमात्र रमणीय भासता है, परंतु अत्यत अस-

तरूप है, इसविषे सार कछु नहीं निकसता, प्रत्यक्ष देखनेविषे अनुभव होता है, परंतु मृगतृष्णाकी नदीवत् असतरूप है; है कछु नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्व संशयके नाशकर्त्ता ! जब महाकल्पक्षय होता है, तब दृश्यमान जगत् सब आत्मरूप बीजविषे जाय लीन होता है; जैसे बीजविषे अंकुर रहता है, बहुरि तिसते उपजता है, तिसकरि स्थित होताहै, बहुरि तिसीविषे लीन होता है, यह जो बुद्धि है, सो ज्ञानकी है, किंवा अज्ञानकी है ? याते सर्व संशयोंके निवृत्तिके अर्थ मुझको स्पष्ट करिके कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार महाकल्पके क्षय हुए बीजरूप आत्माविषे जगत् स्थित होता है, ऐसे कहते हैं, सो परम अज्ञानी हैं, वे महामूर्ख बालक हैं, जो ब्रह्मको जगत्का कारण बीजते अंकुरकी नाईं कहते हैं, सो मूर्खका कहना है, बीज तौ दृश्यरूप इंद्रियहूका विषय होता है, जैसे वटबीजते अंकुर होता है, बहुरि विस्तारको पाता है, सो इंद्रियहूका विषय है, अरु जो मनसहित षट् इंद्रियते अतीत है, अर्थ यह जो इंद्रियहूँका विषय नहीं, आकाशते भी अधिक निर्मल है, तिसको जगत्का बीज कैसे कहिये ? आकाशते भी अधिक सूक्ष्म परम उत्तम अनुभवकारि उपलब्ध है, नित्य प्राप्त है तिसको बीज भाव कहना नहीं बनता ॥ हे रामजी ! जो शांत सूक्ष्म सदा प्रकाशसत्ता है, अरु दृश्य जगत् जिसविषे असतरूप है, तिसको बीजरूप कैसे कहिये ? जो बीजरूप कहना नहीं बनता तब तिसते जगत् कैसे कहिये ? आकाशते अधिक सूक्ष्म निर्मल परमपदविषे सुमेरु समुद्र आकाश आदिक जगत् नहीं बनता, जो किंचन अरु अकिंचन है, निराकार सूक्ष्मकी नाईं सत्ता है, तिसविषे विद्यमान जगत् कैसे होवै ? महासूक्ष्मरूप है, दृश्य तिसविषे विरुद्धरूप है जैसे धूपविषे छाया नहीं, जैसे सूर्यविषे अंधकार नहीं, जैसे अग्निविषे बर्फ नहीं, जैसे अणुविषे सुमेरु नहीं होता, तैसे आत्माविषे जगत् नहीं होता, सत्यरूप आत्माविषे असत्यरूप जगत् कैसे होवै ? वटका बीज भी साकाररूप होताहै, अरु निराकाररूप आत्माविषे साकाररूप जगत् होना अयुक्त है, ॥ हे रामजी ! कारण दो प्रकारका होता है, एक समवायिकारण, दूसरा निमित्तकारणहै; सो आत्मा दोनों

कारणभावते रहित है, निमित्तकारण तब होताहै, जब कार्यते कर्ता भिन्न होता है; आत्मा अद्वैत है, तिसते निकट दूसरी वस्तु है ही नहीं, कर्त्ता कैसे होवै, अरु किसका होवै ? सहकारी भी नहीं, जिसकरि कार्यको करै मन अरु इंद्रियहूते रहित निराकार अविकृतरूप है, अरु समवायिकारण भी परिणामकरिकै होता है, जैसे वटबीज परिणामकरि वृक्ष होता है, सो आत्मा अच्युतरूप है, परिणामको कदाचित् प्राप्त नहीं होता, समवायिकारण कैसे होवै ? अस्ति, जायते, वर्धते, विपरिणमते, क्षीयते, नश्यति, इन षट् विकारहूते रहित निर्विकार आत्मा जगत्का कारण कैसे होवै ? ताते यह जगत् अकारणरूप भ्रांतिकरिकै भासता है, जैसे आकाशविषे नीलता अरु सीपीविषे रूपा भासता है, जैसे निद्रादोषकरिकै स्वप्नदृष्टि भासती है, तैसे यह जगत् भ्रांतिकरिकै भासता है, जब स्वरूपविषे जागै तब जगद्भ्रम मिटि जाता है, ताते कारण कार्य भ्रमको त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, दुर्बोधकरि संकल्परचना हुई है, तिसको त्यागिकरि आदि मध्य अरु अंतते रहित जो सत्ता है, तिसविषे स्थित होहु, तब जगद्भ्रम मिटि जावै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जगन्निराकरणवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २.

स्मृतिबीजोपन्यासः ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे देवताविषे श्रेष्ठ रामजी ! बीजते अंकुरवत् आत्माते जगत्का होना अंगीकार करिये तौ नहीं बनता, आत्मा सर्व कल्पनाते रहित महाचैतन्य निर्मल आकाशवत् है, तिसको जगत्का बीज कैसे मानिये ? बीज परिणामकरि अंकुर होता है, अरु कारण समवायिकरि होता है, आत्माविषे समवायि अरु निमित्त सहकारी कदाचित् नहीं बनते, जैसे वंध्यास्त्रीका संतान किसीने नहीं देखा, तैसे आत्माते जगत् नहीं होता, जो समवायि अरु निमित्तकारणविना सहकारी पदार्थ भासै, तौ जानिये कि, यह है नहीं, भ्रांतिमात्र भासता है, आत्मसत्ता

अपने आपविषे स्थित हैं, सृष्टि स्थिति प्रलय करिकै ब्रह्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, जो इसप्रकार स्थित है, तौ कारणकार्यका क्रम कैसे होवै ? जो कारणकार्यका भाव न हुआ तौ पृथ्वी आदिक भूत कहांते उपजैं ? कहूं हैं भी नहीं, अरु जो कारण कार्य मानिये तौ पूर्व जो विकार कहे हैं; तिनका दूषण आता है; ताते न कोऊ कारण है; न कार्य है; कारणकार्यविना जो पदार्थ भासै तिसको सत्‌रूप जानै सो मूर्ख बालक है, वह विवेकते रहित है, ताते वह जगत् न आगे था; न अब है; न पाछे होवैगा स्वच्छ चिदाकाशसत्ता अपने आपविषे स्थित है; जब जगत्‌का अत्यन्तभाव होता है; तब संपूर्ण ब्रह्महीं दृष्टि आता है; जैसे समुद्रविषे तरंग भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, अन्यथा कारणकार्यभाव कोऊ नहीं, प्रागभाव अरु प्रध्वंसाभाव अन्योन्याभाव कोऊ नहीं. प्रागभाव कहिये जो प्रथम न था, जैसे प्रथम पुत्र नहीं होता; अरु पाछे उत्पन्न होता है, जैसे मृत्तिकासों घट उत्पन्न होता है; अरु प्रध्वंसाभाव वह है, जो प्रथम होकारि नष्ट हो जाता है; जैसे घट था, अरु नष्ट हो गया; अरु अन्योन्याभाव कहिये जैसे घटविषे पटका अभाव हैं अरु पटविषे घटका अभाव है, यह तीन प्रकारका अभाव जिसके हृदय विषे है, तिसकारि जगत् दृढ होता है; उसको शांति नहीं प्राप्त होती जब जगत्‌का अत्यंताभाव दीखता है; तब चित्त शांतिमान् होता है, सो जगत्‌के अत्यंताभावका इस युक्तिविना और उपाय कोई नहीं अरु अशेष जगत्‌की निवृत्तिविना मुक्ति नहीं होती, सूर्यते आदि लेकरि जितना कछु प्रकाश है, अरु पृथ्वी आदिक तत्त्व हैं, अरु क्षण वर्ष कल्प आदिक जो काल है, यह मैं हौं, यह और है, अरु रूप अलोक मन संस्कार इत्यादिक जगत् सब संकल्पमात्र है, कल्प अरु कल्पक ब्रह्मांड अरु ब्रह्मा अरु विष्णु रुद्र इंद्र कीटते आदि लेकरि जेता कछु जगज्जाल है, सो उपज उपज अंतर्धान हो जाता है, महाचैतन्य परम आकाशविषे अनंत वृत्ति उठती हैं, जैसे जगत्‌के पूर्व शांत सत्ता थी, तैसे तू अब भी जान, अपर कछु हुआ नहीं, परमाणुका सहस्रांश होवै तिसकी नाईं सूक्ष्म चित्तकला है, तिस चित्तकलाविषे अनंत कोटि सृष्टिय

स्थित हैं, वही चित्तसत्ता फुरनेकारि जगत्रूप हो भासती है, अरु प्रकाशरूप है, निराकार शांतरूप हैं, न उदय होता है, न अस्त होताहै, न आता है, न जाता है, जैसे शिलाविषे रेखा होती है; तैसे आत्माविषे जगत् है; जैसे आकाशविषे आकाशसत्ता फुरती है, तैसे आत्माविषे जगत् फुरता है, अरु आत्माहीविषे जगत् स्थित है, निराकार निर्विकाररूप विज्ञानघनसत्ता अपने आपविषे स्थित हैं, उदय अरु अस्तते रहित विस्तृतरूप है ॥ हे रामजी! जो सहकारी कारण कोऊ न हुआ, तौ जगत् शून्य हुआ, क्योंकि ऐसे जाननेते सर्व कलंककलना शांत हो जाती है, दीर्घ निद्राविषे सोया है, तिसका अभावकरिकै ज्ञानभूमिकाको प्राप्त होहु, जागेते निःशोकपद प्राप्त होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे स्मृतिबीजोपन्यासो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ।

जगदनंतवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन्! महाप्रलयके अंतविषे अरु सृष्टिके आदिविषे जो प्रजापति होता है, सो जगत्को पूर्वकी स्मृतिकरिकै तिसी भांति रचता है, तौ जगत् स्मृतिरूप क्यों न होवै? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! महाप्रलयके आदिविषे जो प्रजापति होता है, अरु वह स्मरणकरिकै पूर्वकी नाई जगत्को रचता है, ऐसे मानिये तौ नहीं बनता, काहेते कि, महाप्रलयविषे प्रजापति कहां रहता है, जो आपही न रहै, तिसकी स्मृति कैसी मानिये? जैसे आकाशविषे वृक्ष नहीं होता, तैसे महाप्रलयविषे प्रजापति नहीं होता ॥ राम उवाच ॥ हे ब्रह्मण्य! जगतके आदिविषे जो ब्रह्मा था, अरु तिसने जगत्को रचा था, महाप्रलयविषे तिसकी स्मृतिका नाश तौ नहीं होता, सुषुप्तिते उठेकी नाईं बहुरि स्मृतिकरि जगत्को रचताहै, तौ बनताहै, तुम कैसे कहते हौ कि, नहीं बनता? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे शुभव्रत रामजी! महाप्रलयके पूर्व जो ब्रह्मादिक होते हैं, सो महाप्रलयविषे सब निर्वाण हो जाते हैं. अर्थ यह कि, विदेह

मुक्त होते हैं, ब्रह्मतत्त्वविषे लीन होते हैं, जो स्मृति करनेवाले अंतर्धान हो गये तौ स्मृति कहां रही, जो स्मृति निर्मूल भई, तौ तिसको जगत्का कारण कैसे कहिये ? महाप्रलय तिसका नाम है, जहां सर्व शब्द अर्थसहित निर्मूल हो जाते हैं, जहां सर्व अंतर्धान हो गये तहां स्मृति किसकी कहिये ? जो स्मृतिका अभाव भया, तौ कारण किसका किसकी नाईं कहिये ? ताते सर्व जगत् चित्तके फुरनेमात्र है, जब महाप्रलय होता है, तब सब यत्न-विना मोक्षभागी होते हैं, जो आत्मज्ञान होवे तौ जगत्के होते भी मोक्ष-भागी होते हैं, अरु जो आत्मज्ञान नहीं होवे तौ जगत् दृढ होता है, निवृत्त नहीं होता, जब दृश्य जगत्का अभाव होवै, तब स्वच्छ चैतन्य सत्ता प्रकाशती है, सो आदि अंतते रहित है, जगत् भी सब वहीरूप भासता है, अनादिसिद्ध ब्रह्मतत्त्वही प्रकाशता है तिसविषे जो, आदि संवेदन फुरता है, सो [illegible]प है, अंतवाहक देह विराट् जगत् हो भासता है, तिसका एक परम[illegible] है, यह तीनों जगत् हैं, तिसविषे देश, काल, क्रिया, द्रव्य, दिन, रात्रि [illegible] हुआ है, बहुरि तिसके अणुविषे जगत् पडे फुरतेहैं, सो क्या है ? सब संकल्परूप है, ब्रह्मसत्ताका प्रकाश है, जो प्रबुद्ध आत्मज्ञानी है, तिसको सब जगत् एक ब्रह्मरूप हो भासता है, अरु जो अज्ञानी है, तिसके चित्तविषे अनेक प्रकार जगत्की भावना होती है; द्वैतभावनाकरिकै वह पड़ा भ्रमता है, जैसे इस ब्रह्मांडके अनेक जीव परमाणु हैं, तिनके अंतर अनंत सृष्टियाँ हैं, तिनके अंतर और अनंत स्रष्टा हैं, तैसे और जो अनंत स्रष्टा हैं, तिनके अंतर और अनंत सृष्टियाँ फुरती हैं, सो ब्रह्मतत्त्वका प्रकाश है, जैसे बडे स्तंभविषे अनेक पुतलियाँ शिल्पी कल्पै तिसके अंतर और अनेक पुतलियाँ कल्पै, तिनके अंतर और अनेक पुतलियाँ होवैं तैसे परमाणुपरमाणुके अंतर त्रिलोकी स्थितहै, सो अभिन्नरूप है और कछु हुआ नहीं जैसे पहा-डके अंतर्गत असंख्य परमाणु होते हैं, सो तिसकेसाथ अभिन्नरूप हैं, तैसे ब्रह्मरूपी महासुमेरु है, तिसके अंतर अनेक जगत्रूपी परमाणु हैं, सो अभिन्नरूप हैं ॥ हे रामजी ! सूर्यहूकी किरणका समूह होवै तिनविषे सूक्ष्म त्रसरेणु होते हैं; तिनकी संख्या करनेको कोऊ समर्थ भी होवै; परंतु आदि

अंतते रहित जो आत्मरूपी सूर्य है तिसके त्रिलोकरूपी परमाणुकी संख्या करनेको कोऊ समर्थ नहीं; जैसे समुद्रविषे जलते परमाणु होते हैं, जैसे पृथ्वीविषे धूरके परमाणु होते हैं, सो असंख्य हैं तैसे आत्माविषे असंख्य परमाणु सृष्टियाँ हैं, जैसे आकाश शून्यरूप है तैसे आत्मा चिदाकाश जगत्‌रूप है; यह जो मैंने उसको सृष्टि कही है, जो इनको तू जगत् शब्दकरि जानैगा, तौ अज्ञानबुद्धि है अरु दुःख भ्रमको देखैगा, अरु जो इनको ब्रह्मशब्दका अर्थकरि जानैगा तौ इस बुद्धिकरि परमसारको प्राप्त होवैगा; सर्व विश्व ब्रह्मते फुरता है, अरु विज्ञानघन ब्रह्मरूप हैं और द्वैत कछु हुआ नहीं, जब जागैगा तब तुझको ऐसेही भासैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जगदनंतवर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४.

अंकुरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इंद्रियनका जो ग्राम है तिसके साथ युद्ध करना, तिनका जीतना सो संसाररूपी समुद्रके पार करनेको बेड़ा है. अर्थ यह कि, इंद्रियनहूको जीतना मोक्षका कारण है और किसी क्रम उपायकरि संसारसमुद्र तरा नहीं जाता, संतका संग करना, अरु सच्छास्त्रका विचारना, इसकरि जब आत्मतत्त्वका बोध होता है, तब इंद्रियनका जीतना होता है, अरु जगत्‌का अत्यंत अभाव होता है, जबलगे संसारका अत्यंत अभाव नहीं होता, तबलग आत्मबोध नहीं होता, यह मैंने तुझको क्रम कहा है, सो संसारसमुद्र तरनेका उपाय है, बहुत कहनेते क्या है ? सब कर्मका बीज मन है, मनके छेदेते सब जगत्‌का छेद होता है, जब मनरूपी बीज नष्ट होता है, तब जगत्‌रूपी अंकुर भी नष्ट हो जाता है, सर्व जगत् मनका रूप है, इसके अभावका उपाय करौ, मलिन मनते अनेक जन्मके समूह उत्पन्न होते हैं, इसके जीतनेते सर्व लोकमें जय होता है, सब जगत् मनकरिकै हुआहै, मनरहित हुएते देह भी नहीं भासता, जब मनसों दृश्यका अभाव होता है तब मन मृतक हो जाता है और उपाय कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! मन-

रूपी पिशाच है, तिसका नाश और उपाय किसीकरि नहीं होता, अनेक कल्प वीतगये हैं, अरु बीतजाँय, तब भी नाश नहीं होता, तातें जबलग दृश्यमान है, तबलग इसका उपाय करै, जगत्का अत्यंत अभाव चिंतवना अरु स्वरूप आत्माका अभ्यास करना, यह परम औषध है, इस उपायकरि मनरूपी द्रष्टा नष्ट होता है, जबलग मन नष्ट नहीं होता, तबलग मनके मोहकरि जन्ममरणको पावैगा, जब ईश्वर परमात्माकी प्रसन्नता होती है, तब मन बंधनते मुक्त होता है, संपूर्ण जगत् मनके फुर-नेकरि भासता है, जैसे आकाशविषे शून्यता भासती है, अथवा जैसे गंधर्वनगर भासता है, तैसे संपूर्ण जगत् मनविषे भासता है, जैसे पुष्पमें सुगंध रहता है, जैसे तिलमें तेल रहता है, जैसे गुणीमें गुण रहता है, जैसे धर्मीमें धर्म रहता है, तैसे यह सत् असत् स्थूल सूक्ष्म कारण कार्यरूप जगत् मनमें रहताहै, जैसे समुद्रमें तरंग फुरतेहैं, जैसे आकाशमें दूसरा चंद्रमा फुरताहै, जैसे मरुस्थलमें मृगतृष्णाका जल फुरता है, तैसे चित्तविषे जगत् फुरता है, जैसे सूर्यविषे किरणें हैं जैसे तेजविषे प्रकाश है, जैसे अग्निविषे उष्णता है, तैसे मनविषे जगत् है, जैसे बर्फविषे शीत-लताहै, जैसे आकाशविषे शून्यता है, जैसे पवनविषे स्पंदता है तैसे मनविषे जगत् है, संपूर्ण जगत् मनरूप है, अरु मन जगत्रूप है, पर-स्पर एक रूप है, दोनोंमेंते एक नष्ट होवै तब दोनों नष्ट हो जाते हैं, जब जगत् नष्ट होवै, तब मन भी नष्ट होजाताहै, जैसे वृक्षके नष्ट हुएते पत्र, टास, फूल, फल सभी नष्ट हो जाते हैं, फूलफलके नष्ट हुएते वृक्ष नष्ट नहीं होता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे अंकुरवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ५.

भार्गवसंविद्रूमनवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन्! सर्व धर्मोंके वेत्ता! पूर्व अ़परके ज्ञाता! मनके फुरणेकरिकै जगत् कैसे फुरता है? अरु कैसे भया है? जैसे प्राप्त भया है दृष्टांतदृष्टिकरिकै को कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे इंद्र

ब्राह्मणके पुत्रहूकी दश सृष्टियाँ होत भई अरु दशही ब्रह्मा होत भये, सो मनके फुरणेते उपजिकरि मनके फुरणेविषे स्थित भये, अरु जैसे लवणराजाको इंद्रजालकी मायाकरिकै चांडालकी प्रतिमा दृढ होकरि भासी, तैसे यह जगत् मनमें फुरणेविषे स्थित भया है, जैसे भार्गव शुक्र मनके फुरणेकरि चिरकाल स्वर्गको भोगता रहा, अरु अपर अनेक भ्रम देखे, सो मनहीका भ्रम दृष्ट होकरि भासा, तैसे यह जगत् मनके भ्रमकरि स्थित भया है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! भृगुऋषीश्वरके पुत्रने मनके भ्रमकरि कैसे स्वर्गसुख भोगे हैं ? अरु कैसे भोगका अधिपति हुआ है ? अरु कैसे संसारी होकरि भ्रमको देखता भया है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! भृगुके पुत्रका वृत्तांत सुन, भृगु अरु कालका संवाद मंदराचल पर्वतविषे हुआ है ॥ एक कालमें भृगु अरु शुक्र दोनों मंदराचल पर्वतविषे स्थित थे, चंद्रमाकी नाईं शुक्रका मुख अरु बडा प्रकाशी है, अरु भृगुजी बड़ा उदार आत्मा तहां स्थित है, जहां कल्पवृक्ष अरु मंदारवृक्ष आदिक बहुत सुंदर स्थान दिव्य मूर्ति है, जहां भृगुजी तप करते थे, अरु शुक्रजी टहल करते थे, एक समय भृगुजी निर्विकल्प समाधिमें स्थित भये, तब निर्मल मूर्ति शुक्र एकांत जाय बैठे, कंठविषे मन्दारकल्पवृक्षके फूलनकी माला पहरे हुए, सो शुक्र विद्याअरु अविद्याके मध्यमें स्थित था, जैसे त्रिशंकु राजा चंडाल था, सो विश्वामित्रके वरको पायके स्वर्गमें गया तब देवतावोंने अनादर किया, स्वर्गते गिराय दिया कि, यह चंडाल है, तब विश्वामित्रने देखिकै कहा कि, यहांही खडे रहौ, तब वह भूमि अरु आकाशके मध्य स्थित भया, तैसे शुक्र बैठा है और एक महा सुंदर अप्सरा तिसके ऊर्ध्व स्वर्गकी ओर चली जाती देखत भया, जैसे लक्ष्मीकी ओर विष्णुजी देखैं, तैसे अप्सराको देखा जो महासुंदर अनेक प्रकारके भूषण पहरे हुए थी अरु दिव्य वस्त्र धारण किये थी और जिसके शरीर से महा सुगंध उठती थी, जिसकरि आकाशमार्ग भी सुगंधित भया है, पवन जो तिसको स्पर्श कर चलता है, तिसकी सुगंधि पसरती है, अरु महामदकरि उसके घूर्ण नेत्र हैं, ऐसी अप्सराको देखिकै शुक्रका मन क्षोभायमान हुआ, जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाको देखिकै क्षीरसमुद्र क्षोभित

होता है, तैसे उसकी वृत्ति और मार्गते रहित होकरि अप्सराविषे जाय स्थित भई, कामदेवका बाण जो है स्मृति करना, सो आय लगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठेस्थितिप्रकरणे भार्गवसंविद्गमनवर्णनं नाम पंचमःसर्गः ५॥

षष्ठः सर्गः ६.
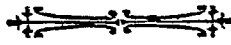
भार्गवमनोराज्यवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार उस अप्सराको देखके नेत्र मूँदता भया मूँदके मनोराज्यको पसारत भया, चिंतने लगा कि यह जो ललना मृगनयनी स्वर्गको गई है, मैं तिसके निकट जाय प्राप्त होऊँ, ऐसे विचारिके उसके पाछे चला; जाते जाते मनसों स्वर्गमें जाय प्राप्त भया, तहां मंदार कल्पतरु हैं, तिनको फूलकी सुगंधतासहित देखता भया, द्रवत स्वर्णकी नाईं शरीर जिनके हैं, ऐसे देवता अरु हास्य विलास संयुक्त हरिणकी नाईं नेत्रवाली स्त्रियां देखता भया, मणिके समूह देखे, अन्योन्य परस्पर उनविषे प्रतिबिंब पड़ते हैं, विश्वरूपकी उपमा स्वर्गलोकमें देखी, मंद मंद पवन चलता है, मंदारवृक्षमें मंजरी प्रफुल्लित हैं, तहां अप्सरोंके गण विचरते हैं, आगे इंद्र भागमें गया, तौ ऐरावत हस्ती बडे मदसों मस्त खडा है, जिसने युद्धमें दंतनसे दैत्य चूर्ण किये हैं, अरु देवतोंके आगे अप्सरा गायन करती हैं, अरु स्वर्णके कमल लगे हुएहैं, तहां ब्रह्माके हंस अरु सारसपक्षी विचरतेहैं, गंगाका प्रवाह चला जाताहै, देवताके नायक तहां विश्राम करते हैं, बहुरि लोकपालके स्थान देखे, यम, चंद्रमा, सूर्य इंद्र, वायु, अग्नि, लोकपाल सब देखता भया, महाज्वालावत् प्रकाशहै जिनका, ऐसे देवताके समूह देखता भया, ऐरावतके दंतमें दैत्यनहूकी पंक्ति देखी, आगे देवता देखे, जो विमानपर आरूढहुए फिरते हैं, भूषण-सहित तिनके हार मणिकरिके जडे हुए हैं; सुदर विमानकी पंक्ति विचरती है, कहूँ मंदारवृक्ष हैं, कहूँ कल्पवृक्ष हैं, तिनके साथ सुदर वल्लियां

हैं, गंगाका प्रवाह चलता है, तहां अप्सरोंके गणं बैठे हैं, कहूं सुगंधता- लिये पवन चलता है, कहूं झरणेमेंते जल चलता है, सुंदर नंदनवन है, कहूं अप्सरा बैठी हैं, कहूं नारद आदिक बैठे है, अपर लोग जिनने पुण्य किये हैं, सो बैठे सुख भोगते हैं, विमानपर आरूढ हुए फिरते हैं, कहूं इंद्रको अप्सरा सेवती हैं, कामदेवसों मस्त हैं शरीर जिनके, जैसे वनकी लता वनको सेवती हैं, तैसे अप्सरा इंद्रको सेवती हैं, जैसे कल्पवृक्षमें पके फल लगते हैं, तैसे रत्न अरु चिंतामणि लगे हैं, कहूं चंद्रकांतमणि स्रवती हैं, इस प्रकार मनसों स्वर्गकी रचना शुक्र देखता भया, कैसी रचना देखी, मानों त्रिलोकीकी रचना यहांही है ॥ तब शुक्रको देखिकै इंद्र उठ खडा हुआ, मानो दूसरा भृगु आया है, बड़े प्रकाशसंयुक्त शुक्रकी मूर्त्तिको इंद्रने प्रणाम किया, अरु हाथ ग्रहण करिकै अपने पास बैठाया, अरु कहत भया ॥ हे शुक्रजी! आज हमारे धन्य भाग्य हैं, जो तुम्हारा आगमन भया है, आज हमारा स्वर्ग तुम्हारे आनेसे सफल शोभित निर्मल भया है, अब तुम चिरपर्यंत यहांही स्थित होहु, जब इंद्रने ऐसे कहा तब शुक्रजी शोभत भये, तिसको देखिकै सुरके समूह प्रणाम करत भये, कि भृगुका पुत्र शुक्रजी आया है ॥ हे रामजी! इसप्रकार शुक्रजी मनसों इंद्रके पास जाय बैठा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्ग- वमनोराज्यवर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७.

भार्गवसंगमवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इसप्रकार शुक्रजी इंद्रके पास जाय बैठा, तब अपना जो कोऊ निज भाव था, तिसको भुलाय दिया, वह जो मंदराचल पर्वतपै अपना शरीर था, सो भूल गया, अरु वासनासों मनोराज्यका शरीर दृढ हो गया, एक मुहूर्तपर्यंत इंद्रके पास बैठा रहा, परंतु चित्त उस अप्सरामें रहा तिसके अनन्तर उठ खडा हुआ, स्वर्गको देखने लगा, देवताओंने कहा कि, चलौ स्वर्गकी रचना देखौ, तब शुक्रजी

देखत देखत जहां वह अप्सरा थी तहाँ गये, अरु और भी अप्सरा बहुत थीं, तिनमें वह अप्सरा भी बैठी है, जिसके मृगके ऐसे नेत्र हैं तिसको शुक्रजीने देखा जैसे चंद्रमा चांदनीको देखै, तैसे देखके शुक्रका शरीर द्रवीभूत होगया, प्रस्वेदसों पूर्ण होता भया, जैसे चंद्रमाको देखिकै चंद्रकांतमणि द्रवीभूत होता है, तैसे शरीर हो गया, कामदेवके बाण तिसके हृदयमें आय लगे, तिसकरि व्याकुल हो गया, अरु शुक्रको देखिकै उसका चित्त भी मोहित हो गया, शुक्रविषे कामका बाण उसको भी आय लगा, वह भी कामसों पूर्ण हो गई, जैसे वर्षाकालकी नदी जलसों पूर्ण होती हैं, तैसे परस्पर स्नेह बढा, तब शुक्रजीने मनसों तहां तमको रचा, तब सब स्थानमें तम होगया; जैसे लोकालोक पर्वतके तटविषे तम होता है, तैसा सूर्यका अभाव हो गया, तब भूतजात सब अपने अपने स्थानमें गये, जैसे दिनके अभाव हुए पशुपक्षी अपने अपने गृहको जाते हैं, तैसे तमके होनेते सब वनको चले गये, तब वह अप्सरा शुक्रके निकट आई, शुक्रजी श्वेत आसनपर बैठ गया, अप्सरा भी चरणके निकट बैठी; सुंदर वस्त्र अरु भूषण पहिरे हुए हैं, स्नेहकारि दोनों कामवश हुए; तब अप्सरा मधुरवाणीसों कहत भई ॥ हे नाथ ! मैं निर्बल होकर तुम्हारी शरण आई हौं, मुझको कामदेव दहन करता है; तुम रक्षा करौ, मैं इसकारि पूर्ण हो गई हौं, अरु स्नेहरूपी जो रसहै, तिसको सोई जानता है, जिसको प्राप्त भया है॥ जिसको रसका स्वाद नहीं आया, सो क्या जानै ? हे साधु! ऐसा सुख त्रिलोकीमें और कोऊ नहीं, जैसा सुख परस्पर स्नेहसों होता है, अब तुम्हारे चरणोंको पायके आनंदवती भई हौं, जैसे चंद्रमाको पायके कमलिनी आनंदवती होती है, जैसे चकोर चंद्रमाकी किरणोंको पायके आनंदवान् होता हैं, तैसे मुझको स्पर्श करिकै आनंद होवैगा, जब इसप्रकार अप्सराने कहा, तब दोनों कामके वश होइकारि क्रीडा करने लगे॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवगमवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८.

भार्गवोपाख्याने विविधजन्मवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार तिसको पायके शुक्र आपको आनंदवान् मानत भया; मंदार अरु कल्पवृक्षके नीचे क्रीडा करते हैं, दिव्य वस्त्र अरु भूषण फूलोंकी माला पहिरे हुये, वन बगीचे अरु किनारेविषे क्रीडा करते हैं, चंद्रमाकी किरणोंके मार्गसों अमृतपान करते रहैं, स्वर्गमें विचरैं, विद्याधरोंके गणनके साथ रहैं, तिनके स्थानमें नंदनवन इत्यादिक स्थानविषे क्रीडा करत भोगते कैलास पर्वतमें गये; अप्सरासहित तहां वनकुंजमें फिरते रहैं, बहुरि लोकालोक पर्वतपर क्रीडा करते भये, मंदराचल पर्वतके कुंजमें विचरते भये, श्वेतद्वीपविषे रहे, अर्धशत युगपर्यंत बहुरि गंधर्वके नगरविषे रहे, इंद्रके वनविषे रहे, बत्तीस युगपर्यंत स्वर्गमें रहे,जब पुण्य क्षीण भया, तब भूमिलोकमें गिराय दिये गये, गिरते गिरते तिनके शरीर टूटि गये, जैसे झरणेमैंते जल बंद होवै, तैसे शरीर अंतर्धान हो गया; तब चिंतासंयुक्त उनकी पुर्यष्टक आकाशमें निराधार हो रही, जैसे पक्षी नीडविना स्थित है, तैसे उनकी पुर्यष्टक चिंतासहित निराधार भई, तब वासनारूप दोनों चन्द्रमाकी किरणोंविषे जाय स्थित हुऐ, बहुरि किरणोंद्वारा धान्यमें आय निवास किया, तब दशारण्य नाम ब्राह्मण था, तिसने धान्यका भोजन किया, तब वह चावल वीर्य होकारि ब्राह्मणीके गर्भमें जाय रहा, फेर वह धान्यका मालवदेशका राजा भोजन करत भया, तिसके वीर्यद्वारा अप्सरा स्त्रीके उदरविषे जाय स्थित भई; अरु दशारण्य ब्राह्मणके गृहमें शुक्र पुत्र हुआ; अरु वह मालव देशके राजाके यहां अप्सरा पुत्री हुई, तब क्रमकरिकै बडी हुई; जब षोड़शवर्षकी भई, पिताके गृहविषे यौवनवती हुई; तब महादेवकी पूजा करत भई और प्रार्थना करी कि, हे देव ! मुझको पूर्वके भर्त्तारकी प्राप्ति कर देहु, इसप्रकार नित्य पूजन करै, अरु वर मांगै, वहां वह यौवनवान् हुआ, यहां यह यौवनवती हुई, तब राजाने यज्ञका आरंभ किया; तिसमें सब राजा अरु ब्राह्मण आये, तहां दशारण्य ब्राह्मण पुत्रस-

हित आया, तब राजपुत्रीने तिस पूर्वजन्मके भर्त्तारको देखा, जैसे चंद्रमाको देखिकै चंद्रकांतमणि द्रवीभूत होता है, तैसे राजकन्या होगई, अरु स्नेहसों नेत्रते जल चलने लगा, तव राजकन्या दशारण्यके पुत्रको देखिकै तिसके कंठविषे फूलनकी माला डारिकै अपना भर्त्तार किया, तब यज्ञमें देखिकै राजा आश्चर्यवान् हुआ, अरु निश्चय किया कि, भला हुआ; बहुरि क्रमसों विवाह किया, तब राजा, पुत्री अरु जँवाईको राज्य देके आप वनको तप करने लिये चला गया, यहां यह पुरुष अरु स्त्री मालवदेशका राज्य करने लगे, चिरकाल राज्य करते रहे, बहुरि दोनों वृद्ध भये, शरीर जर्जरीभूत हो गये तब तिसको शरीरमें वैराग्य हुआ कि, स्त्री महादुःखरूप है, सो दुःखरूप अवस्था देखिकै सामान्यवैराग्य हुआ, विशेष वैराग्य न उपजा, जर्जरीभूत अंगविषे सेवनेते अशक्त भये; परंतु तृष्णा निवृत्त नहीं भई, राजा मृत्यु अवस्थाको प्राप्त भया, सो बांधवोंने जलाय दिया, यह महा अंधकूप मोहविषे ज्ञानकी प्राप्तिविना जाय पड़ा ॥ हे रामजी! मृत्यु मूर्च्छाके अनंतर परलोक तिसको भासि आया, तहां कर्मके अनुसार सुखदुःखको भोगिकै अंग वंग देशमें धीमर हुआ, तहां अपने धीमरकर्म करत भया; बहुरि वृद्ध अवस्था आई, तब शरीरविषे वैराग्य हुआ कि, यह संसार महादुःखरूप है, ऐसे जानिकै सूर्य भगवान्का तप करने लगा, जब मृतक हुआ तब तपके वशते सूर्यवंशविषे राजा भया सो भावनाके वशते तहां कछुक ज्ञानवान् हुआ, योग करै, अरु वेद पढै, योगकी भावनाकरि जो, शरीर छूटा; तब बड़ा गुरु हुआ, सर्वको उपदेश करै, मंत्रसिद्धि करत भया, वेदमें बहुत परिपक्क हुआ, तब मंत्रके वशते विद्याधर हुआ, चिरकालपर्यंत विद्याधरमें एक कल्पपर्यंत रहा, जब कल्पका अंत भया, तब सशरीर अंतर्धान हो गया, तब इसका पवनरूपी शरीर वासनासहित हो रहा, जब ब्रह्माकी रात्रि क्षय हुई, अरु दिन हुआ बहुरि सृष्टि रची, तब एक मुनीश्वरके गृहमें पुत्र हुआ, तहां बडा तप करत भया; बहुरि सुमेरु पर्वतपर जाय स्थित भया, एक मन्वंतरपर्यंत वहां रहा, इकहत्तर चौकड़ी युग व्यतीत भई, तहां भोगकरि हरणीका पुत्र हुआ, अरु मनुष्यका आकार तहाँ रहा, तिस पुत्रके स्नेहसों मोहको

प्राप्त भया कि, जो इस मेरे पुत्रको धन होवे, गुण आयुर्दाय बल बहुत होवे, निरंतर यही चिंतन करने लगा, इसकारणते अपने तप धर्मते विरक्त हुआ, आयुष्य क्षीण भया, मृतरूप सर्पने ग्रास लिया, तपोभ्रष्ट निमित्त अरु तपके बलकारि शरीर छूटा, तब भोगकी चिंतासंयुक्त मद्रदेशके राजाके गृहविषे पुत्र हुआ, तिस देशका राजा भया, चिरपर्यंत राज भोगकारि वृद्ध अवस्थाको प्राप्त भया, शरीर जर्जरीभूत हो गया तहां तपकी अभिलाषामें शरीर छूटा, तिसकारि तपेश्वरके गृहविषे पुत्र हुआ अब संतापते रहित होइकारि गंगाजीके किनारेपर तप करनेको लगा है, हे रामजी ! इसप्रकार मनके फुरणेकारिकै शुक्र अनेक शरीरको भोगता भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने विविधजन्मवर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९.

भार्गवकलेवरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार शुक्र मनसों भ्रमता फिरा, तब भृगुके पास जो शरीर था, सो निर्जीव हुआ, पुर्यष्टक निकरि गई थी, पवन अरु धूपसों शरीर जर्जरीभूत होगया, जैसे शूलते काटा वृक्ष गिर पडता है, तैसे शरीर गिर पडा, मन जो चंचल है सो भोगकी तृष्णासों वहीं गया था, जैसे हरिण वनविषे भ्रमता है, अथवा जैसे चक्रपर चढा बासन भ्रमता है, तैसे भ्रमते भ्रमांतरको देखा, जब मुनीश्वरके गृहमें जन्म लिया, तब चित्तमें विश्राम हुआ; गंगाके तटपर तप करने लगा, मंदराचल पर्वतवाला शरीर नीरस होगया अस्थि चर्म मात्र शेष रह गया, अरु लोहू सूख गया; शरीरके रंध्रमार्गकारि पवन चलै, तब बांसुरीवत् शब्द होवै, मानो चेष्टाको त्यागिके शरीर आनंदवान् हुआहै जब बडा पवन चलै तब भूमिविषे लोटने लगै, नेत्र आदिक जो रंध्रथे सो गर्त गढेलेवत् हो गये; अरु मुख पसर गया, मानौ अपने पूर्व स्वभावको देखिकै हँसता है, तब वर्षाकाल आवै, तब जलकारि पूर्ण हो जावै,

अरु जल तिसविषे प्रवेशकरि रंध्रके मार्गसों निकसै, जैसे झरणेसों जल निकसता है; तैसे निकसै, जब उष्णकाल आवै, तब धूपसों सूख जावै महाकाष्ठकी नाईं वनविषे मौनरूप होकरि स्थित भया, अरु मृग पक्षी शरीरको नाश न करत भये; सो एक तौ यह कारण है, कि रागद्वेषते रहित पुण्य आश्रम था, तथा भृगुजी महातपस्वी तेजवान् थे, तिसके निकट कोऊ आय न सकै, इस कारणते देहको नष्ट न करत भये, यहां शरीरकी यह अवस्था भई, अरु वहां शुक्र पवनके शरीरसों चेष्टा करत भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवकलेवरवर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०.

कालवाक्यवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब सहस्र वर्ष व्यतीत भये, सो भूमि लोकके तीन लाख अरु आठ सहस्र वर्ष भये, तब भगवान् भृगुजी समाधिते उतरे, जागिकै देखते भये, तौ अपने आगे शुक्रका शरीर दृष्ट न आया, जब भलीप्रकार नेत्र पसार देखा तब तहां देखा कि, कृश जैसा होयके शरीर गिर पडाहै, तब जानत भया कि, कालने इसको भक्षण कियाहै, शरीर, धूप अरु वायु मेघकरि जर्जरीभूत होगयाहै, नेत्र गढ़ेलारूप होगयेहैं, शरीरमें कीट आय स्थितभये हैं, जीवने आलयस्थान वनायेहैं, घुराण मक्खियां आती जाती हैं, श्वेतदंत निकसि आये हैं, मानौ शरीरकी दशाको देखिकै हँसते हैं, मुख ग्रीवा महाभयानकरूप हैं, खपरी श्वेत हो गई है, नासिका श्रवणस्थान सब जर्जरीभूत हो गये हैं, वायु चलै तब बांसुरीवत् बाजने लगते हैं, महा आश्चर्यरूप शरीर कृश होयके गिर पडा है, रागद्वेषते रहित होइकरि स्थित भया है, मृग पक्षी भक्षण न करते भये, सो एक तौ पुण्यस्थान, दूसरा भृगुजीका तेज था, इस कारणते हिंसक भक्षण न करत भये, शरीरकी यह दशा देखिकै भृगुजी उठ खडे हुए, क्रोधवान् होकरि कहने लगे कि, कालने क्या समझा है ? जो मेरे पुत्रको

मारा है, शुक्र परम तपस्वी अरु सृष्टिपर्यंत रहनेवाला था, सो विना काल मेरे पुत्रको क्यों मारा है? यह कौन रीति है, ? मैं कालको शाप देकर भस्म करौंगा? मेरे पुत्रको समयविना मारा है, तब कालका रूप जो काल है, सो अद्भुत शरीर धारिकारि आया, षण्मुख, षट्भुजा, हाथविषे खड्ग, त्रिशूल अरु फाँसी, अरु कानमें मोती पहिरे हुए, मुखसों ज्वाला निकसती हैं, महाश्याम शरीर, अग्निवत् जिह्वा है, कमलकी नाईं ज्वाला निकसती हैं, त्रिशूलके अग्रते अग्निकी लपटैं निकसतीहैं, जैसे प्रलय कालके अग्निते धूम निकसता है, तैसे श्याम शरीर बडे पहाडकी नाई उग्ररूप है, जहां चरण रक्खै तहां पृथ्वी पहाड कांपने लगैं, महा भयानकरूप काल भगवान् भृगुऋषीश्वरके निकट आये, अरु भृगु जो महाप्रलयके समुद्रवत् क्रोधकारि पूर्ण था, तहां आगमन कारि कहता भया ॥ हे मुनीश्वर! जो मर्यादाके वेत्ता हैं, अरु परावर परमात्माके वेत्ता हैं, सो पुरुष क्रोधको नहीं प्राप्त होते, जो कोऊ क्रोध करनेको आवै, तौ भी मोहके वश होइकारि क्रोधवान् नहीं होते, तुम कारणविना काहेको मोहित होयके क्रोधको प्राप्त भये हौ? तुम ब्रह्मतनय तपस्वी हौ, अरु हम नीतिके पालक हैं, हमारेकारि तुम पूजनेयोग्य हौ, यही नीतिकी इच्छा है, अरु तपके बलकारि तुम क्षोभ मत करौ, तुम्हारे शाप कारि मैं भस्म भी नहीं होता, प्रलय कालका अग्नि भी मुझको दग्ध नहीं कारि सकता, तौ तुम्हारे शापकारि मैं कब भस्म होता हौं? ॥ हे मुनीश्वर! मैं तौ अनेक ब्रह्मांड भक्षण कारि गया हौं; कई कोटि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र ग्रासलिये हैं, तेरा शाप मुझको क्या कारि सकता है, जैसे आदिनीति ईश्वरने रची है, तैसे स्थित है, हम सबके भोक्ता हुए हैं, तुम सरीखे हमारा भोग हुए हैं, यह आदिनीति हुई है ॥ हे मुनीश्वर! अग्नि स्वभाव कारि ऊर्ध्वको जाता है, अरु जल स्वभावकारि अधःको जाता है, अरु भोग जो है, सो भोक्ताको प्राप्त होता है; सृष्टि सब कालके मुखमें प्राप्त होती है, आदि परमात्माकी नीति ऐसे ही हुई है, जैसे रची है, तैसे स्थित है, अरु जो निष्कलंक ज्ञानदृष्टिकारि देखिये, तौ न कोऊ कर्ता है, न कोऊ भोक्ताहै, न कारण है, न कार्य है, एक अद्वैतसत्ताही है, जो अज्ञान कलंक-

दृष्टिकारि देखिये, तौ कर्ता भोक्ता अनेक प्रकारके भ्रम भासते हैं ॥ हे ब्राह्मण ! कर्त्ता भोक्ता आदिक जो भ्रम है सो असम्यक् ज्ञानकारि होता है जब सम्यक् ज्ञान हुआ, तब कर्त्ता कार्य भोक्ता कोऊ नहीं, जैसे वृक्ष साथ पुष्प स्वभावते उपजि आते हैं; अरु स्वभावते ही नष्ट हो जाते हैं, तैसे भूतप्राणी सृष्टिविषे स्वाभाविक फुरि आते हैं, बहुरि स्वाभाविक रीतिसों नष्ट हो जाते हैं, ब्रह्मा उत्पन्नकर्त्ता है, बहुरि नष्टकर्त्ता है, जैसे चंद्रमाका प्रतिबिंब जलविषे पड़ताहै, जलके हिलनेकारि हिलता भासता है, ठहरनेकारि ठहरा भासता है, तैसे मनके फुरणेकारि आत्मविषे कर्तव्य भोक्तव्य भासता है, वास्तव कछु नहीं, मिथ्याही मनके फुरणेकारि लोकविषे कर्तव्य आदिक भासते हैं, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रमकारि भासता है, तैसे आत्मविषे कर्तव्य भोक्तव्य भ्रमकारिकै भासताहै, वास्तव कछु नहीं ताते क्रोध मत करौ, यह दुष्ट कर्म आपदाका कारण है ॥ हे मुनीश्वर ! मैं जो तुझको यह वचन कहता हौं, सो अपनी विभुता अरु अभिमानकारि नहीं कहता, यह स्वतः ईश्वरकी नीति है, हम तिसीविषे स्थित हैं, जो बोधवान् पुरुष हैं, सो अपने प्रकृतिआचारविषे विचरतेहैं, वे अभिमानकारिकै नहीं विचरते, जो कर्तव्यके वेत्ताहैं, सो बाह्यप्रकृत आचारको करते हैं, जैसा आनि प्राप्त होवै, अरु अंतरते सुषुप्तिकी नाईं स्थित हैं, यह ज्ञानदृष्टि कहाँ, वह धैर्यता कहाँ, अरु उदारदृष्टि कहाँ जो शास्त्रकारि प्रसिद्ध है, तुम क्यों अंधकी नाईं मोहमार्गविषे मोहित होते हौ? ॥ हे साधु ! तुम तौ त्रिकालदर्शी हौ, अविचारकारिकै मूर्खकी नाईं जगत्यंत्रविषे क्यों मोहको प्राप्त होतेहौ ? तुम्हरा पुत्र अपने कर्मनके फलको प्राप्त भयाहै, अरु तुम मूर्खकी नाईं मुझको शाप दिया चाहतेहौ ॥ हे मुनीश्वर ! इस लोकविषे जीवनके दो दो शरीर हैं, एक मनरूप है, दूसरा अधिभूतरूप है अधिभूतरूप जड है, अत्यंत विनाशी है, जहां इसको मन प्रेरता है, तहां चला जाता है, आपते कछु कारि नहीं सकता, जैसे सारथी भला होता है, तौ रथको भले स्थान ले जाता है, अरु जो सारथी भला नहीं होता, तौ रथको दुःखके स्थान ले जाता है; तैसे जब मन भला होता है, तब उत्तमलोकको प्राप्त करता है, जब दुष्ट होता है, तब नीच स्थानको प्राप्त

करता है, जिसको मन असत् करता है, सो असत् भासता है, जिसको मन सत् करता है, सो सत् भासता है, जैसा कमलका पत्ता है, तैसाही हो भासता है, जैसे माटीकी सेना बालक बनावते हैं, बहुरि भंग करते हैं, कबहूं सत् करते हैं, कबहूं असत् करते हैं, जैसे करते हैं, तैसे देखते हैं॥ हे साधो! यह चित्तरूपी पुरुष है, जो चित्त करता है, सो किया होता है, जो चिंतन करता है, सो न किया होता, यह जो फुरणा है, यह देह है, यह नेत्र हैं, यह शिर है, ये अंग हैं इत्यादिक सब मनरूप है, जीव भी मनका नाम है, मनका जीवना जीव है, वही मनकी बृत्ति निश्चयरूप होती है, तब तिसका नाम बुद्धि होता है, अहंरूपको धरता है, तब तिसका नाम अहंकार होता है, देहको स्मरण करता है, तब तिसका नाम चित्त होता है, ताते पृथ्वीरूप शरीर कोऊ नहीं, मन दृढभावनाकरि शरीररूप होता है, सोई अधिभूत हो भासता है, जब शरीरकी भावनाको त्यागता है, तब चित्त परमपदको प्राप्त होता है, जेता कछु जगत् है, सो मनके फुरणेविषे स्थित है, जैसा मनको फुरणा होता है, तैसाही रूप हो भासता है, अरु तेरा जो पुत्र था, शुक्र सो भी मनके फुरने करि अनेक स्थानको देखत भया, जब तुम समाधिविषे स्थित थे, तब विश्वाची देवसुंदरी जो अप्सरा थी तिसके पाछे मनकरि चला गया, इंद्रलोक स्वर्गको जाय प्राप्त भया, देवता होकरि मंदार वृक्षविषे विचरने लगा, पारिजात वृक्ष तमाल और नंदनवनविषे विचरता रहा; लोकपालहूंके स्थानविषे विचरा. बत्तीस युगपर्यंत विश्वाची अप्सराके साथ विचरता रहा, जैसे भँवरा कमलको सेवता है, तैसे तीव्र संवेगकरि भोगता रहा, जब पुण्य क्षीण हुआ, तब तहांते गिराया गया, जैसे पका फल वृक्षते गिरता है, तब देवताका शरीर आकाशमार्गविषे अंतर्धान हो गया, भूमिलोकविषे आनि पडा धान्यविषे आयकरि ब्राह्मणके वीर्यद्वारा ब्राह्मणीका पुत्र भया; मालवदेशका राज्य किया, बहुरि धीमरका जन्म पाया, बहुरि सूर्यवंशी राजा हुआ, बहुरि विद्याधर हुआ, कल्पपर्यंत विद्याधरविषे बुद्धिमान् रहा, इसप्रकार अनेक शरीरनको पायकरि अब गंगाके तटपर ब्राह्मणका पुत्र होकरि तप करता है, वसुदेव तिसका नाम है॥ हे मुनीश्वर! इसप्रकार तेरा पुत्र वासनाक-

भृगुरुवाच ॥ हे भगवन् ! तीनहूँ कालके ज्ञाता ईश्वर ! हम बालक हैं, इसीते निर्दोष हैं, तुमसरीखे बुद्धिवान् हैं, तीन काल अमलदर्शी हैं॥ हे भगवन् ! ईश्वरकी माया महाआश्चर्यरूप है, जीवनको अनेक भ्रमदिखावती है, बुद्धिमान्को भी मोह करती है, मूर्खनकी क्या बात है ? तुम सब कछु जानते हौ, जीवनकी वार्त्ता सब तुम्हारे अंतर्गत है, जीवको मनकी वृत्ति है, तिसके अनुसार भ्रमते हैं, सो मनकी वृत्ति सब तुम्हारे अंतर्गत फुरती है, इन सबनहूंके तुम वेत्ता हौ, जैसे इंद्रजाली अपनी बाजीका वेत्ता होता है ॥ हे भगवन् ! मैं जो भ्रमको प्राप्त होकारि क्रोध किया,सो इस कारणते कि, मेरे पुत्रका मृत्यु न था, चिरजीवी था, अरु तिसको मैं मृतक हुआ देखिके भ्रमको प्राप्त भया, अरु हमारा जो क्रोध है, सो आपदाका कारण नहीं. काहेते कि, मैं पुत्रका शरीर निर्जीव देखा, तब कहा कि, अकालमें मृतक हुआ है, इस कारणते क्रोध हुआ, सो क्रोध भी नीतिरूप है, अर्थ यह कि जो क्रोधका स्थान होवै, तहां क्रोध रहता है, मैं संसारकी गति विचारिके क्रोध नहीं किया, अर्थ यह कि, पुत्रकी अवस्था देखिके क्रोध नहीं किया, निर्जीव शरीरको देखिकारि क्रोध किया है, इसीते यह क्रोध आपदाका कारण नहीं, अयुक्ति कारणकारि जो क्रोध है सो आपदाका कारण है, युक्तिकारि जो क्रोध है, सो संपदाका कारण है, यह कर्तव्य संसारकी सत्ताविषे स्थित है, यह नीति है, जबलग जीव है, तबलग जगत्क्रम है, जैसे जबलगअग्नि है, तबलग उष्णता भी है, तैसे जो कर्तव्य है, सो करना है, जो त्यागने योग्य है, सो त्यागना है, यह नीति जगत्विषे स्थितहै, जो हेयोपादेय नहीं जानता तिसको त्यागना योग्य है, ताते मैं पुत्रका अकालमृत्यु देखिके क्रोध किया था, परंतु विचारकारिके जब तुमने स्मरण कराया;तब मैं विचारकारि देखा कि, मेरा पुत्र अनेक भ्रमको पाता अब गंगाके तटपर तप करता है ॥ हे भगवन्! तुमने जो कहा जीवनके दो दो शरीर हैं; एक मनोमय दूसरा अधिभूतक अरु मैं तौ यह मानता हौं कि, शरीर एक मनही है, दूसरा कोऊ नहीं; मनहीका किया सफल होता है; शरीरका नहीं होता ॥ काल उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! तुमने यथार्थ कहा है; शरीर

रिकै अनेक शरीर पाता रहा है, विंध्याचल पर्वतविषे गैब हुआ क्रांत देशविषे धीमर हुआ, तरंगित देशविषे राजा हुआ, क्रांतदेशविषे हरिण हुआ, वनमें विचरा, बहुरि विद्यावान् गुरु हुआ, बहुरि विद्याधर श्रीमान् हुआ, बहुरि कुंडलादिक भूषणहू करि संपन्न बड़ा ऐश्वर्यवान् गंधर्वहूंका मुनिनायक भूपण हुआ कल्पपर्यंत वहां रहा, जब प्रलय होने लगा, तब सब लोक पूर्व भस्म हो गये; जैसे अग्निविषे पतंग भस्म होते हैं, तब तेरा पुत्र निराधार निराकार वासनाकरिकै आकाशमार्गविषे भ्रमता रहा, जैसे आलयविना पक्षी रहता है, तैसे रहा; जब ब्रह्माकी रात्रि व्यतीत भई, तब सृष्टिकी रचना बनी, तब वह सतयुगविषे ब्राह्मणका बालक वसुदेव नाम गंगाके तटपर तप करता है, आठ सौ वर्ष तिसको तप करते बीते हैं, तू भी ज्ञानदृष्टिकरि देखैगा तौ सबही वृत्तांत उसका तुझको भास आवैगा; तातें देख कि, इसीप्रकार है, अथवा किसी और प्रकार है? ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे कालवाक्यवर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११.

संसारावर्त्तवर्णनम् ।

काल उवाच ॥ हे मुनीश्वर! महातरंग उछलते हैं, अरु झनकार शब्द होते हैं, ऐसी गंगाके तटपर तेरा पुत्र तप करता है, शिरपर बडी जटा है, सर्व इंद्रियके भ्रमको तिसने जीता है, जो तुमको इसके मनका विस्तार देखनेकी इच्छा है, तौ इन नेत्रनको मूँदिकरि ज्ञानके नेत्रनसों देखौ ॥ हे रामजी! जब इसप्रकार जगत्के ईश्वर कालने कहा, कैसा काल है? कि जिसकी समदृष्टि है तब मुनीश्वर चितवता भया, इन नेत्रनको मूँदिकरि ज्ञाननेत्रसे देखा; एक मुहूर्त्तविषे अपने पुत्रका सब वृत्तांत देखता भया, जैसे कोऊ अपनी बुद्धिविषे प्रतिबिंबको देखै, तैसे देखिकै बहुरि मंदराचल पर्वत जो भृगुशरीर था, तिसविषे प्रवेश किया, अंतवाहक शरीरकरि अरु अपने अग्रभागविषे काल भगवान्‌को देखता भया, पुत्रको गंगाके तटपर देखा, आश्चर्यको प्राप्त हुआ, तब विकारदृष्टिको त्यागिकरि निर्मल दृष्टिसे वीतराग मुनीश्वर वचन कहत भया ॥

भृगुरुवाच ॥ हे भगवन् ! तीनहूँ कालके ज्ञाता ईश्वर ! हम बालक हैं, इसीते निर्दोष हैं, तुमसरीखे बुद्धिवान् हैं, तीन काल अमलदर्शी हैं ॥ हे भगवन् ! ईश्वरकी माया महाआश्चर्यरूप है, जीवनको अनेक भ्रमदिखावती है, बुद्धिमान्को भी मोह करती है, मूर्खनकी क्या बात है ? तुम सब कछु जानते हौ, जीवनकी वार्त्ता सब तुम्हारे अंतर्गत है, जीवको मनकी वृत्ति है, तिसके अनुसार भ्रमते हैं, सो मनकी वृत्ति सब तुम्हारे अंतर्गत फुरती है, इन सबनहूंके तुम वेत्ता हौ, जैसे इंद्रजाली अपनी बाजीका वेत्ता होता है ॥ हे भगवन् ! मैं जो भ्रमको प्राप्त होकरि क्रोध किया, सो इस कारणते कि, मेरे पुत्रका मृत्यु न था, चिरजीवी था, अरु तिसको मैं मृतक हुआ देखिकै भ्रमको प्राप्त भया, अरु हमारा जो क्रोध है, सो आपदाका कारण नहीं. काहेते कि, मैं पुत्रका शरीर निर्जीव देखा, तब कहा कि, अकालमें मृतक हुआ है, इस कारणते क्रोध हुआ, सो क्रोध भी नीतिरूप है, अर्थ यह कि जो क्रोधका स्थान होवे, तहां क्रोध रहता है, मैं संसारकी गति विचारिके क्रोध नहीं किया, अर्थ यह कि, पुत्रकी अवस्था देखिके क्रोध नहीं किया, निर्जीव शरीरको देखिकारि क्रोध किया है, इसीते यह क्रोध आपदाका कारण नहीं, अयुक्ति कारणकारि जो क्रोध है सो आपदाका कारण है, युक्तिकारि जो क्रोध है, सो संपदाका कारण है, यह कर्तव्य संसारकी सत्ताविषे स्थित है, यह नीति है, जबलग जीव है, तबलग जगत्क्रम है, जैसे जबलगअग्नि है, तबलग उष्णता भी है, तैसे जो कर्तव्य है, सो करना है, जो त्यागने योग्य है, सो त्यागना है, यह नीति जगत्विषे स्थितहै, जो हेयोपादेय नहीं जानता तिसको त्यागना योग्य है, ताते मैं पुत्रका अकालमृत्यु देखिके क्रोध किया था, परंतु विचारकारिकै जब तुमने स्मरण कराया;तब मैं विचारकारि देखा कि, मेरा पुत्र अनेक भ्रमको पाता अब गंगाके तटपर तप करता है ॥ हे भगवन् ! तुमने जो कहा जीवनके दो दो शरीर हैं; एक मनोमय दूसरा अधिभूतक अरु मैं तौ यह मानता हौं कि, शरीर एक मनही है, दूसरा कोऊ नहीं; मनहीका किया सफल होता है; शरीरका नहीं होता ॥ काल उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! तुमने यथार्थ कहा है; शरीर

एक मनही है; स्थूल देह मनकरि रचा है; जैसे घटको कुलाल रचता है; तैसे मन देहको रचताहै; जो मन शरीरते रहित निराकार होता है; क्षणविषे आकारको रचि लेता है; जैसे बालक परछाईंविषे वैतालको रचता है;भ्रमकरिकै मनविषे जो फुरणसत्ता है; स्वप्नभ्रम तिसकरि दिखाताहै;बडे आकार अरु गंधर्वनगर भासि आतेहैं; सो मनहीकी सत्ताहै स्थूल दृष्टिकरि जीवको दो शरीर भासते हैं; बोधवान्को तीनों जगत् मनरूप भासते हैं सब मनकरि रचे हैं; जब भेदवासना होती है, तब असत्रूप जगत् नानाप्रकार हो भासताहै, जैसे असम्यक् दृष्टिकरि दो चंद्रमा भासते हैं, सम्यक्दर्शीको एक चंद्रमावत् सब शांतरूप आत्माही भासता है, भेद भावनाकरि घट पटआदिक अनेक पदार्थ भासते हैं कि,मैं दुर्बल हौं, मोटा हौं,सुखी हौं,दुःखी हौं,यहजगत्है,यहकालहै,इत्यादिअनेक भ्रमकोदेखता है,सो संसार वासनामात्र है, जब मन शरीरकी वासनाको त्यागिकरि परमार्थकी ओर आवता है तब भ्रमको प्राप्त होता है ॥ हे मुनीश्वर! समुद्रते तरंग उठिकरि ऊर्ध्वको जाता है, जो वह जानै कि, मैं तरंग हूं तो मूर्ख है, यही अज्ञानदृष्टि है, ऊर्ध्वको जावैगा तब जानैगा मैं ऊर्ध्वको गया हौं, नीचे जावैगा तब जानैगा, मैं पातालको गया हौं, यह कल्पना अज्ञान है; वास्तव नहीं. वास्तव दृष्टि यह है, कि अध होय, अथवा ऊर्ध्व होय, परंतु आपको जलरूप जानै, तैसे जो पुरुष परिच्छिन्न देहादिकविषे अहंप्रतीत करता है, सो अनेक भ्रमको देखता है, सम्यक्दर्शी सब आत्मरूप जानता है, सर्व जीव आत्मरूप समुद्रके तरंग हैं, अज्ञानकरि भिन्न हैं, अरु ज्ञानकरि वहीरूप हैं, आत्मरूपी समुद्र सम है, स्वच्छ है, शुद्ध है, आदिरूप है, शीतल अविनाशी विस्तृतरूप अपने महिमाविषे स्थित है, सदा आनंदरूप है, जैसे कोऊ जलविषे स्थित है, और तटके ऊपर पहाड़ है, तिसको अग्नि लगी होवै, अग्निका प्रतिबिंब जलविषे पडता है, अरु वह कहै, मैं दग्ध होता हौं, सो जैसे भ्रमकरि उसको ज्वलनता भासती है, तैसे जीवको आभासरूप जगत् दुःखदायक भासता है, जैसे तटके वृक्ष पर्वतादिपदार्थ जलमें प्रतिबिंबितभासते हैं,अरु उनको देखिकै नानाप्रकार भासैं, तैसे आभासरूप

जगत्को जीव नानारूप मानते हैं, जैसे एक समुद्रविषे नाना तरंग भासते हैं, तैसे आत्माविषे अनेक आकार जगत् भासता है, वास्तवतें द्वैत कछु नहीं, सर्वशक्तिरूप ब्रह्मसत्ता है, तिसकरि विचित्ररूप चंचल भासता है, तौ भी एकरूप है, अपने आपविषे स्थित है, ब्रह्मविषे जगत् फुरता है, बहुरि तिसीविषे लीन होता है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, बहुरि तिसविषे लीन होते हैं, और भेद कछु नहीं, पूर्णविषे पूर्णही स्थित है, जैसे जलते तरंग भिन्न नहीं, तैसे ईश्वरते जगत् भिन्न नहीं, जैसे पत्र, डार, फूल, फल, वृक्षरूप हैं, तैसे सब जगत् आत्मरूप है, सो आत्मा अनेक शक्तिरूप है, जैसे एक पुरुष अनेक धर्मका कर्त्ता होता है, जैसा कर्म करता है, तैसे संगको पाता है, पाठ करनेते पाठक कहाता है, पाक करनेते पाचक कहाता है जापक, तापक आदि अनेक नामको धारता है, तैसे एक आत्मा अनेक शक्तिको धारता है, जैसे एक परछाया जिस आकारका पड़ता है, तैसा आकार भासता है, जैसे एक मेघविषें अनेक रंगसहित इंद्रधनुष भासताहै, तैसे यह अनेक भ्रमको पावता है ॥ हे साधो! जगत् ब्रह्मते फुरे हैं, जड भासते हैं, सो भी चैतन्यसत्ताते फुरे हैं, जैसे बबोहा अपने मुखसों तंतु निकासिकरि आपहीको ग्रास लेता है, तैसे चैतन्यते जड उत्पन्न होते हैं, बहुरि लीन हो जाते हैं, चैतन्यजीवते सुषुप्ति जड़ता उपजती है, बहुरि तिसीविषे निवृत्त होती है, ताते अपनी इच्छाकरि यह पुरुष बंधमान होता है, अरु अपनी इच्छाकरि मुक्त होता है, जब बहिर्मुखदेहादिक अभिमानकेसाथ मिलता है, तब आपको बंधमान करता है, जैसे कुरान आपही गृह रचिके बंधमान होती है, अरु जो पुरुषार्थकरिकै अंतर्मुख होता है, तब मुक्तिको पाता है, जैसे अपने हाथके बलकरि बंधनको तोड़िकै कोऊ बली निकसि जाता है ॥ हे साधो! ईश्वरकी विचित्ररूप शक्ति है, जैसी शक्ति फुरती है, तैसा रूप दिखावती है, जैसे ओस आकाशविषे उपजती है, तिसीको आच्छादि लेती है, तैसे आत्माविषे जो इच्छाशक्ति उपजती है, सोई आवरणकरि लेती है, तन्मयरूप हो जाता है, अरु वास्तवते इनको बंधनते बंधन नहीं, मोक्षसों मोक्ष नहीं; बंध अरु मोक्ष दोनों शब्द भ्रांतिमात्र हैं, मैं जानता नहीं कि, बंध

अरु मोक्ष लोकविषे कहांते आये हैं; आत्माको न बंधन है, न मोक्ष है, ऐसे सत्‌रूपको असत्य रूपने ग्रसा है, जो कहता है, मैं दुःखी हौं, सुखी हौं, दुबला हौं, मोटा हौं इत्यादिक भ्रमनको देखता है, माया महाआश्चर्यरूप है, जिसने जगत्‌को मोहित किया है ॥ हे मुनीश्वर ! जब चित्त संवित् कलनारूप होताहै, अर्थ यह कि, जब दृश्यके साथ मिलिकै फुरणारूप होता है, तब घुरानकी नाई आपही आपको बंधन करता है, अरु जब दृश्यते रहित अंतर्मुख होता है, तब शुद्ध मोक्षरूप भासता है, बंध अरु मुक्ति दोनों मनकी शक्ति हैं, जैसा जैसा मन फुरता है, तैसा तैसा रूप भासता है, सो अनेक शक्ति आत्मासाथ अनन्यरूप हैं; सब आत्माते उपजी हैं, अरु आत्माविषे स्थित हैं, तिसविषे भिन्न होइकारि भासती हैं, तिसविषे लीनःहोतीहैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजतेहैं, तिसविषे स्थित होकारि लीन होजाते हैं, जैसे चंद्रमाते किरणैं उदय होइ कारि भिन्न भासतीहैं, बहुरि तिसीविषे लीन होती हैं, तैसे परमात्मारूपी महासमुद्र है, चेतनारूपी तिसविषे जल है, तिसते जीवरूपी अनेक तरंग उपजते हैं, तिसविषे स्थित हैं, बहुरि लीन होजाते हैं, कोऊ तरंग ब्रह्मरूप, कोऊ विष्णुरूप, कोऊ रुद्ररूप होइकारि प्रकाशते हैं, जिसते उपजे हैं, तिसी स्वभावविषे स्थित होते हैं, प्रमादते रहित कोऊ लहरी यम, कोऊ कुवेर, कोऊ इंद्र, कोऊ सूर्य, कोऊ अग्नि, कोऊ मनुष्य, कोऊ देवता, कोऊ गंधर्व, कोऊ विद्याधर, यक्ष, किन्नर आदिक रूप होइकारि उपजते हैं, बहुरि लीन हो जाते हैं, कोऊ स्थित होइकारि चिरकालपर्यंत रहते हैं, जैसे ब्रह्मादिक हैं कोऊ उपजिकारि कछु काल रहिकारि विध्वंस हो जाते हैं, सो देवता मनुष्य आदिक है, अरु कोऊ कीट सर्प आदिक फुरते हैं, चिरकाल भी रहते हैं, अल्पकालविषे नष्ट हो जातेहैं, आत्मसमुद्रते तरंगवत् फुरते हैं, बहुरि तिसविषे लीन हो जाते हैं, कोऊ ब्रह्मादिक उपजिकारि अप्रमादी रहता है, कोऊ प्रमादी हो जाता है, तुच्छशरीर होते हैं, यह संसार स्वप्न आरंभ हैं, अरु दृढ होकारि भासताहै, कोऊ कैसे कोऊ कैसे रूपकारि स्थित हैं, स्वरूपके प्रमादकारि दीनताको प्राप्त होताहै, ऐसे मानते हैं, मैं दुःखी हौं, मैं कृश हौं इत्यादिक भ्रमको मूढताकारि देखते हैं.

सो सब आत्मरूपके तरंग बडे फुरते हैं, कोऊ जंगमरूप, कोऊ स्थावर रूप, मनुष्य, देवता, दैत्य, तिर्यक्, पशु, पक्षी सब आत्मसमुद्रकी लहरी हैं. उपजिकारि बहुरि लीन हो जाते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितप्रकरणे संसारावर्त्तवर्णनं नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२.

उत्पत्तिविस्तारवर्णनम् ।

काल उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! देवता, दैत्य, मनुष्य आदिक जो आकार हैं, सो ब्रह्मसाथ अभिन्नरूप हैं, यह सत् है, जब मिथ्या संकल्पकेसाथ जीव कलंकित होता है, तब जानता है कि, मैं ब्रह्म नहीं, इस निश्चयको पायके मोहित होता है, मोहित हुआ अधःको चला जाता है, यद्यपि ब्रह्मसाथ अभिन्नरूप हैं, अरु तिसविषे स्थित है, तौ भी भावनाके वशते आपको भिन्न जानिके मोहको प्राप्त होता है, शुद्ध ब्रह्मविषे संवित्का उल्लेख होता है; सो कलंकितरूप कर्मका बीज होता है, तिसते आगे विस्तारको पाता है, जैसे जल जिस जिस बीजके साथ मिलता है, तिसी तिसी रसको प्राप्त होता है, तैसे संवित्का फुरना जैसे कर्मसाथ मिलता है, तैसी गतिको प्राप्त होता है; संकल्पकरि कलंकित हुआ अनेक दुःख पाता है, यह प्रमादरूप कर्म कैसा है, जैसे करञ्जुएका बीज है, तिसको मुष्टि भरि भरि बोताहै, सो अपने दुःखका कारणहै, यह जगत् आत्मरूपसमुद्रकी लहरियांहैं, विस्तारकरि फुरती हैं; कोऊ ऊर्ध्वको जाती हैं, कोऊ अधःको जातीहैं, बहुरि लीन हो जातीहैं, ब्रह्मा आदि तृणपर्यंत इन सबनका यही धर्म है; जैसे पवनका स्पंद धर्म है, तैसे इनका भी है, तिनविषे कई निर्मल पूजने योग्यहैं, सो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक हैं, कईक कछुक मोहसंयुक्त हैं, जैसे देवता, मनुष्य, सर्प हैं, कईक अनंत मोहविषे स्थित हैं; जैसे पर्वत वृक्ष आदिक हैं; कईक अज्ञानकरिकै मूढ हैं; सो कृमि, कीट, आदिक योनिको प्राप्त हुए हैं, यह दूरते दूर चले गये हैं; जैसे जलके प्रवाह करि तृण चला जाता है, देवता, मनुष्य, सर्प आदि कईक भ्रमवान् भी होते

हैं, कइक तटके निकट आयके बहुरि वहि जाते हैं, अर्थ यह जो सत्संग अरु सच्छास्त्रोंको पायके बहुरि मायाके व्यवहारमें वहे जाते हैं, यमरूप जो चूहा है, सो तिनको पडा काटता है, एक अल्पमोहको प्राप्त होकारि बहुरि, ब्रह्मसमुद्रविषे लीन भये हैं; अरु कइक अन्तर्गत ब्रह्मसमुद्रको जानिकै स्थित हुए हैं, तमअज्ञानको तरे हैं, कइक अनेक कोटिजन्म करि प्राप्त होते हैं, कई अधःते ऊर्ध्वको चले जाते हैं; बहुरि ऊर्ध्वते अधः चले जाते हैं, प्रमादकारि अनेकयोनि दुःखहूको पड़े भोगते हैं; जब आत्मज्ञान होता है, तब आपदाते छूटिकै शांतिमान् होते हैं ॥ इति श्री योगवासिष्ठे स्थितप्रकरणे उत्पत्तिविस्तारणं नाम द्वादशः सर्गः ॥१२॥

त्रयोदशः सर्गः १३.

भृग्वाश्वासनवर्णनम् ।

काल उवाच ॥ हे साधो ! यह जेता कछु जगत् भूतजात विस्तार है सो सब आत्मरूप समुद्रके तरंग हैं, एकही अनेक विचित्र विस्तारको प्राप्त भयाहै, जैसे वसंतऋतुविषे एकही रस अनेक प्रकारके फूलफलको धारता है, तैसे इस जीवनविषे जिनने मनको जीतिकारि सर्वात्मा ब्रह्मका दर्शन किया है, सो जीवन्मुक्त हुए हैं, और मनुष्य, देवता, यक्ष, किन्नर, गंधर्व आदिक सब पडे भ्रमते हैं. इनते इतर भी स्थावर मूढ अवस्थाविषे हैं, तिनकी क्या बात करनी है, लोकविषे तीन प्रकारके जीव हैं, एक अज्ञानी महामूढ हैं, दूसरे जिज्ञासु हैं, तीसरे ज्ञानवान् हैं, जो मूढ हैं, तिनको शास्त्रके श्रवण अरु विचारविषे कछु रुचि नहीं, अरु जो जिज्ञासु हैं, तिनके निमित्त ज्ञानवान्ने शास्त्र रचे हैं, जिस जिस मार्गकारि वह प्रबुद्ध आत्मा हुए हैं, तिस तिस प्रकारके तिनने शास्त्र रचे हैं, तिस मार्गकारि अपर जीव भी मोक्षभागी होते हैं ॥ हे मुनीश्वर ! सच्छास्त्र जो ज्ञानवान्ने किये हैं, सो जब निष्पाप पुरुष तिनको विचारता है, तब उसको निर्मल बोध उपजता है, तिसकारि मोह निवृत्त होताहै, जब विमलबुद्धि होती है, तब सच्छास्त्रके अभ्यासकारि मोह नष्ट होता है; जैसे

सूर्यके प्रकाशकरि तम नष्ट हो जाता है, अरु जो मूढ अज्ञानी हैं, सो आत्माके प्रमादकरि विषयको तृष्णाते मोहको प्राप्त होते हैं, जैसे अंधेरी रात्रि होवै, अरु ऊपरते कुहिड़ भी होवै, तब तमते तम होता है, तैसे मूढ मोहते मोहको प्राप्त होते हैं, अपने संकल्पकरि आपही दुःखी होते हैं, जैसे बालक अपने परछायेविषे वेताल कल्पिकरि आपही दुःखी होता है, ताते जेते कछु भूतजात हैं, तिन सबको सुखदुःखका कारण मनरूपी शरीर है, जैसे वह फुरता है, तैसी गतिको प्राप्त होता है, मांसमय शरीरका किया कछु सफल नहीं होता, असत् मांस आदिकका मिला हुआ जो आधिभौतिक शरीर है, सो मनके संकल्पकरि रचा है, सो वास्तव कछु नहीं, संकल्पकी दृढ़ताते आधिभौतिक भासने लगा है, स्वप्नशरीरकी नाईं है, मनरूपी शरीरकरि जो तेरे पुत्रने किया है तिसी गतिको प्राप्त भया है, इसमें हमारा कछु अपराध नहीं है ॥ हे मुनीश्वर ! अपनी वासनाके अनुसार जैसा कोऊ कर्म करता है, तैसे फलको प्राप्त होता हे, मांस शरीरमें कछु नहीं होता, जैसे जैसे तीव्र भावनाकरि तेरे पुत्रका मन फुरता गया है, तैसी तैसी गतिको पाता भया है, स्वर्ग नरक सबका भोक्ता भया है, अपने मनके होइकरि सब देखा है, बहुत कहनेकरि क्या है, उठहु, अब तहांहीं चलिये, जहां वह ब्राह्मणका पुत्र होकरि तप करने लगा है, गंगाके तटपर तहां उसको देखैं ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ हे भारद्वाज ! इसप्रकार जब काल भगवान्ने कहा, तब दोनों जगत्की गतिको हँसते उठि खडे हुए, हाथमें हाथ पकडिके कहते भये, बड़ा आश्चर्य है, ईश्वरकी नीति आश्चर्यरूप है, जीवको बड़े भ्रमको प्राप्त करती है, जैसे उदयाचल पर्वतते सूर्य उदय होता है, अरु आकाशमार्गविषे चलता है, तैसे प्रकाशकी निधि उदार आत्मा दोनों चले, इसप्रकार वसिष्ठजीने रामजीको कहा, तब सूर्य अस्त हुआ सर्व सभा स्नानको गई, दिन हुए बहुरि अपने अपने आसनपर आनि स्थित भये ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भृग्वाश्वासनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः १४.

भार्गवजन्मांतरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! काल अरु भृगुजी दोनों मंदराचल पर्वतसों भूमिपै उतरे, जहाँ पुत्र बैठा था, तहाँ चले, देवताओंके महा सुंदर स्थानोंको लंघते लंघते तहां गए, जहां ब्राह्मण शरीरकेसाथ गंगाके किनारे वह तप करता था, समाधिविषे स्थित है, तिसको देखत भए; मनरूपी जो मृग है, सो अचल होइकारि विश्रामको प्राप्त भया है, जैसे चिरकालका थका चिरकालपर्यंत विश्राम पावै, तैसे विश्राम पाया है, अनेक जन्मकी चिंतनाविषे भटकता भटकता अब तपविषे लगा है, अरु विश्रामको पाया है, जैसे चक्र भ्रमता ठहर जाता, तैसे ठहर गया है, संसाररूपी महासमुद्र है, तिसके आवर्त्तते निकसिकारि एकांत स्थित भया है, इंद्रिय अरु मनकी चपलताको त्यागिके निर्विकल्प समाधिविषे स्थित भया है, स्थावरकी नाईं अचल भया है, आधि व्याधि आदिक संपूर्ण कल्पनाजालते मुक्त परम शांतिको प्राप्त हुआ है; रागद्वेषते रहित होइकारि परमानंदपदविषे स्थित भया है, परमबोधरूप उदारताविषे समाधिस्थित तिसको देखिके कालने कहा ॥ हे भृगु ! देख; समाधिविषे स्थित है, अब जगाइये इसप्रकार मेघकी नाईं बड़े शब्दकारि काल भगवान्‌ने कहा, तब तिसकी कलना फुरणेकारि अरु बाहिर शब्दकारि शुक्रजी जागे, जैसे मेघके शब्दकारि मोर जागै, तैसे जागे, अर्धोन्मीलित नेत्र खोलिके काल अरु भृगुको अपने आगे देखत भया, अरु पहँचानता न भया, अरु देखा कि, दोनोंके श्याम आकार हैं; अरु बडे प्रकाशरूप हैं, जैसे विष्णुजी अरु सदाशिवजी होवैं, तिनको देखिके उठि खडा हुआ, अरु प्रीतिपूर्वक चरणवंदना करी, अरु कहा कि, मेरे बड़े भाग्य हैं, जो प्रभुके चरण इस स्थानविषे प्राप्त भयेहैं, बहुरि नम्रतासहित आदर किया; तब एक शिला पड़ी थी, तिसपर दोनों बैठि गये अरु वसुदेव नाम जो शुक्र है, तपके संयोगकारि तिसका नाम शांतातप भया, तिस तपस्वीने शांत हृदय अगमवचन काल अरु भृगुसे कहे,

हे प्रभो! मैं तुम्हारे दर्शनकारि शांतिको प्राप्त भया हौं,तुम सूर्य अरु चंद्रमा इकट्ठे मेरे आश्रम आये हौ, जो शास्त्रहू अरु तपकरिकै भी मोह निवृत्त होना कठिन है, सो तुम्हारे दर्शनकारि मेरे मनका मोह नष्ट भया है॥ हे साधो! ऐसा सुख ऐश्वर्यकारि नहीं प्राप्त होता, अरु अमृतकी वर्षाकारि भी ऐसा सुख नहीं प्राप्त होता, जैसा सुख महापुरुषके दर्शनकारि होता है, तुम्हारे दर्शनकारि हमारा मोह नष्ट भया है, तुम ज्ञानके सूर्य अरु चंद्रमा हौ॥ हे ऋषीश्वरो! तुमने हमारा स्थान पवित्र किया है, मैं शांतात्मा हुआ हौं, तुम कौन हौ? जो प्रकाशरूप उदार आत्मा मेरे इस स्थानपर आये हौ? जब इसप्रकार जन्मांतरके पुत्रने भृगुजीको कहा तब भृगुजीने कहा॥ हे साधो! तू आपको स्मरण कर कि, कौन है, अज्ञानी तौ नहीं; तू प्रबोध आत्मा है, जब इसप्रकार भृगुजीने कहा,तब नेत्र मूंदिकारि वही ध्यानविषे जुडि गया, एक मुहूर्तविषे अपना सब वृत्तांत देखिकै नेत्र खोले, अरु विस्मय होकारि कहत भया कि, ईश्वरकी गति विचित्ररूप है, इसके वश हुआ मैं बडे भ्रमको प्राप्त हुआ हौं, जगतरूपके चक्रपर आरूढ हुआ अनंत जन्मविषे भ्रमा हौं; तिन सबनको स्मरण करिकै आश्चर्यवान् होता हौं कि, मैं बहुत दुःख भोगे हैं, अरु अनेक अवस्था भोगी हैं, स्वर्गविषे रहा हौं, मंदराचल कल्पवृक्षके नीचे रहा हौं. सुमेरु कैलासादिक वनकुंजविषे रहा हौं, अनेक स्थानविषे ऐसा पदार्थ पावनेका नहीं, जो मैं नहीं पाया? ऐसा कोऊ कार्य नहीं, जो मैंने नहीं किया; ऐसा कोई इष्ट अनिष्ट नरक स्वर्ग पदार्थ नहीं, जो मैंने नहीं देखा. अब जो कछु जानने योग्य है; सो पाया हौं, अब मैं आत्मतत्त्वविषे विश्रामवान् भया हौं, संकल्पभ्रम मेरा नष्ट हो गया है, अब चलिये मेरा शरीर जहाँ मंदराचल पर्वतपर पड़ा है॥ हे भगवन् अब मुझको इच्छा कछु नहीं है, हेयोपादेय मुझको कछु रहा नहीं तथापि नीतिकी रचना देखिकै कहता हौं; जो बोधवान् हैं सो प्रकृत आचारविषे विचरतेहैं; आगे जैसे इच्छा होवे तैसे करिये; बोधवान् उसी आचारको अंगीकार करतेहैं, ताते अपने अपने प्रकृत आचारको ग्रहण करिकै व्यवहारविषे विचरै॥ इति श्रीयोग० स्थितिप्रकरणे भार्गवजन्मांतरवर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः॥ १४॥

पंचदशः सर्गः १५.

शुकप्रथमजीवनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार विचारकरिकै तीनों आकाशमार्गको चले, शीघ्रही मेघमंडलको उल्लंघिके सिद्धके मार्गसों मंदराचल पर्वतपर स्वर्णकी कंदराविषे आय स्थित भए, तब पूर्व जो शुकका शरीर था. तिसको देखते भए; अरु ब्राह्मण तपस्वीने कहा ॥ हे तात ! मेरा पूर्व शरीर देखौ, जो तुमने बहुत पालन किया था, कपूर सुगंधि करि शोभित किया था, फूलकी शय्यापर शयन करता था, सो अब माटीविषे लपटा पडा है, अरु सूख गया है, जिस शरीरकों देवस्त्रियां देखिकै मोहित होती थीं, अरु मुक्तामाला कंठविषे शोभती थीं; मानौ तारेकी पक्ति हैं, सो शरीर अब पृथ्वीपर गिर पड़ा है, नंदनवनविषे इसने अनेक भोग भोगे हैं; आत्मरूप जानिकै इसको मैं पुष्ट करता था, सो अब मुझको भयानक भासता है,जो शरीर देवांगनोंकेसाथ मिलता था, अरु रागवान् होता था, तिनकी चिंताते सूख गया है, जिन २ विलासको चाहता था, तिनको करता था, अब तौ चिंताते रहित स्थित हो रहा है, महाअभागी हुआ धूपकरिकै सूख गया है, महाविकराल भयानक जैसा भासता है, जिसको मैं आत्मरूप जानता था, जिसविषे अहंकारिकै विलास करता था, जिस शरीरविषे फूल कमल पडते थे, अरु तारागण प्रकाशते थे, तिसविषे कीडियां फिरती हैं, जो शरीर द्रवत् स्वर्णवत् सुंदर प्रकाशरूप था, सो धूपकारि सूखा भयानक भासता है, सब गुण इसको छोडि गये हैं; मानौ विरक्त आत्मा भया हैं, विषयते मुक्त निर्विकल्प समाधिविषे स्थित भया है ॥ हे शरीर ! तू अदृष्ट तनुको प्राप्त भयाहै, अब तेरेविषे क्षोभ कोऊ नहीं, चित्तरूपी वैताल तेरेविषे शांत हो गया है, आनेजानेते रहित विश्रामवान् हुआ है, सब कल्पना तेरी नष्ट भई हैं, संकल्पजाल मिट गया है, सुखसे सोया है; चित्तरूप मर्कटते रहित शरीररूप वृक्ष ठहरि गया है, हलनेते रहित

भया है सब अनर्थते रहित पहाडकी नाईं अचल भया है, यह देह अब सर्वदुःखते रहित परमानन्दविषे स्थित भया है ॥ हे साधो ! सब अनर्थका कारण चित्त है, जबलग चित्त शांतिमान् नहीं होता, तबलग जीवको आनंद प्राप्त नहीं होता, जब अमनशक्तिपदको प्राप्त होते हैं, तब महा आधि व्याधि जगत्के दुःखको तर विगत जो परमानंद तिसको प्राप्त होताहै ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्व धर्मके वेत्ता, भृगुका जो पुत्र था; तिसने तौ अनेक शरीर धारे थे, अरु बहुरि बहुरि भोग भोगे थे, अरु भृगुते जो शरीर उत्पन्न भया था, तिसको बहुत परिदेवना करी अरु औरका चिंतवना न किया सो क्या कारण है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शुक्रकी जो संवेदनकलना थी, सो जीवभावको प्राप्त भई थी, सो कर्मात्मक होइकरि भृगुते उपजी थी, सो सुन, आदि जो परमात्मतत्त्वते चित्कला फुरी है, सो भूताकाशको प्राप्त भई है, वही बात कलाविषे स्थित होइकारि प्राण अपानके मार्गसों भृगुके हृदयविषे प्रवेश करती भई, वीर्यके स्थानको प्राप्त होइकारि गर्भमार्गसों उत्पन्न भई, क्रमकरिकै बड़ी हुई; विद्या अरु गुणसंपन्न शुक्रशरीर होत भया, तिसको जो चिरकाल सेवन किया था, तिस कारणते उसको परिदेवना करी, यद्यपि वीतराग अरु निरिच्छित था, तौ भी जो चिरकालका अभ्यास किया था, सोई फुरि आया ॥ हे रामजी ! ज्ञानी होवै, अथवा अज्ञानी होवै व्यवहार दोनोंका तुल्य होता है; परंतु शक्ति अशक्तिका भेद है, ज्ञानवान् असंसक्त निर्लेप रहता है, अज्ञानी प्रियविषे बंधमान होता है, ज्ञानवान् मोक्षरूप है, अरु अज्ञानी दरिद्री है, जैसे वनविषे जालमें पक्षी फँसता है, तैसे अज्ञानी लोक व्यवहारविषे बंधमान होता है, व्यवहार जैसे ज्ञानी करता है, तैसे अज्ञानी करता है; वासनारहित सो निर्बंधहै, वासनासहित बंध है, वासनामात्र भेद है, जबलग शरीर है, तबलग सुखदुःखभी होताहै, परंतु ज्ञानवान् दोनोंविषे शांतबुद्धि रहताहै, अज्ञानी हर्ष शोककरि तपायमान होता है, जैसे स्तंभका प्रतिबिंब जलविषे पडता है, सो जलके हिलनेकारि हिलता भासता है, परंतु स्वरूपते स्थितही है; तैसे अज्ञानविषे सुखदुःखकारि सुखी दुःखी भासता है, परंतु स्वरूप

ज्योंका त्यों है, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब जलके हिलनेकारि हिलता भासता है, परंतु स्वरूपते ज्योंका त्यों है, तैसे ज्ञानवान् इंद्रियकारि सुखी दुःखी भासता है, स्वरूपते ज्योंका त्यों है, अरु अज्ञानी बाह्यते क्रियाका त्याग करता है, तौ भी बंध रहता है, ज्ञानवान् क्रिया करता है, तौ भी मोक्षरूप है, अन्तःकरण इंद्रियकारि जो अनात्मधर्मविषे बंधमान है, बाह्य कर्म इंद्रियकारि मुक्ति है, तौ भी बंधनमें है अरु अन्तःकरणकारि मुक्ति है, कर्म इद्रियकारि बंधन भासता है, तौ भी मुक्तिरूपहै, जो सब क्रीडाको त्यागि बैठा है, अरु अन्तर जगत्की सत्यता है, भावै कछु करै, भावै न करै, तौ भी वह बंधनमें है, अरु बाह्य भावै तैसा व्यवहार करै, अन्तरते अद्वैत ज्ञान है, तौ वह मुक्तिरूप है, तिसको कर्म बंधन नहीं करता, ताते हे रामजी! सब कार्य करौ, अरु अंतरते शून्य रहौ; सर्व ईषणाते रहित आत्मपदविषे स्थित होहु, अपने प्रकृति व्यवहारको करौ यह संसाररूपी समुद्र है, तिसविषे आधिव्याधिरूपी गढेले हैं, अहंममतारूपी गर्त हैं, तिसविषे जो गिरा है, सो ऊर्ध्वते अधःको जाता है; ताते संसारके भावविषे मत स्थित होहु; शुद्ध बुद्धि आत्मस्वभावविषे स्थित होहु; ब्रह्म है; शुद्ध है, सर्वात्मा है, निर्विकार निराकार आत्मपदविषे जो स्थित है, तिसको नमस्कार है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे शुक्रप्रथमजीवनं नाम पचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः १६.

भार्गवजन्मांतरवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार जब शुक्रने शरीरका वर्णन किया, अरु विकरालरूप देखिकै उसविषे त्यागबुद्धि करी, तब काल भगवान् शुक्रके वचनको न मानिकै गभीर वाणीसों बोलत भया ॥ काल उवाच ॥ हे शुक्र! तू इस तपरूपी शरीरका त्याग कर, अरु भृगुके पुत्रका जो शरीर है भार्गव, तिसको अंगीकार कर, जैसे राजा देशदेशांतरको भ्रमता अपने नगरविषे आता है, तैसे तू इस शरीरविषे प्रवेश कर-

काहेते जो भार्गव तनुके साथ असुरका गुरु होना है, यह आदि परमात्माकी नीति है, महाकल्पपर्यंत तेरा आयुर्बल है, महाकल्पका अंत होवैगा, तब भार्गवतनु नष्ट होवैगा, तुझको बहुरि शरीरका ग्रहण न होवैगा, जैसे रस सूखेते पुष्प गिर पडता है, तैसे प्रारब्धवेगके पूर्ण हुएते तेरा शरीर गिर पड़ैगा, अरु शरीरके होते जीवन्मुक्तिपदको प्राप्त हुआ प्रकृत आचारविषे विचरैगा, ताते तू शुक्रशरीर था, दैत्यका महागुरु होकारि स्थित होहु; यह ईश्वरकी नीति है, ताते इस शरीरको त्यागिकारि भार्गव शरीरविषे प्रवेश करु, अब हम जाते हैं, तुम दोनोंका कल्याण होवै, तुम अपने वांछितको प्राप्त होवहु ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! काल भगवान् ऐसे कह दोनोंके ऊपर पुष्प डारे, अरु अंतर्धान होगया, तब तपस्वी नीतिका विचारने लगा कि, क्या होना है ? विचारकारि देखा, जैसे काल भगवान्ने कहा, तैसेही होनाहै, ऐसे विचारिकारि महाविकृतरूप जो शरीर था तिसविषे प्रवेश किया, अरु तपस्वी ब्राह्मणका देह त्यागि दिया; जैसे वसंतऋतुविषे वल्लीमें रस प्रवेश करता है, तैसे भार्गवशरीरमें प्रवेश किया, जैसे सर्प कंचुकीको त्यागताहै, तैसे तपस्वीशरीरका त्याग किया, तब उस शरीरकी शोभा जाती रही, कंप कंप पृथ्वीपर गिर पडा, जैसे मूलके काटेते वल्ली गिर पडती है, तैसा वह देह गिरा, अरु शुक्रदेह जीवकलासंयुक्त हो आया, तब भृगुजी जीवकलासंयुक्त देह कृश जैसा देखिके उठि खडे हुए, हाथविषे जलका कमंडलु लिया, अरु मंत्रविद्या जो पुष्टिशक्ति है, तिसको पाठ कर पुत्रके शरीर ऊपर जल डारा, तिसके पानेकारि शरीरकी नाडी सब पुष्ट होगई, जैसे वसंतऋतुविषे कमलिनी प्रफुल्लित होती है, तैसे शरीर प्रफुल्लित हो आया, श्वास आने लगे, तब पिताके सन्मुख होइकारि नमस्कार करत भया, जैसे मेघ जलसों पूर्ण होइकारि पर्वतके आगे नमता है, तैसे विधिसंयुक्त नमस्कार कर नमता भया, अरु स्नेहकारि नेत्रते जल चलने लगा, तब पुत्रको देखिकै भृगुजी कंठ लगाया कि, मेरा पुत्र है, ऐसे स्नेहकारि पूर्ण हो गया ॥ हे रामजी! जबलग देह है, तबलग देहके धर्म फुरि आते हैं. इसप्रकार ज्ञानीको ममता स्नेह फुरि आई; तौ अपरकी क्या बात

कहनी है, पिता अरु, पुत्र दोनों बैठि गये, एक मुहूर्तपर्यंत कथा वार्त्ता करते रहे, बहुरि उठिकरि तपस्वी शरीरको जलाया, जो बुद्धिमान् हैं सो शास्त्राचारविषे स्थित होते हैं, तिसके अनंतर दोनों मंदराचल पर्वतविषे स्थित भए तपकरिके प्रकाशित है वपु जिनका, अरु श्याम कांति है, जीवन्मुक्त उदार आत्मा होइकरि वहां रहते भये, समय करिकै शुक्रजी दैत्यका गुरु होवैगा, अरु भृगुजी समाधिविषे स्थित होवैगा, ताते जो सब विकारते रहित जीवन्मुक्त पुरुष जगतगुरु है, सो सबको पूजने योग्य है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवजन्मांतरवर्णनं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः १७.

मनोराज्यसंमीलनवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जैसे भृगुके पुत्रको यह प्रतिभा फुरती गई, अरु सिद्ध होती गई तैसे अपर जीवको सिद्धि क्यों नहीं होती ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शुक्रका जो ब्रह्मतत्त्वते फुरणा हुआ है, सो भार्गवजन्मसैं हुआ है, अपर जन्मकारि कलंकित नहीं भया, सर्व ईषणाते रहित शुद्ध चैतन्य था निर्मल हृदयको जैसा फुरणा होती हैं, तैसी सिद्ध हो जाती है; अरु मलिन हृदयवान्का शीघ्रही संकल्प सिद्ध नहीं होता; जैसे भृगुके पुत्रको मनोराज्य हुआ, अरु भ्रमता फिरा तैसे सबही स्वरूपके प्रमादकरि भ्रमते हैं, जबलग स्वरूपका साक्षात्कार नहीं होता तबलग शांति प्राप्ति नहीं होती, यह मैंने भृगुके पुत्रका वृत्तांत तुझको सुनाया है, मनोराज्यकी दृढता अर्थ जैसे बीजते अंकुर फूल फल अनेक भावको प्राप्त होते हैं; तैसे सब भूतजातिको मनका भ्रमणा अनेक भ्रमको प्राप्त करता है; जेता कछु जगत् तुझको भासता है, सो सब मनके फुरनेका रूप है, मिथ्या भ्रमकरिकै नानात्व भासता है और कछु हुआ नहीं, एक एक प्रति ऐसा भ्रम है, सब संकल्पमात्र है, न कछु उदय होता है, न अस्त होता है, कदाचित् किसीको सब मिथ्यारूप मायामात्र है, जैसे

स्वप्नपुर अरु संकल्पनगर भासता है, परस्पर व्यवहार दृष्टि आते हैं, अरु हुआ कछु नहीं तैसे यह जाग्रत्भ्रम भी अज्ञानकारि दृष्ट आता है, भूत पिशाच आदिक जेते कछु जीव हैं, तिनका भी संकल्पमात्र शरीर है, जैसे उनको सुख दुःखका भोग होता है, तैसे तुम हमको होता है, जैसे यह जगत् है, तैसे अनंत जगत् पडे वसते हैं, परस्पर अज्ञानत्व है, एकको दूसरा नहीं जानता, जैसे एक स्थानविषे बहुत पुरुष शयन करते हैं, तिनको मनोराज्य स्वप्नभ्रम परस्पर अज्ञात होता है, तैसे यह जगत् है, वास्तवते कछु हुआ नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जो इस जगत्को सत् जानता है, तिसका पुरुषार्थ नष्ट होता है, जो भ्रांतिकारि वस्तु भासती है, तिसका सम्यक् ज्ञानकारि अभाव हो जाता है, यह जाग्रत् जगत् भी दीर्घ स्वप्न है, चित्तरूप हस्तीको बंधन है, चित्तसत्ताकरिकै जगत् सत् भासता है, अरु जगत् सत्ताकरिकै चित्त है, एकके नाश हुएते दोनोंका नाश हो जाता है, जब जगत्का सत् भाव नष्ट होता है, तब चित्त नहीं रहता, जब चित्त उपशम होता है, तब जगत् शांत होता है, इसप्रकार एकके नाश हुएते दोनोंका नाश होता है, सो दोनोंका नाश आत्मविचार करिकै होता है, अरु विचार तहाँ उपजता है जहाँ हृदय निर्मल होता है, जैसे उज्ज्वल वस्त्रपर केसरका रंग शीघ्रही चढ़ि जाता है, मलिन वस्त्रपर नहीं चढ़ता, सो निर्मल हृदय तब होता है जब शास्त्रके अनुसार क्रिया करता है ॥ हे रामजी! एक एक जीवको हृदयविषे अपनी अपनी सृष्टि है, मलिन चित्तकरि एकको दूसरा नहीं जानता, जब चित्त शुद्ध होता है, तब औरकी सृष्टिको भी जान लेता है, जैसे शुद्ध धातु परस्पर मिलि जाती है, इसको जब दृढ अभ्यास चिरपर्यंत होता है, तब सब कछु भासने लगता है, काहेते कि, सबका अधिष्ठाता एक आत्मा है, तिसविषे स्थित होनेते सबका ज्ञान होता है. ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! शुक्रको प्रतिभा मात्र आभास हुआ था, तिसविषे देश, काल, क्रिया, द्रव्य उसको दृढ होइकारि कैसे भासे हैं? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो कछु जगत् शुक्रने देखा है, सो अपने अनुभवरूप भंडारविषे मनकारि देखा है, जैसे मोरके अंडेसों

अनेक रंगवान् निकसते हैं, तैसे उसको अपने अंतर भ्रम भासि आया, जैसे बीजसों पत्र, टास, फूल, फल, निकसते हैं, तैसे जीव जीवको अपने अपने अनुभवविषे संसार खंड पडे फुरते हैं, यहां स्वप्नदृष्टांत प्रत्यक्ष है, जैसे एकएकके स्वप्नविषे जगत् होता है, तैसे यह जगत् है, दीर्घ स्वप्न जाग्रत् हो भासता है; जैसा दृढ होता है, तैसा भासने लगता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सृष्टिके समूह परस्पर कैसे मिलते हैं, अरु कैसे नहीं हैं ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मलिन चित्त है, सो परस्पर नहीं मिलता है, जो शुद्ध है, सो मिलता है, जैसे शुद्ध धातु मिलिजाती है, सुषुप्तरूप आत्मासों सब फुरते हैं, सो तन्मयरूप हैं, जिसको तिसविषे विश्राम होता है, सो ज्ञानदृष्टिकरि सबके साथ मिलि जाता है, जैसे जल-केसाथ जल मिलि जाता है, तैसे वह सबके साथ मिलिकरि सबको जानता है; और कोई नहीं जानता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकणे मनोराज्यसंमीलनवर्णनं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८.

जीवपदवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जेते कछु संसार खंड हैं, तिन सबका बीजरूप आत्मा है, सब आत्माहीका आभास है, सो आभासके उदय अस्त होनेविषे आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, अपने स्वभावके त्यागते रहित है, अरु सर्व जीवका अपना आप वास्तवरूप है, अरु सुषुप्तकी नाईं अस्फुरण है; तिस सत्ताते जीव फुरते हैं, सब स्वप्नवत् जगत् भ्रमको देखतेहैं, सो जीव जीव प्रति अपनी सृष्टि स्थितहै, जो पुरुष उलटिकै आत्म-परायण होता है, सो आत्मपदको प्राप्त होता है, जिन पुरुषोंको आत्मब्रह्मके साथ एकता भईहै, तिनको परस्पर औरकी सृष्टि भासती है, अंतःकरणविषे सृष्टि होतीहै, सो तिनका अंतःकरण मिलता है, तिस अंतःकरण जीवक-लाके मिलेते परस्पर सृष्टि भासि आतीहै, वह जानते हैं, जीवको अपनी अपनी सृष्टि है, सबको अपनी आप सन्मात्रसत्ता है, तिसविषे सब

सृष्टि स्थित होती है, जैसे कपूरका पर्वत होवे, तिसके अणुअणुविषे सुगंधता होती है, अरु सर्व अणुकी सुगंधताको पर्वतविषे एकता होती है, तैसे सब जीवका अधिष्ठान आत्मसत्ता है, जैसे सब नदीके जलका अधिष्ठान समुद्र है, तैसे सब जीवका अधिष्ठान आत्मा है, सो सृष्टि कहूँ परस्पर मिलती हैं, कहूं भिन्नभिन्न स्थित हैं, जहां चैतन्यमात्र सत्ताकेसाथ एकता है, तहां चित्तकी वृत्ति जिसकेसाथ मिला चाहै, तिसको मिलजाती है, मलिनचित्तवाला नहीं मिल सकता, अरु एक एक जीवविषे सहस्र सृष्टि परस्पर गुप्तरूप होती हैं, जहां जैसा फुरना दृढ होता है तहां तैसाही भासता है, जहां मनका फुरना कोमल होता है, सो सफल नहीं होता अरु जहां दृढ होता है, सो भासने लगता है ॥ हे रामजी ! जब देहकी भावना मिटि जाती है, अरु प्राणपवनहीके स्थित करनेते चित्तकी वृत्ति स्वभावकरि स्थित होतीहै, तब अपरके चित्तकी चेष्टा इसके चित्तविषे फुरि आती है, अरु जबलग चित्त मलिन होता है देहकी भावनाको नहीं त्यागता तबलग किसी पदार्थकेसाथ एकता नहीं होती अरु जिसका चित्त निर्मल होता है तिसको जैसे औरके चित्तका ज्ञान हो आता है; तैसे और सृष्टिविषे भी मिलनेकी शक्ति हो आती है अशुद्धको नहीं होती अरु सर्व जीवकी तीन अवस्था जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति होती हैं, यह तीनोंही अवस्था आत्माविषे जीवत्वक लक्षण हैं, जैसे मृगतृष्णाकी, नदीके तरंग किरणोंविषे होते हैं, तिनका अभाव है, अरु जीवको आत्माविषे प्रमाद है, तिसकरि तीनहू अवस्थाविषे पड़ा भटकता है, जब चित्तकला तुरीयाविषे स्थित होती है, तब जीवन्मुक्त होता है, आत्मसत्ता स्वभावविषे स्थित हुए ते आत्माके साथ एकताको प्राप्त होता है, अरु सब जीवनके साथ सुहृद्भाव होता है, जब अज्ञानी सुषुप्त आत्मसत्ताते जागता है, अर्थ यह कि संसारको चिंतवता है, तब संसारको प्राप्त होता है, संसारविषे और संसार, तिसविषे इसप्रकार प्रमादकरिके अनेक सृष्टिको देखता है, जैसे केलेके स्तंभसों पत्रका समूह निकसि आता है, तैसे सृष्टिसों सृष्टिको देखता हैं, शांतिको नहीं प्राप्त होता, अनेक भ्रमको देखता है, जब उलटिके अपने स्वभावविषे स्थित

होता है, तब नानात्वभाव मिटि जाता है, शांतरूप होता है, जैसे केलेका अंतर शीतल होता है ॥ हे रामजी ! जगतके समूह भासते हैं, तौ भी आत्माविषे कछु द्वैत नहीं, आत्माके साथ एकरूप हैं, जैसे केलेके अंतर पत्रते इतर कछु नहीं निकसता, तैसे आत्माते इतर जगत् कछु नहीं, जैसे बीज फूल भावको प्राप्त होता है, फूलते बहुरि बीज होता है, तैसे ब्रह्मते मन होता है, बहुरि बुद्धिकरि ब्रह्म होता है, बीजका कारण वही रस है, आत्माविषे कारण कार्यभाव कछु बनता नहीं, अद्वैत अचिंत्यरूप है, आदि परमात्मा अकारणरूपहै, सोई विचारने योग्यहै, औरके साथ क्या प्रयोजन है ? बीज जब अपने भावको त्यागता है, तब फूलभावको प्राप्त होता है, अरु ब्रह्मसत्ता अपने स्वभावको कदाचित् नहीं त्यागती, अरु बीज परिणामकरि आकाररूप है, आत्मा अकृत्रिम निराकार अच्युतरूप है, इसकारणते आत्मा बीजकी नाईं भी कहना नहीं बनता, आकाशते आकाश नहीं उपजता है, अरु अभिन्नरूप है, न कोऊ उपजता है, न किसीको उपजाया है, केवल ब्रह्म आकाश अपने आपविषे स्थित है, जब द्रष्टा पुरुषको देखता है, तब आपको नहीं देख सकता, काहेते कि; मनोराज्यका जगतविषे परिणाम जाता है, तब विद्यमानवस्तुकी संभाल नहीं रहती, देहादिकविषे आत्माभिमान होता है, जो पुरुष आत्मसत्ताको देखता है, तिसको जगत्भाव नहीं रहता, अरु जो जगत्को देखता है, तिसको आत्मसत्ता नहीं भासती, जैसे मृगतृष्णाकी नदीको झूठ जानता है, तिसको जलभाव नहीं रहता, अरु जल जानता है, तिसको असतबुद्धि नहीं होती आकाशकी नाईं पूर्ण पुरुष द्रष्टा है, जब इस दृश्यकी ओर जाते हैं, तब आपको देखि नहीं सकते, आकाशकी नाईं ब्रह्मसत्ता सब ठौर पूर्ण है,सो अज्ञानीको नहीं भासती, अरु जो दृश्यका अत्यंत भाव है, सोई पड़ा भासता है, अनुभवका भासना दूर होगया है ॥ हे रामजी ! जो कोऊ स्थूल पदार्थ होताहै, पहाड वृक्ष आदिक तिसके आगे पटल आवता है, तब वह नहीं भासता तौ जो सूक्ष्म निराकार द्रष्टा पुरुष है, तिसके आगे आवरण आवै, तब वह कैसे भासै ? द्रष्टा पुरुष अपनेही भावविषे स्थित है; दृश्यभावको नहीं प्राप्त

होता, अरु दृश्य भासता है; तब द्रष्टा देखनेविषे नहीं आता; अरु दृश्य कछु वस्तु नहीं है, ताते द्रष्टा एक परमात्माही अपने आपविषे स्थित है, जो आत्मरूप सर्व शक्तिमान् देव है; जैसा फुरणा तिसविषे होता है, तैसाही शीघ्र भास आता है, जैसे वसंतऋतुविषे एक रस अनेकरूपको धारता है, टास, फूल, फल होते हैं, तैसे एक आत्मसत्ता अनेक जीव-देह होके भासती है, जैसे अपनेही अंतर अनेक स्वप्नभ्रमको देखता है, तैसे अहं आदिक जगत् दृश्यभ्रमको अनुभव प्राप्तही होताहै, अरु स्वरू-पते कछु अपर हुआ नहीं; जैसे एक बीजके अंतर पत्र, टास, फूल, फल अनेक होते हैं, तिसविषे और बीज होता है, बीजके अंतर और वृक्ष, तिसके अंतर और बीज; इसीप्रकार एक बीजके अंतर अनेक वृक्ष होते हैं, तैसे एक आत्माविषे चिद्अणु अनेक फुरते हैं; तिनके अंतर सृष्टि, बहुरि सृष्टिके अंतर चिद्अणु, बहुरि चिद्अणुके अंतर सृष्टि, इसीप्र-कार आत्माविषे अनेक सृष्टि ब्रह्मांड हैं, तिनकी संख्या कछु कही नहीं जाती अपने आपकरि फुरते हैं, आप स्वाद लेता है; एक एक चिद्अणुके अंतर अनेक सृष्टि हैं, जैसे तिलविषे तेल है, तैसे चिद्अणुविषे आ-काश पवन आदिक अनेक सृष्टि स्थित हैं, आकाशविषे पवन, अग्नि-विषे जल, सर्व भूतविषे पृथ्वी सृष्टि स्थित है, ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं, जो चित्तसत्ताते रहित होवै, अरु जहां चित्त है, तहां तिसका आभास-रूप द्रष्टा भी स्थित है, जैसे एक डब्बेविषे लौंग होते हैं, तिनके नष्ट हुएते डब्बा नष्ट नहीं होता, जैसा जैसा तिसविषे फुरना होता है, तैसा स्थित होता है; सबका अधिष्ठानरूप आत्मा है, जैसे जेते कछु कमल हैं, तिनको पूरणहारा जल है, तिसकरि सब विस्फूर्जित होते हैं, अरु प्रकाशते हैं, तैसे सब नष्टहूंको सत्ता देनेहारा आत्माहै, सबका आश्रय-रूप आत्मतत्त्व है, अरु यह जगत् दीर्घ स्वप्नरूप अपने अनुभवते उदय हुआ है, सो बाह्यरूप होइकरि भासता है, तिस स्वप्नते आगे और स्वप्नांतर होताहै, तिसते आगे और स्वप्न, इसीप्रकार सृष्टिकी स्थिति भई है, जैसे एक बीजते अनेक वृक्ष होते हैं, तैसे एक चिद्अणुविषे अनेक सृष्टि स्थित हैं, जैसे जलविषे अनेक तरंग भासते हैं, तैसे आत्मानुभव-विषे अनेक जगत् भासते हैं, सो अभिन्नरूप हैं; ताते द्वैतभ्रमको त्यागि

है, न कोऊ देश है, न कालक्रिया जगत् है, केवल एक अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थितहै, तैसे आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, ब्रह्म आदि कीटपर्यंत जेता कछु जगत् भासता है, सो एक परमात्माही अपने आपविषे किंचनरूप होताहै, जैसे एक रससत्ता कहूं फूल सुगंधसहित भासती है, कहूं काष्ठरूपको प्राप्त होती है, तैसे एक परमात्मसत्ता कहूं चेतनरूप होइकारि भासती है, कहूं जडरूप होइकारि देखाई देती है, जो सर्वगत अविनाशी आत्मा है, सोई सबका बीजरूप है, तिसीके अंतर सब जगत् स्थित है, जिसको आत्माका प्रमाद है, तिसको नानारूप भासता है, जैसे जलविषे डुबै, बहुरि निकसै, बहुरि डुबै, बहुरि निकसै, अरु जैसे स्वप्नविषे और स्वप्नांतरको प्राप्त होता है, तैसे प्रमाददोषकरिकै भ्रमते भ्रमांतर नानाप्रकारके जगत्को देखता है, जगत् अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं, जगत् कछु हुआ नहीं, काहेते कि, आत्माही जगत् जैसा हो भासताहै, भ्रांति करिकै जगत् भासताहै, जैसे विचाररहितको स्वर्णविषे भूषणबुद्धि होती है, विचार कियेते भूषणबुद्धि नष्ट हो जाती है, एकही स्वर्ण भासता है, तैसे जो विचारते रहित है, तिसको यह जगत्पदार्थ भासतेहैं कि, यह मैं हौं, यह जगत् है, यह उपजा है, यह लीन होता है, अरु जिसको सत्संग शास्त्रके संयोगते विचार उपजा है, तिसको दिनप्रतिदिन भोगकी तृष्णा घटती जाती है, आत्मविचार दृढ होता जाता है, जैसे किसीको ताप आता है, सो औषधकरिकै निवृत्त हो जाता है, सो दो लक्षण तिसविषे प्रत्यक्ष होते हैं; एक तृषा बहुत थी, सो निवृत्त हो जाती है, दूसरी शरीरसों तप्त निवृत्त हो जाती है, शीतलता प्रगट होतीहै, तैसे ज्यों ज्यों विवेक दृढ होता है, त्यों त्यों इंद्रियका जीतना होता है; संतोषकारि अंतर शीतल होताहै, सर्व आत्मही भासताहै, यह विवेकका फलहै॥ हे रामजी! जिस पुरुषको वचनका विवेकहै, अरु निश्चयविषे नहीं, तिसका विवेक कछु कार्य सिद्ध नहीं करता, जैसे मूर्तिका अग्नि लिखा होता है, तिसते कछु कार्य सिद्ध नहीं होता, तैसे निश्चयते रहित वचनका विवेक है, सो दुःखको निवृत्त नहीं करता, शांति नहीं प्राप्त होती है, जैसे जब पवन

चलता है, तब पत्र वृक्ष हिलते हैं, उसका लक्षण भासता है, अरु वाणी-कारि कहिये तब हिलते नहीं, तैसे जब विवेक हृदयविषे आता है, तब भोगकी तृष्णा घट जाती है, मुखके कहने कारि तृष्णा घटती नहीं; जैसे चित्रकी मूर्तिपर अमृत लिखा होवै, सो पान करने अरु अमर होनेका कार्य नहीं करता, अरु मूर्तिका लिखा अग्नि तिसको निवृत्त नहीं करता अरु मूर्तिकी लिखी स्त्री स्पर्श करने अरु संतान उपजनेका कार्य नहीं करती, तैसे मुखका विवेक वाणीविलास है, अरु भोगकी तृष्णाको निवृत्त कर शांतिको प्राप्त नहीं करता; जैसे मूर्तियां देखनेमात्र है; तैसे वह विवेक वाग्विलास है ॥ हे रामजी ! प्रथम जो विवेक आता है तब रागद्वेषको नाश करता है, अरु ब्रह्मलोक पर्यंत जेते कछु विषय भोगरूप हैं, तिनकी तृष्णा अरु वैरभावको नष्ट करता है, जैसे सूर्यके उदय हुएते अंधकार नष्ट होता है, तैसे विवेकके उदय हुएते अज्ञान नष्ट हो जाता है, अरु पावनपदकी प्राप्ति होती है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जीवपदवर्णनं नाम अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशतितमः सर्गः १९.

जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीयारूपवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सर्व जीवका बीज परमात्मा है, सो सर्व ओरते आकाशकी नाईं स्थित है, तिसके फुरनेका नाम जीव है, सो जीव जीवके अन्तर जगत् है, तिसके आगे और नानाप्रकारकी रचना है, वस्तुते चिद्घन जीवके रूपसों अंतर स्थित भया है, ताते सब जीव चिद्घनरूप हैं, जैसे केलेके स्तंभविषे पत्र होते हैं, तैसे आत्म सत्ताके अन्तर जीव स्थित हैं; जैसे पुरुषके अन्तर कीट होते हैं. तैसे आत्माके अन्तर जीवराशि हैं; जैसे प्रस्वेद कारिके जुवां लीखें आदिक जीव उपजते हैं; और पदार्थते कीट उपज आते हैं, तैसे आत्मासों चित्कलाके फुरनेकारि जीवके समूह फुरि आते हैं, बहुरि जीव जैसी जैसी सिद्धताके निमित्त यत्न उपासना करते हैं, तैसी गतिको प्राप्त होते हैं;

उपासनाकी विचित्रताते नानाप्रकारकी गतिको प्राप्त होते हैं, जो देवताकी उपासना करते हैं सो देवताको प्राप्त होते हैं, यक्षके उपासक यक्षको प्राप्त होते हैं, इसी प्रकार जिसकी उपासना करते हैं; तिसीको प्राप्त होते हैं, ब्रह्मके उपासक ब्रह्मको प्राप्त होते हैं, ताते जो अतुच्छ पद है; तिस महत्पदका आश्रय करो, जैसे शुक्र जब दृश्यकी ओर लगा, तब अनेक प्रकारके दृश्य भ्रमको प्राप्त हुआ, जब शुद्ध बुद्धकी ओर आया, तब निर्मल बोधको प्राप्त हुआ, जैसे जिसकी कोऊ उपासना करता है, सो तिसको प्राप्त होता है, अन्यको नहीं प्राप्त होता ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जाग्रत् अरु स्वप्नका जो भेद है सो कहौ कि जाग्रत् क्या है, अरु स्वप्न क्या है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! स्थिरप्रतीतिका नाम जाग्रत् अरु अस्थिर प्रतीतिका नाम स्वप्न है, जो चिरकाल रहता है, तिसका नाम स्थिर है, अरु जो अल्पकाल रहै, तिसका नाम अस्थिर है, दीर्घ काल प्रतीतिका नाम जाग्रत् है; अल्पकालका नाम स्वप्न है. और भेद कोऊ नहीं, दोनोंका अनुभव सम होता है, जो शरीरके अंतर स्थित होइकरि शरीरको जिवावता है, तिसका नाम जीव है, तेजरूप है; बीजरूप है; जीव धातु है, यह सब तिसके नाम हैं, सब जीवधातु स्पंदरूप होता है, जीवतके रंध्रविषे पसरती है तब मन वाणी देहकरि सब व्यवहार होता है, रंध्र खुलि जाते हैं; तब इसको जाग्रत् कहते हैं, अरु जब चित्तकला जाग्रत् व्यवहारविषे स्पष्टरूप होती है, अरु अंतर होइकरि फुरती है, तिसकरि अन्तर जगद्भ्रम भासने लगता है, तब स्वप्न कहाता है, अब सुषुप्तिका क्रम श्रवण कर, मन, वाणी अरु शरीरकरि जहां क्षोभ कोऊ नहीं, अरु स्वच्छवृत्ति जीवधातु अन्तर स्थित होती है, हृदय-कोशविषे प्राणवायुकरि क्षोभ नहीं होता, नाडी रसकरि पूर्ण होती हैं, उस मार्गते प्राण आनेजानेसों रहित होते हैं. क्षोभते रहित सम वायु चलता है, तिसका नाम सुषुप्ति है, जैसे वायुते रहित दीपक गृहविषे एकांत उज्ज्वल प्रकाशता है, तैसे तहां संवितसत्ता अपने आपका अनुभव लेती है, जैसे तिलविषे तेल स्थित होता है, तैसे जीव संवित् कलनाकरिके जो कल्पता है; सो तिस कालमें अपने आपविषे होता है, जैसे बर्फविषे शीतलता होती है, घृतविषे चिक-

नाईं होती है; तैसे तहां संवितविषे संवित्सत्ता स्थित होती है; तिसका नाम सुषुप्तिअवस्था हैं, जडरूप तिस सुषुप्तिअवस्थाते जागैं अरु दृश्यभावको प्राप्त न होवै, निर्विकल्प प्रकाशताविषे स्थित होवै; सो ज्ञानरूप तुरीया है, तब व्यवहार पडा करै, तौ भी जीवन्मुक्त है, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिविषे बंधमान नहीं होता ॥ हे रामजी ! आत्मसत्ताते फुरना होता है, अरु स्वरूप विस्मरण हो जाता है, अरु फुरना दृढ होकरि स्थित होता है, इसीका नाम जाग्रत् है, अरु स्वरूपते प्रमाददोष करिके फुरे, जगत् भासे तिसको सत्‌रूप जानै, यह प्रतीति थोडा काल रहिकरि बहुरि निवृत्त हो जावै, तिसका नाम स्वप्न है, अरु दृश्य फुरनेका अभाव हो जावै अरु अज्ञातवृत्ति जडतारूप तिसका नाम सुषुप्ति है, अरु अनुभवविषे ज्ञान स्थितहै, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनोंका व्यवहार होवै अरु निश्चयविषे इनका सद्भाव रंचक भी न होवै, केवल ज्ञानविषे अहंप्रतीति होवै, वृत्ति तिसते चलायमान न होवै, तिसका नाम तुरीयापद है, तिसविषे स्थित भया जीवन्मुक्त होता है, और जो जीव है, सो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीन अवस्थाविषे स्थित होते हैं, जब नाडी अन्नके रससों पूर्ण हो जाती हैं; प्राणवायु हृदय नाम्नी नाडीविषे नहीं आता, तब चित्तसंवित् अक्षोभरूप सुषुप्त होता है, जब अन्न उस नाडीसों पचता है, अरु प्राणवायु चलने लगता है, तब चित्तसंवित् क्षोभरूप फुरणे लगता है, तिस फुरणे करि अपने अंतरही बडे जगद्भ्रमको देखता है, जैसे बीजते वृक्ष होता है, जब वायुका रस नाडीविषे बहुत होता है, तब चित्तसत्ता आकाशविषे उडना, अरु वायु अँधारियादिक पदार्थको देखता है, अरु जब कफका रस नाडीविषे अधिक होता है, तब फूल, बेलियां, बावलियां, जल, मेघ, बगीचे, आदिक पदार्थ भासते हैं, जब पित्तकी अधिकता होती है; तब उष्णरूप अग्नि रक्त वस्त्र आदिक भासने लगते हैं, इसप्रकार वासनाके अनुसार जगद्भ्रमको देखता है, जैसी जैसी भावना दृढ होती है, तैसाही पदार्थ दृढ हो भासता है, अरु जब पवन क्षोभायमान होता है, चित्तसंवित् नेत्र आदिक द्वारसों बाह्य निकसिकरि रूपादिकका अनुभव करती हैं, सत् जानिके चिरपर्यंतका नाम जाग्रत् है, वासनाके अनुसार मनरूपी

शरीरसाथ नेत्र जिह्वादिक विना रूपरसादिकका अनुभव होता है, तिसका नाम स्वप्न है, स्वरूपते न कोऊ स्वप्न है, न जाग्रत् है, न सुषुप्ति है, केवल सत्ता अपने आपविषे स्थित है, तिसके फुरनेका नाम जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति है, चिरकाल फुरनेका नाम जाग्रत् है, अल्प कालका नाम स्वप्न है, सो प्रतीतिका भेद हुआ, वस्तुते भेद कछु नहीं, जो वस्तुसे भेद हुआ, तौ जगत्स्वरूप हुआ क्यों ? ताते यही भावना दृढ करहु कि, जगत् असत्रूप स्वप्नवत् है, सद्भावना करनी इसविषे दुःखका कारण है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयारूप वर्णनं नाम एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः २०.

भार्गवोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह मैं तुझको मनका रूप निरूपण करि दिखाया है, अवस्थाका निरूपण भी इसनिमित्त किया है, और प्रयोजन कछु नहीं ताते जैसा निश्चय चित्तविषे होता है, तैसाही हो भासता है, जैसे अग्निविषे लोहा डारिये सो अग्निरूप हो जाता है, तैसे मन जिस पदार्थकेसाथ लगता है, तिसका रूप हो जाता है; भाव, अभाव, ग्रहण, त्याग, सब मनहीकरि होते हैं, और न कोऊ सत् है, न असत् है, केवल मनकी चपलता करि पडे फुरते हैं, मनके मोहकरि जगत् भासता है, मनके नष्ट हुएते जगत् नष्ट हो जाता है, जो मलिन मन है, सो अपने फुरनेकरि जगत्को रचता है, यह मनही पुरुष है, इसको तुम अशुभ मार्गविषे नहीं जोड़ना, जब मनको जीतौगे, तब सर्व जगत्विषे तुम्हारी जय होवैगी, मनके जीते सब जगत् जीता जाता है, तब बड़ी विभूति प्राप्त होती है, जो शरीरका नाम पुरुष होवै, तौ शुक्रका शरीर पड़ा था और शरीर न रचता, शरीर वहाँ पडा रहा, अरु मन और शरीरको रचता फिरा, ताते शरीरका नाम पुरुष नहीं, मनहीका नाम पुरुष है, शरीर चित्तका किया होता है, शरीरका किया चित्त नहीं होता, जिस ओर चित्त जाय लगता है, तिसी पदार्थकी प्राप्ति होती है, इसविषे

संशय नहीं, ताते अति तुच्छ पद है, आत्मसत्ताका चित्तविषे सदा अभ्यास करै और भ्रमको त्यागि देहु, जब मन दृश्यकी ओर संसरता है, तब अनेक जन्मके दुःखको प्राप्त होता है, अरु जब आत्माकी ओर इसका प्रवाह होता है, तब परमपदको प्राप्त होता है, ताते दृश्य भ्रमको त्यागिके आत्मपदविषे स्थिति करहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशतितमः सर्गः २१.

विज्ञानवादवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सब धर्मके वेत्ता ! मेरे हृदयविषे बड़ा संशय उत्पन्न भया है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकै पसर जाता है, तैसे मेरे हृदयविषे संशय पसर गया है, जो देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित नित्य निर्मल विस्तृत निरामय आत्मसत्ता है, तौ तिसविषे मन नामक मलिन संवित् जो है सो कहांते आया, अरु कैसे स्थित भया, जिसते इतर औरवस्तुही कछु नहीं, न आगे होवैगी, तिसविषे कलंकता कहांते आई ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तुझने भला प्रश्न किया है, अब तेरी बुद्धि मोक्षभागी हुई है, जैसे नंदनवनके कल्पवृक्षके साथ कल्पमंजरी लगती है, तैसे तेरी बुद्धि पूर्व अपरके विचारते जागी है, तू अब तिस पदको प्राप्त होवैगा, जिस पदको शुक आदिक प्राप्त हुए हैं, अरु तेरे प्रश्नका उत्तर मैं सिद्धांतकालविषे कहौंगा; अरु तिस कालविषे तुझको आत्मपद हस्तामल भासैगा ॥ हे रामजी ! सिद्धांतका प्रश्न उत्तर सिद्धांत कालविषे शोभता है, जिज्ञासु कालविषे जिज्ञासुका शोभता है, जैसे वर्षाकालविषे मोरकी वाणी शोभती है, अरु शरत्कालविषे हंसकी वाणी शोभती है, अरु जैसे वर्षाकालके नष्ट हुएते स्वाभाविकही आकाशकी नीलता पडी भासती है, अरु जैसे वर्षाकालविषे मेघकी घटा शोभती है, तैसे प्रश्न उत्तर भी जैसा समय होवै, तैसाही शोभता है ॥ हे रामजी ! मैं तुझको अनेक प्रकारके दृष्टांत युक्तिकरि कहौंगा,

मनका स्वरूप अरु जिसप्रकार यह निवृत्त होता है सो भी क्रमकरि बहुत प्रकार कहौंगा. मनकी शांतिका उपाय वेदने निर्णय किया है अरु शास्त्रकारने कहा है, तिनके लक्षण तू श्रवण कर. चंचल जो मन है, तिसने जैसा जैसा भाव अंगीकार किया है, तैसाही रूप होइकरि भासने लगा है, जैसे पवन जैसी सुगंधिकेसाथ मिलता है, तैसा तिसका स्वभाव हो जाता है, जैसे जल जिस रंगकेसाथ मिलता है, तैसा रूप हो भासता है, तैसे मन जिस पदार्थकेसाथ मिलता है, तिसका रूप हो जाता है, जो मनते रहित शरीरकेसाथ क्रिया करता है, तिसका फल कछु नहीं होता, अरु मनकारिकै करता है तिसका फल पूर्ण होता है, जिस ओर मन जाता है, शरीर भी तिसी ओर लगा जाता है, जो कर्म इंद्रिय क्षोभवान् होवैं, अरु बुद्धि इंद्रिय जो मनरूप हैं; सो क्षोभको प्राप्त होवैं, अरु देह इंद्रिय स्थिर होवै; तौ कार्य होता है जैसे धूलि क्षोभायमान होवै; तौ पवनविना आकाशको उड नहीं सकती अरु पवन क्षोभायमान होवै तौ भावै तैसी धूलि स्थित होवै, तिसको उड़ाय ले जाता है, तैसे देह पड़ा रहता है, मन अपने फुरनेकारि स्वप्नविषे अनेक अवस्थाको प्राप्त होता है, अरु जाग्रत्‌विषे भी जिस ओर मन फुरता है, देहको भी तहां ले जाता है, तातै सब कार्यका बीज मन है, मनते सब कर्म होते हैं, मन अरु कर्म परस्पर अभिन्नरूप हैं, जैसे फूल अरु सुगंध अभिन्नरूप होते हैं, तैसे मन अरु कर्म हैं, जिस कर्मका अभ्यास मनविषे दृढ होता है, तिस कर्मकी शाखा पसरता है, अरु तिसी फलको प्राप्त होता है, अरु तिसी स्वादका अनुभव करता है; जिस जिस भावको चित्त ग्रहण करता है, तिसी तिसी भावको प्राप्त होता है, अरु तिसीको कल्पनारूप मानता है. धर्म, अर्थ, काम मोक्ष ये चार पदार्थ हैं, तिनविषे जिसकी भावना मन दृढ करता है, तिसको सिद्ध करता है; कपिलदेवने जो सब शास्त्र किये, सो मनकी सत्ताकारि किये हैं, तिसने निर्णय किया है कि, प्रकृति जो माया है, तिसके दो स्वभाव हैं, एक अनुलोमपरिणाम है, दूसरा प्रतिलोमपरिणाम है, प्रतिलोमपरिणाम होता है, तब दृश्यभावको प्राप्त होता है, अरु अनुलोमपरिणाम होताहै; तब

अंतर्मुख आत्माकी ओर आता है, आत्मा शुद्धरूप है, आत्माकी ओर अनुलोमपरिणाम मोक्षका कारण है, और उपाय कोऊ नहीं. अरु वेदांतवादीने यह निश्चय किया है कि, यह सर्व ब्रह्मही है, शम दम आदिककरि जब मन संपन्न होता है, तब यह निश्चय धारण होता है कि; सर्व ब्रह्म है, ब्रह्मज्ञानविना और यत्नकरि मोक्ष नहीं होता, उनके चित्तविषे यही निश्चय है, अरु विज्ञानवादी कहते हैं, जबलग बुद्धि पडी फुरती है, तबलग संसार है, जब इसका फुरणा अपने स्वभावविषे होता है, तब उस कालविषे स्वरूप स्थित होता है, जब वह काल आवैगा, तब मोक्षकी प्राप्ति होवैगी, अर्हंत जैसे बडे हैं, तिनको अपने निश्चय अनुसार भासताहै, मीमांसा, पातंजल, वैशेषिक, न्यायते आदिक लेकरि शास्त्रकार हैं, सो अपनी बुद्धिकरि जैसा निश्चय तिनने धरा है, तैसाही तिनको भासता है, स्वरूपते न कोऊ मत है, न शास्त्र है, सबका कारण मन है, मनको अंगीकार करिकै सब मत डूबे हैं, सबका कारण मन है, न निंब कटु है, न मधु मिष्ट है, न अग्नि उष्ण है, न चंद्रमा शीतल है, जैसा जैसा जिनके मनविषे निश्चय होता है, तैसा तैसा तिसको भासता है, किसीको निंब प्यारी होती है, मधु कटु लगता है, नीमका जो कीट है, तिसको मधु नहीं रुचता, तौ मधु कटुक होगया क्यों ? इसी कारणते वास्तव नहीं; विरहिणी स्त्रीको चंद्रमा अग्निवत् भासता है; चकोर अग्निको भक्षण करिलेता है, जैसी जैसी भावना पदार्थविषे हो गई है, तैसा तैसा हो भासता है, सब जगत् भावनामात्र है, जिस पुरुषको दृश्यविषे भावना है, सो अनेक दुःख भ्रमको देखता है, अरु जिसको शमदमादिक साधनकरिकै अकृत्रिमपदकी प्राप्ति हुई है, अरु मन तदाकार भया है, सो शांतिको प्राप्त भया है, और नहीं प्राप्त होता ॥ हे रामजी ! यह जगत् दृश्य तेरे मनके स्मरणविषे स्थित भया है, सो तुच्छरूप है, इसका मनते त्याग करहु, यह सुख दुःख आदिक महाभ्रमको देनेहारा है, यह संसार अपवित्र अरु असत् मोहरूप महाभयका कारण है, आभासरूप है, मायामात्र अविद्यारूप है, इसकी भावना भयका कारण है; जगत्के साथ संवित्की तन्मयता होती है, इसका

नाम कर्मबुद्धीश्वर कहते हैं, जब द्रष्टाको दृश्यके साथ संयोग होता है, तब बडे मोहको प्राप्त होता है, दृश्यके साथ मिलिके भ्रमकरि अनात्मविषे आत्माभिमान करता है, देहादिकको अपना आप जानता है, ससारूप मदकरिके उन्मत्त हो जाता है, स्वरूपकी संभाल इसको नहीं रहती, इसका नाम अविद्या बुद्धीश्वर कहते हैं, जो दृश्यके साथ मिला है, तिसका कल्याण नहीं होता; जिसके आगे मनका पटल है, तिसको स्वरूपका भान नहीं होता, जैसे सूर्यके आगे मेघका आवरण आता है, तौ नहीं भासता, तैसे मनके आवरणकरि आत्मा नहीं भासता, तातें मनरूपी आवरणको दूर करहु, मनका रूप जो है सो फुरणा है, तिसको संकल्प कहिये, जो जो संकल्प फुरै तिसका त्याग करहु, असंकल्प होनेते मन नष्ट हो जावैगा ॥ हे रामजी ! जब तू सर्व भावविषे असंग होवैगा, तब सर्व पदार्थविषे द्रष्टा पुरुष प्रसन्न होवैगा, तिसकरि निर्विकल्प चिदात्माकी प्राप्ति होवैगी, तहां न जगत्की सत्ता है, न सुख है, न दुःख है, केवल केवलीभाव है, सो अपने आपविषे प्रकाशता है; जब संसारकी भावना तेरे हृदयते उठ जावैगी, तब निर्मल स्वरूपविषे स्थित होवैगा, तब दृश्यभ्रम निवृत्त हो जावैगा, जैसे जेवरीके सम्यक् ज्ञानते सर्पभ्रम नष्ट हो जाता है, तैसे चिदात्माके सम्यक् ज्ञानते जगद्भ्रम नष्ट हो जावैगा; ताते दृश्य भावनाको त्यागिके चिदात्माकी भावना कर, जैसे भावना होती है, तैसे हो भासता है, जब प्रथम भावनाको त्याग करि और भावना करता है, जब प्रथमका अभाव होजाता है, जैसे दिन हुएते रात्रिका अभाव हो जाता है, तैसे आत्मभावना दृश्य भावनाका अभाव होता है, जैसे लोहेको लोहा काटता है, तैसे भावनाको भावना काटतीहै, ताते अतुच्छपद निरुपाधि निःसंशयरूपका आश्रय करहु, जब तिसकी भावना दृढ होवैगी, तब भ्रमते रहित सिद्धपदको प्राप्त होवैगा॥ हे रामजी ! तेरा स्वरूप आत्मा है, तू बुद्धि आदिककी कल्पना मत करु, जैसे बालकको कहिये कि, शून्यविषे सिंहहै, तब वह भयवान् होताहै, तैसे जब शून्य शरीरादिकविषे विचारते बुद्धि नहीं पाती यह मैं हौं यह अपर है, इत्यादिक जो कल्पना होती है, आत्माकेविषे सो ऐसे है, जैसे

बालकको अपने परछाईंविषे वैतालकल्पना होती है, तैसे इसको अपनी कल्पनाके वशते भाव अभाव शुभ अशुभ क्षणक्षणविषे प्राप्त होते हैं, कोऊ सत्रूप कोऊ असत्रूप भासते हैं, जैसी जैसी भावना होती है, तैसा तैसा भासता है ॥ परस्त्रीविषे कामबुद्धि होती है, तब स्पर्श कर स्त्रीवत् आनंददायक होताहै, अरु जो स्त्रीकेविषे माताकी भावना करता है, तब तिसते कामबुद्धि जाती रहती है, ताते तू देख, जैसी जैसी भावना होती है, तैसाही हो भासता है, भावनाके अनुसार इसको फल होता है, तत्काल तिसी आकारको देखता है, ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं, जो सत् नहीं, अरु ऐसा कोऊ नहीं जो असत् नहीं, जैसा जैसा जिसने निर्णय किया है, तैसाही तिसको भासताहै, ताते इस संसारकी भावनाको त्यागिके स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! मणिविषे जो प्रतिबिंब पड़ता है, तिसके दूर करनेको मणि समर्थ नहीं होता, तू तौ मणिवत् जड नहीं, तू चैतन्यरूप आत्मा है, तेरेविषे जो दृश्यका प्रतिबिंब पडता है, तिसका त्याग करहु, कैसे त्यागो कि, जोसंकल्प दृश्यका उठै, तिसको असत्रूप जानिके त्यागि देहु; अरु प्रकृति व्यवहार आन प्राप्त होवै, तिसको करहु, अरु मणिकी नाईं अंतरते रंजते रहित होहु, जैसे प्रतिबिंब बहिर्दृष्टि आता है, अरु अंतरते रंग नहीं चढता तैसा बहिर्दृष्टि व्यवहार तेरेविषे भासै अरु अंतर राग दोषस्पर्श न करै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे विज्ञानवादो नाम एकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशतितमः सर्गः २२.

अनुत्तमविश्रामवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब जीवको संतके संग अरु सच्छास्त्रके विचारकरि विचार उपजता है, तब अपर ओरते वृत्ति उपरत होती है, अरु संसारका मनन निवृत्त हो जाता है, विवेकरूप बुद्धि आनि उदय होती है, तब संसार दृश्यकी त्यागबुद्धि होती है, द्रष्टा आत्माविषे अंगीकारबुद्धि होती है, द्रष्टा पुरुष प्रकट होता है; दृश्य जो है सो अह-

श्यताको प्राप्त होता है, अर्थ यह जो द्रष्टाके लक्षकारि दृश्यको असतरूप जानता है, जब यह पुरुष ज्ञान ज्ञेय होताहै, तब परमतत्त्वविषे जागता है, अरु संसारकी ओरतें घन सुषुप्त मृतकी नाईं होताहै, संसारकी ओरते वैराग्य भोगविषे अभोग, रसविषे नीरस बुद्धि उपजती हैं, जब ऐसी बुद्धि हुई तब मन अपनी सत्ताको त्यागिकारि आत्मरूप होता है, जैसे बर्फका पूतला सूर्यके तेजकारि जलरूप हो जाता है, जब मनविषे संसारकी सत्ता होती है, तिस फुरनेकारि जडभागी होता है, जब विवेकरूपी सूर्य उदय होता है, तब मन गलिके आत्मरूप हो जाता है, जैसे जबलग मरुस्थलविषे धूप होताहै, तबलग वहांते मृगतृष्णाकी नदी नष्ट नहीं होती, जब वर्षा होती है, तब नष्ट हो जाती है, तैसे जबलग संसारकी सत्यता होती है, तबलग मन नष्ट नहीं होता, जब ज्ञानकी वर्षा होती है, तब दृश्यसहित मन नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! ससाररूपी वासनाकी जालहै, तिसविषे जीवरूपी पक्षी फँसेहैं, जब वैराग्यरूपी चूहा इसको कतर जाता है, तब जीव निर्बंध होता है; जैसे मलिन जल निर्मल होता है, तैसे वैराग्यके वशते जीवका स्वभाव निर्मल होता है, जब जीव निराग निरुपाधि असंग होता है, अरु रागद्वेष मोहते रहित होता है, तब जैसे पिंजर टूटेते पक्षी निर्बंध होता है, तैसे जीव निर्बंध होता है, संदेहकी जो दुर्मति है, सो शांत हो जाती है, जगद्भ्रम नष्ट होता है, अंतर पूर्ण हो जाता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभताहै, तैसे ज्ञानवान् शोभता है, सबते उत्तम सौंदर्यताको प्राप्त होता है; उदय अस्त राग द्वेष नष्ट हो जाता है, अरु सर्व समताभाव आनि वर्तता है, न्यूनता और विशेषता भाव नष्ट हो जाता है, जैसे पवनते रहित सोम समुद्र अचलरूप होता है, तैसे असंग पुरुष मूक जड अंध कर्मकी वासनाते रहित अचल हो जाता है, वह सब चेतन प्रकाश देखता है, तिसकी बुद्धि विवेककारि प्रफुल्लित हो आती है, जैसे सूर्यके उदय हुएते सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित हो आते हैं, तैसे वह पुरुष परम लक्ष्मीकारि शोभता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है, अरु बहुत कहनेकारि क्या है, ज्ञान ज्ञेय पुरुष जो है, सो आकाशवत् हो जाता है, न उदय होता है, न अस्त

होता है, विचारकरिकै जिसने आत्मतत्त्वको जाना है, सो तिस पदको प्राप्त होता है. जहां ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र स्थित हैं, सबही तिसपर प्रसन्न होते हैं, प्रकट आकार उसका भासता है, अरु अंतर अहंकारते रहित है, विकल्पके समूह तिसको खैंच नहीं सकते, जैसे जलका अभाव जाननेवालेको मृगतृष्णाकी नदी खैंच नहीं सकती ॥ हे रामजी ! आविर्भाव अरु तिरोभावरूप जो संसार है, तिसको रमणीयरूप जानिकै ज्ञानवान् खेद नहीं पाता, देहके नाशविषे अपना नाश नहीं मानता उपजनेविषे उपजना नहीं मानता, जैसे घट उपजेते आकाश उपजता नहीं; काहेते जो आगे सिद्ध है, अरु घटके अभावते आकाशका अभाव नहीं होता, तैसे देहके उपजेते आत्मा उपजता नहीं, देहके नष्ट हुएते नष्ट नहीं होता, जब ऐसा विवेक उदय होता है, तब वासनाका जल नष्ट हो जाता है, कोऊ भ्रम नहीं रहता, जैसे मृगतृष्णाकी नदी ज्ञानकरिकै अभाव हो जाती है, जबलग इसको यह विचार नहीं उपजता कि, मैं कौन हौं, अरु जगत् क्या है, तबलग संसाररूपी अंधकार रहता है, अरु जो पुरुष ऐसे जानता है कि, संसारभ्रम मिथ्या उदय हुआ है, परम आपदाका कारण देह अनात्मरूप है, आत्माते भिन्न यह जगत् कछु नहीं, सब आत्मसत्ताकरिकै स्थित है, जो ऐसे देखता है, सोई यथार्थ देखता है, सब चैतन्यसत्ता है, मैं अनंत चिदाकाशरूप हौं, देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित हौं, आधि व्याधि भय उद्वेग जरा मरण जन्म आदिक संयुक्त देह है, सो मैं नहीं ऐसे जो देखता है सोई देखता है बालके अग्रके लक्षभाग करियें बहुरि एक भागके कोटि भाग करियें ऐसा सूक्ष्म सर्वव्यापी है, ऐसे जो देखता है, सोई देखता है, मैं सर्वशक्त अनंत आत्मा हौं, सर्व पदार्थविषे स्थित मैं अद्वैतचिदादित्य हौं ऐसे जो देखता है सोई देखता है, अध ऊर्ध्व मध्य सबविषे व्यापा हौं, मुझते इतर द्वैत कछु नहीं, ऐसे जो देखता है सोई देखता है, जैसे सूत्रकरि मणके परोये होते हैं, तैसे सर्व मुझकरि परोये हैं, ऐसे जो देखता है सोई देखता है, न मैं हौं, न यह जगत् है. केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है, सत असत्के मध्यविषे जो एक देव प्रकाशक है, त्रिलोकीविषे जो एक है सो मैं एक अविनाशी पुरुष हौं जैसे

समुद्रविषे तरंग फुरते हैं, अरु लीन होते हैं, तैसे मेरेविषे जगत् फुरते हैं, अरु लीन होते हैं, ऐसे जो देखता है; अथवा प्रथम अहं है, तब पाछे दृश्य जगत् होता है; सो न मैं हौं न जगत् है, केवल एक आत्मसत्ता है, अहं अरु मम तिसविषे कोऊ नहीं, ऐसे जो देखता है सो देखता है, दृश्यते रहित मैं चैतन्यरूप भैरव अपार हौं, मैं जगज्जालको पूर्ण करि रहा हौं, ऐसे जो देखता है, सो देखता है ॥ जो पुरुष ज्ञानवान् है, सो सुखदुःख भाव अभावविषे चलायमान नहीं होता, केवल ब्रह्मरूपविषे स्थित है, और जगत्के भाव अभावते रहित अनाभास सन्मात्ररूप है, जो हेयोपादेय बुद्धिते रहित आकाशवत् सर्वात्मभावविषे स्थित भया है, कोऊ पदार्थ जगत्का उसको अपने वश नहीं कर सकता; सो महात्मा पुरुष महेश्वर तमप्रकाशते रहित है, सर्व कल्पनाते मुक्त शम स्वच्छरूप है, उदय अस्तते रहित समवृत्त है, जिसको ऐसी परम बोध अनंत सत्ताविषे स्थिति है, तिसको मेरा नमस्कार है॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे अनुत्तमविश्रामवर्णनं नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशतितमः सर्गः २३.

शरीरनगरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! उत्तम पदका जिसने आश्रय किया है, ऐसा जो जीवन्मुक्त पुरुष है, जिसका कुंभकार चक्रकी नाईं प्रारब्ध शेष रहा है, सो पुरुष शरीररूपी नगरविषे राज्य करता है, अरु लेपायमान नहीं होता, तिसको भोग अरु मोक्ष दोनों सिद्ध होते हैं, जैसे इंद्रका वन सुखरूप है, तैसे उसका शरीररूपी नगर सुखरूप होता है,शरीरके सुखकरि सुखी नहीं होता, दुःखकरि दुःखी नहीं होता है, अपने स्वरूपविषे स्थित रहता है॥ राम उवाच ॥ हे महामुनीश्वर! शरीररूपी नगर कैसा है, अरु इसविषे रहिके योगिराज कैसे करता है, अरु सुख कैसे भुगतता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ज्ञानीका शरीररूपी नगर रमणीय

होता है, सर्व गुणसंयुक्त ज्ञानवान्‌को अनंत आनंद विलास दिखाता है, जैसे सूर्य प्रकाशको उदय करताहै तिस नगरका स्वरूप और लक्षणश्रवण करहु, शरीरविषे गांठी हैं, सो ईंटें हैं, अरु रुधिर मांस चिक्कडके स्थान हैं, अस्थि लकडियां स्तंभ हैं; अरु किंवार पट हैं, अरु रोम वनस्पती हैं, उदर खाई है, छाती चौक है, नवद्वार हैं तिनविषे नेत्र झरोखे हैं, तिस द्वारकरि त्रिलोकीका प्रकाश होताहै, हाथ गली हैं, जिसकरि लेता देता है, मुख बडी कंदरा है; ग्रीवा शीश बड़े मंदिर हैं, अरु रेखा माला हैं; भिन्न भिन्न लगी हुई हैं, अरु नाड़ी विभाग करनेके स्थान हैं, अरु प्राण-वायु आदिककरि नाड़ीविषे जीव विचरते हैं, आत्मचिंतामणिरूपी तिस-विषे श्रेष्ठबुद्धिरूपी स्त्री रहती है, अरु जिनने इंद्रियरूपी वानर बांधि छोड़े हैं, हँसनेरूप जिसविषे महासुंदर फूल हैं, ऐसा शरीररूपी पुर ज्ञान-वान्‌को महासुखके निमित्त हैं, सौभाग्य सुंदररूप हैं, शरीरके सुखदुःख-करि ज्ञानवान् सुखी दुःखी नहीं होता ॥ हे रामजी ! जो अज्ञानी है, तिसको शरीररूपी नगर अनंत दुःखका भंडार है, अज्ञानकरिकै शरीरके नष्ट हुएते आपको नष्ट हुआ मानता है; अरु ज्ञानवान् इसके नाश हुएते नाश नहीं पाता, जबलग रहता है, तबलग शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इनको ग्रहण करता है, इष्टरूप होके भासता है, अरु शरीररूपी नगरविषे भ्रमते रहित निष्कंटक राज्य करता है, लोभते रहित है, इसकारणते शत्रु कछु लेता नहीं, अरु उनको अपने स्थानविषे आने नहीं देता, सो शत्रु कौन है, काम, क्रोध, मान, मोहादिक अज्ञान देश हैं. तिनकेविषे आप प्रवेश नहीं करता, अरु अपने देशविषे तिनको आने नहीं देता, साव-धानही रहता है, सो अपना देश कौन है, उदारता, धैर्य, संतोष, वैराग्य, शमता, मित्रता, मुदिता, उपेक्षा, ज्ञानदेशहै, तिसविषे अज्ञानको प्रवेश करने नहीं देता, अरु आप ध्यानरूपी नगरविषे रहता है, सत्यता अरु एकता दोनों स्त्रियोंको साथ रखता है, तिनकरि सदा शोभायमान रहता है, जैसे चंद्रमा चित्रा विशाखा दोनों स्त्रियोंकरि शोभता है, तैसे ज्ञानवान् सत्यता अरु एकताकरि शोभता है, मनरूपी घोडेपर आरूढ होके तीर्थके स्ना-नको गमन करता है, विचाररूपी तिसको लगाम रखता है, अरु जीव

ब्रह्मकी एकतारूपी संगम तीर्थविषे स्नान करताहै, सदा आनंदमान रहता है, भोग अरु मोक्ष दोनोंकरि संपन्न होता है,जैसे इंद्र अपने पुरविषे शोभताहै; तैसे ज्ञानवान् देहविषे शोभता है, अरु जैसे घटके फूटेते आकाशकी कछु न्यूनता नहीं होती,तैसे देहके नाश हुएते ज्ञानीकी कछु हानि नहीं होती, ज्योंका त्यों रहता है, जो देह होता है, तौभी तिसके साथ स्पर्श नहीं करता, जैसे घटकेसाथ आकाश स्पर्श नहीं करता, सर्व क्रियाका कर्त्ता भोक्ता है; परंतु किसीकरि लेप नहीं पाता, सदा एकरस भगवान् आत्मदेवविषे रहता है, जब विमानपर आरूढ होइकै शरीररूप नगरविषे विचरता है, तब मैत्रीरूप नेत्रोंके साथ सबको देखता स्थित होता है, मैत्रीभाव सदा तिसविषे रहता है. अरु सत्यता एकता सदा तिसके पास है, तिसकरि शोभता है, सदा आनंदवान् विचरता है, अपर जीवको दुःखरूपी आरेके साथ कटते देखता है, जैसे कोऊ पहाडके ऊपर चढ़िकै पृथ्वीविषे लोकको जलता देखै, अरु आप आनंदवान् होवै, तैसे ज्ञानवान् जीवको दुःखी देखता है; अरु आप आनंदवान् है. उसीकी दृष्टीविषे तौ सदा अद्वैतरूप है; अरु आत्मानंदकी अपेक्षाकरि अनात्मधर्मको दुःखी देखता कहता है, उसके निश्चयविषे जगत् जीव कोऊ नहीं, अरु चारों प्रयोजन धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तिनके पूर्णताको प्राप्त होता है, किसी ओरते उनको न्यूनता नहीं, सर्व संपदासंपन्न विराजमान होता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा न्यूनताते रहित विराजता है, यद्यपि भोगको सेवता तौ भी तिसको दुःखदायक नहीं होते, जैसे कालकूट विषको सदाशिवने पान किया था, परंतु तिसको दुःखदायक न भया, तैसे वह भी समर्थ है, ताते भोग दुःखदायक नहीं होते, जैसे चोरको जानिकै अपने वशवर्त्ती किया, तब मित्रभाव होजाताहै, तैसे भोग उसको दुःख नहीं देते, जब भोगको जानता है कि, यह कछु वस्तु नहीं, तब सुखका कारण होते हैं, जबलग इनको सत् जानिकै आसक्त होता है, तबलग दुःखके कारण होते हैं ॥ हे रामजी! जैसे कोऊ यात्राको जाता है, अरु मार्गविषे स्त्रियां पुरुष मिलते हैं, उनविषे इकट्ठा बैठना, अरु चलना भी होता है, परंतु आपसमें आसक्त नहीं होते, आगे पाछे

चले जाते हैं, तैसे ज्ञानवान् संसारके पदार्थोंविषे चित्तको नहीं लगाता, जैसे कोऊ कासिद किसी देशविषे जाता है, अरु मार्गविषे कई सुंदर रमणीय स्थान दृष्ट आते हैं, कई मलिन कष्टके स्थान भासते हैं, परंतु रागद्वेष किसीविषे नहीं करता, जैसे तैसे देखता चला जाता है, तैसे ज्ञानवान् भोगक्रियाविषे रागद्वेषकरि बंधमान नहीं होता, सर्व संशय तिसके सम्यक्ज्ञानकरि शांत हो जाते हैं, कोऊ पदार्थ उसको आश्चर्यताकरि दिखाई नहीं देता, वासनाके समूह नष्ट हो जाते हैं, चक्रवर्ती राजाकी नाई शोभता है, परिपूर्ण होके स्थित होता है; जैसे क्षीरसमुद्र अपने आपविषे पूर्ण समाता नहीं; तैसे ज्ञानी अपने आपविषे पूर्ण समाता नहीं ॥ हे रामजी ! इन जीवनको भोगकी इच्छा दीन करती है, तिसकरि आत्मपदते गिरते हैं, अनात्मविषे प्राप्त हुए कृपण हो जाते हैं, तिनको देखिके आत्म उत्तमपद आलंबी हँसते हैं कि, यह मिथ्या दीनभावको प्राप्त हुए हैं, जैसे स्वामी होकर स्त्रीके वश होवै, स्त्री स्वामीकी नाईं होवै, अरु भर्त्ता दीन हो जावै, अरु तिसको देखिके लोक हँसते हैं, तैसे ज्ञानवान् भोगकी तृष्णावालेको दीन देखिके हँसते हैं, चंचल मनही परमसिद्धांतसुखते जीवको गिरावता है, ताते मनरूपी हस्तीको विचाररूपी कुंदेसे वश करहु; तब सिद्धपदको प्राप्त होवोगे, जिसका मन विषयकी ओर पड़ा धावता है, सो संसाररूपी विषका बीज बोता है, ताते प्रथम इस मनको ताड़न कर, तब शांतिकी प्राप्ति होवैगी, जो मानी होता है, अरु कोऊ उसका मान करता है, तब वह उपकार कछु नहीं मानता, जब प्रथम उसको ताडन करता है तब बडे थोडे उपकार कियेते प्रसन्न होता है, जैसे धान्य जलकरि पूर्ण होते हैं, तब जलके सींचनेकरि उनते उपकार नहीं होता, अरु जो ज्येष्ठ आषाढकी धूपकरि तप्त होते हैं; तब थोडा जल सींचनेकरि भी उनको अमृतवत् होता है, तैसे जब प्रथम मनका सन्मान करिये तब मित्रभाव नहीं होता, अरु जब ताडन करिकै पाछे सन्मान करिये, तब उपकार मानिकै मित्रभाव हो रहेगा, सो ताडन करना यह है कि, विषयते संयम करना, जब संयम करिकै निर्माण हुआ तब यह सन्मान करना कि,

संसारके पदार्थविषे वर्तावना, तब शत्रुभावको त्यागिकै मित्र हो जाता है, जैसे वर्षाकालविषे नदी जलकारि पूर्ण होती है, तिसविषे जलका उपकार नहीं होता, शरत्कालविषे जलका उपकार होता है, जैसे राजाको अपर देशका राज्य प्राप्त होवै, तब वह कछु प्रसन्नताको नहीं प्राप्त होता, प्रथम बंदीस्थानविषे डारिये, पाछे एक थोडा ग्रास दीजिये, तिसकारि प्रसन्न होता है, तैसे जब प्रथम मनको ताडन करिये, तब पाछे थोडे सन्मानकारि भी सुखदायक होता है, ताते हाथसों हाथ मीडके अरु दंतसों दंत मिलाइके अरु अंगसों अंग रोकिकै इंद्रियको जीति ले; इस पुरुषके हृदयविषे मनरूपी सर्प कुंडल मार बैठा है, अरु कल्पनारूपी विषकारि पूर्ण है, जिस पुरुषने उसको मर्दन किया है, तिसको मेरा नमस्कार है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे चतुर्थस्थितिप्रकरणे शरीरनगरवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशतितमः सर्गः २४.

मनस्विसत्यंताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अज्ञानी जीव महानरकको प्राप्त होता है, आशारूपी बाणकी शलाका तिनको लगती है, इंद्रियरूपी शत्रु मारते हैं, इंद्रियां दुष्ट बडी कृतघ्न हैं, जिस देहके आश्रय रहती हैं, तिसको शोक अरु इच्छाकारि पूर्ण करती हैं, अरु महादुष्ट दुःखदायक भंडार हैं, इनको तुम जीतहु, इंद्रियां मनरूपी चील पक्षी हैं, जब विषय नहीं होते, तब ऊर्ध्वको उडते हैं; जब विषय प्राप्त होते हैं, तब नीचेको आय गिरते हैं, जिस पुरुषने विवेकरूपी जालसे इनको बांधा है, तिसको ये भोजन नहीं करिसकते, जसे पाषाणके कमलको हस्ती भोजन नहीं कर सकता ॥ हे रामजी ! ये भोग आपातरमणीय हैं, अत्यंत विरस हैं, जो पुरुप इनविषे रमण करताहै, सो अंत नरकको प्राप्त होवैगा; जो पुरुष ज्ञानके धनकारि संपन्न है; अरु देहरूपी देशविषे रहता है; सो परमशोभाको पाता है, अरु आनंदवान् होता है. काहेते कि; बडे ऐश्व-

यकरि तिसने इंद्रियरूपी शत्रु जीते हैं ॥ हे रामजी ! स्वर्णके मंदिरविषे रहनेकरि ऐसा सुख नहीं प्राप्त होता, जैसा निर्वासनिक ज्ञानवान्‌को होता है, जो अपने शरीर नगरविषे रहता है, जिस पुरुषने इंद्रियां अरु असत् रूपी शत्रुको जीता है, सो परमशोभाकरि शोभता है, जैसे हिमऋतुको जीतिकै वसंतऋतुविषे मंजरी शोभती हैं, जिसपुरुषके चित्तका गर्व नष्ट भया है, अरु इंद्रियांरूपी शत्रु जीते हैं, तिसकी भोगवासना नष्ट हो जाती है, जैसे शीतलकालविषे पद्मिनियां नष्ट हो जाती हैं ॥ हे रामजी ! वासनारूपी वैतालनिशाचर तब लग विचरते हैं, जबलग एक तत्त्वका दृढ अभ्यास करिकै मनको नहीं जीता, जब विवेकरूपी सूर्य उदय होता है, तब अंधकार नष्ट हो जाता है, जब विवेककरि मनको वश करता है, तब इंद्रियां भृत्य टहलुए हो जाते हैं, अरु मनरूपी सब मित्र हो जाते हैं, आप राजा होके राज्य स्वरूपको भुगतता है ॥ हे रामजी ! विवेकीकी इंद्रियां पतिव्रता स्त्रीवत् हो जाती हैं, अरु मन सीताकी नाईं पालना करनेवाला होता है, अरु चित्त सुहृद् हो जाता है, जब निश्चय-वान् पुरुष सच्छास्त्रको विचारता है, तब परमसिद्धांतको प्राप्त होता है, अरु मन अपने मननभावको त्यागिकै शांतरूप सो पितावत् प्रतिपालक हो जाता है, ताते मनको विवेककरिकै वश करहु, जैसे मणिको घसाय छेद पाडिकै धागेकेसाथ परोते हैं, अरु कंठविषे पहनते हैं, तब बडी शोभाको प्राप्त होते हैं, तैसे मनरूपी मणि है, तिसको आत्मविचार शिलाके साथ घसावना, वैराग्य जलकरि उज्वल करना, अभ्यासरूपी छेद पाडिकै विवेकरूपी तागेके साथ परोय कंठविषे स्थित करनेसे शोभा होती है, विवेक कैसा है, जो जन्मरूपी वृक्षको कुहाडा जैसा काटि डारता है, अरु मनरूपी शत्रुको मित्र करता है, सदा शुभकर्मको करताहै; अरु विषयके परिणामिक दुःखको निकट आने नहीं देता, ताते मनको वश करना आनंदका कारण है, जो मन वश नहीं होत; तौ दुःख देता है, जब वश होता है, तब सुखदायक होता है ॥ हे रामजी ! मनरूपी मणि है, सो भोगकी तृष्णाकरि कलंकित हुई है, जब विवेकरूपी जलकरि इसको शुद्ध करै तब शोभायमान् होवैगी, यह संसार महाभयका देने-

हारा है, अल्पविवेकवान् पुरुष भी मायारूप संसारविषे गिरि पड़ै हैं, तू छलकारि इतर जीवकी नाईं इसविषे मत गिर यह संसार मायारूप है, अनेक अर्थकी सांकरसंयुक्त है, महामोहरूपी कुहरकारि जीव अंध हो गये हैं, ताते तू विवेकपदका आश्रय कर, बोधकारि सत्का अवलोकन कारि, इंद्रियते वैराग्यरूपी नौकाकारि संसारसमुद्रको तरिजाहु; शरीरभी असत है, इसविषे सुख अरु दुःख भी असत् हैं; तुम दामव्यालकटकी नाईं मत होहु. भीम भासदटकी स्थितिको ग्रहण करिकै विशोक होहु, अहं मम आदिक जो निश्चय है, सो वृथा है, सको त्यागिकै तत्पदका आश्रय करहु, चलते बैठते खाते पीते मनविषे मननका अभाव न होवै॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे मनस्विसत्यताप्रतिपादनं नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

पञ्चविंशतितमः सर्गः २५.

दामव्यालकटोत्पत्तिवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन्! संसारपापके दूर करनेहारे यह तुमने क्या कहा ? इसको खोलिकारि कहौ; दाम व्याल कटकी नाईं कैसे अरु भीम भास दटकी स्थिति कैसे है? जैसे वर्षाकालका मेघ तप्तको दूर करता है, मोरको शब्दकारि जगावता है, तैसे तुम अपनी कृपाकारि जगावहु ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! प्रथम इनकी नाईं स्थित होय श्रवण करु, पाछे जो इष्ट होवै तिसविषे विचरना; पाताल कुहरविषे शम्बर नाम दैत्यराजा होत भया था, सो मायारूप गणिका समुद्र अरु सर्व आश्चर्यरूप मनके मोहनहारा रमणीय था, सो दैत्य अपनी मायाकारिकै आकाशविषे नगर रचता भया; बाग रचे, दैत्यके मंदिर रचे, सूर्य अरु चंद्रमा रचे, अनंत ऐश्वर्यकारि सम्पन्न दैत्य रचे, अरु रत्नकी स्त्रियां रचीं; सो गान करैं, तिस गानकारि देवताकी स्त्रियां भी तिनने जीती अरु चंद्रवत् वृक्ष रचे तिनमें फल लगे, अरु कमलिनी श्वेत पीत रत्नकी रची; स्वर्णके हंस रचे, अरु स्वर्णके सारस पक्षी रचे, जो स्वर्णके कमल अरु स्वर्णके वृक्षकी बडी शाखा-

पर बैठे हुए, अरु करंजुवेके बूटे, तिनमें कमलवृक्षके फूल लगे, रत्नकरि जड़े हुए, सुन्दर स्थान, बरफकी नाईं शीतल बगीचे वन स्थान चन्दनके रचे, इंद्रका नन्दनवन तिसते विशेष, सर्व ऋतुके फूल तिनविषे दैत्यनहूकी स्त्रियां क्रीडा करती फिरैं, अरु बड़े ऐश्वर्य रचे, विष्णु अरु सदाशिवके सदृश, ऐश्वर्यसंयुक्त अपना नगर किया, रत्नके तारागण रचे, बडे प्रकाश-संयुक्त जब रात्रि पडै तब सो चन्द्रमाके साथ उदय होवैं, अरु पुतलियां गान करैं, अरु मायाके हस्ती ऐसे रचे जो इंद्रके ऐरावतको जीति लेवैं, त्रिलोकीकी विभूतिते उत्कृष्ट विभूति उसने रची, अन्तर्बाहिर सर्व सम्प-दाको पूर्ण किया, सब ऐश्वर्यकरि सम्पन्न अरु सब दैत्यमण्डलेश्वर वन्दना करैं, सो आप सर्व दैत्योंका शासन करनेहारा राजा हुआ, सब इसकी आज्ञामें वर्तें, महा बड़ी भुजा तिनके नीचे सब दैत्य विश्राम करैं, इस प्रकार सम्पूर्ण राज्य अरु स्थानके मण्डलेश्वर तिसने रचे, सेना रची, अरु राज्य करता भया, जब शंबर दैत्य शयन करै, अथवा देशांतरको जावै, तब अवकाश देखिकै देवताके नायक तिसकी सेनाको मारि जावैं; अरु स्थान लूटि ले जावैं; तब शंबरने रक्षा करनेहारे सेनापति रचे, बहुरि समय देखिकै देवता तिनको भी मारिगये, तब शंबरने सुनिकै कोप किया कि, इनको मारौं, ऐसे विचारिकै अमरपुरीपर चढिकै गया, देवता भयभीत होके सुमेरु पर्वतमें भवानीशंकरके पास जायके छिपते हुए; अपर नव कुंज अरु समुद्रविषेजाय छिपे, जैसे प्रलयकालविषे सब दिशा शून्य हो जाती हैं, तैसे अमरपुर स्वर्ग शून्य हो गया, तब दैत्यराज अम-रपुरीको शून्य देखिकै कोपमान हो अग्नि लगादी, लोकपालके पुर सब जलायदिये, देवताओंको ढूंढ रहा; परंतु कहूं देखनेविषे न आये, जैसे पापी पुण्यको देखै, अरु कहूं दृष्टि न आवै, तैसे देवता कहूं न भासैं, तब शंबर कोपमान होके बडी बली राक्षससेनाको रक्षाके निमित्त माया करिकै रचत भया, मानो कालकी मूर्त्तियां हैं, ऐसे होकरि स्थित भये, मानो बड़े आकारवाले पर्वत पंखनसंयुक्त हिलते हैं, ऐसे शरीर, दाम, व्याल, कट यह तीन तिनके नाम हैं अरु हाथविषे बड़े शस्त्र, अरु भुजा कल्प-वृक्षकी नाईं, अरु यथाप्राप्त कर्मविषेलगे रहैं, यह इनका धर्म अरु उनको

कर्मका अभाव, काहेते जो पूर्व वासना, कर्म उनको न था, निर्विकल्प चिन्मात्र उनका स्वरूप था, अरु अपने स्वभावसत्ताविषे स्थित न थे, अरु अनात्मभावको प्राप्त भये न थे, एक स्पंदमात्र कर्मरूप चेतना उनविषे थी, सो कर्मका बीज चित्तकलना स्पन्दरूप हुई थी, मननात्मक शस्त्रप्रहारको रचे थे, तिसीको पड़े करैं, परन्तु अन्तरविषे स्पष्ट वासना उनको कोऊ न फुरै, आकाशमात्र स्वभावकारि क्रिया उनकी पडी होवै. जैसे अर्ध सुषुप्त बालक अपने अंगको स्वाभाविक हिलाताहै, वासनाते रहित तैसे वह वासनाविना चेष्टा करैं, गिरना अरु गिरावना कुछ न जानैं अरु न जानैं कि, हम इसको मारते हैं, न यह जानैं हम मरते हैं, न दौडना जानैं, न भागना जानैं, न जानैं हम जीते हैं, न जानैं हम मरते हैं, जीत अरु हारको कछु न जानैं, केवल शस्त्रका प्रहार करैं, जैसे यन्त्रकी पूतली तागेपर पडी चेष्टा करती है; विना संवेदन तैसे दाम, व्याल, कट चेष्टा करैं, महाबली जिनके प्रहारकारि पहाड़ भी चूर्ण हो जावैं, तिनको देखिके शंबर प्रसन्न हुआ कि, ये सैन्यकी रक्षाको बड़े बली हैं, इनका नाश भी उनसों न होवैगा, काहेते कि, इनको इष्ट अनिष्ट कछु नहीं, जिनको इष्ट अनिष्टका ज्ञान अरु वासना नहीं, तिनका नाश कैसे होवै, अरु भागें कैसे ? जैसे देवताके हाथी भी बड़े बली हैं, तौ भीसुमेरुको उखारि नहीं सकते, दन्तके चूर्ण हो जाते हैं, तैसे देवता बड़े बली भी हैं, परन्तु इनको मार नहीं सकैंगे, यह बड़े बली रक्षक हैं ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोत्पत्तिवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशतितमः सर्गः २६.

दामव्यालकटसंग्रामवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार निर्णय करिकै शंबरने दाम व्याल कटको स्थापन किये, अरु भूतलविषे देवतोका सैन्य भी आया जब शंबर चढ़ता था, तब भाग जाते थे, अरु सैन्यको देखिके वह भी

निकसे, समुद्र अरु पहाड़से उछलिके एक और देवता निकसे, बडी सेनासहित युद्ध करने लगे, जैसे प्रलय कालके समुद्र क्षोभते हैं, अरु सब जलमय हो जाता है, तैसे देवता अरु दैत्य सर्व ओरते पूर्ण हो गये, बडे बाणकरि युद्ध करने लगे, शंखध्वनिकारि शस्त्र चलैं, तिनते शब्द होवे, अरु अग्नि निकसे, ताराकी नाईं चमत्कार करैं, शरीरके शिर काटे जावैं, अरु धड कम्पि कम्पि गिर पडैं, परस्पर दोनों ओरते शस्त्र चलैं, दाम, व्याल, कट, भाग नहीं जावैं, मारतेही जावैं, जिनके प्रहारसे पहाड़ चूर्ण हो जावैं, सब दिशाविषे शस्त्र पूर्ण हो गए, रुधिरके प्रवाह चलैं तिनविषे देव दैत्य मरे बहते जावैं, महाप्रलयकी नाईं भय उदय हुआ, एक एक अस्त्र ऐसा चलै, जिसते शस्त्रकी नदियां चलैं, कोऊ अग्निका अस्त्र चलावै, कोऊ मेघका अस्त्र चलावै, कोऊ तम अस्त्र चलावै, दूसरा प्रकाशरूप अस्त्र चलावै, कोऊ निद्रारूप, दूसरा प्रबोधरूप, कोऊ सर्परूप, दूसरा गरुडरूप, इसप्रकार परस्पर युद्ध करैं, बहुरि ब्रह्मास्त्र चलावैं, शिलाकी वर्षा होवै, तब सब पृथ्वी रक्त अरु मांसकारि पूर्ण हो गई, अनेकन जीवनके धड शीश गिरि पडे; जैसे वृक्षते फल गिरते हैं, तैसे देवता दैत्य गिरे, बड़ा युद्ध हुआ, गंधर्व, किन्नर, देवता, बहुत नष्ट भये, दैत्य भी बहुत नष्ट हुए, परंतु कछु उनकी जीत रहै, इसप्रकार मायावी शंबरकी सैन्य अरु देवताओंका युद्ध हुआ, जैसे वर्षाकालमें आकाशविषे मेघघटा पूर्ण हो जाती हैं; तैसे देवता अरु दैत्यकी सेना इकट्ठी होगई, दिशा विदिशा सब स्थान पूर्ण होत भए ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटसंग्रामवर्णनं नाम षड्विंशतितमः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशतितमः सर्गः २७.

ब्रह्मवाक्यवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार घोर संग्राम हुआ, अरु दैत्यके शरीर गिरे, जैसे पंख टूटेते पर्वत गिरते हैं, रुधिरके चले, बडे शब्द हुये, आकाश, पृथ्वी शब्दकारि पूर्ण हो गए, दामने देव

ताके समूह वेष्टित किये, व्यालने पकडिके देवताओंको पहाडविषे पीसि डारे, कटने देवताओंके समूह चूर्ण किये उनके स्थान तोड डारे, बडा क्रूर संग्राम किया, देवताओंका हस्ती जो मदकरि मस्त था, सो ताडनकरि क्षीण होगया, सो वहांते भागा, भयभीत होइकरि देवता भी भागे तब दैत्यकी सेना वृद्धि होत भई, जैसे मध्याह्नके सूर्यका बडा प्रकाश होता है, तैसे दैत्य प्रकाशवान् भए, देवता बहुत मारे गए, जैसे जलका प्रवाह पुल टूटेते तीक्ष्ण वेगकरि चलता है, तैसे देवता तीक्ष्ण वेगकरि भागे, जलके प्रवाहवत् मर्यादा छूटि गई, दाम, व्याल, कटकी सेना जीत पाती भई, देवताओंके पाछे लागे मारते जावे, जैसे काष्ठते रहित अग्नि अंतर्धान हो जाता है, तैसे बलवान् देवता बलसों हीन भए अंतर्धान हो गए, दैत्य ढूंढते फिरैं, परंतु देवता कहूं न पावैं, जैसे जालसों निकसे पक्षी कहूं हाथ नहीं आते, तैसे देवता तिनके हाथ नहीं आये, जैसे मृग बंधनसों छूटा निकस जावै, अरु हाथ न आवै, तब दाम, व्याल, कट, तीनों सेनासहित पातालविषे आनि स्थित भए, अपना स्वामी जो शंबर था, तिसके पास प्रसन्नताके लिये आए अरु वहाँ देवताओंने श्रवण किया कि, दैत्य पातालविषे जाय स्थित भए, तब विचार करिकै चिंतवते भए कि, किसी प्रकार इनते ईश्वर हमारी रक्षा करे, ऐसी चिंताकरि आतुर भए, तब ब्रह्माजी देवताओंके निकट आनि प्राप्त भए, अमित तेज है जिसका, अरु अमित जिसके रक्तवस्त्र हैं, जैसे संध्याकालमें रक्तवर्ण बादल होते हैं, तिनविषे चंद्रमा शोभता है, ऐसे प्रकाशवान् ब्रह्माजीको देखिकै इंद्रादिक देवता प्रणाम करत भये, शंबर दैत्यकी शत्रुताकरिकै कहत भये ॥ हे त्रिलोकीके ईश्वर ! हम तेरी शरण आए हैं, हमारी रक्षा करौ, शंबर दैत्यने हमको बहुत दुःख दिया है, तिसके सेनापति दाम, व्याल, कट हैं, सो बडे दैत्य हैं, किसी प्रकार हमसों मारे नहीं जाते, अरु हमारी सेना उनने बहुत चूर्ण करी ॥ हे रामजी ! इसप्रकार संपूर्ण वृत्तांत दाम, व्याल, कटका ब्रह्माजी प्रति कहत भये अरु कहा कि, इनके मारनेका उपाय हमको कहौ, जिसप्रकार यह नष्ट होवैं, तब संपूर्ण जगतपर दया करनेहारा ब्रह्माजी वचन कहत भयो, कैसे वचन जो शांतिके कारण हैं ॥ ब्रह्मोवाच ॥

हे अमरेश ! ये दैत्य अब तौ नष्ट नहीं होवैंगे जब इनको अहंकार उपजैगा, तब यह मरैंगे, तुमही उनको जीतौगे, मैं इनकी भविष्यत् देखी है, अरु दाम, व्याल, कट युद्धविषे भागना नहीं जानते, अरु मरने मारनेका ज्ञान भी इनको नहीं, ये शंबर दैत्यकी मायाकरि रचे हैं, इनका नाश कैसे होवै, जिसको अहंममका अभिमान होवै, तिसका नाश भी होता है, सो अहं मम आदिक शत्रुको ये जानते नहीं, इनका नाश कैसे होवै ? इस प्रकार इनका नाश कदाचित् होना नहीं, जब इनको अहंकार उपजैगा, तब इनका नाश होवैगा, सोअहंकार उपजानेका उपाय मैं तुमको कहता हौं तुम उनके साथ युद्ध करते रहौ, और इस प्रकार करौ कि, कभी उनके सन्मुख कभी दाहिने कभी बांये होहु, कभी भागि जाहु, इसप्रकार जब तुम वारंवार करौगे, तब उनके युद्धके अभ्यास वशते अहंकारका अंकुर आनि उपजैगा, जब अहंकारका चमत्कार हृदयविषे उपजा; तब तिसका प्रतिबिंब इदंरूप भी देखैंगे, बहुरि वासना भी फुरि आवैगी कि, हम ये हैं, हमको यह कर्तव्य है, यह ग्रहण करने योग्य है, यह त्यागने योग्य है, इत्यादिक वासनाजाल उनके चित्तविषे फुरि आवैगी, आपको दाम, व्याल, कट जानैंगे, तब तुम उनको वश कर लेहुगे, तुम्हारी जय होवैगी; जैसे जालविषे फसा पक्षी वश होता है, तैसे वे अहंकारकरिकै वश होवेंगे, अभी वे वश नहीं होते, सुखदुःखते रहित बड़े धैर्यवान् हैं, अभी उनको तुम्हारा जीतना कठिन है ॥ हे साधो ! जो पुरुष वासना ततुसे बांधे हुए हैं, अरु कीटके कार्यके वश हैं, सो इस लोकविषे वश हो जाते हैं, अरु जो निर्वासनिक पुरुष बुद्धिमान् हैं, सर्वत्र असंसक्तबुद्धि हैं, किसीविषे बंधवान् नहीं होते, इष्ट अनिष्टविषे समभाव रहते हैं, सो किसीकरि जीते नहीं जाते, ये अजित पुरुष हैं, अरु जिनके अन्तर वासना है, इसी जेवरीकेसाथ बांधे हुए हैं, देहविषे अभिमान है, अथवा सर्वको वेत्ता भी है, तौ बालक भी उसको जीति लेते हैं, अहं मम आदिक कल्पना करि जो कलंकित है, सो सब आपदाका पात्र है, सब आपदा तिसविषे आनि प्रवेश करती हैं, यह देह मात्र परिच्छिन्नरूप जो पुरुष आपको जानता है, तिसविषे भावना भावती करी है;

जो सर्वज्ञ है, तौ भी वह कृपणताको प्राप्त होता है, उसविषे उदारता कहां है, इसका अपना स्वरूप अनंत आत्मा है; अप्रमेय है, तिस स्वरूपका जिसको प्रमाद हुआ है, अरु देहादिकविषे आत्माभिमान हुआ है, तिसने आपको आपही दीन किया है, जबलग आत्मतत्त्वते इतर इसको त्रिलोकीविषे कछु भी सत् भासता है, तबलग तिसकी उपादेय बुद्धि होती है, भावनाके साथ बांधा रहता है, संसारविषे सत् भावना करनी अनंत दुःखका कारणहै, अरु संसारविषे असतबुद्धि सुखका कारण हैं, हे साधो ! जबलग दाम, व्याल, कटेको जगत्के पदार्थनविषे आस्था भाव नहीं तबलग तुम इनके जीतनेको समर्थ न होवोगे. जैसे मक्खी वायुके जीतनेको समर्थ नहीं होती, जिसको देहविषे अहंभावना होती है, अरु जगतविषे सतबुद्धि होती है, सो जीव है, अरु दीनताको प्राप्त होता है भावै कैसा बली होवै, उसको जीतना सुगम है, अरु तुच्छ कृपण है, अरु जिसके अंतर वासना नहीं अरु मक्षिकावत् है, तौ भी सुमेरुकी नाईं गरिष्ठ हो जाता है ॥ हे देवताओं ! जो वासनासंयुक्त है, सो परम कृपणताको प्राप्त होता है, सो गुणी गुणोंकरि बांधा जाता है, जैसे मणिकेविषे छिद्र होता है, तब तागेकरि परोया जाता है, अरु छिद्रते रहित है, सो परोया नहीं जाता, तैसे जिसका हृदय वासनाकरि वेधा है, तिसके अन्तर गुणावगुण प्रवेश करते हैं, अरु जो निर्वेधहै, तिसके अंतर प्रवेश नहीं करते हैं, ताते जिस प्रकार अहं इदं आदिक वासना दाम, व्याल, कटके अन्तर उपजै, सोई उपाय करौ तब तुम्हारी जय होवैगी, जिस जिस इष्ट अनिष्टके भाव अभावको जीव प्राप्त होते हैं, सो तृष्णारूपी करंजुवेका बूटा है, तिसकरि आपदाको प्राप्त होते हैं, इसते रहित हुएते आपदाका अभाव हो जाता है, जो वासनारूपी तंतुकेसाथ बांधे हुए हैं, सो अनेक जन्म दुःखको प्राप्त होवैंगे, जो बलवान् है, अरु सर्वज्ञ है, कुलका अधिष्ठाता बड़ा भी है, अरु तृष्णासंयुक्त है, तौ बँधा है, जैसे सिंह है, अरु साँकरके पिंजरेविषे बांधा है, तब उसका बल अरु बडाई किसी कार्य नहीं आती, तैसे जो तृष्णाकरि बांधा है, सो तुच्छ है, तिसको देहमात्रविषे अहंभाव है, हृदयविषे तृष्णा पडी उत्पन्न होती है, सो पुरुष ऐसा है जैसा पक्षी तागेमें

बांधा होवै, अरु यम भी तिसको वश करता है, जैसे रज्जुके साथ बांधे हुए पक्षीको बालक भी खैंच वश करताहै, अरु जो निर्वासनिक पुरुष है, तिसको मारि कोऊ नहीं सकता, जैसे आकाशविषे उडते पक्षीको कोऊ पकड नहीं सकता, ताते शस्त्रयुद्धको त्याग, अरु उनको वासना उपजावहु, तब वश होवैंगे ॥ हे इंद्र ! जिसको अहं मम इदं आदिक वासना नहीं राग द्वेषकरि अंतःकरण क्षोभवान् नहीं होता, तिसको शस्त्रकरि अरु अस्त्रकरि कोऊ जीति नहीं सकता, ताते दाम, व्याल, कटके जीतनेको अपर उपायकरि समर्थ न होहुगे, युद्धके अभ्यासकरि जब इनको अहंकार उपजाओगे, तब ये तुम्हारे वश होवैंगे, तुम इनके जीतनेको समर्थ होहुगे ॥ हे साधो ! यह तो शंबर दैत्यके रचे हुए यंत्रपुरुष हैं, इनके अंतर वासना कोई नहीं, जैसे उसने रचे हैं, तैसेही निर्वासनिक पुरुष हैं, जब तुम उनको युद्धका अभ्यास करावहुगे, तब इनको अहंकार वासना उपजि आवैगी, ये तुमको वश करनेकी परम युक्ति कहीहै, जब लग उनके अंतर वासना नहीं फुरती तबलग तुमकरि ये अजीत हैं. इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामोपाख्याने ब्रह्मवाक्यवर्णनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशतितमः सर्गः २८.

सुरासुरयुद्धवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहिकै ब्रह्माजी अंतर्धान होत भया, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकै शब्दकरि लीन होता है, तैसे शब्दकरिकै अंतर्धान होगया, तब देवता वचन सुनिकै अपनी वांछित दिशाको गमन करते भये, जैसे कमलकी सुगंधिको पवन ले जाता है; तैसे जायकरि कुछ दिन अपने स्थानविषे रहै, जैसे भँवरे कमलविषे रहते हैं, तैसे रहिकै अपने कल्याणके निमित्त उनके नाश करनेको उठे, अपने स्थानते उठिकै युद्धको चले, प्रथम देवताओंने शंख बजाए जिनका महा शब्द हुआ, जैसे प्रलय कालविषे मेघ गर्जते हैं, तैसे शब्दकरि संस्थान पूर्ण हो गए, तब पाताल छिद्रते शब्द सुनिकै दैत्य निकसे,

आकाश मार्गते देवता आए, युद्ध होने लगा, तब बरछी, बाण, मुद्गर, मुसल, गदा, चक्र, वज्र, पहाड़, वृक्ष, सर्प, अग्नि, आदिक शस्त्र अस्त्र चलने लगे; एक ओर देवता चलावें, एक ओर दैत्य चलावें, शस्त्रअस्त्रके प्रवाह चले, देशप्रदेशविषे पहाड वृक्षकी नदी चलीं, चक्र, मुसल, त्रिशूल, आदिक शस्त्र ऐसे चलैं, जैसे गंगाका प्रवाह चलताहै, तैसे शस्त्र अस्त्रके प्रवाह चले जावें, और अग्नि लगाई, देवता अरु दैत्यके समूह नष्ट हो गए, अंग फूटि गए, शीश, भुजा, काटे गए, संपूर्ण पृथ्वी रक्तकरि पूर्ण हो गई, जैसे समुद्रके उछलनेकरि पृथ्वी जलसों पूर्ण होजातीहै तैसे रुधिरकरि पूर्ण हो गई, आकाश दिशाविषे अग्निका तेज बढ गया, जैसे प्रलयकालविषे द्वादश सूर्यका तेज होता है, बड़े पहाडकी वर्षा होवे, रुधिरके प्रवाहविषे पहाड़ भ्रमते फिरैं, जैसे समुद्रविषे तरंग घुमर२ फिरते हैं ॥ हे रामजी ! ऐसा युद्ध हुआ, क्षणविषे पहाड़के प्रवाह दृष्टि आवैं, क्षणविषे शस्त्रके प्रवाह, क्षणविषे सर्पके, क्षणविषे गरुड़के, क्षणविषे अप्सरागण अंतरिक्षविषे भासैं, क्षणविषे जलमय हो जावैं, क्षणविषे सभास्थान अग्निसों पूर्ण हो जावैं, क्षणविषे सूर्यका प्रकाश भासै, क्षणविषे सर्व ओरते अंधकार भासै, महाभयानक युद्ध होने लगा; दैत्य आकाशविषे उडैं उड उड युद्ध करैं देवता वज्र आदिक शस्त्र चलावैं, जैसे पंखते रहित पहाड़ गिरते हैं, तैसे दैत्य गिरैं, सो भूमिलोकविषे आय पड़ैं, अनेक देवता दैत्यके समूह गिरपड़ें, किसीका शिर किसीकी भुजा काटी गई, चरण हाथ काटे गए, जैसे वृक्ष पहाड होते हैं, ऐसे जिनके शरीर हैं, सो गिर गिर पडैं अनेक संकटको देवता अरु दैत्य प्राप्त भये, महादारुण युद्ध होने लगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे सुरासुरयुद्धवर्णनं नाम अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशतितमः सर्गः २९.

असुरहननवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जब देवता अरु दैत्यनका युद्ध हुआ, बहुरि देवताओंका धैर्य नष्ट हो गया, युद्धते कृपण होके अंतर्धान

भए, बहुरि पैंतीस वर्षते उपरांत युद्ध करने लगे, कभी पांच दिन उपरांत कभी सात अष्ट उपरांत, कभी मासउपरांत, युद्ध करैं, बहुरि छिप जावैं, ऐसे विचारकारि छलसों उनकेसाथ युद्ध करैं, कबहूं दाम, व्याल, कटके निकट जावैं, कबहूं दाहिने, कबहूं बांये, कबहूं आगे, कबहूं पाछे दौडने लगैं, इधर उधर देखिकै मारने लगैं, इसप्रकार जब देवताओंने बहुत उपाय किये, तब युद्धके अभ्यासते दाम, व्याल, कट भी देवतोंके पाछे दौडने लगे, वह भी ये भी इधर उधर देखने लगे देहादिकविषे तिनको अहंकार फुरि आया ॥ हे रामजी ! जैसे निकटताकरिकै दर्पणमें प्रतिबिंब पड़ता है, दूरका नहीं पड़ता, तैसे अतिशय अभ्यासते अहंकार फुरि आता है, अन्यथा नहीं फुरता, जब अहंकार तिनको फुरा, तब पदार्थकी वासना भी फुरि आई, बहुरि यह फुरा, हम दाम, व्याल, कट हैं, किसीप्रकार जीते रहैं, जीनेकी इच्छाकारि दीनभावको प्राप्त भये, अरु भय पाने लगे कि, इसप्रकार हमारा नाश होवैगा, इस प्रकार हमारी रक्षा होवैगी, सो उपाय करैं, जिसकरि हम जीवते रहैं, इसप्रकार आशाकी फांसीविषे बांधे हुए, दीनभावको प्राप्त हुए, आपको देहमात्रविषे आस्था करत भए कि, देहरूपी लता हमारी स्थित रहै, हम सुखी होवैं, इस वासनासंयुक्त पूर्वकी धैर्यको त्यागते भये और जानने लगे कि, ये हमारे शत्रुहैं, नाशकर्त्ता हैं, इनते हमारी रक्षा होवै, इत्यादिक कृपणताको प्राप्त हुए धैर्य नष्ट हो गया जैसे जलविना कमलकी शोभा जाती है, तैसे इनकी शोभा जाती रही, खानपानकी वासना फुरि आई, संसारकी भयानक गतिको प्राप्त भये युद्ध करैं तब आश्रय लेकर करैं, ढाल आदिक आगे रक्खैं, अहंकारकरिकै भयभीत हुए, यह हमको मारते हैं हम इनको मारते हैं, इस चिंताकारिकै इन सबके हृदय फँसि गये, शनैः शनैः युद्ध करने लगे, जब देवता शस्त्र चलावैं, तब बच जावैं, भयभीत होकारि भागैं, अहंकार जो आय उदय हुआ, तिसकारि तिनके मस्तकपर आपदाने चरण आन रक्खे, महादीन जैसे होगए, मुखकी शोभा जाती रही; धैर्य बलनष्ट हो गया, ऐसे हो गये, जो कोऊ आगे पडै, तौ भी तिसको मारि न सकैं, जैसे काष्ठते रहित हुआ अग्नि क्षीरको नहीं भक्षण

करता तैसे वे निर्मल होगए, अंग काटे जावें भाग जावें जैसे और सामान्य शूरमें युद्ध करते हैं, तैसे युद्ध करने लगे ॥ हे रामजी ! बहुत कहना क्या है, मरनेते डरने लगे, युद्ध करि न सकैं, तब देवता जो वज्र आदिककरि तिनको प्रहार करने लगे, तिसकरि चूर्ण हो गए, भयभीत होकरि भागे, सब सैन्य दैत्यकी भाग जावै, जो जो देश देशांतरसों आए थे, सो सब भागैं, अरु मारैं, कोऊ किसी देशको, कोऊ किसी देशको, पहाड़ कंदरा जलविषे गये, जहां जहां स्थान देखा तहां तहां चले गए, दैत्य भयभीत होकरि हारको प्राप्त भये, अरु देवताओंकी जीत भई, दैत्य भागिके पातालविषे जायके छिपे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्याने असुरहनन० नाम एकोनत्रिंशतितमः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशत्तमः सर्गः ३०.

दामव्यालकटजन्मांतरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार भया तब देवता प्रसन्न हुए, अरु दाम, व्याल, कट भयभीत होके पातालको गए, देवताओंका भय पाये, अरु शंबरसों भी भय पाये, जैसे प्रलयकालकी अग्नि प्रज्वलित होती है, तैसे शंबर प्रज्वलित अग्निका रूप है, तिसके भयकरि दाम, व्याल, कट सप्तवें पातालविषे जाय स्थित भए, तहां दैत्यके मंडलको छेदिके जहां यमकिंकर रहते हैं, तिसविषे जाय रहे, वहां इनका कुकुहा नाम तहांते भया, नरकरूपी समुद्रके आपालक यमकिंकर हैं, तिनने दयाकरि इनको बैठाया, जैसे पापीको चिंता प्राप्त होती है, तैसे इनको स्त्रियां प्राप्त भईं ३ ...६ सप्तवें पातालविषे रहत भए, आगे इनकी बड़ी संतान पुत्रपौत्रादिक भए, सहस्र वर्ष व्यतीत किए, तहां वासना दृढ़ हो गई, यह मेरी स्त्री है, पुत्र कलत्र बांधवविषे स्नेह बहुत होगया, एककालमें तहां अपनी इच्छाकरि धर्मराज आवत भया, नरकका कछु कार्य करना था, तिसको देखिके सब किंकर उठ खडे हुए प्रणाम किया, अरु दाम, व्याल, कट, तिसकी बड़ाईको जानते न थे और किंकरसमान जानिके प्रणाम कछु

न करत भए, तब वैवस्वत यमराजाने क्रोध किया कि, यह दुष्ट मानी हैं, इनको शासना देनी चाहिए, इसप्रकार विचारकरिकै किंकरोंको इसारा किया कि, इनको परिवारसंयुक्त अग्निकी खाईविषे डारि देहु, रुदन करते पुकारते रहे, अरु इनको डारि दिये, परिवारसंयुक्त नरककी अग्निविषे जलि गए, जैसे दावाग्निविषे पत्र, टास, फूल, फलसंयुक्त वृक्ष जलि जाता है, तैसे जलि गए, तब मलिन वासनाकरिकै क्रांत देशका जो राजा था, तिसके किंकर धीवर जाय हुए, तहां जीवकी हिंसा करते रहे, जब धीवरका शरीर छूटा, तब कुंजा हुए, बहुरि चीलह हुए, बहुरि बगले हुए, बहुरि तीरगत देशविषे धीवर हुए, बर्बर देशविषे मच्छर हुए, मगधदेशविषे जाय कीट हुए ॥ हे रामजी ! इसप्रकार दाम व्याल कट तीनों वासनाकरि अनेक जन्मोंको प्राप्त भए, बहुरि अब काश्मीर देशविषे एक ताल है, तिसविषे तीनों मच्छ हुए हैं, वनको अग्नि लगी थी, तिसकरि जल भी सूख गया, अल्प उष्णजल रह गया है, तिसविषे रहते हैं, अरु वहीं जलपान करते हैं, न मरते हैं, न जीते है, जिनकी जो संपदा है, तिनको भी नहीं भोगते, चिंताकरि पड़े जलते हैं ॥ हे रामजी ! अज्ञानकरि अनेकवार जन्मते मरते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु मिटते हैं, जैसे जलके भ्रमर विषे तृण आय भ्रमता है, तैसे वासनाकरिकै भ्रमते फिरे, अबलग उनको शांति नहीं प्राप्त भई, अहंकार वासना महादुःखका कारण है, इसके त्यागेते सुख है, अन्यथा सुख कदाचित् नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दाम व्याल कट जन्मांतरवर्णनं नाम त्रिंशत्तमः सर्ग ॥ ३० ॥

एकत्रिंशत्तमः सर्गः ३१.

निर्वाणोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तेरे प्रबोधके निमित्त मैं तुझको दाम, व्याल, कटका न्याय कहा है कि, तिनकी, नाईं तू मत होहु, इस निमित्त इतिहास कहा है, अपर किसी लीलाका प्रयोजन न था, अविवेकीका

निश्चय ऐसा है, अनेक आपदाको प्राप्त करता है, जो अनंत दुःखको भुगतता है, कहां शंबर दैत्यकी सेनाके साथ अरु देवताओंके नाशकर्त्ता अरु कहां तप्त जलके मच्छ जर्जरीभावको प्राप्त हुए जिनके शरीर, कहां वह धैर्य अरु बल जिसकरि देवताओंको नाश करना, अरु भगावना, अरु आप चलायमान न होना, अरु कहां क्रांत देशके राजाके किंकर धीवर होना, कहां वह निरहंकार चित्त शांत उदारता अरु धैर्य, अरु कहां वासनाकरि मिथ्या अहंकारसों संयुक्त होना ? एते दुःख आपदाको प्राप्त हुए, सो अहंकारकरि हुए हैं, अहंकारकरिकै संसाररूपी विषकी मंजरी शाखा प्रतिशाखा बढी हैं, संसाररूपी वृक्षका बीज अहंकार है, जबलग अहंकार है, तबलग अनेक दुःख आपदा प्राप्त होते हैं, ताते तुम अहंकारको यत्नकरिकै मार्जन करहु, मार्जन करना यह है कि, अहंवृत्ति है तिसको असत् जानो कि, मैं कछु नहीं; इस मार्जनकरि सुखी होवैगा॥ हे रामजी ! आत्मरूपी अमृतका चंद्रमा है, शीतल शांतरूप तिसका अंग है, अहंकाररूपी मेघ आया है, तिसकरि वह अदृष्ट हुआ भासता नहीं, जब विवेकरूपी पवन चलै, तब अहंकार बादल नष्ट होवै, आत्मारूपी चंद्रमा प्रत्यक्ष भासै, अहंकार पिशाच जब उपजा, तब दाम, व्याल, कट तीनों मायारूप दानव सत् होके अनेक आपदाको भोगते हैं, अबलग काश्मीरके तालविषे मच्छ हुये पडे हैं, सिवारके भोजन करनेको पडे यत्न करतेहैं, जो अहंकार न होता तौ एती आपदाको क्यों प्राप्त होते ? ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सतका अभाव नहीं होता, अरु असतका भाव नहीं होता, असत् दाम, व्याल, कट सत् कैसे भये ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार है, जो सत् नहीं सो किसीको कबहू कछु भान नहीं होता, परंतु सत् किसीको असत् प्राप्त हुआ देखता है, अरु असतको न हुआ देखा है जो स्थित हुआ है, इसी तेरे कहनेसों मैं युक्तिकरि तुझको प्रबोध करौंगा ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! हम तुम जो ये सब हैं, सो सत्यरूप हैं, अरु दामादिक जो थे, सो मायामात्र असतरूप थे, सत् कैसे भए सो कहौ ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे दामादिक मायारूप असत्करि मृगतृष्णाके जलवत् स्थित भये तुम हम देवता दानव संपूर्ण संसार असत्

मायामात्र सत् होके भासता है वस्तुते कछु हुआ नहीं. जैसे स्वप्न-विषे अपना मरणा भासता है सो असत्‌रूप है, तैसा हम तुम आदिक यह जगत् भासता है, सो असत्‌रूप है जैसे स्वप्नविषे अपने मरे बांधव आनि मिलते हैं, और चर्चा करते हैं अरु प्रत्यक्ष भासते हैं सो असत्‌रूप होते हैं, तैसे यह जगत् असत्‌रूप है ॥ हे रामजी! यह जो मेरे वचन हैं, सो मूढको विषयभूत नहीं, उनको नहीं शोभते काहेते कि अज्ञानीके हृदयविषे संसारका सद्भाव दृढ हो गयाहै अरु अभ्यासविना इस निश्चयका अभाव नहीं होता जैसा निश्चय किसीके हृदयविषे दृढ हो रहा है, सो दृढ अभ्यासके यत्नविना कदाचित् दूर नहीं होता. जिसको यह निश्चय है कि, जगत् सत् है, सो मूर्ख उन्मत्त है, अरु जो ज्ञानवान् है तिसके हृदयविषे जगत्‌का सद्भाव नहीं होता केवल ब्रह्मसत्ताका भाव होता है, अरु अज्ञानीको जगत् सत् भासता है, अज्ञानीके निश्चयको ज्ञानी नहीं जानता, अरु ज्ञानीके निश्चयको अज्ञानी नहीं जानता, जैसे मदकरि मत्त होवै तिसके निश्चयको अमत्त नहीं जानता, अरु अमत्तके निश्चयको मत्त नहीं जानता तैसे ज्ञानी अज्ञानीका निश्चय इकट्ठा नहीं होता जैसे प्रकाश अरु अंधकार इकट्ठा नहीं होता, धूप अरु छाया इकट्ठी नहीं होती, तैसे ज्ञानी अरु अज्ञा-नीका निश्चय इकट्ठा नहीं होता, जिसके चित्तविषे जो निश्चय है तिसको वही अभ्यास यत्नकरि दूर करै तब दूर होता है अन्यथा नहीं होता ज्ञानी भी अज्ञानीके निश्चयको दूर नहीं करसकता जैसे मृतककी जीवकलाको मनुष्य ग्रहण नहीं करिसकते कि, उसके निश्चयविषे क्या है. जो ज्ञानवान् है तिसके निश्चयविषे सर्व ब्रह्मका भान होता है और जगत् द्वैत कछु नहीं तिसीको मेरे वचन शोभते हैं आत्मअनुभव सर्वदा सत्‌रूप है और सब असत् पदार्थ हैं यह वचन प्रबुद्धका विषय है तिसको शोभते हैं अरु अज्ञानीको जगत् सत् भासता है ताते ब्रह्मवाणी तिसको शोभा नहीं देती ज्ञानीको यह निश्चय है कि, जगत् रंचकमात्र भी सत्य नहीं एक ब्रह्मही परमसत्तास्वरूप हैऔर यह अनुभव बोधवान्‌का है तिसके निश्चयको कोऊ दूर नहीं करि सकता, परमात्माते व्यतिरेक कछु नहीं, जैसे स्वर्णविषे भूषणभाव नहीं तैसे आत्माविषे सृष्टिभाव

नहीं, अरु अज्ञानीको पंचभूतते व्यतिरेक कछु नहीं भासता, जैसे स्वर्णविषे भूषण नाममात्र होता है, तैसे वह आपको नाममात्र जानता है, सम्यक्दर्शीको इसते विपरीत भासता है, अरु जो पुरुष होवै और कहै मैं घट हौं, जैसे यह निश्चय उन्मत्त है, तैसे हम तुम आदिक असत्रूप हैं, सत् वही है जो शुद्ध संवित्बोध आकाश निरंजनरूप हैं, सर्वगत शांतरूपहै, उदयअस्तते रहितहै, जैसे नेत्रदूषणवालेको आकाशविषे तरुवरे भासते हैं, तैसे अज्ञानीको जगत् सत्रूप भासता है, आत्मसत्ताविषे जैसा जैसा किसीको निश्चय हो गया है, तैसाही तत्काल हो भासता है, वस्तुते जैसे दामादिक अणु होते थे; तैसे तुम हम आदिक जगत् है, अनंत चेतन आकाश सर्वगत निराकारविषे फुरना होता है, सोई देहाकार हो भासते हैं, जैसे संवित्का किंचन दामादिक निश्चयसों आकारवान् हो भासे; तैसे हम तुम भी फुरनेमात्र हैं, संवेदनके फुरनेहीकरि स्थित भए हैं, जैसे स्वप्ननगर भासता है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है, तैसे हम तुम आदिक जगत् आत्मरूप भासता है, प्रबुद्धको सब चिदाकाशही भासता है, अपरको सब मृगतृष्णा अरु स्वप्ननगर भासता है. जो आत्माकी ओर जागे हैं, अरु जगत्की ओर सोये हैं, सो मोक्षरूप हैं, अरु जो आत्माकी ओरते सोये हैं जगत्की ओर जागे हैं, सो अज्ञानी बंधरूप हैं, अरु वास्तवते न कोऊ सोये हैं, न जागते हैं, न बँधे हैं, न मोक्ष हैं, केवल चिदाकाश है, सोई जगत्रूप हो भासता है, निर्वाणसत्ताही जगत्लक्ष्मी होइकारि स्थित भई है, अरु जगत् निर्वाणरूप है, दोनों एक वस्तुके पर्याय हैं, जैसे तरु अरु विटप एकही वस्तुके दो नाम हैं, तैसे ब्रह्म अरु जगत् एकही वस्तुके पर्यायहैं, जैसे आकाशविषे तरुवरे भासते हैं, अरु हैं नहीं, आकाशही है, तैसे अज्ञानीको ब्रह्मविषे जगत् भासता है, सो है नहीं; ब्रह्मही है. जैसे किसीको नेत्रविषे तिमिरका रोग होता है, तिसकरि तरुवरे भासते हैं, सो तरुवरे नेत्ररोगते भिन्न नहीं तैसे अज्ञानीको अपना आपही अन्यत्रूप हो भासताहै, सो चिदाकाश स्थानविषे भासताहै, सो चिदाकाश सर्व ओर व्यापकरूप है, तिसते इतर जगत् असत् है, कछु वस्तु नहीं, सत्यरूप एक विस्तृत आकार वही सत्ता

है, महाशिलावत् घन स्वच्छ निस्पंद उदयअस्ततें रहित है, सर्व कल-नाको त्यागिकारि तिसी अपने आपविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठ स्थितिप्रकरणे निर्वाणोपदेशवर्णनं नाम एकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ३२.

देशाचारवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! असत्‌ही सत्‌की नाईं होके स्थित भया है, जैसे बालकको अपने परछाईंविषे वैताल हो भासता है, सो जैसे हुआ तैसे हुआ है, अब यह कहौ, दाम व्याल कटके दुःखका अन्त कैसे होवैगा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब तिनको अग्निविषे यमराजने भस्म कराये तब यमराजसों किंकर पूछते भए कि, हे प्रभो ! इनका उद्धार कब होवैगा ? तब यमराजने कहा, हे किंकरो ! जब ये तीनों आपसमें बिछुरि जावेंगे अरु अपनी संपूर्ण कथा श्रवण करैंगे, तब निःसंदेह होके मुक्त होवैंगे, यह नीति है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह वृत्तांत कहाँ सुनैंगे; अरु कब सुनैंगे, अरु कौन निरूपण करैगा ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! काश्मीरदेशविषे एक बडा ताल है, अरु कमलोंकारि पूर्ण है, तिसके निकट एक छोटा ताल है, तिसविषे चिरपर्यंत वारंवार मच्छ होवेंगे फिर मच्छका शरीर त्यागिकारि सारस पक्षी होवैंगे, कमलोंके तालऊपर रहैंगे, कमल अरु कमलनियां उत्पल आदिक फूलोंविषे विचैरंगे, सुगंधको लेते चिरकाल व्यतीत करैंगे, तब दैवसंयोगकारि उनके पाप नष्ट होवैंगे, अरु बुद्धि निर्मल हो आवैगी, तब तीनों आपसमें बिछुरि जावैंगे, अरु मुक्तियुक्तिको प्राप्त होवैंगे; जैसे राजसी तामसी सात्त्विक गुण आपमें स्वेच्छित बिछुरि जाते हैं, तैसे वे स्वेच्छित बिछुरि जावैंगे, काश्मीर देशविषे एक पहाड है, तिसके शिखरपर एक नगर बसैगा, तिसका नाम प्रद्युम्न होवैगा, तिस शिखरपर कमलोंकारि पूर्ण एक ताल होवैगा, तहां एक राजाका स्थान होवैगा. ईशानकोणकी ओर राजाका मंदिर होवैगा, तिस मंदिरके एक छिद्रविषे घास तृणकारि आलय बनाय व्याल नाम दैत्य चिड़िया होकारि तहां रहैगा.

कैसा आलय कि, वायुकरि तिसके तृण पडे हिलैंगे, तहां वह शब्द करैगा. कैसा कि, तिसका अर्थ कछु समझिये नहीं निरर्थक शब्द होवैगा तिस कालमें श्रीशंकर नाम राजा होवैगा, गुण अरु भूतिकरि संपन्न मानो दूसरा इन्द्र है, तिसके मंदिरकी छतकी कडीके छिद्रविषे दामनाम दैत्य मच्छर होकरि रहैगा, भूं भूं शब्द करता विचरैगा, अरु कट नाम दैत्य तहां क्रीडाका पक्षी होवैगा, रत्नोंकरि जडे हुए पिंजरेविषे रहैगा, तिस राजाका मंत्री बड़ा बुद्धिमान् होवैगा जैसे हाथविषे आंवला होता है, तैसे उस मंत्रीको बंध अरु मुक्तिका ज्ञान प्रसिद्ध होवैगा, अरु नरसिंह मंत्रीका नाम होवैगा, सो मंत्री राजाके आगे दाम व्याल कटकी कथा श्लोक बांधिकरि कहैगा, तब करकर नामा पक्षी हुआ जो कट दैत्य है, सो पिंजरेविषे श्रवण करैगा तिस श्रवण करनेसों उसको अपना वृत्तांत सब स्मरण होवैगा, तिसको विचारैगा, तब मिथ्या अहंकार शांत होवैगा, परम निर्वाण सत्ताको प्राप्त होवैगा, इसी प्रकार राजाके मंदिरविषे चिडिया हुआ व्याल नाम दैत्य भी श्रवण करैगा. वह भी परमनिर्वाणसत्ताको प्राप्त होवैगा, इस प्रकार लकड़ीके छिद्रविषे मच्छर हुआ दाम नाम दैत्य भी श्रवण करिकै मोक्ष होवैगा ॥ हे रामजी ! करकर पक्षी अरु चिड़िया अरु मच्छर तीनों पहाडके शिखरपर राजमंदिरविषे बसनेहारे मोक्ष होवैंगे, यह संपूर्णक्रम तुझको कहा है सो संसारभ्रम मायामय है, अत्यंत भास्वर प्रकाशरूप भासता है, तौ भी महाशून्य अविचारते सिद्ध है, विचार करिकै ज्ञान हुएते शांत होजाता है, जैसे मृगतृष्णाका जल भलीप्रकार देखते शांत हो जाताहै, यद्यपि अज्ञानी बडे पदको प्राप्त होता है, तौ भी अधोते अधो मोहते चला जाताहै जैसे दाम व्याल कट महाजालविषे पडेथे, कहां वह बल भौंहैं टेढी करनेसे सुमेरु मंदराचल जैसे पर्वत पडि जावैं, अरु कहां राजाके गृहविषे काष्ठके छिद्रसों मच्छर होना ! कहां वह बल जिसके हाथकी चपेटकरि सूर्य अरु चंद्रमा गिर पडैं, अरु कहां प्रद्युम्नका पहाडके गृह छिद्रविषे चिड़िया होना ! कहां वह बल जो सुमेरु पर्वतको पीले फूलकी नाईं लीलाकरि उठाय लेना, अरु कहां पहाडके शिखरपर गृहविषे पक्षी

होना। एक अज्ञानरूपी अहंकारकरिकै एती लघुताको जीव प्राप्त होते हैं अज्ञानकरिकै रंजित हुए मिथ्या भ्रमको देखते हैं. प्रकाशरूप चिदाकाश सत्ताविना इनको भासता है, अपनी वासनाकी कल्पना करिकै जगत् सत्रूप भासता है. जैसे मृगतृष्णाका जल भ्रमकरिकै सत् भासताहै, तैसे अपनी कल्पनाकरिकै जगत् सत् भासता है, इस संसारसमुद्रके तरणेको वही समर्थ होता है, जो शास्त्रके विचारद्वारा निर्वासनिक पुरुष हुआहै, अरु जो संसारनिरूपणका शास्त्र है, तारक कहनेको बड़ा प्रकाशरूप है शब्द जिसका, तिसका आश्रय करता है, सो संसारके पदार्थको शुभरूप जानता है, तिसकरि अधःको गिरता है, जैसे टोयेको जलरूप जानिकै स्नानके निमित्त जावै, अरु गिर पड़ै॥ हे रामजी! अपना अनुभवरूपी जो प्रसिद्ध मार्ग है, तिसविषे जो प्राप्त भये हैं, तिनका नाश नहीं होता, सुखसों स्वच्छंद चले जाते हैं, जैसे पथिक सूधे २ मार्ग चला जाता है, ब्रह्मनिरूपक जो शास्त्र है, सो निर्वेदमार्ग, और संसारनिरूपक शास्त्र दुःखदायक मार्ग है, यह जगत् असत्रूप भ्रांतिमात्र है, जिसकी बुद्धि इसविषे है कि, यह पदार्थ यह सुख मुझको प्राप्त होवै, इसप्रकार संसारके विषयकी तृष्णा करते हैं; सो अभागी हैं अरु जो ज्ञानवान् पुरुष है तिसको जगत् घास तृणकी नाईं तुच्छ भासता है, जिस पुरुषके हृदयविषे परमात्माका चमत्कार भया है, सो इस ब्रह्मांड खंड लोक अरु लोकपालको तृणवत् देखता है, जैसे जीव आपदाको त्यागता है, तैसे उसके हृदयविषे ऐश्वर्य भी आपदारूप त्यागने योग्य है, ताते अंतर निश्चयात्मक तत्त्वविषे रहौ, अरु बाहिर जैसा अपना आचार है, तैसा करौ, आचारका व्यतिक्रम नहीं करना व्यतिक्रम करनेकरि शुभकार्य भी अशुभ हो जाता है, जैसे राहु दैत्यने जो अमृतपान करनेका यत्न किया तौ भी व्यतिक्रमते शरीर कटता भया; ताते शास्त्रानुसार चेष्टा करनी कल्याणका कारण है, संतजनकी संगति अरु सच्छास्त्रकरि बडा प्रकाश प्राप्त होता है, जो पुरुष इनको सेवता है, सो मोह अंधकूपविषे नहीं गिरता॥ हे रामजी! वैराग्य, धैर्य, संतोष, उदारता आदिक जो गुण हैं, सो जिसके हृदयविषे प्रवेश करते हैं, सो पुरुष परम संपदावान्

होता है, आपदाको नष्ट करता है, जो पुरुष शुभ गुणकारि संतुष्ट है, अरु सच्छास्त्रके श्रवणरागविषे राग है. अरु सतकी वासना है, सो पुरुष है; और सब पशु हैं, जिसमें वैराग्य, संतोष, धैर्य आदि गुणकारि चांदनी पसरती है, अरु हृदयरूपी आकाशविषे विवेकरूपी चंद्रमा प्रकाशता है, सो पुरुष शरीर नहीं मानौ क्षीरसमुद्र है, तिसके हृदयविषे विष्णु विराजते हैं, जो कछु तिन्हें भोगना था सो भोगा है, जो कछु देखना था सो देखा है, बहुरि भोगने अरु देखनेकी तृष्णा नहीं रहती, जिस पुरुषका यथाक्रम यथाशास्त्र आचार है, अरु निश्चय है, तिसके भोगकी तृष्णा निवृत्त हो जाती है, तिन पुरुषोंके गुण आकाशविषे सिद्ध देवता अप्सरा गायन करते हैं, सो मृत्युको तरते हैं, अपर भोगके तृष्णावाले कदाचित् नहीं तरते ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषोंके गुण चंद्रमाकी नाईं शीतल हैं, अरु सिद्ध अप्सरा गान करते हैं, सो पुरुष जीवते हैं, और सब मृतक हैं, ताते परमपुरुषार्थका आश्रय करहु, तब परमसिद्धताको प्राप्त होवोगे, वह कौन वस्तु है, जो शास्त्र-अनुसार पुरुषार्थ कियेते अनुद्वेग होइकारि प्राप्त न होवै ॥ अवश्यमेव प्राप्त होता है, यथाशास्त्र क्रिया करै, अरु चिरकाल व्यतीत हो जावै, सिद्धता न होवै तौ भी उद्वेग न करै, वह फल परिपक्व होइकारि प्राप्त होवैगा; जैसे वृक्षसों परिपक्व होके फल उतरता है, तब अधिक मिष्ट अरु सुखदायक होता है, यथाशास्त्र व्यवहार करनेहारा तिस पदको प्राप्त होता है, जहां शोक भय यत्न सब नष्ट हो जाते हैं, अरु शांतिमान् होता है ॥ हे रामजी ! मूर्ख जीवकी नाईं संसारकूपविषे मत गिरहु, यह संसार मिथ्या है, तुम उदार आत्मा हौ, उठि खडे होहु, अपने पुरुषार्थका आश्रय करहु, अरु इस शास्त्रको विचारहु, जैसे रणविषे प्राण निकसने लगैं तौ भागता नहीं, शस्त्रको पकडिकै युद्ध करता है, जो अमरपद प्राप्त होवै, तैसे संसाररूपी रणविषे पुरुषार्थ शस्त्र है, यही पुरुषार्थही करौ शास्त्रको विचारौ कि, कर्तव्य क्या है ? जो विचारते रहित है, सो दौर्भाग्य दीनता अशुभको प्राप्त करनेहारा है, महामोहरूपी घन निद्रा है, तिसको त्यागिकारि जागो, पुरुषार्थको अंगीकार करौ, सो जरामृतिके शांतिका

कारण है, और जेते कछु अर्थ हैं, सो सब अनर्थरूप हैं, भोग सब रोगके समान हैं, संपदा सब आपदारूप हैं, ये सब त्यागने योग्य हैं, सन्मार्गको अंगीकार करिकै अपने प्रकृत आचारविषे विचारौ, शास्त्र अरु लोकमर्यादानुसार व्यवहार करौ, शास्त्रके अनुसार कर्मका करना सुखदायक होता है, जिस पुरुषका शास्त्रके अनुसार व्यवहार है, ऐसा जो विवेकी पुरुष है, तिसका संसारदुःख नष्ट हो जाता है, आयुर्बल, यश, गुण, और लक्ष्मीकी वृद्धि होती है, जैसे वसंतऋतुकी मंजरी प्रफुल्लित होती है तैसे वह प्रफुल्लित होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्याने देशाचारवर्णनं नाम द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ३३.
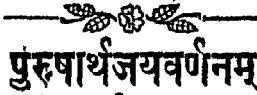
पुरुषार्थजयवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सर्व दुःखके देनेहारा, सर्व सुखका फल सब ठौर सब कालविषे सबको अपने कर्मके अनुसार होता है, एक दिन नंदीगण एक सरोवरपै जायके सदाशिवका आराधन करत भया, तब सदाशिव प्रसन्न भया, तिसकरि उसने मृत्युको जीता, अरु प्रथम नंदी था, सो नंदीगण नाम भया, अरु मित्र बांधव सबको सुख देनेहारा भया, सो क्योंकरि भया, अपने स्वभाव यत्नकरिकै भया, अरु दैत्य शास्त्रके अनुसार यत्न करते हैं, तब क्रमकरिकै देवताको मारते हैं, कैसे देवता हैं, जो सबते उत्कृष्ट वर्तते हैं, जैसे हस्ती कमलको उखाड़ते हैं,तैसे देवताको दैत्य उखाडते हैं सो अपनाही पुरुषार्थ है, अरु मरुत् राजाके यज्ञविषे संवृतनामक एक महाऋषि आया, तिसने देवता दैत्य मनुष्य आदिक अपनी सृष्टि रचलीनी, मानो दूसरा ब्रह्मा है, सो ऐसी सृष्टि अपने पुरुषार्थकरि रची अरु विश्वामित्रने वारंवार तप किया, तपकी अधिकताकरि राजर्षिते ब्रह्मर्षि हुआ, सो अपनेही शुद्धाचार करि हुआ ॥ हे रामजी ! एक दुर्भाग्य ब्राह्मण था, उपमन्यु तिसका नाम था, तिसको अपने गृहविषे भोजनकी सामग्री प्राप्त न थी तब उसने एक गृहस्थके घर पितासंयुक्त भोजन किया, दूध चावल खंडसहित भोजन

करिकै अपने गृहविषे आया, बहुरि पितासे कहने लगा, मुझको वही भोजन देहु, जो खाया था सो; तब पिताने साँवेंके चावल अरु आटेका दूध घोलिकै दिया, उसने भोजन किया तब तैसा स्वाद न लगा, बहुरि पितासे कहा, मुझको वही भोजन देहु जो वहां खाया था, पिताने कहा, हे पुत्र ! वह भोजन हमारे पास नहीं, सदाशिवके पास वह भोजन है, जो वे देवैं तो हम खावैं तब वह ब्राह्मण सदाशिवकी उपासना करने लगा, ऐसा तप किया कि, शरीर अस्थिमात्र हो रहा, अरु रक्त मांस सब सूख गया, तब शिवजीने प्रसन्न होकरि दर्शन दिया अरु कहा, हे ब्राह्मण ! जो तुझको इच्छा है सो वर माँग; ब्राह्मणने कहा, दूध अरु चावल देहु, तब सदाशिवने कहा, दूध अरु चावल क्या, कछु और माँग, अरु तुझने कहा है, तौ यही भोजन किया कर, तब उसको वही भोजन प्राप्त हुआ, अरु कहा, जब तू चिंतन करैगा, तब मैं दर्शन देऊँगा ॥ हे रामजी ! यह भी तौ अपना पुरुषार्थ हुआ, त्रिलोकीकी पालना करनेवाले विष्णु हैं, तिनको काल तृणकी नाईं मर्दन करता है, तिस कालको श्वेतने जीता है, सो अपना उद्यम हुआ, अरु सावित्रीका भर्त्ता मृतक हुआ था वह पतिव्रता थी, सो स्तुति नमस्कार करिकै यमको प्रसन्न करती भई, भर्त्ताको परलोकसों ले आई, यह भी अपना पुरुषार्थ है, श्वेतनामा एक ऋषीश्वर हुआ है, सो अपने पुरुषार्थकरि कालको जीति मृत्युंजय नामको पावत भया, ताते ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं जो यथाशास्त्र उद्यम कियेते प्राप्त न होवे, जो अपने पुरुष प्रयत्नका त्याग नहीं करै, तौ सर्व सुखफलकी प्राप्ति होती है, जो अविनाशी सुखकी इच्छा होवै, तौ आत्मबोधका अभ्यास करै, अपर जेते कछु संसारके सुखहैं, सो दुःखके साथ मिले हुए हैं, अरु आत्मसुख सब दुःखका नाश करता है, किसी दुःखके साथ मिला नहीं, वास्तव कहिये तौ शम अशम सर्व ब्रह्महीं है, यद्यपि ऐसे है, तौ भी शम परम कल्याणका कर्ता है, ताते अभिमानका त्याग करि शमका आश्रय करहु, अरु निरंतर बुद्धिकरि विचार करहु, अरु यत्नकरि संतका संग करौगे, तब परमपदको प्राप्त होवौगे ॥ हे रामजी ! संसारसमुद्रके पार करनेको ऐसा

समर्थ तप नहीं, न तीर्थ करनेकरि और समान शास्त्रोंकरिकै तरनेको समर्थ होता है, जैसे संतजनके सेवनसों भवसागरते सुखसों तरना होता है, जिस पुरुषके लोभ, मोह, क्रोध आदिक विकार दिन दिन प्रतिक्षीण हो जाते हैं, अरु यथाशास्त्र तिसका कर्म है, ऐसे पुरुषको संतजन कहते हैं, अरु आचार्य कहते हैं; तिनकी संगति संसार पाप कर्मते निवृत्त करती है, अरु शुभविषे जोडती है; आत्मवेत्ता जो पुरुष है; तिसकी संगति इसकी बुद्धिविषे संसारका अत्यंत अभाव होता है, जब दृश्यका अत्यंत अभाव हुआ तब शेष आत्मा रहता है, इस क्रमकरिकै जीवका जीवनभाव निवृत्त हो जाताहै, शेष बोध तत्त्व रहता है, जगत् न उपजता है न आगे होवैगा, न वर्तमानविषे है, इसप्रकार मैंने तुझको अनंतयुक्तिकरि कहा है अरु कहौंगा, ज्ञानवान्को सर्वदा ऐसेही भान होता है, अचल चिदात्माविषे चंचल चित्त फुरा है तिसने जगत् आभासको रचे हैं, जैसे जैसे फुरता है, तैसे तैसे जगत् भासता है; अरु वस्तुतें अपर कछु हुआ नहीं, आत्मरूपी सूर्य है, जगत् तिसकी किरणैंरूप हैं; जैसे सूर्य अरु किरणोंविषे भेद कछु नहीं, तैसे जगत् अरु आत्मविषे भेद कछु नहीं, अहंरूप आत्मा है, तिसविषे आपको न जानना, सो आत्माकाशविषे मेघरूपी मलिनता है, जब परमार्थमें अहंभावको जानैगा तब अनात्मविषे अहंभाव लीन हो जावैगा तब चिदाकाशके साथ जीवकी अत्यंत एकता होती है, जैसे घटके फूटेते घटाकाशकी महाकाशके साथ एकता होती है, अहं आदिक जो दृश्य है, सो निश्चयकरि जान, जो वास्तवते कछु नहीं, विचार कियेते नहीं रहता, जैसे बालकको परछाईंविषे पिशाच भासता हैं, सो भ्रांतिमात्र होता है, तैसे यह जगत् भ्रांतिसिद्ध है, अपनी कल्पनाकरि भासता है, अरु दुःखदायक होता है, विचार कियेते नष्ट होजाता है ॥ हे रामजी ! आत्मरूपी चंद्रमा सदा प्रकाश है, अरु अहंकाररूपी तिसके आगे मेघ बादल आया है, तिसकरि परमार्थबुद्धिरूपी कमलिनी विकासको नहीं प्राप्त होती, मूँदे मुख हो रही है, ताते विवेकरूपी वायुकरि तिसको नष्ट करौ. नरक, स्वर्ग, बंध, मोक्ष, तृष्णा, ग्रहण, त्याग आदिक सब अहंकार करि पडे फुरतेहैं, हृदयरूपी आकाशविषे अहंकाररूपी मेघ जबलग गर्जता वर्षा करता है,

तबलग तृष्णारूपी कटकमंजरी बढती जाती है; जबलग अहंकाररूपी बादलने आत्मरूपी सूर्यको आक्रमण किया है, तबलग जडता अरु अन्धकार है, प्रकाश उदय नहीं होता, अहंकार वृक्ष है तिसकी अनंत शाखा पसरती हैं, अहं मम आदिक विस्तार अनेक अर्थको प्राप्त करता है; जो कछु संसारविषे सुखदुःख आदिक प्राप्त होता है, सो सब अहंकारकरिकै प्राप्त होता है; संसाररूपी चक्र है, अहंकार तिसकी नाभि है; तिसकरिकै पडा भ्रमता है, अरु अहं ममरूपी बीज है, तिसते अनेक जन्मरूपी वृक्षकी परंपरा उदय होती है; अक्षय हो जाती हैं; जो नष्ट कबहूं नहीं होती ताते यत्नकरिकै इसको नाश करौ; जबलग अहंकाररूपी अन्धकार है, तबलग चिंतारूपी पिशाचिनी विचरतीहैं; अरु अहंकाररूपी पिशाचने जिसको ग्रहण किया है, तिस नीच पुरुषको मंत्र तंत्र भी दीनताते छुडाय नहीं सकते ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! निर्मल जो चिन्मात्र आत्मसत्ता है; सो अपने आपविषे स्थित है तिसविषे अहंकाररूपी मलिनता कहांते प्रतिबिंबित हुई ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राघव ! अहंकारका जो चमत्कार भासताहै. सो वास्तव धर्म नहीं, मिथ्याहै वासनाभ्रमकरि हुआ है, पुरुष प्रयत्न करिकै नष्ट हो जाता है, जो न मैं हौं न मेरा कोई है, अहंममें सार कछु नहीं जब यह शांत होवैगा तब दुःख भी कोऊ न रहेगा जब ऐसी भावनाका निश्चय दृढ होवैगा तब अहंकार नष्ट हो जावैगा; आत्माविषे अहं कोऊ नहीं, न दृश्यमें सारहै; इसप्रकार जब इसका फुरना शांत हुआ, तब अंहकारभी नष्ट होजावैगा, जबअहंकारनष्ट हुआतब हेयोपादेयबुद्धि भी शांत होजावैगी; समता आदिक प्रसन्नता आय उदय होवैगी; अहंकारकी प्रवृत्ति दुःखका कारण है ॥ राम उवाच ॥ हे प्रभो ! अहंकारका रूप क्या है ? अरु त्याग कैसे होता है ? अरु शरीरते रहित कब होताहै, अरु इसके त्यागेते फल क्या होता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अहंकार तीन प्रकारकाहै, दो प्रकारका श्रेष्ठ अंगीकार करने योग्य है, अरु तीसरा त्यागने योग्य है सो सुन, इसका त्याग शरीरसहित होता है, यह दृश्य सब मैंही हौं सो मैं परमात्मा अद्वैतरूप हौं, मुझते इतर कछु नहीं; यह निश्चय परमअहंकारका है, मोक्षको देनेहारा

है, बंधनका कारण नहीं, इसविषे जीवन्मुक्त विचरते हैं, अरु यह अहं-
कार भी मैं तुझको उपदेशके निमित्त कल्पिके कहा है, वास्तवते यह भी
नहीं केवल अचेत चिन्मात्र सत्ता है अरु दूसरा अहंकार यह है कि, मैं
सर्वते व्यतिरेक हौं; अरु बालके अग्रते सौवां भाग सूक्ष्म हौं; ऐसा जो
निश्चय है, सो भी जीवन्मुक्तिका है, मोक्षदायक बंधनका कारण नहीं यह
अहंकार भी तुझको कल्पिके कहाहै, वास्तवते यह कहना भी नहीं, अरु
तीसरा अहंकार यह है, कि हाथपादते आदि लेकरि इतना मात्र आपको
जानना इसविषे जिसका निश्चय है, सो तुच्छ है, बंधनका कारण है,
इसको त्याग करौ यह दुष्टरूप परम शत्रु है, इसकरि जो जीव मरे हैं सो
परमार्थकी ओर नहीं आते यह अहकाररूपी जो शत्रु है, सो चतुर अरु
बडा बली है, नानाप्रकारके जन्म अरु मानसी दुःख काम, क्रोध, राग,
द्वेष आदिकका देनेहारा है, सब जीवको नीच करताहै, अरु संकटविषे
जोडता है इस दुष्ट अहंकारके त्यागेते पाछे जो शेष रहता है, सो आत्मा
भगवान् मुक्तिरूप सत्ता है॥ हे रामजी ! लोकविषे जो अहंकारभावना है,
सो वपुकी है, मैं यह हौं, एतामात्र हौं, सो दुःखका कारणहै, इसको महा-
पुरुषने त्याग किया है, वह जानतेहैं, हम देह नहीं, शुद्ध चिदानंदस्वरूप हैं,
प्रथम जो दो अहंकार मैंने तुझको कहेहैं, सो अंगीकार करने योग्य हैं,
अरु मोक्षदायक हैं, अरु तीसरा अहंकार त्यागने योग्य है, काहेते
कि दुःखका कारण है, तिसी अहंकारको ग्रहण करिके दाम, व्याल,
कट आपदाको प्राप्त हुए, जो महाभयदायक कहनेविषे नहीं आते, जि-
नने भोगे हैं, तिनकी क्या कहनी है, वही जानते हैं ॥ राम उवाच ॥ हे
भगवन् ! तीसरा अहंकार जो तुमने कहाहै, तिसका त्याग कियेते पुरु-
षका क्या भाव रहता है, अरु तिसको क्या विशेषता प्राप्त होती है ॥
वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जबयह जीव अनात्मा अहंकारको त्याग क-
रता है, तब परमपदको प्राप्त होताहै, जेता जेता त्याग करताहै तेता तेता
दुःखते मुक्त होता है, ताते इसको त्यागकरि आनंदमान होडु, इसको
त्यागिके महापुरुष शोभता है, जब तुम इसको त्यागोगे तब ऊँचे पदको
प्राप्त होउगे सर्वकाल सर्व यत्न करिके दुष्ट अहंकार जो लोक कहे हैं,

तिसको नष्ट करौ परमानंद बोधके आगे यह आवरण है, इसके त्यागते बोधवान् होता है. जब यह अहंकार निवृत्त होताहै तब शरीर पुण्यरूपी हो जाता है अरु परमसारके आश्रयको प्राप्त होता है यही परमपद है, जब स्थूल अहंकारका त्याग किया, तब सर्व व्यवहार चेष्टाविषे आनंदमान होताहै, जिस पुरुषका अहंकार शांत हुआ है, तिसको भोग अरु योग दोनों स्वाद नहीं देते, जैसे अमृतकरि जो तृप्त भया है, तिसको खट्टा अरु मीठा दोनों स्वाद नहीं देते, अर्थ यह जो रागद्वेषकरि चलायमान नहीं होता, एकरस रहता है, जिसका अनात्माविषे अहंभाव नष्ट हुआहै, तिसको भोगविषे राग नहीं होता, तृष्णा राग दोष नष्ट होजाता है जैसे सूर्यके उदय हुएते अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे अपने दृढ पुरुषार्थ करिके जिसके हृदयसों अहंकारका अनुसंधान नष्ट हो जाताहै सो संसारसमुद्रको तरिजाता है । ताते यही निश्चय धारौ कि, न मैं हौं, न कोई मेरा है, अथवा सर्व मैं ही हौं, मुझते इतर कछु वस्तु नहीं यह निश्चय जब दृढ होवैगा, तब संसारकी द्वैतवासना मिटि जावैगी, केवल आत्मतत्त्वका सर्वदा भान होवैगा॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्याने पुरुषार्थजयवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ३३॥

चतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ३४.

दामव्यालकटोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब दाम, व्याल, कट, युद्ध करते भाज गए तब शंबरके नगरकी अवस्था हुईसो सुन, कैसा नगर है, जो पहाडके समान है, तहां शंबरकी जेती कछु सेना थी सो सब नष्ट हो गई, जैसे शरत्कालविषे मेघ नष्ट हो जाताहै, तैसे नष्ट होगई, तब देवता जीतिकरि अपने स्थानविषे जाय बैठे, अरु शंबरभी क्षोभको पायकेबैठि रहा, जब केतेक वर्ष व्यतीत भए तब देवतोंके मारणे निमित्त शंबर युक्ति चितवता भया कि, जो दामादिक मायाकरिके रचे थे सो मूर्ख थे बलवान् थे, परंतु मिथ्या अहंकारका बीज अज्ञान उनको था तिसकरि उनको मिथ्या अहंकार आनि फुरा तब नष्ट हुए अरु भागे अब मैं ऐसे योद्धे रचौं,

जो आत्मवेत्ता ज्ञानवान् निरहंकार होवैं जिनको अहंकार कदाचित् उत्पन्न न होवे, तिनको कोऊ जीति न सकैगा, सब देवतोंकी सेना मारैंगे ॥ हे रामजी ! इसप्रकार चिंतनकारि शंबर मायाकारि दैत्योंको रचता भया; जैसे समुद्र अपने बुद्बुदे रचि लेवै, तैसे शंबरने दैत्योंको रचि लिया. सो कैसे रचे, सर्वज्ञ, विद्याके वेत्ता, अरु वीतराग आत्मा अरु यथाप्राप्त कामको करते, आत्मभाव निश्चय, अरु आत्मरूप ऐसे उत्तम पुरुष उपजे भीम अरु भास अरु दृट तिनके नाम, सो तीनों इस संपूर्ण जगत्को तृणवत् जानैं, परमपवित्र तिनके हृदय, ऐसे पुरुष उपजाये, अरु गर्जत भये, महाबलकारि शब्द करैं तिनके शब्दकारि आकाश पूर्ण हो गया, इंद्रादिक देवता स्वर्गविषे शब्द श्रवण करते भये, सुनिकै बडी सेनाको संग लेकारि आये, अरु यह भी बिजलीवत् चमत्कार करते बढचले महाबडे योद्धे दोनों ओरते युद्ध करने लगे, शस्त्रकी नदियोंके प्रवाह चले अरु भीम, भास, दृट, धैर्यसों खडे रहे, कबहूं किसी शस्त्रका प्रहार लगै, तब युद्धके अभ्यासकारि देहका मोह आनि फुरै बहुरि विचारविषे सावधान होवैं कि, हम तौ अशरीर हैं, चैतन्यमय, निराकार, निर्विकार, अद्वैत, अच्युतरूप हैं हमारे संग शरीर कहां है, जब जब मोह आवै तब तब ऐसे विचार करैं जरा मरण उनको कछु न भासै, निर्भय होकारि वर्तमान युद्धकार्य करते भये, वासनाकी जालते मुक्त हो शत्रुको पकड़ मारैं हेयोपादेयते रहित समदृष्टि युद्धकार्यको करते हैं, दृढ़ युद्ध आनि हुआ, तब देवतोंकी सेना मारीगई जो शेष रहे सो भीम भास दृटके भयते भागे, जैसे जल पर्वतते उतरता है,तीक्ष्ण वेगकारि चलता है, तैसे देवता तीक्ष्ण वेगकारि भागे सो क्षीरसमुद्रविषे विष्णुभगवान्की शरणको प्राप्त भये, जैसे वायुकारि मेघ बादल चला पर्वतके आश्रय जाय रहताहै, तैसे भयकारि भाग गए, तब तिनको देखिकै विष्णु भगवानने कहा, तुम यहां स्थित होहु, मैं इनको युद्धकारि मार आता हौं ऐसे कहकारि सुदर्शन चक्रको लिये विष्णु भगवान् शंबरकी ओर आये तब विष्णु भगवान् अरु शंबरका युद्ध होता भया; बडा युद्ध हुआ, मानौ अकाल प्रलय आयाहै, बडे बड़े पर्वत

उछले अरु युद्ध होवै, तब शंबर चलि खडा हुआ, महाप्रकाशरूप सुदर्शन चक्रसे विष्णुजीने शंबरको मारि लिया शंबर शरीरको त्यागिकै विष्णुपुरीको प्राप्त भया, तब विष्णु भगवान्‌ने भीम भास दटके अंतःपुर्यष्टकविषे जाय प्रवेश किया, उनकी चित्तकला जो प्राणके साथ मिश्रित थी, तिसको असत् किया, जैसे पवन दीपकको निर्वाण करता है, तैसे उनकी पुर्यष्टक फुरणेते निर्वाण हुई, आगे जीवन्मुक्त थे, सो विदेहमुक्त भए ॥ हे रामजी ! वे भीम भास दृट निर्वासनिक थे, इस कारणते दीपकवत् निर्वाण हो गये, ताते जो वासनासंयुक्त है, सो बंधमान है, जो निर्वासनिक है, सो मुक्तरूप है, तुम भी विवेककरिकै निर्वासनिक होहु. जब यह निश्चय होवै कि, जो सर्व जगत् असत्‌रूप है तब वासनाकी ओर नहीं फुरती, यही यथार्थ देखना है कि, किसी जगत्‌के पदार्थविषे आसक्त बुद्धि न होवै वासना कहिये, चित्त कहिये ये एकही वस्तुके नाम हैं, सर्व पदार्थके शब्द अरु अर्थ चित्तविषे स्थित हैं, जब सत्‌का अवलोकन सम्यक् ज्ञान होवैगा; तब यह लय हो जावैगा; परमपद शेष रहैगा; जो चित्त वासना संयुक्त है, तिसविषे अनेक पदार्थकी तृष्णा होती है, तिसते जो मुक्त कहाते हैं, नानाप्रकारके घट पट आदिक आकार भासते हैं, सो चित्त फुरनेकरि अनेकताको प्राप्त होता है, जैसे परछाईंविषे वैतालभ्रम होता है, तैसे नानात्वभ्रम चित्तविषे भासता है ॥ हे रामजी ! जैसी जैसी वासनाको लेकरि चित्त स्थित होता है, तैसाही आकार निश्चय होइकरि भासता है, दाम, व्याल, कटका रूप चित्तके परिणामकरि विपर्यय हो गया; तुमको भीम भास दटका निश्चय होवै, दाम व्याल कटका निश्चय मत होवै ॥ हे रामजी ! यह वृत्तांत मुझको पूर्व ब्रह्माजीने कहाथा, सो मैंने अब तुमको कहा है, इस संसारविषे कोऊ विरला सुखीहै, दुःखदशा अनेक हैं जब तुम इस संसारकी भावना त्यागोगे, तब देहादिकविषे बंधमान न होहुगे, व्यवहारविषे भी आसक्तता न होवैगी ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशत्तमः सर्गः ३५.

उपशमवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अविद्याकरि संसारकी ओर जो मन सन्मुख भया है, तिसको जिस पुरुषने जीता है, वही सुखी है, वही शूरमा है, तिसहीकी जय है, यह संसार सर्व उपद्रवका देनेहारा है, इसका उपाय यही है कि, अपने मनको वश करना यह जो मेरा शास्त्र है, सो सर्व ज्ञानसंयुक्त है; इसको सुनिकै आपको विचारै कि, यह जगत् क्या है ? ऐसे विचारिकै भोगते उपरांत होना, अरु सत्स्वरूप आत्माका अभ्यास करना, जेती कछु भोग इच्छा है, सो बंधनका कारण है, इसके त्यागनेका नाम मोक्ष कहते हैं और शास्त्रका सर्व विस्तार है, जो विषयभोग हैं, तिनको विषकी नाईं अरु अग्निकी नाईं जानै, जैसे विष अरु अग्नि नाशका कारण है, तैसे विषयभोग नाशका कारण है, ऐसे जानिकै इनका त्याग करै, वारंवार यही विचार करै कि, विषयभोग विषकी नाईं हैं, ऐसे विचारकरि चित्तसों त्यागैगा, तब सेवते हुए भी दुःखदायक न होवैंगे, जैसे मंत्रशक्तिसंपन्नको सर्प दुःखदायक नहीं होता, तैसे तिसको भोग दुःखदायक नहीं होते, ताते संसारको सत् जानिके वासना फुरती है, सो दुःखका कारण है, जैसे पृथ्वीविषे जो बीज बोता है, सो ऊगता है, कटुकते कटुक उपजता है, मिष्टते मिष्ट उपजता है, तैसे जिसकी बुद्धिविषे संसारभोग वासनारूपी बीज है, तिसते दुःखकी परंपरा उत्पन्न होती है, अरु जिस बुद्धिविषे शांतिकी शुभवासना गर्भित होती है तिसते शुभ गुण वैराग्य, धैर्य, उदारता, शांतिरूप उत्पन्न होते हैं; अरु शुभ वासनाका अनुसंधान होवैगा, मन, बुद्धि, निर्मलभावको प्राप्त होवैंगे जब मन निर्मल हुआ, तब शनैःशनैः करि अज्ञान नष्ट हो जावैगा, अरु सज्जनताकी वृद्धि होवैगी, जैसे शुक्लपक्षके चंद्रमाकी कला बढ़ती जाती है, जब इन शुभ गुणनकी परंपरा स्थित होती है, तब विवेक उत्पन्न होता है, तिसके प्रकाशकरि हृदयका मोहरूपी तम नष्ट हो जाता है, जैसे सूर्यके उदय हुएते तम नष्ट होजाता है, तब धैर्य, उदारता, वृद्ध होते हैं; जब

सत्संग अरु सच्छास्त्रके अभ्यासद्वारा इसविषे शुभगुण आनि उदय होते हैं, तब महाआनंदका कारण शीतल शांतरूप प्रगट होता है, जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाकी कांति होती है, आनंददायक शीतलता पसारि जाती है, तैसे सत्संगरूपी वृक्षका फल इसको प्राप्त होता है॥ हे रामजी! सत्संगरूपी वृक्षहै, तिसते विवेकरूपी फल प्रगट होताहै, तिस विवेकते समतारूपी अमृत स्रवता है, तिसकरि मन निर्द्वंद्व हो जाता है, सर्व कामनाते रहित निरुपद्रव होता है, मनकी चपलता शोक अनर्थका कारण है; सो मनके अचल हुएते शांत हो जाता है, शास्त्रके अर्थ धारणेकरि संदेह नष्ट हो जाते हैं, नानाप्रकारकी कल्पनाजाल शांत हो जाती हैं, इससे जीवन्मुक्त अलेप होता है, कोई संसारका क्षोभ तिसको स्पर्श नहीं करता, निरिच्छित,निरुपस्थित, निर्लेप निर्दुःख होता है शोकरूपकुहिडते रहित हुआ चित्त जड़ ग्रंथिसों मुक्त परमानंदरूप होता है, तृष्णारूपी सूत्रकी जालते जो पुरुष निकसि गया है, सोई शूरमाहै, अरु जिस पुरुषने तृष्णाको नष्ट नहीं किया, सो अनेक जन्म दुःखविषे पड़ा भ्रमता है; जब तृष्णा घटतीहै, तब मनभी सूक्ष्म हो जाताहै, जो भोगकी तृष्णा नष्ट हुई, तब मन भी नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी! जैसे भले टहलुए होते हैं, सो स्वामीके निमित्त रणविषे तृणवत् शरीरको त्यागते हैं, तिसकरि स्वामीकी जय होतीहै, जो दुष्टहैं, सो नहीं त्यागते, तिसकरि दुःखका कारण होते हैं, तैसे मनका उदय होना, जीवको दुःखका कारण है, अरु मनका नष्ट होना सुखदायकहै, ज्ञानवान्का मन नष्ट होजाताहै, अज्ञानीका मन वृद्ध होताहै, संपूर्ण जगच्चक्र मनोमात्रहै, यह पर्वतमंडल भी मनोमात्रहै; स्थावरजंगमरूप जेता कछु जगत् है सो सब मनरूप है, मन किसको कहते हैं सो श्रवण कर. शुद्ध कला चिन्मात्रविषे जो चित्तकलाका फुरणा हुआ है, अरु वही संवेदन संकल्पविकल्पकेसाथ मिलिकरि मलीन हुआ है; अरु स्वरूप विस्मरण भया है, तिसका नाम मन है, सोई मन वासनाकरिकै संसारभागी होता है, जब चित्त संवेदन दृश्यकेसाथ मिलता है, तिससाथ तन्मय होनेकरि चित्तसंवित्का नाम जीव होता है, सो जीव दृश्य वर्गकेसाथ मिलिकै संसार-

दशामें चलाजाता है, अनेक विस्तारको प्राप्त होता है, अरु आत्मपुरुष जो है सो परब्रह्म है, संसारी नहीं, सो वह न रुधिर है; न मांस है, न शरीर है, शरीरादिक सर्व जडरूप हैं, आत्मा चैतन्य आकाशवत् अलेप है, सो जब शरीरको भिन्नभिन्नकरि देखिये, तब रुधिर मांस अस्थिते इतर कछु नहीं निकसता, जैसे केलेके वृक्षको उधेलि देखिये, तौ पत्रते इतर कछु नहीं निकसता, तैसे मनही जीव है, जीवही मन है; मनते इतर आकार कोऊ नहीं, सर्व विकारभावको प्राप्त भया है ॥ हे रामजी! इस पुरुषको बंधनका कारण अपनी कल्पना है, जैसे घुराण अपने यत्नकरि आपही बंधनको प्राप्त होती है तैसे पुरुष अपनी वासनाकरि आपही संसारबंधनको पाता है, ताते भोगकी वासना मनते दूर करौ, संसारका बीज वासनाही है; जिस वासनासंयुक्त दिनविषे विचरता है, तैसा स्वप्न आता है; जैसी जैसी वासना होती है, तैसा तैसा पुण्य पाप अनुसार परलोक भासता है, अपनी वासनाकरि जगत् भास आता है; जैसे अन्न जिस द्रव्य स्वादकेसाथ मिलता है, तैसा भासता है मिष्टसाथ मिष्ट, खट्टासाथ खट्टा; कटुकेसाथ कटुक होता है, तैसे जैसी वासना जिसके हृदयविषे दृढ होती है, तैसे हो भासती है, जैसे बड़ा पुण्यवान् होता है, तिसको स्वप्नविषे अपनी इंद्रकी मूर्ति भासती है, नीचको नीच मूर्ति भासती है, भूतके संगीको भूतादिक भास आता है, तैसे वासनाके अनुसार परलोक भासि आता है, जब मनविषे निर्मल भाव स्थित होता है, तब मनकी कल्पना पापवासना मिटि जाती है, अरु जब मनविषे मलिन वासना बढती है, तब निर्मलता नहीं भासती, वहीरूप फल प्राप्त होता है, ताते दुर्वासना कलंकको त्यागिके पूर्णमासीके चंद्रमावत् विराजमान होहु; यह संसार भ्रांतिमात्रहै, सत्रूप नहीं, अज्ञानकरिके भेद विकार भासते हैं, वास्तवते न कोऊ बंध है, न मोक्ष है, न कोऊ बंध करनेहारा है, सर्व यह इंद्रजालकी नाईं मिथ्याभ्रम भासते हैं, जैसे गंधर्वनगर मिथ्या होता है जैसे मृगतृष्णाका जल भासता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है सो असत्रूप है, तैसे यह जगत् असत्रूप है, जीवको अज्ञानकरिकै

ऐसा निश्चय हो रहा है कि, मैं अनंत आत्मा नहीं, मैं लघु नीच हौं, जब इस निश्चयका अभाव होवै, अरु आपको अनंत आत्मा निश्चयकरि जानै, सो प्रथम इसका अभ्यास करै, तब हृदयविषे स्थित होवै, इस निश्चयकरि उस नीच निश्चयका अभाव होता है, सर्व जगत् स्वच्छ निर्मल आत्मा है तिसविषे जिसको देहादिक भावना हुई है, तिसको लोकविषे बंधन होता है, अपने संकल्पकरि आपही शुककी नाईं बंधनमें आता है, अरु जिसको स्वरूपविषे भावना होती है तिसको मोक्ष भासता है, आत्मसत्ता मोक्ष अरु बंध दोनोंते रहित है एक अरु द्वैतते रहित अद्वैत ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जब मन निर्मल होता है, तब इसप्रकार भासताहै, किसी पदार्थविषे बंधमान नहीं होता, जब मनभावते रहित अमन होता है, तब ब्रह्मसत्ताको देखता है, अन्यथा नहीं देखता, जब वैराग्य अरु अभ्यासरूपी जलकरि मनको निर्मल भाव होता है, तब ब्रह्मज्ञानरूपी रंग चढि जाता है, सर्व आत्माही भासता है, जब सर्वात्मभावना हुई तब ग्रहणत्यागकी वृत्ति नष्ट हो जाती है, बंध मोक्ष भी नहीं रहता, जब मनके कषाय परिपक्व होते हैं. अर्थ यह जो भोगकी सूक्ष्म वासनाते शुद्ध होता है, सच्छास्त्रके विचारकरि वैराग्यके क्रमते बुद्धिविषे वैराग्य उपजा है, तव परमबोधको प्राप्त होता है, और कमलकी नाईं बुद्धि खिलि आती है. मनकरि सर्व पदार्थ रचे हैं, तिनसों मिलिकरि तद्रूप हो जाता है, तिसका नाम असम्यक्ज्ञान है, जब सम्यक् दृष्टि होती है; तब तिसका तत्काल नाश करता है, जब अंतरबाहिर दृश्यका त्याग करता है, अरु मन सद्भावविषे स्थित होता है, तव परमपदको प्राप्त हुआ कहाता है ॥ हे रामजी! यह द्रष्टा अरु दृश्य जो स्पष्ट भासते हैं, सो असत् हैं, तिस असत्के साथ तन्मय हो जाना, यह मनका रूपहै, जो पदार्थ आदि अंतविषे न होवै, अरु मध्यविषे भासै तिसको असत्रूप जानिये, सो यह दृश्य आदिविषे भी नहीं उपजा, अरु अंतविषे भी नहीं रहता, मध्यविषे जो भासताहै, सो असत्रूप है, अज्ञानकरिकै जिनको सत् भासताहै, तिनको दुःखकी प्राप्तिहै, आत्मभावना विना दुःखनिवृत्ति नहीं होती; जब दृश्यविषे आत्मभावना होती

है, तब दृश्य भी मोक्षदायक हो जाता है, जल और है, तरंग और है, यह अज्ञानीका निश्चय है, जल अरु तरंग एकहीरूप हैं, यह ज्ञानीका निश्चय है, तैसे नानारूप जगत् अज्ञानीको भासता है, तिसकारि दुःख पाता है, ग्रहण अरु त्यागकी बुद्धिविषे पड़ा भटकता है, अरु ज्ञानीको सर्व आत्मा भासता है,भेदभावनाते रहित अंतर्मुख सुखी होता है॥ हे रामजी ! नानात्व है, सो मनके फुरणेकारि रचा है, अरु मनका रूप है, अपने संकल्पबलका नाम मन है, सो असतरूप है, जो असत् विनाशी-रूप है,तिसको सत मानने कारि क्लेश होता है, जैसे किसीका बांधव परदे-शते आता है, अरु उसको पहँचानता नहीं, दृष्टि आता है, अरु तिसविषे राग नहीं होता जब उसविषे अपनेकी भावना करता है, तब राग भी होता है, तैसे जब आत्माविषे अहंप्रतीति होती है, अरु देहादिकविषे नहीं होती, तब देहादिक सुख दुःखस्पर्श नहीं करते, जब देहादिकविषे भावना होती है, तब स्पर्श करते हैं॥ हे रामजी ! शिवतत्त्वका ज्ञान होवे, तब दुःख कोऊ नहीं रहता, सो कैसा शिव है कि, द्रष्टा अरु दृ-श्यके मध्यविषे व्यापक है, तिसविषे स्थित हुएते मन शांत हो जाता है, जैसे वायुते रहित धूर उडनेसों रहिजाती है,तैसे मनके शांत हुएते देह रूपी धूर शांत हो जाती है,बहुरि संसाररूपी कुहिड नहीं रहती, वर्षाऋ-तुरूपी वासना क्षीण हो जाती है तब जाना नहीं जाता कि, जड़ता-रूपी वल्ली कहां गई, जब अज्ञानरूपी मेघ शांत हुआ, तब तृष्णारूपी वल्ली सूख जाती है, हृदयरूपी पवनसों मोहरूपी कुहिड नष्ट हो जाती है, जैसे प्रातःकाल हुएते रात्रि नष्ट हो जाती है, अज्ञानरूपी मेघके क्षीण हुएते देहअभिमानरूपी जडता जानी नहीं जाती कि, कहां गई, जबलग अज्ञानरूपी मेघ गर्जता है तबलग संकल्परूपी मोर नृत्य करते हैं, जब अहंकाररूपी मेघ नष्ट हो जाता है; तब परमनिर्मल चिदा-काश आत्मरूपी सूर्य स्वच्छ प्रकाशता है, जब मोहरूपी वर्षाकालका अभाव भया, तब ज्ञानरूपी शरत्कालविषे दिशा निर्मल हो जाती है, आत्मारूपी चंद्रमा शीतल चाँदनीसों प्रकाशता है, सो सर्व संपदाका देनेहारा है, परमानंदकी प्राप्ति करनेहारा है जब प्रथम शुभ गुणकारि

विवेकरूपी बीज संचित होता है, सो शुभ मन सर्व संपदाके देनेहारा परमानंद अति सफल भूमिको प्राप्त होता है; तिस विवेकी पुरुषको वन पर्वत चतुर्दश भुवन सर्व आत्माही प्रकाशता है, सो निर्मलते निर्मल शीतलते शीतल भावनाविषे भासता है, हृदयरूपी तालाब अति विस्तारवान् होता है, स्फटिक मणिवत् उज्ज्वल स्वच्छ जलकारि पूर्ण होताहै, तिसविषे धैर्य उदारतारूपी कमल विराजते हैं, तिस हृदयरूपी कमलपर अहंकाररूपी भँवरा विचरता है, सो नष्ट हो जाता है, बहुरि नहीं उपजता; जो पुरुष निरपेक्ष सर्वते श्रेष्ठ निर्वासनिक शांतमन अपने देहरूपी नगरविषे विराजमान ईश्वर होता है, जिसको आत्मप्रकाश उदय हुआ है तिस बोधवान्का मन अत्यंत गलि जाताहै, भय आदिक विकार नष्ट हो जातेहैं, देहरूपी नगरविषे विगतज्वर होके विराजमान होता है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे उपशमरूपवर्णनं नाम पंचत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ३६.

चिदात्मरूपवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे ब्रह्मन्! आत्मा चैतन्यरूप है, अरु विश्वते अतीत है, तिस चिदात्माविषे विश्व कैसे उत्पन्न भया, बोधकी वृद्धिके निमित्त बहुरि मुझको कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे सौम्यजलविषे तरंग अव्यक्तरूप होते हैं, परंतु त्रिकालदर्शीको तिनका सद्भाव नहीं भासता, तिनका रूप दृष्टमात्र होता है तैसे आत्माविषे जगत् संकल्पमात्र होता है जैसे आकाश सर्वगत है, परंतु सूक्ष्म भावकारि लखनेविषे नहीं आता है, तैसे आत्मा निरंश, निराकार, सर्वगत, सर्वव्यापक है, परंतु लखा नहीं जाता, अव्यक्त अच्युतरूप है, तिस आत्माविषे जगत् ऐसे है, जैसे कोऊ स्तंभ मणिरूप होवै, तिसविषे शिल्पी कल्पताहै कि, एती पुतलियां इसविषे हैं, सो क्यों हैं, शिल्पीके मनविषे अन होती फुरती है, तैसे यह जगत् आत्माविषे मनरूपी शिल्पीने कल्पा है, सो

आत्माके आधार है, आत्माके आश्रय आत्माविषे स्थित है, अरु आत्मा कदाचित् इसके साथ स्पर्श नहीं करता, जैसे मेघ आकाशके आश्रय आकाशविषे स्थित होता है, परंतु आकाश तिसके साथ स्पर्श नहीं करता तैसे आत्मा अस्पर्श है; अरु सर्वत्र पूर्ण हैं, परंतु पुर्यष्टकरूप हृदयविषे भासता है, जैसे सूर्यका प्रकाश सब ठौर व्यापक है, परंतु जलविषे प्रतिबिंब भासता हैं, पृथ्वी काष्ठविषे प्रतिबिंब नहीं भासता तैसे आत्माका देह इंद्रियों प्राणविषे प्रतिबिंब नहीं होता, हृदय पुर्यष्टकविषे भासता है, सो आत्मा सर्व संकल्पते रहित है, सर्व संगते रहित स्वरूप तिसको ज्ञानवान् पुरुष उपदेशके निमित्त चैतन्य अविनाशी आत्मा ब्रह्मादिक संगीकारि कहते हैं; सो आकाशते भी सूक्ष्म निर्मल है, आकाश कलंकित है, आत्मा आभास करिकै जगत्रूप हो भासता है, और जगत् कछु वस्तु नहीं जैसे जल द्रवताकरिकै तरंगरूप हो भासता है, परंतु तरंग कछु भिन्न वस्तु नहीं तैसे आत्माते व्यतिरेक जगत् नहीं, चैतन्यसत्ता चैत्यता फुरनेकारि जगत्रूप हो भासते हैं, परंतु जगत् कछु वस्तु नहीं, जो ज्ञानवान् पुरुषहैं, तिनको तौ एक आत्माही भासता है, अरु अज्ञानीको नानाप्रकार जगत् भासता है, और जगत् कछु वस्तु नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, अनुभव स्वभावकरिकै प्रकाशताहै, सूर्य आदिक सर्वको प्रकाशनेहारा है, सर्व स्वादका स्वाद वही है, सर्व भाव तिसहीकारि सिद्ध होते सो सत्ता उदय अस्तते रहित है, अरु चलने अचलनेते रहित है, सो न लेत है, न देत है, अपने आपविषे स्थित है, जैसे अग्निका समूह लाटारूप हो भासता है, जलका समूह तरंगरूप हो भासता है, तैसे आत्मसत्ता जगत्रूप हो भासती है, अपने संवेदन फुरने कारि नाना प्रकारके संकल्पसों विपर्ययरूप देखता है, यह पदार्थ है यह मैं हौं, यह अपर है इत्यादिक भावनाको प्राप्त होता है, जब अपने आपको जानता है, तब अज्ञानभ्रम नष्ट हो जाता है, जैसे वृक्षविषे बीजसत्ता है, सो परिणामकारि आकारके आश्रयसों बढती जाती है, तैसे आत्मसत्ताविषे चित्तसंवेदन फुरता है, फुरनारूपी रसविपरिणामके आत्मसत्ताके आश्रय विस्तारको प्राप्त होता है, सो संकल्परूप है, तिसविषे जगत्की दृढता है, जैसे संवेदन फुरता है, तैसे स्थित होताहै, तिसविषे

नीति हुई है, कि यह पदार्थ इसप्रकार होवै, सो तैसे स्थित है, अन्यथा नहीं होता, वसंत ऋतुविषे रस अति विस्तारको पाता है, कार्तिकविषे धान्य उपजते हैं, हिमऋतुविषे जल पाषाणरूप हो जाताहै, अग्नि उष्ण है; बर्फ शीतल है, इत्यादिक जेते पदार्थ रचे हैं, तैसेही महाप्रलयपर्यंत स्थित हैं, अन्यथा भावको नहीं प्राप्त होते. जगत्‌विषे चतुर्दश प्रकारके भूतजात हैं, तिनविषे जिनको आत्मज्ञान प्राप्त होता है, सो शांतिरूप आत्माको पायके आनंदवान् होते हैं, अरु जिनको प्रमाद है, सो पडे भटकते हैं, जन्म मरणको प्राप्त होते हैं, जैसे जैसे कर्म करते हैं, तैसी तैसी गतिको पातेहैं, आवागमनमें भटकते भटकते यमके मुखविषे जाय पडते हैं जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकारि लय हो जाते हैं, तैसे जन्मि जन्मि मर जाते हैं, उन्मत्तकी नाईं प्रमादी पड़े भ्रमते हैं ॥ इति श्री-योग० स्थितिप्रकरणे चिदात्मरूपवर्णनं नाम षट्त्रिंशत्तमः सर्गः॥३६॥

सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ३७.

शांत्युपदेशकरणम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जगत्की स्थिति है; सो सर्व चंचल आकार विपरिणामरूप है, जैसे समुद्रविषे तरंग चंचलरूप होते हैं, तैसे जगत्की गति चंचल है, आत्माते जगत् उपजता है, सो स्वतः होता है, किसी कारणकरि नहीं होता पाछे कारणकार्यभाव हो जाता है, सोई चित्तविषे दृढ हो भासता है, आत्माविषे यह कोऊ नहीं, जैसे स्वाभाविक जलते तरंग उठिकारि लय हो जातेहैं, तैसे आत्माते स्वाभाविक जगत् उपजिके लय होते हैं, जैसे ग्रीष्म ऋतुविषे तप्त कारि मरुस्थल जलकी नाईं स्पष्ट भासता है, अरु है कछु नहीं जैसे मदकारि मत्त पुरुष आपको औरका और जानता कहता है, तैसे यह पुरुष आत्मरूप है, चित्तकारि आपको देवता मनुष्य आदिक शरीर जानते अरु कहते हैं ॥ हे रामजी ! यह जगत् आत्माविषे न सत् है, न असत् है, जैसे स्वर्णविषे भूषण हैं, तैसे मूढ जीव आपको आकार मानते हैं, ताते तुम दृश्यको त्यागिके द्रष्टाविषे

स्थित होवौ जिसकारि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, आदिक सर्वको जानता है, तिसको आत्मब्रह्म जान, जो सर्वविषे पूर्ण स्थित है, स्वच्छ निर्मल आत्मसत्ताविषे एक द्वैतकल्पना कछु नहीं जबलग आत्माते इतर कछु वस्तु भासती है, तबलग वासना तिसकी ओर धावती है ॥ हे रामजी! आत्माते व्यतिरेक कछु सिद्ध नहीं होता जब ऐसे भासै तब किसकी वांछा करै, किसका अनुसंधान करै, अरु ग्रहण त्याग किसका करै? आत्माको ईप्सित अनीप्सित इष्ट अनिष्ट आदिक विकार विकल्प कोई स्पर्श नहीं करते, कर्त्ता कारण कर्म तीनोंकी एकता है, न कोऊ आधार है, न आधेय है, द्वैतकल्पनाका असंभव है, अहं त्वं आदिक कछु नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है, ऐसे जानि सर्वदा निर्द्वंद्व होइकारि सर्व संतापते रहित कार्यविषे प्रवर्त होहु, पूर्व जो तुमने कछु किया अरु नहीं किया, तिस करने न करनेकारि तुमको क्या सिद्ध हुआ है, अरु क्या पद पाने योग्य पाया है, और भूतकी गिनतीविषे क्या बात है, तुम आपको हृदयविषे अकर्त्ता भावना करहु, अरु बाहिरते इंद्रियोंकारि जगत्‌के कार्य करहु, जब स्थिरतारूप समुद्रविषे तुम्हारी वृत्ति धैर्यवाली होवैगी, तब शांत आत्मा होवोगे, दृश्य जगतविषे तौ दूरते दूर भी गये, परन्तु अंतरते शांति नहीं होती, जहां जावै तहां भावै तैसा पदार्थ पानेका यत्न करै, तिसके पायेते भी शांति प्राप्त न होवैगी, सर्व दृश्य जगत्‌के पदार्थकारि त्यागकारि जो शेष अपना स्वरूप रहता है, सो चिदात्मा है, तिसविषे स्थित हुएते शांति प्राप्त होवैगी ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे शांत्युपदेशकरणं नाम सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥३७॥

अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ३८.

मोक्षोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार ज्ञानी पुरुष है, तिसविषे कर्तव्यभाव भी दृष्टि आता है, यज्ञादिक सर्व करता है, हिंसादिक तामसी कर्म भी दृष्ट आते हैं, तौ भी स्वरूपके ज्ञानकारि वह अकर्ताही

है; कदाचित् कछु नहीं किया, अरु जो मूढ अज्ञानी हैं, सो जैसा कर्म करते हैं, तैसा फल भोगते हैं, कर्तव्य किसका नाम है, सो श्रवण करहु, मनविषे सत्य जानिके जिस पदार्थके ग्रहणकी इच्छा करता है, सो फुरना वासनारूप होती है, तिस सद्भाव फुरनेका नाम कर्तव्य है, तिस चेष्टाते फलकी प्राप्ति होती है, जिस पदार्थको सत् जानिकै वासना फुरती हैं, तिसका अनुभव होता है, शरीर करै अथवा न करै, जैसी वासना मनविषे दृढ होती है, शुभ अथवा अशुभ, तिसके अनुसार दृश्यको भासि आता है, शुभकरिकै स्वर्ग भासता है, अशुभकरिकै नरक भासता है, जिस पुरुषको आत्माका ज्ञान है, यद्यपि प्रत्यक्ष अकर्ता है, तौ भी अनेक कर्मके फलको अनुभव करते हैं, अरु जो ज्ञानवान् हैं, तिनके हृदयविषे पदार्थका सद्भाव अरु वासना दोनों नहीं; इसकारणते तिनविषे कर्तव्यका अभाव है यद्यपि करते हैं, तौ भी कर्तव्यके फलको नहीं प्राप्त होते; संसारको असत्य जानते हैं केवल शरीरके स्पंदमात्र उनका कर्म है, हृदयविषे बंधमान नहीं होते, पूर्वके प्रारब्धकरिकै सुख दुःख फल तिनको भी प्राप्त होता है, परंतु आत्माते भिन्न तिसको नहीं जानते, सर्व ब्रह्मही देखते हैं, अरु जो अज्ञानी है सो अवयवके स्पंदविषे आपको कर्त्ता मानता है, तिसके अनुसार सुखदुःख भोगता है, मोहको प्राप्त होता है, जिनका मन अनात्मभावविषे मग्न है, वे अकर्त्ता हुए भी कर्त्ता होते हैं, मनते रहित केवल शरीरकरि किया है सो किया भी न किया है, ताते मन करताहै, शरीर कछु नहीं करता, यह जगत् सब मनते उपजा है, अरु मनरूप है, मनहीकरि स्थित है, जिसका मन अमनभावको प्राप्त भया है, तिसको सर्व शांतिरूप है, जैसे तीक्ष्ण धूपकरि मृगतृष्णाकी नदी भासती है, जब वर्षा होती है, तब शांत हो जाती है, तैसे जब आत्मज्ञान होता है, तब यह जगत् सब शांत हो जाता है, संसारके सुख दुःख तिसको स्पर्श नहीं करते, न वह चंचल है, न सत्य है, न असत्य है; सर्व विकारते रहित शांतिरूप है संसारकी वासनाविषे नहीं डूबता, अज्ञानी है सो डूबताहै, तिसका मन संसारभ्रमविषे मग्न रहता है, सदा पड़ा पदार्थकी तृष्णा करता है, ज्ञानी नहीं करता॥ हे रामजी! और दृष्टांतकरिकै

श्रवण कर कि,अज्ञानीको अकर्तव्यविषे कर्तव्य है,अरु ज्ञानीको कर्तव्य-विषे अकर्तव्य है, जैसे एक पुरुष शय्याके ऊपर शयनकारि रहा है,अरु स्वप्नविषे गिरा दुःख पाता है, सो अकर्तव्यविषे कर्तव्य भया, अरु एक गर्तविषे गिरा है,अरु उसका मन समाधिविषे स्थित है,सो उसको सब शांतरूप है, सो कर्तव्यविषे अकर्तव्य भया; क्योंकि शय्यापर सोया था, तिसका मन चलता था ताते अकर्तव्यविषे उसको कर्तव्य भया, दुःखका अनुभव करने लगा; दूसरेको सुखका अनुभव भया, ताते यह निश्चय हुआ कि, जैसा मन होता है, तैसी सिद्धताको प्राप्त होता है, तुम भी असंसक्त होइकारि कर्म करौ,तब अकर्ताहि रहोगे जेता कछु जगत् भासता है, सो आत्माते व्यतिरेक कछु नहीं,जिसको यह निश्चय होता है; तिस ज्ञानवान्को सुख दुःख स्पर्श नहीं करते, आधार,आधेय,द्रष्टा, दर्शन, दृश्य इच्छा आत्माते भिन्न कछु नहीं भासता,जब इसको ऐसे निश्चय होता है, कि मैं देह नहीं, सर्व पदार्थनते व्यतिरेक बालके अ-ग्रते सौवाँ भाग सूक्ष्म हौं; अथवा जो कछु दृश्य जगत् है,सो सर्व मैंही हौं, सर्वतत्त्वका प्रकाशक हौं; सर्वव्यापी हौं; यह निश्चयकारि तिसको सुखदुःखका क्षोभ नहीं होता, विगतज्वर होइकारि स्थित होता है,यद्यपि दुःख संकट ज्ञानवान्को आय प्राप्त होता है, तौ भी उसको नहीं भा-सता, परमानंदकारि आनन्दवान् लीलामात्र विचरता है;जैसे चंद्रमाकी चांदनी शीतल प्रकाशती है तैसे वह पुरुष शीतल प्रकाशवान् होता है, तिसको न चिंता होती है,न कोऊ दुःख होता है;शांतरूप कर्मको कर्त्ता भी अकर्ता है, मनकारि सदा अलेप रहता है॥हे रामजी! हस्तपादादिक इंद्रियोंकारि कर्त्ताका नाम कर्म नहीं, मनके करनेका नाम कर्म है,मनही सर्व कर्मका कर्त्ताहै,अहं त्वं सब भाव,सब लोकका बीज सर्वगत मन है, जब मन नाश होवै तब सब कर्म नष्ट हो जाता है, सब दुःख मिटि जाते हैं, जैसे बालक मनकारि नगर रचै, बहुरि लीनकारि लेवै तिसको उप-जाने लीन करनेविषे हर्ष शोक कछु नहीं होता; तैसे परमार्थदर्शीको किसी कर्मका लेप नहीं होता, कर्त्ता हुआ कछु नहीं करता, तिसविषे कर्तव्य भोक्तव्य सुखदुःख अज्ञान मोहकरिकै अध्यारोप करते हैं, अरु

कछु नहीं, ज्ञानवान्को बंध मोक्ष सुखदुःख कछु नहीं भासता, क्योंकि वह असंसक्त मन है, अरु जिसका मन आसक्त है, तिसको नाना दृश्य भासता है, ज्ञानवान्को केवल आत्मसत्ता भासती है, एक द्वैतकलनाते रहित है, जैसे जलते तरंग भिन्न नहीं होता, तैसे आत्माते जगत् भिन्न नहीं, न कोऊ बंध है, न कोऊ मोक्ष है; न कोऊ बँधने योग्यहै, अज्ञान दृष्टिकारि दुःख है; बोध करिकै लीन हो जाते हैं, बंध अरु मोक्ष संकल्पकारि कल्पित मिथ्यारूप हैं, तुम इस मिथ्या कल्पना अनात्म अहंकारको त्यागो आत्मविषे निश्चय करहु, धैर्य बुद्धिमान् होकारि प्रकृत आचारको करहु, तब स्पर्श कछु न करैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे मोक्षोपदेशवर्णनं नाम अष्टात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः ३९.

सर्वैकताप्रतिपादनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन्! सत् चित् आनन्द अद्वैत निर्विकार आदिक गुणकारि संपन्न जो ब्रह्मतत्त्व है, तिसविषे जो अविद्यावान जगत् अविद्या विचित्र कहांते आई है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राजपुत्र! यह संपूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्मसत्ता सब शक्तिहै, इसकारणते दृश्यरूप होइकारि स्थित भई है, सत्य असत्य एक अद्वैत आदिक विश्वरूप भासता है, सो स्वरूपते ऐसे है, जैसे जलविषे जल उल्लासरूप नानाप्रकारके तरंग बुद्बुदे आवर्त आकार हो भासताहै, तौ भी जल एकरूप है, तैसे चिद्घनविषे चिद्घन सब शक्ति सबरूप होकारि फुरता है, कहूं कर्मरूप, कहूं वाणीरूप, कहूं गूंगेरूप, कहूं मनरूप, कहूं भरण पोषण नाश कारण होताहै; सब पदार्थका बीज उत्पत्तिकर्ता ब्रह्मसत्ताहै, जैसे समुद्रते तरंग उपजिकारि तिसीविषे लय होते हैं, तैसे सब पदार्थ उपजिकारि ब्रह्मविषे लय होते हैं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह तुम्हारे वचनका उच्चार प्रगट है, तौ भी कठिन अतिगंभीर है, इनका तोल नहीं पाया जाता, ताते अतोल हैं, इनका यथार्थभाव मैं पाय

नहीं सकता, मनसंयुक्त षट् इंद्रियोंकी वृत्तिते रहित स्वरूप अरु सर्व पदार्थकी रचनाते रहित है, सो कहां अरु जगत् कहां जो पदार्थ जिसते उपजता है, सो वहीरूप होता है, जैसे दीपकते उपजा दीपक होता है, मनुष्यते मनुष्य अरु अग्निते अग्नि होताहै, इसप्रकार कारणते जो कार्य उपजताहै, सो तिसीके सदृश होता है, तैसे जो निर्विकार आत्माते जगत् उपजा है, सो जगत् भी निर्विकार चाहिये, सो तौ ऐसे नहीं, आत्मा निर्विकार शांतरूप है, अरु जगत् विकारी दुःखरूप है, तिसते कलंकरूप जगत् कैसे उपजा है ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ जब इसप्रकार रामजीने कहा तब ब्रह्मऋषि वसिष्ठजी बोलत भया ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह सब जगत् ब्रह्मरूप है, नानाप्रकार मलिनरूप संसार भासताहै, सो मलिनता नहीं, जैसे तरंगके समूह समुद्रविषे फुरते हैं, सो मलिनता धूलि नहीं, वही रूप है, तैसे आत्माविषे जगत्‌कछु कलंक नहीं वहीरूपहै, जैसे अग्निविषे उष्णता अग्निरूप है, तैसे आत्माविषे जगत् आत्मरूप है, इतर नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे ब्रह्मन्! निर्दुःख निर्धर्मते जो जगत् दुःखरूप उपजा सो यह कलंक है, यह जो तुम्हारे वचन हैं, सो आकाशरूप हैं, सो मेरे ताईं अस्पष्ट भासते हैं, मैं इनको जानि नहीं सकता ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ हे पुत्र! जब इसप्रकार रामजीने कहा, तब मुनिशार्दूल वसिष्ठजी विचारते भये कि, अभी इसकी बुद्धि परमप्रकाशको प्राप्त नहीं भई, कछुक निर्मलभावको प्राप्त भईहै, पदार्थ भूमिकाकोजानता भयाहै, अरु परमार्थवेत्ता नहीं भया, जिसको परमार्थ बोध प्राप्त भयाहै, अरु मन शांतहुआ है, ऐसा जो ज्ञातज्ञेय पुरुष है, सो मोक्ष उपायकी वाणीके पारको प्राप्त होता है, संसाररूपी अविद्यामल उसको नहीं भासता, केवल अद्वैतसत्ता भासती है, जबलग और उपदेश रामजीको न करौं, तबलग इसको विश्रामही नहीं होवैगा, जो अर्धप्रबुद्ध है, तिसको सब ब्रह्म कहना नहीं शोभता. काहेते कि, चित्त उसका भोगते सर्वथा व्यतिरेक नहीं भया, सर्व ब्रह्मके वचन सुनिकै भोगविषे आसक्त होवैगा, सो नाशका कारण है, तिसकरि नाश होवैगा, अरु जिसको परम दृष्टि प्राप्त हुईहै, तिसको भोगकी इच्छा नहीं उपजती, ताते सर्व ब्रह्मका कहना रामजीको सिद्धांत

कालविषे शोभैगा, प्रथम गुरुको शिष्यप्रति सर्व ब्रह्म कहना नहीं बनता, प्रथम शम दम आदिक गुणकारि शिष्यको शुद्ध करै, पाछे सर्व ब्रह्म शुद्ध तू है, ऐसे उपदेश करै, तिसकारि जाग उठता है, अरु जो अज्ञानी अर्धप्रबुद्ध है, तिसको ऐसे कहना कि, जो सर्व ब्रह्म तू है, सो ऐसा उपदेश करनेवाला गुरु उसको महानरकविषे जोडता है जो प्रबुद्ध है, तिसकी भोगकी इच्छा क्षीण होजातीहै वह निष्काम पुरुष है, तिसको अविद्यारूपी मल नहीं रहता, तिसको कहना नहीं बनता है, इसप्रकार विचारिकारि अज्ञानरूपी तमके नाशकर्त्ता ज्ञानके सूर्य मुनि वसिष्ठजी भगवान् रामजीके प्रति कहत भये ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राघव ! कलनारूप कलंक ब्रह्मविषे है अरुनहीं, यह मैं तुझको सिद्धांतकालविषे कहौंगा, अथवा तू आपही जानैगा, ब्रह्मसत्ता सर्वशक्तिरूप सर्वव्यापक सर्वगत है, सब तिसीकारि रचे हैं, जैसे इंद्रजाली विचित्र शक्तिकारि अनेक रूप रचता है, सत्यको असत्य अरु असत्यको सत्य कारि दिखावता है, तैसे आत्मा मायावी परम इंद्रजाली अघटघटना है. अर्थ यह कि, जो न बनैं तिसको बनावै, यह तिसकी शक्ति है, जो पहाड़को गढ़ेला करती है, अरु वल्लीविषे पाषाण लगते हैं, पाषाणविषे वल्ली लगती है, वनकी पृथ्वीको आकाश करती है, आकाशको पृथ्वी करती है अरु वृक्षवल्लीमें पाषाण लगते हैं, अरु आकाशविषे वन लगतेहैं, जैसे गंधर्वनगर आकाशमें भासता है, अरु वनको आकाश करती है, जैसे पुरुषकी छाया आकाश हो जातीहै, आकाशको पृथ्वीभाव प्राप्त करती है, जैसे रत्नकी कंदरा पृथ्वीपर होवै, तिसविषे आकाशका प्रतिबिंब पडता है ॥ हे रामजी ! यह विचित्ररूप दृश्य तुझको कहा है, सो शुद्ध व्यक्त तत्त्व अचैत्य चिन्मात्रविषे जो चेतनताका लक्षण जानना है, तिसकारि रची है, सो कैसी रची है, वही चित्तसंवेदन फुरनेकारि जगत्रूप हो भासता है, ताते सब प्रकार सबरूप वही है, जो एकरूप अविद्यमान है, हर्ष, शोक, आश्चर्य किसकी नाईं किसका मानिये, यह अन्यथा कोऊ नहीं, सब एकरूप है, इसी कारणते हमको समताभाव रहता है; हर्ष, शोक, आश्चर्य, मोह हमको नहीं प्राप्त होता, ममता अरु

चपलता आदिक विकार कोई नहीं होता, कदाचित् हम जानते ही नहीं, देश काल वस्तु यह जगत् अवसानको प्राप्त हो भासते हैं, तिनका विपर्यय होना भी भासता है, अरु वह अपने स्वभावविषे स्थित हैं, काहेते कि यह दृश्य उनको अपने स्वरूपका आभास फुरता भासता है, जेता कछु दृश्य प्रपंच है, सो सत्य चित्तसंवित्की स्पंदकला करिकै फुरता है, नानाप्रकार देश, काल, क्रिया, द्रव्य होकरि भासतेहैं, तिसको आत्मसत्ता किसी यत्नकारि नहीं रचती, स्वाभाविक फुरनेकारि पडे फुरते हैं, जैसे समुद्र तरंगको यत्नकारि नहीं उपजता, अरु लीन करता, स्वाभाविक चमत्कार फुरता अरु लीन होता है, तैसे आत्माविषे स्वाभाविक सृष्टि फुरती हैं, अरु लय होती हैं, जैसे समुद्र अरु तरंगविषे कछु भेद नहीं तैसे आत्मा अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं वहीरूप है, जैसे दूध घृतरूप है, जैसे घट पृथ्वीरूप है, जैसे पट तंतुरूप होता है, तैसे जगत् आत्मरूप है, जैसे वट धान्य वृक्षरूप हो भासता है, जैसे समुद्र तरंगरूप हो भासता है, तैसे आत्मा जगत्रूप हो भासता है ॥ हे रामजी ! इस दृष्टांतका एक अंग लेना है, कारणकार्यभावको लेना नहीं, आत्माविषे न कोऊ कर्ता है, न कोऊ भोक्ता है, न कोऊ विनाशको प्राप्त होता है, केवल आत्मतत्त्व साक्षी निरामय अद्भुत अपने आप स्वभावसत्ताविषे स्थित है, यह जगत् आत्माका प्रकाश है, जैसे दीपकका प्रकाश स्वभाव है, सूर्यका प्रकाश स्वभाव है, पुष्पका सुगंध स्वभाव है, तैसे आत्माका स्वभाव जगत् है, किसी कारणकार्यकारि नहीं भया, जगत् आत्माका स्वभाव आभासरूप है, आत्माते इतर कछु नहीं हुआ, जैसे पवनका स्वभाव स्पंदरूप है, सो जब निस्पंद होता है, तब नहीं भासता, अरु स्पंदकारि भासता है, तैसे आत्माविषे संवेदन फुरता है तब जगत हो भासताहै, जब लय होता है, तब जगत् नहीं भासता, अरु जगत् कछु है नहीं न सत् है न असत् है, कहूं जगत् प्रगट भासता है, कहूं अप्रगट भासता है, अरु नानाप्रकारका विचित्ररूप भासता है, जैसे वनविषे पुष्पका रस होता है, तिनके उपजने अरु नष्ट होनेकारि न वन उपजता है, न नष्ट हो जाता है तैसे आत्मसत्ता जगत्के उपजने अरु नष्ट होनेते रहित है, अरु

वास्तवते उपजा कछु नहीं, ताते आत्माही अपने आपविषे स्थित है, असम्यक् ज्ञानकरि जगत् भासता है, अनंत शाखा करि पसर रहा है, इसको ज्ञानरूपी कुठारसे काटौ, तब सुखी होवो, जगत्रूपी वृक्ष है, असम्यक् ज्ञान इसका बीज है, शुभ अशुभरूपी फूल हैं, आशारूपी वल्लीकरि वेष्टित है, दुःखरूपी शाखा हैं, अरु भोगजरारूपी फल हैं, तृष्णारूपी लताकरि धूसर भासते हैं, ऐसा जो संसाररूपी वृक्ष है तिसको आत्मविवेकरूपी कुठारसे यत्नकरिकै काटके मुक्त होहु । जैसे गजपति अपने बलसों बंधन तोडिकरि सुखचैन विचरता है, तैसे तुम निर्बंध होइकरि विचरौ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे सर्वैकताप्रतिपादनं नाम एकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४०.

ब्रह्मप्रतिपादनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह यें जो जीव हैं, सो ब्रह्मते कैसे उत्पन्न हुए हैं, अरु केतेक हुए हैं, सो मुझको विस्तारकरिकै कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे महाबाहो ! जैसे ये विचित्रताते उपजते हैं, अरु नाश होते हैं, बढते हैं, अरु स्थित होते हैं, सो क्रम सुनो ॥ हे निष्पाप राम ! शुद्ध जो ब्रह्मतत्त्व है, तिसकी जो वृत्ति चेतनशक्ति है, सो निर्मल है, जब वह स्फुरणरूप होती है, तब कलनारूप घनभावको प्राप्त होती है, तब संकल्परूपको धारती है, बहुरि तन्मय होइकरि मनरूप होती है, सो मन संकल्पमात्र करिकै जगत्को रचता है, विस्तारभावको प्राप्त करता है, जैसे गंधर्वनगर विस्तारको प्राप्त होता है, तैसे मनकरि जगत् विस्तार होता है, अरु ब्रह्मदृष्टिको त्यागिके रचता है, सो सब आत्मसत्ताका चमत्कार है, बना कछु नहीं, हमको तौ सब आकाशरूप भासता है, दूरदर्शीको जगत् भासता है, जैसे चित्त संवित्विषे संकल्प फुरता है, तैसारूप होता है, प्रथम ब्रह्माका संकल्प फुरा है, सो चित्तसंवित् आपको ब्रह्मारूप देखता भया, ब्रह्मारूप होइकरि जगत्को कल्पता भया, तब

प्रजापति होइकारि चतुर्दश प्रकारके भूतजात उत्पन्न किये, वस्तुते सब ज्ञप्तिरूप हैं, तिसके फुरनेकारि जगत् भासता है सो चित्तमात्र शून्य आकाशरूप है, और वस्तुते शरीर कछु नहीं, संकल्पमात्र नगरवत् भ्रांतिकरिकै भासते हैं, तिस भ्रांतिरूप जगत्विषे जो जीव भये हैं, कोऊ मोहकारि संयुक्त हैं, कोऊ अज्ञानी हैं, कोऊ मध्यस्थित हैं, कोऊ ज्ञानी उपदेष्टा हैं, जेते कछु भूतजात हैं, सो सब आधि व्याधि दुःखकारि दीन हुए हैं, तिनविषे ज्ञानवान् सात्त्विक सात्त्विकी हैं, अरु राजसी सात्त्विकी हैं जो शांतात्मा पुरुष है तिसको संसारके दुःख कदाचित् स्पर्श नहीं करते, वह सदा ब्रह्मविषे स्थित है ॥ हे रामजी ! यह मैं तुझको भूतजात कहे हैं, सो ब्रह्म शांत अमृतरूप सर्वव्यापी, निरामय चैतन्यस्वरूप अनंत आत्मा आधि व्याधि दुःखते रहित निर्भ्रम है, तिसके किसी एकदेशविषे जगत् स्थित है, जैसे अनंत सौम्यजलके किसी स्थानविषे तरंग फुरते हैं, तैसे परब्रह्म सत्ताके किसी स्थानविषे जगत् प्रपंच फुरता है ॥ रामउवाच ॥ हे भगवन् ! ब्रह्मतत्त्व तौ अनंत निराकार निरवयवरूप है, तिसका एक अंश एक स्थान कैसे हुआ, निरवयवविषे अवयवक्रम कैसे होता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तिसकारिकै उपजे हैं, अथवा तिसते उपजे हैं, यह जो कारण अरु उपादान है, सो भ्रांतिमात्र है, यह शास्त्ररचना व्यवहारके निमित्त कही है परमार्थते कछु नहीं, अवयवकारि जो देशादिक कल्पना है, सो क्रमते नहीं उपजी, उदय अरु अस्तपर्यंत दृष्टिमात्र भी होती है अरु कल्पनामात्र है, सो कल्पना भी आत्मरूप है, आत्माते रहित कल्पना भी कछु वस्तु नहीं, न हुई है, न कछु होवैगी, तिसविषे जो शब्द अर्थ आदिक युक्ति हैं, सो व्यवहारके निमित्त हैं, परमार्थते कछु नहीं. शब्द अर्थमात्र जगत्कल्पना है, सो तिसकारि उपजा है, अरु तिसते उपजा है, यह द्वितीयकल्पना भी नहीं, तन्मयरूप है, शांतरूप आत्माही है, और कछु नहीं, जैसे अग्निते अग्निकी लाटा फुरती हैं, सो अग्निरूप हैं, अरु तिसते उपजी सो तिसकारि उपजी यह कल्पना अग्निविषे कोऊ नहीं, अग्निही अग्निहै, तैसे जन्य अरु जनक जोहैं, कार्य अरु कारण भेद सो

आत्माविषे कोऊ नहीं, कार्यकारणभाव कल्पनामात्र है, जहां अधिकता अरु ऊनता होती है, तहां कारणकार्यभाव होता है कि, यह अधिक कारण है, ऊन कार्य है. भिन्न भिन्न कारण कार्य शब्द बनता भी है, जहां भेद होता है, तहां भेदकल्पना भी होवे, तहां एक अद्वैतविषे शब्द कैसे होवे, अरु शब्दका अर्थ कैसे होवे, जैसे अग्नि अरु अग्निकी शिखाविषे भेद नहीं, तैसे कारणकार्यभाव आत्माविषे कोऊ नहीं, शब्द अर्थ कल्पनामात्र हैं, जहां प्रतियोगी व्यवच्छेद संख्या भ्रम होता है, तहां द्वैत नानात्व होता है, अर्थ यह जैसे चेतनका प्रतियोगी जड़ अरु जड़का प्रतियोगी चेतन है, अरु व्यवच्छेद कहिये परिच्छिन्न, जैसे घटविषे आकाश होता है, संख्या कहिये जीव ईश्वर ये शब्द अर्थ द्वैतकल्पनाविषे होते हैं, जहां एक अद्वैत आत्माही है, तहां शब्द अर्थ कोऊ नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे सबही जलते हैं, जलते इतर कछु नहीं तैसे शब्द अरु अर्थकल्पना ब्रह्म है, जो बोधवान् पुरुष हैं, तिनको सब ब्रह्मही भासता है, चित्त भी ब्रह्म है, मन भी ब्रह्म है, ज्ञान शब्द अर्थ ब्रह्महीहैं, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, तिसविषे जो इतर भासता है, सो मिथ्या ज्ञानका विकल्प है, जैसे अग्नि अरु अग्निकी लाटाकी कल्पना भ्रांतिमात्र हैं, तैसे आत्माविषे जगत्की भिन्न कल्पना असत्रूप हैं, जो ज्ञानते रहित हैं, तिनको दृष्टिदोषकरि सत्य हो भासता है, ताते सर्व ब्रह्म है, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, निश्चयकरि परमार्थ ब्रह्मते सब ब्रह्मही है, सिद्धांत कालविषे तुझको यही दृष्टि उपजैगी, यह जो सिद्धांतपिंजर मैंने तुझको कहा है, तिसके ऊपर उदाहरण कहौंगा; कि यह क्रम अविद्याका कछु भी नहीं, अज्ञानके नाश भएते अत्यंत असत् जानैगा, जैसे तमकरिकै जेवरीविषे सर्प भासता है, जब प्रकाश उदय होता है तब ज्योंका त्यों भासता है, सर्पभ्रम नष्ट हो जाता है, तैसे अज्ञानदृष्टिकरि जगत् भासता है, जब शुद्ध विचारकरि भ्रांति नष्ट होवैगी, तब निर्मल प्रकाशसत्ता तुझको भासैगी, इसविषे संशय नहीं, यह निश्चितार्थ है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे ब्रह्मप्रतिपादनं नाम चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४१.

अविद्याकथनम् ।

राम उवाच॥ हे भगवन्! यह जो तुम्हारे वचन हैं, सो क्षीरसमुद्रके तरंगवत् उज्ज्वल हैं, तीन तापके नाशकर्त्ता हृदयके मल दूर करनेको निर्मलरूपहैं, अरु अज्ञानरूपी तमके नाशकर्ता प्रकाशरूपहैं, अरु गंभीर हैं तिनका तोल मैं पाय नहीं सकता. एक क्षणविषे संशयकारि अंधकारको प्राप्त होता हौं; अरु एक क्षणविषे निःसंशयरूप प्रकाशको प्राप्त होता हो जैसा चपलरूप मेघकारि सूर्यका प्रकाश कबहूं भासता है कबहूं आच्छाद्या जाता है ताते मेरा संशय दूर करहु कि जो आत्मानंदसत्ता अप्रमेयरूप है और सब वही प्रकाशरूप है असत्यभावते रहित साररूप है, तौ तिस अद्वैत तत्त्वविषे कल्पना कहांते आई ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो कछु मैंने तुमको कहा है, सो मेरे वचन यथार्थ हैं, जैसे कहा है तैसेही हैं, अरु असमर्थरूप वचन भी नहीं जिसके हृदयविषे ठहरें तिसको आत्मपदविषे प्राप्त करें अरु विरूप भी नहीं इसका रूप फल प्रगट है, जिनके धारेते सब दुःख संसारके मिटि जाते हैं, अरु पूर्वापर विरोध भी नहीं जो प्रथम कछु और कहा, पांछे और कहा जो कछु कहा है सो यथार्थ कहा है, परंतु ज्ञानदृष्टिकरिकै जब तेरा हृदय निर्मल होवैगा; विस्तृत बोधसत्ता हृदयविषे प्रकाशैगी, तब तू मेरे वचनके तात्पर्यको हृदयविषे जानैगा अरु जो तुझको उपदेश करता हौं सो वाच्यवाचक शास्त्रके संबंध तेरे जतावनेनिमित्त करता हौं जब इन युक्त वचनकारि तू जागैगा, तब तुझे अद्वैतसत्ता निर्मल भासैगी, और जो कछु वाच्यवाचक शब्द अर्थरचना है, तिसको त्याग करैगा ज्ञानवान्‌को सदा परमार्थ अद्वैतसत्ता भासती है, इच्छादिक कल्पना कछु आत्माविषे नहीं पाईजाती, आत्मा निर्दुःख निर्द्वंद्व है, सोई जगतरूप होइकारि स्थित भया है, इसप्रकार मैं तुझको विचित्रयुक्तिकारि कहौंगा, जबलग सिद्धांत उपदेशका आकाश है तबलग आत्मसत्ता नहीं प्रकाशती जब आत्मबोध होवैगा तब आपही जानैगा अज्ञानरूपी तम है सो वाक्विस्तारविना शांत नहीं होता इसप्रकार मैं

तुझको अनेक युक्तिकरि कहौंगा, तबलग सिद्धांत उपदेशका अवकाश है. हे रामजी ! शुद्ध जो आत्मसत्ता है, तिसके आश्रय संवेदनाभास फुरता है, तिसीका नाम अविद्या है, सो दो रूप रखती है, एक उत्तम और एक मलिन है, जो स्पंदकला अपने अविद्या नाशनिमित्त प्रवर्तती है, सो उत्तम है, विद्याभी तिसीका नाम है, सब दुःखको नाश करती है, अरु जो संसारकी ओर फुरती है, सो अविद्या है, अर्थ यह जो आत्माकी ओर फुरती है, सो विद्या है, अरु जो दृश्यकी ओर फुरती है सो अविद्या है, सो दोनों स्पंदरूप हैं, ताते अविद्याकरि अविद्याका नाश करौ, जैसे ब्रह्मास्त्रकरि ब्रह्मास्त्र शांत करता है, जैसे मैलको कलर मैल दूर करता है, जैसे विषको विष नाश करता है, जैसे शत्रुको शत्रु मारता है, तैसे अविद्याकरि अविद्या नाश होती है, जो ऐसे हुआ तौ तुम इसको नाश करौ, तब सुखदायक होवैगा, विचारकरि इसका नाश होता है, तब जानी नहीं जाती कि कहां गई, जैसे दीपकसे अंधकार देखिये तौ नहीं जानाजाता, कि कहां गया; बड़ा आश्चर्य है, जो जीवका ज्ञान इसने आच्छादिलिया है, सदा अनुभव आत्मसत्ता उदयरूप है, सो जीवको नहीं भासती जबलग अविद्याको नहीं जानता, तबलग फुरती है, जब जानगया तब नहीं जानता, कि कहां गई; भ्रममात्र सिद्ध हैं, बड़ा आश्चर्य है, जो मायाने संसारको बांधा है, सत्यकी नाईं प्राप्त भई है, अरु असत्य है, बुद्धिमान्‌को भी इसने नाशकरि छोडा है, तौं इतर जीवको क्या कहना है, निरंतर अभेदरूप आत्मा है; तिसविषे अविद्याकी भेदकल्पना कोऊ नहीं, जिस पुरुषने संसारमायाको ज्योंका त्यों जाना है, सो पुरुषोत्तम है, जिसकी यह भावना हुई है, कि अविद्या परमार्थते कछु नहीं, असत्यरूप है, सो ज्ञानवान् है, जो कछु जानने योग्य है, सो तिसने जाना है, इसविषे संशय नहीं. जबलग तू स्वरूपविषे जागा नहीं, तबलग मेरे वचनविषे आसक्तबुद्धि कर, अरु बड़े निश्चयको धार, कि अविद्या नाशरूप है, अरु है नहीं, जेता कछु जगत् दृश्य भासता है, सो मनका मन्न असत्‌रूप है, जिसको यह निश्चय हुआ, सो पुरुष मोक्षभागी है, यह जो मनका फुरनारूप जगत् दृश्यभावको प्राप्त हुआ है, सो सब ब्रह्मरूप है,

जिसके अंतर यह निश्चय स्थित है, सो पुरुष मोक्षभागीहै, अरु जिसको चराचर जगत्‌विषे दृढ भावना है, सो बंधभागी है, जैसे पक्षी जालविषे बंधायमान होता है ॥ हे रामजी ! संपूर्ण जीव इस संसारकी सत्यदृष्टिकरि बांधे हुए हैं, सब जगत् स्वप्नभ्रांतिरूप हैं, तिसविषे जिसको असत् बुद्धि है, अथवा सत् ब्रह्मबुद्धिहै, सो आसक्त होकारि संसारदुःखविषेनहीं डूबता, अरु जिसको अनात्मधर्म देहादिकविषे भावना है, स्वरूपविषे आत्मबोध नहीं सो हर्ष शोकआपदाको प्राप्त होता है, अरु जिसको स्वरूपविषे स्वरूपबोध है, अरु अनात्मधर्मका त्यागहै, तिसको संसार-अविद्या नहीं रहती, दुःखविकार स्पर्श नहीं कर सकता, जैसे जलविषे धूलि नहीं उडती, तैसे तिस महात्मा पुरुषके चित्तविषे दुःख उदय नहीं होते; ज्ञानवान् पुरुषकेहृदयविषे जगत्‌के शब्द अर्थका रंग नहीं चढ़ता; जैसे तंतु विना पट नहीं होता, पट तंतुहीरूप है, तैसे आत्मा विना जगत् नहीं होता, जगत् आत्मारूपहै, ऐसे जानिकै जो व्यवहारविषे वर्त्तता है, सो पुरुष मानसिक दुःखको नहीं प्राप्त होता, अरु जो अविद्याकारि संसारविषे पडा भटकता है, सो आत्मतत्त्वको पाय नहीं सकता, विद्यमान भी तिसको नहीं भासता, सो आत्मज्ञानकारि अविद्याका नाश होता है, जिसको आत्मज्ञान हुआ, सो अविद्यारूपी नदीको तरजाता है, आत्मसत्ताके प्राप्त हुएते अविद्या क्षीण हो जाती है, जिनको अविद्यारूप संसारके पदार्थकी इच्छा उदय होती है, सो अविद्यारूपी नदीविषे बह जाते हैं ॥ हे रामजी ! यह अविद्या बडे मोहभ्रमको देती है, दृढ होयकारि स्थित हुई है, अरु तत्पदको आच्छादि लिया है, ताते तुम यह न विचारो कि अविद्या कहांते उपजी है, अरु कौन इसका कारण है, इत्यादिक विचारभ्रम मत करहु यही विचारो कि यह नाश कैसे होती है, इसके क्षयका उद्यम करो, जब नष्ट होवैगी, तब इसकी उत्पत्ति भी जानि लेवैगा, कि इसप्रकार उपजी है, अरु यह स्वरूप इसका है, अरु यह कारण, यह कार्य है ॥ हे रामजी ! अविद्या वस्तुते कछु है नहीं, अविचारसिद्ध है, विचारदृष्टिते नष्ट हो जाती है, तब जानी नहीं जाती कि कहां गई, जब स्वरूप विस्मरण होता है, तब उपजकारि दृढ होता है,

बहुरि दुःखको देती है, ताते बलकरि इसका नाश करहु, बडे बडे शूरमे भी हुए हैं, तिनको अविद्याने व्याकुल किया है, ऐसा बुद्धिमान् कोऊ नहीं जिसको अविद्याने व्याकुल नहीं किया, अविद्या सर्व रोगका मूल है, यत्न करिकै इसका औषध करहु, जिसकरि जन्म दुःख कुहिड न प्राप्त होवै, जेती कछु आपदा हैं, तिनकी यह अधिष्ठाता सखी है, अज्ञानरूपी वृक्षकी वल्ली है, अनर्थरूपी अर्थकी जननी है, ऐसी अविद्यारूपी मलिनताको दूर करहु, मोह भय आपदा दुःखको देनेहारी है, हृदयविषे मोह उपजायकरि जीवको व्याकुल करतीहै, अज्ञान चेष्टाकरि वृद्ध होती है, जब अविद्यारूपी संसारसमुद्रते पार होवैगा, तब शांति प्राप्त होवैगी ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे अविद्याकथनं नाम एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४२.

जीवतत्त्ववर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अविद्यारूपी रोगको काटिकरि शांतरूप स्थित होते हैं, अरु विचाररूपी नेत्रते देखते हैं, तब यह नष्ट हो जाती है,सो इस विस्तृत व्याधिकी औषध सुन, जीवजातका विस्तार मैं तुझको कहता हौं, सात्त्विक राजस आदिक मनकी वृत्ति विचारने अर्थ मैं प्रवर्ताया था, सो अब सुन, जो तत्त्व अमृत ब्रह्मस्वरूप है, सो सर्वव्यापी निरामय चैतन्यप्रकाश अनंत है, आदिअंतते रहित निर्भ्रम चेतन प्रकाश तिसका वपु है, जब वह चेतन प्रकाश स्पंदरूप हो फुरता है, तब दीपकवत् तेज प्रकाश चेतनरूप चित्तकाल जगत्को चेतने लगती है, तब जगत् फुरता है, जैसे सोमजल समुद्रविषे द्रवताकरि तरंग फुरता है, सो जलते इतर कछु नहीं, तैसे सर्वात्माते इतर कालका रूप कछु नहीं यह स्पंदरूप भी अभेद है,जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे आत्माविषे चित्तशक्ति है, जैसे नदीविषे वायुके संयोगते तरंग उठते हैं, तैसे आत्माविषे चित्तकलासों दृश्य जगत् होताहै, ऐसे भी नहीं आत्मा अ-

द्वैत है, स्वतः तिसविषे चित्तकला हो आती है, जैसे वायुविषे स्वाभाविक स्पंद होता है, स्पंदनिस्पंद दोनों वायुके रूप हैं, जब स्पंद होता है, तब भासता है, निस्पंद होता है, तब अलक्ष हो जाता है, तैसे जब चित्तकला फुरती है, तब लक्षमें आती है; निस्पंद होतेही अलक्ष होती है, शब्दकी गम नहीं होती, निस्पंदकरिकै जगत्भावको प्राप्त होती है, जैसे समुद्रविषे तरंगचक्र फुरते हैं, तैसे चेतनविषे चित्तकला फुरती है, जैसे आकाशविषे मुक्तामाला भासती है, सो है नहीं, तैसे आत्माविषे वस्तु नहीं है स्पंदभावकारि कछु भूषितदूषित हो भासती है, आत्माते भिन्न कछु नहीं, परंतु भिन्नकी नाईं भासती है, जैसे प्रकाशकी लक्ष्मी कोटि रवि जैसी स्थित होती है, तैसे आत्माविषे चित्तशक्ति है, देश, काल, क्रिया, द्रव्यको जैसे जैसे चेतती है, तैसे तैसे हो भासती है, आगे नाम संज्ञा होती है, अपने स्वरूपको विस्मरणकारि दृश्यकेसाथ तन्मय होती है, तौ भी स्वरूपते व्यतिरेक नहीं होती, परंतु व्यतिरेककी नाईं भावना होती है, जैसे समुद्रते तरंग भिन्न नहीं, और सुवर्णते भूषण भिन्न नहीं, तैसे आत्माते चित्तशक्ति भिन्न नहीं; परंतु अपने अनंत स्वभावको विस्मरणकारि देश, काल, क्रिया, द्रव्यके भेद मानती है, संकल्पके धारणेकारि कलनाभावको प्राप्त होती है, विकल्पकलनाकारि चित्तशक्ति क्षेत्रज्ञरूप होती है, शरीरका नाम क्षेत्र होता है; शरीरको अंतर्बाहिर जाननेकारि क्षेत्रज्ञ नाम होता है, सो क्षेत्रज्ञ चित्तकला अहंभावकी वासना करती है, तिस अहंकारकारि आत्माते इतर रूप धरती है, बहुरि अहंकारविषे निश्चय कलना होती है, तिसका नाम बुद्धि होता है, अहंभावसों जब निश्चय संकल्पकलना होती है, तिसका नाम मन होता है, वही चित्तकला मनभावको प्राप्त होती है, जब मनविषे घन विकल्प उठते हैं; तब शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधकी भावनाकारि इंद्रियां फुरि आती हैं, बहुरि हस्त पाद प्राणसंयुक्त देह भासि आता है, इसप्रकार जगतविषे देहको पायकारि जीव जन्ममृत्युको प्राप्त होता है; वासनाविषे बांधा हुआ दुःखके समूहको पाता है, कर्मकारि चित्तविषे दीन रहता है, जैसे कर्म करता है, तैसे आकारको धारता है, जैसे समय पायके फल परिपक्वताको प्राप्त

होता है, तैसे स्वरूपके प्रमादकारि जीव दृश्यभावको प्राप्त होता है, आपको कारण कार्य मानिके अहंभावको प्राप्त होताहै, निश्चयवृत्तिकारि बुद्धिभावको प्राप्त होता है; संकल्पसंयुक्त मनभावको प्राप्त होता है, सो मन देह इंद्रियरूप होइकारि स्थित होता है, अपना अनंतरूप भूलि जाता है; परिच्छिन्नभावको ग्रहण करिकै प्रतियोग व्यवच्छेदभाव भासताहै, तब इच्छामोहादिक शक्तिको प्राप्त होता है, जैसे मदकारि माते बैलको गौ आनि मिलती हैं, तैसे सब आपदा दुःख इसको आय प्राप्त होते हैं, जैसे समुद्रविषे नदियां आय प्रवेश करती हैं, इसीप्रकार अहंकार अपनी रचनाकारि आपही बंधमान होता है; जैसे घुराण अपने स्थानको रचि-कारि आपही बंधमान होती है. बडा खेद है कि, आपही संकल्प कारि दृश्यको रचता है, बहुरि तिसी देहविषे आस्था करता है, ताते आपही दुःखी होता है, अंतरते तपता रहता है, आपको बंधायमानकारि संसार-जंगलविषे अविद्यारूप आकाशको ले फिरता है, अपने संकल्पकलना-कारि तन्मात्र देह हुई है, तिसविषे अहंप्रतीति होती है, जैसे जलविषे तरंग होते हैं, तैसे देहादिक उदय हुए हैं, तिनकेसाथ बांधा हुआ दुःख पाता है, जैसे सिंह संकलकारि बांधा जावे, तैसे बांधा है, एक स्वरूप है, सोई फुरनेके वशते नानाभावको प्राप्त हुआ है, कहूं मन, कहूं बुद्धि, कहूँ अहंकार, कहूं ज्ञान, कहूं क्रिया, कहूं पुर्यष्टक, कहूं प्रकृति, कहूं माया, कहूं कर्म, कहूं विद्या, कहूं अविद्या, कहूं इच्छा कहाती है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जीव अपने चित्तकारि भ्रमको प्राप्त हुआ है, तृष्णारूपी शोक रोगकारि दुःख पाता है, तुम यत्नकारिकै इसको तारौ, जरा मरण आदिक जो विकार हैं, अरु संसारकी भावना इसको नष्ट करती है; यह भला है, ग्रहण करिये, यह बुरा त्याग करने योग्य है, तिसकारि ग्रसा अविद्याके रंगसाथ रंजित भया है, इच्छा करनेसों इसका रूप सकुच गया है, कर्मरूपी अंकुरसों संसाररूपी वृक्ष बढ़िगया है, अपना वास्तव स्वरूप विस्मरण हुआ है, कलनाकारि आपको मलिन जानता भया है, अविद्याके संयोगकारि नरकको भोगता है, संसारभावनारूपी पर्वतके नीचे दबिगया है, आत्मपदकी ओर उठनेको समर्थ नहीं होता, संसार-

रूपी विषका वृक्ष जरामरणरूपी शाखाकरि बढि गया है, आशारूपी फांसीकेसाथ बांधे हुए जीव पड़े भटकतेहैं, तिसकरि चितारूपी अग्निविषे जलते हैं, क्रोधरूपी सर्पने जीवका चर्वण किया है, अपनी वास्तवता इसको विस्मरण होगई है, जैसे हरिण अपने यूथसमूहते भूला शोककरि दुःखी होता है, जैसे पतंग दीपककी शिखामें जल मरता है, जैसे मूलते काटा कमल विरूप होता है, तैसे आशाकरि क्षुद्र हुआ मूर्ख बड़ा दुःख पाता है, जैसे कोऊ मूढ विषको सुखरूप जानिकै भक्षण करै, तब दुःख पाता है, तैसे इसको भोगविषे मित्रबुद्धि हुई है, परंतु इसके परमशत्रु हैं, इसको उन्मत्त करिकै मूर्च्छित करते हैं, बडे दुःखको देते हैं, जैसे बांधा हुआ पक्षी पिंजरेविषे दुःख पाता है, तैसे यह दुःख पाता है, ताते इसको काटहु, यह जगज्जाल असत् है, गंधर्वनगरवत् शून्य है, इसकी इच्छा अनर्थका कारण है, इस संसारसमुद्रविषे मत डूबहु, जैसे हस्ती कीचडसों अपने बलकरि निकसता है, तैसे अपना उद्धार करहु, संसाररूपी गढेले-विषे मनरूपी बैल गिरा है, तिसकरि अंग जीर्ण हो गये हैं, अभ्यास अरु वैराग्यके बलकरि इसको निकासहु, अपना उद्धार करहु, जिस पुरुषको अपने मनपर भी दया नहीं उपजती; जो संसारदुःखते निकसै, सो मनुष्यका आकारहै, परंतु राजसहै, ताते तुम उद्धार करिलेहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जीवतत्त्ववर्णनं नाम द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४२.

त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४३.

जीवबीजसंस्थावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार जीव परमात्माते फुरिकरि संसारभावना करतेहैं, तिनकी संख्या कछु करी नहीं जाती, कई पूर्व उपजे हैं. कई अपूर्व उपजे हैं, अबलग उपजते हैं, जैसे फुरणेसों जलके कणके प्रगट होते हैं, तैसे ब्रह्मसत्तासों जीव फुरते हैं, अपनी वासनाकरि बांधे हुए भटकते हैं, विवश होयकरि नानाप्रकारकी दशाको प्राप्त होते हैं, चिताकरि दीन हो जाते हैं, दशों दिशा जलस्थलविषे पड़े भ्रमते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु नष्ट होते हैं, तैसे जन्म अरु मरण पाते हैं,

कईका प्रथम जन्म हुआ है, कईको सौ जन्म हुए हैं, कईके असंख्य जन्म हुए हैं, कई आगे होवैंगे; कई होयकरि मिटि गए हैं, कई अनेक कल्पपर्यंत अज्ञान करि पड़े भटकेंगे, अब कई जराविषे स्थित हैं, कई यौवनविषे स्थित हैं, कई मोहकरि नष्ट भएहैं, कई अल्पवय होयकरि स्थित हैं, कई अनंत आनंदी हुएहैं, कई सूर्यवत् उदितरूप हैं, कई किन्नर, कई विद्याधर होयकरि स्थित हैं कई सूर्य, चंद्रमा, इंद्र, वरुण, कुबेर, रुद्र, ब्रह्मा, विष्णु होकरि स्थित भए हैं, कई यक्ष, वैताल, सर्प, आदिक होकरि स्थित भए हैं, कई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, गण कहाते हैं, कई क्रांत चांडाल आदिक स्थित हैं, कई तृण, औषधी, पत्र, फूल, मूलको प्राप्त भए हैं, कई लता गुच्छे पाषाण शिखर हुए हैं, कई कदंब वृक्ष ताल तमाल हुए हैं, कई मंडलेश्वर चक्रवर्ती हुए भ्रमते हैं; कई मुनीश्वर मौन पदविषे स्थित हैं, कई कृमि, कीट, पिपीलका आदिकरूपहैं, कई, सिंह, मृग, घोड़े, खच्चर, गर्दभ, बैल आदिक पशु स्थित हैं, कई सारस, चक्रवाक, कोकिला, बगलादिक पक्षी होयकरि स्थित हैं, कई कमल कली कुमुद सुगंधादिक स्थित हैं, कई आपदाकरि दुःखी हैं, कई संपदावान् हैं, कई स्वर्ग, कई नरकविषे स्थित हैं, कई नक्षत्रचक्र आकाश वायु सूर्यकी किरणोंविषे, कई चंद्रमाकी किरणोंविषे स्थित हैं, रस लेते हैं, कई जीवन्मुक्त हैं, कई अज्ञानकरि पड़े भ्रमते हैं, कई कल्याणभागी चिरपर्यंत भोगको पड़े भोगते हैं, कई परमात्माविषे परिणमी गये हैं, कई अल्पकाल, कई शीघ्रही आत्मतत्त्वविषे लय भए हैं, कई चिरकालकरि जीवन्मुक्त होवैंगे, कई मूढ दुर्भावना करते हैं अनात्माविषे भ्रमतेहैं, कई मृतक होयकरि इस जगत्विषे जन्मते हैं, कई और जगत्विषे जाय स्थित होते हैं, कई न यहां न वहां उपजते हैं, आत्मतत्त्वविषे लय होते हैं, कई मंदराचल सुमेरु आदि पर्वत होइकरि स्थित होतेहैं, कई क्षीरसमुद्र, घृतसमुद्र, इक्षुरस, जल आदिक समुद्र हुए हैं, कई नदियां तडाग वापिका आदि भए हैं, कई स्त्रियां, कई पुरुष कई नपुंसकरूप हुए हैं, कई मूढ, कई प्रबुद्ध, कई अत्यंत मूढ हुएहैं कई ज्ञानी, कई अज्ञानी, कई विषयतप्त, कई समाधिविषे स्थितहैं, इसी-

प्रकार जीव अपनी वासनाकरि बाँधे हुए भ्रमते हैं, संसार भावनाकरि जगत्‌विषे कबहूं अधःको कबहूं ऊर्ध्वको जाते हैं, कामक्रोधादिक दुःखकी पीड़ाको पाते हैं, कर्मकरि भ्रमते हैं, आशारूपी फांसीके साथ बांधे हुए हैं, अनेक देहको उठाइ फिरते हैं, जैसे भारवाही भारको उठावते हैं, तैसे कई मनुष्यशरीरते बहुरि मनुष्य शरीरको धारते हैं, बहुरि वृक्षते वृक्ष होते हैं, कई औरते और शरीरको धारते हैं, इसीप्रकार आत्मरूपको भुलायकरि देहकेसाथ मिले हुए वासनारूप कर्म करते हैं, तिनके अनुसार अध ऊर्ध्व पंथविषे भ्रमते हैं, जिनको आत्मबोध हुआ है, सो पुरुष कल्याणरूप है, और सब दुःखी मायारूप संसारविषे मोहित भए हैं; यह संसाररचना इंद्रजालकी नाईं है, जबलग अपने आनंद स्वरूपको नहीं पाया, साक्षात्कार नहीं भया, तबलग संसारभ्रमविषे भ्रमता है, अरु जिस पुरुषनें अपने स्वरूपको जाना है, और जीवकी नाईं त्याग नहीं किया, वारंवार संसारके पदार्थनते रहित आत्माकी ओर धावता है, सो समय पायकरि आत्मपदको प्राप्त होवैगा, बहुरि जन्म न पावैगा, कई जीव अनेक जन्म भोगिकै ज्ञानकरि अथवा तपकरि ब्रह्माके लो को प्राप्त होते हैं, बहुरि परमपद पाते हैं, कई सहस्र जन्म भोग भोगिकरि बहुरि संसारविषे प्राप्त होते हैं, कई बुद्धिमान् विवेकको भी प्राप्त होते हैं, बहुरि संसारविषे गिरते हैं. अर्थ यहकि, मोक्षज्ञानको पायके बहुरि संसारी होतेहैं; कई इंद्रपद पायकरि तुच्छ बुद्धिसों बहुरि तिर्यक् पशुयोनिको पाते हैं, बहुरि मनुष्याकार धारते हैं, कई महाबुद्धिमान् ब्रह्मपदते उपजिकरि तिसी जन्मविषे ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं, कई अनेक जन्मकरि, कई थोडे जन्मकरि प्राप्त होते हैं, कई एक जन्मकरि और ब्रह्मांडको प्राप्त होते हैं, कई इसीविषे देवताते पशुजन्म पाते हैं, कई पशुते देवता हो जाते हैं, कई नाग हो जाते हैं, जैसी जैसी वासना होती है, तैसाही रूप हो जाता हैं, जैसे यह जगत विस्ताररूप है, तैसे अनेक जगत् हैं, कई समानरूप हैं, कई विलक्षण आकार हैं, कई हुए हैं, कई होवैंगे, विचित्ररूप सृष्टि उपजती हैं, अरु मिटती हैं, कई गंधर्व भावको, कई यक्ष देवता आदिक भावको प्राप्त भए हैं, जैसे जीव इस जगत्‌विषे व्यवहार करते हैं, तैसे और जगतविषे व्यवहार

करते हैं, आकार विलक्षण है, अपने स्वभावके वश हुएते जन्ममरणको पाते हैं, जैसे समुद्रते तरंग उपजते और मिटते हैं; तैसे सृष्टिकी प्रवृत्ति उत्पत्ति लय होता है, जब संवित् स्पंद होते हैं, तब उपजते हैं जब निस्पंद होता है, तब लय होता है, जैसे दीपकका प्रकाश लय होता है, अरु जैसे सूर्यते किरणैं निकसती हैं, जैसे तप्त लोहेते चिनगारे निकसते हैं, जैसे अग्निते चिनगारे निकसते हैं, जैसे कालते ऋतु निकसती हैं, पुष्पते सुगंधि प्रगट होती है; समुद्रते तरंग उपजते हैं, बहुरि लय होते हैं; तैसे आत्मसत्ताते जीव उपजते हैं, बहुरि लय होते हैं, जेते कछु जीव हैं सो सबही समय करिकै अपने पदविषे लय होवैंगे, स्वरूपते इनका उपजना भी मिथ्या है, स्थिति बंधन भी मिथ्या है, नष्ट होना मिथ्या है, त्रिलोकीरूप महामायाके मोहकरि उपजते समुद्रके तरंगकी नाईं नाश होते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जीवबीजसंस्थावर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४४.

संसारप्रतिपादनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन्! जीव इस क्रमकरि आत्मस्वरूपविषे स्थित है, बहुरि अस्थिमांसकरि पूर्ण देह पिंजर इसको कैसे प्राप्त भया है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मैंने प्रथम तुझको अनेक प्रकार कहा है, तू अबलग जाग्रत् नहीं भया, पूर्वापरके विचार करनेहारी तेरी बुद्धि कहां गई है? जेता कछु शरीरादिक स्थावर जंगम जगत् दृष्टि आता है; सो सब आभासमात्र है, स्वप्नकी नाईं उठा है, दीर्घ स्वप्न है, मिथ्या भ्रमकरि भासता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रममात्र भासता है, जैसे भ्रमणेकरि पर्वत भ्रमते भासते हैं, तैसे जगत् अज्ञानकरि भासता है, अरु जिन पुरुषकी अज्ञाननिद्रा नष्ट भई अरु निश्चयकरि संसारवासना गलित भई है, सो प्रबुद्धचित्त है, संसारको स्वप्नरूप देखते हैं, अरु स्वरूपभावकरि कछु देखते नहीं, अपनेही स्वभावकरि संसार कल्पते हैं, यह जीव संसार मोक्षते प्रथम सर्वदा सत्‌रूप देखते हैं; तिनकी संसारभावना

असत् नहीं होती जगत् आकार सर्वदा अपने अंतर कल्पते हैं, अरु जीवके अनेक आकार चपलरूप क्षणभंग होते हैं, जैसे जलविषे तरंग चंचलरूप होते हैं, जैसे बीजविषे अंकुर रहता है, तिसीके अंतर पत्र फूल फल आदिक होते हैं, तैसे कल्पनारूपी देह मनके फुरनेविषे रहता है॥ हे रामजी ! देह न होवै परन्तु जहां मन फुरता है, तहांही देहको रच लेता है, जैसे स्वप्नविषे मनोराज्य देहको रचि लेता है, तैसे यह देह अरु जगत् भी मनकरि रचा हुआ है, जैसे मृत्तिकाका पिंड चक्रके ऊपर चढाया घटरूप हो जाता है, तैसे मनके फुरनेकरि देह बनताहै, सब देह मनके फुरनेविषे स्थितहैं, जेता कछु जगत् भासताहै,सो सब संकल्पमात्र है, जैसे मृगतृष्णाका जल असतरूप होता है, तैसे यह जगत् असत्य है, जैसे बालकको अपने परछाईंविषे वैताल भासता है, तैसे जीवको अपने फुरनेकरि देहादिक भासते हैं॥ हे रामजी ! सृष्टिके आदिविषे जो शरीर उत्पन्न भए हैं, सो आभासमात्र संकल्पकरि उपजे हैं, प्रथम ब्रह्मा पद्मविषे स्थित भया; तिसने संकल्पके क्रमकरि विस्तार किया है, जैसा संकल्पपुर स्थित होवै, तैसे स्थित किया है, सो सब मायामात्र है, मायाकी घनताकरि यह जगत् भासता है, स्वरूपते कछु नहीं॥ राम उवाच॥ हे भगवन् ! आदि जीव जो मनरूप फुरनेको पायकरि ब्रह्मपदको प्राप्त भया है, सो ब्रह्मा जैसे हुआ है, अरु स्थित भया है; सो मुझको क्रमकरि कहौ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे महाबाहो रामजी ! प्रथम ब्रह्मशरीरको पायकरि ग्रहण किया है, तिसके श्रवणकरि स्थिति भी जानैगा देश काल आदिकके परिच्छेदते रहित आत्मतत्त्व अपने आपविषे स्थित है, सो अपनी लीला शक्तिकरि देश काल क्रिया कल्पितरूप भया है, तिसकरि जीवके एते नाम हुए हैं, वासनाकरि तद्रूप हुई चित्कला चपलरूप मन हुआ है, सो दृश्य कलनाके सन्मुख हुई, प्रथम वही चित्कला मानसीशक्ति होइकरि आकाशकी भावना करत भई, स्वच्छ बीजरूप जो शब्द है, तिसके सन्मुख मध्यविषे उदर धर्म है, जैसे नूतन बालक प्रगट होता है, तैसे आकाश पोलरूप फुरि आया, बहुरि स्पर्श बीजके सन्मुख हुई तब पवन फुरि आया, जब शब्द स्पर्श आकाश पवनका संघर्षण भया, तब मनके तन्मय होनेकरि अग्नि उपजा,

बड़ा प्रकाश हुआ, बहुरि रसतन्मात्राकी भावना करी तब शीतलभावनासों जल फुरि आया; जैसे अति उष्णताते स्वेद निकस आता है, बहुरि गंधतन्मात्राकी भावना करी तिसकरि घ्राण इंद्रिय निकसि आई स्थूलकी भावनाकरी जलचक्र पृथिवी होयकरिस्थित भये, आकाशविषे बड़ा प्रकाश हुआ, अहंकारकी कलाकरि शुद्ध अरु बुद्धिरूपी बीजकरि समुचितरूपहुई, अष्टम जीवसत्ता हुई इन अष्टका नाम पुर्यष्टक भया; सो देहरूपी कमलका भँवरा हुआ, तिस आत्मसत्ताविषे तीव्र भावनाकरिकै वही चित्सत्ता वडा स्थूल वपु देखती भई, जैसे बीजतें वृक्ष फूल होनेकरि रस परिणमता है, तैसे निर्मल आकाशविषे वृत्ति स्पंदअस्पंदरूप हुई है, जैसे संचेविषे भूषण निमित्त स्वर्ण आदिक धातु पड़ती हैं सो भूषणरूप हो जाती हैं, तैसे ब्रह्माजी अपनी चेतन संवेदन मनरूपी संवित्विषे तीव्र भावनाकरि तिसकरि स्थूलताको प्राप्त भये स्वतः यह फुरणा दृश्यका रूप क्रमकरि हुआ, जो ऊर्ध्व शीश है; मध्य उदर है, अधःपाद हैं; चारों दिशा हस्त हैं, मध्यविषे उदर धर्म है, जैसे नूतन बालक प्रगट होता है, महा उज्वल प्रकाश ज्वालाकी लाटावत् अंग होते हैं, तैसे ब्रह्मका शरीर उत्पन्न भया है, इसप्रकार वासनाकरि कल्पित मनकरि शरीर उत्पन्नकरि लिया है, आदि ब्रह्माका प्रकाशही शरीर भया; सब बुद्धिकी समष्टिरूप उसकी बुद्धि अरु बल उत्साहकी समष्टि है, बहुरि कैसा है, सदा ज्ञानरूप है, संपूर्ण ऐश्वर्य, संपूर्ण शक्ति अरु तेज उदारताकरिसंपन्न स्थित है, इस प्रकार सब जीवका ब्रह्माजी अधिपति नायक होता भया है, अरु द्रवत् स्वर्णवत् कांति ऐसा शरीर परम आकाशते उपजिकरिआकाशरूप स्थित भया है, अपनी लीलाके निमित्तअपने निवासका गृहरचताहै॥ हेरामजी! कबहूं ब्रह्माजी परम आकाशविषे रहता है, कबहूं कल्पांतर महाभास्कर अग्निविषे रहता है, कबहूं स्वर्णकमल विष्णुजीके नाभिकमलविषेरहताहै; इसी भाँति अनेक प्रकारके आसन रचिकरि कबहूं कहां कबहूं कहां स्थित होता है. लीला करताहै, जब परम तत्त्वसों प्रथम इसप्रकार फुरताहै, तब अपनेसाथ शरीर देखता है, जैसे बालक निद्राते जागिकरि अपने साथ शरीर देखता है, तैसे ब्रह्माजी अपने संग शरीर देखता भया;

कैसा शरीर प्राणके प्रवाहसंयुक्त प्राण अपान जाने आते हैं, तब पंचतत्त्व जो द्रव्य हैं, तिनकारि रचता भया, बत्तीस दंत हैं, तीन स्तंभ हैं, अरु पंचदेवता शरीरविषे स्थित हैं, सो कौन हैं, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, पंच भाग शरीरके हैं, नव द्वार हैं, दो जंघास्थल, दो पाद; अरु दो भुजा, बीस अंगुली हैं, हस्तपादके बीस नख हैं, एक मुख है, दो नेत्र हैं, कबहूं अपनी इच्छासों अनेक भुजा अनेक नेत्रकारि लेता है, मांसकी कहगीलकरी है, ऐसा शरीर हुआ सो चित्तरूपी पक्षीका आलणा है, कामदेव भोगनेका स्थान है, वासनारूपी पिशाचिनीका गृह है, जीवरूपी सिंहकी कंदरा है, अभिमानरूपी हस्तीका वन है, इसप्रकार ब्रह्माजी शरीरको देखता भया, बडा उत्तम कांतिमान् शरीरको देखिकारि ब्रह्माजी चितवत भया, जो त्रिकालदर्शी है, कि इसके आदि क्या हुआ अरु अब हमको क्या करना है, ऐसे परम आकाशविषे सदा निर्मलदर्शी देखत भया, जो आगे भूतका सर्ग व्यतीत भया है, वेदसंयुक्त ऐसे अनेक हुए हैं, तिनके सब धर्म स्मरण कारिके देखत भया, वाङ्मय भगवतीका स्मरण किया, वेदनका स्मरण सर्व सृष्टिके धर्म गुण विकार उत्पत्ति स्थिति बढना परिणाम क्षीण नाश होता सब धर्मको स्मृतिशक्तिकारि देखता भया; जैसे योगीश्वरने अपना अनुभव किया अरु औरका किया, चित्तशक्तिविषे स्थित होय कारि स्मृतिशक्तिसों देखि लेता है, तैसे ब्रह्माजी अनुभव करता भया, दिव्य नेत्रसों बहुरि इच्छा हुई कि लीलाकारि विचित्ररूप प्रजाको उत्पन्न करौं, ऐसे विचारकारि उत्पत्ति करता भया, जैसे गंधर्वनगर तत्काल हो जाता है, तैसे सृष्टि हो गई है, तिसके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पदार्थ तिनके साधन रचे, बहुरि तिनविषे विधिनिषेध रचे कि, यह कर्तव्य है, यह अकर्तव्य है, तिनके अनुसार फलकी रचनाकारि शुभ अशुभ विचित्रता रची ॥ हे रामजी! इसप्रकार फुरनेकारि सृष्टि हुई है, फुरनेकी दृढताकारि स्थितिको प्राप्त भई है, तिसविषे नीति, काल, क्रिया, द्रव्य, कर्म, धर्म, रचे हैं, जैसे नीति करी है, तैसे स्थित हैं, जैसे वसंत ऋतुकारि पुष्प उत्पन्न होते हैं, तैसे ब्रह्मके मनकारि सृष्टि रची

है, विचित्ररूप रचनाका विलास चित्तरूप कमलज ब्रह्माके चित्तकरि कल्पा है, सो कलनारूप है, कालविषे उत्पन्न हुई है, कालहीकरि स्थित है, स्वरूपते न कछु उपजा है, न कछु नष्ट होता है, जैसे स्वप्नसृष्टि होती है, तैसे यह संसाररचना है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे संसारप्रतिपादनं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४५.

यथार्थोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जो उपजा है, सो कछु नहीं उपजा, न स्थित है, शून्य आकाशरूप है, मनके फुरणेकरि सृष्टि भासती है, बडे देश काल क्रिया संयुक्त जो ब्रह्मांड दृष्टि आता है, सो परमार्थते तिसने कछु भी स्थान रोका नहीं स्वप्नपुरवत् संकल्पमात्र है, आधारविना चित्त है, जैसे मूर्तिका चित्र आधार विना मिथ्या होता है, तैसे यह जगत् बड़ा भासता है, तौ भी मिथ्याहै, असत्य तमरूप है, आकाशविषे चित्रकी नाईं है, जैसे स्वप्नविषे भासरूप जगत् भासता है, तौ भी असत्रूप है, तैसे यह शरीरादिक जगत् मनके फुरनेकरि भासता है, मनका फुरनाही इसका कारण है, जैसे नेत्रका कारण प्रकाश है, तैसे जगत्का कारण चित्त है, सब जगत् आकाशमात्र हैं; घट पट तोयादिक क्रमसहित भासते हैं, तौ भी असत्रूप हैं, जैसे जलविषे चक्र आवर्त भासते हैं, सो असत्यरूप हैं, तैसे प्रथम पर्वत आदिक जगत् असत्यरूप हैं, अपने निवासके निमित्त मनने यह शरीर रचा है, जैसे घुराण अपने निवासके निमित्त गृह रचती है, अरु आपही बंधनमें आती है, तैसे मन शरीरादिकको रचिकरि आपही दुःखी होता है, ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं जो संकल्पते रहित सिद्ध होवे, अरु मनके यत्नकरि सिद्ध न होवै, कठिन क्रूर पदार्थ भी मनकरि सिद्ध होता है, परमात्मा जो देव है, सो सब शक्तिमान् है, मन भी तिसकी शक्ति है, वह कौन पदार्थ है, जो मनकरि सिद्ध न होवै, सब कछु बनजाता है, काहेते कि जेते कछु पदार्थ हैं, तिनविषे सत्ता परमा-

त्माकी है, तिसते इतर कछु नहीं, ताते परमात्मा देवविषे सब कछु संभवता है, आदि चित्तकला ब्रह्मारूप होयकरि उदय भई है, तिस भावनाके अनुसार आपको ब्रह्माका शरीर देखत भई, तिस कमलज ब्रह्माने कलनारूप जगत् रचा है; देवता, दैत्य, मनुष्य, स्थावर, जंगमरूप जगत् संकल्पविषे स्थित है, जबलग उसका संकल्प है, तबलग तैसेही स्थित है जब संकल्प मिटि जावैगा तब सृष्टि भी नष्ट होजावैगी, जैसे तेलते रहित दीपक निर्वाण हो जाताहै, तैसे जगत् भी हो जावैगा, सो आकाशवत् सबही कलनामात्र है, दीर्घस्वप्नवत् स्थित है, वस्तुते न कोऊ उपजा है, न मरता है, परमार्थते तौ ऐसे है, अरु अज्ञानकरि सब पदार्थ विकारसंयुक्त भासते हैं, न कोऊ वृद्ध है, न नष्ट होता है, तिसविषे और विकार कैसे मानिये; जैसे पत्रकी रेखा होवै, तिसके उपजने अरु नाश होनेविषे वनको कछु अधिकता और ऊनता नहीं होती, तैसे शरीरके उपजने अरु नष्ट होनेविषे आत्माको लाभ हानि कछु नहीं सब जगत् दृश्य भ्रांतिकरिकै भासता है, ज्ञानदृष्टिकरि देख, अज्ञानिवत् क्यों मोहित होता है ? जैसे मृगतृष्णाका जल प्रत्यक्ष भासता है, सो मिथ्या भ्रममात्र होता है तैसे ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत सब भ्रांतिमात्र हैं, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे मिथ्या ज्ञानकरि जगत् भासता है, जैसे नौकापर बैठेको तटके वृक्षस्थान चलते दृष्टि आते हैं, तैसे भ्रमदृष्टिकरि जगत् भासता है, इस जगत्को तू इंद्रजालवत् जान, मायाकरि रचा जगत् देह पिंजर है, मनके मननकरि असत्यरूपही सत्यकी नाईं स्थित भया है, और जगत् द्वैत कछु हुआ नहीं, ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है, और शरीरादिक कैसे किसकी नाईं स्थित कहिये, पर्वत तृण आदिक जो जगत् आडंबर है, सो भ्रांतिमात्र मनकी भावना करि दृढ़ हो भासता है, असत्यही सत्यरूप हो स्थित भया है ॥ हे रामजी ! यह प्रपंच नानाप्रकारकी रचनासंयुक्त भासता है, तौ भी अंतरते तुच्छ है, इसकी कामना तृष्णा त्यागकरि सुखी होहु जैसे स्वप्नविषे बड़े आडंबर भासते हैं, सो भ्रांतिमात्र असत्यरूप हैं, वास्तवते कछु नहीं, तैसे यह जगत् दीर्घकालका स्वप्न है, चित्तकरि कल्पित है, देखनेविषे बड़ा

विस्ताररूप भासता है, विचारकरिकै ग्रहण करिये तौ हाथ कछु नहीं आता है, जैसे स्वप्नसृष्टि जाग्रत्‌विषे कछु नहीं पाईजाती जैसे घुराणको अपना रचा गृह बंधन करता है, तैसे अपना रचा जगत् मनको दुःख देताहै, ताते इसको त्याग करहु, जिस पुरुषने इसको असत्य जाना है सो जगत्‌की भावना बहुरि नहीं करता, जैसे मृगतृष्णाके जलको जिसने असत्य जाना है, सो पानके निमित्त धावता नहीं, जैसे अपने मनकी कल्पी स्त्रीसों बुद्धिमान् राग नहीं करता, तैसे ज्ञानवान् जगत्‌के पदार्थविषे राग नहीं करता, अरु जो अज्ञानी हैं, सो रागकरि बंधायमान होते हैं. जैसे स्वप्नविषे असत्य स्त्रीसों चेष्टा करते हैं, तैसे अज्ञानी असत्य जगत्‌को सत्य जानिकै चेष्टा करते हैं, बुद्धिमान् सत्य मानिकरि नहीं करते, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे मनके मोहकरि जगत् भासता है, अरु भयदायक होता है, सर्व जगत् भावनामात्र है, जैसे जलविषे चंद्रमाका प्रतिबिंब चंचल भासता है, तिसके ग्रहणकी इच्छा बालक करता है, बुद्धिमान् नहीं करता, तैसे जगत्‌के पदार्थकी इच्छा अज्ञानी करते हैं, ज्ञानवान् नहीं करते ॥ हे रामजी ! यह परमगुणका समूह तुझको उपदेश किया है. तिसकी भावना करिकै तू सुखी होवैगा, अरु जो मूर्ख इन वचनोंको त्यागिकै दृश्यकी ओर सुखरूप जानिकै लगते हैं, सो पुरुष ऐसे हैं, जैसे कोऊ शीतकरि दुःखी होवै अरु प्रत्यक्ष अग्निको त्यागकरि जलविषे अग्निके प्रतिबिंबका आश्रय करै, तिसकरि शीत निवृत्त करै सो मूढ है, तैसे आत्मविचारको त्यागिकै जो जगत्‌के पदार्थकी सुखके निमित्त इच्छा करते हैं; सो मूढ हैं, सब जगत् असत्यरूप है, मनके मननकरि रचा है, जैसे स्वप्नविषे चित्तकरि नगर भासताहै, अरु स्वप्नविषे नगर जलता भासै, तौ पुरुष कदाचित् नहीं जलता, तैसे जगत्‌के नाश हुएते आत्मनाश नहीं होता. उपजने बढने घटने नाश होनेते आत्मा रहित है, जैसे बालक अपनी क्रीडाके निमित्त हस्ती घोड़ा नगर रचि लेता है अरु समेटि छोड़ता है, तौ वह उपजने मिटनेविषे ज्योंका त्यों है, जैसे बाजीगर बाजीको पसारता है, बहुरि लय करता है, सो उत्पत्तिलयविषे बाजीगर ज्योंका त्यों है, तैसे आत्मा जगत्‌की उत्पत्ति-

लयविषे ज्योंका त्यों है, तिसीका कछु कदाचित् नष्ट नहीं होता, जो सब सत्य है, तौ किसीका कछु नाश नहीं होता; इसकारणतें जगत्‌विषे हर्ष शोक करना योग्य नहीं, अरु जो सब असत् है तौ भी नाश किसीका न हुआ, अरु दुःख भी किसीको न हुआ, सत्य असत्य दोनों प्रकार हर्ष शोक नहीं होता, स्वरूपते किसीका नाश नहीं, सब जगत् ब्रह्मरूप हैं, तौ दुःख सुख कहां है, ब्रह्मसत्ताविषे कछु द्वैत जगत् बना नहीं, सब प्रत्यक्ष जो अनन्वय होताहै, तौ भी असत्यरूप है, तिस असत्यरूप संसारविषे ज्ञानवान्‌को ग्रहण करने योग्यपदार्थ कोऊ नहीं, जो जगत् सब भूतविषे ब्रह्मतत्त्व है, इतर कछु नहीं, त्रिलोकीविषे तौ इसी पदार्थके ग्रहण त्यागकी इच्छा करिये, जगत् सत्‌रूप होवै, अथवा असत्यरूप होवै, ज्ञानवान्‌को सुखदुःख कोऊ नहीं, तृतीयभ्रांति दृष्टि अज्ञानीको दुःखदायक होती है, जो वस्तु आदिअंतविषे असत्य हैं, सो मध्यविषे भी असत्य जानिये; तिसके पाछे जो शेष रहता है, सो सत्यरूप है, जिसकरि असत्य भी सिद्ध होता है, जो मोहकरि आवृत्त बाल बुद्धि है, सो जगत्‌के पदार्थकी इच्छा करते हैं, बुद्धिमान् नहीं करते, बालकको जगत् विस्ताररूप भासता है, तिसकरि अपना प्रयोजन वांछते हैं, बहुरि सुख दुःख भोगते हैं, तू बालक मत होहु, जगत् अनित्य है, इसकी आस्था त्यागिकरि सत्यात्माविषे स्थित होहु, अरु जो आपसंयुक्त संपूर्ण जगत् असत्‌रूप जानै, तौ भी विषाद कछु नहीं, जो आपसंयुक्त सब सत्य जानै तौ भी इस दृष्टिकरि हर्ष शोक नहीं, ये दोनों निश्चय सुखदायक हैं, आपसंयुक्त सब असत्यरूप जानैगा तौ दुःख नहीं होता ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ जब इसप्रकार वसिष्ठजीने कहा, तब सूर्य अस्त हुआ, सब सभा नमस्कार करिकै अपने स्थानको गई, बहुरि सूर्यकी किरणों संग अपने आसनपर आय बैठे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे यथार्थोपदेशयोगो नाम पंचचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४६.

यथाभूतार्थबोधयोगवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जो धन स्त्री आदि नष्ट हो जावैं तौ इंद्र-जालकी बाजीवत् देखिये, इसकरि भी शोकका असर नहीं होता, क्षण दृष्टिविषे आये बहुरि नष्ट होगये, तिनका शोक करना व्यर्थ है, गंधर्व-नगर जो रत्नमणिकरि भूषित किया होवे, अथवा दुःखकरि दूषित किया होवे, हर्षशोकका स्थान कहांहै, तैसे अविद्याकरि रचे पुत्र स्त्रीधनादिक हैं, तिनके सुखदुःखका क्रम कहां है, जो पुत्रधनादिक बढैं तौ भी हर्ष करना व्यर्थ है, जैसे मृगतृष्णाका जल बढा तौ भी अर्थ सिद्ध नहीं करता, तैसे धन दारा आदिक बढैं तौ हर्ष कहां है, शोकवान्ही रहताहै, वह कौन पुरुष है, जो मोहमायाके बढ़े हुए शांतिमान् होवै, वह दुःखदा-यक है, जो मूढ हैं, सो भोगको देखिकै हर्षवान् होतेहैं, अधिकते अधिक चाहता है, अरु बुद्धिमान्को तिन भोगते वैराग्य उपजता है, जिनको आत्माका साक्षात्कार नहीं भया, अरु भोगको अंतवंत नहीं जाना, ति-नके भोगकी तृष्णा बढ़ती है, अरु जो बुद्धिमान् हैं सो भोगको आदिते अंतवंत नहीं जानते हैं, दुःखरूप जानिकरि तिसकी इच्छा नहीं करते; ताते हे राघव! ज्ञानवान्की नाईं व्यवहारविषे विचरौ, जो नष्ट होवै सो होवै, जो प्राप्त होवै, सो तिसविषे हर्ष शोक न करहु, तिसको यथा-शास्त्र हर्षशोकते रहित भोगहु, अरु जो न प्राप्त होवै, तिसकी इच्छा न करहु, यह पंडितका लक्षण है॥ हे रामजी! यह संसार दुःखरूप भोग करि आया है, इसविषे मोहको प्राप्त नहीं होना, जैसे ज्ञानवान् विचरते हैं, तैसे विचरना, मूढवत् नहीं विचरना, यह संसार आडंबर अज्ञान-करि रचा है, जो इसको ज्योंका त्यों नहीं देखते, सो कुबुद्धि नष्ट होते हैं, जिस जिस संसारके पदार्थकी इच्छा होतीहै, सो बंधनका कारण है, तिनविषे डूबि जाता है, जो बुद्धिमान् हैं सो जगत्के पदार्थविषे प्रीति नहीं करते, जिस निश्चयकरि जगत्को असत्यरूप जाना है, सो किसी पदार्थविषे बंधमान नहीं होता, अविद्यारूप पदार्थ तिसको

खेद नहीं देते, वस्तु बुद्धिकर खैंच नहीं सकता, जिसकी बुद्धिविषे यह निश्चय हुआ कि, सर्व मैं हौं, ऐसे जानिकै किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करता ॥ हे रामजी ! शुद्ध तत्त्व जो सत्य असत्य जगत्के मध्यभाव है, तिसका अंतरते आश्रय करहु और जो अंतर बाहिर जगत् दृश्य पदार्थ हैं, तिनको मत ग्रहण करहु, इनकी आस्था त्यागिकर परमपदको प्राप्त होहु, अति विस्तृत स्वच्छरूप आत्माविषे स्थित होहु, रागद्वेषते रहित सब कार्य करहु, जैसे आकाश सब पदार्थमें व्यापक अरु निर्लेप है, तैसे सब कार्य करत निर्लेप होहु; रागद्वेषते रहित होहु, जिस पुरुषको पदार्थविषे न इच्छा है, न अनिच्छा है, कर्मविषे स्वाभाविक स्थित है, तिसको कर्मका स्पर्श नहीं होता, कमलवत् सदा निर्लेप रहता है, देखना सुनना आदिक इंद्रियोंकारि व्यवहार होता है, ताते तुम इंद्रियोंकारि व्यवहार करहु. अथवा न करहु, परंतु इनविषे निरिच्छित रहो, अभिमानते रहित होइकारि आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, यह मैं हौं, यह मेरा है, इस मिथ्या कल्पनाते रहित सुखी होहु, इंद्रियके अर्थका सार जो अहंकार है, सो जब यह हृदयविषे न फुरैगा, तब तुम जो योग्य पदको प्राप्त होहुगे, रागद्वेषते रहित संसार समुद्रको तारि जाहुगे, जब इंद्रियोंके रागद्वेषते रहित हो, तब मुक्तिकी इच्छा न करै, तौ भी मुक्तिरूप है ॥ हे रामजी ! इस देहते आपको व्यतिरेक जानिकारि जो उत्तम आत्मपद है, तिसविषे स्थित होहु, तब तुम्हारा परमयश होवैगा, जैसे पुष्प सुगंधित प्रगट होता है; यह संसाररूपी समुद्र है, तिसविषे वासनारूपी जल है, तिसविषे जो आत्मवेत्ता बुद्धिरूपी बेडेपर चढते हैं, सो तारिजाते हैं, अरु जो नहीं चढ़ते सो डूबि जाते हैं, यह बोध मैं तुझको क्षुरधारकी नाईं तीक्ष्ण कहा है, सो अविद्याके काटनेहारा है, जिसको विचारकारि आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, जैसे तत्त्ववेत्ता आत्मतत्त्वको जानिकारि व्यवहारविषे विचरते हैं, तैसे तुम भी विचरौ, अज्ञानीकी नाईं नहीं विचरना, जैसे जीवन्मुक्त पुरुषको नित्य तृप्तका आचार है, तिसको अंगीकार करना, भोगविषे दीन नहीं होना, मूढ़के आचारवत् आचार अंगीकार न करना, जो परावर परमात्मवेत्ता पुरुष हैं, सो न कछु ग्रहण करते हैं, न त्याग

करते हैं, न किसीकी वांछा करते हैं, जैसा व्यवहार प्रारब्धवेगकरि प्राप्त होता है, तिसीविषे विचरते हैं, राग द्वेष किसीविषे नहीं करते, बड़ा ऐश्वर्य होवै, बड़े गुण होवैं, लक्ष्मी आदिक बड़ी विभूति होवै, तौ भी ज्ञानवान् अज्ञानीवत् अभिमान नहीं करते, अरु महाशून्य वनविषे खेदवान् नहीं होते, देवताका सुंदर वन विद्यमान होवै, तिसकरि हर्षवान् न होवै, न किसीकी इच्छा है, न त्याग है, जैसी अवस्था आनि प्राप्त होवै, रागद्वेषते रहित तिसीविषे विचरते हैं, जैसे सूर्य समभावसों लीन विचरता है, तैसे अभिमानते रहित देहरूपी पृथ्वीविषे विचरते हैं, अब तू भी विवेकको प्राप्त होहु, बोधके बलकरि इसविषे स्थित होहु और किसी पदार्थकी ओर दृष्टि नहीं करनी, निर्वैर निर्मन दृष्टिको ले विचरना समभावविषे सम उत्तम भाव पृथ्वीमें स्थित होना संसारकी इच्छा दूरते त्यागिकरि यथा व्यवहारविषे विचरना, परम शांतरूप रहना ॥ वाल्मीकि रुवाच ॥ जब इसप्रकार निर्मल वाणीकरि वसिष्ठजीने कहा, तब निर्मल चित्त रामजीका हृदय अमृतकरि शीतल अरु पूर्ण भया, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकरि शीतल पूर्ण होता है, तैसे रामजी शांतिकरि पूर्ण भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे यथाभूतार्थबोधयोगो नाम षट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४७.

जगत्सत्यासत्यनिर्णयः ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्व धर्म वेद वेदांतके पारज्ञ, तुम्हारे शुद्ध वचनकरि मैं स्वस्थ भया हौं, कैसे तुम्हारे वचन हैं, उदार विरक्तरूप हैं, कोमल अरु उचित हैं, तिन तुम्हारे वचनरूपी अमृतको पान करि मेरी तृप्ति नहीं होती ॥ हे भगवन् ! तुम राजस सात्त्विक जगत् कहने लगे थे, सो कछु संक्षेपते कहा था, तिनविषे अवकाशको पायकरि तुमने ब्रह्माजीकी उत्पत्ति कही, तिसकरि मुझको यह संदेह उत्पन्न भया, सो हृदयविषे विस्तारको पाता भया है कि, कहूं ब्रह्माकी उत्पत्ति कमलते कही

है, कहूं आकाशते, कहूँ अंडते, कहूं जलते कही है, सो विचित्ररूप शास्त्र कारि कैसे कहा है, तुम सब संशयके नाशकर्त्ता हौ, कृपाकारि शीघ्र मुझको उत्तर कहौ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी। कई लक्ष ब्रह्मा हुए हैं, कई अनेक विष्णु रुद्र होते हैं, अबभी अनेक ब्रह्मांडविषे अनेक प्रकारके व्यवहारसंयुक्त होते हैं, कई तुल्य होते हैं, कई बडे छोटे कालके होते हैं, स्वप्नजगत्की नाईं उत्पन्न होते हैं, कई तुल्य हैं, कई आगे होवैंगे, तिनविषे तुझने एक ब्रह्माकी उत्पत्ति पूछी है, सो सुन, अरु यह भी अनेक प्रकारके होते हैं, कबहूं सृष्टि सदाशिवते उत्पन्न होती है, कबहूँ ब्रह्माते; कबहूं विष्णुते, कबहूं मुनीश्वर रचि लेते हैं, कबहूँ ब्रह्मा कमलते उपजता है, कबहूं जलते, कबहूँ पवनते, कबहूं अंडते उपजा है, कबहूं किसी ब्रह्मांडविषे इंद्र त्रिनेत्र होता है, कबहूं पुंडरीकाक्ष विष्णु होता है, कबहूं सदाशिव होता है, कबहूं सृष्टिविषे पर्वत उपजते हैं, तिनकारि पृथ्वी निरंध्र हो रहीहै, कबहूँ मनुष्यकारि पूर्ण, कबहूं वृक्षकारि पूर्ण होती है; अनेक प्रकार सृष्टिकी उत्पत्ति होती है, किसी ब्रह्माविषे मृत्युका भय होता है, कबहूं पाषाणमय होती है, कबहूँ मांसमय होती हैं, कबहूं स्वर्णमय होती है, इसप्रकार पृथ्वी होतीहै, कई सृष्टि ऐसी हैं, चतुर्दश लोक है, किसी सृष्टिविषे कई लोकभयेहैं किसी सृष्टिविषे ब्रह्मा नहीं हुआ, इसीप्रकार अनेक सृष्टि चिदाकाश ब्रह्मतत्त्वते फुरी हैं, बहुरि लय भई हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकारि लय होता है, तैसे आत्माविषे अनेक सृष्टि उपजिकारि लय हो जाती हैं; जैसे मरुस्थलविषे मृगतृष्णाकी नदी भासती है. जैसे पुष्पविषे सुगंधि होती है, तैसे परमात्माविषे जगत् है, तैसे सूर्यकी किरणोंविषे त्रसरेणु भासते हैं, तिनकी संख्या कही नहीं जाती; कोऊ ऐसा समर्थ भी होवै, जो तिनकी संख्या करै परंतु ब्रह्मतत्त्वविषे जो सृष्टि फुरती हैं, तिनकी संख्या करनेको कोऊ समर्थ न होवैगा, जैसे वर्षाऋतुविषे ईखके क्षेत्रविषे मच्छर होते अरु नष्ट हो जाते हैं, तैसे आत्माविषे सृष्टि उपजिकारि नष्ट हो जाती है, वह काल जाना नहीं जाता जिस कालविषे सृष्टिका उपजना हुआ है, आत्मतत्त्वविषे नित्यही सृष्टिका उपजना लय होता है; सो अंत कछु नहीं, जैसे समुद्रते तरंग फुरते हैं, उनते पूर्व और बहुरि इनते पूर्व और इसी प्रकार आदि अरु अंत कछु जाना नहीं जाता

जैसे आत्माविषे सृष्टिका आदि अंत कछु नहीं, देवता दैत्य मनुष्य आदिक कई उपजिकरि लय भये हैं, कई आगे होवैंगे, जैसे यह ब्रह्मांड ब्रह्माकरि रचा है, तैसे अनेक ब्रह्मांड हो गये हैं, जैसे अनेक घटिका एक वर्षविषे व्यतीत होतीहैं,तैसे बीते हैं, जैसेसमुद्रविषे तरंग होते हैं,तैसे ब्रह्मतत्त्वविषे असंख्य जगत् होते हैं,कई सृष्टि हो बीतींहैं,कई अब होतीहैं,कई आगे होवैंगी, जैसे मृत्तिकाविषे घट होता है,जैसे वृक्षविषे अनेक पत्र होते हैं; बहुरि मिटि जाते हैं, जैसे जबलग समुद्र है, तिसविषे जल है, तबलग ऊर्मी तरंग आवर्त निवृत्त नहीं होते. कई उपजते हैं, कई लय होते हैं, तैसे ब्रह्म चिदाकाश है, तबलग त्रिलोकीजगत् उपजिकरि लय होते हैं, जब लग अपने स्वरूपका प्रमाद है, तबलग विकारसंयुक्त जगत् फुरते हैं बडे विस्तारसंयुक्त भासता है, जब आत्मस्वरूप दृष्टिकरि देखैगा, तब कोऊ विकार न भासैगा,जबलग आत्मदृष्टिकरि नहीं देखा तबलग आभासगतिविषे उपजते अरु मिटते हैं, न सत्य कहे जाते हैं; न असत्य कहाते हैं, वास्तवते ब्रह्म अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं, समुद्रविषे तरंगकी नाईं अभेद है, भिन्न होइकरि जो भासते हैं, सो अविद्याकरि भासते हैं,विचार कियेते निवृत्त हो जाते हैं,चरअचररूप जगत् नानाप्रकारकी चेष्टासंयुक्त अनंत सर्वेश्वर आत्माविषे फुरते हैं, सो भिन्न नहीं. जैसे शाखा फूल फल वृक्षते भिन्न नहीं, भिन्न भासते हैं तौ भी अभिन्न हैं, तैसे आत्माते जगत् भिन्न भासते हैं, तौ भी भिन्न नहीं, आत्मरूप हैं ॥ हे रामजी ! मैं जो तुझको चतुर्दश भुवनसंयुक्त सृष्टि कही है, कोऊ अल्प कनिष्ठरूप है, कोऊ बडे हैं, सो सब परमात्मा आकाशविषे उपजते हैं अरु वहीरूप है, कबहूं ब्रह्मतत्त्वसों प्रथम ब्रह्म आकाश उपजता है, सो उपजिकरि प्रतिष्ठाको पाता है, तिसते ब्रह्मा उपजता है, तब तिसका नाम आकाशज होता है, कबहूं प्रथम पवन उपजता है, प्रतिष्ठित होता है, तिसते ब्रह्मा उपजता है, सो वायुज नाम हुआ, प्रजापतिकरि कबहूं होता है, कबहूं प्रथम जल उत्पन्न होता है, जलस्थित भया, तिसते ब्रह्मा उपजिकरि जलज नाम होता है, कबहूं प्रथम पृथ्वी उत्पन्न भई है, सो विस्तारभावको प्राप्त भई है, तिसते ब्रह्मा उपजा है, तब पार्थिवज नाम हुआ है, अग्निते उपजा

तब अग्निज नाम पाया है ॥ हे रामजी ! यह पंचभूतते ब्रह्माकी उत्पत्ति भई सो तुमको कही, जब चार तत्त्व पूर्ण होते हैं, पंचम तत्त्व सबते बढ़ता है, तब तिसते प्रजापति उपजकारि अपने जगत्को रचता है, कबहूँ ब्रह्मतत्त्वते आपही फुरि आता है, जैसे पुष्पते सुगंधि फुरि आती है, तैसे ब्रह्माजी उपजिकारि पुरुषभावनाते पुरुषरूप स्थित होता है, तिसका नाम स्वयंभू होता है, कबहूँ पुरुष जो विष्णुदेव है, तिसकी पीठसों उपजि आता है, कबहूँ नेत्रते प्रगट होता है, तब प्रजापति नेत्रज होताहै कबहूँ नाभिते उत्पन्न होता है, तब पद्मज होता है, वास्तवते सब माया-मात्र है, स्वप्नवत् मिथ्यारूपही सत्य हो भासता है, जैसे मनोराज्य-सृष्टि भासि आती है, तैसे यह जगत् है, जैसे नदीविषे तरंग अभिन्नरूप फुरते हैं, तैसे आत्मासों अभेद जगत फुरता है, वास्तवते कछु है नहीं जब शुद्ध सत्ताका आभास संवेदन फुरता है, तब वही जगतरूप हो भासती है, जैसे बालकके मनोराज्यविषे सृष्टि फुरती है, सो वास्तव कछु नहीं, तैसे यह है, कबहूँ शुद्ध आकाशविषे मननकला फुरती है, तिसते स्वर्णका अंड उपजता है, अंडते ब्रह्मा उपजि आता है, कबहूँ पुरुष विष्णुदेव जलविषे वीर्य डारता है, तिसते पद्म उपजता है, तिसी पद्मसों ब्रह्मा प्रगट होता है, कबहूँ सूर्यसों फुरि आता है, इसी प्रकार विचित्ररूप रचना ब्रह्मपदते उपजती है, बहुरि लय हो जाती है, तेरे दिखानेके निमित्त मैंने अनेक प्रकारकी उत्पत्ति कही हैं, सो सब मनके फुरणेमात्रहैं, और हुआ कछु नहीं॥हे रामजी ! तेरे प्रबोधके निमित्त मैंने सृष्टिका क्रम कहाहै,अरु इनहूँका रूप है, सो मनोमात्रहै, उपजि उपजिकारि लय हो जाती है, बहुरि दुःख, बहुरि सुख, बहुरि अज्ञान, बहुरि ज्ञान, बहुरि बंध, बहुरि मोक्ष होतेहैं, कबहूँ मित्र, कबहूँ शत्रु होतेहैं, बहुरि मिटि जाते हैं, जैसे दीपकका प्रकाश उपजिकारि नष्ट हो जाताहै, तैसे देह उपजि करि नष्ट हो जाते हैं, कालकी ऊनता अरु विशेषता यही है कि, कोऊ चिरकालपर्यंत रहता है, कोऊ शीघ्रही नष्ट हो जाता है, परंतु सबही विनाशरूप हैं, ब्रह्माते आदि कीटपर्यंत जेते कछु आकार भासते हैं, सो कालके भेदको त्यागिकारि देख कि, सब नाशरूप हैं, कबहूँ सत्ययुग,

कबहूं त्रेतायुग, कबहूं द्वापर, कबहूं कलियुग आता है, बहुरि बहुरि वही आते हैं, अरु जाते हैं, इसी प्रकार कालका चक्र पड़ा भ्रमता है, बहुरि मन्वंतरका आरंभ होता है, कालकी परंपरा व्यतीत होती है, जैसे प्रातःकालविषे बहुरि प्रातःकाल आता है, तैसे जगत्की वही वही गति है, बहुरि अंधकार, बहुरि प्रकाश होता है, ब्रह्मतत्त्वते स्फुरणरूप होइकरि बहुरि लीन होताहै, जैसे तप्त लोहेते चिणगारे उड़ते हैं, सो लोहविषे होते हैं, तैसे यह सब भाव चिदाकाशते उपजते हैं, सो चिदाकाशविषे स्थित हैं, कबहूं अव्यक्तरूप होतेहैं, कबहूं प्रगट होतेहैं, जैसे समुद्रविषे तरंग अरु वृक्षविषे पत्र होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे नेत्रदूषणकरि आकाशविषे दो चंद्रमा भासते हैं, तैसे चित्तके फुरनेकरि आत्माविषे जगत् भासताहै, तिसीविषे स्थिति अरु लय होते हैं, जैसे चन्द्रमाकी किरणें उत्पन्न स्थित होइकरि लय होती हैं, तैसे आत्माविषे जगत् है, सो स्वरूपते कहूं आरंभ नहीं हुआ, मनके फुरणेकरि भासता है ॥ हे रामजी ! आत्मा सर्वशक्ति है, जो शक्ति तिसते फुरती है, सो तिसीका रूप हो भासता है, जगत् सब असत्यरूप है, जिसके चित्तविषे महाप्रलयकी नाईं असत्यका निश्चय है, सो पुरुष बहुरि संसारी नहीं होता, स्वरूपविषे जुडा रहता है, ऐसे महामति ज्ञानवान्की दृष्टिविषे सर्व ब्रह्मका निश्चय होता है, हमको यही निश्चय है कि, संसार नहीं सर्व ब्रह्मतत्त्वही सदा विद्यमान है, अरु अज्ञानीकी दृष्टिविषे जगत् निरंतर सत्यरूप है, संसार उसको विद्यमान है सो बहुरि बहुरि उपजिकरि नष्ट होता है, स्वरूपते उपजने विनशनेकरि भी नष्ट नहीं होता; परंतु अज्ञानी जगत्को असत्य नहीं जानते, सदा स्थित जानते हैं, तिस करि सब नष्ट होते हैं, सब पदार्थ जगत्के विनाशरूप हैं, परंतु दृश्य करि जगत् असत्य नहीं भासता, जो पदार्थकी सत्यता दृढ हो गईहै, सो नाशरूप है, रहना किसीका नहीं, कोऊ पदार्थ सत्य भासता है कोऊ असत्य भासता है, इस जगत्विषे ऐसा कौन पदार्थ है, जो कलनारूप करनेकरि विस्ताररूप ब्रह्मविषे न बनै, यह जगत् महाप्रलयविषे नष्ट हो जाता है, बहुरि उत्पन्न हो आता है, बहुरि जन्म अरु मरना होता है, सुख, दुःख, दिशा, आकाश, मेघ, पृथ्वी, पर्वत, सब बहुरि बहुरि उपजि

आते हैं ॥ जैसे सूर्यकी प्रभा उदय अस्तको प्राप्त होती रहती है, तैसे सृष्टि उदय अस्त होती भासती हैं, बहुरि देवता बहुरि दैत्य लोकांतर-क्रम होते हैं, स्वर्ग, मोक्ष, इंद्र, चंद्रमा, नारायण, देव, पर्वत, सूर्य, वरुण, अग्नि, आदिक लोकपाल बहुरि बहुरि हो आतेहैं, सुमेरु आदिक स्थान फुरि आतेहैं, तमरूप जो हस्ती है, तिनके भेदनेको सूर्यरूप केसरीसिंह उपजि आते हैं, स्वर्ग, इंद्र, अप्सरागण अमृतकरि आतेहैं. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, क्रिया, कर्म, शुभअशुभरूप होआते हैं. यज्ञ दान, होम आदिक सर्व क्रियाकरि संयुक्त जीव ससारी होते हैं, शुभकर्म करनेहारे स्वर्ग-विषे विचरते हैं, सुख भोगते हैं, पुण्यके क्षीण हुएते उनको गिराय देते हैं, व मृत्युलोकविषे आते हैं, इसप्रकार कर्म करते हैं, उपजते अरु नष्ट होते हैं. स्वर्गरूपी कमल है, तिसविषे इंद्ररूपी भँवरा है, तिस स्वर्गकी सुगंधि लेकरि वह इन्द्र चलता रहताहै, अपर इन्द्ररूपी भँवरा स्वर्गकम-लकी सुगंधिको लेने आताहै, जेता पुण्यकर्म किया होताहै, तेता काल सुख भोगिकरि फिर नष्ट हो जाता है, अरु सत्ययुग आते हैं, सर्व देश, काल, क्रिया, द्रव्य, जीव उपज आते हैं, जैसे कुलालचक्रकरिके बासन बनता है, तैसे चित्कला फुरणेकरि जगतके अनेक पदार्थ उत्पन्न करती है, सुंदर स्थान जीव संयुक्त होते हैं, बहुरि नष्ट हो जातेहैं, असत्यमात्र जगत्काल जीविततें रहित शून्य मशान हो जाते हैं, कुलाचल पर्वतके आकारवत्मेघ जल वर्षाकरते हैं, तिसविषे जीव बुद्बुदेरूप होइकरि स्थित होतेहैं, द्वादशसूर्याग्नि उदय होते हैं, शेषनागके मुखते अग्नि निक-सता है, तिसकरि सब जगत् दग्ध होताहै, बहुरि अग्निकी ज्वाला शांत हो जाती है, एक शून्य आकाशही शेष रहता है, रात्रि हो जाती है, जब रात्रिका भोग चुकता है, बहुरि जीव जीर्ण देहकरि संयुक्त मनरूप ब्रह्मा रचि लेता है, इसप्रकार शून्य आकाशविषे मन जगत्को रचता है जैसे शून्य स्थानविषे गंधर्वमायाकरि नगर रचि लेता है, तैसे जग-त्को मन रचि लेताहै, बहुरि प्रलय हो जाता है, इसप्रकार जगत्गण उपजिकरि महाप्रलयविषे नष्ट होते हैं, ब्रह्माके दिन क्षय हुएते फिर जब ब्रह्माका दिन होताहै, तब बहुरि रचि लेताहै, बहुरि महाप्रलयविषे ब्रह्मा-

दिक सब अंतर्धान हो जाते हैं, इसप्रकार प्रलयमहाप्रलय अनेक जगत् गण व्यतीत होवे हैं, महादीर्घ मायारूपी कालचक्र पडा फिरता है, तिसविषे मैं तुझको सत्य क्या कहौं, असत्य क्या कहौं, सर्व भ्रांतिरूप दासुरके आख्यानवत् जगत् है, कल्पनामात्ररचित चक्र है, वस्तुते शून्य आकाशरूप है, बडे आरंभसंयुक्त विस्ताररूप भासताहै, तौभी असत्यरूप है,जैसे भ्रमकारि दूसरा चंद्रमा भासताहै,तैसे यह जगत् मूढके हृदयविषे सत्य भासता है, तुम मूढ होना नहीं, ज्ञानवान्‌वत् विचारिकारि जगत्‌को असत्य जानना ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जगत्सत्यासत्यनिर्णयो नाम सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४८.

दासुरोपाख्याने वनोपरुदनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हेरामजी ! भोग अरु ऐश्वर्यकरिकै जो चित्त खैंचाहै सो नानाप्रकार क्रियाके आरंभ करतेहैं. राजस तामस सात्त्विककर्म करतेहैं, वह मूढ आत्मा शांतिको नहीं प्राप्त होता; जब भोगकी तृष्णाते रहित होवै, तब आत्माको देखै, जिन पुरुषोंको इंद्रियगण वश नहीं करिसकते सो आत्माको प्रत्यक्ष हस्तविषे बिल्वफलवत् देखते हैं, जिन पुरुषोंने विचार करिकै अहंकाररूपी मलिन शरीरका त्याग किया है, तिनका शरीर जगत्‌रूप हो जाताहै, जैसे सर्प कंचुकीको त्यागताहै, अरु नूतन पाता है, तैसे मिथ्या शरीरको त्यागिकरि आत्मविचारते आत्मशरीरको पाता है, ऐसे जो निरहंकार आत्मदर्शी पुरुष हैं, सो जगत्‌के पदार्थविषे आसक्त भासतेहैं, तौ भी जन्म मरणको नहीं पाते, जैसे अग्निकरि भूना बीज क्षेत्रमें नहीं उपजता, तैसे ज्ञानवान् बहुरि जन्म नहीं पाते, अरु जो अज्ञानी भोगविषे आसक्तबुद्धि हैं. सो मन अरु शरीरके दुःखकरि दुःखी होते हैं, वारंवार जन्म अरु मरणको पातेहैं, जैसे दिन होता है, बहुरि रात्रि होती है, तैसे वे जन्ममरण पाते हैं, ताते तुम अज्ञानीकी नाईं नहीं होना, व्यवहारचेष्टा जैसे अज्ञानीकी होती है, तैसे करौ, परंतु

अंतरते भोगादिककी ओर चित्तको न देहु, आत्मपरायण रक्खौ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम जो कहा संसारचक्र दासुरके आख्यानवत् है कल्पना करिकै रचित है, तिसका आकार वस्तुते शून्य है, यह तुमने क्या कहा इसको प्रगट करि कहौ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! वर्णनकेनिमित्त मैंने जगत् मायारूप तुमसे कहा है, अरु दासुरके प्रसंगसे कछु प्रयोजन न था, परंतु तैंने पूछा है, तौ अब सुन ॥ हे रामजी ! इस सृष्टिविषे मगध नाम देश है, सो विचित्र वृक्ष फलकरि पूर्ण है, बड़ा कदंब वनस्पति ताल करिकै जंगल विचित्ररूप पक्षी सहित है, मनके सोहनेहारा चारों ओरते निरंध्र कमलपुष्पसंयुक्त तडाग बगीचे अति सुंदर देश है, तहां एक पर्वतके तटके ऊपर निरंध्ररूप केलिका खंड है अरु और अनेक वृक्ष जो फूल फलकरि पूर्ण जीवके जीवनरूप हैं, कोकिला आदिक पक्षी शब्द करते हैं, तहां नगरविषे एक परमधर्मात्मा तापसी होता भया, दासुर तिसका नाम था, महातपकरिसंयुक्त कदंबवृक्षपर बैठिकरि वीतराग महाबुद्धिमान् तप करता था ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ऋषीश्वर ! तापसी वनविषे किसनिमित्त आया था अरु कदंबवृक्षपर किसनिमित्त बैठा सो कारण कहौ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शरलोमानामक ऋषीश्वर तिसका पिता होता भया, मानो दूसरा ब्रह्मा था, सो तिस पर्वतपर रहता था, तिसके गृहविषे दासुर नामक पुत्र होता भया, जैसे बृहस्पतिके गृहविषे कच हुआ, तैसे शरलोमाने पुत्रसंयुक्त वनविषे चिरकाल व्यतीत किया, तहाँ जगके क्षीण भोगकरि देहका त्याग किया अरु स्वर्ग लोकको गमन करत भया, जैसे पक्षी आलयको त्यागिकरि आकाशमें उड़ता है, तिस वनविषे दासुर एकाएकी रहिगया. पिताके वियोग करि रुदन करत भया, जैसे कुंज वियोगकरि कुम्हलाती है, जैसे हिमऋतुविषे कमलकी शोभा नष्ट हो जाती है, तैसे दीन हो गया, तब वहां अदृष्ट शरीर वनदेवी थी, सो दयाकरि आकाशवाणी करत भई ॥ हे ऋषिपुत्र बुद्धिमान् ! अज्ञानीकी नाईं क्या रुदन करता है? यह संसार सर्व असत्‌रूप है, तू इस संसारको देखता नहीं, यह तौ नाशरूप महाचंचल है, सब काल उत्पन्न अरु विनाश होता है, कोऊ पदार्थ स्थित नहीं रहता, ब्रह्माते आदि कीटपर्यंत जेता कछु जगत्

तुझको भासता है, सो सब नाशरूप है, इसविषे संदेह कछु नहीं; तातें तू पिताके मरनेका विलाप मत कर, यह बात अवश्य इसीप्रकार है, जो उत्पन्न भया है, सो नष्ट होवैगा, स्थिर कोऊ नहीं रहैगा; जैसे सूर्य उदय होता है, बहुरि अस्त होता है ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार अशरीर देवी-की वाणी दासुरने सुनी, तब रक्तनेत्र दासुर धैर्यको प्राप्त भया, जैसे मेघ-का शब्द सुनकरि मोर प्रसन्न होता है, तैसे शांतिमान् होकरि यथाशास्त्र पिताकी जो क्रिया थी, सो सब करत भया. तिसके अनंतर सिद्धताके नि-मित्त तत्पदका उद्यम करत भया ब्राह्मणका जो कर्म है तप विद्या, सो सब शीख तिसके अध्ययन करि श्रोत्रिय भया था, परंतु अज्ञानहृदय था, ज्ञानी न था, ऐसा श्रोत्रिय होइकरि तपके निमित्त उठि विचार किया, कि कोऊ पवित्र स्थान होवै; तहां जाय तप करौं देखता देखता पृथ्वीविषे किसी स्थानमें चित्त विश्रांतिमान् न भया, सब पृथ्वी उसको अशुद्ध दृष्टि आई, कहूं कोऊ विघ्न भासै इसप्रकार सब पृथ्वीको अशुद्ध देखिकरि विचारत भया, सो और स्थान तौ सब अशुद्ध हैं; परंतु वृक्षकी शाखापर बैठि तप करौं, ऐसा कोऊ उपाय होवे जो वृक्षकी शाखाके अग्र-भागविषे मैं स्थिति पाऊं ऐसे चिंतनकरि अग्नि प्रज्वलितकरि अरु अप-नेमुखका मांस काटिकरि होमने लगा, तब सब देवताओंका मुख जो अग्नि है, सो विचारत भया कि, ब्राह्मणका मांस मेरे मुखविषे न आवै; तब अ-रूचि जैसे देह धारिकरि ब्राह्मणके निकट आया, अरु कहत भया, जैसे ब्रह्माको सूर्य कहै, बडे प्रकाश शरीरको धरके अग्नि कहता भया, हे ब्राह्म-णकुमार ! जो कछु तुझको वांछित वर है सो माँग जैसे भंडारको खोलि-करि मणि लेताहै, तैसे मुझसों वर लेहु जब अग्निने ऐसे कहा; तब दासु-रने पुष्प धूप सुगंधि आदिककरि अग्निका पूजन किया अरु प्रसन्न होइ-करि कहत भया हे भगवन्! प्राणाहुतिके पवन शरीरसों मैंने तप करनेके निमित्त उद्यम किया है, सो और शुद्ध स्थान कोऊ नहीं मुझको भासता है, अरु मैं चाहता हौं कि, इस वृक्षकी अग्र शिखाविषे स्थित होनेकी मुझ-को शक्ति होवै यहां बैठिकरि तप करौं, यह वर देहु, जब इसप्रकार मुनि-पुत्रने कहा तब अग्निदेवने कहा, ऐसेही होवै, इसप्रकार कहिकरि अंत-

र्धान हो गया; जैसे संध्याकालके मेघ अंतर्धान हो जाते हैं तब वरको पायके ब्राह्मणकुमार प्रसन्न भया; जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा पूर्ण कलाकरि प्रसन्न होता है, तैसे भया, जैसे चंद्रमाके प्रकाशको पायकरि कमलिनी शोभती है तैसे वरको पायकरि शोभता भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दासुरोपाख्याने वनोपरुदनं नामाष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥४८॥

एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ४९.

दासुरोपाख्यानावलोकनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार वरको पायकरि दासुर कदंबवृक्षके ऊपर चढनेकी इच्छा करता भया, कैसा है वृक्ष, अद्भुत सुन्दर बड़ा विस्तार है जिसका, ऐसे वृक्षको देखिकै बुद्धिमान् दासुर वृक्षके टासके अग्रऊपर जाय बैठा, नूतन कमल पत्र ऊपर खिलते देखने लगा, दिशाका कौतुक चंचलरूप देखा, दृश्यरूप मानौ चंचल पुतली है, श्याम आकाश तिसका शीश है, तिसपर श्याम केशही प्रकाशरूप है, पाताल तिसके चरण हैं, मेघरूपी वस्त्र है, पुष्पवत् गौर अंग है, ऐसी दृश्यरूपी एक स्त्री है, समुद्र कैलास तिसके भूषण हैं, प्राणरूपी फुरणेते जल चलता है, सो मानौ उसका झनकार है, मोहरूपी शरीर वनस्पति रोम हैं, सूर्य चंद्रमा जिसके कुंडल हैं, पर्वत बेडे हैं, पवन प्राणवायु है, दिशा हस्त हैं, समुद्र आरसी है, सूर्यादिक उष्णता तिसके पित्त हैं, चंद्रमा कफ है, ऐसी त्रिलोकीरूप एक पुतली है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दासुरोपाख्याने अवलोकनं नाम एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥

पंचाशत्तमः सर्गः ५०.

दासुरसुतबोधवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तिसके ऊपर स्थित होइ करि वह तप करने लगा, तहां तिसका नाम कदंबतपासुर हुआ, एक क्षण दिशाको देखिकै वहांते वृत्तिको खैंचत भया, पद्मासन बांधिकरि मनको एकाग्र

किया, सो दासुर परमार्थपदते अज्ञात था, फलकी कृपणताकरि कर्मांतरविषे स्थित था, फलकी ओर मन था; अरु जिस वृक्षका पत्र आकाशको लगता था, उस पत्रकेऊपर स्थित भया, अरु मनकरि यज्ञका आरंभ किया, जेती कछु सामग्री विधि थी, सो सब यथाशास्त्र मनकरि करत भया, दश वर्ष मनविषे व्यतीत किये, सर्व देवताओंका पूजन किया, गोमेध, अश्वमेध, नरमेध सब यथाविधिसंयुक्त मनकरि करत भया, ब्राह्मणोंको बहु दक्षिणा दी, इस प्रकारते समय पायकरि उसका अंतःकरण शुद्ध भया, विस्तीर्ण निर्मल चित्तविषे स्थित भया, बलात्कारसों ज्ञान उसके हृदयविषे प्रकाशित भया, आत्माके आगे वासना मलिन आवरण था, सो नष्ट हो गया, जैसे शरत्कालविषे तडाग निर्मल होता है, तैसे मुनीश्वरका चित्त संकल्पते रहित भया, तब वह जो मुनीश्वर वृक्षपर टासके अग्रमें बैठा था, तहां एक वनदेवीको अग्रभागविषे देखत भया, बडे विशाल नेत्र अरु चपलरूप पुष्पकी नाईं दंत, कामदेवकी नाईं महासुंदर शरीर, अरु कामके मदकरि पूर्ण नील कमलकी नाईं लोचन, मनके हरनेहारी है, तिसको मुनीश्वर कहता भया, अरु वह नम्रभूत होइकरि देखत भई, जैसे कोकिला कुसुमकरि पूर्ण वनलताके आगे नम्र होवै, तैसे उसको कहत भया ॥ हे कमलनयनि ! तू कौन है, कैसी तू शोभितरूप है, अरु इस पुष्पकरि संयुक्त लताविषे किसनिमित्त आय स्थित भई है, जब इस प्रकार मुनीश्वरने कहा, तब कामदेवको मोहनेहारी गौरी बोलत भई, ॥ हे मुनीश्वर ! जो पदार्थ इस पृथ्वीविषे बडे कष्टकरि प्राप्त होता है, सो महापुरुषकी कृपाकरि सुगम प्राप्त होता है, हम इस वनके देवता हैं, लीला करते फिरते हैं,अरु जिसनिमित्त मैं तुम्हारे आगे आई हौं सो सुनौ ॥ हे मुनीश्वर ! पिछले दिनकी जो चैत्रशुद्ध त्रयोदशी थी, तिस दिन इंद्रके नंदनवनमें उत्साह हुआ था, तब सब वनदेवियां एकत्र भई थीं त्रिलोकीमें आगमन किया था, तहां सब देवियां पुत्रसंयुक्त बडे पुष्पकरि विलासक्रीडा करत भईं अरु मैं अपुत्र थी, तिसकारणते मैं दुःखित भई अरु दुःखके निवारने अर्थ तुम्हारे पास आई हौं,तुम अर्थके सिद्धकर्ता हौ,

बडे वृक्षपर तुम स्थित हौ मैं अनाथ पुत्रकी वांछाकारि तुम्हारे निकट आई हौं, ताते मुझको पुत्र देहु, अरु जो न देहुगे तो मैं अग्नि प्रज्वलितकारि जलि मरौंगी इसप्रकार पुत्रका दुःख दाहकारि निवृत्त करौंगी ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार वनदेवीने कहा, तब मुनीश्वरने हँसकारि कहा, अरु दया करिकै हस्तमें पुष्प दिया ॥ हे सुंदरी ! तू जा, तुझको एकमास उपरांत पूजनेयोग्य अरु महासुंदर पुत्र होवैगा, परंतु तैंने जो इच्छा धारी थी, जो पुत्र न प्राप्त होवै, तौ जलि मरौंगी, तिसकारि अज्ञानीपुत्र होवैगा, यत्नकारि ज्ञान तिसको प्राप्त होवैगा, जब इसप्रकार मुनीश्वरने कहा, तब प्रसन्न होइकारि वनदेवी कहत भई, हे मुनीश्वर ! मैं यहां रहिकारि तुम्हारी टहल करौंगी, परंतु मुनीश्वरने तिसका त्याग किया अरु कहा; हे सुंदरी ! तू अपने स्थानविषे जाय रह, तब वह अपनी वनदेवीविषे जाय रही, तिसको समय पाय पुत्र उत्पन्न हुआ, जब दश वर्षका बालक भया, तब मुनीश्वरके निकट ले आई, आयकारि पुत्रसंयुक्त दोनोंने प्रणाम किया, अरु पुत्रको मुनीश्वरके आगे स्थापन कारि कहत भई ॥ हे भगवन् ! यह कल्याणमूर्त्ति बालक है, सो तुम हम दोनोंका पुत्र है, इसको मैंने संपूर्ण विद्या शिखाई है, अरु परिपक्व किया है सर्वका वेत्ता भयाहै, परंतु केवल ज्ञानको प्राप्त नहीं भया, ताते जिसकारि यह संसारयंत्रविषे बहुरि दुःख न पावै, सो ज्ञान कृपाकारि तुम इसको उपदेश करौ. हे प्रभो ! जो शुभकुलविषे उपजा होवै, अरु चाहै, मेरा पुत्र मूढ रहै, सो ऐसी बात कौन है ? हे रामजी ! जब इसप्रकार देवीने कहा, तब मुनीश्वरने कहा, इसकोतुम यहां छोडि जाहु, तब वह देवी छोडिकारि गमन करत भई अरु बालक पिताके पास रहा, सो बडे यत्नकारिकै तिसको ज्ञानकी प्राप्ति भई, नानाप्रकारके उक्त आख्यान, इतिहास, अरु अपने दृष्टांत कल्पिकारि चिरपर्यंत पुत्रको पढाता भया, वेदवेदांतका निश्चय अनुद्वेग होइकारि उपदेश किया, विस्तारकारिकै कथाके क्रम जो अनुभव बड़े गूढ अर्थ हैं, सो कहे, जो अपने अनुभवते प्रत्यक्ष हैं, सो बलकारिकै उपदेश किया शृंगार आदिक जो अष्ट कर्म हैं, तिनते रहित परमार्थतत्त्वको उपदेश किया, जो अर्थ भये कहना है, सो महात्मापुरुषने इसको उपदेश किया, तिसकारि

जागा, अरु शांत आत्मा होता भया, जैसे मेघके शब्दकरि मोर प्रसन्न होता है, तैसे वह बालक प्रसन्न भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थिति-प्रकरणे दासुरसुतबोधनं नाम पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपंचाशत्तमः सर्गः ५१.

श्वेतथवैभववर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तब मैं भी कैलासवाहिनी गंगाजीके स्नानको चला जाता था; अदृष्ट शरीरसंयुक्त आकाशकी वीथीमें सप्तर्षि मंडलते चला था, जिस वृक्षपर वह बैठे थे, तिसके पाछे मैं आया, तब कछुक शब्द श्रवण किया, वनविषे जो वृक्ष हैं, तिनके ऊपर छिद्रसों शब्द होता है, जैसे मूँदे कमलसों भँवरेका शब्द होता है तैसे वृक्षके अग्रसों शब्द श्रवण किया, जो कहता है, हे पुत्र बुद्धिमान् ! तू श्रवण कर, मैं तुझको वस्तुके निरूपणनिमित्त आश्चर्याख्यान कहता हौं॥एक राजा होता भया, सो महापराक्रमी अरु त्रिलोकीविषे उसका प्रसिद्ध नाम श्वेतथ, बडा लक्ष्मीवान् जगत्की रचना क्रम वह करताहै, अरु सब मुनि जो जगत्विषे बड़े नायक हैं, सो भी उत्तम चूडामणिकरिकै तिसको शीशविषे धरते हैं, अरु कर्म जो करताहै, सो सहस्र असंख्यहैं,नानाप्रकारके आश्चर्य व्यवहार करता है, अरु तिस महात्मा पुरुषको त्रिलोकीविषे किसीने वश नहीं किया, सहस्रही तिसके आरंभ हैं, सुख अरु दुःखको देनेहारा है, तिसके आरंभकी संख्या कछु कही नहीं जाती, जैसे समुद्रके कल्लोलतरंगकी कछु संख्या कही नहीं जाती, तैसे उसके आरंभ हैं, अरु उसका जो वीर्य पराक्रम है, सो किसी शस्त्र अस्त्र अग्निकरि छेदा नहीं जाता, जैसे आका-शको मुष्टिप्रहारकरि तोडि नहीं सकता, तैसे वह है, बड़ी विस्तृत तिसकी भुजा हैं, अरु लीलाकरि आरंभको रचता है, तिसके आरंभ दूर करनेको कोऊ समर्थ नहीं, इंद्र विष्णु सदाशिव भी समर्थ नहीं॥ हे महाबाहो ! तीन उसके देह हैं, दिशाको भरि रहे हैं, तीन देहकरि जगत्विषे पसरि रहा है, उत्तम अधम मध्यम करिकै अरु बडे विस्ताररूपी आकाशते उत्पन्न भया है, अरु तहांही शरीरविषे स्थित भया है, जैसे आकाशका

पक्षी आकाशविषे रहता है, जैसे पवन आकाशविषे है, तैसे तिस पुरुषने तिस परमआकाशविषे बगीचेसंयुक्त एक स्थान अपनी क्रीड़ाका रचा है, पर्वतके शिखरमें मोतीकी वल्लियां रची हैं, सप्त बावडियां करी हैं, तिनकरि स्थान शोभता है, दो दीपक रचे हैं, जो तेल अरु बातीते रहित प्रकाशते हैं, सो शीत अरु उष्णरूप हैं, कबहूं अधको, कबहूं ऊर्ध्वको नगरविषे भ्रमते हैं, मूर्ख वराकगण रचे हैं, कोऊ गण ऊर्ध्व स्थितहैं, कोऊ मध्य, कोऊ अधविषे स्थित हैं, कई दीर्घकालकरि नष्ट होते हैं, कई शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं, कई वस्त्रकरि आच्छादित हैं कई वस्त्ररहित हैं, नव द्वारकरि स्थान किया है, तिसमें निरंतर बहुत वृक्ष रोपे हैं, पंच दीप देखनेनिमित्त किये हैं, तीन स्तंभ किये हैं, तिनविषे और छोटे स्तंभ किये हैं मूलमेंके तिनऊपर लेपन किया है, पादतलीकारि संकुली किये हैं, महामायाकारि तिस राजाने वह नगर रचा है, नगरकी रक्षानिमित्त सेना रची है, एक नीति देखनेवाले यक्ष हैं, विवरक गणकरी वह चलते नाना प्रकारकी क्रीडा करते हैं, तिन शरीरकारि सब ठौरविषे विचरता है, यक्ष सब ठौरविषे समीप रहता है, लीलाकारि एक स्थानको त्यागिकारि और स्थानविषे जाय चेष्टा करता है, कबहूँ इच्छा होती तब चंचल चित्तसों भविष्यत पुरको रचिकारि तिसविषे स्थित होता है, भयकारि वेष्टित हुआ तहांते उठि आता है, वेगकारिके गंधर्व नगरको रचता फिरता है, जब इच्छा करता है कि, मैं उपजों तब उपजि आता है, जब इच्छा करता है कि, मैं मारि जाऊं, तब मारि जाता है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, बहुरि लय हो जाते हैं, इसप्रकार राजा बडे व्यवहारको करता है; वारंवार रचना करिके कबहूं आपही रुदन करने लगता है, मैं क्या करौं, मैं अज्ञानी हौं, मैं दुःखी हौं, चित्तसों आतुर होता है, ऐसे विचारकारिके कबहूँ उदय होकारि बड़ा स्थूल हो जाता है, जैसे वर्षाकालकी नदी बढती है, तैसे बढिकारि आपको सुखी मानता है, विस्तारको पायकारि चलता फिरता है. बड़े प्रकाशकारि प्रकाशता है, तिस महीपतिकी बडी महिमा है, उचितरूप होइकारि नगरमें स्थित है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे श्वेतथवैभववर्णनं नाम एकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशत्तमः सर्गः ५२.

संसारविचारवर्णनम् ।

हे रामजी! जब इसप्रकार दासुरने कहा, तब वृक्षके अग्रभाग बैठे पुत्रने प्रश्न किया ॥ पुत्र उवाच ॥ हे भगवन्! वह श्वेतथ राजा है कौन जगत्‌विषे जिसकी कीर्ति प्रसिद्ध है, अरु कौन नगर तिसने रचा है, जो भविष्यत् नगरविषे रहता है, रहना तौ वर्तमानविषे होता है, भविष्यत्‌विषे कैसे रहता है, यह विरुद्ध अर्थ कैसे बनता है? इस वचनकरि मेरी बुद्धि मोहित भई है ॥ दासुर उवाच ॥ हे पुत्र! मैं तुझको यथार्थ कहता हौं तू श्रवण करु, जिसके जाननेते संसारचक्रको ज्योंका त्यों देखैगा, कि इस वस्तुते क्या है, यह संसार आरम्भ असत्य उठा है, बडे विस्तारसंयुक्त भासता है, तौभी असत्यरूप है, कछु हुआ नहीं, जैसे यह संसार स्थित है, तैसे मैं तुझको कहता हौं, यह आख्यान मैंने तुझको जगत् निरूपण निमित्त कहा है ॥ हे पुत्र ! जो अचैत्यशुद्ध चिन्मात्र चिदाकाश है, तिसते जो संकल्प उठा है. तिस संकल्पका नाम श्वेतथ है, सो आपही उपजता अरु आपही लीन हो जाता है, सब जगत् तिसका रूप है, जो बडे विस्तार संयुक्त भासता है, सो तिसके उपजनेकारि जगत् उपजता है, नष्ट होनेकारि नष्ट होता है. ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इंद्रादिक सब तिसके अवयव हैं, जैसे वृक्षके अंग टास होते हैं, जैसे पर्वतके अंग शिखर होते हैं, तैसे तिसके अंग हैं, शून्य आकाशविषे तिसने यह जगत्‌रूपी नगर रचा है, प्रतिभासके अनुसन्धानते वही चित्‌कला विरंचि पदको प्राप्त भई है, अरु चतुर्दश स्थान जो कहे हैं, सो विस्तारसंयुक्त चतुर्दश लोक हैं, वन बगीचे उपवनसंयुक्त पर्वत महाचल मन्दराचल सुमेरु आदिक क्रीड़ाके स्थान हैं, उष्ण शीत जो दो दीपक तेल बातीविना कहे हैं, सो सूर्य अरु चन्द्रमा हैं, जगत्‌रूपी नगरविषे अध ऊर्ध्वको प्रकाशते हैं, सूर्यकी किरणोंका जो प्रकाश है, मानो मोतीके तरंग फुरते हैं, अरु इस समुद्र आगे क्षीर जल आदिक जो सप्त समुद्र हैं, सो बावडियां है, जीवरूपी किरायती व्यवहार करते लेते देते अध ऊर्ध्वको जाते हैं, पुण्यकरि स्वर्ग-

लोकमें जाते हैं, पापकारि नरकको चले जाते हैं अरु जगत्‌विषे संकल्प करिके जो क्रीडाके निमित्त तिसने विवरण रचेहैं, सो देह है, कोऊ देवता होइकारि ऊर्ध्व स्वर्गविषे रहते हैं, कोऊ मनुष्य होइकारि मध्य लोकविषे रहतेहैं, अरु दैत्य नाग आदिक पातालविषे रहते हैं, पवनरूपी प्रवाह कारि समस्तयंत्र चलते फिरते हैं, अस्थिरूपी तिनविषे लकडियां हैं, रक्त मांसकारि लेपन किये हैं, कई दीर्घकालकारि नष्ट होते हैं, कई शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं, शीशपर केश हैं, सो श्याम वस्त्र है, कर्ण, नासिका, नेत्र, जिह्वा अरु मूत्रपुरीपके स्थान लिंग इंद्रिय गुदा ये नव द्वारहैं, तिनसों निरंतर पवन चलता है, शीत उष्ण रूपसों प्रान अपान है, नासिका आदिक तिसके झरोखे हैं, भुजारूप गलियांहैं, पंचदीपक पंच इन्द्रियां हैं॥ हे महाबुद्धिमान् ! यह सर्व संकल्परूपी मायाकारि रचे हैं; अहंकाररूपी तिसविषे यक्ष हैं, महाभयका स्थान यह अहंकारकारि होता है, देहरूपी विवरण हैं, सो अहंकाररूपी यक्षसंयुक्त विचरते हैं, असत्यरूप परंतु सत्य होइकारि इसके साथ पीड़ा करतेहैं, जैसे भांडविषे बिलाड बैठे जैसे भस्त्राकाविषे सर्प बैठे, जैसे बाँसविषे मोती है,तैसे देहविषे अहंकार है, क्षणविषे उदय होता है, क्षणविषे शांत हो जाता है, दीपकवत् देहरूपी गृहविषे संकल्प उठता है, जैसे समुद्रविषे तरंग उठतेहैं, अरु भविष्यत् नगर जो कहा है, सो सुन. अपना जो कोऊ स्वार्थ चिंतवताहै, कि यह कार्य इस प्रकार करौंगा अमुक दिन इस देशको जाऊंगा, जैसे चिंतवता है, तैसे भासि आता है, तिसविषे जाय प्राप्त होता है; सो अनहोतेको वर्तमान करता है, जबलग दुर्वासना है, तबलग अनेक दुःख होते हैं, अरु यह दुष्ट मन अहंकार स्थूल होजाताहै,अरु संकल्पते रहितहुए शीघ्रही इसका नाश होताहै, जब तू संकल्प नाश करैगा,तब शीघ्रही कल्याणको प्राप्तहोवैगा, अपना संकल्प उठिकारि आपहीको दुःखदायक होताहै, जैसे बालकको अपने परछाईंविषे वैताल कल्पना होतीहै, अरु आपही भय पाताहै, तैसे अपना संकल्प अनंत दुःखदायक होता है सुख कोऊ नहीं पाता,संपूर्ण जगत्‌विस्तार संकल्पकारि होताहै, आत्माकी सत्ताकारि बढता है,बहुरि नष्ट हो जाता है, विचार कियेते नहीं रहता, जब मनविषे विचार उत्पन्न

होता, तब नष्ट हो जाता है, जैसे सायंकालविषे धूपका अभाव हो जाता है, जैसे प्रकाश उदय हुए तमका अभाव हो जाता है, विचार करिकै संकल्प आपही नष्ट हो जाते हैं, मन आपही क्रिया करता है, अरु आपही दुःख पाता है, वहुरि रुदन करने लगता है, जैसे वानर काष्ठके यंत्रकी कीलीको हिलाइकारि फँसता है, अरु निकस नहीं सकता, दुःख पाता है, तैसे अपनाही संकल्प आपको दुःखदायक होता है, संकल्प-कारि जो कल्पित विषयका आनंद है, सो जब जीवको प्राप्त होताहै, तब ऊंची ग्रीवा कारि हर्षवान् होता है, जैसे अकस्मात् किसी वृक्षके फल ऊटके मुखमें आय लगैं, अरु वह ऊँची ग्रीवा करिकै विचारै, तैसे अज्ञानी जीव विषयकी प्राप्तिविषे ऊँची ग्रीवाकारि हर्षवान् होते हैं, क्षण-विषे जीवको विषयकी प्राप्ति उपजती है, विशेष करिकै इष्टकी प्राप्तिविषे बढते हैं, जब कोऊ दुःख होताहै, तब वह प्रीतिकी प्रसन्नता उठ जाती है, क्षणविषे विकारी होता है, क्षणविषे प्रसन्न हो वैठता है, वस्तु गुणकी प्राप्तिविषे हर्षवान् होता है, शुभसंकल्पकारि शुभको देखता है, अशुभ संकल्पकारि अशुभको देखता है, शुभकारि निर्मल होता है, अशुभकारि मलिन होता है, जैसे आगे तेरी इच्छा होवै तैसे कर, श्वेतथके मैंने जो तुझको यह तीन शरीर कहे थे, उत्तम, मध्यम, अधम, सो सात्त्विक, राजस, तामस यह तीन गुण तीन देह हैं, यही सबका कारण जगतविषे स्थित है, जब तामसी संकल्पकेसाथ मिलता है, तब नीचरूप पापचेष्टा कर्म करता है, महाकृपणताको प्राप्त होता है, मृतक होइकारि कृमि कीट जन्मको पाता है, जब राजसी संकल्पकेसाथ मिलता है, तब लोकव्य-वहार करता है, स्त्रीपुत्रादिकके रागसों रंजित होता है, पापकर्म नहीं करता, तब मृतक होइकारि संसारविषे मनुष्यशरीर पाता है, जब सात्त्विकी भावविषे स्थित होता है, तब धर्मज्ञानपरायण होता है, मोक्ष-पदकी तिसको अंतर्भावना होती है, धर्मज्ञान पायकारि चक्रवर्ती राजाकी नाईं स्थित होता है, जब तिन भावोंको त्याग करता है, तब संकल्प भाव नष्ट हो जाताहै, अक्षय परमपद शेष रहताहै, तातै संसारदृष्टिको त्याग करिकै मनकारि मनको वश करके अंतरबाहिरते जो दृश्यका अर्थ चित्त-

विषे स्थित है, तिस संस्कारअंकुरको निवृत्त करके शांतात्मा होवै ॥ हे पुत्र ! इसविना और उपाय नहीं, जो तू सहस्र वर्ष दारुण तप करै, अथवा लीलावत् आपको शिलासम चूर्ण करै, अथवा समुद्रविषे प्रवेश करै, वडवाग्निविषे प्रवेश करै, गर्तविषे गिरै, खड्गधाराके सन्मुख युद्ध करै, अथवा सदाशिव तुझको उपदेश करै. ब्रह्मा, विष्णु, बृहस्पति दया करिकै उपदेश करैं, अथवा पातालविषे जाय स्थित होवै, पृथ्वीविषे स्वर्गविषे जायस्थित होवै, इत्यादिकअपर स्थानविषे जावै, तौ भी अपर उपाय कल्याणके निमित्त कोई नहीं, जैसे संकल्पका उपशम करना उपाय है, तैसे जो अनादि अविनाशी अविकारी परमपावन सुख है, सो संकल्पके उपशमते पाता है, ताते यत्नसों संकल्पको उपशम करहु जेते कछु भाव पदार्थ हैं, सो सब संकल्परूपी तत्त्वसे परोए हुए हैं, जब संकल्परूपी तंतु टूटि पड़ता है, तब नहीं जानता कि, पदार्थ कहां गए, सत्य. असत्य पदार्थ सब संकल्पमात्र हैं, जबलग संकल्प हैं, तबलग यह भासते हैं, संकल्पके निवृत्त हुएते असत्य हो जाते हैं, संकल्पकरिकै जैसी जैसी चिंतवना करता है, क्षणविषे तैसे हो जाता है, संसारभ्रम संकल्पकरि उदय भया है, संकल्प निवृत्त कियेते चित्त अद्वैतके सन्मुख होता है, सर्व जगत् असत्यरूप है, मायाकरिकै रचा है, जब संकल्पको त्यागिकरि यथाप्राप्तिविषे विचरैगा, तब तुझको खेद कछु न होवैगा, असत्यरूप जगत्के कार्यविषे दुःखित होना व्यर्थ है; आपसंयुक्त जगत्को असत्य जानैगा, तब दुःख भी न होवैगा, जबलग जगत्का सद्भाव भासता है, तबलग दुःख होता है, जब असत्य जाना, तब दुःख भी नहीं रहता, जो बोधमान् हैं, तिनको कोई दुःख नहीं भासता, ताते जो नित्य प्राप्त सत्तारूप है, तिसविषे स्थित होहु, विकल्पके जो बड़े समूह हैं, तिनको त्याग करहु, अरु जो अद्वैत आत्मपद है, तिसविषे विश्रामसुखको प्राप्त होइकरि सुषुप्तिरूप चित्तवृत्तिको धारिकरिकै विचरहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे संसारविचारो नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ५३.

जगच्चिकित्सावर्णनम्।

पुत्र उवाच ॥ हे भगवन्! संकल्प कैसा है? अरु सो उत्पन्न कैसे होता है? अरु वृद्ध कैसे होता है? अरु नाश कैसे होता है?॥ दासुर उवाच ॥ हे पुत्र! अनंत जो आत्मतत्त्व हैं, सो सत्ता समानरूप है, सो चेतनसत्ता जब द्वैतके सन्मुख होती है. तब चेतनताका लक्षण जो ज्ञानरूप है, सो संकल्पका अंकुरज्ञान वही बीजरूपी संवित् उल्लासमात्र सत्ताको पायकरि घनभावको प्राप्तहोताहै, सोई फुरनाकरि आकाशको चेतता है. तिसकरि आकाशको पूर्ण करता है, जैसे जलकरि मेघ स्पष्ट होता है, तैसे फुरणेकी दृढताकरि आकाश होता है, अपना स्वरूप इसको आत्मसत्ताते भिन्न भासताहै, यह भावना चित्तविषे भावित हो जाती है, जैसे बीज अंकुरभावको प्राप्त होता है, तैसे चित्तसंवित् संकल्प भावको प्राप्त होता है, संकल्पहीकरि संकल्प उपजता है, आपहीकरि स्वतः बढता है, तिसकरि सुखी दुःखी होता है, जब अचलरूपते चित्तसंवेदन दृश्यकी ओर फुरता है, तब तिस फुरणेका नाम संकल्प होता है, स्वरूपते भूलिकरि जब दृश्यकी ओर फुरता है, तब संकल्प वृद्ध होताहै, सोई वृद्धहुआ जगज्जालको रचता है, जेता कछु प्रपंच है, सो संकल्पका रचा संकल्प मात्रहै, जैसेसमुद्र जलमात्र होता है, जलते इतर नहीं, तैसे जगत् भी संकल्पते इतर नहीं, अरु आकाशमात्रते भ्रांतिरूप जगत् फुरि आया है, जैसे मृगतृष्णाका जल भासता है, जैसे आकाशविषे द्वितीय चंद्रमा भासताहै, तैसे तुम्हारा उपजना अरु बढना भ्रममात्रहै, जैसे तमका चमत्कार होताहै, तैसे यह जगत् मिथ्या-संकल्पकरि उदय हुआ तुझको भासता है॥ हे पुत्र! तेरा उपजना भी असत्य है, अरु बढना भी असत्य है, जब तू इसप्रकार जानैगा, तब इसकी आस्था लीन हो जावैगी यह पुरुष है, वह स्त्री है, मैं हौं, तू है, यह जो भाव दुःखसुखकरि संयुक्त पदार्थ भासते हैं, सो यह अज्ञानकरिकै व्यर्थ भासते हैं, इनविषे आस्थाकरिकै अंतरते तपता रहता है. अहं त्वं

आदिक दृश्य सब असत्यरूप हैं, जब यह भावना करैगा तब तू पृथ्वीविषे कल्याणरूप होइकरि विचरैगा, बहुरि संसारको प्राप्त न होवैगा. अहं त्व ते आदि लेकरि जब सब दृश्यकी भावना हृदयते जावै, तब इसका अभाव हो जावैगा॥ हे पुत्र! फलको तोड़िकरि मर्दन करनेविषेभी कछु यत्न होता है, परंतु आपकरि सिद्ध जो भावमात्र संकल्पका त्याग करना तिसविषे यत्न कछु नहीं, फूलके ग्रहणविषे भी यत्न है, हस्तका स्पंद होता है, ताते जो कछु भावरूप है, सो है नहीं, तौ तिसके त्यागनेविषे क्या यत्न है, ताते कछु है नहीं, यह दृश्य प्रपंच सबका जो होना है तिसका विपर्ययभाव करना कि, न मैं हौं, न जगत्‌है, जिस पुरुषने इस दृश्य जगत्‌का सद्भाव संकल्प नाश किया है, सो शांतरूप होता है, यह संकल्प तौ एक निमेषविषे लीलासों जीति लेता है, भावरूप जो आत्मसत्ता है. तिसविषे जब अपना आप उपशम करै, तब स्वस्तिक होता है, अपने मनके संकल्पकरि मन संकल्पको छेदेगा, जो आत्मतत्त्वविषे स्थित होवैगा इसविषे क्या यत्न है, संकल्पके उपशम हुएते जगत् उपशम होता है, अरु सब दुःख संसारके मूलते नाश हो जाते हैं, संकल्प मन बुद्धि जीव अहंकार आदिक सब नाम हैं, सो भेद कहनेमात्र हैं, इनके अर्थरूपविषे भेद कछु नहीं, जेता कछु दृश्य प्रपंचजाल है, सो सब संकल्पमात्र है, संकल्पके अभाव हुएते कछु नहीं रहता, ताते संकल्पको हृदयते काटहु, आकाशकी नाईं जगत् शून्य है, जैसे आकाशविषे नीलता भ्रांतिकरि भासती है, तैसे यह जगत् असत्य विकल्पकरि उठा है, संकल्प अरु जगत् दोनों असत्य हैं, ताते कछु नहीं, सब असत्यरूप है, असत्यरूप संकल्पने सिद्ध कियाहै, तिसकी भावनामें आस्था करनी मिथ्या है, जब ऐसे जाना तब इष्टरूप किसको जानै अरु वासना किसकी करै अरु अनिष्ट किसको जानै सब वासना नष्ट हो जाती हैं, वासनाके नष्ट हुएते सिद्धताकी प्राप्ति होती है॥ हे पुत्र! जो यह सत्य जगत् होता तौ विचार कियेते भी दृष्ट आता, सो विचार कियेते इसका शेष कछु नहीं रहता, जैसे प्रकाशकरि देखते तम दृष्ट नहीं आता, तैसे विचारकरि देखेते जगत् सत्य नहीं भासता, ताते अविचारते सिद्ध है, सो

असत्यरूप है, बुद्धिकी चपलताकरिके भासता है, जिस पुरुषकी जगत्-भावना उठि गई है, तिसको जगत्के सुखदुःख स्पर्श नहीं करते, निर्णय करि जो असत्यरूप जाना, तिसविषे बहुरि आस्था नहीं उदय होती, जब आस्था गई, तब भाव अभावबुद्धि भी नहीं रहती, संसारके सुख दुःख सब मिथ्या मनके फुरनेकरि रचे हैं, मनोराज्यके नगरवत् स्थित भए हैं, भूत भविष्य वर्तमान काल जगत् मनकी वासनाकरि फुरता है, मानसी शक्तिविषे स्थित है, सो मन क्षणविषे बडा दीर्घ आकार करता है, क्षणविषे सूक्ष्म आकारको धरता है, ग्रहण करिये तौ ग्रहण किया नहीं जाता; जैसे समुद्रकी लहरीको ग्रहण करिये तो पकडी नहीं जाती तैसे मन है, यद्यपि बडे आकारसंयुक्त जगत् भासता है, तौ भी कछु वस्तु नहीं, क्षणभंगुर असार है, वासनाकरि जगत् भासता है, वासनाके क्षय हुएते शांत हो जाता है, जब तुझको वासना फुरै, तब तिसी कालविषे तिसको शीघ्रही त्याग करहु, यह दृश्य प्रपंच कछु है नहीं, असत्यरू है, ऐसी भावना करिके वासनानष्ट हो जावेगी, इसविषेसंदेह कछु नहीं, जो यह संकल्परूप जगत् होवै तौ इसके त्याग करनेविषे यत्न होवै यह तौ असत्यभूत प्रपंच है, तिसका अनर्थ चिकित्साकरि तुझको खेद कछु न होवैगा; जो हैही नहीं, तिसके त्यागविषे क्या यत्न है, जो यह संसार मूल सत्य होता, तौ इसके नाशनिमित्त कोऊ न प्रवर्तता, जैसे कोयलेको श्वेत करने निमित्त धोनेको कोऊ नहीं प्रवर्तता, तैसे सब जगत् असत्यरूप है, विचार कियेते कछु नहीं पाता, ताते असत्य अहंकाररूप दृश्यको त्यागिकरि सत्य आत्माका अंगीकार करहु, जैसे धान्यसों तुष डारि देते हैं, अरु चावलका अंगीकार करते हैं, तैसे यत्नकरिके सर्व दृश्यको त्याग आत्मपदविषे प्राप्त होहु यह परमपुरुषार्थ है, और क्रिया किसनिमित्त करता है, मलरूप संसारका नाश करहु, जैसे तंदुलसों तुष दूर करते हैं, तब वास्तव आकार तंदुल भासतेहैं, ताते युक्तिकरिके जान कि, संसार असत्य कृत्रिमरूप है, तिसके नाशविषे क्या यत्न है, जैसे तांबेसों मल युक्तिकरिके दूर करतेहैं, तब निर्मल भासताहै, तैसे युक्तिकरि दृश्य मल जब दूर होवै तब बोधस्वरूप प्राप्त होवै, तिस कारणते उद्यमवान् होहु ॥ हे पुत्र ! यह संसार

संकल्प विकल्पते उत्पन्न भया है, विचारकारि अल्पयत्नसों निवृत्त हो जाता है. अरु तू देख कि, यह कौन है, जो सदा स्थिर रहता है, सब पदार्थ असत्यरूप हैं, देखते देखते नष्ट हो जाते हैं, जैसे दीपकके प्रकाशकारि अंधकार अभाव हो जाता है, जैसे भ्रांति दृष्टिकारि आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, स्वच्छ दृष्टिकारि दूसरा अभाव हो जाताहै, तैसे विचारकारिकै जगद्भ्रम नष्ट होता है, न यह जगत् तेरा है, न तू इसका है, यह भ्रमकारि भासता है, भ्रमको त्यागिकारि देख जो असत्यरूप है, अपनी गुरुत्वताका बड़ा ऐश्वर्य प्रकाशका विलास है, सो तेरे हृदयविषे मत होवै, यह मिथ्या भ्रमरूप है, अंतरते उठै तौ आपको भी अरु जगत्को भी असत्य जान आत्मतत्त्वते इतर कछु नहीं, जब ऐसे निश्चय करैगा, तब जगद्भावना नष्ट हो जावैगी, सर्वात्मप्रकाश भासैगा ॥ इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दासुरोपाख्याने जगच्चिकित्सावर्णनं नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपंचाशत्तमः सर्गः ५४.

दासुरोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ रघुकुलरूपी आकाशके चन्द्रमा रामजी ! जब इसप्रकार पुत्रको उपदेश किया; तब मैं उसके पीछे आकाशविषे स्थित था, सो कदंबवृक्षके अग्रभावमें जाय स्थित भया, जैसे मेघ वर्षाते रहित तूष्णीं होइकारि पर्वतके शिखरपर जाय स्थित होता है, तैसे मैं जाय स्थित भया, आगे दासुर जो शूरमा अज्ञानरूपी शत्रुका नाश करता है, अरु परम शक्तिकारि प्रकाशवान् है, अरु तपकारि देह ऐसा हो गया है, मानो स्वर्णका चमत्कार है, तिस दासुरने मुझको अपने अग्रमें देखा कि, वसिष्ठमुनि आया है, ऐसे जानि कारि उठ अर्घ्य पाद्य कारि पूजन किया, बहुरि हम दोनों वृक्षके पत्रऊपर बैठ गये बहुरि पूजन किया; जब पूजन करने लगा, तब हम दोनों कथाका प्रसंग चलाने लगे; तिस चर्चाके वचनकारि तिसके पुत्रको जगाते

भये संसार समुद्रके पार करनेनिमित्त बहुरि मैं वृक्षकी ओर देखता था, कैसा वृक्ष है कि, महासुंदर फूलफलनकरि शोभायमान है, अरु दासुरकी इच्छाद्वारा मृग अरु पक्षी तिसके आश्रय रहते हैं, बहुत गुणसंयुक्त वृक्ष मैं देखता भया; अरु तिसके पुत्रको हम और और कथा करिकै विद्वान् दृष्टिसों रमणीय दृष्टांत अरु युक्ति सहित उपदेश करत भये नाना प्रकारके विचित्र इतिहास करि तिस बालकको जगाया, रात्रिको सिद्धांत कथाविषे लागे रहे, हमको एक मुहूर्तवत् रात्रि व्यतीत हुई, जब प्रातःकाल भया तब मैं उठि ठाढ़ाभया दासुर अपने पुत्रसंयुक्त मेरेसाथ चला, जहांलग कदंबका आकाशतल था, तहांलग आये, तिसके अंतर मैं बहुतकरि तिनको ठहरावता भया, अरु मैं गंगाजीकी ओर चला बहुरि स्नान करिकै सप्तर्षिके मंडलविषे जाय स्थित भया ॥ हे रघुनंदन ! यह दासुरका आख्यान मैंने तुझको कहा है, यह जगत् प्रतिबिंब आभासके सदृश है, प्रत्यक्ष भासता है, तौ भी असत्यरूप है, जगत्के निरूपण निमित्त यह आख्यान श्रवण करायाहै, कि यह जगत् असत्यरूप है, कछु वस्तु नहीं, बुद्धिकरि तुझको राग मत होवै, इस कथाका सिद्धांत हृदयविषे धारिकरि विचरैगा तब संसाररूपी मल तुझको स्पर्श न करैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दासुरोपाख्यानसमाप्तिर्नाम चतुःपञ्चाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशत्तमः सर्गः ५५.

कर्तव्यविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह प्रपंच है नहीं, ऐसे जानिकै सब पदार्थते निराग होहु, जो वस्तुही न होवै, तिसकी आस्था करनी क्या है, यह प्रपंच जो दृष्ट आता है, इसके भासने न भासनेविषे तुमको क्या है, तुम निर्विघ्न होइकरि आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, ऐसे जानो, जगत् है भी अरु नहीं भी इस निश्चय करि भी तुम असंग होहु, इस चल अचल दृष्टि आनेविषे तुमको क्या खेद है ? ॥ हे रामजी ! यह जगत् न आदि है, अनादि है, केवल श्वेतथका जो चित्तसंवित् मनरूप है,

तिसके फुरनेकरिकै इसप्रकार भासता है, वास्तवते कछु नहीं, यह जगत् किसी कर्ताने किया नहीं, न किसी अकर्ताने किया है, केवल आभासरूप है, आभासविषे कर्त्ता अकर्त्ता पदको प्राप्त भया है, अकृत्रिमरूप है, किसीका किया तौ नहीं, इसकेसाथ तुझको संबंध मत होवै, यह भावना हृदयविषे धार कि, है कछु नहीं, काहेते जो किसी कर्ताकरि हुआ नहीं, आत्मा सर्व इंद्रियोंते अतीत है, जडकी नाईं अकर्तारूप है, तिसको कर्त्ता कैसे कहिये ? यह कहना नहीं बनता, अकस्मात् यह जगज्जाल फुरि आया है, सो आभासरूप है, जो अकस्मात् उपजा तिसविषे आसक्त होना क्या है ? यह असद्भ्रांतिरूप है, इसविषे आस्था मूढ बालक करते हैं, बुद्धिमान् तौ नहीं करते, स्वरूपते जगत् कछु उपजा नहीं अरु नाश भी कछु नहीं होता, निरंतर दृष्टिमें आता है; अज्ञानकरि वारंवार भावना होती है, तौ भी जगत् कछु है नहीं, असत्रूप है, प्रत्यक्ष निरंतर नष्ट होता जाताहै, तुम विचार करके देखो, कि अवस्था स्थान कहां जाते हैं, अरु कहां गये हैं, ताते तुम सब इंद्रियोंते अतीत जो आत्मतत्त्व अकर्त्तारूप है, तिसविषे स्थित होइकर विगतज्वर होहु, वास्तवते जगत् कछु बना नहीं, आभाससत्ताविषे बना भासता है, तुम आभाससत्ताविषे नित्य दृढ होहु, जैसे हुआ हैं, तैसे है, भाव अभाव दुःख दिशा है, आदर्शरूपी आभासविषे दीर्घरूप दृश्य स्थित भया, सो जैसे हुआ है, तैसे है, विपर्यय नहीं होता॥ हे रामजी! दृश्य धर्मविषे अपराजित काल है, सो अनंत हैं, दृश्य पदार्थका कछु अंत नहीं, अरु जो आत्मविचारकरि देखिये तौ स्वप्नवत् है, कछु है नहीं, जो ...तुते ऐसे होवै, तिसविषे आस्था करिकै यत्न करना व्यर्थ है जगत्के पदार्थ नाशरूप हैं, इनविषे आस्था नहीं बनती काहेते कि, आत्मा सत् है, अरु जगत् असत् है, अन्योन्य विलक्षण स्वभाव हैं जड अरु चेतनका संयोग कछु नहीं बनता, जो जगत्के पदार्थ स्थिर मानिये तौ रहते नहीं, इस कारणते आस्था शोभा नहीं पाती, जैसे जलके तरंगका आश्रय लेकरि कोऊ पार हुआ चाहै तौ दुःख पाता है, तैसे जगत्के पदार्थका आश्रय कियेते दुःखी होता है, जगत्की आस्था

करनाही बंधन है जगत् नाशरूप है, तुम स्थिररूप हौ, ताते आस्था नहीं संभवती, कहूँ जलके तरंगका अरु पर्वतका संबंध भया है ! जो तुम जगत्को असत्य जाना, अरु आपको सत्य जाना तौ भी जगत्के पदार्थनकी वांछा नहीं बनती, काहेते कि सत्यको असत्यकी वांछा नहीं संभवती, अरु असत्यको असत्यविषे भावना करनी क्या है, अरु जो आप संयुक्त जगत् सत्य जानते हौ, तौ भी वांछा नहीं संभवती. काहेते कि, जो सत्य अद्वैत आत्मा है, तिसके समीप कछु द्वैत वस्तु नहीं, तुम तौ एक अद्वैत हौ, वांछा किसकी करते हौ, याते तुमको किसी पदार्थकी इच्छा अनिच्छा नहीं बनती, हेयोपादेयते रहित केवल स्वस्थ होइकारि अपने आपविषे स्थित होहु, कैसा आत्मतत्त्व है, जो सबका कर्ता है, अरु सर्वदा अकर्ता है, कदाचित् कछु किया नहीं, उदासीनकी नाईं स्थित है, जैसे दीपक सब पदार्थोंको प्रकाश करता है अरु किसकी इच्छाद्वारा अर्थकी सिद्धि करनेनिमित्त नहीं प्रवर्तता, स्वाभाविकही प्रकाशरूप है, तैसे आत्मतत्त्व सबका कर्ता है, तिसका कर्ता कोऊ नहीं, जैसे सूर्य सबकी क्रियाको सिद्ध करता है, अरु आप किसी क्रियाके आश्रय नहीं । काहेते जो आपही प्रकाशरूप है, चलता है, अरु कदाचित् चलायमान नहीं भया, अरु जो सूर्यका प्रतिबिंब चलता भासता है; सो प्रतिबिंबका चलना सूर्यविषे नहीं तैसे तुम्हारा स्वरूप आत्मा सदा अकर्ता अचल है, तिसविषे स्थित होहु, जेता कछु जगत् भासता है, तिसविषे विचरहु, परंतु भावनाकारिकै इसविषे बंधायमान मत होहु, यह असद्रूप है ॥ हे रामजी ! यद्यपि प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणकारि जगत् सत् भासता है, तौ भी है नहीं, स्वतः चित्त होइ कारि आपको विचार अरु आपविषे स्थित होहु, तब जगत् कछु न भासैगा जो प्रत्यक्ष बड़े तेज बल अरु वीर्यकारि संपन्न भासता है; अरु अंतर्धान हो गया, तौ सत्य कैसे कहिये; इस विचार करिकै भी तुमको जगत्की भावना नहीं बनती, जैसे चक्रपर आरूढ हुएते सब स्थान भ्रमते दृष्टि आते हैं, अथवा जैसे स्वप्ननगर भ्रमकरिकै भासता है; सो किसी कारण कार्य कारि नहीं होता, आभासरूप मनके फुरणेकारि उपजि आताहै, जैसे कोऊ

जीव अकस्मात् आय निकसता है, सो मित्राईका भागी नहीं होता, विचार कियेविना, बुद्धिमान् तिसविषे रुचि नहीं बांधते, वह सुहृद्ताका पात्र नहीं, तैसे भ्रमकरिकै जो जगत् भासा है, सो आस्थाकरिकै भावना बांधने योग्य नहीं, जैसे चन्द्रमाविषे उष्णता, अरु सूर्यविषे शीतलता, मृगतृष्णाकी नदीविषे जल, इनकी भावना करनी अयोग्य है, तैसे जगत्विषे सत्यभावना अयोग्य है, यह संकल्पपुर स्वप्ननगर द्वितीय चन्द्रमावत् असत्य है, भ्रमकरिकै सत्य भासता है ॥ हे रामजी ! अन्तरते भावपदार्थकी आस्था लक्ष्मीकी त्यागकर, अरु बाह्य लीला करते विचरहु, अन्तरते अकर्त्ता पदविषे स्थित होहु, अरु सब भावपदार्थविषे स्थित सबते अतीत होहु, आत्मा सब पदार्थविषे सर्वकाल स्थित है, अरु सबते अतीत है, तिसकी सत्ताकरिकै जगत् नीतिविषे स्थित है, जैसे दीपककरि सब पदार्थ प्रकाशवान् होते हैं, अरु दीपक इच्छाते रहित प्रकाशता है, तिस करि सबकी क्रिया सिद्ध होती है, अरु जैसे सूर्य आकाशविषे उदय होता है, अरु तिसके प्रकाशकरि जगत्का व्यवहार होता है, तैसे अनिच्छित आत्माकी प्रकाशसत्ताकरि सब जगत् प्रकाशता है, जैसे इच्छाते रहित रत्नका प्रकाश होता है, अरु स्थानविषे पसर जाता है, तैसे आत्मदेवकी सत्ताकरिकै जगत्गण प्रवर्त्तते हैं, ताते कर्त्ता है, सब इंद्रियोंके विषयते अतीत है, इस कारणते अकर्त्ता अभोक्ता है, अरु सब इंद्रियोंके अंतर्गत स्थित है, इस कारणते कर्त्ता भोक्ता वही है, इसप्रकार दोनों आत्माविषे बनते हैं, कर्त्ता भोक्ता भी संभवता है, अरु अकर्त्ता अभोक्ता भी सम्भवता है, जिसविषे तू अपना कल्याण जानै, तिसविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! इसप्रकार निश्चय करौ कि, सब मैंही हौं, अकर्त्ता अभोक्ता हौं ऐसी दृढ भावना करि जगत्का कार्यको करते भी कछु बन्धन न होवैगा, अरु सर्व आत्मा कर्तव्य भोक्तव्यते रहित है, इसप्रकार निश्चय कियेते भोगकी वासना निवृत्त हो जावैगी, तब चेतन भोगकी ओर बहुरि न आवैगा, जिसको यह निश्चय है कि, मैं कदाचित् कछु किया नहीं, सदा अक्रियरूप हौं, सो भोगके समूहकी कामना किसनिमित्त करैगा, अरु त्याग किसका करैगा, ताते तुम यही निश्चय धरहु कि, मैं नित्य अकर्त्तारूप

हौं, जब यह बुद्धि दृढ होवैगी, तब परम अमृतरूप जो समानसत्ता है, सो शेष रहैगी, अथवा यही निश्चय धरहु, कि सबका कर्त्ता मैंही हौं, मैं महाकर्त्ता हौं, सबके: अंतर स्थित होइकारि सब कार्य मैं करता हौं ॥ हे रामजी ! यह दोनों निश्चय तुझको कहे हैं, जिसविषे तेरी इच्छा होवै, तिसविषे स्थित होहु, जहां यह निश्चय होता है, कि सबका कर्त्ता मैं हौं, सब जगत् भ्रमभी मैं हौं, तब इन पदार्थनके भाव अभावविषे राग दोष न होवैगा, जो सब आपही भया, तौ राग दोष किसका करैगा, उसको यह निश्चय होता है, कि यह शरीर मेरा दग्ध होता है, वह शरीर सुगंधादिककारि लीला करता है, तिसको खेद अरु उल्लास किसका होवै, ताते तुझको जगत्के क्षोभ, उल्लास, उदय, अस्तविषे सुख दुःख मत होवै, सबका कर्त्ता मैं हौं तो खेद उल्लास भी मैं करता हौं, जब आत्मा अरु कर्तव्यकी एकता हुई तब खेद उल्लास सब आपही लय हो जाता है, सत्ता समान शेष रहता है, सोई सत्ताभाव पदार्थविषे अनुस्यूत होइकारि स्थित है, तिसविषे जब चित्तकी इच्छा स्थित होती है, तब बहुरि दुःखको नहीं प्राप्त होता ॥ हे रामजी ! सबका कर्त्ता आपको जान; कि कर्त्ता पुरुष मैं हौं, अकर्त्ता जान; कि मैं कछु नहीं करता, अथवा दोनों निश्चय त्यागिकारि निःसंकल्प निर्मन होहु, तब जो तेरा स्वरूप है, सोई सत्ता शेष रहैगी, अरु यह जगत् है, यह मैं हौं, यह मेरा है, इस कुत्सित भावनाको त्याग करहु, इस अभिमानविषे स्थित नहीं होना, इस देहविषे अहंकार कालसूत्र नामकारिके नरककी प्राप्तिका कारण है, नरकका जाल है, शस्त्रकी वर्षा होती है, तिन दुःखनते अधिक दुःखस्थान देह अभिमान हैं, अर्थ यह कि अंत दुःखदायक है, ताते पुरुष प्रयत्नकारिके इसका त्याग करौ, यह सबके नाशविषे स्थित है, भावी कल्याण जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, सो इसको स्पर्श नहीं करते, जैसे चंडाली होवै, अरु तिसकी गोदविषे श्वानका मांस होवै, तिसते श्रेष्ठ पुरुष संग नहीं करते, तैसे देहाभिमानके साथ स्पर्श नहीं करना, यह महानीच है, यह अहंकाररूपी बादल नेत्रके आगे पटल आयाहै, तिसकारि आत्मा नहीं भासता, जब विचारकारि तिस पटलको दूर करैंगे

तब आत्मसत्ता प्रकाश उदय होवैगा, जैसे मेघघटाके दूर हुएते चंद्रमा प्रकाश आता है, तैसे अहंकारके अभावते आत्मा प्रकाशता है, जब तू इन निश्चयविषे कोई निश्चय धरैगा, तब सब दुःखनते रहित शांतपदको प्राप्त होवैगा, यह निर्णय सबते उत्तम है, इस निश्चयविषे उत्तम पुरुष सदा स्थित है, अब तुम भी विधि अथवा निषेध दोनोंविषे कोई निश्चय धारहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे कर्तव्यविचारो नाम पंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पंचाशत्तमः सर्गः ५६.

पूर्णस्वरूपवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! जेते कछु तुमने सुंदर वचन कहे हैं, सो सत्य हैं, अकर्तारूप, आत्मा, कर्ता, अभोक्ता, सबका भोक्ता, भूतको धारनेहारा, सबका आश्रयभूत अरु सर्वगत, व्यापक, चिन्मात्र निर्मलपद अनुभवरूप देव सर्व भूतके अंतर स्थित है ॥ हे प्रभो ! ऐसा जो ब्रह्मतत्त्व है, सो मेरे हृदयविषे रम्य हुआ है, तुम्हारे वचनकरि प्रकाशने लगा है, तुम्हारे वचन शीतल शांतरूप तप्तताको मिटाते हैं, जैसे वर्षाकरि पृथ्वी शीतल होती है, तैसे मेरा हृदय शीतल भया है, आत्मा उदासीनकी नाईं अनिच्छित स्थित है, कर्तव्य भोक्तव्यते रहित अरु सब जगत्को प्रकाशताहै, सब क्रिया तिसकरि सिद्ध होती हैं, इस कारणते कर्ता भी वह है, अरु भोक्ता भी वही है, परंतु कछुक संशय मुझको है सो हृदयविषे विस्तारको प्राप्त भया है, तिसको अपनी वाणीकरि छेदहु, जैसे चंद्रमाका प्रकाश तमको नाश करता है, तैसे संशय दूर करहु, कि यह सत्य है, यह असत्य है; यह मैं हौं वह और है, इत्यादिक द्वैतकल्पना एक अद्वैत विस्तृत शांतरूपविषे कहांते स्थित भई है, निर्मलविषे मल कैसे हुआ है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस तेरे प्रश्नका उत्तर मैं सिद्धांत कालविषे कहौंगा, अथवा तू आपही जानि लेवैगा, मोक्ष उपाय जो यह शास्त्र है, तिसका सिद्धांत जब भली प्रकार तेरे हृदयविषे स्थित होवैगा, तब तू इसप्रश्नका पात्र होवैगा, अनर्थ योग्य न होवैगा तिस अवस्थाते अन्यथा नहीं होता

हे रामजी ! सुंदरस्त्रियोंकी सुंदरवाणीसों गीत होताहै, तिसके अधिकारी कामी जीव यौवनवान् पुरुष होते हैं, तैसे तू सिद्धांत अवस्थाविषे मेरे वचनका अधिकारी होवैगा, जैसे रागमयी कथा बालकके आगे कहनी व्यर्थ होती है, तैसे बोधसमयविना उदार कथा कहनी व्यर्थ होती है, जैसे शरत्कालविषे पत्रसंयुक्त वृक्ष शोभता है, अरु वसंतऋतुविषे पुष्पकरि शोभता है तैसेही जैसी अवस्था पुरुषकी होती है, तैसा उपदेश कहना शोभता है, किसी समय कैसा किसी समय कैसा शोभता है, अरु उपदेश भी तब दृढ लगता है, जब बुद्धि शुद्ध होती है, मलिन बुद्धिविषे दृढ नहीं लगता, जैसे निर्मल वस्त्रकेऊपर केशरका रंग शीघ्रही चढि जाता है मलिन वस्त्रके ऊपर नहीं चढता, तैसे प्राप्तरूप जो आत्मा है, तिसका विज्ञान उपदेश सिद्धांत अवस्थावालेको लगता है; जिसको बोधसत्ता प्राप्त भई है, अरु तेरे प्रश्नका उत्तर मैंने संक्षेपमात्र कहा भी है, विस्तार करि नहीं कहा, जो तू नहीं जानता, तौ भी प्रत्यक्ष है, जब तू आपकरि आपको प्राप्त होवैगा, तब आपही इस प्रश्नके उत्तरको जानि लेवैगा, इसविषे संदेह कछु नहीं, जब सिद्धांतकालविषे बोधको प्राप्त होइकरि स्थित होवैगा, तब मैं भी इस स्वप्नका उत्तर विस्तारकरि कहूंगा जब आपकरि अपना आप निर्मल करैगा, तब अपने आपको जानि लेवैगा ॥ हे रामजी! जो कर्ता अरु कर्मका विचार मैंने तुझको कहा है, तिसको विचारिकरि वासनाका त्याग करहु, जबलग संसारकी वासना इस हृदयविषे होती है, तबलग बंधमान है, जब वासना छेद होती है, तब मुक्ति होती है, ताते तू वासनाका त्याग करहु, अरु मोक्षअर्थ जो वासना है, तिसका भी त्याग करहु, तब सुखी होवैगा, इस क्रम करिकै वासनाको त्याग प्रथम शास्त्रविरुद्ध तामसी वासनाका त्याग करहु, बहुरि विषयकी वासनाका त्याग करहु, अरु मैत्री करुणा मुदिता उपेक्षा इस निर्मल वासनाको अंगीकार करहु, मैत्री अर्थ यह कि सबविषे ब्रह्मभावकरि द्रोह किसीका नहीं करना, लक्ष्मीवान्‌के साथ मित्रभाव होवै, अरु दुःखीपर दया करनी, यह करुणा कहिये, अरु धर्मात्मा पुरुषको देखिकै प्रसन्न होना, इसका नाम

मुदिता है, पापीको देखिके उदासीन रहना, निंदा न करनी, इसका नाम उपेक्षा है, इन चारों प्रकारकी वासनाकरि संपन्न होना, अरु अंतरते इनका भी त्याग करना, हृदयविषे इनका अभिमान भी न होवै, अरु बाह्य इनका व्यवहार होवै, बहुरि अंतरते दृश्यमें गुणकी वासना त्यागिकरि चिन्मात्र वासना रखनी; पीछे इनको भी मनबुद्धिके साथ मिश्रित जान त्याग करना, तब जिसकरि वासना त्यागी है, सो शेष रहैगा तिसको भी त्याग करना ॥ हे रामजी! चिन्मात्रतत्त्वते कल्पना करिकै देह इंद्रियां प्राण अरु तम प्रकाशवासनादिक भ्रममात्र भासि आये हैं, जब मूलसंयुक्त इनको त्याग करैगा, मूल कहिये अहंकारसंयुक्त, तब आकाशवत् सम स्वच्छ होवैगा, इसप्रकार सबको त्यागिकरि पाछे जो तेरा स्वरूप है, सो तू होहु, जो हृदयसों इसप्रकार त्यागिकरि स्थित होता है, सो पुरुष मुक्तिरूप परमेश्वर होता है, समाधिविषे रहै, अथवा न कर्म करै, अथवा करै जिसके हृदयते सब अर्थकी आस्था नष्ट भई है, सो मुक्तहै, अरु उत्तम उदारचित्त है तिस पुरुषको करने न करनेविषे कछु लाभ हानि नहीं होती, न समाधि करनेविषे अर्थ है, न तपकारि अर्थ है, काहेते कि, मन तिसका वासनाते रहित भया है ॥ हे रामजी! मैं चिरकालपर्यंत अनेक शास्त्र विचारे हैं, अरु उत्तम पुरुषोंके साथ चर्चा करी है, परस्पर यह निश्चय किया है कि, भलीप्रकार वासनाका त्याग करना, ताते उत्तम मौन है, इसविना उत्तम पद पानेयोग्य कोऊ नहीं, जो कछु देखने योग्य है, सो मैंने सब देखा है, अरु दशोंदिशा भ्रमा हौं, तामें कितनेक जन यथार्थदर्शी दृष्टि आये हैं, अरु कितनेक हेयोपादेयसंयुक्त मुझको दृष्टि आए हैं, यही यत्न करते हैं, इनते इतर कछु नहीं करते, किसीको ग्रहणकी, और किसीको त्यागकी इच्छा होती है, नानाप्रकार क्रियाके आरंभसों सब देहके अर्थ करते हैं, आत्माके अर्थ कछु नहीं करते, पाताल स्वर्ग ब्रह्मलोक आदि सब लोक देखे हैं, तिनविषे केतेक संत मुझको दृष्टि आए हैं, जिनने देखने योग्य आत्मतत्त्वपद देख्या है; और ग्रहण त्याग सब असत्य भ्रांतिकरि उठे हैं, यह निश्चय जिनका गलित भया है ऐसे ज्ञानवान् कोई विरले हैं, सब ब्रह्मांडका राज्य करै, अग्निविषे प्रवेश

करै, जलविषे प्रवेश करै, ऐसे ऐश्वर्य शक्तिकारि संपन्न भी होवै तौ भी आत्मलाभविना जीवको शांति नहीं प्राप्त होती, बडे बुद्धिमान् संतभी वहाँ हैं, जिनने अपनी इंद्रियांरूपी शत्रु जीते हैं, सोई शूरमे हैं, तिनको जरा जन्म मृत्युका अभाव है, वह पुरुष उपासना करने योग्य हैं ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान्को किसी दृश्य पदार्थविषे प्रीति नहीं होती, काहेते जो पृथ्वी आदिक पंचभूतकी सब ठौर पाते हैं, त्रिलोकविषे इनते इतर और पदार्थ कोऊ नहीं तौ प्रीति किसविध होवै ? युक्तिकरिकै ज्ञानवान् संसारसमुद्रको गोपदवत् करिकै तरि जाते हैं, अरु जिनने युक्तिका त्याग किया है, तिनको सप्तसमुद्रकी नाईं संसार हो जाता है, अरु जो पुरुष उदारचित्त हैं, तिनको यह संपूर्ण जगत् कदंबवृक्षके गोलवत् हो जाता है, तिसविषे वह त्याग किसका करैं अरु भोग किसका करैं? हेयोपादेयते रहित पुरुषको जगत् तुच्छ जैसा भासता है, इस कारणते जगत्के पदार्थनिमित्त यत्न नहीं करता, अरु जो दुर्बुद्धि जीव होते हैं; सो तुच्छ ब्रह्मांडरूप पृथ्वीपर युद्ध करते हैं, अनेक जीवकी घात करते हैं, ममताविषे बंधमान हैं, अरु यह जगत् कैसा है, संकल्पमात्रविषे नष्ट हो जात है, अरु क्षणक्षणविषे आस्थाकारि यत्न करना बडी मूढता है, सब जगत् आत्माके एक अंशकारि कल्पित है, इसकी उपमा तृणसमान भी नहीं. इसप्रकार तुच्छरूप त्रिलोकी जगत्को जानिकारि आत्मवेत्ता किसी पदार्थके हर्षशोकविषे बंधमान नहीं होते, ग्रहण अरु त्यागते रहित हैं, सदाशिवके लोक आदि पातालपर्यंत जल रस देह जो राजस सात्त्विक तामसकारि संयुक्त जेते कछु जगत्के पदार्थ हैं सो ज्ञानवान्को प्रसन्न नहीं कर सकते, उसकी इच्छा किसीविषे नहीं होती; एक अद्वितीयात्मभावको प्राप्त भयाहै, आकाशवत् व्यापकबुद्धि होता है, अपने आपविषे स्थित है, चित्त दृश्यते रहित अचेतन चिन्मात्र है, शरीररूप जाल है, सोई भयानक कुहिड तिसकारि जगत्रूप कोटर धूसर हो रहा है, सो तिस पुरुषका शांत हो जाता है, द्वितीय वस्तुका अभाव भया है, ब्रह्मरूपी बड़ा समुद्र है, तिसविषे झगके बोयेवत् कुलाचलपर्वत है, चेतनरूपी सूर्य है, तिसविषे मृगतृष्णाकी नदीरूप जगत्की

लक्ष्मीहै, अरु ब्रह्मरूपी समुद्रविषे जगत्‌रूपी तरंग उठते अरु लय होतेहैं, ऐसे जाननेहारा जो ज्ञानवान् है, तिसको यह जगत् आनंददायक कैसे होवै ? सूर्य चंद्रमा अग्नि जो तुझको प्रकाशरूप भासते हैं, सो भी घट काष्ठ आदिकवत् जड़रूपहैं, जिसकरि यह प्रकाशतेहैं, सो सबको सिद्ध करती आत्मसत्ता है, और कोऊ नहीं, देह जो रुधिर मांस अस्थिकरि बनी है, इंद्रियांसंयुक्त वेष्टितहै, तिस देह जगत्‌रूप डब्बेविषे चेतनजीव-रूप रत्न है, तिसकरि विराजता है, चेतना जड मुग्धरूप है ॥ हे रामजी ! यह जो स्त्रीका देह भासता है, सो चर्मकी पुतली बनी है; तिसको देखिकै मूढ बालक प्रसन्न होता है, जो बुद्धिमान् है, सो प्रसन्न नहीं होते, इसप्रकार ज्ञानवान्‌को विषयभोग प्रसन्न नहीं करते, जैसे वायुके चलनेकारि पर्वत चलायमान नहीं होते तैसे ज्ञानवान् संसारके पदार्थकारि प्रसन्न नहीं होते, ज्ञानवान् तिस उत्तम पदविषे विराजते हैं, जिसकी अपेक्षाकारि चन्द्रमा सूर्य पातालविषे भासते हैं. अर्थ यह कि, इनका बड़ा प्रकाश भी तुच्छ जैसा भासता है, परम उत्तम पदविषे ज्ञान-वान् विराजता है, अरु यह संसार मूढ जीव संसारी समुद्रविषे सर्पकी नाईं बहे जाते हैं, जैसे हमको भासते हैं, तैसे कहते हैं, इस जगत्‌विषे ऐसा भाव पदार्थ कोऊ नहीं, जो ज्ञानवान्‌को रागकारि रंजित करै; जैसे नगरका राजा होवै, तिसके ग्रहविषे महासुंदर विचित्ररूप रानियां होवैं, तिसको ग्रामकी मूढ नीच स्त्रियां प्रसन्न नहीं कर सकती, तैसे यह जग-त्‌के भाव पदार्थ तत्त्ववेत्ताके हृदयविषे प्रवेश नहीं कर सकते, जैसे आकाशविषे मेघ बादर रहते हैं, परंतु आकाशको स्पर्श नहीं कर सकते जैसे सदाशिव महासुंदर गौरीका नृत्य देखनेहारा है, अरु गौरीसंयुक्त है, तिसको वानरीका नृत्य हर्षदायक नहीं होता तैसे ज्ञानवान्‌को जगत्‌के पदार्थ हर्षदायक नहीं होते, जैसे जलकारि पूर्ण कुंभविषे रत्नका प्रतिबिंब होवै, तिसको देखिकै बुद्धिमान्‌का चित्त ग्रहण नहीं करता, तैसे ज्ञानवा-न्‌का चित्त जगत्‌के पदार्थ नहीं चाहता, यह संसारचक्र बडा विस्ताररूप भासता है, सो असत्यरूप है तिसको देखिकै ज्ञानवान् कैसे इच्छा करै, यह तौ चंद्रमा, प्रतिबिंबवत् है, शरीर भी असत्य है, इसकी इच्छा मूढ

करते हैं, जैसे सेवालको मच्छर भोजन करतेहैं, राजहंस नहीं करते तैसे संसारके विषयकी इच्छा अज्ञानी करतेहैं, ज्ञानी नहीं करते॥इति श्रीयोगवा० स्थितिप्रकरणे पूर्णस्वरूपवर्णनं नाम षट्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५६॥

सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ५७.

कचगाथावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! यह सिद्धांत जो परम उचित वस्तु है, तिसकी गाथा बृहस्पतिका पुत्र जो कच है, तिसने गाई थी, सो परम पावनरूप है॥ एक कालमें सुमेरु पर्वतके किसी गहन स्थानविषे देवगुरुका पुत्र कच जाय स्थित भया, अभ्यासके वशते कदाचित् उसको आत्मतत्त्वविषे विश्रांति भई, अरु अंतःकरण उसका सम्यक् ज्ञानरूपी अमृतकारि पूर्ण भया, अरु पांचभौतिक जो मलिन दृश्यहै, तिसते विरक्त भया, ब्रह्मभावविषे अस्फुर होईकारि रमता भया, निराभास आत्मतत्त्वते इतर कछु नहीं, एक अद्वैत भासै, ऐसे देखता हुआ, गद्गद वाणीसों बोलत भया, मैं क्या करौं, अरु कहां जाऊं, क्या ग्रहण करौं, किसका त्याग करौं, सब विश्व एक आत्मपूर्ण हो रहा है, जैसे महाकल्पविषे सब ओरते जल पूर्ण हो रहा है, तैसे दुःख भी आत्मा है, सुख भी आत्मा है, आकाश दशों दिशा अहं त्वं आदि सब जगत् आत्माही है, बडा कष्ट है, जो अपना आपविषे नष्ट हुआ बंधमान था, देहके अंतर भी आत्मा है, बाहर भी आत्मा है, अध ऊर्ध्व इत उत सब आत्मा है, आत्माते इतर कछु नहीं, सब ओरते एक आत्माही स्थित है, अरु सबही आत्माविषे स्थित है, यह सब मैं हौं, अपने आपविषे स्थित हौं, अपने आपविषे मैं नहीं समाता. अर्थ यह कि, आदि अंतते रहित अनंत आत्मा हौं, अग्नि मैं हौं, वायु मैं हौं, आकाश जल पृथ्वी मैं हौं, जो पदार्थ मैं नहीं सो है नहीं, जो कछु है, सो सब विस्तृतरूप मैंही हौं, एक पूर्ण परम आकाश भैरव हौं अर्थ यह कि भर रहा हौं, सब जगत् भी ज्ञानरूप है, समुद्रवत् एक पूर्ण स्थित है, सो कल्याणमूर्ति इसप्रकार भावना

करता हुआ, स्वर्णके पर्वतके कुंजविषे कच स्थित भया तिसके अनंतर ॐकारका उच्चार बडे स्वरसों करने लगा, अरु ॐकारकी जो अर्धकला है, जिसको अर्धमात्रा कहते हैं, सो फूलते भी कोमल है, बहुरि तिसविषे स्थित होत भया, सो अर्धमात्रा कैसी है, न अंतःस्थित है, न बाह्य है, हृदयविषे भावना करता हुआ तिसविषे स्थित भया, कलनारूपी जो मल था, तिसते रहित निर्मल भया, चित्तकी वृत्ति निरंतर लीन हो गई जैसे मेघके नष्ट भयेते शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे कलंकित कलनाके दूर हुएते निर्मल भया, जैसे पर्वतकी पुतली अचलरूप होती है तैसे कच समाधिविषे स्थित अचल भया॥इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे कचगाथावर्णनं नाम सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ५७॥

अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ५८.

कमलजाव्यवहारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥हे रामजी! अंगनाके शरीरादिक जो भोग पदार्थ हैं, सो इनते इतर तौ जगत्‌विषे सुख कछु नहीं अरु ज्ञानवान्‌को यह पदार्थ तुच्छ भासते हैं, इनविषे आस्था नहीं करते, बहुरि इच्छा किस पदार्थकी करैं, इन भोग ऐश्वर्य पदार्थकारि मूढ असाधु तोष पाते हैं, जो ज्ञानवान् साधु हैं, सो इनविषे प्रीति नहीं करते जो कृपण अज्ञानी हैं, तिनको भोगही सरस हैं, अरु भोग कैसे हैं, आपातरमणीय आदि अंत मध्यविषे दुःखरूप हैं, जो पुरुष इनविषे आस्था करते हैं, सो गर्दभ नीच पशु हैं. हे रामजी ! स्त्री कैसी है, रक्त मांस अरु अस्थि आदिकारि पूर्ण है जो इसको पायकारि तोषित होते हैं सो गीदड़ हैं मनुष्य नहीं अरु जो ज्ञानवान् हैं सो किसी जगत्‌के पदार्थविषे प्रीति नहीं करते, पृथ्वी सर्व मृत्तिकारूप है, वृक्ष सर्व काष्ठरूप हैं, देह सर्व मांसरूप हैं, पर्वत सर्व पाषाणरूप हैं, पाताल अध है, आकाश ऊर्ध्व है; सो दिशाकारि व्यापा है, सर्व विश्व पांचभौतिकरूप है, इसविषे तौ अपूर्व सुख कोऊ नहीं, जिसविषे ज्ञानवान् प्रीति करते हैं, इंद्रियके जो पंच विषय हैं, सो मोहके देनेहारे हैं, विवेकमार्गके रोकनेहारे हैं, जेती कछु जगज्जालकी

संपूर्ण विभूति हैं, बडे ऐश्वर्य पदार्थ, सो सब दुःखरूप हैं, प्रथम इनका प्रकाश भासता है, पाछे कलंकको प्राप्त करते हैं, जैसे दीपक प्रथम प्रकाशको दिखाता है, बहुरि काजल कलंकको देता है, तैसे इंद्रियोंके विषय आगमापायी हैं, इनकरि शांति प्राप्त नहीं होती, अज्ञानीको स्त्रियां आदिक पदार्थ रमणीय भासते हैं, ज्ञानवान्की वृत्ति इनकी ओर नहीं फुरती, अज्ञानीको स्थिररूप भासता है, अरु स्वाद देते हैं, तुष्ट करते हैं, ज्ञानवान्को असत्य अरु चलरूप भासता है, तुष्टताका कारण नहीं होते, विषयभोग कैसे हैं, विषकी नाईं हैं, यह स्मरण मात्रते भी विषवत् मूर्च्छा करते हैं, सत्यविचार भूलि जाता है, ताते इनको त्यागिकरि अपने स्वभावविषे स्थित होहु, अरु ज्ञानवान्की नाईं विचरहु ॥ हे रामजी ! जब इस जीवको अनात्मविषे आत्माभिमान होता है, तब असंगरूप जगज्जाल भी सत्य हो भासता है, ब्रह्माको भी वासनाके वशते कल्पदेहका संयोग होता है, जैसे स्वर्णका प्रतिबिंब जलविषे पड़ता है, अरु तिसकी झलक कंध ऊपर पडतीहै सो कंधसे स्वर्णका संयोग कछु नहीं, तैसे ब्रह्माका संयोग देहकेसाथ वास्तव कछु नहीं, कल्पनामात्र देह है ॥ राम उवाच ॥ हे महामते ! विरंचीके पदको प्राप्त होइकरि बहुरि यह सघनरूप जगत् कैसे रचते हैं, सो क्रमकरिके कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब प्रथम कमलज जो ब्रह्मा उत्पन्न भया है, तब जैसे बालक गर्भते उपजता है, तैसे उपजिकरि वारंवार इस शब्दका उच्चारण किया कि, ब्रह्म ब्रह्म इस कारणते तिसको ब्रह्मा कहते हैं, बहुरि संकल्पजाल है रूप जिसका, ऐसा कल्पित आकार मन हो आया, तिस मनते आगे संकल्प लक्ष्मी पसारी, प्रथम संकल्पते जो माया उपजती है, वह तेज अग्निके चक्रवत् फुरने लगी, तिसते बड़ा आकार हो गया, ज्वालाकी नाईं स्वर्णलतारूप बडी जटाकरि संयुक्त प्रकाशको धारे, शरीर मनसंयुक्त सूर्यरूप होइकरि स्थित भया, अपने समान आकार बड़े प्रकाशसंयुक्त कल्पता भया, ज्वालाका मंडल आकाशके मध्य स्थित भया, अग्निरूप अग्निही अंग हैं जिसके ॥ हे महाबुद्धिमान् रामजी ! इसप्रकार तौ ब्रह्मते सूर्य भयाहै, अरु अपर जो तेजकिरण फुरती हैं, सो

आकाशविषे तारागण बिंबपर आरूढ फिरते हैं, बहुरि ज्यों ज्यों वह संकल्प करता गया, त्यों त्यों तत्काल भी आगे सिद्ध होइकरि भासने लगा, इसी प्रकार आगे जगत्को रचता भया, जिस प्रकार इस सृष्टिविषे ब्रह्मा रचता है, तिसीप्रकार अपर सृष्टिविषे रचते हैं, प्रथम प्रजापतिको रचता है; बहुरि कालकलना नक्षत्र तारागण रचे, बहुरि देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, गंधर्व, यक्ष, नदियां, समुद्र, पर्वत, सर्व इसी प्रकार कल्पता भया; जैसे समुद्रविषे तरंग कल्पित होते हैं; तैसे सिद्ध रचे, तिनके कर्म रचे, सो भी शुभ संकल्परूप जैसा वह संकल्प करै, सोई सिद्ध होकरि भासने लगे, प्रजापतिने संकल्पकरि सिद्ध उत्पन्न किये, तिनते आगे और बहुरि उत्पन्न किये, इसी प्रकार बहुरि भूत तारागण आगे और उत्पन्न किये, तिनने और उत्पन्न किये, तब ब्रह्माजी वेदको उत्पन्न करता भया; जीवके नाम आचार कर्म वृत्ति पुण्य क्रिया सब जगत्की मर्यादाकरि, नीतिरूप स्त्रीको रचता भया सो जगत्रूपी ग्रहकी मर्यादा है, इसनिमित्त उत्पन्न किया सो इसप्रकार ब्रह्माकी माया ब्रह्मारूपकरि बडे शरीरको धर रही है, आगे सृष्टिका विस्तार है; लोक अरु लोकपालके क्रम कियेहैं, सुमेरु पृथ्वीके मध्य दशों दिशा रचे, सुख मृत्यु राग द्वेष प्रगट किये, इसप्रकार संपूर्ण जगत् त्रिगुणरूप, ब्रह्माजी रचता भया, जैसे जैसे उसने सब रचे हैं, तैसेही स्थित भये हैं, अरु है क्या, जो कछु संपूर्ण दृश्य भासता है, सो सब मायामात्र है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जगत्का क्रम हुआ है, सो संकल्परूप संसार बडा स्थित होइकरि अज्ञानकरि भासता है, यह तौ संकल्पकरि रचा है, संकल्पके वशते जगत्की क्रिया पसरती है, अरु संकल्पवशते दैवनीति होइकरि स्थित भया है, सर्व जगत् ब्रह्माते संकल्पविषे स्थित है, जब तिसका संकल्प निर्वाण होता है, तब जगत् भी लय हो जाता है, एक समय ब्रह्माजी पद्मासनको धारि बैठे थे, अरु चिंतवत भये कि, यह जगज्जाल मनके संकल्प फुरणेमात्र है, मनके फुरणेकरि उपजि आता है, बड़ा विस्ताररूप नानाप्रकारके व्यवहार विकारसंयुक्त इंद्र, उपेंद्र, मनुष्य, दैत्य, समुद्र, पर्वत, पाताल, पृथ्वीते लेकरि जगज्जाल सर्व मायामात्र हैं; बड़ा पसारि रहा है, अब मैं इसते

निवृत्त होऊं ॥ हे रामजी ! इसप्रकार चिंतनाकारि ब्रह्माजी संकल्प अनर्थरूपते उपरत भया, आदि अंत रहित जो अनादि मत परब्रह्म स्फार आत्मारूप है, तिस आत्मा तत्त्वविषे मनको लय करता भया, आनंदरूप आत्मा होकारि अपने आपविषे स्थित भया, निर्मल निरहंकार परमतत्त्वको प्राप्त भया, जैसे कोऊ व्यवहारते थका हुआ विश्राम करता है, तैसे अपने आपकारि आत्मतत्त्वविषे स्थित भया, जैसे अक्षोभ समुद्र होता है, तैसे अक्षोभ भया ध्यानविषे जुडि गया, बहुरि ध्यानते जागा; जैसे द्रवताकारिकै समुद्रते तरंग फुरि आवैं, तैसे चित्तके वशते ब्रह्माजी फुरनरूप हो आया, तब जगत्को देखिकै चिंतवत भया, कैसे संसार है, दुःखसुखकारि संयुक्त अनन्त फांसीकारि बन्धमान है, रागद्वेष भय मोहसों दूषित है, ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जीवको देखिके ब्रह्माजीको दया उपजी दयाकारिकै अध्यात्मज्ञानकारि संपन्न वेद उपनिषद् वेदांतको प्रगट करता भया, बडे अर्थसंयुक्त नानाप्रकारके शास्त्र रचे, बहुरि पुराण रचे, सब जीवके मुक्तिनिमित्त, तिनको रचिकारि परमपद जो आपदाते रहित है, तिसविषे स्थित भया जैसे मन्दराचल पर्वतके निकसते क्षीरसमुद्र शांत होता है, तैसे शांतरूप होइकारि स्थित भया, बहुरि उसी प्रकार जाग जगत्को देखि मर्यादाविषे जोडा, बहुरि कमलपीठविषे स्थित होकारि आत्मतत्त्वके ध्यान परायण भया इसीप्रकार जो कछु अपने शरीरकी मर्यादा ब्रह्माजीने करी है, तिसीप्रकार नीतिके संस्कार पर्यंत क्रीडा करते हैं, कुलालके चक्रवत् नीतिके अनुसार विचरता है, जैसे ताडना अरु वासनाते रहित चक्र फिरता है, तैसे जन्म कारणते रहित है, तिसको शरीरके रखने अरु त्यागनेविषे कछु इच्छा नहीं, न कछु जगत्की स्थिति अस्थितिविषे इच्छा है, किसी इस पदार्थको ग्रहण त्यागकी भावनाविषे आसक्त नहीं, सर्व पदार्थविषे समबुद्धि परिपूर्ण समुद्रवत् स्थित है, कबहूँ सब संकल्पते रहित शांतरूप हो रहता है, कबहूं अपनी इच्छाकारि जगत्को रचता है; परन्तु उसको जगत्के रचनेविषे कछु भेद नहीं, सर्व पदार्थकी अवस्थाविषे तुल्यता है ॥ हे रामजी ! यह मैंने तुझको ब्रह्माकी स्थिति कही है, यह परम दशा अपर भी किसी देव-

ताको उपजे तौ तिसको समता जानिये, वह शुद्ध सात्त्विकरूप है, सृष्टिके आदि जो शुद्ध ब्रह्मतत्त्वविषे चित्तकला फुरी है, सो फुरनारूप मनका ब्रह्मारूप होइकारि स्थित भई है, जब बहुरि जगत्के स्थिति-क्रमविषे कलना उत्पन्न होती है, तब वही ब्रह्मारूप आकाश पवनको आश्रय लेकरि औषधि पत्रविषे आय प्रवेश करता है, कहूं देवताभावको प्राप्त होता है, कहूं मनुष्यभावको प्राप्त होता है, कहूं पशु पक्षी तिर्यक् आदिकको प्राप्त होता है, चन्द्रमाकी किरणोंद्वारा अन्नादिक औषधीविषे प्राप्त होता है, जैसे भावको लेकरि चित्तकला फुरती है, तैसा भाव शीघ्रही उत्पन्न हो आता है, कईउपजिकरि संसर्ग संसारके वशते तिसीजन्मके बंधनते मुक्त होजाते हैं, अपने स्वरूपका चमत्कार होता है, कई अनेक जन्मकारि मुक्त होते हैं, कई थोडे जन्मकारि मुक्त होते हैं ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जगत्का क्रम है, प्रत्यक्ष संकट कर्म बंधमोक्षरूप उपजते हैं, कई मिटि जाते हैं, इसप्रकार संसार बंधमोक्षकारि पूर्ण है, जब यह कलनामल नष्ट होता है, तब संसारते मुक्त होता है, जबलग कलनामल होता है, तबलग संसार भासता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे कमलजाव्यवहारो नाम अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९.

विचारपुरुषनिर्णयः ।

वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे महाबाहो रामजी ! इसप्रकार ब्रह्माजी निर्मल पदविषे स्थित होइकारि सर्ग विस्तारता भया, जो संसाररूपी कूप है, तिसविषे जीव भ्रमते हैं, जीवरूपी टीड तृष्णारूपी जेवरीसाथ बांधे हुए कबहूं अधको जाते हैं, कबहूं ऊर्ध्वको जाते हैं, जब वासनारूपी जेवरी टूट पड़ती है, तब ब्रह्मतत्त्वसों उठे सो बहुरि ब्रह्मतत्त्वसाथ एकत्र हो जाते हैं; ब्रह्मसत्ताते जीव उपजते बहुरि ब्रह्मसत्ताविषे लय होते हैं, जैसे समुद्रते मेघजल कणके धूम्रद्वारा उपजते हैं, बहुरि वर्षाकारि तिसीविषे प्रवेश करते हैं, तैसे जब तन्मात्रा मंडलकेसाथ चित्तकला मिलती

है, तब तिसकेसाथ जीव एकरूप हो जाते हैं, जैसे मंदार वृक्षके पुष्पकी सुगंधि वायुसंग मिश्रित एकरूप हो जाती है,तैसे चित्तकला जीव तन्मात्रासों मिलिकारि प्राणनामको पाती है, इसप्रकार प्राणवायुते आदि तन्मात्रा जीवकलाको खैंचने लगता है, जैसे वडे प्रचंड दैत्यके समूह देवताको खैंचै, तैसे खैंचा हुआ जीव तन्मात्रासाथ एकरूप हो जाता है, जैसे गन्ध अरु वायु तन्मय होता है,वह प्राण तन्मात्रा जीवके शरीरविषे वीर्यस्थानमें जाय प्राप्त होता है, तब जगत्विषे उपजिकारि प्राण प्रत्यक्ष होते हैं, और कई धूम्रमार्गकारि देहवान्के शरीरविषे प्रवेश करते हैं, मेघविषे प्रवेश कर बुंद मार्गसों औषधीविषे रसरूप होइकारि जाय स्थित होते हैं, तिसको भोजन करनेहारेके अंतर वीर्यरूप होइकारि स्थित होते हैं, कई और प्राणवायुद्वारा प्रगट होते हैं, वह चर स्थावररूप होते हैं, कई पवनमार्गकारि धान्यक्षेत्रविषे चावलरूप स्थित होते हैं, तिसको जीव भोजन करते हैं, तिसकारि वीर्यविषे प्राप्त होते हैं, नानाप्रकारके रंगभेदकारि प्राणधर्म उपजते हैं,कई उपजने मात्रते जीवकी परंपरा तन्मात्राकारि वेष्टित आकाशविषे जाय स्थित होते हैं, जबलग चन्द्रमा उदय नहीं भया, जब चन्द्रमा उदय होता है, तब उसका रस जो किरणें शीतल अरु श्वेत क्षीर समुद्रवत् तिनविषे जाय प्राप्त होते हैं, तिनके अंतर्गत होकारि पत्र औषधिविषे स्थित होतेहैं, जैसे कमलपर भँवरे स्थित आय होतेहैं, तैसे औषधिविषे जायकारि जीव स्थित होते हैं; फलविषे स्वादरूप होइकारि स्थित हो जाते हैं, जैसे घुन रसकारि पूर्ण होता है, तैसे जीवकारि औषधि फल पूर्ण हो जाते हैं,जैसे दूधकारि स्तन पूर्ण होते हैं; तैसे जीवकारि फल पूर्ण होते हैं, तब वह फल परिपक्व होते हैं, तिनको देहधारी भक्षण करते हैं, तिसविषे जीव वीर्यरूप जडात्मकरूप होइकारि स्थित होते हैं, सो सुषुप्ति वासनाकारि वेष्टित हुए गर्भ पिंजरविषे जाय पड़ते हैं ॥ हे रामजी ! वीर्यविषे सदा जीव रहते हैं, जैसे मृत्तिकाविषे सदा घटादिक रहते हैं, काष्ठविषे सदा अग्नि रहता है; दूधविषे घृत रहताहै, तैसे वीर्यविषे जीव रहते हैं, इसप्रकार परमात्मा महेशरूपते जीवकी परंपरा उपजती है, वायुमार्गकारि, धूम्रमार्गकारि, मेघमार्गकारि, औषधि

मार्गकारि, प्राणमार्गकारि, चंद्रमाकी किरणोंके मार्गकारि, इत्यादिक अनेक प्रकारकारि जीव उपजते हैं; जो उपजनेकरिकै आत्मसत्तासों अप्रमादी रहते हैं, अपना स्वरूप विस्मरण नहीं होता, सो शुद्ध सात्त्विकी हैं, महा-उदार व्यवहारवान् होते हैं अरु जिनको उपजनेकारि विस्मरण हो जाता है, बहुरि उसी शरीरविषे आत्माका साक्षात्कार होता है, सो सात्त्विकी-रूप हैं, अरु जो उपजिकारि नानाप्रकारके व्यवहारको प्राप्त होते हैं, अरु स्वरूप विस्मरण हो जाता है; जन्मकी परंपरा पायकारि स्वरूपका साक्षात्कार होता है, सो राजस सात्त्विकी कहातेहैं, अरु जिनको अंतका जन्म आय रहता है, तिनको जिसप्रकार मोक्ष होना है, सो क्रम अब तुझको कहता हौं, जो सहज सत्ता सात्त्विकभावको प्राप्त होतेहैं, अरु मोक्ष होतेहैं॥ हे रामजी! उपजनेमात्रते जो अप्रमादी हुए सो शुद्ध सात्त्विकी हैं, वह ब्रह्मादिक है, अरु जो प्रथम जन्मकारि बोधवान् हुए सो सात्त्विकी हैं अरु दुलभ हैं, अरु जो कबहूँ किसी जन्मकारि मोक्ष हुए हैं, सो राजस सात्त्विकी हैं, इनते इतर हैं, सो नानाप्रकारके मूक जड़ अनेक हैं, तम-संयुक्त स्थावरादिक हैं, जिनको आत्मपद प्राप्त भया है, तिनको जो मिलते हैं, तिनको अंतका जन्म है, ऐसे पुरुष विचारते हैं, कि मैं कौन हौं, यह जगत् क्या है, इस विचारके क्रमकारि मोक्षभागी होता है, सो राजसते सात्त्विकी होते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे विचार-पुरुषनिर्णयो नाम एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः ६०.

मोक्षविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! राजसते सात्त्विकी हुए हैं, सो पृथ्वीपर महागुणकारि शोभायमान होते हैं, सदा उदितरूप रहते हैं, जैसे आकाशविषे चंद्रमा रहता है, तैसे वे पुरुष खेदको नहीं प्राप्त होतेहैं, जैसे आकाशको मलिनता स्पर्श नहीं करती, तैसे उनको आपदा स्पर्श नहीं करती-जैसे रात्रिके आयेते स्वर्णके कमल मूँदे नहीं जाते, जो कछु प्रकृत

आचार हैं, तिसके अनुसार चेष्टा करतेहैं, और प्रकार नहीं करते, जैसे सूर्य अपने आचारविषे विचरता है, और आचार नहीं करता, तैसे वह सत्यमार्गविषे विचरते हैं, अंतरते पूर्ण शांतरूप हैं, आपदाकरि भी नहीं त्यागते, जैसे चंद्रमाकी कला क्षीण होती है, तौ भी अपनी शीतलताको नहीं त्यागती, तैसे ज्ञानवान् आपदाके प्राप्त हुएते भी मलिनताको प्राप्त नहीं होते सर्वदा काल मैत्री आदिक गुणकरि संपन्न रहते हैं, सदा तिनकरि शोभते हैं; समतारूप जो समरस हैं, तिसकरि पूर्ण शांतरूप हैं निरंतर स्वशुद्ध समुद्रवत् अपनी मर्यादाविषे स्थित रहते हैं ॥ हे रामजी ! तुम भी महापुरुषके मार्ग सदा चलहु, जो मार्ग परम पावन आपदाते रहित सात्त्विकी है, तिसके अनुसार चलौ तब आपदाके समुद्रविषे न डूबौगे, जैसे वे खेदते रहित जगत्‌विषे विचरते हैं, तैसे विचरौ, जिस क्रमकरि राजसते सात्त्विकी मोक्षभागी होता है, सो सुनो प्रथम आर्जवपदको प्राप्त होना. अर्थ यह कि, यथाशास्त्र सत् व्यवहार करना तिसकरि अंतःकरण शुद्ध होता है तिस आर्यपदको पायकरि, संतसाथ मिलना अरु वारंवार सच्छास्त्रको विचारना, अरु जो संसारके अनित्य पदार्थ हैं तिनविषे प्रीति न करनी, विरक्तता उपजानी, तिनते निरिच्छ होना अरु जो पदार्थके उपजे विनशने त्रिलोकीविषे सत्यरूप है वारंवार तिसकी भावना करनी, अपर भावना शीघ्रही मिथ्या जानिकरि त्यागनी, जो कछु दृश्य जगत् भासता है, सो असम्यक्‌दृष्टि है, निष्फल नाशरूप व्यर्थ जानिकरि तिसकी भावना त्यागनी, अरु सम्यक् ज्ञानको स्मरण करना; संतजन अरु सच्छास्त्र जो ज्ञानके सहायक हैं, तिनके संग मिलिके विचार करना कि, मैं कवन हौं, जगत् क्या है, भली प्रकार प्रयत्नकरि विवेकसंयुक्त सदा अध्यात्मशास्त्रका विचार करना; सत्य व्यवहार सात्त्विकी कर्म करने; अवज्ञा करिकै मृत्युको विस्मरण न करना, जो मृत्यु विस्मरणकरि संसार कार्यविषे लग जाता है, सो डूबता है, ताते स्मरण करिकै सन्मार्गविषे लगना, जिस पदविषे ज्ञानी पुरुष महाउदार शीतलचित्त स्थितहैं, तिस पदके मार्ग अरु दर्शनविषे सदा इच्छा रखनी जैसे मोरको मेघकी इच्छा रहती है ॥ हे रामजी ! अहंकार जो देहविषे

स्थित है, यह देह संसारविषे उपजी है, तिनको भली प्रकार विचार करिकै नाश करो यह देह संसार रुधिर मांस मज्जा आदिककी बनीहुई है; जेते कछु भूतजाति हैं, सो सब चेतनरूपी तागेविषे जैसे मोती परोये होवैं, तैसे हैं, तिन भूतको त्यागिकरि चिन्मात्र तत्त्वको देखौ, चेतन-सत्ता सत्य है, नित्य विस्तृतरूप है, शुद्ध है, सर्वगत सर्वभाव तिसविषे हैं, सो त्रिलोकीका भूषण आश्रयभूत है, जो चेतन आकाशमें सूर्यविषे है, सोई चेतन पृथ्वीके छिद्रमें कीट है, तिसविषे है, जैसे घटाकाश अरु महाकाशविषे भेद कछु नहीं, तैसे शरीरमें चेतनविषे भेद कछु नहीं, जैसे बहुत मिरचा हैं, तिनविषे तीक्ष्णता एकही है, तैसे सर्व भूतविषे चेतनता एक अनुस्यूत है, अनुभवकरि जानता , स एक चिन्मात्रविषे भिन्नता कहांते होवै, एक सत्य सत्ता जो निरंतर चिन्मात्र वस्तुरूप है तिसविषे जन्म मरण आदिक अज्ञानकरि भासता है, वास्तवते न कोऊ उपजा है, न मरता है, एक आत्मतत्त्व सदा ज्योंका त्यों स्थित है, जगत्-विकार तिसविषे आभासमात्र हैं, न सत्य है, न असत्य है, चित्तके फुरनेकरि भासता है, चित्तके शांत हुएते शांत हो जाता है, जो जगत्को सत्य मानिये तौ अनादि हुआ इसकरि भी शोक किसीका नहीं बनता, अरु जो जगत् असत्य मानिये तौ भी शोकका स्थान नहीं बनता, तातै दृढ विचार करिकै स्थित होहु, शोकको त्यागौ तुमको न जन्म है, न मरण है, आकाशवत् निर्मल शम शांतरूप होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे मोक्षविचारो नाम षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमः सर्गः ६१.

मोक्षोपायवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जो धैर्यवान् पुरुष बुद्धिमान् है, सो सच्छास्त्रको विचारै अरु संतजनका संग करै, तिनके आचारको ग्रहण करै, जो जो दुःखके नाशकर्त्ता श्रेष्ठ ज्ञानदृष्टि हैं, तिनको यत्न करिकै अंगीकार करै, तब इसको भी सज्जनता आय प्राप्त होवैगी, संतजन जो विरक्त

आत्मा हैं, तिनसों मिलिकारि सच्छास्त्रको विचारैं, तब परमपदको प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी ! जो पुरुष सच्छास्त्रके विचारनेहारा है, अरु संतजनका संग वैराग्याभ्यास आदरसंयुक्त करता है, सो तुम्हारी नाईं विज्ञानका पात्र है, तुम तौ उदारआत्मा हौ, धैर्यवान्के जो गुण शुभ आचार हैं, तिनके समुद्र हौ, निर्दुःख होइकारि स्थित होहु, अब राजस सात्त्विकी भये हौ, मननशील भये हौ, बहुरि ऐसे दग्धरूप संसारविषे दुःखके पात्र न होवोगे; यह तुम्हारा अंतका जन्म है, जो अपने स्वभावकी ओर धावते हौ, अंतर्मुख यत्न करते हौ, निर्मल दृष्टि तुमको प्रगट भई है, यथाभूत जगत् वस्तुको जानते भये हौ; जैसे सूर्यके प्रकाशकारि यथार्थ वस्तुका ज्ञान होता है, अब मेरे वचनकी पंक्तिकारि सर्व मल दूर हो जावैगा, जैसे अग्निविषे धातुका मल जलि जाता है, तैसे तुम्हारा मल जलि जावैगा, निर्मलताकारि शोभायमान होवैगा, जैसे मेघके नष्ट भएते शरत्कालका आकाश शोभता है, तैसे संसारकी भावनाते मुक्त होइकारि चिंताते रहित निर्मल भावकारि शोभौगे, अहं मम आदिक कल्पनाते मुक्त भये हैं, इसविषे संशय कछु नहीं ॥ हे रामजी ! तेरा जो यह अनुभव उत्तम व्यवहार है, तिसके अनुसार विचरैगा तौ तू अशोकपदको प्राप्त होवैगा; अरु अपर कोऊ इस व्यवहारविषे वर्त्तैगा, सो भी संसारसमुद्रको अनुभवरूपी बेड़ेकारि तारि जावैगा, तुम्हारे तुल्य जिसकी मति होवैगी, सो समदर्शी जन ज्ञानदृष्टि योग्य है; जैसे सर्व कांतिमान् सुंदरताका पात्र पूर्णमासीका चंद्रमा होता है; अरु तुम तौ अशोकदशाको प्राप्त भये हौ यथाप्राप्तविषे वर्त्तते हौ; जबलग रागदोषते रहित स्थितबुद्धि रहौ, यथाशास्त्र जो उचित आचार है, सो बाह्यते करौ, अरु अंतरते सब कल्पनाते रहित शीतलचित्त होहु, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शीतल होता है ॥ हे रामजी ! इन सात्त्विक अरु राजस सात्त्विकते जो इतर जीव हैं तामसी, तिनका विचार यहां नहीं करना, वह मूढ गीदड़ हैं, मद्यादिकके खानेहारे हैं, तिनके विचारके साथ क्या प्रयोजन है, जो मैं तुझको सात्त्विकी जन कहे हैं, तिनके सेवनेकारि बुद्धि अंतके जन्मवती होती है; अरु जो तामसी तिनको सेवै तौ उनकी बुद्धि भी उदार हो-

जाती है, अरु जिस जिस जातिविषे जीव उपजता है, तिस जातिके गुणकरि शीघ्रही संयुक्त हो जाता है, पूर्व जो कोऊ भाव होता है, सो जातिके वशते वहां जाता रहता है, अरु जिस जातिविषे वह जन्मता है, तिस जातिके गुणको जीतनेका पुरुषार्थ करता है, तब यत्नकरि पूर्वके स्वभावको जीति लेता है, जैसे धैर्यवान् शूरमा शत्रुको जीति लेता है; जो इसका पूर्व संस्कार मलिन है तौ धैर्यकरिकै मलिन बुद्धिका उद्धार करे; जैसे मुग्ध पशु गर्तविषे फँसि जावै, अरु तिसको काढ़ि लेवै, तैसे बुद्धिको मलिन संस्कारते काढि लेवै॥ हे रामजी! जो तामस राजसी जाति हैं तिनको भी जन्म अरु कर्मके संस्कारवशते सात्त्विक प्राप्त होता है, अरु वे भी अपने विचारद्वारा सात्त्विक जातिको प्राप्त होते हैं; इस पुरुषके अंतर अनुभवरूपी चिंतामणि है, तिसविषे जो कछु निवेदन करता है, सोई रूप इसका हो जाता है, ताते पुरुषार्थ करिकै अपना उद्धार करहु, पुरुषप्रयत्नकरि यह पुरुष बडे गुणकरि संपन्न होता है, अरु मोक्षको प्राप्त होता है, अंतका जन्म होता है, आगे जन्म नहीं पाता; अशुभ जातिके कर्म निवृत्त हो जाते हैं, ऐसा पदार्थ पृथ्वी आकाश देवलोकविषे कोई नहीं, जो यथाशास्त्र प्रयत्नकरि न पाइये सो अवश्य पाता है॥ हे रामजी! तुम तौ बडे गुणकरि संपन्न हौ, धैर्यता अरु उत्तम वैराग्य दृढ बुद्धिसंयुक्त हौ, अरु तिसके पानेको धर्मबुद्धिकरि वीतशोकरूप हौ; तुम्हारे क्रमको जो कोऊ जीव ग्रहण करैगा सो मूढताते रहित होइकरि अशोकपदको प्राप्त होवैगा; अब तुम्हारा अंतका जन्म है, बडे विवेककरि संयुक्त हौ, बुद्धिविषे शांतिके गुण आनि पसरे हैं, तिनकरि तुम शोभते हौ, सात्त्विक गुण क्रमकरि सर्वविषे रम रहे हौ, संसारकी बुद्धि मोह चिंता तुझको मिथ्या है, तुम अपने स्वस्थ स्वरूपविषे स्थित होहु॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे चतुर्थे स्थितिप्रकरणे मोक्षोपायवर्णनं नाम एकषष्टितमः सर्गः॥६१॥

इति

योगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणं समाप्तम् ।
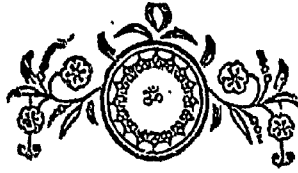
परमात्मने नमः ।

अथ श्रीयोगवासिष्ठे

पञ्चमसुपशमप्रकरणं प्रारभ्यते ।
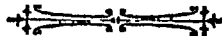
तत्र प्रथमः सर्गः १.

पूर्वदिनवर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच ॥ हे साधो ! अब स्थितिप्रकरणके अनंतर उपशम-प्रकरण कहता हौं; जिसके जाननेते निर्वाणताको प्राप्त होवोगे. जब इस प्रकार वसिष्ठजीने वचन कहे, तब सब सभा शोभित भई, जैसे शरत्कालके आकाशमें तारागण शोभते हैं, अरु वसिष्ठजीके वचन कैसे हैं, जो परमानंदके कारण हैं, ऐसे पावन वचन श्रवण करिकै अर्थ धरिकै मौन हो गये, जैसे कमलकी पंक्ति कमलकी खानिविषे स्थित होवै, तैसे सभाके लोक अरु राजा स्थित भये, अरु स्त्रियां जो झरोखेविषे बैठीथीं, सो तिनके महाविलासकी चंचलता शांत होगई, अरु घटीयंत्रोंके शब्द जो गृहविषे होते थे, सो भी शांत हो गये, शीशपर चमर करनेवाले भी मूर्तिवत् अचल होगये, राजाते आदि लेकरि जो लोग थे, सो कथाके सन्मुख भए. कैसी कथा है, विज्ञानवाली है, सर्वही तिसके विचारविषे मग्न हो गए; रामजी बडे विकासको प्राप्त भए, जैसे प्रातःकालविषे, कमल विकासमान होता है, तैसे तमको त्यागते भये, प्रकाश आनि उदय भया, जैसे सूर्यके उदय हुवते प्रकाश आनि उदय होता है, अरु वसिष्ठजीकी कही जो वाणी थी, तिसकरि राजा दशरथ बहुत प्रसन्नताको प्राप्त भये, जैसे मेघकी वर्षाकरि मोर प्रसन्नताको प्राप्त होताहै, तैसे गद्गद होगए, सर्वके जो मनरूपी चंचल वानर थे, सो विष-

यभोगते रहित स्थित भए, मंत्री श्रवण करिकै स्थित हो रहे, अपने स्वरूपको जानत भए, जैसे चंद्रमाकी कला प्रकाशती है, तैसे आत्मकला प्रकाशती भई, लक्ष्मण अपने लक्ष्यस्वरूपको देखता भया, तीव्र बुद्धिकरिकै वसिष्ठजीके उपदेशको जानता भया, अरु शत्रुघ्न जो शत्रुको दलनहारा था, तिसका चित्त अति आनंदकरि पूर्ण भया, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा स्थित होता है, तैसे मंत्रियोंके हृदयविषे मित्रता होती भई, मन शीतल हो गया, हृदय प्रफुल्लित होता भया, जैसे सूर्यके उदय हुएते कमल तत्काल विकासमान होता है, अरु और जो मुनि राजा ब्राह्मण स्थित थे, तिनके चित्तरूपी जो रत्न थे, सो स्वच्छ निर्मल हो गए, तब मध्याह्नकालका समय हुआ, तब वाजित्र बजने लगे, बड़े २ शब्द हुए, जैसे प्रलयकालविषे मेघके शब्द होते हैं, तैसे भेरीके शब्द होने लगे, तिनके बड़े शब्दकरि मुनीश्वरोंका शब्द आच्छादित भया, जैसे मेघके शब्दकरि कोकिलाका शब्द छिप जाता है, तब वसिष्ठजी तूष्णीं हो गए, एक मुहूर्त्तपर्यंत शब्द होत रहा, बहुरि तूष्णीं भये, जब घनशब्द शांत हुआ, तब मुनीश्वर रामजीप्रति कहत भया ॥ हे रामजी ! जो कछु मुझे आज कहना था, सो कह रहा हौं, बहुरि कल कहौंगा, तब सर्व सभाके लोक अपने स्थानको गए, तब वसिष्ठजीने राजाते लेकरि रामजी आदिको कहा, तुम भी अपने गृहको जावो, तब सर्वने चरणवंदना नमस्कार करे; अपर जो नभचारी, वनचारी, जलचारी थे, सो सबको बिदा किये, सब अपनेअपने स्थानोंको गये, ब्राह्मणकी सुंदर वाणीको विचारत भए, और अपने अधिकारकी दिनकी क्रियाको करत भए ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे पूर्वदिनवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २.

उपदेशानुसारवर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच ॥ हे भरद्वाज ! इसप्रकार अपने २ स्थानोंको जायके बड़े २ शूरमें राजपुत्र महासुंदर चंद्रमाकी नाईं जिनकी कांति है,

सो अपने२ स्थानोंविषे यथा उचित क्रियाको करत भए; वसिष्ठ, राजा राघव, मुनि, ब्राह्मण जो थे, सो अपने२ स्थानविषे स्नान आदिक, क्रियाको करत भए; तालविषे जो कमल थे, कुमुदिनी उत्पल आदिक थे, तहां स्नान करत भए; गौ, स्वर्ण, अन्न, पृथ्वी, वस्त्र, भोजन, आदिक पानपात्र ब्राह्मणोंको यथायोग्य देते भए; स्वर्ण रत्नोंकारि जडे हुए जो स्थान थे, तिनविषे आइकारि राजा देवताका पूजन करते भए, किसीने विष्णुका, किसीने सदाशिवका, किसीने अग्निका, किसीने सूर्यआदिका पूजन किया, पूजन करिकै पुत्र पौत्र सुहृद् मित्र बांधवसंयुक्त भोजनकरते भए, नाना प्रकारके महा उचित भोजनकिए, दिनका अर्ध पौर आयरहा, तब अपने संबंधियों संयुक्त और क्रिया करत भए, जब सांझकालमें सूर्य अस्त भया, तब सायंकालकी बिधि करत भए; अघमर्षण गायत्री आदिक जाप करत भए; पाठ श्रौत अरु पुनरपि मनोहर कथा मुनीश्वरोंकी कही सुनी । तिसते उपरांत रात्रि भई, तब परिचा-रिका जो स्त्रियां हैं, सो रामजी आदिकोंकी शय्या बिछावत भईं; तिसकेऊपर बिराजित भए, रामजी विना सर्वोंको रात्रि एक मुहूर्त व्यतीत भई, अरु रामजी स्थित होइकारि वसिष्ठजीके वचनकी जो पंक्ति थी, तिसको विचारत भए, कैसे वचन हैं, जो मधुर अरु उचितरूप हैं, तिनको कैसे चिंतवत भए, जैसे हस्तीका बालक किसी वनके स्थानमेंते कछु भोजन समेटि लेवै, अरु आयके तिसका स्मरण करै, तैसे विचारत भये, संसार है नाम जिसका, इसविषे भ्रमणेका पात्र कौन है, ? अरु नानाप्रकारके जो भूतजात हैं, सो कहांते आते हैं, अरु कहां जाते हैं ? अरु मनका स्वरूप क्या है, शांति कैसे होती है, यह माया कहांते उठीहै, अरु कैसे निवृत्त होतीहै, निवृत्त हुए विशेपता क्या होती है, अरु नष्टता किसकी होती है, अनंतरूप जो आत्मा विस्तृत है, सो तिसविषे अहंकार होना कैसेहै, अरुमनके क्षय होनेविषे मुनीश्वरने क्या कहा है, अरु इंद्रियोंके जीतनेविषे क्या कहाहै, आत्माके पानेविषे क्या युक्ति वसिष्ठजीने कही है, जीव, चित्त, अरु माया सबही एकरूप हैं; विस्ताररूप संसार इननेही रचा है, सो असतरूप है, तिनहूंने संपूर्ण

संसार बांधि छोडा है; तिसकरि जीव पड़े दुःख पाते हैं, जैसे तंदुएने हस्तीको बांधा था, अरु वह कष्ट पाताथा, तैसे जीव कष्ट पाते हैं, तिस दुःखके नाश करनेनिमित्त कौन औषध है, अरु भोगरूपीजो मेघमाला हैं, तिसविषे मोहित हुई मेरी बुद्धि गलित हो गई है, तिसको मैं किसप्रकार भिन्न करौं? यहतो भोगके साथ तन्मय हो गई है, जैसे जल अरु दूधको हंस भिन्न करता है, अरु मुझको भोगोंके त्यागनेकी समर्थता भी नहीं, भोगोंके त्यागनेविना बड़ी आपदा है, अरु तिसके संहारनेको भी समर्थ नहीं, बडा आश्चर्य है, हमको बडा कष्टप्राप्त भया है, आत्मपदकी प्राप्ति मनके जीतनेकारि होती है, वेदशास्त्रके कहनेका प्रयोजन भी यही है, अरुगुरुके वचनकारिकै भ्रम नष्ट हो जाताहै, जैसे बालकको परछाईंविषे वैताल भासता है, तिस भ्रमको जैसे बुद्धिमान् दूर करता है, तैसे मनरूपी भ्रमको गुरु दूर करतेहैं, वह कौनसमय होवैगा? कि, मैं शांतिको प्राप्त होऊगा, अरु संसारभ्रम नष्ट हो जावैगा, जैसे यौवनवान् स्त्री भर्तारको पायके सुखसों विश्राम करती है, तैसे मेरी बुद्धि आत्माको पायकै कब विश्रामवान् होवैगी, अरु नानाप्रकार संसारके आरंभ कब मेरे शांत होवैंगे, कब मैं आदि अंतते रहित पदविषेविश्रांतिवान् होऊंगा, मन मेरा कब पावनरूप होवैगा, मैं पूर्णमासीके चंद्रमावत् संपूर्ण कलाकरि सम्पन्न कब होऊंगा, स्वच्छ शीतल प्रकाशरूप पदविषे कब स्थित होऊंगा, अरु कब जगत्को देखिकै हँसौंगा, कब मलिन कलनाको त्यागिकै आत्मपदविषे स्थित होऊगा, कब मैं मनको संकल्पविकल्पते रहित शांतरूप देखौंगा, जैसे तरंगते रहित नदी शांतरूप देखती हैं, तृष्णारूपी तरंगकारि व्याकुल जो संसारसमुद्र है, सो माया जलकारि पूर्ण है, अरु रागदोषरूपी मच्छसंयुक्त है, तिसको त्यागिकै मैं वीतज्वर कब होऊंगा, उपशम सिद्ध पदको मैं कब पावौंगा, जो पद बुद्धिमानोंने मूढताको त्यागिकै पाया है, अरु मैं कब निर्दोष समदर्शी होऊंगा, अज्ञानरूपी ताप मेरा कब नाश होवैगा, जिसकारि संपूर्ण अंग मेरे पडे तपतेहैं; सब धातु क्षोभरूप हो गईहैं, तिसकारि बड़ा दीर्घ ज्वर हुआ है; ताते कब मेरा चित्त शांतिवान् होवैगा, जैसे वायुविना

दीपक शांत होता है,वैसा कब भ्रमको त्यागिके प्रकाशवान् होऊंगा,अरु मैं कब लीलाकारि इंद्रियोंके दुःखको तरि जाऊंगा,दुर्गंधरूप देहते मैं कब न्यारा होऊंगा, अहं त्वं आदिक मिथ्या भ्रम उठा है,तिसको नाशरूप मैं कब देखौंगा, जैसे शरत्कालविषे मेघ नष्ट होताहै, अरु जिस पदके आगे इंद्रादिकोंका सुख ऐश्वर्य मंदार आदिक वृक्षोंकी सुगंधि अरु नानाप्रकारके भोगजात सो तृणवत् भासतेहैं, सोआत्मसुख हमको कब प्राप्तहोवैगा! वीतराग मुनीश्वरने हमको निर्मलदृष्टि ज्ञानकी कही है, तिसको पायके मन विश्रामवान् होता है, अरु यहसंसार तौ दुःखरूप है ॥ हे मन! तू किस पदको पायके विश्रामवान् भया है,माता पिता पुत्रादिक जो संबंधी हैं, तिनका पात्र मैं बहुरि नहीं होता, इनका पात्र भोगी होता है; हे बुद्धि! तू मेरी भगिनी है,तौ मेरा शीघ्रही अर्थ भ्रातृवत् पूर्ण कर, जो तुम हम दोनों दुःखते मुक्त होवैं, मुनीश्वरके वचनोंको विचारिके हमारी आपदा नाश होवैगी, अरु परमपदको प्राप्त होवेंगे तुझको शांति होवैगी॥ हे मेरी बुद्धि! तू ज्योंका त्यों स्मरण कर कि वसिष्ठजीने क्या कहा है, प्रथम तो वैराग्य कहाहै, तिसके अनंतर मोक्षव्यवहार कहा है, बहुरि उत्पत्तिप्रकरण कहा है कि, संसारकी उत्पत्ति इसक्रमकारि हुई है,बहुरि स्थितिप्रकरण कहाहै, कि ईश्वरकारि जगत्कीस्थिति है, तिसका नानाप्रकारके दृष्टांतोंकारि निरूपण किया है, अरु जेते प्रकरण कहे हैं, सो ज्ञानविज्ञान संयुक्त हैं॥ हे बुद्धि! जिसप्रकार वसिष्ठजीने कहा है,तैसे तू स्मरणकरकि; अनेकवारविचार कर जो बुद्धिविषे निश्चयनहोवै तौवहकिया भी निष्फल होवै जैसे शरत्कालका मेघ बडा घन भी दृष्ट आता है,परंतु वर्षाते रहित-निष्फल होताहै,जैसे बुद्धिविषे अनुसन्धानते रहित किया विचार,निष्फल होता है, जो बुद्धिविषे अनुसन्धान करिये सो विचार, सफल होताहै॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे उपदेशानुसारवर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः॥ २॥

तृतीयः सर्गः ३.

सभास्थानवर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच ॥ हे भारद्वाज ! जब इसप्रकार वडे उदारआत्मा रामजी चित्तसंयुक्त रात्रिको व्यतीत करत भए, जैसे सूर्यकी कक्षा कमलते रात्रि बितावत है, तैसे रामजी वितावते भए; कछु तमसंयुक्त तारागण आनि रहे, अरु दिशा भासने लगी, अरु प्रातःकालके नगारे नोवत बाजने लगे, तब रामजी उठे, जैसे कमलोंकी खानिते कमल उठै, तैसे रामजी उठिकारि भ्रांतिसंयुक्त प्रातःकालके संध्यादिक कर्म करत भए, बहुरि कछु कमनुष्यसंयुक्त वसिष्ठजीकेआश्रममें आये, वसिष्ठजी एकांत समाधि विषे स्थित थे, आत्मपरायण आत्माविषे एकाग्रभूत है, चित्त जिनका ऐसे वसिष्ठमुनिको दूरते देखि, रामजी नमस्कारसहित चरणवंदना करत भए, प्रणामकारि वसिष्ठजीके सन्मुख हस्त बांधिकै ठाडे भए, जब दिशाका तम नष्ट भया, तब राजा अरु राजपुत्र, ऋषि, ब्राह्मण, सब वसिष्ठजीके आश्रमविषे आवत भए, जैसे ब्रह्मलोकविषे देवता आवैं तैसे ॥ तब वसिष्ठजीका आश्रम जनोंकारि पूर्ण हो गया, हस्ती घोड़े रथ प्यादा चार प्रकारकी सेना राजा इनकारि स्थान शोभित भया, तब तत्काल वसिष्ठजी समाधिते उतरे, सर्वलोक प्रणाम करत भए, तब तिन सबनको प्रणाम, आचारपूर्वक यथायोग्य ग्रहण करत भये, बहुरि उठें, विश्वामित्रको संगलेकारि सबसों आगे हो चले, बाहर निकसकारि रथपर आरूढ भये, जैसे कमलज ब्रह्मा पद्मविषे बैठें, तैसे रथपर बैठिकारि दशरथके गृहको चले, अरु बडी सेनासंग वेष्टित है, जैसे ब्रह्माजी देवतोंसे वेष्टित इंद्रपुरीको आते हैं, तैसे वसिष्ठजी दशरथके गृह आवत भए, जो विस्तृत रमणीय सभा थी, तिसविषे प्रवेश करत भए जैसे हंसवेष्टित राजहंस कमलोंविषे जाइ प्रवेश करै, तब राजा दशरथ जो बडे सिंहासनपर बैठे थे, सो तिसते उठिकारि आगे आय, चरणवंदना कारि नम्रभूत होइकारि चरण चूंबे अरु वसिष्ठजी सर्वके अग्र होइकारि शोभते भए, वसिष्ठजीते आदि लेकारि मुनि ऋषि ब्राह्मण आए, अरु दशरथते लेकारि राजा, सर्व मंत्री, बंदीगण, रामजीते

आदि लेकरि राजपुत्र, मंडलेश्वर, जगत्के अधिष्ठाता अरु मालव आदिक सर्व भृत्य टहलुए आए, सब अपने यथायोग्य आसनपर बैठि गए, सबकी दृष्टि वसिष्ठजीके ओर भई, बंदीजन जो भाट हैं, सो स्तुति करतेथे, सर्व लोक शब्द करतेथे, सो बोलनेते रहित हो गए, तब सूर्य उदय हुआ, किरणोंने झुककरि झरोखेके मार्गांतर प्रवेशकिया, तब कमल खिलि आए, पुष्पकरि स्थान पूर्ण हो गए, तिनकी महासुगंधि पसरी, अरु झरोंकेविषे स्त्रियां आय स्थित भईं, अरु सो अपनी चंचलताको त्यागिकरि मौन हो बैठीं, चमर करनेहारी मौन होइकरि शीशपर चमर करतभईं, अरु वसिष्ठजीकी जो महासुंदर वाणी कोमल मधुर है, तिसको स्मरण करि आपसमें आश्चर्यवान् होवैं, तब दिशाते पर आकाशते राजर्षि आए, सिद्ध विद्याधर अरु मुनि आए, वसिष्ठजीको प्रणाम करत भए, अरु गंभीरतासों मुखते बोले नहीं, अरु प्रणाम करिकै यथायोग्य आसनपर बैठगए, पुष्पकी सुगंधि चली, अगरचंदनादिकी धूप जलाईगई, सभाविषे बड़ी सुगंधि पसर रही, भँवरे शब्द करतेफिरैं कमलोंको देखि प्रसन्न होवैं, रत्नमणि भूषण जो राजाने अरु राजपुत्रोंने पहरे हैं, तिसपर सूर्यकी किरणैं पडैं, ताते बडा प्रकाश चंदोराविषे करैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सभास्थानवर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४.

राघवप्रश्नवर्णनम्।

वाल्मीकिरुवाच ॥ मेघ जैसे बड़े गंभीर वचन बोधसहित सुंदर पद हैं जिनविषे, ऐसे प्रमाणवचन राजा दशरथ मुनिनविषे श्रेष्ठ वसिष्ठजीको कहत भया ॥ दशरथ उवाच ॥ हे भगवन्! कलका जो दिन व्यतीत भया है, तिसविषे तुमने हमको कहा था, तिसके श्रमते रहित हो ? क्यों तुम्हारा शरीर तप्ततांकरि अतिकृश जैसा हो गया है, इसनिमित्त तुमसे कहते हैं ॥ हे मुनीश्वर! तुमने आनंदवचन जो कहे हैं, सो प्रगटरूप हैं,

तुम्हारे वचनरूपी अमृतकी वर्षाहै, तिसकरि हम आनंदवान भए हैं, तुम्हारे निर्मल वचनकरि हमारे हृदयका तम दूर भया है, शीतलचित्त भये हैं, जैसे चंद्रमाकी किरणोंकरि तम अरु तप्तता दोनों निवृत्त होते हैं, तैसे तुम्हारे वचनोंकरि हम अज्ञानरूपी तम अरु तप्ततातें रहित भये हैं, तुम्हारे वचन अमृतवत् अपूर्व रस आनंद देते हैं, ज्यों ज्यों ग्रहण करिये, त्यों त्यों विशेष रस आनंद आता है, शोकरूपी तप्तताको दूर करनेहारे हैं, अमृतकी वर्षारूप हैं, अरु आत्मारूपी रत्न है, तिसको दिखानेहारे परमार्थरूप दीपक है; ऐसे आनंदको देनेहारे तुम्हारे वचन हैं; सो संतजनरूपी वृक्षकी यह बेलि है, दुरिच्छा अरु दुष्ट आचरण नानाप्रकारके जो नीच हैं, तिसके नाश करनेहारे वचन हैं, जैसे तमको दूर करनेको अरु शीतलता करनेको शांतरूप चंद्रमा है, तैसे संतजनरूपी चंद्रमा है, तिनके वचनरूपी किरणोंकरि अज्ञानरूपी तप्तता नाश होती है ॥ हे मुनीश्वर! तृष्णा अरु लोभादिक जो विकार हैं, सो तुम्हारी वाणीकरि नष्ट हो गये हैं, जैसे शरत्कालका पवन मेघको नष्ट करता है, तैसे तुम्हारे वचनकरि हम निष्पाप भए हैं, आत्मदर्शनके निमित्त प्रवर्त्तते हैं, अरु तुमने हमको परम अंजन दिया है, तिसकरि हम सचक्षु भए हैं, जैसे जन्मका अंधा सचक्षु होके नेत्रकरिकै पदार्थोंको देखै, तैसे हम सचक्षु हुए हैं; अरु संसाररूपी कुहिड निवृत्त हुई है, जैसे शरत्कालविषे कुहिड नष्ट हो जाती है, अरु जैसे कल्पवृक्षकी लता अरु अमृतका स्नान आनद देता है, तैसे उदारबुद्धिकी वाणी आनंददायक होती है ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ ऐसे वसिष्ठजीको कहकरि रामजीकी ओर मुख करते भए, अरु कहा ॥ दशरथ उवाच ॥ हे राघव ! जो जो काल संतोंकी संगतिकरि व्यतीत होता है, सो सो दिन, सो सो काल, सफल होता है, अरु जो जो दिन सत्संगविना व्यतीत होता है, सो वृथा होता है ॥ हे कमलनयन रामजी! बहुरि तुम वसिष्ठजीको जगावहु; अर्थ यह कि कछु पूँछहु जो बहुरि उपदेश करैं, यह हमारे कल्याणविषे स्थित हैं, अर्थ यह जो हमारा कल्याण चाहते हैं ॥ वाल्मीकि रुवाच ॥ जब इस प्रकार राजा दशरथने कहा तब रामजीकी ओर मुख करिकै उदार आत्मा वसिष्ठजी भगवान् बोलते भये

वसिष्ठ उवाच ॥ हे राघव ! अपने कुलरूपी आकाशके चंद्रमा, मैं जो वचन कहे थे, सो तुमको स्मरण आते हैं क्या ? अरु तिन वाक्योंका अर्थ स्मरणविषे है क्या ? पूर्व अरु अपरका विचार कछु किया है क्या ? हे महाबोधवान् महाबाहो ! अज्ञानरूपी शत्रुके नाशकर्त्ता, सात्त्विक राजस तामस गुणोंके भेदकी उत्पत्ति विचित्ररूप है, सो मैंने कही है, सो तुम्हारे चित्तमें है क्या ? सर्व भी वही है, असर्व भी वही है, सत्य भी वही है, असत्य भी वही है, सदा शांत अद्वैतरूप है, यह परमात्मा देवका विस्तृतरूप स्मरण है क्या ? जिसप्रकार विश्व ईश्वरते उदय हुआ है, सो स्मरण हैं क्या ? यह जो देववाणी है, तिसका पात्र शुद्ध चित्त है, अशुद्ध नहीं ॥ हे सत्यबुद्धि रामजी ! अविद्या जो विस्तृतरूप भासती है, तिसका रूप स्मरण है क्या ? अर्थते शून्य क्षणभंगुररूप है, सम्यक् दर्शनते रहित निर्जीव है, यह जो लवणके विचारद्वारा मैं प्रतिपादन किया है; सो भलीभांति स्मरण है क्या ? वाक्योंका समूह मैंने तुझको कहा है, तिनोंको रात्रिविषे विचारिकरि हृदयविषे धारे है क्या ? जब बारंबार विचारता है, अरु तात्पर्य हृदयविषे धारता है, तब बड़ा फल प्राप्त होता है अरु जो अवज्ञा करिकै अर्थका विस्मरण करता हैं, तौ फलको नहीं पाता ॥ हे रामजी ! तुम तौ इन वचनोंके पात्र हौ, यह जो वचन परम उदार हैं, सो तिसके हृदयविषे फलीभूत होते हैं, जैसे उत्तम बाँसविषे मोती फलीभूत होते हैं, अपरविषे नहीं उपजते, तैसे जो विवेकी उदार आत्मचित्त पुरुष हैं, तिनके हृदयविषे यह वचन फलीभूत होते हैं ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ इसप्रकार जब कमलासन ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठजीने कहा, तब महाओजवान् गंभीर रामजी अवकाश पाइकै बोलत भया ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्व धर्मोंके वेत्ता, तुम परम उदारने जो वचन कहे हैं, तिनकरि मैं बोधवान् भया हौं, अरु जैसे तुम अब कहते हौ, तैसेही सत्य है, अन्यथा नहीं ॥ हे भगवन् ! मैं रात्रिको निद्राते रहित भया था, तुम्हारे वाक्यके विचारविषे रात्रि व्यतीत करीहै; तुम तौ हृदयके अज्ञान-रूपी तमको नाशकर्त्ता पृथ्वीपर सूर्यरूप विचरते हौ ॥ हे भगवन् ! तुमने

जो व्यतीत दिनविषे आनंददायक प्रकाशरूपी वचन कहे थे, सो मैं सर्व अपने हृदयविषे भली प्रकार धरे हैं, सो तुम्हारे वचन कैसे हैं, रमणीय अरु पवित्र हैं, अरु नानाप्रकारके विचित्र हैं, जैसे समुद्रते नानाप्रकारके रत्न निकसते हैं, तैसे तुम्हारे वचन कल्याणकर्ता हैं अरु बोधवान् हैं. अर्थ यह कि सर्वके सहायक हैं, अरु हृदयंगम आनंदका कारण हैं, वह कौन है, जो तुम्हारी आज्ञाको शिरपर न धरै, मुमुक्षु जीव हैं, सब तुम्हारी आज्ञाको शीशपर धरते हैं, अपने कल्याणके निमित्त जानते हैं ॥ हे मुनीश्वर ! तुम्हारे वचनकरिकै मेरे संशय निवृत्त भए हैं, जैसे शरत्कालविषे मेघ कुहिड नष्ट हो जाती है, अरु निर्मल आकाश भासता है, तैसे तुम्हारी कृपाकरि मैं संशयते रहित निर्मलचित्त भया हौं, यह संसार आपातरमणीय होइ भासता है, जबलग पदार्थोंका अभाव नहीं होता, तबलग सुखदायक भासता है, अरु जब विषयपदार्थ इंद्रियोंते दूर होते हैं, तब दुःखदायक हो जाता है, अरु तुम्हारे वचन कैसे हैं, जिनके आदि अन्त भी कछु नहीं, सुगम मधुर आरंभ है; अरु मध्यविषे सौभाग्य मधुर वचन हैं, अर्थ यह कि कल्याणकर्ता हैं; वह पाछेते अनुत्तम पदको प्राप्त करते हैं; जिसके समान अपर पद कोई नहीं सो अनुत्तम पदको प्राप्त करते हैं, यह तुम्हारे पुण्यरूप वचनका फल है, अरु तुम्हारे वचनरूपी पुष्प सदा कमलसमान खिले हुएहैं, निर्मलआनंदको देनेहारेहैं, अरु उदित फूल हैं, तिसका फल हमको प्राप्त होवैगा, सर्व शास्त्रोंविषे जो पुण्यरूपी जल है, तिसका यह समुद्र है, अब मैं निष्पाप हुआ हौं, मुझको उपदेश करहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे राघवप्रश्नवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ५.
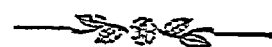
प्रथमोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे सुंदरमूर्ति रामजी ! यह उत्तम सिद्धांत जो उपशमप्रकरण है, सो श्रवण कर तेरे कल्याणनिमित्त मैं कहता हौं यहसंसार

महादीर्घरूप है, इसको राजसी अरु तामसी जीव धर रहे हैं, जैसे दृढ स्तंभके आश्रय गृह होता है, तैसे राजसी जीवोंका आश्रय संसार मायारूप है, अरु जो तुमसारिखे सात्त्विकविषे स्थित हैं, सो शूरमें हैं वैराग्य विवेक आदिक गुणकारि संपन्न हैं, सो लीलाकरिकै यत्नविना संसारमायाको त्यागि देते हैं, जो बुद्धिमान् सात्त्विक जागे हुए पुरुप हैं, अरु राजस और सात्त्विक हैं, सो भी उत्तम पुरुष हैं, वह पुरुष जगत्के पूर्व अपूर्वको विचारते हैं, संतजन अरु सच्छास्त्रोंका संग करते हैं, तिनके कहे आचारपूर्वक विचरते हैं, तिसकरि ईश्वर जो परमात्मा है, तिसको देखनेकी बुद्धि उपजती है, और दीपकवत् ज्ञानप्रकाश उपजता है, ॥ हे रामजी ! जबलग अपने विचारकरिकै अपना स्वरूप नहीं पहँचानता, तबलग वह ज्ञान प्राप्त नहीं होता, जो उत्तम कुल निष्पाप सात्त्विक राजसी जीव हैं, तिनको विचार उपजता है, तिस विचारकरि अपने आपसों आपको पाता है, सो दीर्घदर्शी है, संसारके जो नानाप्रकारके आरंभ हैं, तिनको विचारता है, अरु विचारद्वारा आत्मपदको पाता है, परमानंद सुखविषे प्राप्त होता है, ताते तुम इसी संसारको विचारहु, कि सत्य क्या है अरु असत्य क्या है, ऐसे विचारकरि असत्का त्याग करहु, अरु सत्यका आश्रय करहु, जो पदार्थ आदिविषे न होवै, अरु अन्तविषे न रहै, सो मध्यविषे भी असत्य जानिये, जो आदिअन्त एकरस है, तिसको सत्य जानिये, तिसते इतर कछु नहीं, जो आदिअन्तविषे नाशरूप है, तिसविषे जिसको प्रीति है, अरु तिसके रागकारि रंजित हैं, सो मूढ पशु है, तिसको विवेकका रंग नहीं लगता, मनही उपजता है, मनही बढता है, सम्यक् ज्ञानके उदय हुएते मन निर्वाण हो जाता है, मनरूप संसार है, अरु आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! जो कछु तुम कहते हौ, सो मैंने जाना है, जो यह संसार सर्वभावनाविषे मनरूप है, जरा मरण आदिक विकारका पात्र भी मनही है, तिसके तरनेका उपाय निश्चयकारि तुम कहौ, जिसकारि इसको तरिजाओं हम सब रघुवंशियोंके कुलका अज्ञानरूपी तम हृदयसों दूर करनेको तुम ज्ञानके सूर्य हौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी !

प्रथम तो इस जीवको यह कर्तव्य है कि जो विचारपूर्वक वैराग्य कहा है, कि संतजनोंका संग अरु सच्छास्त्रोंकरि मनको निर्मल करना सो जब मनको निर्मल करैगा, तब स्वजनता जो आर्जव तिसकरि संपन्न होवैगा, बहुरि इसको वैराग्य आनि उपजैगा, जब वैराग्य प्राप्त हुआ, तब ज्ञानवान् जो गुरु हैं, तिनके निकट जावैगा, जब वे उपदेश करैंगे, तब ध्यान अर्चनादिकके क्रमकरि परमपदको प्राप्त होवैगा, जब इसको निर्मल विचार आनि उपजताहै, तब यह अपने आपको आपकरि देखता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अपने बिंबको आपकरि देखता है, तैसे यह देखता है जबलग विचाररूपी तटका आश्रय नहीं लिया, तब-लग संसार विषे तृणवत् भ्रमता है, विचारकरिकै वस्तु ज्योंकी त्यों जानता है, तब सब दुःख मनते नष्ट हो जाते हैं, जैसे सोमजलके नीचे रेत जाइ रहती है, तैसे आधि (पीडा) उसकी रहिजाती है, बहुरि उत्पन्न नहीं होती, जैसे स्वर्ण अरु राख मिली हुई है, तबलग सोनार संशयविषे रहता है, जब स्वर्ण अरु राख भिन्न होवै, तब संश-यरहित स्वर्णको प्रत्यक्ष देखता है, तब निःसंशय होता है, तैसे अज्ञा-नकरिके जीवोंको मोह उत्पन्न भया है, देह इंद्रियकेसाथ मिला हुआ संशयविषे रहता है, जब विचारकरि भिन्न भिन्न जानै तब मोह नष्ट हो जावै, और तब संशयते रहित शुद्ध अविनाशीरूप आत्माको देखता है, विचार कियेते मोहका अवसर नहीं रहता। जैसे अज्ञात पुरुष चिंतामणिकी कीमतको जानि नहीं सकता जब उसको ज्ञान प्राप्त भया, तब ज्योंका त्यों जानता है, तब मोह संशय निवृत्त हो जाताहै, तैसे जीव जबलग आत्मतत्त्वको नहीं जानता तबलग दुःखका भोगी होता है, अरु जब ज्योंका त्यों जानता है, तब शुद्ध शांतिको प्राप्त होता है ॥ हेरामजी ! देहके संगकरि मिश्रित भासता है, वास्तवते कछु मिश्रित नहीं भया, ताते अपने स्वरूपविषे शीघ्रही स्थित होहु, निर्मलस्वरूप जो आत्मा है, तिसको रंचकमात्र भी देहसे संबन्ध नहीं तैसे स्वर्ण कीचकेविषे मिश्रित भासता है, तौ भी स्वर्णको कीचका लेप कछु नहीं लगता, निर्लेप रहता है, तैसे जीवको देहकेसाथ संबंध कछु नहीं, निर्लेपही रहता है, आत्मा भिन्नहै, देह भिन्नहै

जैसे जल अरु कमल भिन्न रहते हैं, मैं ऊँची भुजा करिके पुकारता हौं मेरा कहा कोऊ नहीं मानता, संकल्पते रहित होना परमकल्याण है, यही भावना अंतरमें क्यों नहीं करते ? जबलग जड़धर्म है॥ अर्थ यह कि, विषयभोगोंविषे आस्था करता है, अरु आत्मतत्त्वते शून्य रहता है, तबलग मूढ टोए जैसा रहता हैं, जबलग स्वरूपका प्रमाद है, तबलग इसके हृदयसों संसारका तम और किसीप्रकार दूर नहीं होता, चंद्रमा उदय होवै, अग्निका समूह होवै, द्वादश सूर्य इकट्ठे उदय होवैं, तौ भी हृदयका तम रंचकमात्र भी दूर नहीं होता अरु जब स्वरूपको जानिकारि आत्माविषे स्थित होवै, तब हृदयका तम नष्ट हो जावेगा, जैसे सूर्यके उदय हुएते जगत्का अंधकार नष्ट होता है; तैसे जबलग आत्मापदका बोध नहीं, अरु भोगोंविषे तद्रूप मन है, तबलग संसारसमुद्रविषे बहा करैगा, अरु दुःखका अंत न आवैगा। जैसे आकाशविषे धूलि भासती है, परंतु आकाशको धूलिका संबंध कछु नहीं, जैसे जलविषे कमल भासताहै, परंतु जलसे स्पर्श नहीं करता, सदा निर्लेप रहता है, तैसे आत्मा देहकेसाथ मिश्रित भासता है, परंतु देहके साथ आत्माका कछु स्पर्श नहीं, सदा विलक्षण रहता है, जैसे स्वर्ण कीचमलते अलेप रहता है, देह जड़ है, आत्मा तिसते भिन्न है, सुखदुःखका अभिमान आत्माविषे भासताहैं, सो भ्रममात्र असत्यरूप हैं, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा असत्यरूप है, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है सो असत्यरूप है, तैसे आत्माविषे सुखदुःखादि असत्यरूप हैं, सुखदुःख देहको होताहै, सर्वते अतीत जो आत्मा है तिसविषे सुखदुःखका अभाव है, यह अज्ञानकरिकै कल्पित हैं, अरु देहके नाश हुएते आत्माका नाश नहीं होता, तातें सुखदुःख आत्माविषे कोई नहीं, न किसीको कछु सुख है, न किसीको कछु दुःख है, सर्व आत्मामय शांतरूप है, अरु यह जो विस्तृतरूप जगत् दृष्टि आता है, सो मायामय है, जैसे जलविषे तरंग अरु आकाशविषे तरवरे भासते हैं, तैसे आत्माविषे यत्न भासताहै, सो आत्माही है, न एक है, न दो हैं, सर्व आभासमात्र है, मिथ्या दृष्ट आकार भासता है, जैसा मणिका प्रकाश मणिते भिन्न नहीं, अरु अपनी छाया दृष्ट आती है,

तैसे आत्माका प्रकाशरूप जगत् भासता है, सो सब ब्रह्मरूप है, मैं और हौं, यह जगत् और है, इस भ्रमको त्याग करहु, विस्तृतरूप जो ब्रह्म घनसत्ता है, तिसविषे और कल्पना कोई नहीं, जैसे जलविषे तरंग कछु इतर वस्तु नहीं, जलरूपही हैं, तैसे सर्वरूप आत्माहै, सो एकरूप है तिसविषे द्वितीय कल्पना कोई नहीं, जैसे अग्निविषे बर्फके कणके नहीं होते, तैसे ब्रह्मविषे दूसरी वस्तु कछु नहीं, ताते अपने आप स्वरूपकी आपही भावना करो कि, मैं चिन्मात्ररूप हौं; जगज्जाल सर्व मेराही स्वरूप है, मैंही विस्तृतरूप हौं; जो कछु है, सो देवहीहै, न शोक है, न मोह है, न जन्म है, न देह है; ऐसे जानिकै विगतज्वर होहु, अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, तुम्हारी स्थिर बुद्धि है, तुम शांतरूप श्रेष्ठ मणिवत् निर्मल होहु, ऐसे जानिकै विगतज्वर होहु॥ हे राघव! तुम निर्द्वंद्व होहु, नित्य स्वरूपविषे स्थित निर्योगक्षेम आत्मवान् विशोक होइकरिस्थित होहु, सत्य संकल्प धैर्यवान् यथाप्राप्तविषे वर्तते विगतज्वर होहु, तुम वीतराग, निर्यत्न निर्मल वीतकल्मष होहु, न देवो हो, न लेवो हो ग्रहणत्यागते रहित शांतरूप होहु, विश्वते अतीत जो पद है, तिसको प्राप्त होइकरि जो पाने योग्य पद है, तिसको पायकरि परिपूर्ण समुद्रवत् अक्षोभरूप संतापते रहित विचरौ॥ हे रामजी! संकल्पजालते मुक्त मायामलते रहित अपने आपकरि तृप्त विगतज्वर होहु; आत्मवेत्ताका शरीर अनंत है, आदिअंतते रहित पर्वतके शिखरवत् विगतज्वर होहु॥ हे रामजी! तुम अपने आपकरि उदार होहु, अरु अपने आपकरि आनंदकरि आनंदी होहु, जैसे समुद्र आनंदकरि आनंदवान्है, अथवा जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अपने आनंदकरि आनंदवान् है, तैसे तुम आनंदवान् होहु, यह जो प्रपंचरचना भासती है, सो असत्य है, जो ज्ञानवान् हैं, सो असत्य जानिकरि इसकी ओर नहीं धावते, तुम तौ ज्ञानवान् हो, असत्य कल्पना त्यागिकरि दुःखते रहित होहु, नित्य उदित शांतरूप शुभ गुणसंयुक्त, उपदेश द्वारा चक्रवर्ती होइकरि तुम पृथ्वीका राज्य करौ, अरु प्रजाकी पालना करौ, समदृष्टिसों विचरौ, बाह्य शुभ चेष्टा यथाशास्त्र करौ, अरु राज्यकी मर्यादा करनी अंतर निर्लेप रहना, तुमको न त्यागते कछु प्रयोजनहै, न ग्रहणते

प्रयोजन है, ग्रहणत्यागविषे समबुद्धि समभावकरि राज्य करहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रथमोपदेशो नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ६.

क्रमोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! सर्व कार्यको करता हुआ हृदयते वासना नष्ट भई है, वह पुरुष कार्यविषे वर्त्तता है तौ भी मुक्त है, हमारे मतविषे इसको बंधनका कारण वासना है, जिसकी वासना क्षय हुई है, सो मुक्तस्वरूप है, अरु जिसकी वासना पदार्थोंविषे सत्य है, सो बंधमें है, कोई पुरुष अपने पुरुषार्थको आश्रयकरि कर्तव्य भी करते हैं, प्रीतिकरिकै प्रवर्त्तते हैं, सो अपनी वासनाकरिकै स्वर्गको प्राप्त होते हैं, बहुरि स्वर्गको त्यागिकरि दुःख नरक भुगतते हैं, सो अपनी वासनाकरि बांधे हुए पशु आदिक स्थावर योनिको प्राप्त होते हैं, अरु कोई आत्मवेत्ता पुण्यपुरुष हैं, सो मनकी दशाको विचारते हैं, अरु तृष्णारूपी बंधनको काटिकरि निर्मल आत्मपदको प्राप्त होते हैं, अरु कोई पुरुष पूर्व जन्मको भोगिकरि इस जन्मविषे मुक्त हुए हैं, सो राजस सात्त्विकी होते हैं, जिनका यह जन्म अंतका होता है, सो क्रमकरिकै परिपूर्ण पदको प्राप्त होते हैं जैसे शुक्लपक्षका चंद्रमा क्रमकरिकै पूर्णमासीका होताहै, अरु सर्वकलाकरि पूर्ण होता है, जैसे वर्षाकालविषे कंटकवृक्षकी मंजरी बढि जाती है, तैसे सौभाग्यलक्ष्मी तिनकी बढती जाती है ॥ हे रामजी ! जिनका यह जन्म अंतका होता है, तिसविषे निर्मल गुण जो वेदने कहे हैं, सो आय प्रवेश करते हैं, जैसे उत्तम बाँसविषे मोती उपजती है, तैसे राजसी सात्त्विकीविषे शुभ गुण उपजते हैं, मैत्री, सौम्यता, मुक्तता, ज्ञातव्यता, आर्यता यह गुण प्रवेश करते हैं, सर्व जीवोंपर दया करनी सो मैत्री, अरु हृदयविषे सदा समताभाव, अंतःकरणविषे क्षोभ कोऊ न उठै, सो मुक्तता, अरु सदा प्रसन्न रहना सो सौम्यता, यथाशास्त्र आचार करना इसका नाम आर्यता है, ज्ञानका नाम ज्ञातव्यता है, जैसे राजाके अंतःपुरविषे श्रेष्ठ अंगना आय प्रवेश करती हैं, तैसे जिसके अंतका यही जन्म है, सो

राजससात्त्विकी है, तिसके हृदयविषे मैत्री आदिक सर्व गुण आय प्रवेश करते हैं, ऐसा पुरुष सर्व कार्यको करता है; परंतु तिसके हृदयविषे लाभ अलाभका रागदोष नहीं होता, सर्वकाल समभाव रहता है, तोषवान् होता है, न शोकवान् होता है, जैसे सूर्यके उदय हुएते तम नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मभावकारि रागदोष नष्ट हो जाते हैं, सर्व गुण सिद्धताको प्राप्त होते हैं, जैसे शरत्कालका आकाश शुद्ध होता है, तैसे कोमल सुंदर होता है, अरु मधुर तिसका आचार होता है; सर्व जीव तिसके आचारकी वांछा करते हैं, अरु तिसको देखिके मोहित हो जाते हैं, जैसे सुंदर बाँसुरीकी ध्वनिकारि मृग मोहित होताहै, तैसे उसको देखिके विस्मय होतेहैं, जैसे मेघकी ध्वनिकारि बगले आय प्रवेश करते हैं; तैसे उस पुरुषविषे सब गुण प्रवेश करते हैं, गुणोंसे पूर्ण होइकारि गुरुकी शरण जाता है, तब वह विवेकका उपदेश करता है, तिस विवेककारि परमपदविषे स्थित होता है ॥ हे रामजी ! जो वैराग्य अरु विचारकारि संपन्नचित्त है, सो आत्मदेवको देखता है, तिसको दुःख स्पर्श नहीं करते यथार्थ एक आत्मरूपको देखता है; तुम विचारका आश्रय कारिके मनको जगाओ; कैसा मन है जिसविषे मनन ही मथन है. अर्थ यह कि, जो सदा प्रपंचदृश्यका मननभाव करता है, अरु जो अंतका जन्मवान् पुरुष है, सो मनरूपी मृगको जगावता है; प्रथम तौ गुणज्ञानकारि जगावता है, बहुरि बडे गुणनकारि जगावता है, फिर जानिके सेवनेका यत्न करता है, तिसकारि जगावता है; निर्मल बुद्धिसे चित्तरूपी रत्नोंको विचार करता हैं तिस विचारकारि जगत्को आत्मरूप देखता है, आत्माके प्रकाश विचारसों अविद्यामल नष्ट हो जाता है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे क्रमोपदेशवर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७.

क्रमसूचनावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह तुमको क्रम कहा है, सो सब जीवोंको समान है, इसते जो विशेष है, सो तुम श्रवण करहु, इस जग-

त्का जो आरंभ है, तिसविषे जो देहधारी जीव हैं, तिन जीवोंका दो प्रकारसे मोक्ष होता है; एक उत्तम क्रम है, एक समान है, जो गुरुके निकट जावै, वह इसको उपदेश करै तिस उपदेशके धारणेते शनैःशनैः एक जन्मकरि अथवा अनेक जन्मोंकरि सिद्धता प्राप्त होती है। अरु दूसरा क्रम यही है, जो अपने आपकरि वह उत्पन्न होता है, अर्थ यह कि समझ लेता है; जैसे वृक्षते फल गिरै अरु इसको आय प्राप्त होवै, तैसे इसको ज्ञान प्राप्त होता है, इसीपर पूर्वका वृत्तांत मैं तुझको कहता हौं, सो तू श्रवण कर, सो महापुरुषोंका वृत्तांत है, शुभ अशुभ गुणोंके समूह जिनके नष्ट भए हैं, अरु अकस्मात् फल जिनको प्राप्त भया है, तिनका निर्मल क्रम सुन ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे क्रमसूचनावर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८.
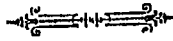
सिद्धगीतावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सर्व संपदा जिसकी उदय हुई हैं, अरु सब आपदा जिसकी नष्ट भई हैं, एक ऐसा उदारबुद्धि विदेह नगरका राजा जनक नाम हुआ, सो बड़ा धैर्यवान् हुआ, जो अर्थी होवैं; तिनका अर्थ कल्पवृक्षकी नाईं पूर्ण करे; अरु मित्ररूपी जो कमल हैं, तिनको सूर्यवत् प्रफुल्लित करै; बांधवरूपी पुरुषोंको वसंतऋतु अरु स्त्रियोंको कामदेव, ब्रह्मरूपी जो चंद्रमुखी कमल हैं, तिनको शीतल चंद्रमा, अरु दुष्टरूपी तमका नाशकर्त्ता सूर्य, स्वजनरूपी रत्नोंका समुद्र, पृथ्वीविषे मानो विष्णु सूर्य आय स्थित भये हैं। ऐसा राजा जनक एक समय लीलाकरिकै अपने बागको गमन करता भया; कैसा बाग है, मधुरताकरिकै प्रफुल्लित भए हैं फल जिसके, कोकिला शब्द करती हैं, नानाप्रकारकी सुंदर वल्ली हैं, तिस सुंदर बागविषे राजा जनक प्रवेश करता भया, जैसे नंदनवनविषे इंद्र प्रवेश करै, सुंदर वन पुष्पकरि सुगंधि पसर रही है, तहां राजाके संग जो अनुचर थे, तिनको दूरते त्यागिकरि आप

एकलाही कुंजोंविषे विचरने लगा, एक शाल्मलीनामक वृक्ष था, तहांते शब्द श्रवण किया, जो अदृष्ट सिद्ध हैं, सो गीता गाता है, विरक्तचित्त अरु नित्य पर्वतोंविषे विचरनेवाला कमलवत् नेत्र जिसके, सो आत्मगीताको उच्चार करता है, जिसकरि आत्मबोध प्राप्त होता है, तिस गीताको राजा श्रवण करते भए॥ प्रथमसिद्ध उवाच॥ यह द्रष्टा जो पुरुष है, अरु दृश्य जो जगत् है, तिस द्रष्टा अरु दृश्यके मिलापविषे जो बुद्धिमें निश्चित आनंद होता है, सो इष्टके संयोगका अरु अनिष्टके वियोगका जो आनंद है, सो चित्तविषे दृढ होता है, सो आनंद आत्मतत्त्वते उदय होता है, स्पंदरूप जिस आत्मा आनंदते लव उठता है, तिसकी हम उपासना करते हैं॥ द्वितीयसिद्ध उवाच॥ द्रष्टा, दर्शन, अरु दृश्य इनको वासनासहित त्याग कर, जो दर्शनते प्रथम प्रकाशरूप है, जिसके प्रकाशकरि यह तीनों प्रकाशते हैं, तिस आत्माकी हम उपासना करते हैं॥ तृतीयसिद्ध उवाच॥ जो निराभास निर्मलरूप है, अरु आभास अरु मननके भावका अभाव हैं, जिसविषे द्वितीय कल्पनाका अभाव है, अद्वैतरूप है, तिसकी हम उपासना करते हैं॥ चतुर्थसिद्ध उवाच॥ दोनोंके जो मध्यविषे है, अस्ति नास्ति दोनोंके पक्षोंते रहित प्रकाशरूप सत्ता है, सब सूर्य आदिकको भी प्रकाशता है, तिस आत्माकी हम उपासना करते हैं॥ पंचमसिद्ध उवाच॥ जो ईश्वर सकार हकार भया है, अर्थ यह कि सकार जिसके आदिविषे और हकार है जिसके अंतविषे, ऐसे सोहं है, सो अंतते रहित आनंद अनंत जो शिव परमात्मा है, सो अनंत आत्मा सर्व जीवके हृदयविषे निरंतर जो अहंरूप होइकारि उच्चार होता है, तिस आत्माकी हम उपासना करते हैं॥ षष्ठसिद्ध उवाच॥ हृदयविषे स्थित जो ईश्वर है, तिसको त्यागिकरि जो और ठौर देवके पानेका यत्न करते हैं, सो पुरुष हस्तविषे कौस्तुभमणिको त्यागिकरि और रत्नोंकी वांछा करते हैं॥ सप्तमसिद्ध उवाच॥ जब सर्व आशाको त्यागता हैं, तब इसको फल प्राप्त होता है, जो आशारूपी विषकी वल्ली है, सो मूलसंयुक्त नष्ट हो जाती है, अर्थ यह कि, जो जन्म अरु मरण आदिक दुःख नष्ट हो जातेहैं,

बहुरि नहीं उपजते, जो पदार्थोंको अत्यंत विरसरूप जानते हैं, अरु बहुरि उसविषे आशा बांधते हैं, सो दुर्बुद्धि गर्दभ हैं, मनुष्य नहीं, जहां जहां विषयोंकी ओर दृष्टि उठती है, तिनको विवेककारि नष्ट करहु, जैसे इंद्रने वज्रसे पर्वतोंको नष्ट किया था, तैसे नष्ट करहु, जब इस प्रकार शुद्ध आचरण करैगा, तब समभावको प्राप्त होवैगा, तिसकारि मन आत्मपदरूप उपशमको प्राप्त होवैगा, उपशमको और अक्षय . अविनाशी पदको पावैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सिद्धगीतावर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९.

जनकविकारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार सिद्धोंकी गीता महीपति सुनिकरि जैसे संग्रामविषे कायर विषादको प्राप्त होता है, तैसे विषादको प्राप्त भया, बहुरि सेनासंयुक्त अपने गृहविषे आया, टहलुये भृत्य सर्व लोक किनारेविषे स्थानोंपर ठाढे हो रहे, तिनको त्यागिकारि ऊपर चौखंडी झरोखोंमें जाय स्थित भया, जैसे तटके वृक्षोंको नदीका प्रवाह स्पर्श करता है तैसे तिनके मार्गको स्पर्श करता ऊपर जाय बैठा, एक मंदिरके ऊपर जाय स्थित भया, जैसे सूर्य उदयाचल पर्वतपर चढता है, तैसे चढिकारि संसारकी चंचल गतिको इधर उधर देखने लगा, अरु विलाप करने लगा, बडा कष्ट है, कि मैं भी संसारविषे लोकोंकी जो चंचल दिशा हैं, तासों आस्था बांध रहा हौं, यह तौ जीव सर्व जडरूप हैं, चेतन कोई नहीं, जैसे अपर जीव पाषाणरूप हैं, तैसे मैं भी तिनविषे पाषाण हो रहा हौं, काल जो है, सो अंतते रहित अनंत है, तिसके कछुक अंशविषे मेरा जीना है, तिस जीनेविषे मैं आस्था बांध रहा हौं, सो मुझको धिक्कार है, अरु जो मैं अधम चेतन हौं यह जो केतेक मंत्री मेरे हैं, सो राज्य अरु जीना सर्व क्षणभंगुर है, यह जो सुख है, सो दुःखरूप है, इनते रहित मैं किसप्रकार स्थित होऊं, जैसे महापुरुष बुद्धिमान् स्थित होते हैं, आदिअंतविषे तुच्छरूप हैं, अरु

मध्यविषे जीवना पेलवरूप है, तिसविषे मैं क्या मिथ्या आस्था बांधी है? जैसे बालक चित्रके चंद्रमाको देखिके चंद्रमा मानकर आस्था बांधै, तैसे यह प्रपंचरचना इंद्रजालकी बाजीवत् है, बड़ा कष्ट है कि, तिसविषे मैं क्या मोहित भया हौं, जो वस्तु उचित, रमणीय, उदार अरु अकृत्रिम है, सो इस संसारविषे रंचक भी नहीं, मेरी बुद्धि क्यों नष्ट भई है? जो पदार्थ दूर होवै, अरु तिसके पानेका मेरे मनविषे यत्न होवै, तौ वह निकटही है, यह निर्णय करौं, अथवा अर्थाकार जो संसारके पदार्थ हैं, तिनकी आस्था मैं त्यागता हौं, यह जो लोक हैं, सो सब आगमापायी हैं, उदय होते हैं, अरु मिट जाते हैं, जलके तरंगोंवत् सब पदार्थ क्षणभंगुर हैं, जेते कछु सुख दृष्टि आते हैं, सो दुःखसाथ मिश्रित हैं, तिनविषे मैं क्या आस्था बांधी है, सुख कदाचित् दिन पक्ष मास वर्षादिककरि आते हैं, अरु दुःख वारंवार आते हैं, मैं किस सुखकरि जीनेकी आस्था बांधौं, जो बडे बडे हुए हैं, सो नष्ट हो गए हैं, स्थिर किसीका रहना नहीं, बारंबार विचार देखता हौं, तिसकरि मैं जाना है कि, इस जगत्‌विषे सत्य पदार्थ कोई नहीं, सब नाशरूप हैं, ऐसा कौन पदार्थ है, कि जिसविषे आस्था बांधौं, जो अब बड़े ऐश्वर्यवान् विराजते हैं, सो केतेक दिन पीछे अधःको गिरि पड़ते हैं ॥ हे चित्त ! बड़ा खेद है, तुझने किस बड़ाईविषे आस्था बांधी है, जो आयुर्वलकरि मैं बांधा हुआ किसविना कलंकित भया हौं, ऊंचे पदविषे स्थित भी मैं अधःको गिरा हौं; बड़ा कष्ट है कि, मैं आत्मा हौं अरु नाशको प्राप्त भया हौं, किस कारणकरि अकस्मात् मुझको मोह आया है, मेरी बुद्धिको इसने उपहत कीनी है, जैसे सूर्य आगे मेघ आता है, अरु सूर्य नहीं भासता, तैसे आत्मा नहीं भासता, भोगोंसे मेरा क्या है, अरु बांधवोंसे मेरा क्या है, इनविषे मैं क्यों मोहित भया हौं? जैसे बालक परछाईंविषे भयको पाता है, तैसे देहअभिमानकरि यह पुरुष आपही बंधायमान होता है; देहविषे अहंकार जरामरणादिक विकारका कारण होता है, ताते इनसे मेरा क्या प्रयोजन है, इन अर्थोंकी बडाई राज्यविषे मैं क्यों धैर्य धार बैठा हौं, यह सब पदार्थ क्षोभका कारण

है, यह ज्योंके त्यों रहते हैं, इनविषे न मुझको ममताहै, न संगहै, यह सर्व असत्यरूप है, संसारके सुखविषरूपहैं, इसविषे आस्था करनी मिथ्या है,जो बड़े बडे ऐश्वर्यवान् हुएहैं, बडे पराक्रमी गुणवान् हुएहैं,सो सब परिवारसंयुक्त मृत्युको प्राप्त भये हैं, तौ वर्तमानविषे क्या धैर्य करना है, कहां वह धनअरु राज्य कहां उसब्रह्मका जगत् कई पुरुषनकी पंक्ति बीत गई हैं, हमको तिनविषे क्या विश्वास है, देवताके नायक अनेक इंद्र नष्ट हो गये हैं, जैसे जलविषे बुद्बुदे उपजिकारि नष्ट होजाते हैं,तौ मैं क्यों इस संसारविषे आस्था बांधकारि जीवौं ? संतजन मुझको हँसैंगे कई ब्रह्मा होगए हैं, कई पर्वत होगए हैं, कई धूलकी कणिकावत् राजा हो गए हैं, तौ मुझको इस जीवनेविषे क्या धैर्य है, संसाररूपी रात्रि है, तिसविषे देहरूपी शून्यदृष्टि स्वप्न है, तिस भ्रमरूपविषे जो आस्था बांधी है, ताते मुझको धिक्कारहै, यह सो अरु मैं, इत्यादिक भ्रमआत्मा विषे मिथ्या कल्पना उठी है, अज्ञानियोंकीनाई मैं स्थितभया हौं; अहं-काररूपी पिशाचकारिके क्षणक्षणविषे आयुर्बल व्यतीत होता है, देखते हुए भी नहीं दीखता, कालकी सूक्ष्म गति है, कैसा काल है, जो सबको चरणके नीचे धरे है, सदाशिव अरु विष्णुको जिसने खेलनेका गेंद किया है, ऐसा काल जो सबको भोजन कारि जाता है, सो मुझको जीनेविषे क्या आस्था बांधनी है, जेते कछु पदार्थ हैं; सो निरंतर नाश होते हैं, कोई दिन कोई ते पक्ष वर्षकारि नाश हो जाता हैं, अरु जो अविनाशी वस्तु है, सो अबलग नहीं देखी, वर्ष व्यतीत होगए हैं; जीवोंकी जो चित्तरूपी नदी है, तिसविषे भोगोंके तृष्णारूपी तरंग उछलते हैं, शांत कदाचित् नहीं होते, जैसे वायुकारि नदीविषे तरंग उछलते हैं, सोममताते रहित हो जातेहैं,तैसे जिनको चित्त-विषे भोगोंकी अभिलाषा है; तिनको अतुच्छ पद दृष्टि नहीं आते, कष्टते कष्टको प्राप्त होते हैं, दुःखते दुःखांतरको प्राप्त होतेहैं, अबलग हैं विरक्तताको प्राप्त नहीं भया; ताते मुझको धिक्कार है, अरु नीचहै अंतः-करण जिसका ताते जिस जिस वस्तुविषे कल्याणरूप जानिकै आस्था बांधी है,सो सो नष्ट होती दीखतीहै, यह क्या उत्तमताहै कि, जिसविषे

मैं आस्था बांधीहै, सो यह शरीर कैसाहै, अस्थिमांसकरि बना है, आदि अंतसंयुक्त इसका आकार है, मध्यविषे कछुक रमणीय भासताहै, परंतु सब अपवित्र पदार्थोंकरि रचाहै विनाशरूपहै, स्पर्श करनेको भी योग्य नहीं तिसके साथ मुझको क्या प्रयोजन है, जिस जिस पदार्थकेसाथ लोक आस्था बांधते हैं, तिसतिसविषे मैं दुःखही देखता हौं, अरु यह जीव ऐसे जडमूढ हैं, कि सदा इसविषे लगे रहते हैं, कल्ह यह पदार्थ मुझको प्राप्त होवैगा; अगले दिन यह प्राप्त होवैगा; दिन दिन पाप करतेहैं, दिनदिनविषे खेदको पातेहैं, तौ भी त्याग नहीं करते, ऐसे मूढ हैं, बालक अग्निविषे र्ण मूढताकरि विचरते हैं, यौवन अवस्था कामादि विकारकरि मिश्रित है, शेष जो वृद्धावस्था है, तिसविषे चित्तकरि दुःखी होताहै, यह जडमूर्ख परमार्थ कार्यको किस कालविषे साधेगा; यह जगत् ये पदार्थ सब आगमापायी विरसहैं, विषम दिशाकरि दूषितहैं, अर्थ यह कि, एक भावमें नहीं रहते, सर्वजगत् असाररूप है, सत्य बुद्धिते रहित असत्यरूप है, सार पदार्थ इसविषे कोई नहीं, राजसूय अरु अश्वमेध आदि जो यज्ञ करते हैं, तब महाकल्पके किसी अंश कालमें स्वर्गको पातेहैं, अधिकतो नहीं भोगते, जो अश्वमेध यज्ञ करता है, सो इंद्र होता है, जो एक दिन ब्रह्माका होता है, तिसविषे चतुर्दश इंद्रराज्य भोगिकरि नष्ट हो जातेहैं, जब सहस्र चौकड़ी युगोंकी व्यतीत होतीहै तब ब्रह्माका एक दिन होता है, ऐसे तीस दिनोंका एक मास, द्वादश मासका एक वर्ष, ऐसे सौ वर्ष ब्रह्माकी आयुर्बल है, तिस आयुर्बलको भोगिकरि ब्रह्मा अतर्द्धान हो जाताहै, तिसका नाम महाप्रलय है, तिस महाप्रलयके अंतविषे इसने स्वर्गभोग किया तौ असार सुखकी क्या आस्था योग्य है, ऐसा सुख ऊर्ध्व स्वर्गमें कोई नहीं, न पृथ्वीविषे है, न पातालविषे है, जो सुख आपदा दुःखके संग मिश्रित न होवे, ऐसा कहां है? सर्व लोक आपदासंयुक्त हैं, अरु सब दुःखोंका मूल चित्त है, सो शरीररूपी सुखविषे सर्पवत् रहता है, आधि व्याधि बडे दुःखरूपी विषको देताहै, यह किसी प्रकारनिवृत्त होवै, तब सुखी होवै, इसकरि जीव नीच प्राकृत हो रहे हैं, कोऊ विरला साधुहै,

जिसके हृदयविषे चित्तरूपी सर्प भोगोंकी तृष्णारूप विषसंयुक्त नहीं होता, सो तौ दुर्लभ है, ये जगत्के पदार्थ कैसे हैं कि, जो सत्यता है, तिसके मस्तकपर असत्यता है, जो रमणीय भासताहै,तिसके मस्तकपर अरमणीयता स्थित है,जो सुखरूपहै, तिसके मस्तकपर दुःख स्थितहै, किसी एकको मैं आश्रय करौं, तौ दुःखसाथहै, मिश्रित दुःख तो दुःख साथ मिश्रित क्या कहिये,आपही दुःख है,जो सुख संपदा है, सो दुःख आपदासंघ मिश्रित है, बहुरि मैं किसका आश्रय करौं ? यह जीव जन्मते हैं, अरु मरते हैं, तिनविषे कोई विरला दुःखते रहित है, जो सुंदर स्त्रियां हैं, नील कमलवत् जिनके नेत्र हैं, परम हास्य विलास आदिक भूषणों करिकै संयुक्त हैं, तिनको देखिके मुझको हँसी आती है कि, यह तौ अस्थिमांसकी पुतली हैं, क्षणमात्र इनकी स्थिति है, जिन पुरुषोंके निमेष खोलनेकारि जगत् होता है, अरु उन्मेष मूँदनेकारि जगत्का अभाव हो जाता है, निमेष अरु उन्मेष जिनकारि जगत् उत्पन्न प्रलय होता है, इसप्रकार जिनको भासता है, ऐसे भी नष्ट हुए हैं, तौ हमसारिखेकी क्या गिनती है ? जो पदार्थ बडे रमणीय भासते हैं, सो अस्थितरूप और अरमणीय हो जाते हैं, नाश हो जाते हैं, तिन पदार्थोंकी चिंता करनी अरु इच्छा करनी क्या है, नानाप्रकारकी संपदा प्राप्त होती हैं, यह जगत् क्या है,अरु उनविषे जब चित्तको कोऊ आय लगता है, तब सर्व संपदा आपदारूप हो जाती है, अरु जो बड़ी आपदा आय प्राप्त होती है, अरु इनके चित्तविषे क्षोभ नहीं होता, शांतरूप है, तब वह आपदा संपदारूप है,तौ सिद्ध क्या भया ! यही सिद्ध भया कि, सर्व मनके फुरनेमात्र है, मनकी वृत्ति क्षणभंगुररूप अकस्मात् जगत्की इनकी स्थित भई है, अज्ञानकरिकै अहं सो इदं कल्पना करी है, तिसविषे त्याग अरु ग्रहणकी भावना मिथ्या है,अरु क्षीणरूप जो संसार तिसमें सुख है, सो आदिअंतसंयुक्त है,तिसविषे सुख तौ कछु नहीं, अरु जो सुख जानकर इसकी ओर धावता है,सो सुख बहुरि नष्ट हो जाता है जैसे पतंग दीपकशिखाको सुखरूप जानिकरि इसकी ओर धावता है, तो दग्ध हो जाता है, तैसे संसारके सुख ग्रहण करनेहारे तृष्णाकरि दग्ध

हुए हैं, जैसे नरकका अग्नि दग्ध करता है, सो भी श्रेष्ठ है, परंतु क्षणभंगुर जो संसारके सुख हैं, सो नीच हैं, नष्ट हुए भी दुःख दे जाते हैं, दुःखकी सीमा हैं, अर्थ यह कि, भोगोंकी तृष्णाते अधिक दुःख अपर कोई नहीं; जो इस संसारसमुद्रविषे गिरते हैं, सो सुखको नहीं पाते, संसारविषे दुःख स्वाभाविक है, अरु सुख दुःखकेसाथ मिश्रित है, मैंभी अज्ञानीकी नाईं काष्ठलोष्टकी नाईं स्थित हो रहा हौं, बडा खेद है, अज्ञानीवत् शमादिक सुखको त्यागिकारि क्षणभंगुर संसारके सुखके निमित्त यत्न करता हौं, जैसे बर्फते अग्नि नहीं उपजता, तैसे संसारते सुख नहीं उपजता, जेते कछु जीव हैं, सो जडधर्मात्मक हैं, संसाररूपी एक वृक्ष है, सहस्र तिसके अंकुर शाखा पत्र फल फूल हैं, तिनकारि पूर्ण है, तिस संसाररूपी वृक्षका मूल मन है, तिसके संकल्परूपी जलकारि विस्तारको प्राप्त भया है, संकल्पके उपशम हुएते नष्ट हो जाता है, ताते जिसप्रकार यह नष्ट होवै, सोई उपाय करौंगा, संसारकेविषे भोग देखनेमात्र सुंदर भासता है, अंतरते दुःखरूप है, अरु मन जो है, सो मर्कटवत् चंचलरूप है; तिसकारि यह रचना रची है, जबलग वस्तुते इसको जाना नहीं, तबलग चंचलहै, जब विचार कारिजानताहै, तबपदार्थोंकी रमणीयता सहित मनका अभाव हो जाताहै, ताते मैं नाशरूप पदार्थोंविषेनहींरमता। संसारकी वृत्ति कैसी है, अनेक फांसियोंसों मिश्रित है, तिसविषे गिरते हैं, बहुरि उछलते हैं, शांत कदाचित् नहीं होते, ऐसी संसारकी वृत्तिको मैं चिरकालपर्यंत भोगीहै, अब मैं भोगते रहित होइकारि ब्रह्मही होता हौं, इस संसारविषे बारंबार जन्म मरण होता है, शोकही प्राप्त होता है, अब संसारकी वृत्तिते रहितहुआ शोकते रहित होता हौं, अब मैं प्रबुद्ध भया हौं, अरु हर्षवान् भया हौं, मैं अपने चोर आपही देखे हैं, मन है नामा जिसका, इसीको मारौंगा, इस मनने मुझको चिरपर्यंत माराहै, अरु एते कालपर्यंत मेरा मनरूपी जो मोती था, सो अवेध रहा था, अब मैंने इसको वेधा है; अर्थ यह कि, आत्मविचारते रहित था, अब तिसको आत्मविचारविषे जोडा है, आत्मज्ञानके योग्य है, मनरूपी एक बर्फका कण था, सो जडताको प्राप्त भया था, अब विवेकरूपी सूर्यकारि गलि गया है, अब मैं अक्षय

शांतिको प्राप्त भया हौं, अनेक प्रकारके वचनोंकारि साधुरूप जो सिद्ध थे तिनने मुझको जगाया है, मैं आत्मपदको प्राप्त भया हौं, परमानंदकरिके अब मैं चिंतामणि आत्मरूपीको पायकारि एकांत सुखी होऊंगा अरु स्थित होऊंगा जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे होऊंगा मनरूपी जो शत्रु है, तिसने मुझको भ्रम दिखाया था, सो अब विवेककारि नाश किया है, उपशमको प्राप्त भयाहौं ॥ हे विवेक! तुझको नमस्कार है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे जनकविचारो नाम नवमः सर्गः॥९॥

दशमः सर्गः १०.

जनकनिश्चयवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार चिंतवता था, तब दासी राजाके निकट आई, जैसे सूर्यके आगे अरुण आय स्थित होता है, तैसे प्रतीहारी जो दासी है, सो कहत भई ॥ हे देव ! अब उठौ, ठाढे होहु, दिनका जो उचित आचार है स्नान आदिक सो करौ, स्नानशालाविषे पुष्प अरु केसर गंगाजल आदिकी गागर लेकारि स्त्रियां ठाढ़ी हो रही हैं, कमलपुष्प पड़े हैं, तिनपर भँवरे फिरते हैं, छत्र चमर पड़े हैं, स्नानका समय है ॥ हे देव ! पूजनके निमित्त सर्व सामग्री आई है, रत्न औषधि ले आए हैं, हाथोंविषे पवित्री डारकारि ब्राह्मण बैठे हैं. स्नान करिकै अघमर्षण जाप कर रहे हैं. तुम्हारे आगमनकी ओर देखतेहैं, हाथोंविषे चमर लेकारि सुंदर कांता तुम्हारे सेवनेनिमित्त खड़ी हैं, अरु भोजनशालाविषे भोजनसिद्ध होरहा है, ताते शीघ्र उठौ; जो कार्य हैं सो करौ, जैसा काल होता है, तिसके अनुसार कर्म बड़े पुरुष करते हैं, इनका त्याग नहीं करते ताते उठौ, कालको व्यतीत न करौ ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार दासीने कहा, तब राजा चिंतवत भया कि, संसारकी विचित्र जो स्थिति है, सो कितनेकमात्र है, राज्यसुखसे मुझको कछु प्रयोजन नहीं, यह क्षणभंगुर है, इस मिथ्या आडंबर संपूर्णको त्यागिकै मैं एकांत जाय बैठता हौं जैसे समुद्र तरंगोंते रहित शांतरूप होता है, तैसे शांतरूप होऊंगा,

यह जो नानाप्रकारके राजभोग हैं, अरु क्रिया कर्म हैं, तिनते अब मैं तृप्त भया हौं, सर्व कर्मोंको त्याग करि केवल सुखविषे स्थित जो होऊंगा, मेरा चित्त जो भोगोंकरि चंचल था, सो भोग तौ भ्रमरूप हैं, इनविषे शांति नहीं होती, तृष्णा बढ़ती जाती है, जैसे जलके ऊपर सेवाल बढती जाती है, अरु जलको आच्छादि लेती है, तैसे तृष्णा आच्छादि लेती है,अब मैं इसको त्याग करता हौं, ॥ हे चित्त ! तू जिस जिस दिशाविषे गिरा है, अरु जो जो भोग भोगे हैं, सो सब मिथ्या हैं, तृप्ति तौ किसीविषे न भई, ताते भ्रमरूप भोगोंते उपरत होऊंगा, तब परम सुखी होऊंगा, बहुत उचित अनुचित भोग वारंवार भोगे हैं, परंतु तृप्ति किसीकरिकै न भई, ताते हे चित्त ! इनको त्यागिकरि परमपदके आश्रय होहु, जैसे बालक एकको त्यागिकरि दूसरेको अंगीकार करता है, तैसे यत्नविना तू भी कर, जब इन तुच्छ भोगोंको त्यागैगा, अरु परमपदको आश्रय करैगा, तब आनंदी तृप्तिको प्राप्त होवैगा, तिसको पायकरि बहुरि संसारी न होवैगा ॥ हे रामजी ! इसप्रकारचिंतन कर जनक तूष्णीं हो रहा, मनकी चपलताको त्यागिकरि सौम्य आकारकरि स्थित भया, जैसे मूर्ति लिखी होती है, तैसे हो गया, अरु प्रतीहारी भी भयमान हो करि बहुरि कछु न कह सकी कि, कदाचित् राजा अप्रसन्न होवै, तिसके अनंतर मनकी समतानिमित्त बहुरि राजा चिंतवत भया कि, मुझको ग्रहण अरु त्याग करने योग्य यत्नकरिकै कछु नहीं, किसको मैं साधौं, किस वस्तुविषे मैं धैर्य धारौं, सर्व पदार्थ नाशरूप हैं, मुझको करनेसाथ क्या प्रयोजन है, अरु अकरनेकरि क्या हानि है, ग्रहण त्याग किसका करौं, जो कछु कर्तव्य है, सो शरीर करताहै, निर्मल अचलरूप चेतन है, सो न करता है, न भुगतता है, ताते मुझको कर्तव्य कछु नहीं ! जो त्याग करौंगा तौ शरीर करणेते रहित होवैगा, अरु जो करौंगा, तौ भी शरीर करेगा मुझको क्या प्रयोजन है, ताते करने अकरनेविषे मुझको लाभ हानि कछु नहीं,ताते जो कछु प्राप्त भया है प्रवाह तिसविषे विचरता हौं, अप्राप्तकी मैं वांछा नहीं करता, अरु प्राप्तका मैं त्याग नहीं करता, अब

स्वरूपविषे स्थित होइकारि स्वस्थ होऊंगा, जो कछु प्राप्त कर्म हैं, सोई करता हौं, न कछु मुझको करनेविषे अर्थ है, न अकरनेविषे दोष है; जो क्रिया होवै सो होवै, करौं अथवा न करौं, युक्त होवै, अथवा अयुक्त होवै, मुझको ग्रहण त्याग करनेयोग्य कछु नहीं, ताते जो कछु प्राप्त करने योग्य कर्म है, सोई करौं, कर्मका करना शरीर प्रकृतिकारि होता है, आत्माको तौ कर्तव्य कछु नहीं, ताते मैं इनविषे निःसंग हो रहौंगा, जो निस्पंद चेष्टा होवै, तौ क्या सिद्ध भया, अरु क्या किया; जो मन कामनाते रहित स्थित विगतज्वर भया, अर्थ यह कि, हृदयविषे राग दोष मलिनता न उपजी तौ देहकारि कर्म होवै, तौ भी इष्ट अनिष्ट विषयकी प्राप्तिविषे तुलना रहैगी, जो देहसाथ मिलिकारि मन कर्म करता है, तब कर्ता भोक्ता है, इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिविषे रागदोषवान् होता है, जब मनका मनन उपशम हुआ, तब कर्तव्यविषे भी अकर्तव्य है, जैसा निश्चय अंतर दृढ होता है, सोई रूप पुरुषका होता है, जिसके हृदयविषे अहंकृति नहीं, अरु बाह्य कर्म चेष्टा करता है, तौ भी उसने किया कछु नहीं अरु जिसके हृदयविषे अहंकृति अभिमान है, सो बाह्य अकर्ता भासता है, तौ भी अनेक कर्म करता है, ताते जैसा निश्चय अंतरमें दृढ होता है, तैसा ही फल पुरुषको प्राप्त होता है, जो बाह्य कर्ता भी है, परंतु अंतरकर्तव्यका अभिमान नहीं, तौ वह धैर्यवान् पुरुष अनामयपदको प्राप्त होता है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे जनकनिश्चयवर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११.

चित्तानुशासनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार चिंतवना करिकै यथाप्राप्त जो क्रिया हैं तिनके करनेको उठि खड़ा हुआ, जो इष्ट अनिष्टकी वासना है, सो चित्तते त्यागत भया, अरु यथाप्राप्तविषे करता हुआ, जाग्रत्विषे सुषुप्तिकी नाई जैसे सुषुप्ति पुरुषरूप होता है; तैसे वह जाग्रत्विषे हो रहा अरु दिनको तिनके आचारको करत भया, यथाशास्त्र क्रियाविषे दिनको विचरै, अरु रात्रिको लीलाकरिकै ध्यानविषेस्थित होवै, मनको समरस

करत भया, जब रात्रि क्षीण भई, तब इसप्रकार चित्तको बोध करत भया ॥ हे चंचलरूप चित्त! परमानंदस्वरूप जो आत्मा है सो तुझको सुखदायक नहीं भासता। जो यह मिथ्या संसारसुखकी इच्छा करता है। जब तेरी इच्छा शांत हो जावैगी तब तू सारसुख आत्मपदको प्राप्त होवैगा, ज्यों ज्यों तू संकल्प लीलाकरि उठावता है, त्यों त्यों संसार जाल विस्तार होजाती है, इस दुःखरूप संसारसे तुझको क्या प्रयोजन है॥ हे मूर्ख चित्त! ज्यों ज्यों संकल्प इच्छा करता है, त्यों त्यों संसारका दुःख बढ़ता जाता है, जैसे जल सींचनेकरि वृक्षकी शाखा बढती हैं, तैसे संसारसुखते अधिक दुःख प्राप्त होता है, ऐसे दुःख-रूप भोगोंकी इच्छा क्यों करता है? यह संसार चित्तजालते उपजा है, जब तू इसका त्याग करैगा तब दुःख मिटि जावैगा, फुरणेका नाम दुःख है, इसके मिटेते दुःख भी कोई न रहैगा, यह संसार महाचंचल है, देखने मात्र सुंदर है, वास्तवते कछु नहीं जो कछु तुझको इसते सार प्राप्त होवै तब इसका आश्रय कर सो तौ यह क्षणभंगुर है, अरु दुःखकी खान है, ताते इसकी आस्था त्याग अरु आत्मतत्त्वको आश्रय कर शुद्ध निर्मल होइकरि जगतविषे विचरहु, तब तुझको दुःख स्पर्श न करैगा, जगत् स्थित होवै अथवा शांत हो जावै, इसके उदय अस्तकी वासनाकरि इसके गुण अवगुणविषे आसक्त मत होहु, जो अविद्यावान् असत्यरूप होवै तिसकी आस्था क्या करणी है, यह असत्यरूप है, अरु तू असत्यरूप है, असत्य अरु सत्यका संबंध संबध कैसे होवै, मृतक अरु जीतेका कभी हुआ है? जो तू कहै चेतनतत्त्व दृश्यरूप है, तौ दोनों सत्यस्वरूप हैं, तौ सदा विस्तृतरूप आत्माही हुआ, हर्ष विषाद किसका करता है, ताते तू मूढ मत होहु समुद्रकी नाईं अक्षोभरूप अपने आपविषे स्थित होहु, संसारकी भावना त्यागिकरि मान मोह मलको त्याग करहु, संसारकी इच्छा दुःखका कारण है, इसको त्यागिकरि आत्मतत्त्वविषे स्थित होवै, तव परिपूर्ण पदको प्राप्त होवैगा; ताते बलकरि तिसको आश्रय करिकै चंचलताको त्याग ॥ इति श्रीयोग-वासिष्ठे उपशमप्रकरणे चित्तानुशासनं नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२.

प्राज्ञमहिमावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार विचार करिकै राजा सब कार्यको करता भया, आनंदवृत्तिविषे मन उसका प्रबोधवान् मोहको न प्राप्त भया, इष्टविषे हर्षवान् न होवै, अनिष्टविषे दोषवान् न होवै, केवल सम स्वच्छ अपने स्वरूपविषे स्थित भया, जगत्विषे विचरै, न कछु त्याग करै, न कछु ग्रहण करै, न कछु अंगीकार करै, केवल वीतशोक होइकरि संतापते रहित वर्त्तमानविषे कार्य करै, बहुरि उसके हृदयविषे कल्पना कोई स्पर्श न करै, जैसे आकाशको धूलिकी मलिनता स्पर्श नहीं करती, तैसे मलिनताते रहित अपने स्वरूपके अनुसंधानते सम्यक् ज्ञान अनंतप्रकाशविषे मन निश्चयताको प्राप्त किया, मनकी जो कोई संकल्प वृत्ति थी, सो नष्ट हो गई, महाप्रकाशरूप चेतन आत्मा अनामय हृदयविषे प्रकाशित भया, जैसे आकाशविषे सूर्य प्रकाशता है, तैसे अनंत आत्मा प्रगट भया, संपूर्ण पदार्थ तिसविषे प्रतिबिंबित देखताहै, जैसे शुद्ध मणिविषे प्रतिबिंब भासताहै, तैसे सर्व पदार्थ अपने स्वरूपविषे आत्मभूत देखता भया, इंद्रियोंके इष्ट अनिष्ट विषयोंकी प्राप्तिविषे हर्ष खेद मिटि गया, सर्वदा समान होइकरि प्रकृत व्यवहारको करि जीवन्मुक्त होइकरि इसप्रकार राजा जनक विचरत भया ॥ हे रामजी ! जनकको ज्ञानकी दृढ़ता भई; तिसकरिकै लोकोंके परावरको जानिकरि विदेहनगरका राज्य करता भया, जीवोंकी पालनाविषे राजा जनक हर्षविषादको प्राप्त न भया, संतापते रहित हुआ राज्यका कोई अर्थ उदय होवै, अथवा अस्त हो जावै परंतु हर्षशोकको कदाचित् प्राप्त न होवै, कार्य करता दृष्ट आवै, परंतु हृदयकरि कछु न करै ॥ हे रामजी ! तैसे तुम भी कार्य सब करौ, परंतु निरंतर आत्मस्वरूपविषे स्थित रहौ, तुम जीवन्मुक्त वपु हौ, राजा जनककी सब पदार्थभावना अस्त हो गई है; सुषुप्तिवत् वृत्ति भई है भविष्यत्की इच्छा नहीं करता व्यतीतको चिंतवता नहीं, जो वर्तमान कार्य प्राप्त होवै तिसको यथाशास्त्र करता है, अपने विचारके वशते कछु पावने योग्य

था सो पाया और इच्छा कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जबलग यह आत्मपदको प्राप्त नहीं होता तबलग इसके हृदयविषे अपना पुरुषार्थरूपी विचार नहीं उपजा, जब अपने आपकारि अपना विचाररूप पुरुषार्थ जागै तब सब दुःख मिटि जावै अरु परम संपदाको प्राप्त होवै, ऐसा पद शास्त्र अर्थ अरु पुण्यक्रिया कारि नहीं प्राप्त होता, जैसा पद अपने हृदयविषे विचार कियेते प्राप्त होता है, सो पद निर्मल अरु स्वच्छ है, हृदयकी तपतको निवृत्त करता है, बुद्धिके विचाररूपी प्रकाशकारि हृदयका अज्ञान नष्ट हो जाता है और किसी उपायकारि नष्ट नहीं होता, जो बडा आपदारूप दुःख तरनेको कठिन है, सो अपनी बुद्धिकारि तरना सुगम होता है, जैसे जहाजकारि समुद्रको लंघ जाता है, अरु जो बुद्धिते रहित मूर्ख हैं, तिनको थोडी आपदाभी बडे दुःखको देतीहै, जैसे थोडा पवन भी तृणको बहुत भ्रमावता है, अरु जो बुद्धिमान् हैं, तिनको बडी आपदा भी दुःख नहीं देती, जैसे बडा वायु भी पर्वतको चलाय नहीं सकता इसी कारणते प्रथम चाहिये कि, यह पुरुष संतोंका संग अरु सच्छास्त्रोंका विचार करै अरु बुद्धिको बढावै, जब बुद्धि सत्यमार्गकी ओर बढैगी, तब परम बोध इसको प्राप्त होवैगा, जैसे जलके सींचने अरु रखनेकारि फूलसों फल प्राप्त होता है, तैसे जब बुद्धि सत्य मार्गकी ओर धावती है, तब इसको परमानंद प्राप्त होता है, जैसे शुक्लपक्षका चंद्रमा पूर्णमासीकारि प्रकाशको बहुत प्राप्त होता है, जेते कछु जीव संसारके निमित्त यत्न करते हैं, वही यत्न सत्यमार्गकी ओर करैं, तौ दुःखते मुक्त होवैं, अरु परमसंपदाके भंडारको पावैं, संसाररूपी वृक्षहै, तिसका बीज बुद्धिकी मूढता है, ताते मूढताते रहित होना बडा लाभ है, स्वर्ग पातालका राज्य आदिक जो कछु पदार्थोंकी प्राप्ति होती है, सो अपने बोधरूपी भंडारते प्राप्त होती हैं; संसाररूपी समुद्रहै, तिसके तरनेको अपनी बुद्धिरूपी जहाज है, और तप तीर्थ आदिक शुभ आचार कारिके जहाज बहजाता है, बोधरूप पुष्पलता है, तिसको बढानेको दैवी संपदा जलहै, तिसीके बढनेकारि सुंदर फल प्राप्त होता है, जो बोधते रहित बल ऐश्वर्यकारि बढा भी है, तिसको तुच्छविषे नाश कारि डारताहै, जैसे बलते रहित सिंहको गीदड हरिण भी जीति लेते हैं, ताते जो कछु प्राप्त होता

दृष्ट आता है सो अपने प्रयत्नकरि आता है, अपनी बोधरूपी चिंतामणि हृदयविषे स्थित है, तिसते विवेकरूपी फल पाता है, जैसे कल्प कल्पलताते जो चिंतवना करिये सोई पाते हैं, तैसे सर्व फल बोधते पाता है, जैसे जाननेवाला महासमुद्रते पार करता है, अजान नहीं उतर सकता; तैसे सम्यक्बोध संसारसमुद्रते पार करता है असम्यक्बोध जडताविषे डारता है। जो अल्प भी बुद्धि सत्य मार्गकी ओर होतीहै तब वह बडे संकटको दूर करती है, जैसे छोटी बेडी भी नदीते उतारि देती है ॥ हे रामजी! जो पुरुष बोधवान् है, तिसको संसारके दुःख बेधि नहीं सकते जैसे लोह आदिक कवच पहिरा होवै, तिसको बाण बेधि नहीं सकते, बुद्धिकरिकै यह पुरुष सर्वात्मपदको प्राप्त होता है, जिस पदके पानेते हर्ष, विषाद, संपदा, आपदा कोई नहीं रहती, अहंकाररूपीमेघ है, सो आत्मारूपी सूर्यके आगे आया है, माया मलिनता जडरूप है, तिसकरि आत्मरूप सूर्य नहीं भासता, बोधरूपी वायुसों जब यह दूर होवै, तब ज्योंका त्यों भासता है, जैसे कृपिकार प्रथम हल आदिकरि पृथ्वीको शुद्ध करता है पाछे बीज बोता है, तब जल सींचताहै, अरु नाश करनहारे पदार्थते रक्षा करता है, तब फलको पाता है, जैसे जब आर्जवादि गुणोंकरि बुद्धि निर्मल होती है, बहुरि शास्त्रका उपदेशरूपी बीज मिलता है, अरु अभ्यासवैराग्यकरिकै करता है, तिसकरि परमपदकी प्राप्ति होती है, सो अतुल पद है तिसके समान और कोई नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्राज्ञमहिमावर्णनं नाम द्वादशः सर्गः १२॥

त्रयोदशः सर्गः १३.

मनोनिर्वाणवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार जनककी नाईं अपने आपकरि आपको विचार कर, पाछे जो विदितवेद पुरुषोंमें किया है, तिसी प्रकार तुम भी निर्विघ्न होहु, जो बुद्धिमान् पुरुष हैं, जिनका यह अंतका जन्म है, सो राजस सात्त्विकी पुरुष आपही परमपदको प्राप्त होते हैं. जबलग अपने आपकरि आत्मदेव प्रसन्न नहीं होवैगा, तबलग इंद्रियां-

रूपी शत्रुको जीतनेका यत्न करौ, जब आत्मदेवप्रसन्न होवैगा, सर्वगत जो परमात्मा ईश्वरोंका ईश्वर है सो आपही स्वयम्प्रकाश दीखता है, अरु सर्व दोषदृष्टि क्षीण हो जाती हैं, मोहरूपी वीजकी जो मुष्टि भरि-भरि बोता था, सो नानाप्रकारकी आपदारूप वर्षाकरि महामोहकी वेली होती हैं, अरु दृष्ट आती हैं, सो सब नष्ट हो जाती हैं जब परमात्माका साक्षात्कार होताहै, तब भ्रांति दृष्टि नहीं आती ॥ हे रामजी! तुम सदा बोधकरि आत्मपदविषे स्थित होहु अरु जनकवत् कार्योंका आरंभ करौ, ब्रह्मलक्षवान् होइकरि जगत्विषे विचरौ तब तुमको खेद कछु न होवैगा; जब नित्य आत्मविचार होता है, तब परमदेव आपही प्रसन्न होता है, तिसके साक्षात्कारहुएते चंचलरूप संसारी जनको देखि करि जनककी नाईं हँसैगा ॥ हे रामजी! संसारके भयकरि जो जीव भयभीत हुए हैं, तिसते रक्षा करनेको अपनाही पुरुषप्रयत्न है, और देवकरिके अथवा कर्मकरिकै धन बांधवकरिके रक्षा नहीं होती, जो पुरुष देवको निश्चय करिके रहे हैं, अरु शास्त्रविरुद्ध आप कर्म करते हैं, संकल्पविकल्पविषे तत्पर होते हैं, सो मध्यबुद्धि हैं, तिसके मार्गकी ओर तुम नहीं गमन करना, उसकी और बुद्धि नाश होतीहै, तुम परम विवेकको आश्रय करौ, अरु अपने आपको आपकरि देखौ, वैराग्यवान् शुद्धबुद्धिकरिकै संसारसमुद्रको तरि जाता है, यह मैंने तुझको जनकका वृत्तांत कहा है, जैसे आकाशते फल गिर पडै तैसे उसको सिद्धोंके विचारकरि ज्ञानकी प्राप्ति भई, यह विचार ज्ञानरूपी वृक्षकी मंजरी है, जैसे अपने विचार करिकै राजा जनकको आत्मबोध हुआ है, तैसे तुमको भी प्राप्त होवैगा, जैसे सूर्यमुखी कमल सूर्यको देखिकरि प्रसन्न होता है, तैसे इस विचारकरि हृदय प्रफुल्लित हो आवैगा, मनका जो मननभाव है, सो शांत हो जावैगा, जैसे बर्फका कणका सूर्यकरि तप्त हो गलि जाता है, जब अहं त्वं आदिक रात्रि, विचाररूपी सूर्यकरिकै क्षीण हो जावैगी, तब परमात्माका प्रकाश साक्षात् होवैगा, अरु भेदकल्पना नष्ट हो जावैगी, अनंत ब्रह्मांडविषे जो व्यापक आत्मतत्त्व है, सो प्रकाशि आवैगा जैसे अपने

विचारकरि जनकने अहंकार वासनाका त्याग किया है, तैसे तुम भी विचार करिकै अहंकार वासनाका त्याग करौ, अहंकाररूपी मेघ जब नष्ट होवैगा, अरु चित्ताकाश निर्मल होवैगा, तब आत्मरूपी सूर्य प्रकाशैगा, जबलग अहंकाररूपी मेघ आवरण है, तबलग आत्मरूपी सूर्य नहीं भासता; विचाररूपी वायुकरि जब अहंकाररूपी मेघ नाश हो जावै, तब प्रगट भासैगा ॥ हे रामजी ! ऐसे धार जो न मैं हौं, न कोऊ और है, न नास्ति है, न अस्ति है, जब ऐसी भावना दृढ होवैगी, तब मन शांत हो जावैगा; हेयोपादेयबुद्धि जो इष्ट पदार्थोंविषे होती है, तिसविषे न डूबैगा, इष्ट अनिष्टके ग्रहणत्यागविषे भावना होती है, यह मनका रूप है, अरु यही बंधनका कारण है, इसते इतर बंधन कोऊ नहीं, ताते तुम इंद्रियोंके इष्टअनिष्टविषे हेयोपादेयबुद्धि मत करौ, दोनोंके त्यागेते जो शेष रहै, तिसविषे स्थित होहु; इष्ट अनिष्टकी भावना तिसकी जाती है, जिसको हेयोपादेयबुद्धि नहीं होती; जबलग हेयोपादेयबुद्धि क्षीण नहीं होती, तबलग समताभाव नहीं उपजता; जैसे मेघके नष्ट हुएविना चंद्रमाकी चांदनी नहीं भासती, तैसे जबलग पदार्थोंविषे इष्टअनिष्टबुद्धि है, और मन लोलुप होता है, तबलग समता उदय नहीं होती; जबलग युक्त अयुक्त लाभ अलाभ इच्छा नहीं मिटती, तबलग शुद्ध समता अरु निरसता नहीं उपजती; एक जो ब्रह्मतत्त्व निरामयरूप नानात्वते रहित है; तिसविषे युक्त क्या अरु अयुक्त क्या? जबलग इच्छा अनिच्छा वांछित अवांछित यह दोनों बात स्थित हैं, अर्थ यह जो फुरते हैं, क्षोभ करते हैं, तबलग सौम्यता अचलभाव नहीं होता, अरु जो हेयोपादेयबुद्धिते रहित ज्ञानवान् है, तिस पुरुषको यह शक्ति आय प्राप्त होती है, जैसे राजाके अंतःपुरविषे पटरानी स्थित होती है, तैसे सो कौन शक्ति है, एक तौ भोगोंविषे निरसता, देहाभिमानते रहित निर्भयता, नित्यता, समता, सब पूर्ण आत्मदृष्टि, ज्ञाननिष्ठा, सब इच्छाते रहित अरु निरहंकारता, आपको सदा अकर्ता जानना, इष्टअनिष्टकी प्राप्तिविषे समचित्तता, निर्विकल्पता, सदा आनंदस्वरूप रहना, धैर्यसों सदा एकरस रहना, स्वरूपते इतर वृत्ति न फुरै, अरु सर्व जीवोंसे मैत्रीभाव, अरु सत्यबुद्धि निश्चयात्मकरूपकरि

तुष्टता, अरु मुदिता अरु मृदु भाषणा, इतनी शक्ति हेयोपादेयते रहित आय प्राप्त होती हैं ॥ हे रामजी ! संसारके पदार्थोंकी ओर जो चित्त धावता है, तिसको वैराग्यकरि उलटाय खैंचना, जैसे पुलकरिकै जलके वेगका निवारण होता है, तैसे जगत्‌सों निवारि करि मनको आत्मपदविषे लगावना, तिसकरि आत्मभाव प्रकाशता है; ताते अंतरसों सब वासनाको त्याग करौ; अरु बाह्यते सब क्रियाविषे रहौ, वेगि चलौ, श्वास लेहु, सर्वदा सर्व प्रकार चेष्टा करौ, अरु सर्वदा सर्व प्रकारकी वासना त्याग करौ, संसाररूपी समुद्र है, जिसविषे वासनारूपी जल है, अरु चिंतारूपी सूत्र है, तिस जलकरिकै तृष्णावान्‌रूपी मत्स्य फँसे हैं, यह विचार जो तुमको कहा है, तिस विचाररूपी शिलासे बुद्धिको तीक्ष्ण करौ अरु इस जालको छेदौ तब संसारते मुक्त होहुगे अरु संसाररूपी वृक्ष है तिसका मूल बीज मन है यह वचन जो कहे हैं, तिसको हृदयविषे धरिकरि धैर्यवान् होहु तब आधि व्याधि दुःखोंते मुक्त होवैगा मनकरिकै मनको छेदहु, जो वीती है तिसका स्मरण करौ अरु भविष्यत्‌की चिंता न करौ काहेते जो असत्यरूप है अरु वर्तमानको भी असत्य जानिकै तिसविषे विचरौ जब मनते संसारका विस्मरण हुआ तब मनविषे बहुरि न फुरैगा, मनविषे असत्यभाव जानिकै चलौ, बैठौ, श्वास लेहु, निःश्वास करौ, उछलौ, सोवहु, ऐसी चेष्टा होवै, परंतु अंतर सब असत्यरूप जानहु, तब खेद न होवैगा; अहंममरूपी जो मल है, तिसको त्यागिकरि अथवा प्राप्तिविषे विचरौ, राज्य आय प्राप्त होवै, तब तिसविषे विचरौ, परंतु अंतरते इसविषे आस्था न होवै, जैसे आकाशका सब पदार्थोंविषे अन्वय है, परंतु किसीके साथ स्पर्श नहीं करता, तैसे बाह्य कार्यको करौ, परंतु मनकरि किसीकेसाथ बंधायमान न होहु. तुम चेतनरूप अजन्मा महेश्वर पुरुष हौ तुमसों भिन्न कछु नहीं, सबविषे व्यापि रहे हौ, जिन पुरुषोंको सदा यही निश्चय रहता है, और अपने स्वरूपविषे तिनको संसारपदार्थ चलायमान नहीं कर सकते; तथा जिनको संसारविषे आसक्त भावना है; अरु स्वरूपते भूले हैं, तथा तिनको संसारके पदार्थोंते विकार उपजता है, हर्ष अरु शोक भय खैंचते हैं, तिसकरि बांधे हुए हैं, अरु जो ज्ञानवान् पुरुष राग

द्वेषते रहित हैं, तिनको लोह हड़का बटा अरु पाषाण स्वर्ण एकसमान हैं, संसारवासनाका त्याग किया इसीका नाम मुक्ति है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषकी स्वरूपविषे स्थिति भई है, अरु सुखदुःखविषे समता है, सो जो कछु करता है, भोगता है, देता है, लेता है इत्यादिक क्रिया करता है सो करता हुआ भी कछु नहीं करता, यथाप्राप्त कार्यविषे वर्तता है, अंतःकरणविषे इष्टअनिष्टकी भावना नहीं फुरती, कार्यविषे रागद्वेष-वान् होइकरि डूबता नहीं, जिसको सदा यह निश्चय रहता है, जो सर्व चिदाकाशरूप है, अरु भोगोंके मननते रहित है, सो समताभावको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! मन जडरूप है, आत्मा चेतनरूप है, तिस चेतनकी सत्ताकरि पदार्थोंको ग्रहण करता है, इसकेविषे अपनी सत्यता कछु नहीं, जैसे सिंहकरि मारा जो पशु है, तिसको खानेको बिल्ली भी जाती है, उसको अपना बल कछु नहीं, तैसे चेतनके बलकरि मन दृश्यका आश्रय करता है, मन आप असत्यरूप है, चेतनकी सत्ता पाइ-करि जीता है, अरु संसारके चिंतवनको समर्थ होता है, प्रमादकरिकै चितासों तपायमान होता है, यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि, मन जड़ है, अरु चेतनरूपी दीपककरि प्रकाशता है, चेतनसत्ताते रहित सब समान है, आत्मसत्ताते रहित उठनेको भी समर्थ नहीं होता, आत्मसत्ताको भुला-इकरि जो कछु करता है, तिस फुरनेको बुद्धिमान् कलना कहते हैं, जब वही कलना शुद्ध चेतनरूप आपको जानती है, तब आत्मभावको प्राप्त होते हैं, प्रमादते रहित आत्मरूपहैं, चित्तकला जब चैत्य दृश्यते स्फुरण होती है, तिसका नाम तब सनातन ब्रह्म होता है, अरु जब चैत्यकेसाथ मिलती है, तब तिसका नाम कलना होता है, स्वरूपते इतर कछु नहीं, केवल ब्रह्मतत्त्व स्थित है, तिसविषे भ्रांतिकरिकै मन आदि भासते हैं, जब चेतनसत्ता दृश्यके सन्मुख होती है, तब वही कलनारूप होती है, अपने स्वरूप विस्मरण कियेते संकल्पकी ओर धावनेते कलना कहाती है, सो आपको परिच्छिन्न जानती है, तिसकरि परिच्छिन्न हो जाती है, हेयोपादेयधर्मिणी होती है ॥ हे रामजी ! चित्तसत्ता अपनेही फुरणेकरि जडताको प्राप्त भई है, जबलग विचारकरि जगावै नहीं, तबलग

स्वरूपविषे जागती नहीं, इसी कारणते सत्यत्व शास्त्रोंके विचार अरु वैराग्यकारि इंद्रियोंका निग्रह करि अपनी कलनाको आप जगाओ, सब जीवकी जो कलना हैं, सो विज्ञान अरु शमकरिके जगावनेते ब्रह्मतत्त्वको प्राप्त होती है, इसते इतर मार्गकारि भ्रमता रहता है, मोहरूपी जो मदिरा है, तिसकरि जो पुरुष उन्मत्त हुआ है, सो विषयरूपी गर्त्तमें गिरता हैं, अरु आत्मबोधते सोई हुई कलनाको जगाता नहीं, अप्रबोधही रहता है, सो चित्तकलना जड़ रहती है, जो भासती है,तौभी असत्यरूप है ऐसा पदार्थ जगत्विषे कोई नहीं, जो संकल्पकारि कल्पित न होवै, ताते तू अजडधर्मा होउ कलना जड उपलब्धरूपिणी हैं, परमार्थसत्ताकारि विकासमान होती है, जैसे सूर्यकारि कमल विकासमान होता है तैसे, जैसे पाषाणकी मूर्तिको कहिये तू नृत्य कर तब वह नहीं करती काहेते कि, जडरूप है, तैसे देहविषे जो कलना है, सो चेतनकार्य करनेको समर्थ नहीं होती जैसे मूर्तिका लिखा हुआ राजा गुरगुर शब्दकारि युद्ध करनेको समर्थ नहीं होता, अरु मूर्तिका चंद्रमा औषधीको पुष्ट करनहीं सकता तैसे कलना जडरूप है, कार्य करनेको समर्थ नहीं होती जैसे निरवयव अंगनासे आलिंगन नहीं होता जैसे संकल्पके रचे आकाशके वनकी छायातले कोऊ नहीं बैठता; मृगतृष्णाके जलसे कोऊ तृप्त नहीं होता तैसे जडरूप मन क्रिया करनेको समर्थ नहीं होता, जैसे सूर्यके धूपकारि मृगतृष्णाकी नदी भासतीहै तैसे चित्तकलनाके फुरनेकारि जगत् भासता है, शरीरविषे जो स्पंदशक्ति भासती है सो प्राणशक्ति है प्राणोंकारि बोलता चलता बैठता है ज्ञानरूप संवित् जो आत्मतत्त्व है तिसते इतर कछु नहीं, जब संकल्पकला फुरती है तब अहं त्वं इत्यादिक कलनाकारि वहीरूप हो जाताहै जब आत्माअरु प्राणका फुरना इकट्ठा आता है, अर्थ यह कि, प्राणोंके साथ चेतनसंवित् मिलताहै तब तिसका नाम जीव होताहै, बुद्धि चित्त मन सब तिसके नामहैं,सब संज्ञा अज्ञानकारि कल्पित होती हैं, अज्ञानीको जैसे भासा है तिसको है अरु परमार्थते कछु हुआ नहीं, न मन है, न बुद्धि है, न शरीर है, केवल आत्मा मात्र अपने आपविषे स्थित है, अपर द्वैत कछु हुआ नहीं सब जगत्

आत्मरूप है, कालक्रिया सब आत्मरूप है, आकाशते भी निर्मल है, अस्ति नास्ति सर्व वहीरूप है, द्वितीय फुरणेते रहित है, इसकारणते है, अरु नहीं, ऐसा स्थित है, अरु सर्व रूपते सत्य है, आत्मा सब पदोंते रहित है, इस कारणते असत्यकी नाईं है, अनुभवरूप है, ताते सत्य है, सर्व कलनाते रहित केवल अनुभवरूपहै, ऐसे अनुभवका जहां ज्ञान होता है, तहां मन क्षीण होजाता है, जैसे जहां सूर्यका प्रकाश होता है, तहां अंधकार क्षीण हो जाता है, अरु जब आत्मसत्ताविषे संवित् करिकै इच्छा फुरतीहै, सो संकल्पके सन्मुख हुई थोडी भी बड़े विस्तारको पाती है, तब चित्तकलाको आत्मस्वरूप विस्मरण होजाताहै, जन्मोंकी चेष्टाकरि जगत्स्मरण हो आताहै, परम पुरुषको संकल्पके साथ तन्मय होनेकरिकै चित्त नाम कहाता है, अरु जब चित्तकला संकल्पते रहित होती है, तब मोक्षरूप होतीहै, चित्तकला फुरनेका नाम चित्त अरु मन कहते हैं, अरु दूसरी वस्तु कोऊ नहीं, एकतामात्रही चित्तका रूप है, संपूर्ण संसारकाबीज मनहै, संकल्पके सन्मुख होकरिके चेतन संवित्का नाम मन होता है; निर्विकल्पजो चित्तसत्ताहै, सो जब संकल्प करिकै मलिन होती है, तब तिसको कलना कहते हैं, वही मन घटादिककी नाईं परिच्छिन्न भेदको प्राप्त होता है, तब क्रियाशक्ति जो प्राण तिसके साथ अरु ज्ञानशक्तिकेसाथ मिलतीहै, तब तिस संयोगका नाम संकल्प-विकल्पका कर्ता मन होता है; सोई जगत्का बीज है, तिसके लीन कर-नेके दो उपाय हैं, एक तत्त्वका ज्ञान दूसरा प्राणोंका रोकना. जब प्राण-शक्तिको निरोध करता है, तब मन भी लीन हो जाता है, अरु सत्य शास्त्रोंद्वारा ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान होता है, तौ भी लीन हो जाता है; प्राण किसका नामहै, अरु मन किसका नामहै, सो श्रवण कर; हृदयकोशते निकसता है, अरु बाह्य जाता है, अरु बहुरि बाह्यसों अंतर आता है, सो प्राण है, शरीर बैठा है, अरु वासनाकरि देशदेशांतरको भ्रमताहै, तिसका नाम मन होता है, तिसको वैराग्य अरु योगाभ्यासकरि वासनाते रहित करना, अरु प्राणवायुको स्थित करना, यह दोनों उपाय हैं ॥ हे रामजी! जब तत्त्वज्ञान होता है, तब मन स्थिर होजाता है, काहेते जो प्राण अरु

चित्तकलाका आपसमें वियोग होता है, अरु जब प्राण स्थित होता है, तब मन स्थित हो जाता है,काहेते कि,प्राण स्थित हुए चेतनकलाकेसाथ नहीं मिलते, तब मन भी स्थित हो जाता है, सो नहीं रहता, मनकारूप चेतनकला अरु प्राण फुरणविना नहीं रहता, ऐसा भी होवै, जो पाषाणको स्वाद लेनेकी शक्ति हो आवै, सो पाषाणको अपनी सत्ताशक्ति कछु नहीं, तैसे मनको भी अपनी सत्ताशक्ति कछु नहीं, चेतनसत्ता अरु प्राणोंविना कछु होवै, स्पंदरूप जो शक्ति है, सो प्राणोंकी है, सो चलरूप जडात्मक है, आत्मसत्ता चेतनरूप है, सो अपने आपविषे स्थित है, चेतनशक्ति अरु स्पंदशक्तिके संबंध होनेकरिकै मन उपजाहै, सो मनका उपजना भी मिथ्या है, इसीका नाम मिथ्याज्ञान है॥ हे रामजी! मैंने तुझको अविद्या परम अज्ञानरूप संसाररूपी विषको देनेहारी कही है, चित्तशक्ति अरु स्पंदशक्तिको संबंध संकल्पकरिकै कल्पित है, जो तू संकल्प न उठावै, तो मन संज्ञा न रहैगी, क्षीण हो जावैगी, ताते संसार-भ्रमसों भयमान मत होहु, अरु जब स्पंदरूप प्राणको चित्तसत्ता चेतती है, तब चेतनेकरि मन चित्तरूपको प्राप्त होता है, अपने फुरणेकरि दुःखको प्राप्त होता है, जैसे बालक अपने परछाईंविषे वैताल कल्पिकरि भयवान् होता है, तैसा अखंड मंडलाकार जो चेतनसत्ता है सो सर्वगत है, तिसका संबंध किसकेसाथ होवै, अखंडशक्ति उन्निद्ररूप आत्माके इकट्ठे करनेको कोई समर्थ नहीं इसीकारणते संबंधका अभाव है, जो संबंधही नहीं तौ मिलना किससे होवै,मिलाप न हुआ तौ मनकी सिद्धता क्या कहिये चित्त अरु स्पंदकी एकताको मन कहते हैं, और मन वस्तु नहीं, जैसे रथ, घोड़ा, हस्ती, प्यादा इनविना सेनाका रूप और कछु नहीं निकसता, तैसे चित्तस्पंदविना मनका रूप और कछु नहीं, तिस कारणते दुष्टरूप जो मन है, सो तीनों लोकोंविषे इसके समान कोऊ नहीं, जब सम्यक्ज्ञान होवै, तब मृतरूप मन नष्ट हो जाता है, ताते मिथ्या अनर्थका कारण जो चित्त है, तिसको मत धरौ. अर्थ यह कि संकल्पका त्याग करौ॥ हे रामजी! मनका उपजना मिथ्या है, परमार्थते नहीं, संकल्पका नाम मन है, इसकारणते कछु है नहीं, जैसे मृग-

तृष्णाकी नदी मिथ्या भासती है, तैसे मन मिथ्या है, हृदयरूपी मरुस्थल है, अरु चेतनरूप सूर्य है, तहां मनरूपी मृगतृष्णा है, तिसका जल भासता है, जब सम्यग्ज्ञान होता है, तब इसका अभाव हो जाता है, मन जडताते निःस्वरूप है, सर्वदा मृतकरूप है, तिस मृतकने सर्व लोकोंको मृतक किये हैं, यह बड़ा आश्चर्य है, जो अंग भी कछु नहीं, देह भी नहीं, न आधार है, न आधेय है, सो जगत्का भक्षण करता है, अनहोते जालसों लोकोंको फँसाये हैं, जो सामग्रीते रहित बल तेज विभूति हस्ती पदाति रहित लोकोंको मारता है, मानो कमलके मारनेकरि मस्तक फटि जाता है, जो जड़ मूक अधम हैं, सो पुरुष ऐसे मानते हैं; कि हम बांधे हैं, मानो पूर्णमासीके चंद्रमाकी किरणोंकरि चलते हैं, जो शूरमें होते हैं, सो तिसको हनन करते हैं; जो अविद्यमान मन है, तिनने मिथ्याही जगत्को हत किया है, संकल्पकरि उदय अरु स्थित हुआ है, ऐसा दुष्ट है कि, किसने उसको देखा नहीं, मैंने तुझको तिसकी शक्ति कही है, सो तौ बडा आश्चर्यरूप विस्तृतरूप है, चंचल असत्‌रूप चित्तकरि मैं विस्मित हुआ हौं, जो मूर्ख है, सो सर्व आपदाका पात्र है, जो मन नहीं है, तिसकरि एते दुःखको प्राप्त भया है, बड़ा कष्ट है, जो सृष्टि मूर्खताकरिकै चली जाती है, सर्व मनकरि तपते हैं, यह मैं मानता हौं कि, सर्व जगत् मूढरूप है, तरंगरूपी शस्त्रकरिकै कण कण होगए हैं, पेलवरूप हैं, जो कमलकरि विदारण हुये हैं, चंद्रमाकी किरणोंकरि दग्ध होगएहैं, दृष्टिरूपी शस्त्रकरि वह पुरुष वेधे हैं, संकल्परूपी मनकरि मृतक हो गए हैं, वास्तवते कछु है नहीं मिथ्या कल्पनाते नीच कृपण करिकै लोकोंको हनन किया है, ताते मूर्ख है, मूर्ख हमारे उपदेशयोग्य नहीं, उपदेशका अधिकारी जिज्ञासु है, जिसको स्वरूपका साक्षात्कार नहीं भया, अरु संसारते उपरांत हुआ है, अरु मोक्षकी इच्छा रखता है, अरु पदार्थका ज्ञाता है, सो उपदेश करनेयोग्यहै, अरु ज्ञानवान् जो पूर्ण हैं तिसको उपदेश नहीं बनता है, अरु अज्ञानी मूर्खको भी नहीं बनता; मूर्ख कैसा है, वीणाकी ध्वनि सुनकरि भयवान् होता है, अरु बांधव निद्रामें सोया पड़ा है; तिसको मृतक जानिकै भयवान्

होता है, अरु स्वप्नविषे हस्तीको देखिकरि भय पावता है, भागता है, तिस मनने अज्ञानियोंको वश किया है, भोगोंका जो लव तुच्छ सुख है, तिसके निमित्त जीव अनेक यत्न करते हैं, अरु दुःख पाते हैं, हृदयविषे स्थित जो अपना स्वरूप है, तिसको नहीं देखि सकते, प्रमादकरि अनेक कष्ट पाते हैं, अज्ञानी जीव मिथ्याही मोहित होते हैं॥इति श्रीयोगवा०उपशमप्रकरणे मननिर्वाणवर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः १४.

चित्तचैतन्यरूपवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! संसाररूपी समुद्र है, तिसविषे रागदोषरूपी बडे कल्लोल उठते हैं, तिसविषे वह पुरुष बहे हैं, जो मनको मूढ जडरूप नहीं जानते तिनको उदार जो आत्मफल है, सो प्राप्त नहीं होता, यह विचार विवेककी वाणी मैंने तुझको कही है, सो तुमसारिखेको योग्य है, अरु जिन मूढ जडोंको मनके जीतनेविषे समर्थता नहीं तिनको नहीं शोभती, जो इन वचनोंको नहीं ग्रहण कर सकते तिनको कहनेकारि क्या प्रयोजन जैसे जन्म अंधको सुंदर मंजरी वन दिखाइये तब वह निष्फल होता है, काहेते कि वह देखि नहीं सकता तैसे विवेकवाणीका उपदेश करना उनको निष्फल होताहै जो मनको जीत नहीं सकते, इंद्रियोंकारि लोलुप पुरुष हैं, तिनको आत्मबोधका उपदेश करना कछु कार्य नहीं करता जैसे कुष्ठकारि जिसका शरीर गलि गया है, तिसको नानाप्रकारकी सुगंधिका उपचार सुखदायक नहीं होता, तैसे मूढको आत्मोपदेशका बोध सुखदायक नहीं होता; जिसकी इंद्रियां व्याकुल विपर्यय हैं,अरु मदिराकारि उन्मत्त हैं, तिसको धर्मके निर्णयविषे साक्षी करना कोऊ प्रमाण नहीं करता है, ऐसा कुबुद्धि कौन है, जो श्मशानविषे शवकी मूर्तिको पायकारि तिसते चर्चाविचारकरै,अरु तिससों प्रश्नोत्तर करै;अपना हृदयरूपी कूडविषे मनरूप मूक जड सर्पवत् स्थित है जो तिसको निकास डारै;सो पुरुषहै अरु जो तिसको नहीं जीति सकता तिस दुर्बुद्धिको उपदेश करना व्यर्थ है ॥ हे रामजी ! मन महातुच्छ

है, जो वस्तु कछु न होवै, तिसके जीनेविषे कठिनता होवै जैसे स्वप्ननगर निकट होताहै अरु चिरपर्यंत भी स्थितहै अरु जागिकारि देखिये तौ कछु नहीं पाता, तैसे मनको जो विचारिकारि देखिये तौ कछु नहीं पाता जिस पुरुषने अपने मनको नहीं जीता सो दुर्बुद्धि है वह अमृतको त्यागिकारि विषको पान करताहै सो विषकी मूर्च्छाकारि मरि जाताहै अरु जो ज्ञानीहै सो सदा आत्माही देखता है, इंद्रियां अपने अपने धर्मविषे विचरती हैं, प्राणकी स्पंदशक्ति है, अरु ज्ञानशक्ति परमात्माकी है, इंद्रियोंको अपनी शक्तिहै, जीव किसकारि बंधायमान होताहै, वास्तवते सर्वशक्तिसर्वात्माहै तिसते भिन्न कछु नहीं यह मन कहा है जिसने सब जगत्को नीच किया है॥ हे रामजी! मूढोंको देखिकारि मैं दया करता हौं अरु तपता हौं कि, मूढ क्यों खेद पाते हैं, दुःखदायक कौन हैं, जिसकारि तपते हैं, जैसे उष्ट्रकंटकके वृक्षोंकी परंपराको प्राप्त होता है, तैसे मूढ प्रमादकारिकै दुःखोंकी परंपराको पाते हैं, वे दुर्बुद्धि देहको पाइकारि मर जाते हैं, जैसे समुद्रविषे बुद्बुदे उपजिकारि मिटि जाते हैं, तैसे संसारसमुद्रविषे उपजिकारि नष्ट हो जातेहैं तिनका शोक करना क्या है, वे तौ तुच्छ पशुते नीचे हैं. तू देख जो दशों-दिशाविषे पशु आदिक होते हैं, अरु मरते हैं, तिनका शोक कौन करता है, मच्छरादिक जीव नष्ट हो जातेहैं; कई जलचर जलविषे भक्षण करतेहैं तिनका विलाप कौन करता है, छोटे जीवोंको बड़े मच्छ जलविषे भक्षण करते हैं आकाशविषे कई पक्षी मृत्यु होते हैं, तिनका कौन शोक करता है, अनेक जीव नाश होते हैं तिनका विलाप कछु नहीं होता, तैसे अबके जो हैं, तिनका विलाप करना नहीं, काहेते कि, थिर रहना किसीको नहीं, सर्व नाशरूप हैं अरु तुच्छ हैं निरंतर नष्ट होते हैं, सर्वका प्रतियोगी काल है, अनेक जीवोंको भोजन करता है, जूं आदिकको मक्षिका अरु मच्छर आदिक खाते हैं, मक्षिका अरु मच्छरादिको दादुर खाते हैं, दादुरको सर्प, सर्पोंको नौले, नौलेको बिल्ले, बिल्लेको कूकर, कूकरोंको बघाड, बघाडको सिंह, सिंहको शरभ, शरभको मेघकी गर्जना नष्ट करती है, मेघको वायु वायुको पर्वत पर्वतको इंद्रका वज्र इंद्रके वज्रको सुदर्शन चक्र जीति लेता है, सो चक्र विष्णुजीका होता है, सो

विष्णु भी अवतारोंको धरता है, सुखदुःख जरामरणसंयुक्त होता है, जीवोंकरि बडा देहको धरता है, विद्यारूप है, तौ भी जुँआ लीखैं आदिक शरीरमें लगती हैं, वह रुधिरपान करती हैं, इसप्रकार निरंतर भूतजातिको काल जीर्ण करता है, अरु परस्पर जीव जीवोंको खाते हैं, अरु निरंतर नानाप्रकारके भूतजातदशों दिशाविषे उपजते हैं, जैसे जलविषे मच्छ कच्छ आदिक उत्पन्न होतेहैं, पृथ्वीविषे कीट आदि उपजतेहैं, अंतरिक्षविषे पक्षी आदिक, वनवीथीविषेसिंहादिक मृगउपजतेहैं, स्थावरविषे पिपीलिका दर्दुर कीटादि उपजतेहैं, विष्ठाविषे कृमि उपजतेहैं, नानाप्रकारके जीवगण इसप्रकार निरंतर उपजते हैं, अरु मिटजाते हैं, कोऊ हर्षवान् कोऊ शोकवान् होतेहैं, कोऊ रुदन करते हैं, सुख अरु दुःख मानतेहैं, पापी पापके दुःखकारि निरंतर मरतेहैं, अरु सृष्टिविषे उपजते नाश होते हैं, जैसे वृक्षसों पत्ते उपजतेहैं, तैसे भूत उपजिकारि नाश हो जातेहैं तिनकी गिनती कछु नहीं. जो बोधवान् पुरुष हैं, सो अपने आप कारिकै अपने आप ऊपर दया करिकै आपको संसारसमुद्रको पार करते हैं. हे रामजी ! अपर जेते कछु जीव हैं सो पशुवत् हैं, मूढों अरु पशुविषे भेद कछु नहीं तिनको हमारी कथाकाउपदेश नहीं वह पशुधर्मा इस वाणीको योग्य नहीं देखनेमात्र मनुष्य हैं परंतु मनुष्यका अर्थ तिनते सिद्ध कछु नहीं होता, जैसे उजाड़ वनविषे ठूँठ वृक्ष होताहै, सो छाया फलते रहित किसीको विश्रामदायक नहीं होता तैसे मूढ जीवोंते कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता, जैसे जेवरी गलेविषे डारिकारि पशुको जहां खैंचता है, तहां चले जाते हैं, तैसे मूढ चित्तकारि खैंचते हैं, जहां चित्त खैंचता है, तहां चले जाते हैं, मूढचित्त पशु विषयरूपी कीचडविषे फँसे हैं, तिसकारि बडी आपदाको प्राप्त होते हैं, तिन मूढोंको आपदाविषे देखिकै पाषाण भी रुदन करते हैं, जिन मूर्खोंने अपने चित्तको नहीं जीता तिनको दुःखोंके समूह प्राप्त होते हैं, अरु जिनने चित्तको बंधनते निकासा है, सो संपदावान् हैं, तिनके दुःख सब मिट जाते हैं संसारविषे बहुरि नहीं उपजते, ताते अपने चित्तके जीतेविना दुःख नष्ट नहीं होता, अरु जो चित्त जीतना न होता, तो परमसुख प्राप्त नहीं होता, अरु तब चित्त जीतनेको बुद्धिमान् न प्रवर्तते, सो बुद्धि-

मान् प्रवर्त्तते हैं, ताते जानिये कि, चित्त भी वश होता है, मनरूपी भ्रमके नष्ट हुएते आत्मसुख प्राप्त होता है॥ हे रामजी! मन भी कछु है नहीं, मिथ्या भ्रमकरि कल्पते हैं, जैसे बालकको अपने परछाईं विषे वैतालबुद्धि होती है, तिसकरि भयमान होता है, तैसें भ्रमरूप मनकरि नाश मानते हैं, जबलग आत्मसत्ताका विस्मरण होता है, तबलग मूढता है, अरु हृदयविषे मनरूप सर्प विराजता हैं, जब अपना विवेकरूपी गरुड उदय होवै, तब वह नष्ट हो जाता है, अब तुम जागे हौ, ज्योंका त्यों जानते हो॥ हे शत्रुनाशक रामजी! अपने संकल्पकरि चित्त बढ़ता है, तिस संकल्पका शीघ्रही त्याग करौ, तब चित्त शांत होवैगा, जो तुम दृश्यको आश्रय करौगे, तौ बंधन होवैगा, अरु अहंकार आदिक दृश्यको त्याग करौगे, तौ अचित्त मोक्षवान् होहुगे, यह गुणोंका संबंध मैंने तुझको कहा है कि, दृश्यका आश्रय करना बंधन है, इसते रहित होना मोक्ष है, आगे जैसी इच्छा होवै, तैसा करहु, इसप्रकार ध्यान करहु, कि न मैं हौं, न यह जगत् है, केवल अचलरूप हौं, ऐसे निःसंकल्प हुएते आनंद चिदाकाश हृदयविषे आय प्रकाशैगा; आत्मा अरु जगतविषे जो विभागकलना आय उदय हुई है, सो मल है, इस द्वैतभावका त्याग कियेते जो पाछे शेष रहैगा, तिसविषे स्थित होहु, आत्मा अरु जगत्का अंतर क्या है, द्रष्टा अरु दृश्यका अंतर जो दर्शन है, अनुभवसत्ता है, सर्वदा तिसीकी भावना करौ, स्वाद अरु अस्वाद लेनेवालेका त्याग करौ, तिनके मध्य जो स्वादरूप है तिसविषे स्थित होहु, सो आत्मतत्त्व है, तिसविषे तन्मय होहु, अनुभव जो द्रष्टा है, अरु दृश्य है, तिसके मध्यविषे जो निरालंब साक्षीरूप आत्मा है, तिसविषे स्थित होहु॥ हे रामजी! भव जो है संसार, सो भावअभावरूप है, तिसकी भावनाका त्याग करि, भावरूप आत्माकी भावना करौ, सो अपना स्वरूप है प्रपंच दृश्यका त्याग कियेते जो वस्तु अपना स्वरूप है, सोई होवैगा; जो परमानंदस्वरूप है, अरु चित्तभावको प्राप्त होना अनंत दुःख है, चित्तरूपी संकल्प बंधन है; तिस बंधनको अपने स्वरूपके ज्ञानयुक्त बलकरि छेदहु, तब मुक्ति होवैगी, अरु जब आत्माका त्याग

कर जगत्‌विषे गिरता है, तब नानाप्रकार संकल्प विकल्प दुःखोंविषे प्राप्त होता है, जब तू आत्माको व्यतिरेक शब्द करैगा, तब मन दुःखके समूहसंयुक्त प्रगट होवैगा, अरु व्यतिरेकभावना त्यागेते सब मनके दुःख नष्ट हो जावैंगे, यह सर्व आत्मा है, आत्माते इतर कछु नहीं, जब यह ज्ञान उदय हुआ, तब चैत्य चित्त चेतना तीनोंका अभाव हो जावैगा, मैं आत्मा नहीं, जीव हौं, इसका नाम चित्त है, तिसकरि अनेक दुःखको प्राप्त होता है, अरु जब यह निश्चय हुआ कि, मैं आत्मा हौं, जीव नहीं, सो सत्य है, इतर कछु नहीं, इसीका नाम चित्तउपशम कहाता है. जब यह निश्चय भया कि, सब आत्मतत्त्व है, आत्माते इतर कछु नहीं, तब चित्त शांत हो जाता है, इसविषे संशय कछु नहीं, इसप्रकार आत्मबोधकरिकै मन नष्ट हो जाता है, जैसे सूर्यके उदय हुएते तम नष्ट हो जाता है, सो मन सब शरीरोंके अंतर स्थित है; जबलग होता है, तबलग बड़ा जीवको भय होता है, यह जो परमार्थयोग मैंने तुझको कहा है, तिसकरि मनको काटि डारहु जब मनका त्याग किया तब भय भी न रहैगा; यह चित्त भ्रममात्र उदय हुआ है, चित्तरूपी वैताल है, सम्यक्ज्ञानरूप मंत्रकरि अभाव हो जाता है ॥ हे बलवानोंविषे श्रेष्ठ निष्पाप रामजी ! जब तेरे हृदयरूपी गृहमेंते चित्तरूपी बैताल निकसि जावैगा, तब तू दुःखोंते रहित स्थित होवैगा; भय उद्वेग कछु न व्यापैगा; अब तू मेरे वचनोंकरि वैरागी भया है, मनरूपी जो मन है, तिसको जीता है, इस विचार विवेकसों चित्त नष्ट शांत हो जाता है, निर्दुःख आत्मपदको प्राप्त होता है, सब ईषणाको त्यागिकरि शांतरूप स्थित होहु॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे चित्तचैतन्यरूपवर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः १५.

तृष्णावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार तू देख कि, चित्त आप विचित्ररूप है, संसाररूपी बीजकी कणिका है, अरु जीवरूपी पखीको

बंधनका जाल है, जब चित्तसंवित् आत्मसत्ताको त्यागता है, तब दृश्य-भावको प्राप्त होता है, तब चित्त उपजता है, कलनारूप मलको धारता हैं, सो चित्त बढिकरि मोह उपजता है, तिसकरि संसारका कारण होता है, तब तृष्णारूपी जो विषकी बेलि है, सो प्रफुल्लित होती है, तिसकरि मूर्च्छित हो जाता है, आत्मपदकी ओर सावधान नहीं होता, ज्यों ज्यों उदय होती है, त्यों त्यों मोहको बढ़ावती है, तृष्णारूप श्याम रात्रि है अनंत अंधकारको देती है, परमार्थसत्ताका आवरण करती है, प्रलय-कालको अग्निवत् जलाती है, तिसको समर्थ कोऊ नहीं होता, सर्वको व्याकुल करती है, तृष्णारूपी तीक्ष्ण खड्गकी धारा है, दृष्टिमात्र कोमल शीतल सुंदर है, स्पर्श कियेते नाश कर डारती है, अनेक संकटको देती है, जो बडे असाध्य दुःख हैं, जिनकी प्राप्ति बडे पापोंकरि होती है, सो तृष्णारूपी फूलका फल है, तृष्णारूपी कूकरी है, सो दुर्गंधादिककरि चित्तशरीररूपी गृहविषे रहती है, क्षणविषे बडे हुलासको प्राप्त होती है, क्षणविषे शून्यरूप हो जाती है, जो पुरुष बडे ऐश्वर्यसंयुक्त है, सो जब तृष्णा उपजी तब दीन हो जाता है, अरु जो देखनेकरि निर्धन, कृपण भासता है, अरु अंतर तृष्णाते रहित है,तब वह बड़ा ऐश्वर्यवान् होता है,जिसके हृदयरूपी छिद्रविषे तृष्णारूपी सर्पिणी नहीं बैठी, तिसके प्राण अरु शरीर स्थित हैं,उसका हृदय शांतरूप होताहै, निश्चयकरि जान कि, जहां तृष्णारूपी कालरात्रिका अभाव हुआ है, तहां पुण्य आय बढ़ते हैं, जैसे शुक्लपक्षका चंद्रमा बढ़ता है॥ हे रामजी ! जिस पुरुषरूपी वृक्षका तृष्णारूपी घुनने भोजन किया है, तिसकी पुण्यरूपी हरियावल नहीं रहती, प्रफुल्लित नहीं होती, तृष्णारूपी नदी है, अनंत कल्लोल आवर्त्त तिसविषे उठते हैं, तृणवत् बहती है, अरु जीवरूपी खेलनेकी पुतली है, तृष्णारूपी यंत्री तिनको भ्रमाती है, सब शरीरोंके अंतर तृष्णारूपी तागा है, तिसकरि परोये हैं तृष्णाकरिके मोहितहुए कष्ट पाते हैं अरु समझते नहीं, जैसे हरे तृण कर आच्छादित गर्त होताहै, तिसको देखिकरि हरिणका बालक ग्रहण करता है, अरु गर्तविषे गिर पड़ता है हे रामजी ! ऐसा कोऊ और इसके कलेजेको काटि नहीं सकता, जैसे

तृष्णारूपी डाकिनी इसका उत्साह बलरूपी कलेजा निकाल लेती है, तिसकरि दीन जैसा हो जाता है, तृष्णारूप अमंगल इन जीवोंके हृदयविषे स्थित होइकरि नीचताको प्राप्त करता है, तृष्णाकरिकै विष्णु भगवान् है सो भगवान्की नाईं स्थित भया है, अर्थ यह जो त्रिलोकीनाथ विष्णुजी इंद्रके हेतकरि, जब अर्थ हृदयविषे धरा, तब अल्प जैसी मूर्तिको धारिकरि बलिके द्वार गए, तहां तृष्णाकरिकै जीव भ्रमते हैं जैसे सूर्य नीतिको धरिकरि आकाशविषे भ्रमता है, तैसे तृष्णारूपी तागे करि बांधे जीव भ्रमते हैं, तृष्णारूपी सर्पिणी महाविषकरि पूर्ण होती है, सर्वको दुःखदायक है, ताते इसको दूरते त्याग करौ, पवन जो चलताहै, सो तृष्णाकरि चलता है, पर्वत तृष्णाकरि स्थिर हैं, पृथ्वी तृष्णाकरि जगत्को धरती है, तृष्णाकरि त्रिलोकी वेष्टित करी है ॥ सबलोक तृष्णा करि बांधे हुए हैं, जेवरीकरि बांधा हुआ छूटता है, परंतु तृष्णाकरि बांधा छूटता नहीं ॥ तृष्णावान् मुक्त कदाचित् नहीं होता, तृष्णाते रहित मुक्त होताहै, तिस कारणते हे राघव ! तुम तृष्णाका त्याग करहु सब जगत् मनके संकल्पविषे है, तिस संकल्पते रहित होहु, मन भी कछु अपर वस्तु नहीं, युक्तिसों निर्णयकरि देखौ, संकल्पप्रमादका नाम मन है, जब इसका नाश होवै, तब तृष्णा सब नाश हो जावै, अहं त्वं इदं इत्यादिक चितवना मत करहु, यह महामोहमय दृष्टि है, इसको त्यागिकरिके एक अद्वैत आत्माकी भावना करौ, आत्माविषे जो आत्माभाव है, सो दुःखोंका कारण है, इसके त्यागेते ज्ञानवानोंविषे प्रसिद्ध होहुगे, अहंभावरूप अपवित्र भावना है, तिसको अपने स्वरूप शलाकाकी भावनारूपकरि काटि डारहु, यह भावना पंचभूमिका है, तहां संसारका अभाव है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे तृष्णावर्णनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः १६.

तृष्णाचिकित्सोपदेशवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! यह तुम्हारे वचन गंभीर तोलते रहित हैं, तुम कहते हो, अहंकार तृष्णाको मत करहु, जो अहंकारको त्यागैगा तौ

यह चेष्टा कैसे होवैगी, देहका भी त्याग हो जावैगा, जैसे वृक्ष स्तम्भके आश्रय होते हैं स्तंभहीने वृक्षको धरा है, स्तंभके नाश हुएते वृक्ष नहीं रहता, तैसे देहको अहंकार धरि रहा है, तिसते रहित देह भी गिर जावैगा, ताते मैं अहंकारको त्यागिकरि कैसे जीता रहौंगा, यह अर्थ मुझको निश्चय करि कहौ, तुम कहनेहारेविषे श्रेष्ठ हौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे कमलनयन रामजी ! सर्व ज्ञानवानोंने वासनाका त्याग किया है, सो दो प्रकारका है, एकका नाम ध्येयत्याग, दूसरेका नाम नेयत्याग है, मैं यह हौं, पदार्थरूप मैं इनकरि जीता हौं, इनविना मैं कछु जीता नहीं, अरु मोंविना यह भी कछु नहीं, यह जो अंतर निश्चय है, तिसको त्यागिकरि विचारत भया हौं, न मैं पदार्थ हौं, न मेरे पदार्थ हैं, ऐसी भावना करनेहारे जो पुरुषहैं, तिनका अंतःकरण आत्मप्रकाशकरि शीतल हो जाता है जो कछु क्रिया करते हैं, सो लीलामात्र हैं, जिस पुरुषने निश्चयकरि वासनाका त्याग किया है, सो पुरुषसर्व क्रियाविषे सर्व आत्मा जानता है, उसको बंधनका कारण नहीं होता, तिसके अंतर सर्व वासनाका त्याग है, अरु बाह्य इंद्रियोंकरिकै चेष्टा करता है, जो पुरुष जीवन्मुक्त कहाता है, तिसने वासनाका त्याग किया है; तिस वासनाका त्याग नाम ध्येयवासनाका त्याग अरु जिस पुरुषने मनसंयुक्त देहवासनाका त्याग किया है, अरु तिसवासनाका भी त्याग किया है, सो नेयवासनाका त्याग है, नेयवासनाके त्यागते विदेहमुक्त कहाता है, जिस पुरुषने अहंकार देह अभिमानका त्याग किया है संसारकी वासना लीलासों त्याग करी हैं, स्वरूपविषे स्थित होइकरि क्रिया भी करता है, सो जीवन्मुक्त कहाता है. जिसकी सब वासना नाश भई हैं, अंतर बाहिरकी चेष्टाते रहित भया है; अर्थ यह कि जिसने अंतर संकल्प बाहिरकी क्रिया त्यागी है, तिसका नाम नेयत्याग विदेहमुक्त जान. जिसने ध्येयवासनाका त्याग किया है, लीला करिके कर्ता हुआ स्थित है, सो जीवन्मुक्त महात्मा पुरुष जनकवत् है; अरु जिसने नेयवासनाको त्यागा है, और उपशमरूप होगया है, सो विदेहमुक्त होइकरि परमतत्त्वविषे स्थित है, परात्पर जिसको कहते हैं, सोई होताहै ॥ हे राघव ! यह

दोनों त्यागी शमपदविषे स्थित हुए ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं, विगतसंताप उत्तमपुरुष दोनों मुक्तस्वरूप हैं, निर्मल पदविषे स्थित होते हैं, एकका देह स्फुरणरूप होता है, दूसरेका अस्फुर होता है, देह युक्तरूप देहविषे स्थित होता है, क्रियाको करता संतापते रहित जीवन्मुक्त सो ज्ञानको धरता है, दूसरे देहको त्यागिकै विदेहपदविषे स्थित होता है, उसके साथ वासना अरु देह दोनों नहीं भासते, ताते विदेहमुक्त कहाता है, जीवन्मुक्तके अंतरवासनाका त्याग है, बाह्य क्रिया करता है, जैसे समयकरि सुख दुःख आय प्राप्त होते हैं, तैसे निरंतर रागदोषते रहित प्रवर्तता है, सुखविषे हर्ष नहीं, दुःखविषे शोक नहीं, सो जीवन्मुक्त कहाता है, जिस पुरुषने संसारके इष्ट अनिष्ट पदार्थोंकी इच्छा त्यागी है, सो सब कार्य विषे सुषुप्तिकी नाईं अचलवृत्ति है सो जीवन्मुक्त कहाता है, हेयोपादेय मैं अरु मेरा सब कलना जिसके अंतर क्षीण हो गई हैं, सो जीवन्मुक्त कहाता है, तिसकी वृत्ति संपूर्ण पदार्थनते सुषुप्तिकी नाईं हो गई है, अरु सदा जाग्रत् चित्त जिसका है, कलना क्रिया संयुक्त भी दृष्ट आता है, परंतु अंतरते आकाशवत् निर्मल है, सो जीवन्मुक्त पूजने योग्य है ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ इसप्रकार जब वसिष्ठजीने कहा, तब सूर्य भगवान् अस्त भया, सब सभाके लोक स्नानके निमित्त परस्पर नमस्कारकरिकै उठे, रात्रिको व्यतीत करिकै सूर्यकी किरणोंसाथ परस्पर नमस्कार करिकै यथायोग्य अपने अपने आसनपर आय बैठे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे तृष्णाचिकित्सोपदेशो नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः १७.

तृष्णोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो पुरुष विदेहमुक्त हैं, सो हमारी वाणीका विषय नहीं, ताते तू जीवन्मुक्तका लक्षण सुन, जो कछु प्रकृत कर्म है, तिसको करता है, परंतु तृष्णा अरु अहंकारते रहित है, निरहंकार होइकरि विचरता है, सो जीवन्मुक्त है, बाहर जो दृष्ट पदार्थ हैं, तिनविषे जिसकी दृढभावना है, तृष्णाकरिकै सदा इच्छता रहता है, संसारके

दृढ बंधनकरि सो बंध कहाता है, अरु जिसने निश्चयकरिकै अंतरते संकल्पका त्याग किया है, अरु बाह्यते सब व्यवहार करता है, सो पुरुष जीवन्मुक्त कहाता है. जो बाह्य जगत्विषे बडे आरंभ करता है, इच्छा-संयुक्त दृष्ट आता है, अरु हृदयविषे सब अर्थोंकी वासनातृष्णाते रहित है, सो मुक्त कहाता है. जिस पुरुषको भोगोंकी तृष्णा मिटिगई है, वर्त्त-मानविषे निरंतर विचरताहै, सो निर्दुःख निष्कलंक कहाताहै॥ हे महा-बुद्धिमान् जिसके अंतर इदं अहंका निश्चयहै, तिसको धारिकरि संसारकी भावना करता है, तिसको तृष्णारूप सांकलकरि बांधा, अरु कलनाकरि कलंकित जान, ताते तू मैं अरु मेरा सत्य अरु असत्यबुद्धि संसारके पदा-र्थोंका त्याग कर, जो परम उदार पदहै, सर्वदा काल तिसविषे स्थित होहु; बंधमुक्त सत्य असत्यकी कल्पनाको त्यागिकरि समुद्रवत् अक्षोभचित्त स्थित होहु, न तुम पदार्थजाल हौ, न यह तुम्हारे हैं, सब असत्यरूप जानिकै इनका विकल्प त्याग, यह जगत् भ्रांतिमात्र है, इसकी तृष्णा भी भ्रांतिमात्र है, इनते रहित आकाशकी नाईं सन्मात्र तू सत्यस्वरूप है; अरु तृष्णा मिथ्यारूपहै, तेरा अरु इसका क्या संग है॥ हे रामजी! चार प्रकारका निश्चय जीवको होता है, सो बडे विस्तार आकारको प्राप्त होता है, चरणोंते लेकरि मस्तकपर्यंत शरीरविषे आत्मबुद्धि है अरु मातापिताकरि उत्पन्न भया है, यह निश्चय बंधनरूप है, असम्यक्-दर्शन भ्रांतिकरि होताहै, अरु द्वितीय निश्चय यह है कि, सब भावपदार्थोंते अतीत हौं, बालके अग्रते भी सूक्ष्म हौं, साक्षीभूत सूक्ष्मते अति सूक्ष्म हौं, यह निश्चय भी शांतिरूप मोक्षको उपजाता है, अरु जेता कछु जगज्जाल है, सो सब पदार्थोंमेंही हौं, आत्मारूप मैं अविनाशी हौं, यह तीसरा निश्चय है, सो भी मोक्षदायक है, अरु चौथा निश्चय यह है कि, मैं भी असत्य अरु जगत् भी असत्य है, इनते रहित आका-शकी नाईं सन्मात्र है, यह भी मोक्षका कारण है॥ हे रामजी! यह चार प्रकारका निश्चय मैंने तुझको कहा है, तिसविषे प्रथम निश्चय बंधनका कारण है, और तीनों मोक्षका कारण हैं, सो शुद्ध भावनाकरि उपजेहैं, जो प्रथम निश्चयवान् है सो तृष्णारूप सुगंधिकरिकै संसारविषे भ्रमताहै

अरु तीन भावना शुद्ध जीवन्मुक्त विलासी पुरुषकी हैं, जिसको यह निश्चय है कि, सर्व जगत् मैं आत्मस्वरूप हौं तृष्णा अरु राग द्वेष तिसको बहुरि दुःख नहीं देता, अध ऊर्ध्व मध्य मैं आत्माही व्यापा हौं, सब मैंही हौं, मुझते इतर कछु नहीं जिसके अंतर यह निश्चय है, सो संसारके पदार्थोंमें बंधायमान नहीं होता, शून्य, प्रकृति, माया, ब्रह्म, शिव, पुरुष, ईश्वर सब तिसके नाम हैं, सो विज्ञानस्वरूप एक आत्मा है. सदासर्वदा एक अद्वैत मैं आत्मा हौं, अपर द्वैत भ्रम चित्तमें नहीं सदा विद्यमान सत्ता व्यापकरूप हौं, ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत जेता कछु जगज्जाल है, सो सर्व परिपूर्ण आत्मतत्त्व भरि रहा हौं, जैसे समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे सर्व जलरूप हैं तैसे सर्व जगज्जाल आत्मस्वरूपही है, सत्यस्वरूप आत्माते इतर द्वैत कछु वस्तु नहीं, जैसे समुद्रते इतर बुद्बुदे तरंग कछु नहीं, जैसे स्वर्णते इतर कछु भूषण नहीं, तैसे आत्मसत्ताते कोऊ पदार्थ भिन्न नहीं, द्वैत अरु अद्वैत जो जगत्रचनाविषे भेद है, सो परमात्मा पुरुषकी फुरनाशक्तिहै, सोई द्वैत अरु अद्वैतरूप होइकरि भासताहै, यह अपना है, यह अपरका है, यह भेद सर्वदा सबविषे रहता है, अरु पदार्थोंके उपजने मिटनेविषे सुखदुःख भासता है, तिनको मत ग्रहण करौ. भावरूप जो अद्वैत आत्मसत्ता है, तिसीका आश्रय करौ, भ्रमद्वैतको त्यागिकरि अद्वैत पूर्णसत्ता होहु, संसारके जो कछु भेद भासते हैं, तिनका मत ग्रहण करौ, यह भूमिकाकी भावना जो भेदरूपहै, सो दुःखदायी जानौ , जैसे अंध हस्ती नदीविषे गिरता है, बहुरि उछलता है, तैसे तुम पदार्थोंविषे मत गिरौ, तुम पूर्णस्वरूप हौ, महात्मा पुरुषको रागद्वेषका कछु संभव नहीं होता, सर्वगत आत्मा एक अद्वैत निरंतर उदयरूप सर्वव्यापक है, एक अरु द्वैतते रहित भी है, अरु सर्वरूप भी वही है, निष्किंचनरूप भी वही है, न मैं हौं, न यह जगत् है सब अविद्यारूप है, ऐसे चिंतहु, अरु इसका त्याग करहु, अथवा ऐसे चिंतहु कि ज्ञानस्वरूप सत्य असत्य सब मैंही हौं, तुम्हारा जो स्वरूपहै सो आनंदरूप सर्वका प्रकाशक अजर अमर निर्विकार निष्क्रिय निराकार परम अमृतरूपहै, बहुरि कैसाहै, जो निष्कलंक जीवशक्तिका जीव-

नरूप है, सर्व कलनाते रहित कारणका कारण है; निरंतर उद्योत ईश्वर विस्तृतरूप है, अनुभव स्वरूप सब अनुभवका बीज है, अपना आप आत्मपद उचितस्वरूप ब्रह्म मैं अरु मेरा भावते रहित है, ताते अहं अरु इदं कलनाको त्यागिकरि अपने अंतर यह निश्चय धरहु, अरु यथाप्राप्त क्रियाको करहु, तुम अहंकारते रहित शांतरूप होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे तृष्णोपदेशो नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८.

जीवन्मुक्तवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिनका हृदय मुक्तस्वरूप है, ऐसे जो महात्मा पुरुष हैं, तिनका यह स्वभाव है कि, असम्यक्दृष्टि देहाभिमानकरि नहीं रहते, लीलाकरि जगत् कार्यविषे विचरते हैं, अरु जीवन्मुक्त शांतस्वरूप हैं, जगत्की गति जो है, सो आदि अंत मध्यविषे विरसरूप है, अरु नाशरूप है, तिसते शांतरूप है, सब प्रकार जो अपना कार्य है, सो करता है, सो सब वृत्तिविषे स्थित हुए हृदयसों ध्येयवासना त्यागी है, निरालंबतत्त्वका आश्रय किया है, सबविषे उद्वेगते रहित सर्व अर्थविपे संतुष्टरूप है, विवेकरूपी जो वन है, तिसविषे सदा विचरते हैं, बोधरूपी बगीचेविषे स्थित हैं, सबते अतीत पदका अवलंबन किया है, पूर्णमासीके चंद्रमावत् अंतःकरण शीतल भया है, संसारके पदार्थकरि कदाचित् उद्वेगवान् नहीं होता, उद्वेग अरु असंतुष्टत्व दोनोंते रहित है, सो संसारविषे दुःखी कदाचित् नहीं होता सब शत्रुओंके मध्य स्थित होइकरि युद्ध करे, अथवा दया करता दृष्ट आवै, बड़े भयानक कर्म करता दृष्ट आवै; तौ भी वह जीवन्मुक्त है, संसारविषे दुःखी नहीं होता, सदा सुखी रहता है, न किसी पदार्थविषे आनंदवान् होता है; न किसीविषे कष्टवान् होता है, न किसी पदार्थकी इच्छा करता है, न शोक करता है, मौनविषे स्थित यथाप्राप्त कार्य करता है, संसारविषे दुःखते रहित सुखी होता है, जोकोई पूछता है, तो

यथाक्रम ज्योंका त्यों कहता है, अरु पूछेविना मूक जड़ वृक्षवत् हो रहता है इच्छा अनिच्छाते मुक्त संसारविषे दुःखी नहीं होता सबको हितकारि बोलता है, कोमल अरु उचित वाणीकारि कहता है, यज्ञादिक कर्म भी करता है परंतु संसारकार्य्यविषे डूबता नहीं.हेरामजी! जीवन्मुक्त पुरुष युक्त अयुक्त नाना प्रकारकी उग्र दिशासंयुक्त जगत्की वृत्तिको जानता है जैसे हाथविषे बेलफल होवै तैसे प्रकट जानताहै परंतु परमपदविषे आरूढ होइकारि जगत्की गतिको देखता रहता है अपना अंतःकरण शीतल अरु और जीवोंका तप्त देखता है, स्वरूपते कछु द्वैत नहीं देखता है, परंतु व्यवहारकी अपेक्षाकारि उसकी महिमा कहा है॥ हे राघव! जिन्होंने चित्त जीता है; अरु परमात्मा देखा है, तिन महात्मा पुरुषोंकी स्वभाववृत्ति मैंने तुझको कही है, अरु जो मूढ है, जिनने अपना चित्त नहीं जीता, भोगोंरूपी कीचड़विषे मग्न हैं, ऐसे गर्दभोंके जो लक्षण हैं, सो हमारे कहनेविषे नहीं आते, तिनको उन्मत्त कहिये; उन्मत्त इसप्रकार है, महानरककी ज्वाला स्त्री है अरु वह उष्ण नरक अग्निके इंधन हैं, तिसकारि जलते हैं नानाप्रकारके अर्थोंनिमित्त अनर्थ उत्पन्न करतेहैं, भोगोंकी दीनता अनर्थरूपहै, तिसकारि उनके चित्त हत भए हैं, संसारके आरंभ कारि दुःखीहोते हैं, जो नानाप्रकारके कर्म करतेहैं, तिनके फल हृदयविषे धारतेहैं, तिन कर्मके अनुसार सुखदुःख भोगते हैं, ऐसे जो भोगलंपट हैं, तिनके लक्षण हम करनेको समर्थ नहीं॥ हे रामजी! जो ज्ञानवान् पुरुषकी पूर्वदृष्टि कही है, तिसीका तुम आश्रय करो, हृदयसों ध्येयवासनाको त्यागहु; जीवन्मुक्त होइकारि जगत्विषे विचरौ अन्तरते संपूर्ण इच्छाको त्यागिकारि वीतराग निर्वासनिक होहु, बाह्य सब आचारवान् होइकारि लोकोंविषे विचरहु, सर्व दिशा अवस्थाका भलीप्रकार विचारकारि तिनविषे अतुच्छ पद होवै तिसको आश्रय करौ, अरु लोकोंविषे विचरौ, अंतर सर्व पदार्थोंते निरस अरु बाह्य इच्छाके सन्मुख होहु, अंतर शीतल रहहु, बाह्य तपायमान होहु ऐसे होइकारि लोकोंविषे विचरो, बाह्य सब कार्यका आरंभ करौ, अरु हृदयकारि सब आरंभते विवर्जित होहु, बाह्य कार्योंका कर्त्ता अरु अंतरते सदा अकर्त्ता ऐसे होइकारि लोकोंविषे विचरहु॥ हे रामजी!

अब तू ज्ञानवान् हुआ है, सब पदार्थोंकी भावनाका अभाव भया है, जैसे इच्छा होवे, तैसे विचरहु, जो इंद्रियोंका इष्ट पदार्थ हो आवै, तब कृत्रिम हर्षवान् होना; अरु दुःख आय प्राप्त होवै, तब शोक करना, कृत्रिम क्रियाका आरंभ करना, अरु हृदयविषे सारभूत रहना, बाह्य अरु कृत्रिमका अर्थ एक है, अंतरत्यागी बाह्य कर्त्ता ऐसे होइकरि जगत्‌विषे विचरो,बाह्य क्रिया करहु, अंतर अहंकारते रहित आकाशवत् निर्मल रहो कार्य कलनाते रहित होइकरि जगत्‌विषे विचरहु, आशारूप फाँसीते मुक्त होइकरि इष्ट अनिष्टविषे हृदयमें सम रहना अरु बाह्य कार्य करते लोकोंविषे विचरौ, इस चेतन पुरुषको न वास्तवते बंध है, न मोक्ष है, मिथ्या इंद्रजालवत् बंध मोक्ष संसारका वर्त्तना है, सब जगत् भ्रांतिमात्र है, प्रमादकरिकै जगत् भासताहै, जैसे तीक्ष्ण धूपकरिकै मरुस्थलविषे जल भासता है,तैसे अज्ञानकरिकै जगत् भासताहै,आत्मा अबंध सर्व व्यापकरूपहै तिस सर्वात्माको बंध कैसे होवै,जो बंध नहीं, तौ मुक्त कैसे कहिये, आत्मतत्त्वके अज्ञानकरि जगत् भासता है, तत्त्वज्ञानकरि लीन हो जाता है, जैसे जेवरीके अज्ञानकरिकै सर्प भासता है,जेवरीके जाननेते सर्प लीन हो जाता है ॥ हे रामजी ! तू तो ज्ञानवान् हुआ है, अपनी सूक्ष्म बुद्धि करिकै निरहंकार भयाहै अब आकाशकी नाई निर्मल स्थित होहु, तू असत्यरूप है, तौ संपूर्ण मित्र भ्रात तैसेही हैं, तिनकी ममताको त्यागकरि जो आप कछु न हुआ, तौ भावना किसकी करैगा, अरु जो तू सत्यस्वरूप है,तौ अत्यंत सत्य आत्माकी भावनाकरि दृश्य जगत्‌की भावनाते रहित होहु यह जो जगत्‌विषे अहं मम भोगवासना है, सो प्रमादकरिकै भासती है,अहं मम बांधवोंका कर्म शुभ आदिक जो जगज्जाल भासता है,सो आत्माका संयोग इनसाथ कछु नहीं,इनकरि तू काहेको शोकवान् होता है तू आत्मतत्त्वकी ऐसी भावना कर तेरा संबंध किसीके साथ नहीं यह प्रपंच भ्रममात्र है जो निराकार अजन्मा पुरुष होवै तिसको बांधव पुत्र दुःख सुखका क्रम कैसे होवै स्वतः अजन्मा निराकार निर्विकार है, तेरा संबंध किसीसे नहीं इनका शोक तू काहेको करताहै, शोक करनेका स्थान वह होताहै, जो नाशरूप होवै सो न कोऊ जन्मता है, न मरताहै,

जो जन्म मरण भी मानिये तौ आत्मा तिसको सत्ता देनेहाराहै,इस शरी-
रके आगे भी अरु शरीरके पाछे भी होवै, आगे जो तुम्हारे बांधव बड़े
बुद्धिमान् सात्त्विक गुणवान् अनेक व्यतीत भयेहैं,तिनका शोक, काहेको
नहीं करता ? जैसे वे थे, तैसे ये भी हैं, जो प्रथम थे, सो अब भी हैं,
तू शांतरूप है, ताते मोहको प्राप्त क्यों होता है, जो सत्यस्वरूप है,
तिसका न कोऊ शत्रुहै, न नाश होताहै, ताते तू शोक करनेको योग्यनहीं
जो तू ऐसे मानताहै,अब मैं हौं, आगे न होऊँगा; तौ भी वृथा शोकक्यों
करताहै ? तेरा संशय नष्ट भया है, कष्टसंयुक्त काहेको बनता अपनी प्रकृ-
तिविषे हर्षशोकते रहितहोइकरि विचरहु, संसारके सुख दुःखविषे समभाव
रहहु,सर्वत्र परमात्मा व्यापकरूप स्थितहै,तिसते इतर कछु नहीं,तू आत्मा
आनंद स्वच्छ आकाशवत् विस्तृतरूप है, अरु नित्य शुद्ध प्रकाशरूप
है,जगत्के पदार्थोंनिमित्त क्यों शरीरको सुखाताहै, सर्व पदार्थजातविषे
एक आत्मा व्यापक होता है, जैसे मोतीकी मालाविषे एक सूत्र तागा
व्यापक होता है, तैसे आत्मा अनुस्यूत है, ज्ञानवानोंको सदा ऐसेही
भासता है, अरु अज्ञानीको ऐसे नहीं भासता, ताते ज्ञानवान् होइकरि
सुखी होहु, अरु यह जो संसरणरूप संसार भासता है, सो प्रमादकरि
सारभूत होगया है,अरु तू ज्ञानवान् शांतबुद्धि है, दृश्य भ्रममात्र संसा-
रका क्या रूप है, भ्रम अरु स्वप्नमात्रते इतर कछु नहीं, स्वप्नविषे
क्या क्रम अरु क्या वस्तु है ? सब मिथ्याहीहै, तैसे यह संसारहै सर्व-
शक्त जो सर्वात्माहै,तिसविषे जो भ्रममात्र शक्ति है, तिसकरि यह संसार-
माया उठी है, सो न सत्य है, वास्तवते पूँछे तौ केवल ज्ञानस्वरूप एक
आत्मसत्ताही स्थित है, जैसे सूर्य प्रकाशता है, तिसको न किसीको
वेध है, न किसीकेसाथ स्नेह है, सर्वरूप सर्वत्र सर्वदा सर्वका
ईश्वर है, तिस सत्ताका आभास संवेदन स्फुर्त्ति है तिसकरि नानारूप
जगत् भासता है, कई भिन्नभिन्नरूप निरंतरही उत्पन्न होते हैं,
जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, तैसे देहधारी जैसी वासना करता
है, तिसके अनुसार जगत्विषे विचरते हैं, उपजते हैं, और चक्रकी नाईं
भ्रमते हैं; स्वर्गविषे जो स्थित जीव हैं, सो नरकको जाते हैं, अरु जो

नरकविषे स्थित हैं, सो स्वर्गको जाते हैं, योनिते योन्यंतर अरु द्वीपते द्वीपांतरको जाय प्राप्त होते हैं, अज्ञानकरिकै धैर्यवान् कृपणताको प्राप्त होताहै, अरु कृपण धैर्यको प्राप्त होता है, इसप्रकार भूत उछलते हैं, अरु गिरते हैं, अज्ञानकरिकै अनेक भ्रमको प्राप्त होते हैं, आत्मसत्ता एकरूप स्थित है, स्थिर स्वच्छ अपने आपविषे अचल है, दुःखभ्रम तिसविषे कोऊ नहीं पाता, जैसे अग्निविषे बर्फका कणका नहीं पाता, तैसे जो आत्मसत्ताविषे स्थित हैं, तिनको दुःखक्लेश कोऊ नहीं होता, उनका हृदय शीतल रहता है, सो आत्मसत्ताकी बड़ाई है, संसारविषे यही अवस्था है, जो बडे बडे ऐश्वर्यकारि संपन्न भाग्यवान् दृष्ट आते थे; सो कितनेक दिन पीछे नष्ट होते देखे हैं, तू अरु मैं इत्यादिक भावना आत्माविषे मिथ्या भ्रमकरिकै भासती है, जैसे आकाशविषे दूसरा चन्द्रमा भासता है, तैसे यह बांधव हैं, यह अन्य है, यह मैं हौं, इत्यादिक मिथ्या दृष्टि है, सो तेरी अब नष्ट भई है, संसारकी जो विचारदृष्टि है, जिसकारि जीव नष्ट होते हैं, तिसको मूलते काटिकारि तुम जगत्विषे क्रिया करौ, जैसे ज्ञानवान् जीवन्मुक्त संसारविषे विचरते हैं तैसे विचरौ भारवाहककी नाईं भ्रमविषे नहीं वर्तना जहां नाश करनेहारी वासना उठै, तहां यह विचार करहु कि, यह पदार्थ मिथ्या हैं, तब वासना शांत हो जावैगी, यह बंध है, यह मोक्ष है, यह पदार्थ नित्यहै, इत्यादिक गिनती लघुचित्तविषे उठती हैं, उदारचित्तविषे नहीं उठती, उदारचित्त जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनके आचरणको विचारता हुआ देहदृष्टि नष्ट हो जावैगी, ऐसे विचार कि, जहां मैं नहीं सो पदार्थ कोऊ नहीं, सब मैंही हौं, ऐसा पदार्थ कोई नहीं, जो मेरा नहीं, सब मेराही है, ऐसे विचारकारि देहदृष्टि तेरी नष्ट हो जावैगी, ऐसा जो ज्ञानवान् पुरुष है, सो किसी संसारके पदार्थकारि उद्वेगको प्राप्त नहीं होता, अरु किसी पदार्थके अभाव हुएते आतुर भी नहीं होता, वह चिदाकाशरूप सर्वको सत्य स्थितरूप देखता है, आकाशकी नाईं आत्माको व्यापक देखता है, भाई बांधव भूतजातको अत्यंत असत्यरूप देखता है, नानाप्रकारके

अनेक जन्मविषे भ्रमकरिके अनेक बांधव हो गए हैं, वास्तवते त्रिलोक अरु बांधवविषे भी बांधव वही है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तवर्णनं नाम अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशतितमः सर्गः १९.

पावनबोधवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रसंगऊपर एक पुरातन भाईयोंका इतिहास है, बडे भाईने छोटे भाईसे कहा है, एक मुनीश्वरके दो पुत्र थे, यह बांधव है, यह अन्य है, इसी प्रसंगकेऊपर एक कथा है, सो बंधन अरु मोक्ष आदिक जो नानाप्रकारकी कलना है, तिसको दूर करनेहारी है, पवित्र अरु आश्चर्यरूप कथा है, सो तुम श्रवण करो ॥ हे रामजी! इसी जंबूद्वीपविषे किसी स्थानविषे महेंद्रनामा एक पर्वत है, तहां कल्पवृक्ष है, तिनकी छायाके नीचे देवता किन्नर आय विश्राम करते हैं, तिस पर्वतके बडे शिखर ऊर्ध्वको गए हैं, ब्रह्मलोकपर्यंत प्राप्त भए हैं, तिसके ऊपर देवता सामवेदकी ध्वनि करते हैं अरु गायन करते हैं, किसी ओरते जलकारि पूर्ण बडे मेघ विचरते हैं, कहूं पुष्पकारि पूर्ण लता हैं, कहूं जलके झरने बहते हैं, कंदरोंकेसाथ उछलते हैं, मानों समुद्रके तरंग गाते हैं, कहूं पक्षी शब्द करते हैं, कहूं कंदराविषे सिंह गर्जते हैं, कहूं कल्पवृक्ष कदंबवृक्ष हैं, कहूं अप्सरागण विचरते हैं, गंगाका प्रवाह चला जाता है, किसी स्थानविषे महासुंदर रत्नमणि रमणीय विराजते हैं, तहां गंगाके तटपर स्नाननिमित्त मुनीश्वर विश्राम करता भया; सो कैसा तट है, सुन्दर वृक्ष अरु स्वर्णके कमलकारि शोभता है, तहां महातपस्वी ज्ञानवान् उदारबुद्धि मुनि दीर्घतपा भया है, तपकी मानों मूर्ति स्थित है, मुनि स्त्रीसंयुक्त गंगाके तटपर शोभता भया, तिसके दो पुत्र थे, महासुन्दर चन्द्रमाकी नाईं तिनका मुख था, पुण्य अरु पावन जिनका नाम तिन संयुक्त तटपर रहने लगा, जब केताक काल व्यतीत भया, तब पुण्य नामक जो पुत्र था, सो ज्ञानवान्

होता भया, अरु पावन अर्धप्रबुद्ध भया, जैसे संध्याकी पूर्व अवस्थामें कमल अर्धोन्मीलित होता है, तैसे सो पुण्य गुणोंकरि पावनसों अधिक होताभया; अरु पावनलोलुप अवस्थाविषे रहा, पुण्य ज्ञानवान् भया, जब कालचक्रके फिरते हुए केतेक वर्षगण व्यतीत भए, तब दीर्घतपाका शरीर जर्जरीभूत हो गया, शरीरकी क्षणभंगुर अवस्था देखिकरि वृत्ति देहते विरक्त करता भया, अर्थ यह कि, विदेह होनेकी इच्छा करता भया, तब दीर्घतपाको पुर्यष्टका कलनारूप शरीरको त्यागत भई, जैसे सर्प कंचुकीको त्याग देवै, तैसे पर्वतकी कंदराविषे जो आश्रम था, तिसविषे शरीरको उतारि दिया, तब कलनाते रहित अचैत्य चिन्मात्र सत्तास्वरूपविषे स्थित भया, रागद्वेषते रहित जो पद है, तिसविषे शरीरको त्यागिकरि प्राप्त भया, जैसे धूम्र आकाशविषे जाय स्थित होवै, तैसे चिदाकाशविषे स्थित भया, तब मुनीश्वरकी स्त्री भर्त्ताका शरीर प्राणोंते रहित देखत भई, जैसे दंडते कमल काटा होवै, तैसे चित्तविना शरीरको देखत भई, चिरपर्यंत योगकर्म किया था, तिसकरि अपने शरीरको त्यागने लगी, तब प्राण अरु पवनको वश करिकै शरीरको त्यागत भई, जैसे भँवरा कमलिनीको त्यागै तैसे त्यागिकरि भर्त्ताके पदको प्राप्त भई, जैसे आकाशविषे चंद्रमा अस्त होता है, अरु तिसकी प्रभा तिसके पाछे अदृष्ट होवै, तैसे दीर्घतपाकी स्त्री दीर्घतपाके पाछे अदृष्ट भई, जब दोनों विदेहमुक्त भए, तब पुण्य जो बडा पुत्र था, तिसके दैहिक कर्मविषे सावधान होइकरि कर्म करने लगा, अरु पावन मातापिताते रहित दुःखको प्राप्त भया, शोककरिकै चित्त उपहत व्याकुल होगया, वनकुंजोंविषे भ्रमने लगा, जब पुण्य माता पिताकी देहादिक क्रिया कर रहा, तब जहां पावन शोककरि विलाप करता था तहां आया, अरु शोकसंयुक्त भाईको देखिकरि कहत भया ॥ पुण्य उवाच ॥ हे भाई ! शोकगणको क्यों प्राप्त भया हैं, जो वर्षाकालके मेघवत् आंसुओंका प्रवाह चला जाता है, ऐसा रुदन तू करता है, हे बुद्धिमान ! तू किसका शोक करता हैं, तेरे पिता अरु माता तौ आत्मपदको प्राप्त भये हैं, जो मोक्षपद है, सोई सर्व जीवोंका स्थान है, अरु ज्ञानवान्का स्वरूप है, यद्यपि

सबका अपना आप स्वरूप एकही है, तौभी ज्ञानवान्को इसप्रकार भासता है, अरु अज्ञानीको ऐसे नहीं भासता, सो तौ वह ज्ञानवान् थे, अपने स्वरूपको प्राप्त भये हैं, तिनका शोक तू किसनिमित्त करता है, यह क्या भावना तुझने बांधी है, मोक्षदायक जो संसारविषे शोक है, सो तू करता नहीं अरु जो शोक करने योग्य नहीं सो करता है; न वह तेरी माता थी, न वह तेरा पिता था, न तू उनका पुत्र था अरु कई तेरे माता पिता हो गए हैं, अरु कई पुत्र हो गए हैं, असंख्यवार तू इनका पुत्र हुआ है, अरु असख्य पुत्र उनने उत्पन्न कियेहैं, जैसे नदी अनेक तरंगोंको उत्पन्न करती है, तैसे अनेक तेरे पिता माता हुए हैं, अरु तू उनका पुत्र होइकरि मरगया है, जैसे पत्र फूल फल लता वृक्षमें लगते हैं, अरु नष्ट हो जाते हैं, ऐसे पुत्र मित्र बांधवके समूह तेरे जन्मजन्मके बीति गए हैं, जैसे ऋतुऋतुविषे बडे वृक्षोंकी शाखामें फल होते हैं, अरु नष्ट होजाते हैं, तैसे जन्म होते हैं, अरु नष्ट होते हैं, तू काहेको मातापिताके स्नेहकारि शोक करता है, अपर जो तेरे सहस्रों माता पिता होइकरि बीति गए हैं, तिनका शोक काहेको नहीं करता, जो तू इस जन्मके बांधवोंका शोक करता है, तौ उनका भी शोक कर ॥ हे महाभाग ! जो प्रपच तुझको दृष्ट आता है सो जाग्रत् भ्रम है, परमार्थते न कोऊ जगत् है, न कोऊ मित्र है, न कोऊ बांधव है, जैसे मरुस्थलविषे बड़ी नदी भासतीहै परंतु तिसविषे जलका एक बूद भी नहीं पाता तैसे वास्तवते जगत्कछु नहीं पाता, जोबड़े लक्ष्मीवान् तुझकोभासते हैं, छत्र चामरों संपन्न शोभते हैं, सो यह लक्ष्मी चंचल स्वरूप है, केते दिनोंतेअभाव होजातेहैं ॥ हे पुत्र ! तू परमार्थदृष्टिकरिके विचारि देख न तू है, न जगत्है, यहदृश्य भ्रांतिरूप है, इसको अंतरते त्याग इस मायादृष्टिकरि बारंबार उपजता है अरु विनशता है, यह जगत्अपने संकल्पते उपजा है, इसविषे सत् पदार्थकोऊ नहीं अज्ञानरूप मरुस्थल है तिसविषे जगत्रूपी नदी है; तिसते शुभ अशुभरूपी तरंग उपजते हैं; बहुरि नष्ट हो जाते हैं ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे पावनबोधवर्णनं नाम एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः २०.

पावनबोधवर्णनम् ।

पुण्य उवाच ॥ हे भाई ! कई माता; कई पिता हो होकरि मिटि गए हैं, जैसें वायुसों धूलिके कण उड़ते हैं, तैसे बांधव हैं, न कोऊ मित्र है न कोऊ शत्रु है, संपूर्ण जगत् भ्रांतिरूप है, तिसविषे जैसी भावना फुरती है, तैसेही हो भासती है, बांधव मित्र पुत्र आदिकोंविषे स्नेह होता सो मोहकारि कल्पित है, अपने मनकारि मातापितादिक संज्ञा कल्पी है, प्रपंचविषे जैसी संज्ञा कल्पता है, तैसी हो भासती है. जहां बांधवकी भावना होती है, तहां बांधव भासता है, जहां औरकी भावना होती है, तहां और हो भासता है, अरु जो अमृतविषे विषकी भावना होती है, तौ अमृत भी विष होता जाता है, कछु अमृतविषे विष नहीं, भावना-रूप भासताहै, तैसे न कोऊ बांधवहै, न कोऊ शत्रु है, विद्यमान सर्वकाल एक सर्वगत सर्वात्मा पुरुष स्थित है तिसविषे अपनी अरु औरकी कल्पना कोऊ नहीं अरु जेते कछु देहादि हैं सो रक्तमांसादिक समूह कारि रचे हैं तिनविषे अहं सत्ता सो कौन है ? अहंकार अरु चित्त बुद्धि मन कौन है, परमार्थदृष्टिकारि यह तौ कछु नहीं विचार कियेते न तू है न मैं हौं पुण्य अरु पावन दोनों मिथ्या ज्ञानकारि भासते हैं एक अनंत चिदाकाश आत्मसत्ता सर्वदा है, तिसविषे तेरी माता कौन है, अरु पिता कौनहै, सर्व मिथ्या भ्रमकारिकै भासता है, वास्तवते कछु नहीं, शरीरकारि देखिये, तौ जेते कछु शरीर हैं; सो पंचतत्त्वोंकारि रचे जडरूपहैं; तिनविषे जो चेतन है, सो तौ एकरूप है, तिसविषे अपना अरु पराया कौनहै, इस भ्रमदृष्टिको त्यागिकारि तत्त्वका विचार कर, मिथ्या भावनाकारिकै माता-पिताके निमित्त क्यों शोकवान् हुआ है, जो सम्यक्दृष्टिको आश्रय कारिकै तिस स्नेहका शोक कर्त्ता है, तौ और जन्मोंके तेरे बांधव मित्र हैं, तिनका शोक क्यों नहीं करता, अनेक पुष्पलताविषे तू मृगपुत्र हुआ था, तिस जन्मके तेरे अनेक मित्र बांधव थे, तिनका शोक क्यों नहीं करता अनेक कमलोंसंयुक्त तालाबमें हस्ती आय विचरे थे, तहां तू हस्तीका

पुत्र था, तिन हस्ती बांधवोंका शोक क्यों नहीं करता, बडे वनविषे वृक्ष हुए थे, तेरे साथ फल पत्र हुए थे, अनेक वृक्ष तेरे बांधव थे, तिनका शोक क्यों नहीं करता, बहुरि नदी तलावविषे मत्स्य हुए थे, तिन मत्स्य जातिके बांधव थे, तिनका शोक क्यों नहीं करता, बहुरि दशार्ण देशविषे काक वानर हुआ, तुषार्ण देशविषे तू राजपुत्र हुआ बहुरि वनकाक हुआ, वंगदेशविषे तू हाथी भया, विराज देशविषे तू गर्दभ हुआ, सावल देशविषे सर्प भया, अरु वृक्ष हुआ, वंग देशविषे गृध्र हुआ, मालव देशविषे पर्वतविषे पुष्पलता हुआ, मंदराचल पर्वतविषे गीदड़ हुआ, कौशल देशविषे तू ब्राह्मण भया, वंग देशविषे तीतर हुआ, तुषार देशविषे घोड़ा भया, बहुरि कीट अवस्थाविषे अनेक बार भया, बहुरि एक नीच ग्रामविषे बछरा हुआ, पंचदश मास तहां रहा, बहुरि एक वनविषे तडाग था, तहां कमल पुष्पविषे भ्रमर भया, सो तू मेरा भाई है, इत्यादिक अनेक जन्म तैंने पायेहैं, जंबूद्वीपविषे तू अनेकबार उत्पन्न भया है ॥ हे भाई! इसप्रकार वासनापूर्वक वृत्तांत मैंने कहाहै, जैसी वासना हुईहै तैसे जन्म तू पायाहै, सो सूक्ष्म निर्मल बुद्धिकरि देखता हौं कि, ज्ञानविना तू अनेक जन्म पाया है, तिन जन्मोंको जानिके किस किस बांधवका शोक करैगा; अरु किसका स्नेह करैगा; जैसे वह बांधव थे, तैसे यह भी जानि ले, अरु मेरे भी अनेक बांधव हुए हैं जिनजिनविषे जन्म पाया है, अरु बीति गए हैं, तैसे सर्व मेरे स्मरणविषे आते हैं, अरु अब मुझको अद्वैत ज्ञान भया है ॥ हे भाई! त्रिगंग देशविषे मैं तोता भया, तडागके तटपर हंस भया हौं, पंखीविषे काक हुआ हौं; बहुरि बेलि हुआ हौं, वंगदेशविषे वृक्ष हुआ, इस वन पर्वतविषे बडा उष्ट्र होइकरि विचरा हौं, पौंड्रदेशविषे राजा हुआ हौं सह्याचल पर्वतकी कंदरविषे गीदड हुआ हौं, सो तू वहां बडा भाई भया तहां मैं मृग होइकरि दश वर्ष रहा, बहुरि पंचमास मृग रहा, सो तेरा भ्राता होइकरि रहा, सो तेरा बडा भ्राता हौं, इसप्रकार ज्ञानते रहित वासना कर्मके अनुसार जन्मविषे भ्रमते फिरे हैं; मैं तुझको सर्व कहा है, सब मुझको स्मरणविषे आता है, इसप्रकार जगज्जालकी स्थिति मैं तुझ-

कोकहीहै, तेरे मेरे अनेक जन्मके माता पिता भाई मित्र भए हैं, तिनका शोक तू क्यों नहीं करता? यह संसार दुःखसुखरूप अप्रमाण भ्रमरूप है, इस कारणते सबको त्यागिकारि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, सब प्रपंच भ्रांतिरूप है, इसकी वासना त्याग, जब अहंकार वासनाको त्याग करै, तब तिस पदको प्राप्त होवैगा, जहां ज्ञानवान् प्राप्त होते हैं, ताते हे भाई! यह जो जीवभाव है, जन्ममरण ऊर्ध्व जाना बहुरि गिरना यह जो व्यवहार है, तिसविषे बुद्धिमान् शोकवान् नहीं होता, दुःखके निवृत्ति अर्थ अपने स्वरूपका स्मरण करते हैं, सो स्वरूप भावअभावते रहित जरामरणते रहित नित्य शुद्ध परमानंद है, तू तिसका स्मरण कर, मूढ मत होहु, तुझको न सुख है, न दुःख है, न जन्म है, न मरण है, न माता है, न पिता है, तू एक अद्वैतरूप आत्मा है, और किसीके साथ संबंध नहीं, काहेते कि, इतर कछु नहीं॥ हे साधु! यह जो नानाप्रकारका संसारविषयसंयुक्त यंत्र है, अज्ञानरूप नटुआ इसको ग्रहण करता है, इष्ट अनिष्टकारि बंधायमान होता है, जो आत्मदर्शी पुरुष हैं, तिनको कछु क्रिया स्पर्श नहीं करती, केवल सुखरूप हैं, अरु जो अज्ञानी है, सो देह इंद्रियोंके गुणोंविषे तद्रूप हो जाता है; इष्ट अनिष्टकारि सुखदुःखका भोक्ता होता है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो देखनेहारे साक्षीभूत होते हैं, कर्ता हुआ भी अकर्तारूप हैं, जैसे दीपक प्रकाशरूप होइकारि रात्रिको सब जगतके अर्थ सिद्ध करता है, अरु अपनी इच्छाते रहित है, ताते अकर्ता है, तैसे ज्ञानवान् देह, इंद्रियोंके कर्मकरताभी अकर्ताहै, इष्टअनिष्टकी प्राप्तिविषे रागद्वेषते रहित है; जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब आइ पड़ता है, परंतु दर्पण भले बुरे रंगकारि रंजित नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् रागद्वेषकारिकै रंजित नहीं होता, सब इच्छाते अरु भयकलनाते रहित स्वच्छ आत्मसत्ता सदा प्रफुल्लितरूप हैं, पुत्र कलत्र बांधवोंके स्नेहते जिसका हृदयकमल रहित है, सर्व इच्छा अहं ममते रहित अपने स्वरूपविषे संतुष्टवान् होता है, ताते मिथ्या देहादिकोंकी भावनाको त्यागिकारि अपने नित्य शुद्ध शांत परमानंदस्वरूपविषे तू भी स्थित होहु, तू परब्रह्मरूप है, अरु अति निर्मलरूप है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे पावनबोधो नाम विंशतितमः सर्गः॥ २०॥

एकविंशतितमः सर्गः २१.

तृष्णाचिकित्सोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच॥हे रामजी ! जब इसप्रकार पुण्यने पावनको बोध उपदेश किया, तब पावन बोधको प्राप्त भया, जैसे प्रातःकालविषे पृथ्वी प्रकाशवान् होती है, अरु तम नष्ट हो जाता है,तैसे पावनको बोध प्राप्त भया,तब दोनों ज्ञानवान्के पारगामी होइकरि वनविषे विचरने लगे, निरिच्छित आनंदित पुरुष चिरकालपर्यंत विचरत भये, बहुरि दोनों विदेहमुक्त निर्वाणपदको प्राप्त हुए, जैसे तेलते रहित दीपक निर्वाण हो जाता है, तैसे प्रारब्ध कर्मके क्षीण हुएते दोनों विदेहमुक्त भए ॥ हेरामजी ! इसप्रकार तू भी जान, जैसे वह मित्र बांधव धनादिकके स्नेहते रहित होइकरि विचरें, तैसे तुमभी स्नेहते रहित होइकरि विचारौ, जैसे उन्होंने विचार किया, तैसेतू भी कर इस मिथ्यारूप संसारविषे किसकी इच्छा करै, और किसका त्याग करै,ऐसे विचारकरि अनंतइच्छा अरु तृष्णाका त्यागकरना यह औषध है, इच्छा तृष्णाकी पालना औषध नहीं काहेते जो पालनेकरि पूर्ण कदाचित् नहीं होती, जेता कछु जगत् है, सो चित्तते उत्पन्न भया है, चित्तके नष्ट हुएते संसारदुःख नष्ट हो जाता है, जैसे काष्ठके पावनेकरि अग्नि बढता जाता है, अरु काष्ठोंते रहित शांत हो जाता है, तैसे चित्तकी चिंतवनाकरिकै, जगत् विस्तारको पाता है, चिंतवनाते रहित शांत हो जाता है ॥ हे रामजी ! ध्येयवासनावान् त्यागरूप रथपर आरूढ होइकरि होहु, अरु करुणा दया उदारतासंयुक्त होइकरि लोकोंविषे विचरहु, इष्ट अनिष्टविषे रागद्वेषते रहित होहु, यह ब्रह्मस्थिति तुमको कही, निष्काम निर्दोष स्वस्थरूपको पाइकरि बहुरि मोहको प्राप्त नहीं होता, इसका परम आकाशही हृदयमात्र विवेक है, बुद्धि इसकी सखी है, जिसके निकट विवेक अरु बुद्धि है, सो परम व्यवहार करते भी संकटको प्राप्त नहीं होते, ताते तू परम विवेक अरु बुद्धिको संग लेकरि जगत्विषे विचरैगा, तब संकट दुःखकरि मोहित न होवैगा नानाप्रकारके दुःख संकट स्नेह आदिक विकाररूप समुद्रहै, तिसके तरनेनि-

मित्त एक अपना धैर्यरूपी बेड़ा है और कोऊ उपाय नहीं सो धैर्य क्या है दृश्य जगत्सों वैराग्य अरु सच्छास्त्रका विचार अरु श्रेष्ठ गुण अभ्यास संयुक्त आत्मपदकी प्राप्ति होती है, सो आत्मपद त्रिलोकीके ऐश्वर्यरूपी रत्नोंका भंडार है, जो त्रिलोकीके ऐश्वर्यकारि भी नहीं पाता, सो वैराग्यविचार अभ्यास बड़े गुणोंकारि चित्तके धारणेसों पाता है, तबलग यह पुरुष जगत्कोशविषे उपजता है, जबलग मन तृष्णारूपी तापते रहित नहीं होता तबलग कष्ट है, जब आत्मविवेकसों मन पूर्ण होता है, तब सर्व जगत् अमृतरूप भासता है, जैसे जूतीके पहिरनेकारि पृथ्वी सर्व चर्मसों वेष्टित होजाती है, तैसे पूर्णपद इच्छा तृष्णाके त्यागनेकारि पाता है, जैसे शरत्कालका आकाश मेघते रहित निर्मल होता है, तैसे इच्छाते रहित पुरुषनिर्मल होता है, जिन पुरुषोंके हृदयविषे आशा फुरती है तिसके वश हुए शून्यचित्त हो जाता है, जैसे अगस्त्य मुनिने समुद्रको पान किया तब समुद्र जलते रहित शून्य हो गया, तैसे आत्मजलके रहित समुद्रवत् चित्त शून्य हो जाता है, जिस पुरुषके चित्तरूपी वृक्षविषे तृष्णारूपी चंचल मर्कटी रहती है, तिसको स्थिर होने नहीं देती, क्षोभायमान सदा होती है, अरु जिसका चित्त तृष्णाते रहित है, तिस पुरुषको तीनों जगत् कमलकी डोडीवत् हो जाते हैं, योजनोंके समूह गोपदवत् सुगम हो जाते हैं अरु महाकल्प अर्धनिमेषवत् होता है ॥ हे रामजी ! ऐसा शीतल चंद्रमा अरु हिमालय पर्वत भी नहीं, ऐसा शीतल केलेका वृक्ष अरु चंदन भी नहीं, जैसा शीतल चित्त तृष्णाते रहित होता है पूर्णमासीका चंद्रमा अरु क्षीरसमुद्र भी ऐसा सुंदर नहीं होता, अरु लक्ष्मीका मुख भी ऐसा नहीं होता, जैसा इच्छाते रहित मन शोभायमान होता है, जैसे चंद्रमाकी प्रभाको मेघ आच्छादि लेता है, अरु जैसे शुद्ध स्थानको अपवित्र लेपन मलिन करता है; तैसे अहंतारूप पिशाचिनी पुरुषोंको मलिन करती है, चित्तरूपी जो वृक्ष है, तिसके बड़े टास दिशा विदिशा पसर रहे हैं, सो आशारूप हैं, जब विवेकरूपी कुहाडेसे तिसको काटै तब अचित्त पदकी प्राप्ति होवै, अरु जिनकी अनेक शाखा हैं, तिनको जब काटै तब एक स्थानरूपी चित्त रहै, अविवेक अधैर्य शाखा तृष्णासंयुक्त

हैं, सो अनेक शाखा बहुरि होवैगी, तब आत्मधैर्यको धरहु, जो चित्त वृद्धताको न प्राप्त होवै, उत्तम धैर्यकरिकै चित्त जब नष्ट हो जावैगा, तब अविनाशी पदको प्राप्त होवैगा । हे रामजी ! उत्तम हृदयरूपी क्षेत्र है; तिसविषे जब चित्तकी स्थिति होती है; तब आशारूपी दृश्यको नहीं उपजने देती, ब्रह्मरूप शेष रहता है, जब तुम्हारा चित्तवृत्तिते रहित अचित्तरूप होवैगा, तब मोक्षरूप जो विस्तृत पद है, सो प्राप्त होता है, अरु चित्तरूपी उलूक पक्षी है, तिसकी तृष्णारूपी स्त्री है, ऐसा पक्षी जहां विचरता है, तहाँ अमंगलको विस्तारता है, जहां उलूकपक्षी विचरते हैं, तहाँ उजाड़ होती है, विवेकादि जन ताते रहित हो गये हैं; ताते तू चित्तकी वृत्तिते रहित होउ, ऐसे होइकरि विचरैगा, तब अचिंत्य पदको प्राप्त होवैगा, जैसी २ वृत्ति फुरती है, तैसा तैसा रूप जीवको हो जाता है, इस कारणते चित्त उपशमके निमित्त तुम यही वृत्ति धरौ, जिसकरि आत्मपदकी प्राप्ति होवै ॥ हे महात्मा पुरुष ! जिसको संसारके पदार्थोंकी इच्छा ईषणा उपशम हुई है, अरु भाव-अभावते मुक्त भया है चित्त जिसका, सो उत्तम पदको पाता है, अरु जिसका चित्त आशारूपी फाँसीसे बांधा है, सो मुक्त कैसे होवै, आशा-संयुक्त कदाचित् मुक्त नहीं होता, अरु सदा बंधायमान रहता है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे तृष्णाचिकित्सोपदेशो नाम एकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशतितमः सर्गः २२.

विरोचनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो मैंने तुमको उपदेश किया है; तिसको विचारौ; हे रघुकुलआकाशके चंद्रमा ! बलवंत बुद्धिसों मेरे वचनोंको विचारिकरि निर्मल ज्ञानको प्राप्त होहु ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्व धर्मोंके वेत्ता ! तुम्हारे प्रसादते जो कछु जानने योग्य था, सो जाना है, अरु पाने योग्य पद पाया है, निर्मल पदविषे विश्राम किया है, कि भ्रमरूपी मेघते रहित शरत्कालके आकाशवत् निर्मलचित्त भया हौं,

मोहरूपी अहंकार नष्ट हो गया है, अमृतकरिकै हृदय पूर्णमासीके चंद्रमावत् शीतल भया है, संशयरूपी मेघ नष्ट हो गया है, परंतु तुम्हारे वचनोंरूपी अमृतको पान करता तृप्त नहीं होता, अरु जिसप्रकार बलिको विज्ञानबुद्धिभेद प्राप्त भया है, सो बोधकी वृद्धिके निमित्त मुझको ज्योंका त्यों कहो, नम्रीभूत शिष्यप्रति कहते हुए बड़े खेद नहीं मानते, ताते प्रगट कर कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राघव ! बलिका जो उत्तम वृत्तांत है सो मैं कहता हौं, सो तू श्रवण कर, तिसकारि निरंतर बोधको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! इस जगत्की किसी एक दिशाविषे जिसका पाताल नाम प्रसिद्ध है, सो इस लोकके अधः पृथ्वीविषे स्थित है, तिस पातालविषे बलिराजा रहता था, महाक्षीरसमुद्रकी नाईं सुंदर उज्ज्वल स्थान है, कहूं महासुंदर नागकन्या विराजती हैं, कहूं विषधर सर्प विराजते हैं, सहस्र शीश जिनके, कहूं दैत्यपुत्र विराजते हैं, कहूं कट कट शब्द होते हैं, कहूँ सुंदरसुखके स्थान हैं, कहूं जीवोंके परंपरासमूह नरकोंविषे जलते हैं; कहूं दुर्गंधके स्थान हैं, सप्त पाताल हैं, सबविषे जीव स्थित हैं, कहूं रत्नकारि खचित स्थान हैं, कहूं देवता अरु दैत्य जिसके चरणोंको शीशपर धरते हैं ऐसे भगवान् कपिलदेव बैठे हैं, कहूं सुगंधित रत्नका बाग है, ऐसे पातालविषे दो भुजाकारि पालित करी है पृथ्वी जिसने, ऐसा दानवोंविषे श्रेष्ठ विरोचनका पुत्र राजा बलि होता भया, सर्व देवता विद्याधर अरु किन्नर जिसने लीलाकारिकै जीतेहैं, अरु त्रिलोकी अपने वश कर छोडीहै, सब टहलुएवत् हो रहेहैं सर्व देवताओंका राजा जो इंद्र है, सो तिसके चरणसेवनकी वांछा करता है, अरु त्रिलोकीविषे जो जाति जातिके रत्न हैं, सो सब तिसके विद्यमान रहते हैं, सब शरीरोंकी रक्षा करनेहारा, अरु भावनाके धर्मोंको धरनेहारा, विष्णुदेव जिसका द्वारपाल है, अरु ऐरावत हस्ती, जिसके गंडस्थलसे मद झरता है; सो इंद्रका हस्ती तिसकी वाणी सुनि भयमान होता है, जैसे मोरकी वाणी सुनिकारि सर्प भयवान् होता है, ऐसा तिसका तेज, जैसे सप्त समुद्रोंका जल कुहिड क्षीर शोष लेती है, जैसे प्रलयकालके द्वादश सूर्यकारि समुद्र सूखने लगता है, अरु ऐसे यज्ञ करे जिसके

क्षीर घृतकी आहुतिका धुँवा मेघबादल होइकरि पर्वतोंपर विराजे, अरु जिसकी दृढ दृष्टिसों देखनेकारि कुलाचलपर्वत भी नम्रीभूत हो जावै, जैसे फलोंकरि पूर्ण लता नमती हैं तैसे, अरु लीला करिकै भुवनको विस्तारसहित जीता है, त्रिलोकीको जीतिकारि दशकोटि वर्षपर्यंत राजा बलि राज्य करता भया, तब एक दिन राजा बलि सुमेरुके शिखर जैसे ऊंचे झरोखेविषे जाय स्थित भया, सो राजा बलिने युगोंके समूह व्यतीत हुए देखे हैं, देवता दैत्य उपजते अरु मिटते जिसने अनेक बार देखे हैं, त्रिलोकीके भोग भोगे हैं, सो भोगोंते उद्वेग पाया, तब ऊंचे झरोखेमें एकलाही बैठिकरि संसारकी स्थितिको चिंतवत भया, सो इस बडे राज्य चक्रवर्तीकरि मुझको क्या प्रयोजन है यद्यपि त्रिलोकीका राज्य बड़ा है, तौ भी क्या आश्चर्य है, इसविषे मैं चिरकाल भोग भोगता रहा हौं, परंतु शांति प्राप्त न भई, अरु यह भोग आपातरमणीय हैं, उपजिकरि बहुरि नष्ट हो जाते हैं, भोगोंकरि शांति-सुख प्राप्त नहीं भया, अरु वारंवार मैं वही कर्मव्यवहार करता हौं, बहुरि दिन, रात्रि, बहुरि वही क्रिया करनी, तिसविषे लज्जा भी नहीं आती, अरु वही स्त्री आलिंगन करनी; बहुरि भोजन करना, पुष्पोंकी शय्यापर शयन करना; क्रिया करनी यह कर्म बड़ेको लज्जाका कारण हैं, तिस तिसमें निरस व्यवहार करना, जो एकबार निरस हुआ अरु उस कालमें तृप्त हुआ, बहुरि वारंवार दिनदिनविषे करते हैं, यह मैं मानता हौं, और बुद्धिमानोंको हरने योग्य लज्जाका कारण है, जीवोंके चित्तविषे वृथा संकल्प विकल्प उठते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, अरु मिटते हैं, तैसे संकल्प इच्छाजाल उठते हैं, अरु मिटते हैं, सो उन्मत्तकी नाईं जीवोंकी चेष्टा है, यह तौ हांसी करने योग्य बालकोंकी लीला है, मूर्खता-करि अनर्थोंको पसारती है, इसविषे जो कछु बडा उदार फल होवै सो मैं नहीं देखता, इसविषे भोगोंते इतर कार्य कछु नहीं पाता, जो कछु इसते रमणीय अरु अविनाशी होवै, तिसको शीघ्रही चिंतन करौं; ऐसे विचारिकरि कहने लगा, बलि जो है दैत्योंका राजा, सो अपने मनविषे जगत्को नाशवान् जानिकरि तिसी क्षणमें स्मरण करने लगा कि, मैंने

जो प्रथम भगवान् विरोचनसों पूछा था, मेरा पिता विरोचन आत्मतत्त्वका ज्ञाता था, जिसते लोकोंका आदि अंत न था. अर्थ यह कि, सर्व लोकोंविषे गमन किया था, तिससों मैंने प्रश्न किया था ॥ हे भगवन् महात्मा ! जहां सर्व दुःखोंका अरु सर्व सुखोंका अंत हो जाता है, अरु सर्व भ्रम शांत हो जाता है, सो कौन स्थान है सो मुझको कहौ, जहां मनका मोह नाश हो जाता है, अरु सर्व इच्छाते मुक्त होता है, रागद्वेषते रहित जिसविषे सर्वदा विश्रामवान् होता है, बहुरि क्षोभ नहीं रहता, अरु हे तात ! वह कौन पद है, जिसके पायेते और पावना कछु नहीं रहता, अरु जिसका दर्शन देखेते और देखना कछु नहीं रहता, यद्यपि अत्यंत जगत्के भोगपदार्थ हैं, तौ भी सुखदायक नहीं भासते हैं, काहेते कि क्षोभ करते हैं, अरु योगीश्वरोंके मन भी मोहिकरि गिर पडते हैं ॥ हे तात ! जो सुख सुंदर विस्तीर्ण आनंद है, सो तैसा मुझको कहौ, तिसविषे स्थित हुआ मैं सदा विश्राम पाऊंगा ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे विरोचनवर्णनं नाम द्वाविंशतितमः सर्गः॥२२ ॥

त्रयोविंशतितमः सर्गः २३.

बलिवृत्तान्तविरोचनगाथावर्णनम् ।

विरोचन उवाच ॥ हे पुत्र ! एक अतिविस्तीर्ण विपुल देश है, तिसविषे अनेक सहस्र त्रिलोकियां भासती हैं, अरु जहां न समुद्र है, न जलधारा है, न पर्वत है, न वन है, तीर्थ है, न नदियां हैं, न तलाब हैं, न पृथ्वी है, न आकाश है, न नंदनवन है. न पवन है, न अग्नि है, न चंद्रमा है, न सूर्य है, न लोक हैं, न देश, न देवता, न दैत्य, न यक्ष, न राक्षस हैं. न वन हैं, न कमलोंकी शोभा है, न काष्ठ तृणभूत हैं, न चर, न अचर, न जल, न अग्नि, न दिशा हैं, न ऊर्ध्व, न अध, न मध्य है, न प्रकाश है, न तम है, अहं नहीं, न विष्णु इंद्र रुद्रादिक हैं, सो एकही है, अरु महानता नानाप्रकार प्रकाशको धरनेहारा है, अरु सर्वका कर्त्ता सर्वव्यापक है, अरु सर्वरूप है, सो तूष्णींभावसों स्थित है, तिसने सर्व

मंत्रियोंसहित एक मंत्री संकल्प किया, सो मंत्री जो न बनै तिसको शीघ्रही बनाय लेता है, जो बनै तिसको न बनानेको भी समर्थ है, आपते कछु नहीं भोगता, अरु जाननेको समर्थ है, केवल राजाके अर्थ सर्व कार्यका कर्त्ता है, यद्यपि आप जड़ अज्ञ है, तौ भी राजाके बलकरिकै तनुतासों ज्ञाता अरु कार्य करता है, यही सब कार्योंको करता है, तिसका महीपति जो राजा है, सो एकताविषे केवल अपने आपविषे स्थित है ॥ बलिरुवाच ॥ हे प्रभु ! आधिव्याधि दुःखते रहित जो प्रकाशवान् है, सो देश कौन है ? अरु प्राप्ति किस साधनसों है ? अरु आगे किसने पाया है ? अरु ऐसा मंत्री कौन है ? अरु महाबलि-राजा कौन है ? जो जगत्जालसंयुक्त हमने भी नहीं जीता, हे देव ! यह जो अपूर्व आख्यान तुमने कहा, सो आगे श्रवण भी नहीं किया था, मेरे हृदय आकाशविषे संशयरूपी बादर उदय भया है, सो वच-नरूपी पवनकरिकै निवृत्त करहु ॥ विरोचन उवाच ॥ हे पुत्र ! तिस देशविषे मंत्री भगवान् अनेक कल्प देवता अरु असुरगण होइकरि एक क्षणभी वश नहीं होता, सहस्रनेत्र जो इंद्र है, तिसके वश नहीं होता, यम कुबेर नहीं वश कर सकते, देवता असुरोंकरि भी जीता नहीं जाता, मुसल, वज्र, चक्र, गदादिक षडंग तिसकरि चलाये कुंठित हो जाते हैं, जैसे पाषाणपर चलाये कमल कुंठित होजाते हैं, सो मंत्री अस्त्र अरु शस्त्रकरि वश नहीं होता, बड़े युद्ध कर्मोंकरि नहीं पाता देवता दैत्य सर्वको तिसने वश किया है, विष्णुपर्यंत देवता हिरण्यकशिपु आदिक असुर डारि दिये हैं, जैसे प्रलयकालका पवन सुमेरुके कल्प-वृक्षको गिराइ देता है, नारायणते लेकरि देवता भी वश किये हैं, जैसे आकाशका बटलोईविषे निवास हो जाता है, तिसके प्रमादकरि इस त्रिलोकीको वश कर चक्रवर्त्ती राजावत् स्थित है, सुरअसुरोंके समूह तिस-करि भासते हैं, यद्यपि गुह्य है, गुणहीन है, दुर्मति अरु दुष्ट अहंकार क्रोध है, सो तिसकरि उदय होता है, देवता अरु दैत्यके समूह बहुरि बहुरि उपजते हैं, सो इसकी क्रियाहै; ऐसा मंत्रोंसंयुक्त मंत्री है ॥ हे पुत्र ! जब तिसके राजाको वश करिये तब तिसके मंत्रीको वश करना सुगम होता है, राजाको वश कियेविना मंत्री वश नहीं होता, कबहूँ अंतर रहता

है, कबहूँ बाह्य जाता है; जिस कालमें राजाकी इच्छा होती है कि, मंत्री अपनेको जीतै तब यत्नविना जीति लेता है, ऐसा बलि मल्ल है, जिसकरि त्रय जगत् उल्लासको प्राप्त भए हैं, कैसा मंत्री मानो सूर्य है, तिसके उदय भयेते त्रिलोकीरूपी कमलोंकी खानि विकासको प्राप्त होती है, अरु तिसके लय हुएते जगत्रूपी कमल लय हो जाता है ॥ हे पुत्र ! जब जीतनेकी तुझको शक्ति है, तब तू पराक्रमवान् है, जब मोहते रहित एकत्र बुद्धि होवै, तब तिसकरि एकके जीतनेको समर्थ होवैगा, तब धैर्यवान् है, अरु सुंदर वृत्ति तेरी है, काहेते कि तिसके जीतनेते जो नहीं जीता, तिसपरि जीत पाता है, अरु जो तिसको नहीं, जीता, अरु अपर लोक सब जीते हैं, तौ भी जीते अजित हो जावैगा, तिस कारणते जो तू अनंत सुख चाहता है, जो नित्य अविनाशी है तौ उसके जीतनेनिमित्त यत्नसों स्थित होहु, अरु बड़े कष्ट चेष्टाकरिकै भी तिसको वश कर, सुर जो हैं देवता, असुर जो हैं दैत्य, अरु यक्ष मनुष्य अरु महासर्प किन्नरोंसंयुक्त अति बली हैं, तौ भी वश सर्व ओरते यत्न विना वश होते हैं, ताते उसको वश कर ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बलिवृत्तांतविरोचनगाथानाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशतितमः सर्गः २४.

बल्युपाख्याने चित्तचिकित्सोपदेशवर्णनम् ।

बलिरुवाच ॥ हे भगवन् ! किस उपायकरि तिसको जीतिये अरु ऐसा महावीर्यवान् मंत्री कौन है, अरु राजा कौन है, यह वृत्तांत सब मुझको शीघ्र कहौ, जो उपाय करौं ॥ विरोचन उवाच ॥ हे पुत्र ! स्थितहुएको भी त्यागने योग्य हैं, ऐसा मंत्री जिस उपायकरि जीतिये, सो भली प्रकार कहता हौं, तू श्रवण कर, तिस युक्ति ग्रहण कियेते शीघ्रही वश होता है, युक्तिविना वश नहीं होता, जैसे बाघको युक्तिकरि वश करता है तैसे जो पुरुष युक्तिकरि मंत्रीको वश करता है, तिनको राजाका दर्शन होता है, तिसकरि परमपदको पाता है, जब राजाका दर्शन होता है, तब मंत्री वश हो जाता है, तिस मंत्रीको वश कियेते बहुरि राजाका

दर्शन होता है, जबलग राजाको न देखा, तबलग मंत्री वश नहीं होता, अरु जबलग मन्त्रीको वश नहीं किया, तबलग राजाका दर्शन नहीं होता, राजाको देखेविना मन्त्री जीतना कठिन है, मन्त्रीके जीते विना राजाको देखना कठिन है, तिसकारणते दोनोंका इकट्ठा अभ्यास कारि राजाका दर्शन अरु मन्त्रीका जीतना अपने पुरुष प्रयत्नकारि शनैः-शनैः अभ्यासते होता है, दोनोंके संपादनकारि यह पुरुष शुभताको प्राप्त होता है, जब तू अभ्यास करैगा, तब तिस देशको प्राप्त होवैगा, यह अभ्यासका फल है ॥ हे दैत्यराज ! जब तिसको पावैगा, तब रंचक शोक भी तुझको न रहैगा, सब यत्नोंते शांत हो जावैगा, नित्य प्रफुल्लित प्रसन्न रहैगा जो साधुजन है, सो सर्व संशयते रहित तिस देशविषे स्थित होते हैं ॥ हे पुत्र ! सुन, वह देश तुझको प्रगट कर कहता हौं, देश नाम मोक्षका है, जहां सर्व दुःख नष्ट हो जाते हैं, अरु राजा तिस देशका आत्मभगवान् है, जो सर्व पदोंते अतीत है, तिस महाराजाने मंत्री मनको किया है, सो मन परिणामको पाइकारि सर्व ओरते विश्वरूप भया है, जैसे मृत्तिकाका पिंड घटभावको प्राप्त भया है, जैसे धूम्र बादरको धरता है, तैसे मनते विश्वरूप धरा है, तिस मनको जीतेते सब सुख विश्वकेपर जीत पाता है, मनको जीतना कठिन है, परंतु युक्तिसों वश होता है ॥ बलिरुवाच ॥ हे भगवन् ! तिस मन वश करनेको युक्ति मुझको कहौ, जिसकारि दारुण मनको जीतौं ॥ विरोचन उवाच ॥ हे पुत्र ! शब्द, स्पर्श, रूप, रस, अरु गंध जो विषय हैं, तिनकी प्रतिमा जो रस हैं, तिनकी सर्वदा सर्व ओरते आस्था त्यागनी, अर्थ यह कि, नाशवंत भ्रमरूप जानना, यह मनके जीतनेकी परमयुक्ति है, मनरूपी हस्ती विषयरूपी रस मदसों मस्त है, सोई युक्तिकारि शीघ्र दमन हो जाता है, युक्ति कठिन है, अति दुःखते प्राप्त होती है, परंतु अपने अभ्यासकारि सीखनेसों प्राप्त होती है, क्रमकारि अभ्यास किए विषयते विरक्तता सर्व ओरते प्रगट होती है, जैसे रसवान् पृथ्वीते लता उपजती हैं, तैसे जो शठ जीव हैं, सो इनकी वांछा करते हैं, परंतु अभ्यासविना नहीं

प्राप्त होती, अभ्यासवान्‌को यह युक्ति प्रगट होती है, ताते अभ्यासस-
हित युक्तिका आश्रय करौ, जबलग इन विषयोंते पुरुषको विरक्तता नहीं
उपजती, तबलग संसाररूपी अटवीके दुःखोंविषे भ्रमता है, सो विषयते
विरक्तता अभ्यासविना किसीको प्राप्त नहीं होती, जैसे किसी पुरुषको
देशांतरको जाना होवै, सो जब मार्गविषे चलता है, तब पहुँचता हैं
चलनेके अभ्यासविना नहीं पहुँचता, तैसे जब आत्मा ध्येयको पुरुष
निरंतर धरता हैं, तब विषयोंविषे अप्रतीति अभ्यासवान्‌की वृत्ति होती
है, जैसे जलरूप अभ्यासकारिकै बेलिको सिंचता है, तब लता वृद्ध
होती है, ऐसे ऐसे पुरुषार्थकारि सर्व कार्योंको प्राप्त होता है,
इतर नहीं होता, यह निश्चय किया है, जो क्रिया आपकारि आप
करिये; तिसका फल अवश्य प्राप्त होता है, सो लोकोंविषे दैव
कहाता है, जो अवश्य होना है, तिसकी जो नीति है, सो दूर नहीं
होती; सोई दैव शब्द कहिये, नीति कहिये, जो अपने पुरुषार्थका फल
पाता है, जैसे मरुस्थलविषे भ्रमकारि जल भासता है, सम्यक्ज्ञानते भ्रम
निवृत्त हो जाता है, तिस दैव अरु नीतिको अपने पुरुषार्थकारि जीतौ,
जैसा पुरुषार्थकारि संकल्प दृढ करता है, तैसाही भासता हैं, जैसे आका-
शको नीलता ग्रहण करती है, सो नीलता कछु है नहीं, तैसे सुखदुःख
देनेहारा अपर कोऊ नहीं, जैसा संकल्प करता है, तैसा हो भासता हैं,
अरु जैसी नीति होती हैं, तैसा संकल्प करता हैं, सोई नीतिसाथ मिलि-
कारि कदाचित् कर्म करता है, तिसकारि इस जगत् कोशविषे जीव शरीर
धारिकारि फिरता है,जैसेआकाशविषे पवन फिरताहै सो कदाचित् नीतिसों
अरु कदाचित् नीतिसे रहित फिरता है,तैसे दोनोंसीढ़ियां मनविषे होतीहैं,
आकाशरूपी मनविषेनीति अनीतिरूपी वायु फुरताहै; तिसकारण जबलग
मन है. तब लग नीति है, अरु दैव है, मनते रहित न नीति है, न दैवहै,
मनके अस्तभए जो रहता है, सो तैसेही है, जीव पुरुषसों पुरुषार्थकारि
जैसा संकल्प इस लोकविषे दृढ होता है, सो कदाचित् अन्यथा नहीं
होता ॥ हे पुत्र ! अपने पुरुषार्थविना यहां कछु सिद्ध नहीं होता, ताते
परम पुरुषार्थकारि विषयते विरक्त होहु, जबलग विरक्तता नहीं उपजती,

तबलग परम सुखके देनेहारी मोक्षपदवी संसारभयका नाशकर्त्ता नहीं प्राप्त होती, जबलग विषयोंविषे मोहकारण प्रीति है, तबलग संसारदशा डोलायमान करती है, दुःखदायक होती है, सर्पकी नाईं विषको पसारती है, सो अभ्यास किये निवृत्त नहीं होतो ॥ बलिरुवाच ॥ हे सर्व असुरोंके ईश्वर! भोगोंते विरक्तता चित्तविषे कैसे स्थित होती है, जीवोंको दीर्घ जीनेका कारण है ॥ विरोचन उवाच ॥ हे पुत्र! जैसे शरत्कालमें महालतामें फूलसों फल परिपक्क होता है, तैसे आत्मावलोकनहारे पुरुषको भोगोंते विरक्तता प्रगट होती है, आत्माके देखनेकरि विषयोंकी प्रीति निवृत्त हो जातीहै, हृदयविषे स्थित प्राप्त होती है, जैसे कमलोंके उदरविषे सुंदर शोभा स्थित होती है तैसे बीज लक्ष्मी स्थित होतीहै; ताते सूक्ष्म बुद्धि विचारवेत्ताने आत्मदेवको देखिकरि विषयोंकी प्रीति करी है सो सब ओरते निवारहु प्रथम दो भाग दिनके भोग कर्मदेहके कार्य करहु, एक भाग शास्त्रोंका श्रवण विचार करहु, एक भाग गुरुकी सेवा टहल करहु; जब कछु विचार संयुक्त मन होवै तब द्वै भाग वैराग्यसंयुक्त शास्त्रोंको विचारहु अरु द्वैभाग ध्यान अरु गुरुके पूजनविषे रहौ. इस क्रमकरि जीव ज्ञानकथाके योग्य होता है, क्रमकरि निर्मलभावको ग्रहण करता है, शनैःशनैः उत्तम पदकी भावना होतीहै, शास्त्रोंके अर्थविचारविषे चित्तरूपी बालकको परचावहु, जब परमात्माविषे ज्ञान प्राप्त होता है, तब कर्म फांसीते छूटि जाता है, जैसे चंद्रमाके उदय हुएते चंद्रकांतमणि द्रवीभूत होता है, तैसे शीतल हो विराजता है, बुद्धिके विचारसों सर्वदा शम आत्मदृष्टि देखनी अरु तृष्णाका बंधसान त्यागना यह परस्पर कारण है परमात्माके देखनेकरि तृष्णा दूर होजाती है, अरु तृष्णाके त्यागकरि आत्माका दर्शन होता है; जैसे नौकाको मल्लाह ले जाता है अरु नौका मल्लाहको ले जाती है तैसे परमात्माका दर्शन होता है, अरु भोगोंका त्याग होता है, इसकरि परब्रह्मविषे अनत विश्रांति नित्य उदय होती हैं सो मोक्षरूप आनंदउदय होता है तिसका अभाव कदाचित् नहीं होता; सो आनंद जीवोंको आत्मविश्रांतिविना नहीं प्राप्त होता, न तपोंकरि, न दानोंकरि, न तीर्थोंकरि होता है, जब आत्मस्वभावका दर्शन होता है,

तब भोगोंते विरक्तता उपजती है, सो आत्मस्वभावका दर्शन होवैगा प्रयत्नविना और किसी युक्तिकारि नहीं प्राप्त होता है ॥ हे पुत्र भोगोंका त्याग करना, अरु परमार्थदर्शनका यत्न करै, तब ब्रह्मपदविषे विश्रांत परमानंद मोक्षको प्राप्त होता है, ब्रह्माते आदि काष्ठपर्यंत इस जगत्विषे ऐसा आनंद कोई नहीं पाता, जैसा परमात्माविषे स्थित भयेते पाता है, ताते पुरुषप्रयत्नका आश्रय करौ, दैवको दूरते त्यागौ इस मार्गको रोकनेहारे भोग हैं तिनकी निंदा बुद्धिमान् करते हैं, जब भोगोंकी निंदा दृढ भई, तब विचार उपजा है, जैसे वर्षाकाल गएते सर्व दिशा शरत्कालकी निर्मल हो जाती हैं, भोगोंकी निंदाते विचार अरु विचारते भोगोंकी निंदा, यह परस्पर होते हैं, जैसे समुद्रकी अग्निसे धूम उदय होता है, सो बादलरूप होइकारि वर्षणेसों समुद्रको पूर्ण करता है, अरु जैसे मित्र आपसों परस्पर कार्य सिद्धकारि देता है, ताते प्रथम तौ दैवका अनादर करौ, पुरुषप्रयत्नकारि दंतोंसों दंत मरोड भोगोंकी प्रीति त्यागौ, पुरुषार्थकारि प्रथम अविरोध उपजावहु; सो गुणवान् अपने जन्म अरु कल्याणमूर्त्तिको अर्पण करहु, भोगोंते असंग होइकारि निंदा करहु, तब विचार उपजैगा; शास्त्रज्ञानको बहुरि संग्रह करौ, तब परमपदकी प्राप्ति हो जावैगी ॥ हे दैत्यराज ! समय पाइकारि जब तू विषयोंते विरक्तचित्त होवैगा, तब विचारके वशते परमपदको पावैगा; अपने आपविषे जो पावन पद है, तिसविषे भलीप्रकार अत्यंत विश्राम पावैगा; बहुरि कल्पना दुःखविषे न गिरैगा; अंग देशाचारके कर्मकारि अल्पधन उपजावना, बहुरि निंदाकारि साधुसंग लगावना; तिनके संगकारि वैराग्य अरु विचारसंयुक्त हुएते तुझको आत्मलाभ होवेगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बल्युपाख्याने चित्तचिकित्सोपदेशो नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

पचविंशतितमः सर्गः २५.

बलिचिन्तासिद्धांतोपदेशवर्णनम् ।

बलिरुवाच ॥ इसप्रकार मुझको पूर्व पिताने कहा था, अब मैं स्मृति दृष्टिकारि प्रसन्नताको प्राप्त भया हौं अरु भोगोंते, विरक्तता उपजी

है, जो शांत अरु शम निर्मलअमृतरूपी शीतल सुखविषे स्थित होऊं, धन एकत्र करता है, तौ नाश हो जाता है, बहुरि आशा उपजती है, बहुरि धनकारि पूर्ण होता है, बहुरि स्त्रियोंकी वांछा उपजती है, बहुरि अंगीकार करते हैं, अब मैं विभूतिकी स्थितिकारि खेदवान् भया हौं, अहो आश्चर्य है, इस रमणीय पृथ्वीते समशीतल चित्त होता हौं, दुःख सुखकी दशाते रहित सर्व शांतिको प्राप्त होता हौं जैसे चंद्रमाके मंडलविषे स्थित हुआ शमशीतल होता है, तैसे अंतरते हर्षवान् शीतल होता हौं, दुःखरूपी विभूति ऐश्वर्यते रहित हुआ अक्षोभ होवैगा, यह सब मनरूपी बालककी दिन दिन प्रति कला है, अंगोंसों अंग, मांससों मांस, प्रथम मैं स्त्रीसों चढ़ता था मोहकारि मेरी प्रीति बढ़ि गई थी, जो कछु दृष्ट देखनेयोग्य था सो मैंने देखा है सो यह शोक है, जो कछु भोगने योग्य था सो चिरकालपर्यंत अखंड भोगा है, सर्व भूतजातको वश कर रहा हैं तासों क्या भोगनीक हुआ बहुरि २ तिनविषे वही चेष्टाकारि और और देखै, इसकारि चित्त अपूर्व पदार्थको नहीं देखता वही वही जगत्के पदार्थ हैं ताते अपनी बुद्धिकारि सर्वसों निश्चय त्यागकारि पूर्ण समुद्रवत् अपने आपकारि आपविषे स्वच्छ स्वस्थ स्थित होहु, पाताल पृथ्वीविषे स्वर्गविषे स्त्रियां अरु रत्नपन्नगादिक सार हैं सो भी तुच्छ हैं, समय पाइकारि काल ग्रास लेता है एते कालपर्यंत बालक था जो तुच्छ पदार्थ मनके रचे हुए हैं तिनकी इच्छासों दुःखकारि देवताओंसाथ दोष करता था तिनके दुःखोंके त्यागनेकारि क्या महात्माका अनर्थ होवैगा बडा कष्ट है कि, मैंने चिरकाल अनर्थविषे अर्थबुद्धि करी थी अज्ञानरूपी मदकारि मचता था जैसे बालक कूकरोंको सेवता है चंचल तृष्णाकारिकै इस जगत्विषे क्या नहीं किया जो कार्य पाछे तापको बढ़ावते हैं सो मैंने किये हैं, अब पूर्व तुच्छ चिंताकारि क्या मुझको है वर्तमान चिकित्सा पुरुषार्थकारि सफल होवैगा जैसे समुद्र मथनेकारि अमृत प्रगट भया है तैसे अपरिमितरूप आत्माकी भावनाकारि अब सर्व ओरते सुखी होवैगा मैं कौन हौं इस आत्माका दर्शन युक्ति गुरुते पूछौंगा अज्ञानके नाशनिमित्त शुक्र भगवानका चिंतन करौ जो प्रसन्न होइकारि उपदेश

करैगा; तिसकारि अनंत विभव अपने आपविषे आपकारि स्थित होवेगा निष्काम पुरुषोंका उपदेश मेरे हृदयविषे फलैगा ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बलिचिंतासिद्धांतोपदेशो नाम पंचविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशतितमः सर्गः २६.

बल्युपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार चिंतनाकारि बलि नेत्रोंको मूँदत भया, अरु शुक्रजीका ध्यान किया, कैसा शुक्र है, आकाशविषे मंदिर है जिसका, सर्वत्र पूर्ण जो चिन्मात्र तत्त्व है, सदा तिसके ध्यानविषे स्थित है, ऐसे भार्गवका आवाहनरूप ध्यान करत भया, तब शुक्रजी जानता भया, कि हमारे शिष्य बलिने हमारा चिंतन किया, तब चिदात्मस्वरूप भार्गव अपने देहको तहां ले आवत भए, जहां रत्नके झरोंखेविषे बलि बैठा था, तब बलि उज्वल प्रभारूप गुरुको देखिकारि उठा, अरु चित्त प्रफुल्लित हो आया, जैसे सूर्यमुखी कमल सूर्यको देखिकारि प्रफुल्लित होते हैं, तैसे रत्न अर्घ्य पाद्य पुष्पोंकारि चरणवंदना करत भया, रत्नोंकारि अर्घ्य दिया, बडे सिंहासनपर बैठाइकारि कहत भया॥ बलिरुवाच ॥ हे भगवन्! तुम्हारी कृपाते मेरे हृदयते जो प्रतिभा उठती है सो स्थिर होइकारि मुझको प्रश्नविषे जोडती है, जैसे सूर्यकी प्रतिभा जीवको कार्यविषे जोडती है, तैसे अब मैं भोगोंते विरक्त भया हौं, सो कैसे भोग हैं, जो मोहके देनेहारे है, अरु तत्त्वज्ञानकी इच्छा करता हौं, जिसकारि महामोह निवृत्त हो जाता है, इस ब्रह्मांडविषे स्थिर वस्तु कौन है, और केताक तिसका प्रमाण है, इंद्र क्या है, अरु अहं क्या है, मैं कौन हौं, तुम कौन हौ? अरु यह लोक क्या है? इन प्रश्नोंका उत्तर कृपा कर कहौ॥ शुक्र उवाच॥ हे दैत्यराज! बहुत करनेकारि क्या है, मैं आकाशविषे गमनकिया चाहता हौं, ताते सर्वका सार संक्षेपते मैं तुझको कहता हौं, सो श्रवण कर, जो चेतनतत्त्व है, अरु

विस्तृतरूप है; इदं यह सर्व चेतनमात्र है, अरु चेतनही प्रमाण है, तू भी चेतनस्वरूप है, मैं भी चेतन हौं, यह लोक भी चेतनस्वरूप है, यह सबका सार है, इस निश्चयको अंतर दृढ कर धरैगा, तब निर्मल निश्चयात्मक बुद्धिकरि अपनेको आपकरि देखैगा, अरु तिसते विश्रांतिमान् होवैगा ॥ हे रामजी ! जब तू कल्याणमूर्ति है, तब इसी कहनेकरि सब सिद्धांतको प्राप्त होवैगा, सबका सार चिदात्मा है, तिसको पावैगा, अरु जो कल्याणमूर्ति नहीं, तौ बहुरि कहना भी निरर्थक होता है, भस्मविषे आहुतिकी नाईं होता है, चेतनको जो चैत्यकलाका संबंध है, सोई बंधन है, तिसते जो मुक्त है सोई मुक्त है अरु आत्मतत्त्व चेतनस्वरूप चैत्यकलनाते रहित है, यह सर्व सिद्धांतका संग्रह है ॥ हे राजन् ! इस निश्चयको धारि निर्मल बुद्धिसों अपने आपकरि आपको देखौ, यह आत्मपदकी प्राप्ति है; अब मैं आकाशको जाता हौं; सप्त ऋषिसाथ कोऊ देवताका कार्य है, तिसनिमित्त जाता हौं, जबलग यह देह है तबलग मुक्त बुद्धिको यथाप्राप्त कार्य त्यागने योग्य नहीं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ऐसे कहिकरि बडे वेगसाथ आकाशको शुक्र चला, जैसे समुद्रते तरंग उठिकरि लीन हो जावै तैसे शुक्रजी अंतर्धान हो गए ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बल्युपदेशोनामषड्विंशतितमः सर्गः ॥२६॥

सप्तविंशतितमः सर्गः २७.

बलिविश्रांतिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! देवता अरु दैत्यकरि पूजने योग्य भृगुपुत्रशुक्र है, तिसके गमन कियेते बलवानोंविषे श्रेष्ठ जो है बलि, सो मनविषे चिंतवता भया कि, भगवान् शुक्रजी क्या कह गए ? त्रिलोकी चिन्मात्ररूप है, मैं भी चेतन हौं, दिशा भी चेतनरूप हैं, परमार्थते आदि जो चेतन सत्स्वरूप है, तिसते भिन्न कछु नहीं, यह जो सूर्य है, तिसमें चेतन होवै नहीं तौ सूर्यका सूर्यत्वभाव भासै नहीं, अरु यह जो भूमि है, तिसको चेतन चेतै नहीं तौ भूमिविषे भूमित्वभाव कोऊ नहीं पाता, यह जो दश दिशा हैं, इनको चेतन चेतै नहीं तौ दिशाविषे दिशात्वभाव कोई

नहीं रहता, पर्वतविषे पर्वतता भी चेतनविना नहीं, यह जगत्विषे जगत्भाव आकाशविषे आकाशता शरीर लक्षण कोऊ चेतनविना न पाइये इंद्रियां भी चेतन हैं, मन भी चेतन है, अंतर बाह्य चेतन है, चिदात्माही अहं त्वं भावरूप होइकारि स्थित है, मैं चेतन हौं, सब इंद्रियांसंयुक्त विषयोंका स्पर्श मैं करता हौं, अरु कदाचित् कछु किया नहीं, अरु काष्ठ लोष्ट तुल्य शरीर साथ मेरा क्याहै, संपूर्ण जगत् मैं आत्मा चेतन हौं, आकाशविषे एक मैं आत्मा हौं, सूर्यविषे भी मैं हौं, और भूतपिंजरविषे भी चैतन्य आत्मा हौं, देवता दैत्यविषे भी मैं चैतन्य आत्मा हौं, स्थावरजंगमका चेतन आत्मा मैं हौं आत्मा एक अद्वैत चेतन है, और द्वैत कलना नहीं पाती, जो इसलोकविषे द्वैतका असंभवहै, तौ शत्रु कौन है, अरु मित्र किसको कहिये, बलि है नाम जिसका, ऐसा जो शरीर है तिसका शीश काटा तौ आत्माका क्या काटा जो सर्वलोकोंविषेआत्मापूर्णहै, जब चित्त दुःखको चेतता है, तब दुःखी होताहै, चेतनते रहित दुःखको नहीं पाता तिस कारणते जो दुःखदायक भाव अभाव पदार्थ भासते हैं, सो सर्व चेतन आत्मरूप है, चेतनतत्त्वते भिन्न कछु नहीं है सब ओरते आत्मा पूर्ण है, आत्माते इतर जगत्का कछु व्यवहार नहीं, न कोऊ दुःख है, न कोऊ रोग है, न मन है, न मनकी वृत्ति है, एक शुद्ध चेतनमात्र आत्मा तत्त्व है, और विकल्पकलना कोई नहीं सब ओरते चेतनस्वरूप व्यापक है, नित्य आनंद अद्वैतरूप विकल्पना कोई नहीं, सर्वते अतीत हौं, अंशांशीभावते रहित चेतनसत्ता हौं अरु चेतन आदिक नामते भी रहितहौं, चेतन आदिक नाम भी मेरे व्यवहारके निमित्त कल्पे हैं, जो चेतन आत्माकी स्फुरणशक्ति है, सोई विस्तारकारि जगत्रूप होइकारि भासतीहै, द्रष्टादर्शनते मुक्त केवल अद्वैतरूप हैं प्रकाशप्रकाशकभावते रहित निराभास हौं, द्रष्टा परमेश्वररूप हौं, न मैं कर्ता हौं, न भोक्ता हौं, मैं केवल द्रष्टानिरामयरूप हौं कलनाकलंकते रहित हौं, इनते पर हौं, अरु यह स्वरूप भी मैं हौं, यह मेरेविषे आभास मात्र है, मैं उदित नित्यरूप हौं, आभासते भी रहित मैं एक प्रकाशरूप हौं, स्वरूपकारिकै मेरा जो चित्त है सो दृश्यके रागते रहित मुक्तरूप हैं,

जो प्रत्यक्ष चेतन मेरा स्वरूप हैं, तिसको नमस्कार है; चित्त जो है दृश्य तिसते रहित है, युक्ति अयुक्ति सर्वका प्रकाश स्वरूप मैं हौं, मुझको नमस्कार है, चित्तते रहित मैं चेतन हौं, सब ओरते शान्तरूप हौं, फुरणेते रहित भलीप्रकार शान्त जो मैं संवित् मात्र विस्ताररूप हौं, आकाशकी नाईं मैं अनंत सूक्ष्मते सूक्ष्म हौं, दुःखसुखते मुक्त हौं, संवेदनते रहित असंवेदनरूप हौं, चैत्यते रहित चेतन हौं, जगत्के भाव अभाव पदार्थ मुझको छेदि नहीं सकते, अथवा यह जगत्के पदार्थ छेदते हैं, सो भी मुझते भिन्न नहीं, छेद मैं हौं छेदनहारा भी मैं हौं जो स्वभावभूत वस्तुकरि वस्तु ग्रहण होतीहै, अथवा नहीं होती, तौ भी किस करि किसका नाश होवै ? मैं सर्वदा सर्वप्रकार सर्वशक्तिरूप हौं, संकल्पविकल्पकरि अब क्या है, मैं एकही चेतन अजडरूप होइकरि प्रकाशता हौं, जेते कछु जगत्जाल हैं, सो सब मैंही हौं, मुझते इतर कछु नहीं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार चिंतवता हुआ राजा बलि तत्त्वका वेत्ता तब ॐकारकी धर्ममात्रा तुरीयापदको भावनासों ध्यानविषे स्थित भया, भलीप्रकार संकल्प तिसके शांत हो गए हैं, सब कलना चित्त चैत्यते रहित निःसंग होइकरि स्थित भया, वहुरि कैसा भया जो ध्याता है अहंकार, अरु जो ध्यान है मनकी वृत्ति, अरु जो ध्येय है, जिसको ध्याता था सो तिनोंते रहित हुआ, मनते सर्व वासना नष्ट हो गईं, जैसे वायुते रहित अचलरूप दीपक प्रकाशता है, तैसे बलि शांतरूप पदको प्राप्त भया, मन शांत हो गया, रत्नोंके झरोखेविषे वैठ दीर्घकाल बीत गया, जैसे स्तंभविषे पुतली होवै, तैसे सर्व ईषणाते रहित समाधिस्थित रहा, सब क्षोभ दुःख विघ्नते रहित निर्मल चित्त शरत्कालके आकाशवत् हो रहा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बलिविश्रांतिवर्णनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशतितमः सर्गः २८.

बलिविज्ञानप्राप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार दैत्यराजा समाधिविषे स्थित भया, अरु केताक काल व्यतीत भया, तब बांधव मित्र टहलुए मंत्री थे सो रत्नोंके झरोंखेविषे देखने चले कि, राजा बलिको क्या भया, ऐसे विचारिकारि किंवाड़ोंको खोलि ऊपर जाय चढे, कुहक अरु देवादि मंत्री, अरु मंडलेश्वर राजा, अरु हयग्रीवादिक बांधव सुहृद् बालक थे सो ऊपर चले गए, यक्ष, विद्याधर, अरु नाग एक ओर हो खड़े हैं, रंभा अरु तिलोत्तमादिक अप्सरागण हाथोंविषे चमर ले खडीहैं, नदियां समुद्र पर्वत आदिक मूर्त्ति धारिकारि स्थित भए हैं; रत्न आदिक भेट लेइकारि सर्व प्रणाम निमित्त खड़े भए, त्रिलोकीके उदरवर्ती जो कछु थे, सो आय स्थित भये, अरु राजा बलि ध्यानविषे स्थित था, मानो चित्रकी मूर्त्ति लिखछोडी है, पर्वतवत् स्थित है, तिसको देखिकारि दैत्य प्रणाम करत भए, कोई देखिकारि शोकको प्राप्त भये, कोई आश्चर्यवान् भए, कोई आनंदवान् भए, कोई भयको प्राप्त भए, तब देखिकारि मंत्री विचारत भए कि, राजाको क्या दशा प्राप्त भई है, तब राजाके निमित्त भार्गव शुक्रजीका चिंतवन करत भया जो गुरु है, सर्वका वेत्ता है, तब चिंतवन कियेते भार्गव जिसका बड़ा प्रकाश है, सो झरोंखेविषे आय प्राप्त भया जैसे गंधर्वनगर देखनेविषे आते हैं; तैसे आए, तिसको देखिकारि सब दैत्यगण पूजन करत भए, अरु बड़े सिंहासनपर गुरुको आरूढ किया, अरु बलिको ध्यान स्थित देखिकर शुक्रजी अतिप्रसन्न भए जो पद मैंने उपदेश किया था, तिसविषे विश्राम पाया है, देखा बडा आनंद है, जो विचार कारिकै बलिने परमपद पायाहै, भ्रम इसका अब नष्ट भया है, क्षीरसमुद्रवत् इसका प्रकाश है, ऐसे देखिकारि शुक्रजी कहत भए ॥ शुक्र उवाच ॥ बड़ा आश्चर्य है, जो दैत्यराज अपने विचारकारि निर्मल आत्मप्रकाशको पाया है; अब भगवान् सिद्ध भया है, अपने स्वरूपविषे विश्रांतिको पाया है, जो सब दुखोंते रहित पद है, तिसविषे

स्थित भया, चिंता भ्रम इसका क्षीण भया है, मोहरूपी कुहिड नष्ट भई अब इसको मत जगाउ. यह आत्मज्ञानको प्राप्त भया है यत्नक्लेश इसका दूर हो गया है, जैसे सूर्यके उदय हुएते अंधकार नष्ट हो जाता है, अब मैं इसको जगावता नहीं, सो आपही चिरकालते जागैगा, काहेते जो प्रारब्ध अंकुर इसका रहता है, यह उठिकारि अपना राज्यकार्य करैगा, दिव्य सहस्र वर्षते यह जागैगा, अब तुम इसको मत जागावौ, अपने राज्यकार्यविषे जाय वर्तौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इसप्रकार शुक्रजीने कहा, तब सुनकरि सूखे वृक्षकी मंजरी जैसे हो गया तब शुक्रजी अंतर्धान हो गया, अरु दैत्य अपने राजा वैरोचनकी सभाविषे जाइकरि अपने अपने व्यवहारविषे जाय वर्तें, और खेचर भूचर पातालवासी थे सो अपने अपने स्थानको गए, देवता, दिशा, पर्वत, समुद्र नाग किन्नर, गंधर्व सबअपने व्यवहारविषे जाय वर्तें॥ इतिश्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बलिविज्ञानप्राप्तिर्नाम अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशतितमः सर्गः २९.

बल्युपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब दिव्य सहस्र वर्ष व्यतीत भये तब दैत्यराजा समाधिते उतरा, नौबत नगारे बाजने लगे, देवता दैत्य बडे जयजय शब्द करने लगे, नगरवासी प्रबुद्ध भए देखिकारि बड़ी प्रसन्नताको प्राप्त भए, जैसे सूर्यके उदय हुएते कमल खिलि आते हैं तैसे खिलि आए, जबलग दैत्य न आये, तबलग राजा चिंतवता भया, बडा आश्चर्य है, जो परमपदकी ऐसी रमणीय पदवी शांतरूप शीतल है, तिसविषे स्थित होइकारि मैं परमविश्राम पाया हौं, ताते बहुरि उसी पदका आश्रय करौं, तिसीविषे स्थित होऊं, राज्यविभूतिसे मेरा क्या प्रयोजन है, ऐसा आनंद शीतल चंद्रमाके मंडलविषे भी नहीं पाता, जैसा अनुभवविषे स्थित हुएते पाता है॥ हे रामजी! इसप्रकार चिंतनाकारि बहुरि समाधि करने लगा, जो गलित मन होवै, तब दैत्यसेना मंत्री भृत्य बांधव आय वेष्टित भए, जैसे चंद्रमाको मेघ घेरि लेताहै,

तैसे घेर करके दैत्य प्रणाम करने लगे, बडे पर्वतोंकी नाईं अचल आकार जो है बलिराजा, सो मनविषे विचारता भया, सो कैसा राजा है कि, क्षीण भएहैं संकल्प जिसके सो विचारता भया कि, मुझको त्यागनेयोग्य क्या है, अरु ग्रहण करनेयोग्य क्या है, त्याग तिसका करता है, जो अनिष्ट दुःखदायक होवै अरु ग्रहण तिसका करता है, जो आगे न होवै, सो आत्माते व्यतिरेक कछु नहीं, तिसविषे ग्रहण त्याग किसका करौं, अरु मोक्षकी इच्छा भी मैं किसकारणते करौं, काहेते जो बंध होता है, तौ तिसते मोक्षकी इच्छा करता है, सो बन्ध नहीं तौ मोक्षकी इच्छा कैसे होवै? यह बन्ध अरु मोक्ष बालकको क्रीडा कही है, न बंध है, न मोक्ष है, यह कल्पना भी मूढताविषे है सो मूढता मेरी नष्ट भई है, अब मुझको ध्यान विलाससे क्या प्रयोजन है, अरु ध्यानकरि क्या है, अब मुझको न परमतत्त्वकी इच्छा है, न कछु ध्यानसे प्रयोजन है, अर्थ यह कि न विदेहमुक्तिकी इच्छा है, न जगत्विषे स्थित रहनेकी इच्छा है, न मैं मरता हौं, न जीता हौं, न सत्य हौं, न असत्य हौं, न सम हौं, न विषम हौं, न कोऊ मेरा है, न कोऊ अपर है, अद्वैतरूप मैं एक आत्मा हौं, सो मुझको नमस्कार है, इस राजक्रियाविषे मैं स्थित हौं, तौ भी आत्मपदविषे स्थित हौं, सदा शीतल हौं, ध्यान दिशाकरि मुझको सिद्धता नहीं, न राजकार्य विभूतिकरि कछु सिद्ध होता है, जय अजय सो न मैं यह कछु हौं, न मेरा कछु है, ताते राजकार्य करि मेरा कछु प्रयोजन नहीं, मैं आकाशवत् होइ रहता हौं, जो मैं न कछु इच्छा करौंगा, न राज्य करौंगा, तौ भी मेरा कार्य कछु सिद्ध नहीं होता, ताते जो कछु प्रकृत आचार है, तिसीको मैं करौं, बन्धनका कारण अज्ञान है, सो मेरा अज्ञान नष्ट भया है, कोऊ क्रिया मुझको बंधनरूप नहीं, ताते जो कछु प्रकृत आचार है, तिसको करौं॥ हे रामजी! इसीप्रकार निर्णयकरिकै बलि दैत्योंकी ओर देखता भया, तब देवता अरु दैत्य सब शीशकरि प्रणाम करत भए, तब दृष्टि करिकै तिनकी प्रणाम वंदना अंगीकार करत भए, जैसे पवन पुष्पोंकी सुगंधी लेता है, तब राजा बलिने ध्येयवासनाको मनते त्याग कीनी अरु राज्यके कार्य करता भया. ब्राह्मण, देवता, गुरुका पूजन करता भया,

जिस जिसप्रकार सों जिस जिसका पूजन करता था सो यथायोग्य किया और जो कोऊ अर्थी थे मित्र बांधव टहलुए, तिनका अर्थ पूर्ण करता भया, अरु ललना जो स्त्रियां थीं, तिनको नानाप्रकारके वस्त्र भूषण देता भया; जो शासना दंड देनेयोग्य दुष्ट थे, तिनको दंड करता भया; बहुरि यज्ञका आरंभ किया, तिस यज्ञविषे स्वरगणोंको पूजता भया, शुक्रजीते आदि ले जो बडे मुख्य देवता यज्ञ कराने निमित्त बैठे थे; सो शुक्र कैसा था, जिसने भोगविलासको क्षणभंगुर जाना है, सो अरु सबको वांछित सिद्धताके निमित्त प्राप्त किया है, अपना शरीर ऐसा जो है हरि विष्णु, भोगोंते अचाह है चित्त जिसका, तिसने इंद्रके अर्थ सिद्ध करनेनिमित्त, कैसे हैं इंद्र; जिसके वह क्रमकारि वडा भया है, तिस विष्णु भगवान्ने कर्ममात्र छलको धारा तिसकारि बलिराजाको वंचित कर लिया, तब बांधिकारि पातालविषे स्थित किया, जैसे वानरको बांधते हैं तैसे बांधा, अबलग पातालविषे स्थित है, बहुरि इंद्र होवैगा, अब जीवन्मुक्त स्वस्थ वपु सदा ध्यानस्थित ईषणाते रहित पुरुष पातालविषे है ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्त पुरुष जो बलि है, सो संपदा आपदाविषे समचित्त विचरता है, संपदाविषे हर्ष नहीं, आपदाविषे शोक नहीं, दुःखसुखविषे सम चित्त है जिसका, जैसे मूर्तिका लिखा सूर्य उदय अस्तते रहित होता है, अनेक जीवोंका उपजना अरु लय होना बलि देखता भया; अरु दश करोड वर्षपर्यंत तीनों लोकोंका कार्य करता भया, बडे विषयभोग भोगे, अन्त भोगोंको विरस जानिकारि तिसका मन विरस हुआ, विचारकारि तृष्णा नष्ट हो गई, मन उपशम हुआ है, हेयोपादेयकी चेष्टा नानाप्रकार बलिने देखी, पदार्थोंके भाव अभावविषे मन शांतिको न प्राप्त भया, अब भोगोंकी अभिलाषा त्यागिकारि आत्मारामी भया, नित्य स्वरूपविषे स्थित पाताल कोटरमें विराजता है ॥ हे रामजी ! इस बलिको बहुरि इस जगत्का इंद्र होना है, संपूर्ण जगत्का कार्य करना है, अनेक वष आज्ञा चलावैगा, परंतु इंद्रपदको पाइकारि तुष्टवान् न होवैगा, अपने ऐश्वर्यपदके गिरनेकारि खेदवान् भी न होवैगा,

सर्व पदार्थ विभूतिके उदय अस्तविषे अमर होवैगा, आकाशकी नाईं दोनोंविषे रागद्वेषते रहित अचल रहैगा, यह बलिके विज्ञान प्राप्तिका क्रम वृत्तांत कहा है, इसी दृष्टिको आश्रय करि तुम भी स्थित होहु, बलिकी नाईं अपने विवेककारि नित्यतृप्त आत्मनिश्चयको धारौ कि, सर्व मैं हौं, इस निश्चयकारि निर्द्वंद्वपदको प्राप्त होवैगा; अपने पुरुपार्थकारि बलिकी नाईं निश्चयको धारिकारि परमपदको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! दशकरोड वर्ष तीन लोकका राज्य बलि भोगता भया, अंतमें विरक्तताको प्राप्त भया, तैसे तू भी भोगोंते विरक्त होहु, यह भोग तुच्छ हैं, इनको त्यागिकारि परमपदविषे प्राप्त होहु; यह जो दृश्य प्रपंच नानाप्रकारके विकारसंयुक्त भासता है, सो न कोऊ तेरा है, न तू किसीका है, जैसे पर्वत अरु शिलाविषे बड़ा भेद है, तैसे जिस पुरुपका मन संसारकी ओर धावता है, सो मनकी वृत्तिविषे डूबता है, जब तू मनको हृदयकोटरविषे धरैगा, तब सब जगत्का प्रकाश होवैगा, तू आत्मस्वरूप है, तौ अपना क्या अरु पराया क्या, यह सब मिथ्या कल्पना है, तू सबका आदि पुरुषोत्तम है, तूही साकाररूप पदार्थ है, तूही सब ओर पूर्ण है, सब जगत्विषे चेतनरूप है, स्थावर जंगम जगत् सब तुझकारि परोया है, जैसे सूतकारि मणिके परोये हैं, नित्य शुद्ध उदित बोधस्वरूप है, भ्रांतिते रहित है; जन्म आदिक सर्व रोगके नाशनिमित्त आत्मविचारकारि बलात्कारसों भोगोंका त्यागकारि सर्वका भोक्ता होहु। तू केवल स्वरूप जगत्का नाथ है, चैतन्य सूर्य प्रकाशरूप सर्वदा स्थित है, सर्व जगत् तेरे प्रकाशकारि प्रकाशता है, सुखदुःखकी कल्पना तेरेविषे कोई नहीं, तू शुद्ध सर्वात्मा सर्वप्रकाशक है, इष्टअनिष्टको त्यागिकारि केवल अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, इष्टअनिष्टके त्यागते निरंतर सत्यता उदय होती है, तिस सत्यताको हृदयविषे धारिकारि फिर जन्ममरण भी नहीं आता, जिस जिस पदार्थविषे मन लगै, तिसते निकासिकारि आत्मतत्त्वविषे जोड़हु, जब इस प्रकार तू दृढ अभ्यास करैगा, तब मन जो उन्मत्त हस्ती है, सो

बाँधा जावैगा, तब सर्व सिद्धांतके परमसारको तू प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! तू मूढोंकी नाईं मत होहु, मूढ जीव सब चेष्टा मिथ्याही करता है, मिथ्या चेष्टाकरि जिनकी बुद्धि नष्ट भई है अरु अविद्यारूपी धूर्त्तते बिके हैं, तिनके तुल्य न होहु, यह जगत् अणुमात्र भी कछु है नहीं, बड़ा विस्ताररूप जो दृष्ट आता है, सो निर्णयकरि देखा है, जो मूढ़ताकरिकै भासा है, मूढ़ता परम दुःखरूप है, इसते अधिक दुःख कोऊ नहीं आत्मारूपी सूर्यके आगे आवरणकर्त्ता अज्ञानरूपी मेघ है, तिसको विवेकरूपी पवनकरि नाशकरौ, तब आत्माका साक्षात्कार होवैगा, वैराग्य अरु अभ्यासकरि साक्षात्कार होवैगा, आत्मविचारके अभ्यास अरु विषयोंते वैराग्यविना आत्माका साक्षात्कार नहीं होता, वेदरूप वेदांतशास्त्र है, अरु ओ द्रष्टा तर्कयुक्त है, तिनकरि भी अपने विचारविना साक्षात्कार नहीं होता, आत्मविचारकरि पुरुषार्थकरि आत्मकी प्रसन्नता होती है, अरु बुद्धिकी निर्मलतासों बोधकरि प्राप्ति होती है, ताते संकल्पविकल्पते रहित होइकरि चेतनतत्त्वविषे स्थित होहु, विस्तृत व्यापकरूप जो आत्मतत्त्वहै, तिसकी स्थिति मेरे वचनों-करि ग्रहणकरि सर्व संकल्प तेरे लीन हो गए हैं, संवेदनरूपी भ्रम शांत भया है, संसार कौतुकरूपी कुहिड़ तेरी नष्ट हो गई है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बल्युपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम एकोनत्रिंशतितमः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशतितमः सर्गः ३०.

हिरण्यकशिपुवधवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अब तू विज्ञानप्राप्तिके कारण और क्रम सुन, जैसे दैत्य असुरप्रह्लादको आत्माकी सिद्धता भईतैसे तू भी होहु, पातालकोटरविषे एक हिरण्यकशिपुदैत्य होता भया; सो कैसा था, जिसने देवताओंके इंद्र भगाए हैं, विष्णुजीके समान जिसका पराक्रम, अरु संपूर्ण भुवन भोग जिसने वशकरि छोड़े थे, सर्व देवता दैत्यको वश करिकै जगत्का कार्य करता भया, दैत्योंका ईश्वर अरु तीनों भुवनोंका ईश्वर

भया, समय पाइकारि पुत्रोंको उत्पन्न किया, जैसे वसंतऋतु अंकुरको उत्पन्न करतीहै. बड़ा ऐश्वर्यवान् होइकारि वृद्ध भया, सर्व दिशाविषे सूर्यकी नाईं प्रकाश किया, आकाशको ग्रहण करि चिरकालपर्यंत प्रकाश आच्छादि लिया, तिसके पुत्रविषे बड़ा पुत्र प्रह्लाद होता भया, सो प्रह्लाद सबसों अधिक प्रकाशवान् भया, तिस पुत्रकारि हिरण्यकशिपु शोभता भया, जैसे सर्व सुंदर लताकारि वसंतऋतु शोभती है,तैसे अपने बल अरु पुत्रोंकी सुंदरता अरु ईश्वर भंडार तिनोंकारि हिरण्यकशिपु शोभता भया, इन लोकोंको अपने वश किया, जैसे प्रलयकालविषे सूर्य सब लोकोंको तपाता है, तैसे तपाने लगा, दुष्ट क्रीड़ाकारि देवताओंको दैत्य दुःख देवैं, तब सब देवता मिलिकारि विष्णुकी शरण गए, अरु विनती करी कि, यह हिरण्यकशिपु महादुष्ट है, तिसका नाश करौ, अरु हमारी रक्षा करौ, वारंवार दुःखावनेंकारि महापुरुष भी क्रोधवान् हो जाता है ॥ हे रामजी! जब इसप्रकार देवताओंने प्रार्थना करी, तब विष्णुदेवने कहा, अब तुम जाओ, मैं तिसको पुत्रके हेतुकारि मारौंगा, ऐसे कहिकारि अंतर्धान होगया; अरु हिरण्यकशिपु अपने ऐश्वर्यकी शिक्षा प्रह्लादको देवै, परंतु वह ग्रहण न करै, बहुतप्रकार कारि उसको ताडना भी देवे, तौ भी उसकी शिक्षाको प्रह्लाद अंगीकार न करै, वह ईश्वर विष्णुजीकी आराधनाविषे रहै, इसकारणते ताडनाका दुःख प्रह्लादको कछु न होवै तब दैत्य अपने हाथमें खड्ग लेकारि कहने लगा ॥ हे दुष्ट! तेरा ईश्वर कहां है, जिसका तू आराधन करता है, अब मुझविना ईश्वर अपर कौन है; तब प्रह्लादने कहा, मेरा ईश्वर सर्वव्यापक है, तब हिरण्यकशिपुने कहा, इस स्तंभविषे कहांहै, जो है तौ दिखाय दे, न दिखावैगा तौ तुझको मारौंगा; तब सर्वव्यापक जो विष्णु सो स्तंभसों भासने लगे, बडे शब्द होने लगे, तिस स्तंभको फोडिकारि भुजा अरु वज्रको तोडनेहारे बडे नखों संयुक्त विष्णु प्रगट भये, महाभयानकरूप,बडे हस्तीके समान दंत, ऐसे स्थित जैसे बीजलीका प्रकाश होवै, अरु अग्निकीनाईं कुंडल प्रकाश, अरु दो भुजा मानो ब्रह्मांड खपरके तोडनेहारी हैं, मुखने श्वास जो निकरताहै, सो पर्वतोंका चूर्णकरनेहाराहै, अरु कोपरूपी अग्नि प्रलयकालकी अग्निते

भी अधिक है, अरु बड़े सूर्यवत् प्रकाश करै, ऐसे महाभयानक नरसिंहरूप विष्णुदेवने करिकै हिरण्यकशिपुको नखोंसे विदारण किया; अरु ऐसे कोपवान् रूप धरा, जिसकरि दैत्योंके स्थान जलने लगे, अरु दृष्टिकरि मानो, पर्वत चूर्ण होते हैं, अरु नरसिंहरूप वायुके चलनेकरि दैत्य उडतेहैं, अरु दैत्यके समूह कई मारे कई भाग गए, दिशा विदिशाको दौडि गए, जैसे वायुके मारे मच्छर उड जातेहैं, पातालछिद्रमें कछु नाश होगये, प्रलयकालवत् स्थान शून्य हो गए, मानो अकाल प्रलय आया है, दैत्योंका नाश हो गया, दैत्योंका नाश कर बहुरि विष्णुदेव अंतर्धान हो गए, कछुक दैत्य बांधव टहलुए रहे थे, सो प्रह्लादके निकट आए, मुख कुँभलाय गए, जैसे जलते रहित कमल होता है, भाई बांधव मिलिकर प्रह्लादको समुझावने लगे, प्रह्लादने मिलिकारि पिताकी परिदेवना करी, बहुरि उठकारि सब कर्म किये, संशयकारि दैत्य भी बैठे; अरु विचारकारि शोकवान् हो, सब दैत्य सूखकर चित्रकी पुतली होगए, जैसे दग्ध वृक्ष सूखि जाता है, अरु रसते रहित हो जाता है, तैसे हिरण्यकशिपुविना दैत्य शोकवान् महादुःखी भए ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे हिरण्यकशिपुवधवर्णनं नाम त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशत्तमः सर्गः ३१.

प्रह्लादविज्ञानवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब हिरण्यकशिपुके मारणेकारि दैत्य बहुत दुःखी भए, तब प्रह्लाद मौनवान् होइकारि चिंतवता भया, पाताल कोटरविषे सब दैत्य मिलिकारि चिंतासंयुक्त बैठे तिनसे प्रह्लाद कहत भया कि, अब अपनी रक्षाके निमित्त कौन उपाय करिये, हमारे दैत्यके नाश करनेहारा विष्णु तौ बडा बली है, जिसके नख तीक्ष्ण खड्गकी धारावत् हैं, जैसे सिंह मृगोंको मारताहै, तैसे हमको मारताहै, पातालकोटरविषे दैत्य शांतिमान् कदाचित् नहीं होते हैं, जब दैत्य वर्धमान होते हैं, तब विष्णु आय नाश करता है, जैसे कमलोंपर पर्वत आय पड़ै, तैसे चूर्ण करता है, बड़े आकाश गौरव शब्द करनेहारे दैत्य उपजि उपजि नष्ट हो

जाते हैं, जैसे जलविषे तरंग उपजि उपजि नष्ट होजाते हैं, तैसे अंतर बाहिर हमको कष्ट देता है, हमारा शत्रु बड़ा दृढ है, बड़ा अपूर्वतम आय बढा है, हमारा हृदय तमकरि पूर्ण होगया है, संपदा नष्ट हो गई हैं, जो हमारे पिताकरि देवता चूर्ण भए थे, तिनका बल हमते अधिक हो गया है, हमारी स्त्रियोंको वश करि ले गए हैं, जैसे मृगको व्याध ले जाता है, अरु धन लक्ष्मी हमारा सब ले गए हैं, हम दीन हो रहेहैं, जैसे जलविना कमल कुँभलाइ जाता है, तैसे हम बांधवविना भए हैं, हमारे घरोंविषे धूलि उड़ती है, जो बड़े स्थान मिलिकरि खचित किए थे, सो शून्य हो गए, जो हमारे स्थान बड़े कल्पवृक्ष थे, सो उखाडिकरि नंदनवनविषे जाय लगाये हैं, नरसिंहजीकी सहायताकरि ऐसा बल देवता पाये हैं, हमारे वृक्ष स्थान नरसिंहजीने जलाय दिए हैं, जो देवताओंकी स्त्रियोंके मुख दैत्य देखते थे, सो अब दैत्योंकी स्त्रियोंके मुख देवता देखते हैं, मंदार कल्पवृक्षोंके समूह दैत्योंके स्थानविषे थे, अरु सुमेरु पर्वतविषे विराजे थे, सो स्थान अब शून्य हो गए, धूलि उड़ती है, सुमेरु दुर्लभ हो गए हैं, जो दैत्योंकी स्त्रियां अपने स्थानविषे बैठी थीं, सो अब देवांगनोंके शिरपर चमर करती हैं; अरु वह हास्यविलास करती हैं, यह बड़ा कष्ट है, हमको आपदाने दीन किये हैं, हे दैत्यो! हमको और उपाय कोई दृष्ट नहीं आता, जब उसही विष्णुकी शरणको जावैं, तब सुखी होवैं, वह कैसा पुरुष है, जिसके दो भुजारूपी वृक्षकी छायाविषे देवता विश्राम करते हैं, विष्णुके प्रतापकरि तपायमान भी नहीं होता, जैसे हिमालय पर्वत कदाचित् तपायमान नहीं होता, तैसे जो पुरुष विष्णुकी शरण जाता है, सो तपायमान नहीं होता, ताते हम भी उसीकी शरणको प्राप्त होवैं, तुम देखते हौ कि, जो देवांगना असुरोंकी स्त्रियोंका पूजन करती थीं, सो अब अपनेको पूजावने लगी हैं, हम दैत्योंकी स्त्रियोंके मुख कुँभलाय गये हैं, जैसे बर्फकी वर्षाकरि कमल सूखि जाता है, तैसे हमारे मंडप टूटि गए हैं, नीलमणिनके स्तंभ थे, सो गिर पडे हैं, दैत्यसेना जो आपदाके समुद्रविषे डूबतीथी, तिसके रक्षा करनेको बडा समर्थ था, डूबने न देता था, जैसे क्षीरसमुद्रविषे मंदराचलको

कच्छपरूपने डूबने न दिया, तैसे हमारे पितादि जो बडे बडे बली रक्षा करनेहारेथे, तिनको विष्णुजीने मारि चूर्ण किये, जैसे प्रलयकालका पवन पर्वतोंको चूर्ण करता है, उनका मित्र सुहृद् होता है, ऐसे मधुसूदनकी गति अति विषम है, दैत्योंकी भुजारूपी दंड है, तिनके काटनेहारा कुठार है, तिनकी माह्यताकारि इंद्रादिक देवता दैत्यसेनाको जीतने मारने लगे हैं जैसे बालकको वानर मारै, यह पुंडरीकाक्ष विष्णुको जीतना कठिन है, जो यह शस्त्रोंविना होवै, तौ भी हमारे शस्त्र इनको छेदि नहीं सकते, वज्र भी छेदि नहीं सकता, महापराक्रमी है, युद्धका इसने बड़ा अभ्यास कियाहै, यह पर्वतोंसे युद्ध करता रहताहै, जो हमारा पिता बड़ा बली था, जिसने त्रिलोकीके राज्य अरु सब देवता वश किए थे तिसको इसने मार डारा तौ हमको मारनेविषे क्या यत्न है ? यह महाबली है, इसको जीतना नहीं होता, ताते एक उपाय मैं तुमको कहता हौं, तिसकारि विष्णु प्रगट वश आवैगा, सो यह उपाय है, जो विष्णु सर्वात्मा है, सर्वका प्रकाशक है अरु सबका कारण है, तिसकी हम शरण हैं और हमारी गति आश्रय कोऊ नहीं॥ हे दैत्यो ! उसते अधिक इस त्रिलोकीविषे कोऊ नहीं, जगत्का उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकर्ता वही देवताहै, उसके ध्यानविषे लागौ, एक निमेष भी तिसके ध्यानते उतरौ नहीं, मैं भी उसके ध्यानविषे लगता हौं, सो नारायण अजन्मा पुरुष है, मैं सदा तिसके परायण हौं सबप्रकार नारायण मैं हौं, 'ॐनमोनारायणाय' यह मंत्र सब अर्थोंका सिद्धकर्ता है, इस मंत्रके ध्यान जाप करते हुए हमारे हृदयविषे आय स्फुरणरूप होवैगा सो कैसा हरि है, सबका आत्मा हरि है, पृथ्वी भी हरि है, यह सब जगत् हरि है, मैं भी हरि हौं, आकाश भी हरि है, सबका आत्मा भी हरि है, अविष्णु जो होइकारि विष्णुका पूजन करते हैं, सो पूजनेका फल नहीं पाते अरु जो विष्णु होइकारि विष्णुका पूजन करते हैं, सो परम उत्तम फलको पाते हैं, ताते मैं विष्णुरूप होइकारि स्थित होता हौं; मैं अनंत आत्मा आकाश हौं, गरुड़पर आरूढ हौं अरु स्वर्णके भूषण पहिरे हैं मेरे हस्तरूप वृक्षकारि जीवरूप सब पक्षी विश्राम पातेहैं, यह मेरी चतुर्भुजा हैं, भुजाविषे बहुरि पटेहरे हैं, जब मैंने क्षीरसमुद्र मथन कियाथा, तबके यह परस्पर

घसाए हैं, अरु यह मेरे पार्षद स्थित हैं, सुंदर चमर हस्तविषे हैं, इसको क्षीरसमुद्रते उपजाये हैं, अरु त्रिलोकीरूपी वृक्षकी यह सुंदर मंजरी है, महाधवल मनको हरणहारी है, यह मेरे पार्षदविषे मायाहै, जिसने अनंत जगज्जाल निरंतर उत्पत्ति प्रलय कीनी है, अरु इंद्रजालकी विलासनी है; यह मेरे पार्षदविषे जो शक्ति है जिसने लीला करिकै त्रिलोकीखंड वश किया है, जैसे कल्पवृक्षलता फुलतीहै, तैसे मेरे पार्षदविषे फुलतीहै शीत उष्ण यह दो मेरे नेत्र हैं, संपूर्ण जगत्को प्रकाशतेहैं, चंद्रमा अरु सूर्य तिनके नाम हैं, यह मेरा नील कमलवत् देह है, महासुंदर श्याम मेघवत् है महाप्रकाशरूप है, यह मेरे हस्तविषे पांचजन्य शंख है, जिसकी फुरणरूप ध्वनि है, सो क्षीरसमुद्रते निकसा है; यह नाभिकमल है, जिसते ब्रह्मा उत्पन्न भया है, अरु इसविषे निवास करता है, जैसे भ्रमर कमलविषे निवास करता है, तैसे यह मेरे हस्तविषे कौमोदकी गदाहै, सुमेरुके शिखरवत् रत्नोंकी बनी हुई है, दैत्य दानवोंके नाश करनेहारी है, ज्वालाके पुंजवत् जिसका तेज है, यह मेरे हाथोंविषे महाप्रकाशरूप सुदर्शनचक्र साधुओंको सुख देनेहारा है, यह मेरे हाथोंविषे अग्निके समूहवाला कुठार है, सो दैत्यरूपी वृक्षोंको काटनेहाराहै, अरु साधुओंको आनंददायक है, यह मेरे हाथविषे सार्ङ्ग धनुष है, महाप्रकाशवत् जिसकी ध्वनि है, यह मेरे पीतवर्ण वस्त्र हैं, यह वैजयंती माला है, कौस्तुभ मणि मेरे कंठविषे है, ऐसा मैं विष्णु देव हौं, अनंत जगत्की उत्पत्ति लय हो गई है, सर्वोंके धारनहारा मैं हौं, कई बीत गये हैं, कई होवेंगे, यह पृथ्वी मेरे चरण हैं; आकाश मेरा शीश है; तीनों लोक मेरा वपु है, दशों दिशा मेरे वक्षस्थल हैं, मैं साक्षात् विष्णु हौं, नील मेघवत् मेरी कांति है, गरुडपर आरूढ शंख, चक्र, गदा, पद्मके धारनेहारा मैं हौं, दुष्ट है चित्त जिनका, सो हमको देखिकरि भाग जातेहैं, यह सुंदर शीतल चन्द्रमावत् मेरी कांतिहै, पीतवस्त्र श्याम वदन गदाधारीहौ, लक्ष्मीमेरे वक्षस्थलविषेहै, अच्युतरूपी विष्णु मैं हौं, वह कौन है जो मेरेसे विरोधकरनेको समर्थ होवै? मैं त्रिलोकीको जलावनेको समर्थ हौं, जो मेरेसाथ युद्ध करनेको सन्मुख होवै, तिसको अपने नाशका कारण है, जैसे अग्निविषे

पतंग जलि मरते हैं, तैसे मेरा ऐसा तेज है, जिसकी दृष्टि संहारनेको कोऊ समर्थ नहीं है, मैं बिष्णु ईश्वर हौं, ब्रह्मा, इंद्र, यमादिक नित्य मेरी स्तुति करते हैं, अरु तृण, काष्ठ,स्थावर, जंगम जेता कछु जाल है, तिस सबके अंतर व्यापकरूप हौं त्रिलोकीविषे मैं प्रकाशरूप हौं,अजन्मा हौं, भयको नाशकर्ता हौं, ऐसा मेरा स्वरूप है, तिसको मेरा नमस्कार है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादविज्ञानवर्णनं नाम एकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ३२.

विविधव्यतिरेकवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार प्रह्लाद नारायणस्वरूप अपना करिकै चिंतवता भया,बहुरि पूजनके निमित्त वैष्णवनको चितवता भया, मनविषे दूसरी मूर्त्ति विष्णुकी करी प्राण पवनकारि संपन्न अरु गरुडपर आरूढ धर्म अर्थ काम मोक्ष चार शक्तिकारि संपन्न, अरु शंख चक्र गदा पद्म हस्तविषे, श्याम अंग चतुर्भुजा चन्द्रमा अरु सूर्य जिसके नेत्र ऐसा लक्ष्मीधर महासुंदर आनंदके देनेहारे विशाल नेत्रहैं जिसके,शार्ङ्गधनुष हस्तविषे बडा प्रकाशरूप है,ऐसी मूर्ति विष्णुकी पूजताभया परिवारसंयुक्त भलीप्रकार पूजन किया, बडे रत्नोंसंयुक्त प्रह्लाद मनकारि पूजता भया माधव कमलाधरको रत्नोंका अर्घ्य दिया अरु चंदनका लेपन धूप दीप विचित्र नानाप्रकारके भूषणोंकारिअरु मंदार कल्पवृक्षोंके कमलोंकारि रत्नमणिकेगुच्छेनानाप्रकारके पुष्पोंकारि,अरु पिस्ताखजूरी बदामआदिक मेवाकारि, भक्ष्य भोज्य चोष्य लेह्य चार प्रकारके भोजन, नानाप्रकारके स्वाद अरु वस्त्र भूषणकारि पूजन किया, बहुरि अपना आप विष्णुको अर्पण किया, परमभक्तिको प्राप्त भया, अरु जिसप्रकार मनकारि पूजन किया, तिसी प्रकार अतःपुरविषे विष्णुकी मूर्ति देखिकारि पूजत भया इसप्रकार दिनप्रति विष्णुका पूजन करत भया, जिसप्रकार प्रह्लाद मनकी चिंतवनाकारि पूजा करै, तिसप्रकार और भी दैत्य मानसी पूजा करते भये, तिनको प्रह्लादने शिखाया, तिस पुरविषे सब दैत्य वैष्णव हो

रहे कल्याणमूर्ति विष्णुभक्त हो गये, जैसा राजा होता है, तैसी तिसकी प्रजा होती हैं, इसविषे कछु आश्चर्य नहीं, तब यह वार्ता देवलोकविषे प्रगट भई कि, दैत्योंने विष्णुका दोष त्याग किया है, अरु भक्त हुए हैं, तब देवता आश्चर्यको प्राप्त भये, इंद्रादिक अमरगण चिंतवत भये कि, यह क्या हुआ? दैत्योंने विष्णुभक्ति ग्रहण करी है, इनको प्राप्ति कैसे भई है, ऐसे आश्चर्यवान् होइकारि विष्णुके निकट दैत्योंकी वार्ता कहने निमित्त क्षीरसमुद्रको गये। यह तौ अपूर्व वार्ता हुई है, दैत्य कहां अरु विष्णुकी भक्ति कहां, विष्णुकेनिकट जाय कहते भये ॥ देवा ऊचुः ॥ हे भगवन्! यह तुमने क्या माया पसारी है, जो दैत्य सर्वदा विरोध करते थे, सो तुम्हारे साथ तन्मयरूप हो रहे हैं, कहां वह दुर्वृत्ति पर्वतको चूर्ण करनेहारे दैत्य, अरु कहां तुम्हारी भक्ति, जो अनेक जन्मोंकरि भी दुर्लभ है ॥ हे जनार्दन! तेरी भक्ति कहां अरु उनकी वृत्ति कहां यह तो अपूर्व वार्ता भई है, जैसे समयविना पुष्पोंकी माला नहीं शोभती, तैसे पात्रविना तुम्हारी भक्ति नहीं शोभती यह हमको सुखदायक नहीं भासती, जैसा जैसा कोऊ होता है, तैसे तैसे स्थानविषे शोभता है, जैसे काचविषे महामणि नहीं शोभती, तैसे दैत्योंविषे तुम्हारी भक्ति नहीं शोभती. जैसा गुण किसीविषे होता है, सो तैसी पंक्तिविषे शोभता है, अपरविषे स्थित हुआ नहीं शोभता है, जो सदेश नहीं होता तौ दुःखदायक होता है, जैसे अंगोंविषे वज्र दुःखदायक होता है, तैसे पदार्थ क्रमकारि प्राप्त होता है, सो जैसा गुणवान् होवै तैसा प्राप्त होताहै वह शोभा पाता है, विपर्यय होवै तब शोभा नहीं, पाता, जैसे कमलिनी जलविषे शोभती है, मरुस्थलविषे नहीं शोभती तैसे कहां वह अधम नीचजन भयानक कर्म करनेहारे अरु कहां तेरी आश्चर्यभक्ति, जैसे कमलिनी पृथ्वीपर नहीं शोभती, तैसी तेरी भक्ति दैत्योंविषे नहीं शोभती तैसे भक्ति हमको उनविषे सुखदायक नहीं भासती ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे विविधव्यतिरेको नाम द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ३३.

प्रह्लादाष्टकानंतरंनारायणागमनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार शब्दकरि देवता कहने लगे, तब माधव आयकरि बोले, जैसे मेघ मोरको कहै, तैसे गंभीरवाणी करि बोलत भये ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे देवगण ! तुम शोक मत करो, प्रह्लाद मेरा भक्त है, शत्रुको नाश कर्ता यह प्रह्लादका अंतका जन्म है, अब मोक्षको प्राप्त होइकारि बहुरि जन्म न पावैगा, जैसे भूना बीज बहुरि अंकुर नहीं लेता तैसे इसको बहुरि जन्म नहीं होवैगा ॥ हे देवगण ! जो गुणवान् होवै, अरु गुणोंको त्यागिकारि दोष ग्रहण करै, तब यह कर्म अनर्थरूप होताहै, अरु जो प्रथम गुणोंते रहित निर्गुण होवै बहुरि तिनको त्यागिकरि गुण ग्रहण करै, शास्त्रमार्गविषे विचरै तौ यह सुख-दायक होताहै, प्रह्लादकी विचित्र चेष्टा तुमको सुखदायक होवैगी, अब तुम अपने स्थानोंको जाओ प्रह्लाद मेरा भक्त है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार कहिकारि भगवान् क्षीरसमुद्रविषे अन्तर्धान होगए, देवता नम-स्कार करिकै अपने स्थानको गए, अरु प्रह्लादकेसाथ दोषभावनाका त्याग करत भये, अरु बड़ेके चित्तसों दोष त्यागनेते औरोंके मन भी विश्रामको पाते हैं. प्रह्लाद दिनदिनविषे अपने घरप्रति जनार्दनकी मनसा वाचा कर्मणा भक्ति करत भया, समय आइकारि दैत्यविषे भक्ति बडी हो गई, परम विवेकको प्राप्त भये, अरु विषयभोगते वैराग्यवान् भये, देखिकारि आनंदी न होवै, जैसे सूखे वृक्षविषे टास होता है, तिसविषे पक्षी प्रीति नहीं करते, तैसे वे विषयोंसाथ प्रीति नहीं करैं, सुंदर स्त्रियोंसे न रमै, जैसे मृगतृष्णाकी नदीको जाननेहारे मृग रमणीय देखिकारि प्रसन्न नहीं होते, तैसे शास्त्रार्थ कथनविना और दृश्यविषे तिनको प्रीति न उपजै यह भोग रोगरूप है, तिनविषे उनका चित्त विश्रामवान् न होवै, राग न करै, परंतु मुक्तकर्त्ता जो आत्मबोध है, सो प्राप्त नहीं भया, मुक्तिफलके तुल्य आय स्थित भये हैं, भोगोंकी अभिलाष जो त्यागिकारि निर्मल हो रहे हैं, परम समाधिको नहीं प्राप्त भये, चित्त मध्य अवस्थाविषे डोलायमान रहे

भोगोंते वैराग्य अरु ईश्वरकी भक्तिविषे स्थित भये, तब श्याममूर्ति जो विष्णुदेव हैं, सो प्रह्लादकी वृत्तिको विचारिकारि पातालविषे प्रह्लादके गृहपूजास्थानविषे महाप्रकाश सुंदररूप प्रगटे, तिसको देखिकारि प्रह्लाद विशेष पूजाको करता भया, प्रह्लाद प्रेमकरि गद्गद हो गया, चरणवंदनाकारि पूजन बहुत किया बहुरि ऐसे कहते भये ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ हे ईश्वर ! त्रिलोकीविषे सुंदर मूर्ति सबके धारनेहारे अरु सब कलंक हरनेहारे प्रकाशस्वरूप अशरणोंके शरण अजन्मा अच्युत मैं तेरे शरण हौं ॥ हे नीलोत्पल कमलोंके पर्वत शरत्कालके निरुपमश्यामरूप असंग चित्त करिकै धरनेहारे मैं तेरी शरण हौं ॥ हे निर्मलरूप ! केलेवत् कोमल अंग, श्वेत कमलकी नाईं श्वेत शंख हस्तविषे है, अरु नाभिकमलविषे भँवरारूप ब्रह्मा स्थित है, वेदका उच्चाररूपी गुरगुर शब्द कर्ता है, अरु हृदयकमलविषे विराजनेहारे जलके ईश्वररूप मैं तेरी शरण हौं, श्वेत नख तारागणवत् प्रकाशरूप हैं, हँसता मुख चंद्रमाके मंडलवत् है, हृदयरूपी मणि सबका प्रकाशक है, शरत्कालके आकाशवत् निर्मल विस्तृतरूप मैं तेरी शरण हौं ॥ हे त्रिभुवनरूपी ! कमलनियोंके प्रकाशनेहारा चंद्रमा मोहरूपी अंधकारके नाशकर्ता सूर्य है, अजड चिदात्मा संपूर्ण जगत्के कष्ट हरनेहारे मैं तेरी शरण हौं ॥ हे नूतन विकसितरूप कमलपुष्पोंकारि भूपित अंग अरु स्वर्णवत् पीतांबरधारी, महासुंदर स्वरूप ! मैं तेरी शरण हौं ॥ हे ईश्वर! लीला करिकै सृष्टिके उत्पत्ति स्थिति नाश करनेहारे परमशक्ति शंकर योगिवत् दृढ देह मैं तेरी शरण हौं अरु दामनीवत प्रकाशरूप सबको संहार कर जलविषे बालकरूपधारी वटके नीचे शयन करनेहारे मैं तेरी शरण हौं, देवतारूप कमलोंके प्रकाश करनेहारे, सूर्यमंडल दैत्यपुत्ररूपी कमलिनियोंके तुषाररूपी बर्फ जलावनेहारे, अरु हृदयरूप कमलोंके आश्रयभूत मैं तेरी शरण हौं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार अनेक गुणोंकारि अष्ट श्लोक प्रह्लादने कहे, तब नीलोत्पल कमलवत् देह जिसका है, ऐसा परमात्मा पुरुष प्रसन्न होइकारि प्रह्लादको कहता भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादाष्टकानंतरं नारायणागमनवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ३४.

प्रह्लादोपदेशवर्णनम् ।

श्रीभगवानुवाच ॥ हे गुणनिधि दैत्यकुलके शिरोमणि ! जो तुझको वांछित फल है सो माँग,बहुरि जन्मदुःखके शांतिनिमित्त जिसकरि तुझको जन्मदुःख न होवै सो माँग॥प्रह्लाद उवाच ॥ हे सर्वसंकल्पके फलदायक सर्व लोकोंविषे व्यापकरूप ! जो वस्तु दुर्लभतर है सो शीघ्रही मुझको कहौ अरु देहु ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे पुत्र ! सब भ्रमका नाश करनेहारा अरु परम फलरूप ब्रह्मते विश्रांति होती है सो आत्मविवेककी समताकरि प्राप्त होती सो आत्मविवेक तुझको होवैगा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार दैत्येंद्रको कहिकरि विष्णु अंतर्धान हो गए, तरंग समुद्रते गुरगुर शब्द करिकै उठै, अरु गुप्त हो जावै, तैसे विष्णुजीको देखकरि प्रह्लादने पुष्पांजलि दीनी, पूजा करिकै श्रेष्ठ आसन बिछाया, तिसपर आप पद्मासन धरि बैठे, उत्तम शास्त्रोंका पाठ विधिसंयुक्त करने लगे, पाठकरि चिंतनाकरी कि, विष्णुने मुझसे क्या कहा है, यह कहा था, कि तुझको विवेक होवैगा,सो संसारके समुद्र तरनेनिमित्त शीघ्रही विचार करौ इस संसार आडंबरविषे मैं कौन हौं जो बोलता हौं स्थित हौं यह जंतु तौ मैं नहीं यह असत्य उपजा है जडरूप पवनकरि स्फुरणरूप होता है सो मैं कैसे होउं ? यह देह भी नहीं, क्षणक्षणविषे कालकरि लीन होता है, यह जडरूप है सो मैं नहीं यह श्रवणरूपी जड है सो मैं नहीं अरु शब्द सुनते हैं सो शब्द शून्यते उपजा है, सा भी मैं नहीं अरु त्वचा इंद्रिय भी मैं नहीं इसका क्षणक्षणविषे विनाशस्वभाव है प्राप्त हुआ न हुआ, यह इष्ट है, यह अनिष्ट है, यह आप जड है इसके जाननेहारा चेतनतत्त्व है चेतनके प्रमादकरि यह विषय उपलब्ध होते हैं, ताते न मैं त्वचा इंद्रिय हौं, न स्पर्श विषय है, यह जड़ात्मक है अरु यह जो चंचलरूपी जिह्वा इंद्रिय तुच्छ है अल्प जल अणु जिसके अग्रविषे स्थित हैं सो रसको ग्रहणकर्ता है वह रस भी आत्मसत्ताकरिकै लब्धिरूप होता है आप जड है, ताते यह जडरूप जिह्वा अरु रस मैं नहीं अरु यह जो दृश्यके दर्शनविषे लीन है विनाश-

रूप नेत्र सो मैं नहीं अरु न मैं इनका विषयरूप हौं यह जड है अरु यह जो नासिका पृथ्वीका अंश है सो केवल आत्माके आधारहै अरु आप जड है इसके जानने हारा चेतन है सो न मैं नासिका हौं, गंध हौं, मैं अहंममते रहित हौं मनके मननते रहित शांतरूप हौं, अरु यह पंचइंद्रियां मेरे विषे नहीं; मैं शुद्ध चेतनरूप हौं कलनाकलंकते रहित हौं मैं चित्तते रहित चिन्मात्र हौं, सर्वका प्रकाशक सबके अंतर बाहिर व्यापकरूप हौं निःसंकल्प निर्मल शांतरूप हौं, आश्चर्य है, अब मुझको अपना स्वरूप स्मरण आता है, प्रकाशरूप चेतन अनुभव अद्वैत अपने अनुभव चेतन करिकै स्थित हौं सूर्य घटपटादिक सब पदार्थोंमें प्रकाशता है, जैसे उत्तम तेज दीपककरि भासै, तैसे चेतन अनुभवकरि इंद्रियोंकी वृत्ति स्फुरणरूप होती है, जैसे तेजकरि चिनगारे स्फुरणरूप होते हैं, तैसे सर्वज्ञ अनुभव सत्ताकरिकै मनकी मनरूप शक्ति फुरती है, जैसे सूर्यके तेजकरि मरुस्थलविषे मृगतृष्णाकी नदी फुरती है, तैसे अनुभवसत्ता करिकै पदार्थ भासते हैं, जैसे दीपकमें शुक्लादि रंग भासते हैं तैसे यह पदार्थोंविषे अहं आदिक पदार्थ भासते हैं, जाग्रतवत् सब पदार्थोंका प्रकाशक है सबको अनुभव करिकै भासता है, सबके अंतर आत्म-भावकरिकै स्थित है, जैसे बीजविषे अंकुर स्थित होता है, तैसे चेत-नरूप दीपकके प्रकाशकरि विकल्परूपी पदार्थोंकी शक्ति भासती है, उष्णरूप सूर्य है, अरु शीतलरूप चंद्रमा हैं, घनरूप पर्वत हैं; द्रवता-रूप जल है, इसप्रकार अनुभवसत्ताते पदार्थ प्रगट होते हैं, जैसे सूर्यके प्रकाशकरि घटपटादिक होते हैं, ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र इन सर्वके कारण-रूप जगतविषे स्थित हैं, अरु इनका कारण अनुभवतत्त्व है। आदि-अंतते रहित हैं, अरु सब कारणोंके कारण हैं जैसे बर्फते शीतलता उपजती है, तैसे अनुभवते जगत् उदय होता है, चित्त चैत्य दृश्य दर्शन कलनाते रहित सत्ता प्रकाशरूप आत्मा मेरा मुझको नमस्कार है, इसविषे सर्व भूतोंकी उत्पत्ति स्थिति होइकरि बहुरि लय होते हैं, सो निर्विकल्प चेतन सर्वका आश्रयरूप आत्मा है जो इस चित्त-करि अंतर कल्पितरूप हो जाता है सोई होता है, आत्माते रहित सत्य भी असत्य हो जाता है, जो चेतन संवित् विषे कल्पिरूप होताहै

सो पदार्थ अपने स्वरूपको पाता है कि, यह ऐसे हैं, अरु जो चित्तसंवित्‌विषे कल्पितरूप नहीं होता, सो सत्य भी असत्यरूप हो जाता है, यह घटपटादि पदार्थका समूह भासता है, सो विस्तृतरूप चिदाकाश दर्पणविषे प्रतिबिंबित होता है, सो अनुभवसत्ता सर्व भूतोंका आदर्शरूप है, जिनका चित्त नष्ट हो जाता है, तिन संत पुरुषोंको ऐसे दृढ भाव प्राप्त हैं, परम आकाशरूप आत्माविषे अभ्यास कारि तन्मय हो जाता है, सो अनुभवसत्ता पदार्थोंके वृद्ध होनेकारि वृद्ध नहीं होती, अरु नष्ट होनेकारि नष्ट नहीं होती, पदार्थोंके भाव अभावविषे सत्ता सामान्य ज्योंकी त्यों है, जैसे सूर्यके प्रतिबिंबविषे घट सत्य होवै, अथवा असत्य होवै, सूर्य ज्योंका त्यों है संसाररूप नानाप्रकारकी विचित्ररचना है, सो ऐसे आत्माविषे स्थित है, जैसे विचित्र गुच्छेसे युक्त वृक्षोंकी पंक्तिकी विचित्र रचना पर्वत ऊपर स्थित होती है, तैसे संसाररूप दृश्य नानाप्रकारकी मंजरीको धरनेहारा आत्मसत्ता वृक्ष है, जेते कछु भूतगण त्रिलोकीके उदरविषे वर्तते हैं, सो आत्मासाथ अभिन्नरूप हैं ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत सर्वका प्रकाशक आत्मा है, सो अनुभवसत्ता आदि अंतते रहित है, सवरूप जिसका आकार है, स्थावर जंगम सर्व जगद्भूतजात अंतर अनुभवरूप स्थित है, सो एक अनुभव आत्मा मैं हौं, द्रष्टा दर्शन दृश्य सर्वरूप आत्मा मैं हौं, सहस्र नेत्र सहस्र हस्त मेरेहैं, मैं चिदाकाशरूप हौं, सूर्य देहकारि आकाशविषे विचरता हौं, पवनदेहकारि मैं बहता हौं वायुवाहनपर आरूढ हौं, अरु मैं विष्णुरूप शंख चक्र गदा पद्मके धारनेहारा हौं, सर्व सौभाग्य देखनेहारा हौं सर्व दैत्योंको भगावता नाशकर्त्ता मैंही हौं, मैं नाभिकमलते उत्पन्न हुआ पद्मासनकारि निर्विकल्प समाधि स्थितरूप ब्रह्मा हौं अरु मन वृत्तिरूपको प्राप्त भया, मैंही त्रिनेत्र आकार लिया है, गौरी मेरी अर्धांगना है, सृष्टिके अंगविषे सर्वको संहार करता हौं, जैसे कोऊ अपने अंगोंको संकोचि लेवै, तैसे मैं संहार करता हौं, त्रिलोकीरूपी मढी है, इंद्ररूप होइकारि मैं तिसकी पालना करता हौं, कर्मोंके अनुसार जैसा कोऊ तप करै तैसा फल देता हौं तृण वल्लीविषे गुच्छे रस होइकारि स्थित हौं;

मैंही उत्पत्ति कर्त्ता हौं, मैंही चेतनरूप हौं जगत् आडंबर लीलाके निमित्त विस्ताररूप मैंनेही किया है; जैसे मृत्तिकाके खिलौने बालक रचि लेता है तैसे, अरु मेरेविषे सर्व कर्म अर्पण कर सर्व शांतिको प्राप्त होता है, मुझते रहित कछु वस्तु नहीं, सत्तास्वरूप मैं आदर्श हौं, सब पदार्थ मेरेविषे प्रतिबिंबित होते हैं, तब यह असत्यरूप भी सत्यताको प्राप्त होता है, ताते मुझते भिन्न कछु नहीं, पुष्पोंविषे सुंगधि मैं हौं; पत्रोंविषे सुन्दरता छबि मैं हौं, पुरुषविषे अनुभव मैं हौं, स्थावर जंगमरूप जो जगत् दृष्ट आता है, सो सब मैं हौं सब संकल्पते रहित परम चैतन्य हौं, अहं त्वं आदिकते पर हौं, जलविषे रसशक्ति मैं हौं, अग्निविषे उष्णता, बर्फविषे शीतलता मैं हौं, जैसे काष्ठविषे अग्नि, तैसे सर्वविषे स्थित हौं, सब पदार्थोंविषे मैं परमात्मा व्यापक हौं, सबको अपनी इच्छाकरि उपजाता हौं, जैसे दूधविषे घृतशक्ति, जलविषे रसशक्ति, सूर्यविषे प्रकाशशक्ति है, तैसे चेतनस्वरूप मैं सब पदार्थोंविषे स्थित हौं, त्रिकालका जगत् सब मेरेविषे स्थित है, सो मैं चित्तके उपचार फुरनेते रहित शुद्धस्वरूप हौं, सर्वको भरणपोषणहारा हौं, मैंही वैराट राजा होइकरि स्थित भया हौं त्रिलोकीका राज्य मुझको अपूर्व प्राप्त भया है, कैसा राज्य है, शस्त्रोंविना देवके दल विना निरिच्छित विस्तृत राज्य-प्राप्ति है, बडा आश्चर्य है, मैं बड़ा विस्तृतरूप हौं, मैं अपने आपविषे समाता नहीं, जैसे कल्पांतरके वायुकरि उछला समुद्र आपविपे नहीं स-माता, तैसे मैं अनंतरूप आत्मा अपनी इच्छाकरि आप प्रकाशता हौं, जैसे क्षीरसमुद्र अपनी उज्ज्वलताकरि शोभता है; तैसे मैं अपने आपकरि शोभ-ताहौं, यह जगतरूपी मटकी महा अल्परूप है, जैसे बिलविषे हस्ती नहीं समाता, तैसे मैं अपने आपविषे विस्तृतरूपकरि जगतविषे नहीं समाता, कोटि ब्रह्मांडविषे व्यापक हौं, ब्रह्मलोकते परे जो तत्त्वोंका अन्त आता है, तिसते भी परे मैं अनंतरूप हौं, यह मैं हौं यह मैं नहीं, यह मेरेविपे निर्बलता थी, सो तुच्छरूप है, मैं तौ आदि अन्तते रहित चेतन आकाश हौं, मेरेविषे परिच्छिन्नता मिथ्या भासती थी, मैं तू यह वह आदिक मिथ्या भ्रम है, देह क्या, अरु पर क्या, अपर क्या, मैं तौ सर्वव्यापक चेतन हौं, तत्त्व हौं, मेरे पितामह बडे नीच बुद्धिहीन थे, जो

ऐसे ऐश्वर्यको त्यागिकारि तुच्छ ऐश्वर्यविषे खचित भए, कहां यह महादृष्टि सर्वका कर्त्ता ब्रह्मवपु, अरु कहां वह संसारभ्रमका राज्य दुःखदायक अनित्यरूपी सुखभोग ? अनंत सुख परम उपशम स्वभाव शुद्ध चेतनदृष्टि अब मेरेविषे भई है, सब भाव पदार्थोंविषे चैत्यते रहित मैं चेतन आत्मा स्थित हौं अब मुझको नमस्कार है मेरी जय हुई है, जीर्णरूप संसारभ्रमते निकसा हौं, ताते जीत पाई है, पानेयोग्य आत्मपद पाया है, जीवितसार्थक भया है, ऐसा उत्तम शम राज्य जो चक्रवर्ती है, तिसविषे नहीं रमता, निरंतर बोधको त्यागिकारि दुःखरूपी काजोंविषे रमते हैं, काष्ठ जल मृत्तिकाकारि संयुक्त जो पृथ्वी है, तिसको पाइकारि जो भुलायमान भए हैं, तिनको धिक्कार हैं, वह कीट है, यह द्रव्य ऐश्वर्य अविद्यारूप है, अरु अविद्याकारि उपजा है, अरु अविद्यारूप इसका बढना है, इसविषे गुण क्या है, जिसनिमित्त यत्न करते हैं, इस जगत्‌रूपी मढीविषे केतेक वर्षविषे हिरण्यकशिपु राज्यसुख भोगते भए, परन्तु उपशम जो शांतिसुख हैं, तिसको प्राप्त कछु न भये इसने एक जगत्‌का राज्य किया है, परन्तु जो सौ जगतोंका राज्यसुख होवै, तौ भी अनास्वाद है, वह जो समतारूप आत्मानंद है, सो नहीं प्राप्त होता, जब तिस आत्मानंदके स्वादका यत्न होवै, तब प्राप्त होवै अन्यथा नहीं होता, जिस पुरुषको बडे ऐश्वर्य इंद्रियोंके सुख प्राप्त भएहैं, अरु समतासुखते रहितहै जब जानिये कि तिसको कछु ऐश्वर्यसुख नहीं प्राप्त भया अरु जिसको कछु ऐश्वर्यसुख नहीं प्राप्त भया, अरु समतासुख संयुक्तहै, तब उसको सब कछु प्राप्त भया जानिये, यह परम अमृतकारि संपन्नहै, अखंडित सुख जो आत्मा है, तिस परम सुखको प्राप्त भया है, सो आनंदरूप है, अरु जो अखंड पदको त्यागिकारि परिच्छिन्नताको प्राप्त है, सो मूढ है, अरु जो पंडित ज्ञानवान् हैं, सो परिच्छिन्नताविषे नहीं प्रीति करता जैसे ऊंट दूसरे पदार्थोंको त्यागिकारि कंटकोंके पास धावता है, और पशु नहीं जाता मूढविना ऐसा कौन अज्ञानी है, जो आत्मसुखको त्यागिकारि जले हुये राज्य खविषे रमता है, अमृतको त्यागिकारि कंटक नीमका पान करै, मेरे पितामह जो बडे थे, सो सब मूढ भए, इस परम अमृतरूप दृष्टिको त्यागिकारि राज्यकंटकविषे प्रीतिमान् भएहैं, कहां

फूल फलादिककारि संयुक्त नंदनवनकी भूमिका, अरु कहां जले हुए मरुस्थलकी भूमिका, तैसे कहां यह बोधदृष्टि शांतरूप अरु कहां भोगों विषे आत्मबुद्धि, ताते ऐसा पदार्थ त्रिलोकीविषे कोई नहीं, जिसकी मैं इच्छा करौं, सब चेतनस्वरूप है, अनुभवकर्ता चेतनतत्त्व स्वच्छ समभाव निर्विकार है, सर्वदा सर्वविषे सर्व ओरते स्थितहै,जैसे है तैसा पाया जाता है, ज्ञानवान्को प्रत्यक्ष है सूर्यविषे प्रकाशशक्ति है, चंद्रमाविषे अमृत स्रवणकी शक्ति है, ब्रह्माविषे महत्शक्ति है, इंद्रविषे त्रिलोकपालनकी शक्तिहै, सब ओरते पूर्ण लक्ष्मीशक्ति विष्णुजीकीहैं, शीघ्र मनकर्त्ता शक्ति मनकी है, बलवान्शक्ति पवनविषे हैं, दाहकशक्ति अग्निविषे है, जलविषे रसशक्तिहै, अरु मौन करिकै महातपकी सिद्धताशक्ति, अरु विद्याशक्ति बृहस्पतिविषे है, देवताविषे विमानोंपर आरूढ होइ करि आकाशमार्ग गमन करनेकी शक्ति है, पर्वतोंविषे स्थिरताशक्ति, वसंतऋतुविषे पुष्पशक्ति सर्व कालविषे मेघोंकी शांतिशक्ति, यक्षोंविषे ममत्वशक्ति आकाशविषे निर्लेपताशक्ति, बर्फविषे शीतलताशक्ति, ज्येष्ठ आषाढविषे तप्तशक्ति है, इत्यादिक देश, काल, क्रियारूप नानाप्रकारके आकार विकार त्रिकालके उदरविषे स्थित हैं, सो सर्वशक्ति स्वच्छ निर्विकार चेतनकी है, कलनारूप कलकते रहित है, सो इसप्रकार हो भासता है, सोई आत्मतत्त्व सम पदार्थ जातिविषे व्यापक भया है, जैसे सूर्यका प्रकाश सर्व ओरते समान उदय होता है, तैसे सर्व देश पदार्थोंका भंडार सर्वका आश्रयभूत है, त्रिकाल तिसविषे कल्पितरूप होते हैं, जैसा अनुभव तिसविषे होता है, तैसा तत्काल हो भासता है, जैसे जैसे चेतनतत्त्वविषे देशकाल क्रिया द्रव्यका फुरना होता है तैसा तैसा भासता है, अरु आत्माविषे त्रिकालोंकी सम प्रतिभा फुरी है, तिसविषे बहुरि अनंतकालकी प्रतिभा हुई है, शुद्ध चेतनतत्त्वविषे सर्व ओरते पूर्ण है, त्रिकालके स्मरणविषे दृश्यसंयुक्त भासताहै, तौ चेतनतत्त्व शेष रहताहै, अरु इसको त्रिकालका ज्ञान होता है, मधुर कटुक आदिक भिन्नभिन्नसों एकसमता भासती है, जैसे मधुरता पान करनेहारे जो जीवहैं, तिनको मधुरता भासतीहै, अपरको नहीं भासती, तैसे सर्व जो संकल्पना है, सबको भोग-

ताहै, सूक्ष्म चेतन है, सत्तास्वरूप सर्व पदार्थोंका अधिष्ठान है, तिसके साथ अनागत होइकरि द्वैत जगत् भासता है, नानाप्रकारकी जो पदार्थ-लक्ष्मी है, अत्यंत दुःखको प्राप्त करती है, जब त्रिकालका अनुभव होता है, तब सबही सम भासताहै, भाव पदार्थोंविषे जो पदार्थ हैं, सो ईश्वरके हैं, तिन भाव पदार्थोंको त्यागिकरि अभावकी भावना करनी तिसकरि दुःख सब नष्ट हो जाते हैं, संतुष्टता प्राप्त होती है, ताते त्रि-कालको मत देखहु, यह बंधनरूप है, त्रिकालते रहित जो चेतनतत्त्व है, तिसको देखनेकरि विभाग कल्पना कालका अभाव हो जाता हैं, एक शम आत्मा शेष रहता है, तिसको वाणी वश नहीं कर सकती, असत्यकी नाईं जो निरंतर स्थित है, तिसकी प्राप्ति होती है, अनामय सिद्धांत हैं, जो शून्यवादीकी नाईं स्थित होता है. निष्किंचन आत्मा ब्रह्म होता हैं, अथवा सर्वरूप परम उपशमविषे लीन होता है, अरु जिसका अंतःकरण मलिन है, संकल्पकरिकै असम्यक्‌दर्शी है, तिसको ज्योंका त्यों नहीं भासता जगत् भासताहै, अरु जिनकी इच्छा नष्ट भई है, पर-मपदका अभ्यास करते हैं; तिनको आत्मतत्त्व भासता है, अरु जो किसी जगत्‌के पदार्थकी वांछा करते हैं, किसीका त्याग किया चाहते हैं, हेयोपादेय फांसीसे बांधे हैं सो परमपद उपायके पानेको समर्थ नहीं होते जैसे पेटकारि बांधा पक्षी आकाशमार्गविषे उड़नेको समर्थ नहीं होता, तैसे जे पुरुष संकल्प कलना संयुक्त हैं, वे मोहरूपी जालविषे गिर पड़ते हैं जैसे नेत्रोंविना गिर पड़ता है, तैसे संकल्प कलना जालकारि जिसका चित्त वेष्टित है, सो विषयरूपी गर्त्तविषे गिरा है अच्युत पदवीको प्राप्त नहीं होता, अरु मेरे पितामह केतेक दिन पृथ्वीविषे फुरिफुरि लीनहो गये हैं, सो बालक नीच थे, जैसे गर्त्तविषे मच्छर लीन हो जातेहैं, तैसे अज्ञानकारि परम तत्त्वको न जानते भये, भोगोंकी वांछा जो दुःखरूप है, सो अज्ञानी करतेहैं, तिसते भाव अभावरूप गर्त अंधकूपविषे नष्ट होते हैं; इच्छा अरु दोषकारि जो उठा है, सो रागदोषकारि बंधमान भये हैं, जैसे पृथ्वीविषे कीट मग्न होतेहैं, वह जीव तिनके तुल्य हैं, अरु मृग-तृष्णारूप जगत्‌के पदार्थोंविषे ग्रहण त्यागकी बुद्धि जिनकी शांत भई

है, सो पुरुष जीते हैं, अपर सब नीच मृतकरूप हैं, निर्मल अविच्छिन्नरूप चैतन्य चंद्रमावत् शीतलता कहां, अरु उष्णकाल कलंक संयुक्त चित्तकी अवस्था कहां ? अब मेरे आत्माको नमस्कार है, कैसा आत्मा है, जो अविच्छिन्न प्रकाश है, प्रकाश अरु तम दोनोंका प्रकाशरूप है ॥ हे चिदात्मा देव ! मुझको तू चिरकालकरि प्राप्त भया है, परमानंद भया जो विकल्परूपी समुद्रते मेरा उद्धार किया है, जो तू है, सो मैं हौं, और मैं हौं सो तू है, तुझको नमस्कार है, अनंत शिव आत्मतत्त्वका चंद्रमा संकल्पविकल्प कलाके नष्ट हुएते सो निर्मल सदा उदितरूप है ॥ इति श्रीयो० उपशमप्रकरणे प्रह्लादोपदेशो नाम चतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशत्तमः सर्गः ३५.

आत्मलाभचिंतनवर्णनम् ।

प्रह्लाद उवाच ॥ ॐजिसका नाम है सो ब्रह्म मैं हौं, विकारते रहित हौं जो कछु जगत् है, सो सब आत्मस्वरूप है, सत्य असत्यते अतीत है, चेतनस्वरूप है, सब जीवोंके अंतर है, सूर्यादिका प्रकाशदीपक है, अग्नि आदिकको उष्णकर्ता यही है, अरु चंद्रमाविषे शीतकर्ता अमृतका स्रवण आत्मातेही है, इंद्रियोंके भोगोंका भोक्ता अनुभवरूप यहीहै राजाकी नाईं ठाढा हौं, तौ मैं कबहूँ, नहीं ठाढा, बैठाहौं, तौ मैं कबहूं नहीं बैठा, चलताहौं तौ कबहूँ नहीं चलता, व्यवहार करताहौं, सदा शांतरूप हौं, कर्ता हौं तौ किसीकरि लेपायमाननहीं होता, त्रिकालोंविषे समरूपहौं, सर्वदा सर्व अवस्था विषे पदार्थोंके उपजनेविषे अरु मिटनेविषे सदा ज्योंका त्यों हौं, ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत सब जगत् आवृत आत्मतत्त्व स्थित है, पवन जो स्पंदरूप है तिसते भी मैं अतिसूक्ष्म स्पंदरूप हौं, पर्वत जो स्थान हैं, अचल पदार्थ तिनते भी मैं अचल हौं, आकाशते भी अति निर्लेप हौं, अरु मनको भी आत्मा चलाता है; जैसे पत्रोंको पवन चलाता है, इंद्रियोंको आत्मा फेरता है, जैसे घोडेको सवार चलाता है, अरु समर्थ चक्रवर्ती राजाकी नाईं भोग भोगता हौं, अरु अपने ऐश्वर्यकरि आप शोभताहौं

संसारसमुद्रविषे जरामरणरूपी जल है, तिसके पार करनेहारा आत्माहै, सो सबते सुलभ है, अपने आपकरि जानाजाता है, बांधवकी नाईं प्राप्त होता है, शरीररूपी कमलोंके छिद्र हैं, तिन सबोंका भँवराहै, खैंच बुलाये बिना सुलभ प्राप्त होता है, अल्प भी इसको बुलाता है, तब तिसी क्षणविषे सन्मुख होता है, इसविषे कोई संशय विकल्प नहीं, निष्कलंक परम संपदावान् है, सदा स्वस्थरूप है, रसदायक पदार्थोंविषे जैसे रस स्वाद है, जैसे पुष्पविषे सुगंधि हैं, जैसे तिलोंविषे तेल है, तैसे देव परमात्मा देहोंविषे स्थित है, तौ भी अविचारके वशते जाना नहीं जाता, जैसे चिरकालकरि आया बांधव अपने अग्र आनि स्थित होता है, तिसको नहीं पिछान सकता। तैसे जब विचार उदय होता हैं, तब ऐसे आत्मा परमेश्वरको जानि लेता है, जैसे किसी प्रीतम बांधवके पायेते आनंद उदय होता है, तैसे आत्मा देवके साक्षात्कार हुएते परम आनंद उदय होताहै, सब बंधन नष्ट हो जाते हैं, जेती कछु दुष्ट चेष्टा हैं, सो अभाव हो जातीहैं, सब ओरते बंधन फांसी टूटि जाती है, सब शत्रु क्षय हो जाते हैं, आशा बहुरि नहीं फुरती, जैसे पर्वतको चूहा तोडि नहीं सकता तैसे, ऐसे देवके देखते सब कछु देखा होता है, अरु सुनते सब कछु सुना होता है, तिसके स्पर्श कियेते सब जगत्का स्पर्श होता है, इसकी स्थितिकारि सर्व जगत् स्थित भासता है, यह जाग्रत् है, सो संसारकी ओरते स्वप्न है, तिसी जाग्रत्कारि अज्ञान नष्ट हो जाता है, जेती कछु आपदा है, तिसका कष्ट दूर होता है, आत्माके प्राप्त हुएते आत्मामय हो जाता है, सो विस्तृतरूप आत्मा दीपकवत् साक्षीभूत होता है, जगत्की स्थितिविषे भोगोंते राग उठा है, सब ओरते आत्मतत्त्व अपना प्रकाश भासता है, अंतर शांतरूप सबको अनुभव करनेहारे सब देहोंविषे मैं स्थित हौं, जैसे मिर्चविषे तीक्ष्णता स्थित है, तैसे सब जगत्के अंतर बाहर व्याप रहा हौं. जेते कछु जगत्के पदार्थ भासते हैं, सो सबविषे ईश्वररूप सत्ता सामान्य स्थित है, आकाशविषे [illegible] रूप, वायुविषे स्पंदतारूप तेजविषे प्रकाश, जलविषे रस, पृथ्वी-

विषे कठोरता, चंद्रमाविषे शीतलता है, तैसे सब जगत् अनुस्यूत एक आत्मतत्त्वही व्याप रहा है, जैसे बर्फविषे श्वेतता, पुष्पोंविषे गंध होती है, तैसे सब देहोंविषे आत्मा व्यापक है, जैसे सर्वगत काल है, सर्वव्यापक आकाश है, तैसे सब जगत् आत्मा व्यापक है, जैसे राजाकी प्रभुता सबविषे होतीहै, मुझते भिन्न और कलना कोऊ नहीं, जैसे धूलिके कणके आकाशको स्पर्श नहीं कारि सकते, अरु कमलोंको जल स्पर्श नहीं करता; जैसे पाषाणको स्फुरणभ्रम स्पर्श नहीं करता; तैसे मेरे साथ किसीका संबंध नहीं स्पर्श करता, सुखदुःखका संबन्ध देहको होताहै, जो देह चिरकाल रहै, अथवा अबहीं नष्ट होवै, तौ मुझको लाभ हानि कछु नहीं, जैसे दीपककी प्रभा लोकविषे रज्जुसाथ बांधी नहीं जाती, तैसे आत्मा किसीसे आच्छाद्या नहीं जाता, सब पदार्थोंके ग्रहणविषे अबंध-रूप है, जैसे आकाश किसीकारि बांधा नहीं जाता, अरु मन किसीकारि रोकानहीं जाता, तैसे परमात्माको देह इंद्रियका संबंध वास्तवते नहीं होता जो शरीरसों टुकडे हो जावैं, तौ भी आत्माका नाश नहीं होता जैसे घट फूटेते दूध आदिक पदार्थ नहीं रहता, परंतु आकाश कहीं नहीं जाता ज्योंका त्यों रहता है, तैसे देहके नाश भएते प्राणकला निकसि जाती है, आत्माका कछु नहीं होता, अरु पिशाचकी नाईं उदय होइकारि भासता है, मन है नाम जिसका, तिस मनते जगत् भासा है, तिसविषे जड शरीरके नाशका निश्चय भया है, हमारा क्या नाश होता है, दुःखसुखते वासना जिसके मनते नाश होती हैं, सो भोगोंते निवृत्त सुखसंपन्न होता है, ग्रहणकर्तें भोगते इंद्रियके अज्ञानकारि मूढ दुःख पाते हैं, तिस-कारि दुःखसंकट पाते हैं, यह बडा आश्चर्य है, आत्माके अज्ञानकारि मूढ दुःख पाते हैं, अब मैं आत्मतत्त्वको देखा है, तिसकारि मेरा भ्रम शांत हो गया है; कछु भी किसीकारि मुझको क्षोभ नहीं, न कछु भोगोंके ग्रहण करनेकी इच्छा है, न त्यागकी वांछा है, जो जावै, सो जावै, जो प्राप्त होवै सो होवै, न मुझको देहादिक सुखकी अपेक्षा है, न दुःखकी निवृत्तिकी अपेक्षाहै, सुखदुःख आवै अरु जावै, मैं एकरस चिदानंदस्वरूप हौं, देहविषे वासना करनेते नानाप्रकारकी वासना उपजतीहैं, सो देहभ्रम

मेरा नष्ट हो गया है, यह वासना नहीं फुरती, एते कालपर्यंत मुझको अज्ञानरूपी शत्रुने नाश किया था, अब मैं आपको जाना है, अब इसको मैं चूर्ण करता हौं, इस शरीररूपी वृक्षविषे अहंकाररूपी पिशाच था, सो मैंने परम बोधरूपी मंत्रकारि दूर किया है, इस शरीररूपी वृक्षसों अज्ञानरूपी पिशाच नष्ट भया है, ताते पवित्र हुआ हौं, प्रफुल्लितवृक्षवत् शोभता हौं, मोहरूपी दृष्टि मेरी शांत भई है, दुःख सब नष्ट भए हैं, विवेकरूपी धन मुझको प्राप्त भया है, अब मैं परम ईश्वररूप होइकारि स्थित भया हौं, जो कछु जानने योग्य था, सो जानाहै, अरु जो कछु देखने योग्य था, सो देखा है, मैं तिस पदको प्राप्त भया हौं, जिसके पायेते कछु पाने योग्य नहीं रहे आत्मतत्त्वको देखा है, अनेक रस विषयरूपी सर्प मुझको त्यागि गये हैं, मोहरूपी कुहिड़ नष्ट हो गईहै, इच्छारूपी मृगतृष्णा शांत हो गई है, रागदोषरूपी धूलिते रहित सब ओरते निर्मल भया हौं, उपशमरूपी वृक्षकारि शीतल भया हौं, सब ओरते विस्तृतरूपको प्राप्त भया हौं, सबते उचित परमात्मदेव परमार्थको उस तत्त्वकारिकै परिणामकारिकै ज्ञान विचार करिकै पाया हौं, अब प्रगट देखाहै, अधोगतिका कारण जो अहंकार तिसको दूरते त्यागा है, अपना स्वभावरूप जो है, आत्मा भगवान् सनातन ब्रह्म, सो अहंकारके वशते विस्मरण भया था, अब चिरकाल करिकै देखा है, इंद्रियांरूपी गर्तविषे मैं गिरा था, रागद्वेषरूपी सर्प होइकारि दुःख पाया था, अरु मृत्युको प्राप्त भया था, मृत्युकी भूमिका टोएविषे तृष्णारूपी करंजुएकी कुंजोंविषे रहा, कामरूपी कोयलके जहां शब्द होते थे, जन्मरूपी कूपविषे दुःख पाता था, सुखको पानेकी दिशाविषे डूबा, वासनारूपी जालविषे फँसा, दुःखरूपी दावाग्निविषे जला, आशारूपी फांसीने बांधा हुआ कईवार जन्ममरणको प्राप्त भया था, अहंकारके वश हुएते जन्ममृत्युको प्राप्त होता है, जैसे रात्रिविषे पिशाच दिखाई देवै, अरु अधीरताको प्राप्त करै, तैसे मुझको अहंकारने किया था, सो अब है, परमात्मरूप मुझको तुमने प्रेरणाकारि अपनी मुक्ति विष्णुरूप धारिकारि विवेक उपदेश किया है, अरु जगाया है ॥ हे देव ईश्वर ! तुम्हारे बोधकारि अहंकाररूपी राक्षस

नष्ट भया है ॥ हे विभु ! तिसको मैं नहीं देखता, जैसे दीपकरि तम नहीं भासता तैसे ॥ अहंकाररूपी यक्ष था, अरु मनविषे वासना थी, सो सब नष्ट भए हैं, अब मैं जानता नहीं कि, कहां गये, जैसे दीपक निर्वाण होता है, तब नहीं जानता कि, प्रकाश कहां गया ॥ हे ईश्वर ! तुम्हारे दर्शनकरि मेरा अहंभाव नष्ट भया है, जैसे सूर्यके उदय हुएते चोरभय मिट जाता है तैसे देहरूपी रात्रिविषे अहंकाररूपी पिशाच उठा था, सो अब नष्ट भया है, अब मैं परम स्वस्थ भया हौं, जैसे वानरोंते रहित वृक्ष स्वस्थ होता है, तैसे मैं परम निर्वाणको प्राप्त भया हौं, शम शांत बोधविषे मैं जागा हौं, चिरपर्यंत चोरोंते अब छूटा हौं, अंतर मेरा शीतल भया है, आशारूपी मृगतृष्णा शांत हो गई है, जैसे जलते पर्वतकी तप्तता मिटे, अरु वर्षाकरि शीतलताको प्राप्त होवै तैसे विवेकरूपी विचारकरि अहंकाररूपी तप्तता दूर हो गई है, अब मोह कहां अरु दुःख कहां, आशारूपी स्वर्ग कहां, अरु नरक कहां ? बंध अरु मुक्ति कहाँ, अहंकारके होनेकरि पदार्थ भासते हैं,अहंकारके गयेते इसका अभाव हो जाता है, जैसे कंध ऊपर मूर्ति लिखी जाती है, आकाश ऊपर नहीं लिखी जाती, तैसे अहंकारसंयुक्त जो चेतन है, सो नहीं शोभता सुखदुःखादिकका पात्र होती है, जैसे मलिन वस्त्रपर केसरका रंग नहीं शोभता तैसे उसविषे ज्ञान नहीं शोभता जब अहंकाररूपी मेघका अभाव होवै, तब तृष्णारूपी कुहिड भी नहीं रहती, शरत्कालके आकाशवत् स्वच्छ चित्त रहता है, निरहंकाररूपी जल है जिसविषे, ऐसा जो मैं आनंदमय सरोवर हौं, सो प्रसन्नतारूपी कमलोंकरि शोभता हौं ॥ हे आत्मा ! तुझको नमस्कार है, इंद्रियांरूपी जिसविषे तंदुए अरु चित्तरूपी वडवाग्नि है, दोनों जिसते नष्ट भये हैं ऐसा आत्मारूपी समुद्र है, तिस मुझ आत्माको नमस्कार है, जिसते दूर भया है अरु अहंकार मेघ शांत भई है, दावाग्नि ऐसा जो आत्मानंदरूपी पर्वत है, तिस आनंदके आश्रय मैं विश्राम पाया हौं ॥ हे देव ! तुझको नमस्कार है, प्रफुल्लित है आनंदरूपी कमल जिसविषे, अरु शांत भये हैं चित्तरूपी तरंग जिसते ऐसा मानस सरोवर मैं आत्मा हौं, तिसको नमस्कार है, आत्मारूपी हंस संवित्‌रूपी पंख जिसके अरु हृदयरूपी कमलों-

करि पूर्ण मानस सरोवरपर विश्राम करनहारे, तिसको नमस्कार है, कालरूपी कलनाते रहित निष्कलंक सदा उदितरूप सब ओरते पूर्ण शांत आत्मा, तुझको नमस्कार है, सदा उदित शीतल हृदयका तम दूर कर्ता सर्वव्यापक हौं, परंतु अज्ञानकारि अदृष्ट भया था, सो चेतन सूर्यको नमस्कार है, मनके मननकारि जो उपजे थे सो अब शांत भये हैं, मनको मनकारि अहंको अहंकारि छेदेते जो शेष रहै, सो मेरी जय है, भावरूप जो दृश्य पदार्थ हैं, तिनको आतमभावकारि छेदेते, अरु तृष्णाको अतृष्णाकारि छेदेते अनात्माको आत्मविचारकारि नष्ट कियेते, ज्ञानकारि ज्ञेयको जाननेते मैं अबके निरहंकारपदको प्राप्त भया हौं, भाव अभावक्रिया नष्ट हो गई हैं, मैं अब केवल स्वस्थित हौं, निर्भय निरहंकार निर्मन निस्पंद शुद्धात्मा हौं, मेरा शरीर जीवकी नाईं स्थित है, लीलाकरिकै मनने अहंकारको जीता है, परम उपशमको प्राप्त भया हौं, परम शांति मुझको प्राप्त भई है, मोहरूपी वेताल शांत भया है, अहंकाररूपी राक्षस नष्ट भयाहै, वासनारूपी कुत्सित भूमिकाते मुक्त विगतज्वर हुआ हौं तृष्णारूपी जेवरी गंठिकारि हुआ, देह पिंजरा था, तिसविषे अहंकाररूपी पक्षी फँसा था, सो तृष्णारूपी जेवरी विवेकरूपी कातरसे काटी है, अब जाना नहीं जाता कि, शरीररूपी पिंजरेते अहंकाररूपी पक्षी कहां निकस गया ? अज्ञानरूपी वृक्षविषे अहंकाररूपी पक्षी रहता था तिसके जाननेकारि जाना नहीं जाता, कि कहां गया ? दुराशारूपी दुर्मतिने धूसर किया था, भोगरूपी भस्मने शुद्ध दृष्टि दूर करी थी, अरु वासनाकारि हम मृतक हो गये थे, एते काल हम चित्तकी भूमिकाविषे मिथ्या अहंकारको प्राप्त भये थे, अब मैं उपजा हौं, अरु आजही मेरी बड़ी शोभा बढ़ी है, अहंकाररूपी महामेघ था, सो नष्ट भया है, तिसविषे तृष्णारूपी समता थी, सो नष्ट भई है, निर्मल आकाशवत् शोभता हौं, अब मैं आत्मा भगवान् देखा है, अपने स्वरूपको प्राप्त भया हौं, अनुभवरूप सदा प्राप्त है, प्रभुताके समूहके आगे अज्ञान अल्परूप है, कैसा है निस्पंदगति मननरूपी इच्छाते रहित निरिच्छित निरहंकार अरु दूरि भया है

रजनीरूपी राग जिसते, अरु विगतज्वर कौतुकते रहित अरु शांत भया है मन जिसते, अरु महा आपदा दीर्घ दुःख देनेहारी क्षय भई हैं जिसते, ऐसा अद्वैत महेश्वर चित्तते रहित है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे आत्मलाभचिन्तनं नाम पंचत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ३६.

प्रह्लादोपाख्यानेसंस्तवनवर्णनम् ।

प्रह्लाद उवाच ॥ हे महात्मा पुरुष ! तुझको नमस्कार है, तू आत्मा है, सर्व पदते अतीत चिरकालते मुझको शरण आया है, कल्याण भया है जो अब तुझको पाया ॥ हे भगवन् ! तुमको देखिकारि सब ओरते नमस्कार करता हौं, अंतरते तुमको आलिंगन करौंगा, त्रिलोकीविषे तुझते अन्य ऐसा बांधव कोई नहीं, तू सबते सुखदायक है, अरु सबका तूही संहार करता है सबकी रक्षा भी तूही करताहै, देनेलेनेहारा सब तूहीहै, अब तू क्या करैगा अरु कहां जावैगा ? अपनी सत्ताकारि विश्वको पूर्ण किया है, अरु विश्वरूप भी वही है, अब सब ओरते तुझको देखता हौं तूही नित्यरूप सर्वत्र है तेरे अरु मेरेविषे अनेक जन्मोंका अंतर पड़ा था, अब कल्याण हुआ जो तुझको देखा है, तू अत्यंत निकट है, अरु परमबांधवरूप है, तुझको नमस्कार है कृतकृत्य स्वरूप सबका कर्ता हर्ता है, संसार तेरी नृत्य है, नित्य निर्मल स्वरूप तुझको नमस्कार है, शंख चक्र गदा पद्मके धारनेहारे तुझको नमस्कार है, अर्धचंद्रमाके धारणहारा सदाशिवरूप तुझको नमस्कार है, सहस्रनेत्र इंद्र तुझको नमस्कार है, पद्मजन्म ब्रह्मा सब देव विद्याका संबंध तूही है तेरेविषे भेदकछु नहीं तो तुम्हारे हमारेविषे भेदकैसे होवे जैसे समुद्रअरु तरंगोंका संयोग अभेदहै, तैसे तेरा अरु मेरा संयोग अभेद है, तूही अनंत विचित्ररूप है, भावअभावरूप जगत्के धरनेहारी नीति है, जगत्की मर्यादाको करतीहै. हे द्रष्टारूप ! तुझको नमस्कारहै ॥ हे सर्वज्ञ सर्व स्वभावरूप आत्मा देव! जन्मजन्मप्रति मैं बहुत दुःखमार्गविषे विचरा हौं तेरी मायाकारि चिरकाल दग्ध भया हौं हे देवेश ! देश अरु लोक मैं अनंत देखेहैं, दृष्टांत

द्रष्टा भी अनेक देखे हैं परंतु किसीकारि तृप्त न भया जगत्को जिस ओर देखौं तिसी ओरते काष्ठ पाषाण जल मृत्तिका आकाश दृष्ट आता था, अब तुझविना कछु और दृष्ट नहीं आता, वांछा किसकी करौं अब तुझको देखा है उपलब्ध स्वरूपको प्राप्त भया हौं, तुझको नमस्कार है, नेत्रोंकी श्यामताविषे जो पुतलियाँरूप स्थित हैं अरु रूपको देखता है साक्षीभूत सो अंतर कैसे नहीं देखता जो त्वचाविषे स्पर्श करता है, शीत उष्णादिकको जानता है, ऐसा सर्व अंगोंविषे व्यापक अनुभव कर्त्ता है, जैसे तिलोंविषे तेल व्यापक होता है, तिसको अनुभव कोऊ नहीं करता, जो शब्द श्रवण इंद्रियके अंतर ग्रहण करता है; तिस शब्द-शक्तिको जो जाननेहारी सत्ता है, जिसविषे शब्दशक्तिका विचार होता है, जिसकारि रोम खडे होइ आते हैं, सो सत्ता दूर कैसे होवै, जो जिह्वाके अग्रविषे रसस्वादको ग्रहण करता है, तिस रसका अनुभव करनेहारी जो सत्ता है, सो दूर कैसे होवै, नासाविषे जो ग्रहणशक्ति है, जिसते गंध आती है तिसको अनुभव करनेहारी अलेप सत्ता है, सो सन्मुख कैसे न होवै ! वेद, वेदांत सप्त सिद्धांत पुराण गीताकारि जो जाननेयोग्य ज्ञेय आत्मा है, तिसको जब जाना तब विश्राम कैसे न होवै, परावर परमात्मा पुरुष है जिन भोगोंकी मैं तृष्णा करता था, सो भोग रमणीय विद्यमान आनि होते हैं, तौ भी तेरे दर्शनकारि रस नहीं देते॥ हे स्वच्छरूप निर्मलप्रकाश ! तू सूर्यभाव होइकारि प्रगट भया है, अरु तेरी सत्ताकारि चंद्रमा शीतल भया है, तेरी सत्ताकारि पृथ्वी स्थित है, तेरी सत्ताकारि देवता आकाशमार्गमें विचरते हैं, तेरी सत्ताकारि आकाशविषे आकाशभाव है, मेरी अहंता तेरेविषे तत्त्वको प्राप्त भई है, तेरे अरु मेरेमें भेद कछु नहीं, तेरेको मेरेको नमस्कार है. मैं सम, स्वच्छ, साक्षीरूप निर्विकार देशकाल पदार्थ छेदते रहित हौं, मन जब क्षोभको प्राप्त होता है, तब इंद्रियोंकी वृत्ति स्फुरणरूप होती हैं, प्राण अपानशक्ति जब उल्लासको प्राप्त होती है, तब देहरूपी यंत्र बहता है, कैसा यंत्र है, चर्म अस्थि आदिक जिसकेसाथ लकड़ियां अरु जेवरी हैं, इन्द्रियांरूपी घोड़े हैं मनरूपी सारथि चलानेहारा है, तिस देहरूपी रथविषे

मैं चेतनरूपी स्थित हौं, परंतु मैं किसीविषे आस्था नहीं करता, देह रहै, अथवा गिरै, मुझको इच्छा कछु नहीं, मैं अब आत्मलाभको प्राप्त भया हौं, चिरकालते उपशमको प्राप्त भया हौं, जैसे कल्पके अंतविषे जगत् शांतिको प्राप्त होता है, तैसे दीर्घ संसारमार्गविषे चिरकाल भ्रमता भ्रमता अब विश्राम पाया हौं, जैसे कल्पके अंतविषे वायु चलता चलता रह जाता है ॥ हे सबरूप आत्मा ! तुझको नमस्कार है, जो तुझको अरु मुझको इसप्रकार जानते हैं ॥ हे देव ! संपूर्ण जगज्जाल जो विस्तृतरूप है, तिसको तुम कदाचित् स्पर्श नहीं किया, तुम्हारी जय है, जैसे पुष्पोंविषे गंध होती है, तिलोंविषे तेल रहता है, तैसे तुम सब देहोंविषे रहते हौ, तू सर्व जगत्का प्रकाशक दीप है, उत्पत्ति-प्रलयकर्त्ता अरु सदा अकर्त्तारूप तेरी जय है, तेरे परमाणु चिद्अणु हैं, तिनविषे यह विस्ताररूप जगत् स्थित है, सो जैसे वटबीजविषे वृक्ष होता है, बहुरि अपरविषे अपर होता है, तैसे चिद्अणुविषे जगत् है, जैसे आकाशविषे एक बादरके अनेक आकार दृष्ट आते हैं, तैसे चित्तकला फुरनेकरि अनेक पदार्थ भ्रमरूप भासते हैं, इस संसारके जो क्षणभंगुररूप पदार्थ हैं, तिनकी अभावना कियेते अब भावअभावते रहित भावको देखता हौं; यह निश्चय भया है, मान मद क्रोध अरु कलुपता कठोरता आदिक विकारोंविषे महापुरुष नहीं डूबते, अरु प्रकृति नीचजन इन दोषोंगुणोंविषे डूबते हैं, पूर्व जो मेरी महादुरात्मा नीच अवस्था थी, तिसका स्मरण करिकै हँसता हौं कि, मैं कौन था, अरु क्या जानता था ॥ हे मेरे आत्मा ! मैं तिस पदको प्राप्त भया था जहां चितारूपी अग्निकी ज्वाला थी जहां दग्ध हुए जीर्ण संसारके आरंभ थे, अब देहरूपी नगरविषे स्फाररूप मनोरथकी जय है, अब दुःख ग्रहण नहीं करि सकते जहां दुष्ट इंद्रियांरूपी घोडे जाते थे अरु मनरूपी हस्ती जाता था, सो अब भोगरूपी शत्रुको चारों ओरते भक्षण किया है अरु निष्कंटक राजा चक्रवर्ती भया हौं तू परम सूर्य है, परम आकाशविषे तेरा मार्ग है, उदयअस्तते रहित तू नित्यप्रकाशरूप है, सबके अंतर बाहिर तू प्रकाशता है, अब भोगोंको लीलारूप देखता हौं जैसे अकामी कामिनीको देखै, परंतु इच्छाते रहित होवै है तैसे तू ग्रहण

करता है, नेत्ररूपी झरोखेविषे बैठिकरि तू रूपविषयको ग्रहण करता है, अपनी शक्तिकरि इसीप्रकार सब इंद्रियोंविषे वहीरूप धारिकरि तू शब्द स्पर्श रूप रस गंधविषयको ग्रहण करता है, ब्रह्मकोटरविषे जो देश हैं, तिनविषे प्राण अपान शक्तिकरि तूही विचरता है आता है, जाता है, ब्रह्मपुरीविषे जाता है, क्षणविषे बहुरि आता है, सब जगत् देहोंविषे तू विचरता है, देहरूपी पुष्पोंविषे तू सुगंधि है, देहरूपी चंद्रमाविषे तू अमृत है, देहरूपी वृक्षविषे तू रस है, देहरूपी बर्फविषे तू शीतलता है, चिन्मयस्वरूप है, दूधविषे तू घृत है, काष्ठविषे तू अग्नि है, उत्तम स्वादोंविषे तू स्वाद है, तेजविषे तू प्रकाश है, सर्व अर्थ कर्त्ता पूर्ण तूही है, सर्व जगत्का प्रकाशक तूही है, वायुविषे स्पंद तूही है, मनविषे मुदित तूही है, बुद्धिरूप अग्निविषे तेज सिद्धता तूही है, प्रकाशविषे तू प्रकाश है, सब पदार्थोंको सिद्धकर्ता तू दीपक है, लीन भएते जाना नहीं जाता कि, कहां गए, कई और ठौर जाय प्रकाशते हैं, जेते कछु संसारकेविषे पदार्थ अरु अहं त्वं आदिक शब्द हैं, सो ऐसे हैं, जैसे सुवर्णविषे भूषण होते हैं, सो अपनी लीलाके निमित्त किए हैं, आपही तू आप प्रसन्न होता है, जैसे मंदवायुकरि खंड खंड हुयेते बादरके हस्ती आदिक आकार हो भासते हैं, तैसे तू भौतिक दृष्टिकरिके भिन्न भिन्नरूप भासता है ॥ हे देव ! ब्रह्मांडरूपी मोती हैं, तिनविषे तू निरिच्छित व्यापक है, अरु भूतोंरूपी जो अन्न है, तिनका तू खेत है, चेतनरूपी रसकरि बढानेहारा है, अरु तू अस्तकी नाईं स्थित है, अर्थ यह इंद्रियोंके विषयते रहित अव्यक्तरूप है, अरु सब पदार्थोंका प्रकाश है, जो पदार्थ शोभासंयुक्त विद्यमान होते हैं, अरु तेरी अवस्था उसविषे नहीं होती, तब वह अस्त होता है, जैसे सुंदर स्त्री भूषणोंसहित अंधेके आगे स्थित होवै तौ वह अस्त भूत होती है, तैसे विद्यमान पदार्थ होवै, अरु तू न कल्पै तौ अस्त हो जाता है, जैसे दर्पणविषे मुखका प्रतिबिंब होता है, तिसको देखिकरि अपनी सुंदरताविना प्रसन्न कोई नहीं होता ॥ हे आत्मा ! तेरे संकल्पविना देह त्रुटित हो जाता है, काष्ठ लोष्टवत् होता है, जब पुर्यष्टका शरीरते अदृष्ट होती है, तब सुखदुःख आदिक क्रम नष्ट हो जाता है; किसीका ज्ञान

नहीं होता, जैसे तमविषे कोऊ पदार्थ दृष्ट नहीं आता, तेरे देखनेकारि सुखदुःख आदिक स्थित होते हैं, जैसे सूर्यकी दृष्टिकारि प्रातःकाल शुक्लवर्णकारि प्रकाश आता है, जब अपने स्वरूपको प्राप्त होता है, तब अज्ञानरूप सब विकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे प्रकाश-कारि अंधकार नष्ट होता है, तब पदार्थ ज्योंका त्यों भासता है, तैसे अज्ञानके नष्ट भयेते आत्मा ज्योंका त्यों भासता है, यह जो मनरूप तू है तेरे उपजनेकारि सुखदुःखकी लक्ष्मी उपजि आती है, तेरे अभाव हुएते सर्व नष्ट हो जाता है, स्वरूपते तू अनामयरूप है, क्षणभंगुर देहविषे जो मनने आस्था करी है, सो महासूक्ष्म अणु निमेषके लक्षभाग जैसा सूक्ष्म है, सुखदुःखादिककी भावनाकरिकै अनीश्वरताको प्राप्त भया है, तेरे प्रमादकारि स्फुरणरूप होता है, अरु तेरे देखनेकारि सर्व लीन हो जाता है, यह जो पुर्यष्टका तेरा रूप है तिसके देखनेकारि क्षणविषे पदार्थजात भासि आते हैं, जैसे नेत्रोंके खोलनेकारि रूप भास आता है, अरु अंतर्धान मनके मरनेकारि सर्व नष्ट हो जाता है, बहुरि किसीकारि ग्रहण नहीं होता, जो वस्तु क्षणभंगुर है, तिसते कछु कार्य सिद्ध नहीं होता, जैसे बिजलीके प्रकाशकारि कोऊ कार्य सिद्ध नहीं होता, तैसे अंतर्धान होनेकारि देहते कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता, जो उपजिकारि तत्काल नष्ट हो जाता है, तिसते कार्य क्या सिद्ध होवै, देहादिक जड़ नाशवंत है, अरु जो सबको प्रकाशता है, सदा निर्विकार सच्चिदानंदरूप है, सुखदुःख आदिक अज्ञानीके चित्तको स्पर्श करता है, अरु जिसका शमचित्त है, तिसको स्पर्श नहीं करते ॥ हे देव ! यह जो सुखदुःख आदिक विवेकके आश्रय हैं, सो अविवेक नष्ट हो गया है तू निरीह निरंश निराकार है, सत् असत्यते पर भैरवरूप परमात्मा तेरी सदा जय है, तू सर्व शास्त्रोंका असिपद है, तू जातअजातरूप सदा जय है, तेरे नाशरूपकी तेरे अविनाशरूपकी जय है, तेरे भावरूपकी तेरे अभावरूपकी जय है, जीतने योग्य तेरी अजीतने योग्य तेरी जय है, माया हुलासको प्राप्त हुआ है, अरु उपशांतिनको प्राप्त हुआ है, तुझको नमस्कार है ॥ हे निर्दोष ! तेरेविषे स्थित होनेकारि मेरे राग द्वेष मिटि

गए हैं, अब बंध कहां अरु मोक्ष कहां, अरु आपदा कहां, संपदा कहां, भाव अभाव कहां, सर्व विकार शांत भए हैं, शम समाधिविषे स्थित भया हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादोपाख्याने संस्तवनं नाम षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ३७.

दैत्यपुरीप्रभंजनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार चिंतनाकरि महाधैर्यवान् प्रह्लाद निर्विकार निरानंद समाधिविषे स्थित भया, जैसे मूर्तिका पर्वत होवै, तैसे अपने पदविषे स्थित भया, जब बहुत काल अपने गृहरूपी भुवनविषे सुमेरुवत् ऐसी समाधिविषे स्थित भया, तब दैत्य ईश्वर तिसको जगाने लगे, परंतु प्रह्लाद न जागा, जैसे समयविना बीज अंकुर नहीं लेता, तैसे पंचसहस्र वर्ष समाधिविषे व्यतीत भए ॥ अरु शरीर उसी प्रकार पुष्ट रहा, दैत्योंके नगरविषे शांति हो गई; परमानंद आत्माको प्राप्त भया निरानंद जो प्रकाश है सो प्रकाशमात्र रहगया और कलना सब मिटि गई, एता काल जब व्यतीत भया, तब रसातल मंडलविषे राज-भय दूर हो गया, छोटेको बडा भक्षण करिलेवै, हिरण्यकशिपु मृत्यु भया; तिसका पुत्र समाधिविषे स्थित भया, अपर कोऊ राजा न हुआ, दैत्यमंडलकी विपर्ययदशा भई, निर्बलको बलवान् मारि लूटि लेवै, तब अनेक मल्ल मिलिकरि प्रह्लादको जगाय रहे, तौ भी न जागा, जैसे सूर्यमुखी कमलको रात्रिविषे भँवरे गुंजारव करै, तौ भी प्रफुल्लित नहीं होता, मूँदा रहता है, तैसे प्रह्लाद न जागा, संवित्कला जो चित्त धातु है, सो तिसके अंतरफूर्ति न भासै, जैसे मूर्तिका लिखा सूर्य प्रकाशते रहित होता है तैसे देखिकरि दैत्य उद्वेगवान् भए; जहां किसीको सुख-दायक देशस्थान भासा, तहां जाय रहे, पाताल मंडलको राजाते हीन देखते भए, मर्यादा सब दूर हो गई; मत्सर आय प्रवर्त्ता, जो बलवान् होवै, सो निर्बलको ग्रासि लेवै, मर्यादाका क्रम नष्ट हो गया, अपने २

वांछित देशको चले जावैं, पुरुष स्त्रियां रुदन करैं शोकवान् होवैं कई मारे जावैं, कई लूटे जावैं, व्यर्थ अनर्थ कदर्थ करनेवाले हो गए. दैत्यता परायण हुई, बांधव नष्ट हो गए, उपद्रव उत्पन्न होने लगे, दिशाके मुख अग्निरूप हो गए, देवता आनि दिखाई देवैं, नर्बल दैत्यको बांधि ले जावैं, दैत्य मूल भूमिते रहित निर्लक्ष्मी उजाड़ जैसे हो गए, दैत्यपुरविषे अनीति अकांड उपद्रव आनि हुआ, जैसे कल्पके अंतविषे जीव दुःख पाते हैं, तैसे दैत्य दुःख पाने लगे ॥ इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे दैत्यपुरीप्रभंजनवर्णनं नाम सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंशत्तमः सर्गः ३८.
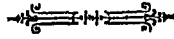
भगवच्चित्तविवेकवर्णनम् ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जब दैत्यपुरीकी दशा भई, तब संपूर्ण जगत्जालका क्रम पालनेहारा जो विष्णु देव है, क्षीरसमुद्रविषे शेषनागकी शय्यापर शयन करनेहारा, सो चतुर्मास वर्षाकालकी निद्राते जागा, बुद्धिके नेत्रोंकरि जगत्की मर्यादाको विचारता भया, तब देखा कि, पातालविषे प्रह्लाद दैत्य समाधिविषे पद्मासन बांधकरि स्थित भयाहै, तब शंख चक्र गदा पद्म हस्तविषे धरनेहारा, अरु सर्व देहोंविषे व्यापक है, ऐसा विष्णु देव पद्मासन बांधिकरि विचार करता भया कि; प्रह्लाद आत्मपदविषे स्थित हुआ पुतलीवत् हो गया है, बडा कष्ट है, जो सृष्टि दैत्यते रहित भई, तब देवता जीतनेकी इच्छाते रहित होइकरि आत्मपदविषे स्थित हो जावैंगे, जब देवता, दैत्योंका विरोध रहता है, तब जीतनेके निमित्त याचना करते हैं कि, दैत्य नष्ट होवैं, तब सब देवता निर्द्वंद्वरूप होइकरि परमपदको प्राप्त होवैंगे, जैसे रसते रहित वल्ली सूख जाती है, तैसे अभिमान इच्छाते रहित देवता जगत्की ओरते सुखकरि आत्मपदको प्राप्त होवैंगे; जब देवताके समूह शांतिको प्राप्त भये, तब पृथ्वीविषे यज्ञ तप आदिक जो उत्तम क्रिया हैं, सो सब निष्फल हो जावैंगी, न कोऊ करैगा, न किसीको प्राप्त होवैगा, जब

पृथ्वीलोकते शुभ क्रिया नष्ट भई, तब लोक भी नष्ट हो जावेंगे अकांड प्रलय प्रसंग होवैगा, सब मर्यादा क्रम जगत्का नष्ट हो जावैगा, जैसे धूपकरि बर्फ नष्ट होता है, तैसे जगत्क्रम सब नष्ट होवैगा, इसको नष्ट हुएते भी मुझको कछु नहीं परंतु मैंने अपनी लीला रची है, सो सब नष्ट हो जावैगी तब मैं भी इस शरीरको त्यागिकरि परमपदविषे स्थित होऊंगा, अकांडही जगत् उपशमको प्राप्त होवैगा ताते इसविषे कल्याण नहीं देखता जो दैत्योंके उद्वेगते रहित देवता भी शांत हो जावैंगे तप क्रिया नष्ट हो जावैंगी जीव दुःखी होइकरि नष्ट हो जावैंगे ताते मैं जगत्कर्मको स्थापन करौं, जो परमेश्वरकी नीति इसीप्रकार है अब रसातलको जाऊं अरु जगत्की मर्यादा ज्योंकी त्यों स्थापन करौं, जो प्रह्लादते इतर पातालका मैं राजा करौं, तौ वह देवताओंका शत्रु होवैगा, ताते ऐसे न करौं, प्रह्लादकी जो देह है, सो अंतका जन्म है, परम पावन देह है अरु कल्पपर्यंत रहैगी यह ईश्वरकी नीति है सो ज्योंकी त्यों है ताते मैं जाइकरि दैत्येन्द्र प्रह्लादको जगाऊं जो जागिकरि जीवन्मुक्त हुआ दैत्योंका राज्य करै जैसे मणि मलते रहित प्रतिबिंबको ग्रहण करती है तैसे प्रह्लाद भी इच्छाते रहित होइकरि प्रवर्तै इसप्रकार सृष्टि देवता दैत्योंसंयुक्त रहैगी अरु परस्पर इनका द्वेष न होवैगा मेरी क्रीडा--लीला इच्छा होवैगी यद्यपि सृष्टिका होना न होना मुझको तुल्य है तौ भी जो कछु नीति है सो जैसे स्थित है तैसेही रहै, जो वस्तु भावविषे तुल्य होवै नाशविषे अरु स्थितविषे तिसका प्रयत्न करना कुबुद्धि है सो जैसे आकाशके हननका यत्न करिये तैसे है ताते मैं पातालको जाऊं अरु प्रह्लादको जगाऊं जगत्की मर्यादा स्थापन करौं, जो नीति है, तिसको अपनी लीलाकरि प्रतिपादन करौं, दैत्यपुरीविषे प्राप्त होइकरि तिसको जगाऊं अरु उसीको अपने प्रकृति आचारविषे जोड़ि आवौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे भगवान् चित्तविवेको नाम अष्टात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः ३९.

नारायणवचउपन्यासयोगवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार चिंतनाकरि सर्वात्मा जो विष्णु देव है, अपने परिवारसहित क्षीरसमुद्रते चले जैसे मेघघटा एकत्र होइकरि चलै तैसे आइकरि प्रह्लादके नगरको प्राप्त भए, कैसा नगर है, मानौ दूसरा इंद्रलोक है, मंदिरविषे प्रह्लादको विष्णुजी देखते भए, अरु जो निकट दैत्य थे,सो विष्णुजीको दूरते देखिकारि भाजि गए जैसे सूर्यते उलूकादिक भाजि जावैं तब जो मुख्य दैत्य थे तिनके साथ दैत्यपुरीविषे विष्णुजी प्रवेश करते भये जैसे तारासंयुक्त चंद्रमा आकाशविषे प्रवेश करता है; तैसे विष्णुजी गरुडपर आरूढ हुआ लक्ष्मी साथ चमर करती और ऋषिदेव अनेक आते भये विष्णुजी प्रह्लादके गृह आते भये, अरु आतेही विष्णुजी कहते भये ॥ हे महात्मा पुरुष ! जाग जाग, ऐसें कह-कारि पांचजन्य शंखको बजावत भये महाशब्द भया, बहुरि प्रह्लादके श्रवणोंसाथ लगाया कैसा शब्द है जो विष्णुजीके प्राणोंते जिसका फुरणा है जैसे प्रलयकालविषे मेघका शब्द होवै,तैसे बड़े शब्दको सुनिकारि दैत्य भयभीत होइकारि पृथ्वीपर गिरगिर पड़े अरु शनैः शनैः दैत्येंद्रको जगाय जैसे कटकमंजरी मेघकारि प्रफुल्लित होती है, तैसे विष्णुजीने जगाया प्राणशक्ति जो ब्रह्मरंध्रविषे थी, तहांते विष्णुजीने उठाई तब शरीरविषे प्रवेश कर गई जैसे सूर्यके उदय हुएते सूर्यकी प्रभा वनविषे प्रवेश कर, जाती है, तैसे नव द्वारोंविषे प्रवेश करत भई तब प्राणरूपी दर्पण-विषे चित्तसंवित् प्रतिबिंबित होइकारि चैतन्यमुखत्व हुई,अरु मनभावको प्राप्त भई, जैसे प्रातःकालविषे कमल खिल आते हैं, तैसे नेत्र प्रफुल्लित हो आए, प्राण अरु अपान नाडीविषे छिद्रोंके मार्ग विचरने लगे,जैसे वायुकारि कमल स्फुरने लगते हैं, तैसे मन अरु प्राणशक्तिकारिकै अंग फुरने लगे; अरु जाग जाग शब्द जो भगवान् कहते थे, तब जागा अरु जानत भया कि, मुझको विष्णु भगवान्ने जगाया है; जैसे मेघका शब्द सुनिकारि मोर प्रसन्न होता है, तैसे प्रसन्न भया मनविषे दृढ स्मृति

हो आई, तब त्रिलोकीका ईश्वर विष्णुदेव कहता भया, जैसे पूर्व कमलोद्भव ब्रह्माको कहा था; तैसे प्रह्लादको कहता भया ॥ हे साधो ! तू अपनी महालक्ष्मीका स्मरण कर कि, तू कौन है, समयविना देहके त्यागनेकी इच्छा काहेको करी थी, ग्रहणत्यागके संकल्पते रहित पुरुष हैं तिनको भाव अभावके होनेविषे क्या प्रयोजन है, उठिकरि अपने आचारविषे सावधान होहु, यह तेरा शरीर कल्पपर्यंत रहैगा नष्ट नहीं होवैगा, यह नीतिको ज्योंकी त्यों जानते हैं, हे आनंदित ! तू जीवन्मुक्त हुआ राज्यविषे स्थित होहु, क्षीणमन गत उद्वेग कल्पपर्यंत तेरा देह रहैगा, बहुरि कल्पके अंतविषे तू शरीर त्यागैगा, त्यागिकरि अपनी महिमाविषे स्थित होवैगा, जैसे घटके फूटेते घटाकाश महाकाशको प्राप्त होता है, अब तू निर्मल दृष्टिको प्राप्त भया है, अरु लोकोंका तुझने परावर देखा है, अब तू जीवन्मुख विलासी भया है ॥ हे साधो ! द्वादश सूर्य तौ उदय नहीं भए हैं, जो प्रलयकालविषे तपते हैं, अब तू क्यों शरीर त्यागताहै । उन्मत्त पवन तो चला नहीं, जो त्रिलोकीकी भस्मको उड़ावनेहारा है, अरु देवताओंके विमान तिसकरि गिरे नहीं, तू क्यों व्यर्थ शरीर त्यागता है सब लोकोंके शरीर सूखे वृक्षकी मंजरीवत् अभी नहीं सूखे पुष्कर मेघ अरु वह विजली जगत्विषे नहीं फुरी तू क्यौं व्यर्थ शरीर त्यागता है । पर्वत तो युद्धकरि परस्पर ठहकने लगे नहीं अवलग मैं भूतोंको खैंचने लगा नहीं, अब लोकोंविषे, विचरता हौं, यह अर्थ है, यह मैं हो, यह पर्वत है, यह भूत प्राणी हैं, यह जगत् है, यह आकाश है, तू देहको मत त्याग, देहको धारे रहौ ॥ हे साधो ! जो जीव अज्ञानयोगकरि शिथिल भया है, अर्थ यह जो देहविषे आत्माभिमान है, जो मैं अरु मम तिसकरि व्याकुल रहताहै, दुःखोंकरि जीर्ण होताहै, तिसको मरणा शोभता है, कि मैं कृश हौं, दुःखी हौं, मूढ हौं, अनात्मा अभिमानका दृढ निश्चय है, यह भावना जिसके अंतर है, तिसको मरण श्रेष्ठ है, जिसको तृष्णा जलातीहै, हृदयविषे संसारभावना जीर्ण करती है, जैसे पुरातन गृहको चूहा जीर्ण करता है, जिसके मनरूपी वनविषे चित्तरूपी लता जो दुःखसुखरूपी पुष्पोंकरि प्रफुल्लित है, अरु उदय होतीहै, तिसको मरण श्रेष्ठ है, जो पुरुष अपने देहविषे आधि-

व्याधि दुःखोंकारि जलता है, अरु कामक्रोधरूपी सर्प जिसके अतर फुरते हैं, देहरूपी सूखा वृक्ष निष्फल है, अरु चित्त चंचल है, इस देह त्यागनेको लोकविषे मरना कहते हैं, स्वरूपकारि नाश किसीका नहीं होता, क्या ज्ञानीका क्या अज्ञानीका, हे साधो! जिसकी बुद्धि आत्मतत्त्वके अवलोकनते उपरांत नहीं होती, ऐसा जो यथार्थदर्शी ज्ञानवान् है, जिसका अंतर शीतल रागद्वेषते रहित हुआ है, अरु दृश्य वर्गको साक्षीभूत होइकारि देखता है, तिसका जीना श्रेष्ठ है, जो पुरुष सम्यक् ज्ञानकारि हेयोपादेयते रहित है, चेतनतत्त्वविषे तद्रूप चित्त भया है अरु संकल्पमलते रहित चित्तको आत्मपदविषे जोडाहै, जिस पुरुषको जगत्के पदार्थ इष्ट अनिष्ट समान भासते हैं, शांत चित्त हुआ लीलावत जगत्के कार्यको करता है, ऐसा जो वासनाते रहित पुरुष है, अरु इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिविषे राग द्वेष नहीं करता, अरु ग्रहण त्यागकी बुद्धि उदय नहीं होती, अरु जिसके श्रवण कियेते अरु दर्शन कियेते औरोंको आनंद उपजता है, तिसका जीना शोभता है, जिसके उदय हुएते जीवोंके हृद यकमल प्रफुल्लित होते हैं, तिसका चिर जीवना प्रकाशवान् शोभता है, वह पूर्णमासीके चंद्रमावत् सफल प्रकाशता है, और नीच नहीं शोभते॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादोपाख्याने नारायणवचउपन्यासयोगो नाम एकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४०.

प्रह्लादबोधवर्णनम् ।

श्रीभगवानुवाच ॥ हे साधो! यह जो देह संग दृष्ट आती है, तिसका नाम जीना कहते हैं, अरु इस देहका त्याग कारि अपर देहविषे प्राप्त होना तिसका नाम मरना कहते हैं ॥ हे बुद्धिमान्! इन दोनों पक्षोंते अब तू मुक्त है, तुझको क्या मरना अरु क्या जीना दोनों भ्रममात्रहैं, इस अर्थके दिखावनेनिमित्त मैं तुझको मरना अरु जीना कहाहै, काहेते कि, गुण वानोंका जीना श्रेष्ठ है, अरु मूढोंका मरना श्रेष्ठ है, अरु तू न जीताहै, न मरैगा; देहके होते भी तू विदेह है, आकाशकी नाईं असंग है, जैसे

आकाशविषे वायु नित्य चलता है; परंतु आकाश तिसते निर्लेप रहता है, तैसे तू देहविषे निर्लेप रहैगा, देह इंद्रियां, मनआदिककी क्रिया सब तुझकरि होती है, सबका कर्त्ता सत्ता देनेहारा तूही है, अरु स्वरूपकरि सदा अकर्त्ताहै, जैसे वृक्षकी ऊँचाईका कारण आकाश है, तैसे तेरेविषे कर्तव्य है, तू अब जागा है, वस्तुको ज्योंकी त्यों जानी है, तू अस्ति नास्ति सर्वका आत्मा है, यह परिच्छिन्नरूप जो देह है, सो अज्ञानीका निश्चय है, यह केवल दुःखोंका कारण है, अरु तू सर्व प्रकार सर्वात्मा चेतन प्रकाश है, तेरी बुद्धि आत्मपरायण है, तुझको देह अदेह क्या, ग्रहण क्या, अरु त्याग क्या ? तत्त्वदर्शी जो पुरुष हैं, तिनका भाव पदार्थ उदय होवै, अथवा लीन होवै, प्रलयकालका पवन चलै, तौ भी चलाय नहीं सकता, भाव अभावते तिसका मन रहित है, जैसे पर्वत ऊपर पर्वत पड़ै, अरु चूर्ण होवै, अरु कल्पके अग्निविषे जलने लगै तौ भी ज्ञानवान् अपने आपविषे स्थित है, चलायमान नहीं होता, सब भूत स्थित होवैं अथवा इकट्ठे नष्ट हो जावैं, अथवा वृद्ध होवैं, वह सदा अपने आपविषे स्थित है, अरु इस देहके नष्ट भये नाश नहीं होता, विरोधी हुएते नहीं प्राप्त होता, इस देहविषे जो स्थित परमेश्वर आत्मा है, सो मैं हौं, अरु अनात्मा भ्रम नष्ट हो गया है, ग्रहण त्याग यह मिथ्या कल्पना उदय नहीं होती, जो विवेकी तत्त्ववेत्ता है, तिसका संकल्पभ्रम नष्ट हो जाता है कि, यह मैं हौं, यह करौंगा, यह त्याग किया है, यह ग्रहण किया है, इत्यादिक भ्रम नष्ट हो जाते हैं, जो प्रबुद्ध पुरुष है, सो सब क्रिया कर्त्ता भी अकर्त्तापदको प्राप्त होता है, सर्व अर्थोंविषे अकर्त्ता अभोक्ता रहता है, किसी जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं करता, जब कर्तृत्व भोक्तृत्व शांत भया, तब आत्मपद शेष रहता है; इस निश्चय करी हुई दृढताको बुद्धिमान् मुक्त कहते हैं, जो प्रबुद्ध पुरुष हैं, सो चिन्मात्र स्वरूप हैं, सर्वको अपने वश करिकै स्थित हैं, ग्रहण किसका करैं, अरु त्याग किसका करैं, गाह्य अरु ग्राहक शब्दभाव अविद्या है, देह इंद्रियोंकरि होताहै, ग्रहण करना क्या ? अरु त्याग करना क्या ? जब ग्राह्यग्राहकभाव दृढ-

यते दूर हुआ, इसीका नाम मुक्त है, तिसको ऐसी स्थिति आनि उदय होती है, जो परमार्थसत्ताविषे सदा स्थित रहता है, सो पुरुषोंविषे पुरुषोत्तम सुषुप्तिकी नाईं स्थित है, उसके अंगोंकी चेष्टा करता बोधको प्राप्त भई है, परमविश्रांतिमान् निर्वासनिक पुरुषोंकी वासना भी जगत्-विषे स्थित दृष्टि आती है, अर्ध सुषुप्तिकी नाईं चेष्टा करता है, सब जगत्विषे आत्मा देखता है, आत्मविषयिणी बुद्धिकारि सुखविषे हर्षवान् नहीं होता; दुःखविषे शोकवान् नहीं होता, एकरस आत्मपदविषे स्थित रहताहै, नित्य प्रबुद्ध पुरुष कार्यभावको ग्रहण करता है, जैसे इच्छाते रहित दर्पण प्रतिबिंबको ग्रहण करता है, तैसे भली बुरी भावना तिसको स्पर्श नहीं करती, तिनको आत्मपदविषे जाग्रत् है, अरु संसारकी ओरते सोए हैं, सो पुरुष सुषुप्तिरूप है, जैसे बालक पाल-नेविषे सोया हुआ स्वाभाविक अंगको हिलाता है, तैसे उनका हृदय सुषुप्तिरूप है, अरु व्यवहार करते हैं ॥ हे पुत्र ! तू अजात परमपदको प्राप्त भया है, गुणवान् हुआ, तू एक दिन ब्रह्माका इस देहको भोगैगा इस रा-ज्यलक्ष्मीको भोगिकारि बहुरि अच्युत परमपदको प्राप्तहोवैगा ॥ इति श्री-योगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादबोधो नाम चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥४०॥

एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४१.

प्रह्लादाभिषेकवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जगत्रूपी रत्नोंका डब्बा, अद्भुत दर्शन है, जिसका सो विष्णुदेवने शीतल वाणीकारि जब इसप्रकार कहा, तब प्रह्लाद नेत्र खोलकर धैर्यसहित कोमल वचन मननभावको ग्रहण कारि देखा है, अरु चर्मदृष्टिकारि बाह्य देखा है, बडा कल्याण हुआ है, परमेश्वर अपना आप स्वरूप अनंत आत्मा है, सर्व संकल्पते रहित आकाशवत् निर्मल है, अब मुझको न शोक है, न मोह है, न वैराग्यकारि देहत्यागकी चिंता है, जो कछु कार्य भयदायक होता है, सो एक आत्माके विद्यमान शोक कहां, अरु नाश कहां, देहरूप संसार कहां, अरु संसारकी स्थिति

कहां भय कहां, अरु अभयता कहां ? मैं यथा इच्छित अपने आपकारि आपविषे स्थित हौं, इसप्रकार मैं निर्मल सब विस्तृतरूप केवल पावनविषे स्थित हौं, संसारबंधनको त्यागिकारि विरक्त भया हौं, जो अप्रबुद्ध मूढ हैं तिनकी बुद्धिविषे हर्ष शोक चिंता विकार सदा रहतेहैं, अरु देहके भावविषे सुख मानते हैं, अभावविषे दुःखी होतेहैं, यह चिंतारूपी विषकी पंक्ति मूढोंको लेपायमान होती है, यह इष्ट है, यह अनिष्ट है, यह ग्रहण करने योग्य है, यह त्यागने योग्य है, इसप्रकार मूर्खोंके चित्तकी अवस्था डोलायमान होती है, पंडितोंकी नहीं होती, मैं भिन्न हौं, वह भिन्न है, यह अज्ञानकारिकै अंधवासना है, शुद्ध बुद्धिके विद्यमान नहीं रहती, जैसे सूर्यके किरणोंते रात्रि दूर रहती है, तैसे यह वासना दूर रहती है, यह त्याग करिये, यह ग्रहण करिये, सो मिथ्या चित्तका भ्रम है, सो उन्मत्त अज्ञानीके अंतर होता है, ज्ञानवान्‌के अंतर यह भ्रम उदय नहीं होता ॥ हे कमलनयन! जो सर्व तूही है, विस्तृत आत्मारूप है, हेयोपादेय द्वैतभाव कल्पना कहां हैं, यह संपूर्ण जगत् विज्ञानरूप सत्ताका आभास है, सत्य असत्यरूप जगत्‌विषे ग्रहणत्याग किसका करिये, केवल अपने स्वभावकारि द्रष्टा अरु दृश्यका विचार किया है, तिसविषे, मैं प्रथम क्षीण विश्रांतिमान् हुआ था, अब भाव अभाव जगत्‌के पदार्थोंते मुक्त भया हौं, हेयोपादेयते रहित आत्मतत्त्व मुझको भासता है, समभावको प्राप्त भया हौं, अब मुझको संशय कछु नहीं रहा, जो कछु करता हौं, सो आत्माकारि करता हौं, त्रिलोकीविषे तबलग तू पूजने योग्य है जबलग यह उन्मत्त नहीं भया, ताते पूजन करता हौं, आदरसंयुक्त तुम ग्रहण करो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार दैत्यराज कहकारि क्षीरसमुद्रविषे शयन करनेहारे विष्णुको श्रेष्ठ सुमेरुकी मणिसों पूजत भया, बहुरि शंख चक्र गदा पद्म आदिक शस्त्रका पूजन करत भया, बहुरि गरुडकी पूजा करत भया, बहुरि देवता विद्याधरकी पूजा करी, इसप्रकार भगवान्‌को परिवारसंयुक्त पूजत भया, अंतर आत्मस्वरूपकी अरु बाहिर विष्णु देवकी मूर्तिपूजन किया, तब लक्ष्मीपति कहत भए ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ हे दैत्येश्वर ! तू उठकर सिंहासनपर बैठ मैं तुझको अपने हस्तसों अभिषेक करता हौं, पांचजन्य शंख बजाता हौं, तिसका शब्द सुनकर सब सिद्ध देवता आयकरि तेरा मंगल करेंगे ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहकर विष्णुजीने दैत्यको सिंहासनपर बैठाया, जैसे सुमेरुपर मेघ आय बैठे तैसे बैठाइकरि क्षीरसमुद्रादिकका अरु गंगादिक तीर्थोंका जल मँगाया, तब पांचन्य शंख बजाया; तिसके शब्दकरि सब सिद्धगण ऋषि ब्राह्मण विद्याधर देवता मुनिके समूह आए, सर्वात्मा पुरुष दैत्यराजके निमित्त सबको खैंचि ले आये, पवनगण देवगण सब स्तुति करत भए, प्रह्लादको इसप्रकार अभिषेक देइकरि मधुसूदन कहत भये ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे निष्पाप ! जबलग सुमेरुके धरनेहारी पृथ्वी है, अरु सूर्यचंद्रमाका मंडल है, तबलग तू अखंडित गुणवान् राज्य करि इष्टअनिष्टविषे समबुद्धि वीतराग क्रोधते रहित होइकरि भोग अरु राज्यकी पालना करियो, तुझको पूर्ण भूमिका प्राप्त भई है, तिसविषे स्थित हुए जो राज्यगणोंका प्रवाह जैसे प्राप्त होवै तैसे हर्षशोकते रहित होइकरि विचरौ, स्वर्ग प्राप्त होवै, अथवा नरक प्राप्त होवै, तू उद्वेगते रहित होइकरि भोगहु, देश काल क्रिया कार्य जैसे प्राप्त होवै, तैसे होवै, तैसेही स्थित होहु, हेयोपादेयते रहित हुआ तू बंधमान न होवैगा, संसारकी स्थिति तुझने सब देखी है, अरु सबको जानता है, और मैं तुझको क्या उपदेश करौं, तू रागद्वेषते रहित होइकरि राज्य भोग, अब दैत्योंका रुधिर धरणीपर न पडैगा, अर्थ यह कि, देवताओंसे विरोध न होवैगा, आजते देवता अरु दैत्योंका संग्राम बंद हुआ जैसे मंदराचलते रहित क्षीर समुद्र शांतिमान् भया, तैसे सब जगत् स्वस्थ रहैगा, मोहरूपी जो तम है, सो तेरे हृदयते दूरि भया है, सदा प्रकाश स्वरूपकी लक्ष्मी हुई है, अनंत विलासको राज्यलक्ष्मीकरि भोगता आत्मपदविषे स्थित रहै ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादाभिषेको नाम एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४२.

प्रह्लादव्यवस्थावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार कहकरि पुंडरीकाक्ष विष्णु परिवारसंयुक्त चले मानौ दूसरी संसारकी रचना दैत्यमंदिरते चली है, ता पाछे प्रह्लादने पुष्पांजलि दीनी, क्रमकरिकै क्षीरसमुद्रको प्राप्त भए, देवताओंको बिदा करिकै आप शेषनागके आसनपर स्थित भए, जैसे श्वेत कमलपर भँवरा बैठै, तैसे बैठिकरि इंद्रको सब देवतासंयुक्त सबविषे स्थित किए, अरु पाताललोकविषे दैत्येश्वरको बैठाया, तब आप विगतज्वर हुआ, सृष्टिकी स्थितिविषे जो चिंतना थी, सो दूर हो गई, देवता अरु दैत्यका विरोध रहता था सो नष्ट भया, सब शांतिको प्राप्त भये ॥ हे रामजी ! यह दृष्टि संपूर्ण मल अज्ञानके नाश करनेहारी है, जो प्रह्लादके बोधकी प्राप्तिकी अवस्था मैंने तुझको कही है, सो कैसी अवस्था है, चंद्रमाके मंडलवत् शीतल है, जो मनुष्यलोकविषे बड़ा पापी होवै, अरु इसको विचारै, तब वह भी शीघ्रही परमपदको- प्राप्त होवै अपर जो पापोंते रहित है, तिसकी क्या वार्त्ता कहिये, सम्यक् विचार करिकै पाप नष्ट हो जाता है, जो इन वाक्योंको विचार करै सो कौन है जो परमपदको प्राप्त न होवै ॥ हे रामजी ! अज्ञानरूप जो पाप है सो इसके विचारनेकरि नष्ट हो जाताहै, पापोंका कारण जो अज्ञान है; तिसका नाश करनेहारा यह विचार है, ताते विचारका त्याग कदाचित् न करौ, यह जो प्रह्लादकी सिद्धता कही है, इसको जो मनुष्य विचारै तिसके अनेक जन्मोंके पाप नष्ट हो जावैं, इसविषे संशय कछु नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! प्रह्लादका मन तौ परमपदविषे प्रणमी गया था पांचजन्य शब्द करिकै तिसको कैसे जगाया ?॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे निष्पाप रामजी ! लोकविषे मुक्ति दो प्रकारकी है एक सदेह अरु एक विदेह, तिनका भिन्न भिन्न विभाग सुन, जिस पुरुषकी बुद्धि देहादिकोंते असंसक्त है, ग्रहणत्यागकी जिसकेविषे ईषणा नहीं, निरहंकार हुआ चेष्टा करता है, तिसको तू सदेहमुक्ति जान, अरु देहादिक सब नष्ट हो जावैं बहुरि जन्म

को धरै नहीं, तिसको विदेहमुक्ति जान, तिस पदको प्राप्त होता है, जो अदृश्यरूप है, अरु अज्ञानीकी वासना कच्चे बीजकी नाईंहै, जन्मरूपी अंकुरको प्राप्त करती है, अरु ज्ञानवान् मुक्तकी वासना भूने बीजकी नाईं जन्मरूपी अंकुरते रहित होती है, अरु विदेहमुक्तकी वासनाका अंकुर दृष्ट नहीं आता, जीवन्मुक्त पुरुषके हृदयविषे शुद्ध वासना होती हैं, पावनरूप परम उदारता सत्तामात्र नित्य आत्मध्यानमें है, अरु संसारकी ओरते सुषुप्तिकी नाईं शांतरूप है सहस्र वर्षका अंत हो जावै अरु शुद्ध वासनाका बीज हृदयविषे होवै, तौ वह पुरुष समाधिते जागैगा, सो जीवन्मुक्त है, ताते प्रह्लादके अंतर शुद्ध वासना थी, तिसकारि पांचजन्य शंखके शब्दसों जागि आया, अरु विष्णु सब भूतोंका आत्माहै, जैसे जिसकी इच्छा फुरती है, तैसेही तत्काल होता है, सर्वज्ञ सबका कारण है, जब विष्णु चिंतना करै तब प्रह्लाद जागा, आप अकारण है, कोऊ इसका कारण नहीं, यह सब भूतोंका कारण है, सृष्टिकी स्थिति निमित्त आत्मा पुरुषने यह विष्णुवपु धारा है, आत्माके देखनेकारि माधवविष्णुका दर्शन होता है, अरु विष्णुकी आराधनाकारि शीघ्रही आत्माका दर्शन होता है, आत्माके देखनेनिमित्त तुम भी इसी दृष्टिको आश्रय करौ, तू विराटरूप है, इसी दृष्टिकारि शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, जो निरंतर आत्मपद है, यह वर्षाकालकी नदीवत् संसार असार बादर है, सो विचाररूपी सूर्यके देखेविना जडताको दिखावता है, विष्णुरूप जो आत्मा है, तिसकी प्रसन्नताते बुद्धिमान्को यह भास्वरूप माया नहीं वेधती, जैसे यक्षमाया यक्षमंत्रवालेको नहीं वेध सकती, तैसे आत्माकी इच्छाते यह संसारमाया घनताको प्राप्त होती है, अरु आत्माकी इच्छा कारि निवृत्त होती है, यह संसारमाया ईश्वरकी इच्छासे वृद्ध होती है जैसे अग्निकी ज्वाला वायुकारि वृद्ध होती है, अरु वायुहीकारि नष्ट होती है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादव्यवस्थावर्णनं नाम द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४३.

प्रह्लादविश्रांतिवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् सब धर्मोंके वेत्ता ! तुम्हारे वचन परम शुद्ध कल्याण स्वरूप हैं, तिनको श्रवणकारि मैं आनंदवान् भया हौं, जैसे चंद्रमाकी किरणोंकारि औषधी पुष्ट होती हैं तुम्हारे वचनके श्रवणकी जिसको वांछा है, सो पुरुष जैसा पुष्पोंकी मालाकारि सुंदर छाती शोभती है तैसे शोभता है कैसे वचन हैं, परम पावन अरु कोमल हैं ॥ हे गुरु ! तुम कहते हो, सब कार्य अपने पुरुषप्रयत्नकारि सिद्ध होता है, जो ऐसे हैं तौ प्रह्लाद माधवके वर विना क्यों जागता भया, जब विष्णुने वर दिया, तब ज्ञान जानता भया ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राघव ! जो कछु प्रह्लादको प्राप्त भया है, सो महात्मा पुरुषोंको अपने अपने पुरुषार्थकारि प्राप्त भया है, पुरुषार्थविना कछु नहीं प्राप्त होता, काहेते कि, जैसे तिलों अरु तेलविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु विष्णुविषे, भेद कछु नहीं, जो विष्णु है, सो आत्मा है, अरु आत्मा है, सो विष्णु है, विष्णु अरु आत्मा दोनों एक वस्तुके नाम हैं; जैसे विटप अरु पादप दोनों एक वृक्षके नाम हैं तैसे प्रह्लादने प्रथम अपने आपकारि अपनी प्रेमशक्तिको विष्णुभक्तिविषे जोडा, सो आत्मशक्तिकारि जोडीहुई आत्माते आपही वर पाता भया, अरु आपही विचारकारि अपने मनको जीता, यह कदाचित् आत्माविषे आपही अपनी शक्तिकारि जागता है अथवा विष्णुभक्तिकारि जागता है ॥ हे रामजी ! चिरपर्यंत आराधना करता प्रतापवान् हुआ, ताते विचारते रहितको विष्णु भी ज्ञान देनेको समर्थ न भया, आत्माके साक्षात्कारविषे मुख्य कारण अपने पुरुषार्थते उपजा विचार है अरु गौण कारण वर आदिक हैं, ताते तू मुख्य कारणको आश्रय कर, प्रथम पांच इंद्रियोंको वश कर, चित्तको आत्मविचारविषे जोड़, यह अभ्यास कर, प्रथम पांच इंद्रियोंको वश कर जो कछु किसीको कदाचित् प्राप्त होता है, सो अपने पुरुषार्थकरि होता है, पुरुषार्थविना नहीं होता, अपने पुरुषार्थ प्रयत्नकारि इंद्रियांरूपी जो पर्वत हैं, तिनते उल्लंघन

होवै, बहुरि संसारसमुद्रको तरि जावै, तब परमपदकी प्राप्ति होवै, जो पुरुष प्रयत्नविना जनार्दन दीखता होवै, तौ मृगपक्षीगणोंको क्यों दर्शन देइकरि उद्धार नहीं करजाता, जो गुरु अपने पुरुषार्थविना उद्धार करते होवें, तौ अज्ञानी अविचारी ऊंट बैल आदिक पशुको क्यों नहीं कर जाते; ताते विष्णुकरि, न गुरुकरि, न किसी अपरकरि, पानेकी इच्छा बुद्धिमान् करते हैं, अपने मनके स्वस्थ कियेविना परम सिद्धताकी प्राप्ति महात्मा पुरुष नहीं जानते, वैराग्य अरु अभ्यासकरि जिनने इंद्रियांरूपी शत्रु वश किये हैं, सो अपने आपकरि तिसको पाते हैं, अपर किसीकरि नहीं पाते॥ हे रामजी! आपकरि अपनी आराधना करहु, आपकरि अपनी अर्चना करहु आपकरि आपको देखहु, आपकरिआपविषेस्थितहोहु, शास्त्रविचारते रहित मूढ अपर जो हैं, तिनके निमित्तवैष्णवभक्ति कल्पीहै, सो प्रवृत्तिकी स्थितिनिमित्त प्रथमसुख जो अभ्यास यत्नका कहा है, तिसते जो रहित पुरुष हैं, तिनको गौण पूजाका क्रम कहाहै, काहेते कि, इंद्रियोंको वश नहीं किया, अरु जिनने इंद्रियोंको वश किया, तिनको भेद पूजासाथ क्या प्रयोजन है; विचार उपशमविना विष्णुभक्ति सिद्धनहीं होती, अरु जब विचार उपशम सयुक्त भया, तब कमल पाषाणसाथ क्या प्रयोजन है? ताते विचारसंयुक्त होइकरि आत्माका आराधन करहु, तिसकी सिद्धताते तू सिद्ध होवैगा, तिसको सिद्ध नहीं किया, तौ वनका गर्दभ है, जो प्राणी विष्णुके आगे प्रार्थना करते हैं सो अपने चित्तके आगे क्यों नहीं करते, सब जीवोंके अंतर विष्णुजी स्थित हैं, तिसको त्यागिकरि जो बाह्य विष्णुपरायण हो जातेहैं, सो बुद्धिमान् नहीं हृदयगुफाविषे जो चेतनतत्त्व स्थित है, सो ईश्वरकामुख्यसनातनवपु है, शंख, चक्र, गदा, पद्म जिसके हस्तविषे हैं, सो आत्माका गौण वपु है, जो मुख्यको त्यागिकरि गौणकी ओर धावते हैं, सो विद्यमान अमृतको त्यागिकरि जो साधनकरि सिद्ध होवै, तिसकी प्राप्तिनिमित्त यत्न करते हैं॥ हे रामजी! मनरूपी हस्तीको जिस पुरुषने आत्मविवेकके साथ वश नहीं किया, तिस अविवेकी चित्तको रागद्वेष ठहरने नहीं देते, शंख, चक्र, गदा, पद्म जिसके हाथविषे हैं, तिस ईश्वरकी जो अर्चना करते हैं, सो कष्ट

तपस्याकारि पूजन करते हैं, तिनका चित्त समय पाइकारि निर्मल भाव अभ्यास वैराग्यको प्राप्त होता है, अरु नित्य अभ्यासकारि भी चित्त निर्मल होता है, तब आत्मफलको प्राप्त होता है, चित्त निर्मल-विना आत्मफलको प्राप्त नहीं होता, जब चित्त निर्मल हुआ, तब वैराग्य अभ्यासवान् होइकारि आत्मफलका भोगी होता है, जैसे बीज बोया समयकारि फल देता है, तैसे क्रमकारि फल होताहै ॥ हे रामजी ! विष्णुपूजाका जो क्रम है, सो भी निमित्तमात्र मधुसूदनने वर कहे हैं, अरु अमित प्रकाश है, जिसका तिस आत्मतत्त्वते अभ्यासरूपी शाखा कारि फल प्राप्त होता है, अरु सबते उत्तम जो परम संपदाका अर्थ है, सो अपने मनके निग्रहकारि सिद्ध होता है, अपने मनका निग्रह करना बीज है, सो चेतनरूपी क्षेत्रते प्रफुल्लित होइकारि फलदायक होता है, संपूर्ण पृथ्वीकी निधि अरु संपूर्ण शिला बडी बडी मणिकीहोवैं, तौभी मनके निग्रह समान नहीं, जैसा दुःखका नाशकर्त्ता बडा पदार्थ मनका निग्रह है, तैसा अपर कोऊ नहीं, तबलग यह जीव अनेक जन्म पाता है, जबलग उपशमको नहीं प्राप्त भया मनरूपी मत्स्य संसारसमुद्रविषे भ्रमता है ॥ हे रामजी ! ब्रह्मा विष्णु महेशको चिरकालपर्यंत पूजता रहे, अरु मन उपशम विचारसंयुक्त न भया, तौ जो देवता कृपालु होवैं, तौ भी इसको संसार समुद्रते तराइ नहीं सकते, यह जो भासुर आकार जगत्के पदार्थ भासतेहैं, तिनको इंद्रियोंकारि त्यागकरिये तब जन्मके अभावका कारण जानिये, विषयोंकी चिंतवनाते रहित होइकारि निरामय सब दुःखोंते रहित आत्मसुख है, तिसविषे स्थित होहु; जो सत्तामात्र तत्त्व है, अरु सबका साररूप है, तिसका स्वाद लेइकारि मनरूपी नदीके पारको प्राप्त होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादविश्रांतिवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४४.

गाधिबोधोपाख्याने चांडालीवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो संसाररूप नाम्नी माया है, सो अनंत है और किसीप्रकार इसका अंत नहीं आता, जब चित्त वश

होवै, तब यह निवृत्त हो जाती है, अन्यथा नहीं निवृत्त होती, जेता कछु जगत् देखने सुननेविषे आता है, सो सब मायामात्र है, सो मायारूप जगत्के भ्रमकारि भासता है, इसपर पूर्व इतिहास हुआ है, सो तू सुन ॥ हे रामजी ! इस पृथ्वीपर एक कोशल नाम देश है, सो कैसा है, जो रत्नोंकारि पूर्ण है, जैसे सुमेरु पर्वत रत्नोंकारि पूर्ण है, तैसे वह रत्नोंकारि पूर्ण है जातिजातिविषे जो उत्तम पदार्थ हैं, सो सब तिस देशविषे पाते थे, तहां एक गाधि नाम ब्राह्मण होता भया, सो कैसा था, वेदविद्विषे प्रवीण मानो वेदकी मूर्त्ति था, अरु बालक अवस्थाते लेइकारि वैराग्य आदिक गुणोंसहित शोभता भया, जैसे प्रकाशकारि भुवन शोभता है, तैसे शोभता भया, एक कालमें कछु कार्य मनविषे धारि तप करनेनिमित्त वनको गया तब एक वनविषे कमलों कारि पूर्ण ताल देखता भया, तिसविषे कंठपर्यंत जलमें स्थित होइकारि तप करने लगा अपना कार्य मनविषे धारिकारि विष्णुके ध्यानमें खड़ा हो रहा, अष्टमासपर्यंत दिन रात्रि जलमें खड़ा रहा, तिसके दृढ़ तपको देखिकारि जब विष्णु प्रसन्न हुए, तब जहां ब्राह्मण तप करता था तहां आनि प्राप्त भये, जैसे ज्येष्ठ आषाढकी तपी पृथ्वीपर मेघ आता है, तैसे आइकारि विष्णु कहते भये ॥ हे ब्राह्मण ! जलते बाहर निकसि आवहु, अरु जो कछु वांछित फल है, सो माँग, तब गाधिने कहा ॥ हे भगवन् ! असंख्य जीवोंका हृदयकमल है, तिनके छिद्रविषे तुम भँवरे हौ, अरु त्रिलोकीरूपी कमलोंके तुम तलाव हो, ऐसे ईश्वर जो तुम हौ, सो मेरा तुमको नमस्कार है ॥ हे भगवन् ! मुझको यह इच्छा है कि, तुम्हारी जो आश्चर्यरूप माया है, जिसकारि यह जगत् रचा है, किसी प्रकार मैं तिसको देखौं ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार गाधि ब्राह्मणने कहा, तब विष्णुने कहा ॥ हे ब्राह्मण ! तू मायाको देखैगा, अरु देखिकारि बहुरि त्याग भी देवैगा, ऐसे कह कारि विष्णु अंतर्धान हो गये तब ब्राह्मण वरको पाइकारि आनंदवान् हुआ, अरु जलते निकसा, जैसे निर्धन पुरुष धनको पाइ कारि आनंदवान् होता है, तैसे ब्राह्मण वरको पाइकारि आनंदवान् भया, अरु चलते बैठते उसकी सुरत विष्णुके वरकी ओर लगी रहै कि, मैं माया

कब देखैंगा, तब एक कालमें तिसी तलावपर स्नान करने लगा, अरु डुबकी दीनी, मनविषे अघमर्षण मंत्रको जपने लगा, अघमर्षण कहिये पापोंको नाश कर्त्ता, तिस मंत्रको जपते तिसका चित्त विपर्यय होयकारि निकसिगया, तब उसको कृष्णमंत्र भूल गया, अरु आपको बहुरि अपने गृहविषे स्थित देखता भया, बहुरि आपको मृतक हुआ देखा कि, मैं मृत्यु पाया हौं, अरु सब कुटुम्बके लोकरुदन करते हैं, शरीरकी कांति जाती रही है, जैसे टूटे कमलोंकी शोभा जाती रहती है, तैसे प्राण निकसि गया, जैसे पवनके ठहरेते वृक्ष अचल हो जाता है, तैसे अंग अचल हो गया, अरु होठ फाटि विरस हो गये, मानौ अपने जीवनेको हँसते हैं, माता गाधिको पकड़ि बैठी है, सब परिवार इकट्ठे हुए हैं, जैसे वृक्षपर पक्षी आनि इकट्ठे होते हैं, जैसे पुलके टूटे जल चलताहै, तैसे रुदन करते हैं, तब बांधव लोक कहते भये, अब यह अमंगलरूप है, इसको जलाइये, ऐसे कहिकारि जलावनेको ले चले, चितामें डारिकै जलाय दिया, बहुरि अपने गृहमें आइकारि क्रिया कर्म करते भये ॥ हे रामजी! तिसते उपरांत ब्राह्मण एक देशविषे चण्डाल भया, उस देशविषे एक चंडालोंका ग्राम था, तहां आपको एक चंडालीके गर्भविषे देखता भया कि, मैं यहां आनि पड़ा हौं, जैसे श्वानकी विष्ठाविषे कृमि होता है। तैसे आपको प्रवेश किया देखता भया, तब समय पाइकारि गर्भते बाहर निकसा, जैसे पक्का फल वृक्षते गरता है, तैसे श्याम मूर्ति चंडालीते निकसा, अरु बहुत सुंदर बालक जन्मा चांडालीकी इसके साथ प्रीति भई, बढ़ता जावै, जैसे छोटा वृक्ष बढ़ जाता है, तैसे द्वादश वर्षका भया, बहुरि षोडश वर्षका भया, तब श्वानसाथ लेकारि वनमें जावै, मृगोंको मारै, इसप्रकार बहुत स्थानोमें विचरै बहुरि विवाह भया, यौवन अवस्थाको यौवनविषे व्यतीत करता भया, बहुत बड़ा कुटुम्बी भया पुत्र कलत्र बहुत भये, बहुरि वृद्ध भया, शरीर जर्जरीभाव हुआ, तृणोंकी कुटी बनाय करि बाहर जाय रहा, जैसे मुनीश्वर रहते हैं, वहां दुर्भिक्ष पड़ा, इसके बांधव क्षुधाकारि मरने लगे, तब वहांते एकलाही निकसा बहुतेरे स्थानोंको लँघता गया, एकक्रांत देश है तहां जाइ प्राप्त भया, सो सुंदर देशका राजा

मृतक भया, अरु यह राजमार्गको चला जाता था, सो उस राजाका एक बड़ा हस्ती था तिसको मंत्रियोंने छोडा था, जो कोई पुरुष इसके सन्मुखमें लगै, तिसको राजा करिये तब वह हस्ती चला आवै, इसने तिसको देखा बहुत सुंदर चरणोंकारि चला आवै, मानौ सुमेरु पर्वत चरणोंकारि चला आता है जब निकट आया; तब इसको शीशपर चढ़ाय लिया जैसे सूर्यको सुमेरु शीशपर बैठा लेवै तैसे हस्तीने इस चंडालको बैठाय लिया तब नगारे तुरहियाँ बाजने लगीं अरु बडे शब्द होने लगे मानौ प्रलयके मेघ गर्जते हैं अरु भाट आदिक आनि स्तुति करने लगे अरु इसके मुखकी शोभा हस्तीपर बैठेते और हो गई तब सेनासहित राजा शोभता भया जैसे ताराविषे चंद्रमा शोभता है तैसे शोभता चला अंतः-पुरविषे जाय राणियोंमें स्थित भया सब ओर राणियां सहेलियां इसके निकट आय स्थित भईं अरु इसको मिलने लगीं स्नान कराइके नाना-प्रकारके हीरे मोती भूषण अरु सुंदर वस्त्र पहिराये तिसकारि शोभायमान भया राजा होइकारि राज्य करत भया सब स्थान अरु सब देशोंविषे इसकी आज्ञा चलने लगी सब लोक इसते भय पावैं बडे तेज अरु बडी लक्ष्मीकारि संपन्न हुआ, अरु तेजवान् होइकारि विचरने लगा जैसे वनविषे सिंह विचरता है इसप्रकार चिरपर्यंत राज्य करता भया हस्ती-पर चढ़िकर शिकार खेलै गवल नाम राजा होइकारि सब देशपर आज्ञा करता भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे गाधिबोधोपाख्याने चंडालीवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४४ ॥

पंचचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४५.

राजप्रध्वंसवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार लक्ष्मीको पाइकारि आनंद-वान् हुआ जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है तैसे शोभता भया अरु आठ वर्षपर्यंत राज्य करता भया तब एक समय भूषण वस्त्रोंको पहिरि बैठा है अरु मनविषे संकल्प आनि फुरा कि मुझको वस्त्र भूषणके पहिरनेकारि क्या ? अरु इनकी सुंदरता क्या है ? मैं तौ राजाधिराज

अपने तेजकारि तेजस्वी शोभायमान हौं ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारकारि भूषण वस्त्र उतारि डारे, शुद्ध श्याम मूर्ति होइकारि स्थित भया, जैसे प्रातःकालविषे तारागणते रहित श्याम आकाश होता है, तैसे होइकारि बहुरि अपनी चंडाल अवस्थाके वस्त्र पहिरे, एकलाही निकसिकारि बाहिर डेवढ़ीविषे जायकारि स्थित भया, जैसे सूर्य आकाशमार्गको एकला चलता है, तैसे एकला होइकारि राजमार्गकी डेवढ़ीविषे जाय खडा हुआ, तब उन देशके चंडाल जो दुर्भिक्षकारि यह छोड आया था, तामेंते बडे चंडाल उस मार्गमें आय निकसे; तिनविषे एक चंडाल तन्त्री हाथविषे लेइकारि आता था; तिसने राजाको देखिकारि पहँचाना; तब राजाके सन्मुख आया, मानौ श्याम पर्वत चला आता है, अरु कहत भया हे भाई ! एता काल तू कहां था, हमको छोडिकारि यहां आइकारि सुख भोगने लगा है ॥ हे भाई ! यहांके राजाने तुझको सुखी किया होवैगा, काहेते कि तू गाता भला है राजाको राग प्यारा होता हैं, अरु तू कोकिलाकी नाईं गाता है, इस कारणते प्रसन्न होइकारि बहुरि धन दिया होवैगा, अथवा किसी और धनीने तुझको प्रसन्न होइकारि मंदिर धन दिया होवैगा ॥ हे रामजी ! इसप्रकार वह चंडाल मुखते कहता अरु भुजा पसारता इसके सन्मुख चला आवै, अरु यह नेत्र हाथोंसे उसको जनावै कि, तूष्णीं होहु, मुखते कछु न कहहु, परंतु वह चंडाल कछु समुझै नहीं, सन्मुख होइकारि चला आवै, ज्यों ज्यों वह चला आवै; त्यों त्यों राजाकी कांति घटती जावै जैसे गैडेकारि मारे हुए कमलोंकी कांति घटि जाती है, अरु ऊपर झरोंखेविषे सहेलियां देखत भई उन्होंने देखकर विचार किया कि, राजा चंडाल है, ऐसे विचार-कारि महाशोकको प्राप्त भई और कहत भई कि, हमको बडा पाप प्राप्त भया है, जो इसके साथ हमने स्पर्श किया है, अरु भोजन किया है, चिरपर्यंत विचरी हैं, ऐसे शोकवान् होइकारि सबकी कांति नष्ट हो गई; जैसे बर्फ पडनेकारि कमलपंक्तिकी कांति जाती रहती है, जैसे वनको अग्नि लगनेकारि वृक्षोंकी कांति जाती रहती है, तैसे उनकी कांति जाती रही, शोकवान् होइकारि कष्ट

पाती भई, अरु सब नगरवासी भी सुनिकारि शोकवान् भए, अरु हाय हाय शब्दकरने लगे, तब वह चंडाल राजा अपने अंतःपुरविषे आया, जेते कछु अंतर लोक थे सो तिसको देखिकरके भागे, निकट कोऊ न आवै, जैसे पर्वतको अग्नि लगै, वहांते मृगपक्षी भाग जावैं, तैसे चंडाल राजाके निकट कोऊ न आवै, मंत्री टहलुए स्त्रियां सब दूरते भाग जावैं तब तिस देशविषे जो पंडित बुद्धिमान् थे, तिन्होंने विचार किया कि, बड़ा अनर्थ भया है, एता काल हम चंडाल राजा करिके जीये हैं, हमको बड़ा पाप लगा है, इस पापका और प्रायश्चित्त कोई नहीं, हम सब चिता बनाय अग्निविषे प्रवेश कर जलि मरैंगे, तब यह पाप निवृत्त होवैगा॥ हे रामजी! जब यह विचार ब्राह्मण क्षत्रिय लोकोंने किया, तब तिसके अनंतर चिता बनाइकारि जलने लगे, पुत्र कलत्र बांधवोंको छोडिकारि प्रवेश करैं जैसे दीपकविषे पतंग प्रवेश करैं, तैसे जलैं, अरु जैसे आकाशविषे तारे दृष्ट आवैं, तैसे अनेक चिताका चमत्कार दृष्ट आवै, अरु धूम्रकारि अंधकार हो रहा, कई मनुष्य धर्मात्मा अपनी इच्छाकारि न जले जब अपनी इच्छाकारि न जले, तब तिनको अपर ले जलावैं, तब चंडाल राजा विचारत भया कि, मेरे एकके निमित्त एते नगरवासी जलते हैं, जीना भी तिसका श्रेष्ठ है, जिसते शोभा उत्पन्न होवै, जिसके जीनेकारि पाप उत्पन्नहोवै, तिसको मरना श्रेष्ठ है॥ हे रामजी! ऐसे विचारिकारि उस राजाने भी चिता बनाई, अरु जैसे दीपकविषे पतंग प्रवेश करता है, तैसे राजा प्रवेश करता भया, अरु अग्निका तेज शरीरको लगा, तब गाधिका शरीर जो तलावविषे डुबकी लगाया था, सो कंपायमान हुआ, तब जलते बाहर शीश निकासा, परंतु सावधान भया॥ वाल्मीकिरुवाच॥ इसप्रकार जब वसिष्ठजीने कहा, तब सूर्य अस्त भया, सब सभा परस्पर नमस्कार करिके स्नानको गयी, बहुरि रात्रि नष्ट भएते आनि स्थित भए॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे राजप्रध्वंसवर्णनं नाम पंचचत्वारिंशत्तमः सर्गः॥ ४५॥

षट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४६.

गाधिबोधप्राप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! एता भ्रम उसने दो मुहूर्त्तविषे देखा अर्ध घटीपर्यंत बोध कछु न हुआ, तिसते उपरांत बोधवान् भया, अरु उस संसारभ्रमते रहित हुआ, जैसे मद्यपानका कैफ क्षीण भयेते बोधवान् होवै, तैसा बोधवान् हुआ, बाहर निकसिकरि विचारने लगा कि, मुझको कछु भ्रम जैसा हुआ, कहां था वह मेरा गृहविषे मरना, बहुरि चंडालके गृहविषे जन्म लेना, बहुरि कुटुंबविषे रहना, बहुरि राज्य करना, बडा भ्रम मुझको भया है ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारिकरि बहुरि संध्यादिक कर्म करता भया, इस भ्रमको बहुरि बहुरि स्मरण करिकै आश्चर्यवान् होवै, अरु ऐसे न जानि सकै कि, भगवान्का वर पाइकरि मैंने माया देखी, जब केताक काल व्यतीत भया, तब एक ब्राह्मण दुर्बल जैसा क्षुधार्थी अरु थका हुआ इसके आश्रमपर आया, मानौ ब्रह्माके आश्रमपर दुर्वासा ऋषि आया है तब गाधिने उस ब्राह्मणको आदरसंयुक्त बैठाया, अरु फल फूल इकट्ठे करिकै तिसके आगे आनि रक्खे, जैसे वसंतऋतुकरिकै फल फूलसाथ वृक्ष पूर्ण होता है, तैसे उसको पूर्ण किया, अरु केतेक दिन वहां रहा, संध्यादिक कर्म मंत्र जाप इकट्ठे करैं, रात्रिको पत्रोंकी शय्या बनाइकरि शयन करै, तब एक रात्रिके समय शय्यापर बैठे चर्चा वार्त्ता करते थे, तब प्रसंग पाइकरि गाधिने पूछा कि, हे ब्राह्मण ! तेरा शरीर कृश जैसा अरु थका हुआ है, सो क्या कारण है ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार गाधिने ब्राह्मणसे पूछा, तब उसने कहा ॥ हे साधो ! जो कछु तैंने पूछा है, सो मैं कहता हौं, हम सतवादी हैं, जैसे वृत्तांत हुआ है सो तू सुन ॥ मैं एक कालमें देशांतर फिरता फिरता उत्तरदिशाकी ओर प्राप्त भया, तहां क्रांतदेशविषे जाता भया, वहाँ रहने लगा, वहांके गृहस्थ भली प्रकार टहल करैं, तिनके भले भोजन वस्त्र करिकै प्रसन्न होऊं, रस स्वाद करिकै मेरा चित्त मोह गया, तब एक दिन मेरे मुखते यह शब्द निकसा कि यहांके लोक बहुत श्रद्धावान् दयावान् हैं, तब पास जो लोग

बैठे थे, सो कहने लगे ॥ हे साधो ! आगे यहां दया धर्म बहुत था, अब कछु घटि गया है, तब मैंने पूछा कि, क्योंकरि घटा है, सो वृत्तांत कहौ, तब उनने कहा, कि इस देशका राजा मृतक हुआ था, बहुरि राजा एक चंडाल हुआ था, प्रथम किसीने न जाना; अष्ट वर्षपर्यंत राज्य करता भया, जब उसकी वार्त्ता प्रगट भई कि, यह चण्डाल है, तब देशके रहनेवाले ब्राह्मण क्षत्रिय थे, सो चिता बनाइकरिकै जलि मरे, अनेक जीव इसप्रकार जो ब्राह्मण आदिक जलि मरे; बहुरि राजा भी जलि मरा, ऐसा पाप इस देशविषे हुआ है; इस कारणते दया धर्म कछु घटि गयाहै ॥ हे ब्राह्मण ! जब इसप्रकार नगरवासियोंते सुना, तब मैं बहुत शोकवान् हुआ, अरु वहांते चला कि, हाय हाय मैं बड़े पापी देशविषे रहा हौं, ऐसे विचारकरि मैं प्रयागादि तीर्थोंपर चला, तीर्थ करिकै कृच्छ्र अरु चांद्रायण व्रत राखे; कृष्णपक्षविषे एक एक ग्रास घटावता गया, जब अमावास्या आवै, तब निराहार रहा, बहुरि जब शुक्लपक्ष आवै, तब एक एक ग्रास बढाता गया, पूर्णमासीके चंद्रमाकी कलाकरि बढावना, अरु कलासाथ घटावना; इसप्रकार मैंने तीन कृच्छ्र चांद्रायण किये हैं, वहांते चला तेरे आश्रमपर वृत्त खोला है, हे साधो ! इसनिमित्त मेरा शरीर कृश अरु निर्बल हुआ है ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार ब्राह्मणने कहा, तब गाधि विस्मयको प्राप्त भया कि, जो मैं जानता था कि मुझको भ्रमसा हो गया, सो इसने प्रत्यक्षवार्त्ता कह सुनाई, ऐसे विचारकरि पूछा बहुरि उसने ऐसेही कहा तब सुनकर आश्चर्यवान् हुआ, जब रात्रि व्यतीत भई, अरु सूर्य उदय भया, तब संध्या आदिक कर्म करता भया; वह अतीत रमता रहा, तब एकला होइकरि विचारत भया कि, मैंने कैसा भ्रम देखा है, अरु ब्राह्मणने सत्यकरि देखा सो कैसे हो गया, ताते अब तिस देशको चलिकरि देखो, जहां मुझको चंडालका शरीर भया है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार विचारिकरि मनोराज्यके भ्रमको देखने गाधि ब्राह्मण चला, चलता चलता उस देशविषे जाय प्राप्त भया, जैसे ऊंट कंटकोंको ढूण्ढता कंटकोंके वनविषे जाता है, तैसे यह चंडालके स्थानोंको प्राप्त भया, तब चंडालके स्थान देखता भया, जहां अपना स्थान था, तिसको देखा अपने खेती लगा-

वनेका स्थान देखता भया, बाड़ी कछु खडी है, कछु गिर गई हैं, अरु पशुनके हाड़ चर्म जो अपने हाथसों डारे थे, सो प्रत्यक्ष देखता भया, देखिकरि आश्चर्यवान् भया ॥ हे देव ! यह क्या आश्चर्य है, चित्तका भ्रम मैंने प्रत्यक्ष देखा है, जो बालक अवस्थाविषे क्रीड़ा करनेके स्थान थे सो देखे, अरु भोजनके स्थान, मद्यपानके स्थान, अरु पात्र थे इत्यादिक जो खानपानके भोगके स्थान थे, सो प्रत्यक्ष देखता भया, अरु महा वैराग्यको प्राप्त भया, अरु ग्रामवासी मनुष्योंसे भी पूँछत भया, जो कदाचित् कैसे कहेंगे ॥ हे साधो ! यहां एक चंडाल हुआ था, बड़े श्याम शरीरवाला तुमको भी कछु स्मरण है ? ॥ हे रामजी ! जब इस-प्रकार ब्राह्मणने पूछा तब ग्रामवासी कहत भये ॥ हे ब्राह्मण ! यहां एक कंटजाल नाम चण्डाल होता भया, क्रमकरिकै बड़ा हुआ, बहुरि उसका विवाह हुआ, बेटा बेटी परिवारसहित बड़ा कुटुंबी हुआ, वृद्ध भया, सो दैवसंयोगकरि एकलाही निकसा, जाता जाता क्रांतदेशविषे गया, वहांके राजाकी मृत्यु भई थी, उनने राज्य इसको दिया, तहां आठ वर्षपर्यंत राज्य करता भया, तब नगरवासियोंने सुना कि, यह चंडाल है, तब बहुत शोकवान् भये, अरु चिता बनाइकरि जलि जलि मरे, इसप्रकार सुनिकरि गाधि बहुत आश्चर्यवान् हुआ, एकसों सुनकर औरसों पूछा, वह भी इसप्रकार कहै, ऐसे वारंवार लोकोंसे पूछता रहै, एक मास वह रहा, बहुरि आगे चला; नदियां पहाड देश हिमालय पर्व-तकी उत्तर दिशाविषे क्रांतदेशमें जाय प्राप्त भया, जेता कछु स्थानोंका वृत्तांत था, सो सबही देखता भया, जहां सुंदर स्त्रियां थीं, जहां चमर झूलते थे तिनको प्रत्यक्ष देखा, बहुरि नगरवासियोंते पूछता भया कि, यहां कोऊ चण्डाल राजा भी हुआ है, तुमको कछु स्मरण है, तौ मुझको कहो ॥ हे रामजी ! तब नगरवासी कहत भए ॥ हे साधो ! यहांका राजा मृत्यु पाया था, अरु मंत्रियोंने हस्ती छोडा था, जो कोऊ मनुष्य हस्तीके सन्मुख आवै, तिसको राजा करना, जब हस्ती चला तब तिसके सन्मुख चण्डाल आइ निकसा तब हस्तीने चण्डालको शीशपर चढाइ लिया, बहुरि और विचार किसीने

नहीं किया, उसको राज्यतिलक दिया, अष्ट वर्षपर्यंत राज्य करता भया पाछे जब उसके बांधव आए, अरु तिसके साथ चर्चा करने लगे, तब सहेलियोंने ऊपरसों देखा कि, यह चंडाल है; ऐसे देखि उनने उसका त्याग किया, बहुरि लोक विचारवान् जो उसकेसाथ चेष्टा करतेथे, चंडालोंका भाई जानिकारि सो जलि मरे, अरु वह राजा भी आपको धिक्कारकरि जलि मरा, अष्ट वर्ष पर्यंत वह राज्य करता भया, अरु उसको द्वादश वर्ष मृत्यु पाये व्यतीत भये ॥ हे रामजी ! इस प्रकार श्रवण करिके गाधि ब्राह्मण आश्चर्यको प्राप्त भया कि, कहां मैं जलविषे स्थित था, अरु कहां एती अवस्थाको देखता भया, ऐसे विचार करता था, इतनेमें पूर्वका वृत्तांत स्मरण आया कि, यह आश्चर्य भगवान्की माया है, मैं वर मांगा था, इस मायाकरि एता भ्रम देखा है, यह आश्चर्य है, कि यहां दो मुहूर्त हैं, अरु वहांते एता काल मुझको भासा है, स्वप्नभ्रमकी नाईं अरु सत्य करि स्थित भया है, सो बडा आश्चर्य है, ताते संशय निवृत्त करने निमित्त बहुरि विष्णुजीका ध्यान करौं, जिसकी मायाकरि मैंने एता भ्रम देखा है; और कोई इस संशय निवारनेको समर्थ नहीं ॥ हे रामजी ! इसप्रकार विचारिकारि गाधि ब्राह्मण बहुरि पहाड़की कंदराविषे जाय तप करने लगा, एक अंजली जलपान करै, और भोजन कछु न करै, इसप्रकार डेढ वर्षपर्यंत तप किया, तब त्रिलोकीके नाथ विष्णु भगवान् प्रसन्न होइकरि निकट आइकरि प्राप्त भए, अरु कहा ॥ हे ब्राह्मण ! मेरी मायाको देखि जो जगत्जालको रचनेहारी है ! अब और क्या इच्छा करता है॥हे रामजी ! जब विष्णु भगवान्ने ऐसे कहा, तब ब्राह्मण कहता भया, जैसे मेघको देखिकरि पपैया बोलता है, तैसे ब्राह्मण बोलता भया ॥ गाधिरुवाच ॥ हे भगवन् ! तेरी माया तौ मैंने देखी, परंतु एक संशय मुझको है कि, यह स्वप्नभ्रमकी नांई मैंने देखा, इसविषे कालकी विषमता कैसे हुई, जो यहां दो मुहूर्त व्यतीत भएहैं, अरु वहां चिरकालपर्यंत भ्रमता रहा हौं, अरु तिन झूठ पदार्थोंको जाग्रत्विषे प्रत्यक्ष कैसे देखे ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे ब्राह्मण ! और कछु नहीं तेरे चित्तहीका भ्रम है, जिसके चित्तविषे तत्त्वकी अदृष्टता है, तिसको यह चित्त भ्रम होता है,

अरु वह क्या भ्रम था, जेता कछु जगत् प्रत्यक्ष दीखता है; सो भी तेरे मनविषे स्थित है, बाहिर पृथ्वी आदिक तत्त्व कोऊ नहीं, सब तेरे अंतर स्थित हैं, जैसे बीजके अंतर फूल फल पत्र हैं, तैसे पृथ्वी जल तेज वायु आकाश जेता कछु पांचभौतिक है, सो सब विस्तार चित्तविषे स्थित है, जैसे वृक्षका विस्तार बीजविषे दृष्ट नहीं आता जब बोया हुआ उगता है, तब विस्तार दृष्ट आताहै, तैसे जब चित्त ज्ञानविषे लीन होताहै, तब जगत् नहीं भासता, अरु जब स्पंदरूप होता है, तब बडे विस्तार संयुक्त जगत् भासता है॥ हे ब्राह्मण! जेता कछु जगत् दीखताहै, सो सब चित्तका भ्रम है, जैसे एक कुलाल घटादिक वासना उत्पन्न करता है, तैसे एकही चित्त अनेक भ्रमरूप पदार्थको उत्पन्न करता है; अरु जो चित्त वासनाते रहित है, तिसते भ्रमरूप पदार्थ कोऊ नहीं उपजता, ताते चित्तको स्थित कर ॥ हे ब्राह्मण! इस चित्तविषे कोटि ब्रह्मांड स्थित हैं, जो तुझको चंडाल अवस्थाका अनुभव हुआ है, तौ इसविषे क्या आश्चर्य हुआ ? अरु तू कहता है, कि, मैं बडी आश्चर्यरूप माया देखी है, सो उसको ही माया कहता है, अब जो तुझको विद्यमान भासता है, सो सबही माया है, जो तुझको अपने गृहविषे अनुभव भया था, अरु चंडालके गृहविषे जन्म लिया, कुटुंबी हुआ, अरु राज्य किया, बहुरि चिताविषे जला, बहुरि अतिथि ब्राह्मणको मिला, बहुरि जाइकरि सब ही स्थान देखे, सो भी माया थी, जैसे एता भ्रम तुझने मायाकरि देखा, तैसे यह पसारा भी सब माया है ॥ हे साधो! जैसे स्वप्नविषे नाना प्रकारके पदार्थ भासते हैं, अरु जैसे मदिरापान करनेवालेको सब पदार्थ भ्रमते हैं, तैसे यह जगत् भी भ्रमते भासता हैं, अरु जैसे नौकापर बैठेको तटके वृक्ष भ्रमते भासते हैं, तैसे यह जगत् भी भ्रममात्र भासता है, अरु चित्तके स्थित कियेते जगत् भ्रम नष्ट हो जावैगा, अन्यथा भ्रम निवृत्त न होवैगा, जैसे पत्र, फूल, फल, टास काटनेकरि वृक्ष नाश नहीं होता, जब मूलते काटिये तब वृक्ष नाश हो जाता है, तैसे जब जगत् भ्रमका मूल चित्तही नष्ट हो जावैगा, तब सपूर्ण भ्रम निवृत्त हो जावैगा सो चित्तका नाश होना क्या है, जो चित्तकी चैत्यता दृश्यकी ओर

धावती है, सोई जगत्का बीज है, जब यही चैत्यता दृश्यकी ओर फुरनेते रहित होवै, तब जगत्भ्रम भी मिटि जावै, अरु जगत्की ओर फुरना तब मिटै, जब जगत्को मायामात्र जानै ॥ हे साधो ! यह सब जगत् मायामात्र है, कोऊ पदार्थ सत्य नहीं, जैसे वह भ्रम तुझको मायामात्र भासा है, तैसे यह भी सब मायामात्र जान, ताते इस भ्रमको त्यागिकरि अपना जो ब्राह्मणका कर्म है, तिसविषे जाय स्थित होहु ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहिकरि विष्णुदेव उठि खडे हुए, तब गाधि अरु अपर ऋषीश्वर जो वहां थे सो विष्णुकी पूजा करते भए, पूजा लेइकरि विष्णु क्षीरसमुद्रको गमन करते भए, तब वह ब्राह्मण बहुरि उसी भ्रमको देखने चला क्रांत देशविषे गया; तिनको देखकरि आश्चर्यवान् होवै, अरु कैसे विष्णु हैं, मायामय कहाते हैं, यह जो प्रत्यक्ष मैं देखता हौं, जो कछु भ्रमविषे देखा था, सोई प्रत्यक्ष देखता हौं, ऐसे विचारिकरि बहुरि कहता भया कि, इस संशयको दूर करनेको और कोऊ समर्थ नहीं; ताते बहुरि विष्णुका आराधन करता भया ॥ हे रामजी ! इसप्रकार विचारिकरि गाधि बहुरि पहाडकी कंदराविषे जाय तप करने लगा, तब थोडे कालमें विष्णु भगवान् प्रसन्न होइकरि आए, जैसे मेघ मोरको कहै, तैसे ब्राह्मणको भगवान् कहते भए ॥ हे ब्राह्मण ! अब क्या चाहता है, तब गाधिने कहा, हे भगवन् ! तुम कहते हौ, सब भ्रममात्र है, अरु यह तौ प्रत्यक्ष भासताहै, जो भ्रम होता है सो प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता अरु मैंने बहुरि वह स्थान देखे हैं, अरु थोडे कालकरि बहुत काल देखनेका मुझको संशय है, सो दूरि करौ ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार गाधिने कहा, तब भगवान् कहते भए ॥ हे ब्राह्मण ! जो कछु तुमको यह भासता है, सो सब मायामात्र है, अरु जिस प्रकार तुझको यह भासता है सो सब मायामात्र हैं, अरु जिस प्रकार तुझको यह अनुभव भया है, सो श्रवण कर ॥ हे ब्राह्मण! वह कंटजल नाम चंडाल एक चंडालके गृहविषे उत्पन्न भया था, बहुरि क्रम करि बडा हुआ था, अरु कुटुंबी हुवा बहुरि वहाँ दुर्भिक्ष पड़ा तब उस देश को त्यागिकरि जाइ क्रांत देशका राजा हुआ, बहुरि लोकोंने सुना, तब सबही अग्निविषे जले, बहुरि वहां चंडाल आपभी अग्निविषे जला सो कंट-

जल चंडाल और था, यह अवस्था तिसको भईथी सोई प्रतिभा तुझको आनि फुरी है, जैसी अवस्था तिसको हुई थी, सो तेरे चित्तविषे आनि फुरी, इस कारणते तू जानता भया कि, यह अवस्था मैंने देखी है ॥ हे साधो ! अकस्मात् ऐसे भी होता है, जो औरकी प्रतिभा औरको फुर आती है, कहूं अन्यथा भी होती है, कहूं एक जैसे भी होती है, इस भ्रमका अंत लेना नहीं आता, यह चित्तके फुरणे करिकै होता है, जब चित्त आत्म पदविषे स्थित होता है, तब जगद्भ्रम निवृत्त होजाता है, अरु कालकी विषमता भी होती है, जैसे जाग्रत्की दो घडीविषे अनेक वर्षोंका स्वप्न देखता है, तैसे यह जान, सब चित्तका भ्रम है, तू इस भ्रमको न देख चित्तको स्थिर करिकै अपने ब्राह्मणका आचार कर ॥ हे रामजी ! ऐसे कहकरि विष्णु गुप्त हो गए, परंतु ब्राह्मणका संशय दूर न भया, वह ऐसे मनविषे विचारै कि, औरकी प्रतिभा मुझको कैसे भई है यह तौ मैंने प्रत्यक्षभोगी है, अरु जाइकरि देखी है, यह औरकी वार्ता कैसे होवै, जो आंखोंसे देखी नहीं होती तिसका अनुभव नहीं होता अरु मैंने तौ प्रत्यक्ष अनुभव किया है, ऐसे ऐसे विचारकरि बहुरि वह स्थान देखै, अरु आश्चर्यवान होवै, बहुरि विचार करता भया कि, यह मुझको बडा संशय है, इसको दूर करनेका उपाय भगवान्सों पूछौं ॥ हे रामजी ! ऐसे चिंतनाकरि बहुरि तप करने लगा, जब केताक काल पहाड कंदराविषे तप करते बीता, तब बहुरि विष्णुने आइकरि कहा, हे ब्राह्मण ! अब तेरी क्या इच्छा है ? ऐसे जब विष्णुने कहा, तब गाधि ब्राह्मण कहता भया ॥ हे भगवन् ! तुम कहते हौ, यह औरकी प्रतिभा तुझको फुरि आई है, अरु मुझको अपनी होइकरि भासती है अरु कालकी विषमता भासती है, यह संशय जिस प्रकार मेरे चित्तते दूर होवै, सो उपाय कहौ, और प्रयोजन मेरा कछु नहीं यह भ्रम निवृत्त करौ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे ब्राह्मण ! यह जगत् सब मेरी मायाकरि रचा है, तिसविषे मैं तुझको सत्य क्या कहौं, अरु असत्य क्या कहौं, जो कछु तुझको भासता है, सो सब मायामात्र है, सो चित्तके भ्रमकरि भासता है, अरु उस चंडालकी अवस्था भई है, सो तेरे चित्तविषे भासिआई है, जैसे एक जेवरीविषे किसी

को सर्प भासै, इसीप्रकार औरोंको भी जेवरीविषे सर्प भासता है तैसेही प्रतिभा तुझको भासि आई है, अरु काल जो है तिसका रूप आकार कछु नहीं अरु काल भी तुझको एक पदार्थकी नाईं फुरि आया है, चित्तविषे पदार्थ कालकरि भासते हैं, अरु काल पदार्थोंकरि भासता है, अन्योन्य घट पट जो भासता है सो स्वप्नकी नाईं है; जैसे जाग्रत्‌के एक मुहूर्त्तविषे स्वप्नका अनंत कालका अनुभव होता है, यह चित्तका फुरना जैसे जैसे फुरता है, तैसे तैसे हो भासता है, रोगीको थोडा काल भी बहुत हो भासता है, अरु भोगीको बहुत काल भी थोडा भासता है ॥ हे साधो ! जो नहीं भोगा होता तिसको भी अनुभव होता है, जैसे त्रिकालदर्शीको भविष्य वृत्तांत भी वर्त्तमानकी नाईं भासता है तैसे तुझको भी अनुभव भया है, अरु एक ऐसे भी होता है कि, प्रत्यक्ष अनुभव किया विस्मरण हो जाता है, यह सब मायारूप चित्तका भ्रम है, जबलग चित्त आत्मपदविषे स्थित नहीं भया तबलग अनेक भ्रम भासते हैं, जब चित्त स्थित होता है, तब भ्रम मिटि जाता है, केवल एक अद्वैत आत्मतत्त्वही भासता है, जैसे सम्यक् मंत्रके पाठकरि गडेका मेघ नष्ट हो जाता है, असम्यक् मंत्रकरि नाश नहीं होता, तैसे तेरा चित्त अबलग वश नहीं भया चित्तको आत्मपदसों जोडेते सब भ्रम निवृत्त हो जावैगा, अरु अहं त्वं आदिक जेते कछु शब्द हैं, सो अज्ञानीके चित्तविषे दृढ होतेहैं, ज्ञानवान् इनविषे नहीं फँसता ॥ हे साधो ! जेता कछु जगत् है, सो अज्ञानकरिकै भासता है, आत्मज्ञान हुएते नाश हो जाता है, जैसे जलविषे तुंबी नहीं डूबती, तैसे अहं त्वं आदिक शब्दोंविषे ज्ञानवान् नहीं डूबता सब शब्द चित्तविषे वर्त्तते हैं, सो ज्ञानीका चित्त अचित्तपदको प्राप्त भया है, ताते तू दश वर्षपर्यंत तपविषे स्थित होहु, तब तेरा हृदय शुद्ध होवैगा, तेरा जब हृदय शुद्ध हुआ, तब संकलपते रहित आत्मपद तुझको प्राप्त होवैगा, जब आत्मपद प्राप्त हुआ, तब सब संशय जगत्‌भ्रम मिटि जावैगा ॥ हे रामजी ! ऐसे कहिकारि त्रिलोकीके नाथ विष्णु अंतर्धान हो गए तब गाधि ब्राह्मण ऐसे मनविषे धारिकारि जाय तप करने लगा जो कछु मनका संसरना है, तिसको स्थित करता भया; दश वर्षपर्यंत समाधिविषे चित्तको

स्थित किया, जब ऐसे परम तप किया तब शुद्ध चिदानंद आत्माका साक्षात्कार बहुरि तिसको भया; बहुरि शांतिमान् होइकरि विचरत भया, जेते कछु राग द्वेष आदिक विकार हैं, तिनते रहित शांतिको प्राप्त भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे गाधिबोधप्राप्तिवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४७.

राघवसेवनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह गाधिका आख्यान तुझको मायाकी विषमता जतावनेनिमित्त कहा है कि, परमात्माकी ऐसी माया है; सो मोहको देनेहारी है, विस्तृतरूप दुर्गम है, जो आत्मतत्त्वते भूला है, तिसको आश्चर्यरूप भ्रम दिखातीहै, तू देख कि दो मुहूर्त्त कहां अरु एता काल कहां अरु जो चंडाल अरु राजभ्रमको वर्षोपर्यंत देखता रहा, बहुरि भ्रमकरि भासना अरु प्रत्यक्ष देखना, यह सब मायाकी विषमता है, सो असत्यरूप भ्रम है, सो दृढ होइकरि प्रसिद्ध भासा ताते आश्चर्यरूप परमात्माकी माया है, जबलग बोध नहीं होता, तबलग अनेक भ्रमको दिखाती है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह माया संसारचक्र है, तिसका बड़ा तीक्ष्ण वेग है, अरु सब अंगोंको छेदनेहारा है, जिसकरि इस चक्रका रोधना होवै, अरु इस भ्रमते छूटिये सो उपाय कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो मायामय संसारचक्र है, तिसका नाभिस्थान चित्त है, जब चित्त वश होवै, तब संसारचक्रवेग रोंका जावै, और किसी प्रकार रोंका नहीं जाता ॥ हे रामजी ! इस वार्त्ताको तू भली प्रकार जानता है ॥ हे निष्पाप ! जब चक्रकी नाभि रोंकता है, तब चक्र स्थित हो जाता है रोंकनेविना स्थित नहीं होता, संसाररूपी चक्रही चित्तरूपी नाभिको रोकता है, तब चक्र स्थित हो जाता है, रोंकेविना स्थित नहीं होता, जब चित्तको स्थित करैगा, तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जावैगा, अरु जब चित्त स्थित होता है, तब परमब्रह्म प्राप्त होता है, अरु जो कछु करना था, सो किया

होताहै, कृतकृत्य होता है, अरु जो कछु प्राप्त होना था, सो प्राप्त होता है, बहुरि पाछे पाना कछु नहीं रहता, ताते जेते कछु तप ध्यान तीर्थ दान आदिक उपाय हैं, तिन सबको त्यागिकरि चित्तके स्थित करनेका उपाय करौ,संतोंका संग अरु ब्रह्मविद्या शास्त्रका विचार इस उपायकरि चित्त आत्मपदविषे स्थित होवैगा, जो कछु संतों अरु शास्त्रोंने कियाहै, तिसका वारंवार अभ्यास करना, संसार मृगतृष्णाके जल अरु स्वप्नवत् जानिकरि इसते वैराग्य करना, इन दोनों उपायोंकरि चित्त स्थित होवैगा, आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, और किसी उपायकरि आत्मपदकी प्राप्ति न होवैगी ॥ हे रामजी ! बोलनेचालनेका वर्जन नहीं, बोलिये, दान करिये,अथवा लेइये,परंतु अंतरचित्तको मत लगावहु,इनका साक्षी जाननेवाला जो अनुभव आकाश है, तिसकी ओर वृत्ति होवै, युद्ध करना होवै, तौ भी करिये परंतु वृत्ति साक्षीकी ओर होवै; तिसको अपना रूप जानिये, अरु स्थित होइये शब्द,स्पर्श, रूप,रस,गंध यह जो पांच विषय इंद्रियोंके हैं,इनको अंगीकार करिये,परंतु इनके जानने-वाले साक्षीविषे स्थित होहु,तेरा अपना स्वरूप वही चिदाकाश है,जब तिसका अभ्यास वारंवार करिये तब चित्त स्थित होवै, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवै ॥ हे रामजी ! जबलग चित्त आत्मपदविषे स्थित नहीं होता तबलग जगत्भ्रम निवृत्त नहीं होता, इस चित्तके संयोगते चेतनका नाम जीव है, जैसे घटके संयोगते आकाशको घटाकाश कहते हैं; जब घट टूटि जावै, तब महाकाशही रहैगा, तैसे जब चित्तका नाश होवैगा, तब यह जीव चिदाकाशही होवैगा, अरु यह जगत् भी चित्तविषे स्थित है, चित्तके अभाव हुएते जगत्भ्रम शांत हो जावैगा, हे रामजी ! जबलग चित्त है, तबलग संसार भी है, जैसे जबलग मेघ है,तबलग बूंदां भी हैं, जब मेघ नष्ट हो जावै,तब बूँदां भी नहीं रहतीं,अरु जैसे जबलग चंद्र-माकी किरणैं शीतल हैं,तबलग चन्द्रमाके मंडलविषे तुषार है,तैसे जब-लग चित्त है, तबलग संसारभ्रम है,जैसे मांसका स्थान श्मशान होताहै तहां पक्षी भी होते हैं और ठौर इकट्ठे नहीं होते, तैसे जहां चित्त है, तहां राग द्वेष आदिक विकार भी होते हैं, अरु जहां चित्तका अभावहै, तहां

विकारका अभाव है ॥ हे रामजी ! जैसे पिशाच आदिककी चेष्टा रात्रिविषे होती है, दिनविषे नहीं होती, तैसे राग द्वेष भय इच्छा आदिक विकार चित्तविषे होते हैं, जहां चित्त भी नहीं, तहां विकार भी नहीं, जैसे अग्निविना उष्णता नहीं होती, अरु बर्फ शीतलताविना नहीं होता सूर्यविना प्रकाश नहीं होता, जलविना तरंग नहीं होता, तैसे चित्तविना जगद्भ्रम नहीं होता ॥ हे रामजी ! शांति भी इसीका नाम है, अरु शिवता भी वही है, सर्वज्ञता भी वही है, जो चित्त नष्ट होवै, आत्मा भी वही है, तृप्तता भी वही है, अरु चित्त नष्ट नहीं भया, तहां एते पदोंविषे कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! चित्तते रहित चैतन्य है, सो चैतन्य कहाताहै, अरु अमनशक्ति है, अरु सब कलनाते रहित है; जबलग इसको बोध नहीं तबलग नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, जब वस्तुका बोध हुआ, तब एक अद्वैत एक आत्मसत्ता भासती है ॥ हे रामजी ! ज्ञान संवित्की ओर वृत्तिको रखना, जगत्की ओर नहीं रखना, जाग्रत्की ओर नहीं जाना जाग्रत्के जाननेवालेकी ओर जाना, स्वप्न अरु सुषुप्तिकी ओर नहीं जाना जो अंतरको जाननेवाली साक्षीसत्ता है, तिसकी ओर वृत्ति रखनी यह चित्तको स्थित करनेका परम उपाय है, जो संतोंका संग अरु शास्त्रोंकरि निर्णय किया अर्थ है, जब इसका अभ्यास होवै, तब चित्त नष्ट होजावै; अरु जो अभ्यास होवै, तौ भी संतोंका संग अरु सच्छास्त्रोंका श्रवणकरि बल करिये, तब सहजही चमत्कार हो आवैगा, मनको मनसाथ मथिये, तिसते ज्ञानरूपी अग्नि निकसैगी, सो आशारूपी सब फांसीको जलाइ डारैगी, अरु जबलग चित्त आत्मपदते विमुख है, तबलग संसारभ्रमको देखता है, जब आत्मपदविषे स्थित होता है, तब सब क्षोभ मिटि जाता है, जब मुझको आत्मपदका साक्षात्कार होवैगा तब कालकूट विष भी अमृतसमान हो जावैगा, विषका जो विषभाव मारना है, सो न रहैगा अरु यह जब अपने स्वभावविषे स्थित होताहै तब संसारका कारण मोह मिटि जाता है, अरु जब निर्मल निरंश आत्मसंवित्ते गिरता है, तब संसारका कारण मोह आनि प्राप्त होता है अरु जब निरंश निर्मल आत्म संवित्विषे स्थित होताहै; तब संसार समुद्रको तारि ममतारूपी क्रीडाकरि अरु यह मेरा इस भावना करि चित्त

कठिन हो जाता है, अरु चित्तरूपी विषका वृक्ष है, अरु देहरूपी भूमिपर लगा है, संकल्प विकल्प इसके टास हैं, दुर्वासनारूपी पत्र हैं, अरु सुख दुःख आधि व्याधि मृत्युरूपी इसके फल हैं, अहंकाररूपी जो कर्म हैं सो जल है, तिसके सींचनेकरि बढता है, कामभोगरूपी पुष्प हैं, चिंतारूपी बडी वल्ली है, जब विचार अरु वैराग्यरूपी कुठारकरि इसको काटै तब शांतिको प्राप्त होवै, अन्यथा शांतिको प्राप्त न होवैगा ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी एक हस्ती है, अरु शरीररूपी तलावविषे आनि स्थित भया है. शुभ वासनारूपी जलको मलिन कर डारा है, अरु धर्म संतोष वैराग्यरूपी कमलको तोरिडारा है, भोगोंकी तृष्णारूपी सूंडकरिकै तिसको तू आत्मविचाररूपी नेत्रोंकरि नखोंकरि छेद ॥ हे रामजी! चित्तरूप कौवा है, जैसे कौवा अपवित्र पदार्थोंको भोजन करता है, अरु सर्वदा काँ काँ करता है, तैसे चित्त देहरूपी अपवित्रविषे बैठता है, अरु सर्वदा भोगोंकी ओर धावता है, तिनके रसको ग्रहण करता है, मौन कबहूं नहीं होता अरु दुर्वासनाकरिकै काककी नाईं कृष्णरूप है, जैसे काकका एकही नेत्र होताहै, तैसे चित्त एक विषयोंको धावता है, ऐसे अमंगलरूपी कौवाको विचाररूपी धनुषसे मारै, तब सुखी होवैगा, अरु चित्तरूपी ईल पखेरू है, भोगरूपी मांसके निमित्त सर्व ओरको भ्रमता है, अरु जहां अमंगलरूपी ईल आता है, तहांते विभूतिका अभाव हो जाता है, अरु मांसकी ओर ऊंचा होइकरि देखता है, नम्रीभाव नहीं होता, तैसे चित्तरूपी ईल शरीररूपी स्थानविषे बैठता है, आत्मज्ञानरूपी विभूतिका अभाव हो जाता है, अरु भोगरूपी मांसको देखिकरि गिरता है, अरु अभिमानरूपी ग्रीवाको ऊँची रखता है, ऐसा जो चित्त अमंगलरूप ईल है, तिसको जब नाश करै, तब शांतिमान् होवैगा, अरु जैसे पिशाच आय जिसको लगता है, सो खेदवान् होता है, अरु शब्द करता है, तैसे चित्तरूपी इसको पिशाच लगाहै, अरुतृष्णारूपी पिशाचनीकेसाथ शब्द करता है, तिसको काढहु, आत्माते इतर जो अभिमान करता है, ऐसा चित्तरूपी पिशाच है, तिसको वैराग्यरूपी मंत्रकरि दूर करहु, तब स्वभावसत्ताको प्राप्त होवोगे, अरु यह चित्तरूपी वानर है, सो महा चंचल है, सदा भट-

करता रहता है, स्थिर कबहूँ नहीं रहता, कबहूँ किसी कबहूँ किसी पदार्थविषे धावता है, जैसे वानर जिस वृक्षपर बैठता है, तिसको ठहरने नहीं देता ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी जेवरी है, तिसकेसाथ संपूर्ण जगत् बांधा है, कर्त्ता कर्म क्रियारूपी गांठि करिकै, जैसे एक सांकलीसे अनेक बंधवान् बांधते हैं, अरु एक तागेसे अनेक मणके परोते हैं, तैसे एक चित्तसे सब देहधारी बांधे हैं, तिस जेवरीको असंग शस्त्रकरि काटै, तब सुखी होवै ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी अजगर सर्प है; अरु भोगोंकी तृष्णारूपी विषकरि पूर्ण है, तिस सर्पने फूत्कारकेसाथ बड़े बड़े लोक जलाएहै, शम दम धैर्यरूपी जो कमल हैं, सो सब जलि गए हैं, इस दुष्टके मारनेको और समर्थ कोऊ नहीं, एक विचाररूपी गरुड है, जब विचाररूपी गरुड उपजै तब इसको जीतताहै अरु जेते ईश्वर बलवान् हैं, तिन सबनते तत्त्ववेत्ता उत्तम है, उनके आगे सब लघु हो जाते हैं, तिन पुरुषको किसी संसारके पदार्थकी अपेक्षा नहीं उनका चित्त सत्यपदको प्राप्त हुआ है, ताते चित्तको स्थिर करौ, तब वर्त्तमानकालभी भविष्यत्कालकी नाईं हो जावैगा, जैसे भविष्यत्कालका राग द्वेष नहीं स्पर्श करता, तैसे वर्त्तमानकालका राग द्वेष स्पर्श न करैगा ॥ हे रामजी ! आत्मा परम आनंदरूप है, तिसके पायेते अमृत भी विषसमान हो जाता है, अर्थ यह कि, अमृतरूप होइकरि चित्तको खैंचता सो नहीं खैंचता, जिस पुरुषको आत्मपदविषे स्थिति भई है, सो सबते उत्तम है, जैसे मेरु पर्वतके निकट हस्ती तुच्छ भासता है, तैसे तिसके निकट त्रिलोकीके पदार्थ सब तुच्छ भासते हैं, अरु वह बड़े दिव्य तेजको प्राप्त होता है, जिसको सूर्य नहीं प्रकाश कर सकता, परम प्रकाशरूप सब कलनाते रहित अद्वैततत्त्व है ॥ हे रामजी ! तिस आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, जो पुरुष ऐसे स्वरूपको पाया है, सो सब कछु पाया है, अरु जो ऐसे स्वरूपको नहीं पाया, सो कछु नहीं पाया, हमको ज्ञानकी वार्त्ता करते ज्ञानवान्को देखिकरि लज्जा कछु नहीं आती, अरु जो तिस ज्ञानस्वरूपकी वार्त्ताते विमुख हैं, यद्यपि महाबाहु होवैं, तौ भी गर्दभवत् हैं, जो बड़े ऐश्वर्यकरि संपन्न हैं, अरु आत्मपदते विमुख हैं, तिनको तू कीटते भी नीच जान, अरु जीवना तिनका श्रेष्ठ है,

जो आत्मपदके निमित्त यत्न करते हैं, अरु जीवना तिनका वृथा है, जो संसारके निमित्त यत्न करते हैं, देखनेमात्र तौ चैतन्य हैं, परंतु शवकी नाईं हैं, अरु जो तत्त्ववेत्ता भए हैं, सो अपने प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, अरु जिनको शरीरविषे अभिमान है सो मृतकसमान हैं ॥ हे रामजी ! इस जीवको चित्तने दीन किया है, ज्यों ज्यों चित्त बड़ा होता है; त्यों त्यों इसको दुःख होता है, अरु जिसका चित्त क्षीण भया है, तिसको कल्याण हुआ है, जब आत्मभाव अनात्मविषे दृढ होता है, अरु भोगोंकी तृष्णा होती है, तब चित्त बड़ा हो जाता है, अरु आत्मपदते दूर पडता है, जैसे बड़े मेघके आवरणकरि सूर्य नहीं भासता तैसे अनात्मा अभिमानकरि आत्मा नहीं भासता, अरु जब भोगोंकी तृष्णा निवृत्त हो जाती है, तब चित्त क्षीण हो जाता है, जैसे वसंतऋतुके गएते पत्र कृश हो जाते हैं, तैसे भोगवासनाके अभावते चित्त कृश हो जाता है ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी सर्प है, दुर्वासनारूपी दुर्गंध अरु भोगरूपी वायुकरि शरीरविषे दृढ आस्थारूपी मृत्तिका स्थानकरि बडा हो जाता है, तिन पदार्थोंकरि जब बडा भया; तब मोहरूपी विषकरि इसको मारता है ॥ हे रामजी ! ऐसे दुष्ट चित्तरूपी सर्पको जब मारै, तब कल्याण होवै; देहविषे जो आत्म अभिमान हो गया है, अरु भोगोंकी तृष्णा फुरती है, अरु मोहरूपी विष चढि गया है, जब विचाररूपी गरुडमंत्रको चिंतवता रहै, तब विष उतरि जावै, और उपाय विष उतारनेको कोई नहीं ॥ हे रामजी ! अनात्माविषे आत्माभिमान, अरु पुत्र दारा आदिकविषे ममत्व, इसकरि चित्त बड़ा हो जाता है; अहंकाररूपी विकारकरि नष्ट करै, जब चित्तरूपी सर्प नष्ट हुआ, तब आत्मारूपी निधि प्राप्त होवैगी ॥ हे रामजी ! यह चित्त शास्त्रोंकरि काटा नहीं जाता अरु अग्निकरि जलता नहीं न और किसी उपायकरि नाश होता है, एक साधुसंग अरु सच्छास्त्रोंके विचार अभ्यासकरि नाश हो जाता है, और किसी उपायकरि नष्ट नहीं होता ॥ हे रामजी ! यह चित्तरूपी गडेका मेघ है, सो बड़ा दुःखदायक है, अरु भोगोंकी तृष्णारूपी बिजली इसविषे चमकती है, अरु जहां वर्षा होती है, तहां

बोधरूपी क्षेत्र अरु शमदमरूपी कमल नाश होता है, जब विचाररूपी मंत्र होवै, तब शांत हो जावै ॥ हे रामजी ! चित्तकी जो चपलता है, तिसको असंकल्प करिकै त्यागहु, जैसे ब्रह्मास्त्रकरिकै ब्रह्मास्त्रको छेदिता है, तैसे मनसाथ मनको छेदहु, अर्थ यह कि, अंतर्मुखी कर स्थित करहु, जब तेरा चित्तरूपी वानर स्थित होवै तब शरीररूपी वृक्ष क्षोभते रहित होवैगा ॥ हे रामजी ! शुद्ध बोधकरिकै मनको जीतौ, यह जगत् तृष्णाते भी तुच्छ है, तिसके पारको प्राप्त होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे राघवसेवनवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४८.

उद्दालकविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो मनकी वृत्ति है, सो इष्ट अनिष्टको ग्रहण करती है, अरु खड्गकी धारावत् तीक्ष्ण है, इसविषे तू प्रीति मत कर, इसको मिथ्या जानिकरि त्याग कर ॥ हे रामजी ! बोधरूप वल्ली शुभ क्षेत्र अरु शुभ कालकरिकै प्राप्त भई है, तिसको विवेकरूपी जलकरि सींचिये, तब परमपदकी प्राप्ति होवै ॥ हे रामजी ! जबलग शरीर मलिनताको प्राप्त नहीं भया है, अरु जबलग पृथ्वीपर नहीं गिरा, तबलग बुद्धिको उदारकरि संसारते मुक्त होहु, मैं तुझको वचन कहे तिनको तैंने जाने हैं, इनका दृढ अभ्यास करै तब दृश्य भ्रम निवृत्त हो जावैगा ॥ हे रामजी ! यह पंचभूतका शरीर जो तुझको भासता है, सो तेरा रूप नहीं, तू शुद्ध चेतनरूप है, शुद्ध बोध विचार करिकै अनात्मा पंचभूतके अभिमानको त्यागहु ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! किस क्रम अरु किस प्रकार इनका अभिमान त्यागिकरि उद्दालक सुखी भया है? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! पूर्व जैसे उद्दालक भूतोंके समूहका विचारकरिकै परमपदको प्राप्त भया है, सो तू श्रवण कर ॥ हे रामजी ! जगत्रूपी जीर्ण घर है, तिसके वायव्यकोणविषे एक देश है तहां बहुत पर्वत अरु तमालादिक वृक्ष हैं, अरु महामणिनके स्थान हैं, ऐसे गंधमादन पर्वतपर

एक स्थल था, तिस स्थानविषे एक उद्दालक नाम ब्राह्मण था, सो बुद्धिमान् मान करनेयोग्य विद्वान् था, परंतु अर्ध प्रबुद्ध था, काहेते परमपद तिसने पाया न था, ऐसा जो ब्राह्मण सो यौवन अवस्थाके पूर्वही शुभेच्छाकरिकै यम नियम तपको शास्त्रोंयुक्त साधतभया, तब तिसके चित्तविषे यह विचार उत्पन्न हुआ कि; जिसके पाएते बहुरि कछु पावने योग्य न रहै, अरु जिस पदविषे विश्राम पाएते बहुरि शोक न होवै, अरु जिसके पाएते बहुरि जन्मसाथ बंधन न होवै ॥ हे देव! ऐसा पद मुझको कब प्राप्त होवैगा, अरु कब मैं मनके मननभावको त्यागिकरि विश्रांतिमान् होऊंगा? जैसे मेघ भ्रमणको त्यागिकरि पहाडके शिखरमें विश्रांति करता है, अरु चित्तकी दृश्यरूप वासना मेरी कब मिटि जावैगी, जैसे तरंगते रहित समुद्र शांतिमान् होता है तैसे मनके संकल्प विकल्पते रहित शांतिवान् होवैगा, अरु तृष्णारूपी नदीहै, सो बोधरूपी बेडी सत्संग अरु सच्छास्त्ररूपी मलाह करिकै कब तरि जाऊंगा, अरु चित्तरूपी हस्ती जो अभिमानरूपी मदकरि उन्मत्त है, तिसको विवेकरूपी सिंहकरि कब मारूंगा? अरु ज्ञानरूपी सूर्यकरि अज्ञानरूपी अंधकारको कब नष्ट करौंगा, जिसकरि चित्तरूपी घूघू जगतते अंध होवै; हे देव! सब आरंभोंको त्यागिकरि अलेप अकर्त्ता कब होऊंगा, जैसे जलविषे कमल अलेप रहता है, तैसे मुझको कर्म स्पर्श न करै, अरु परमार्थरूपी भासुर वपु मेरा कब उदय होवैगा जिसकरि मैं जगत्की गतिको हसौंगा अरु अंतर तोषको पाऊंगा, विराट् आत्मा पूर्ण बोधकी नाईं होऊं वह समय कब होवैगा; कि मैं जन्मोंके अंधको ज्ञानरूपी नेत्र कर प्राप्त होऊंगा, जिसकरि मैं परम बोधपदको देखौंगा, अरु वह समय कब होवैगा, जो मेरा चित्तरूपी मेघ वासनारूपी वायुते रहित आत्मरूपी सुमेरु पर्वतविषे स्थित होइकरि शांतिमान् होऊंगा, अज्ञानदशा कब जावैगी, ज्ञानदशा कब प्राप्त होवैगी, अब वह समय कब होवैगा, जो मनकाया प्रकृतियोंको देखिकरि मैं हँसौंगा, अरु वह समय कब होवैगा जो जगत्के कर्मबालककी चेष्टावत् मिथ्या जानौंगा, अरु जगत् मुझको सुषुप्तिकी नाईं हो जावैगा, अरु वह समयकबहोवैगा, जो पत्थरकी शिलावत् मुझको

निर्विकल्प समाधि लगैगी, अरु शरीररूपी वृक्षविषे पक्षी आलय करैंगे, निःसंग होइकरि छातीपर आनि बैठैंगे॥ हे देव! वह समय कब होवैगा जो इष्ट अनिष्ट विषयकी प्राप्तिते मेरे चित्तकी वृत्ति चलायमान न होवैगी अरु विराट्की नाईं सर्वात्मा होऊंगा, अरु वह समय कब आवैगा, जो मेरा सम असम आकार शांत हो जावैगा, सब अर्थोंते निरिच्छितरूप मैं हो जाऊंगा, अरु कब मैं उपशमको प्राप्त होऊंगा, जैसे मंदराचलते रहित क्षीरसमुद्र शांतिमान् होता है, कब मैं अपना चेतन वपु पाइकरि शरीरको अशरीरवत् देखौंगा, अरु कब मेरी पूर्ण चिन्मात्र वृत्ति होवैगी, अरु कब मेरी बाहर अंतर सब कलना शांत हो जावैंगी, अरु संपूर्ण चिन्मात्रही मेरे ताईं भान होवैगा, अरु मैं ईहता अरु ग्रहणत्यागते रहित कब संतोषको प्राप्त होऊंगा, अपने स्वप्रकाशविषे स्थित होइकरि संसाररूपी नदीके जरामरणरूपी तरंगोंते रहित कब होऊंगा, अरु अपने स्वभावविषे स्थित कब होऊंगा ॥ हे रामजी! ऐसे विचारिकरि उद्दालक चित्तको ध्यानविषे जोडने लगा, परंतु चित्तरूपी वानर दृश्यकी ओर निकसि जावै, स्थित न होवै, बहुरि ध्यानविषे जोडै, बहुरि भोगोंकी ओर निकसि जावै, जैसे वानर ठहरता नहीं, तैसे चित्त ठहरै नहीं जो बाहर विषयोंको त्यागिकरि चित्तको अंतर्मुख किया तब अंतर जो दृष्टि आई तौभी विषयोंको चिंतवने लगा; निर्विकल्प होवै नहीं, जब रोंक राखै, तब सुषुप्तिविषे लीन हो जावै, सुषुप्ति अरु लय जो निद्रा है, तिसहीविषे चित्त रहता है, तब वहांते उठिकरि और स्थानको चला, जैसे सूर्य सुमेरुकी प्रदक्षिणाको चलता है, तब गंधमादन पर्वतकी एक कंदराविषे स्थित भया, कैसा पर्वत जो फूलोंसंयुक्त सुंदर अरु पशु पक्षी मृगोंते रहित ऐसा एकांत स्थानहै, जो देवताओंको भी देखना कठिन है, अरु तहां अत्यंत प्रकाश भी नहीं, अरु अत्यंत तम भी नहीं, न अत्यंत उष्ण है, न शीत है, जैसे मधुर कार्त्तिक होता है, निर्भय एकांत स्थान जैसे मोक्षपदवी निर्भय एकांतरूप होती है, तैसे तिस पर्वतविषे कुटी बनाई वनदेवका स्थान अथवा सिद्धका भी होवै, परंतु औरकी गम नहीं, तिस कुटीविषे तमालपत्र अरु कमलोंका आसन करिकै ऊपर

मृगछाला बिछाइ तिसकेऊपर बैठिकरि सब कामनाका त्याग किया, जैसे ब्रह्माजी जगत्‌को उपजाइकरि छांड़ बैठें तैसे सब कलनाको त्यागिकरि पद्मासन बांधा, अरु विचार करने लगा, अरे मूर्ख मन ! तू कहां जाता है, यह संसार मायामात्र है, एता काल तू जगत्‌विषे भटकता रहता है, कहूं तुझको शांति प्राप्त न भई, काहेते कि, वृथा धावता है ॥ हे मूर्ख मन ! उपशमको त्यागिकरि भोगोंकी ओर धावता है, सो अमृतको त्यागि करि विषका बीज बोवता है, यह सब तेरी चेष्टा दुःखोंके निमित्त है, जैसे घुराण अपना घर बनाइकरि आपहीको बंधन करती है, तैसे तू आपको आप संकल्प उठाइकरि बंधन करता है, अब तू संकल्पके संसर्गको त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु, जो तुझको शांति प्राप्त होवे ॥ हे मन ! जिह्वासे मिलिकरि जो तू शब्द करताहै, सो दर्दुरके शब्दवत् व्यर्थ है, जब श्रवणोंसे मिलिकरि श्रवण करता है; तब शुभाशुभ वाक्य ग्रहण करिकै मृगकी नाईं तू नष्ट होता है, अरु त्वचासे मिलिकरि जो तू स्पर्शकी इच्छा करता है, सो हस्तीकी नाईं नाश होता है, अरु रसनाके स्वादकी जो इच्छा करता है, सो मच्छीकी नाईं नाश होता है, अरु गंध लेनेकी तू इच्छा करता है, सो भँवरेकी नाईं नाश हो जावैगा, जैसे भँवरा सुंगधिके निमित्त फूलविषे फँसि मरता है, तैसे तू फँसि मरैगा, अरु सुंदर स्त्रियोंकी वांछा करता है, सो पतंगकी नाईं जलि मरैगा ॥ हे मूर्ख मन ! जो एक एक इंद्रियका स्वाद लेते हैं, सो भी नाश पाते हैं, तू तौ पंचविषयके सेवनेवाला है, नाश क्यों न होवैगा, ताते तू इनकी इच्छा त्याग, जो तुझको शांति प्राप्त होवे, जो इन भोगोंकी इच्छा न त्यागैगा, तौ मैंही तुझको त्याग छोडौंगा, तू तौ मिथ्या असत्यरूप है, तुझसे मेरा क्या प्रयोजन है, विचार करि मैं तेरा त्याग करता हौं ॥ हे मूर्ख मन ! जो तू देहविषे अहं अहं करता है, सो तेरा अहं किस पदार्थविषे है, अंगुष्ठने लेइकरि मस्तकपर्यंत अहं वस्तु कछु नहीं, यह शरीर तौ अस्थि मांस रक्तका थैला है यह तौ अहंरूप है नहीं अरु श्वास जो है, सो वायुरूप है, अरु पोल आकाशरूप है, यह पंचतत्त्वोंका जो शरीर बना है, तिसविषे अहंरूप वस्तु तौ कछु नहीं है ॥

हे मूर्ख मन! तू अहं अहं क्यों करता है, यह जो तू कहता है, मैं देखता हौं, मैं सुनता हौं, मैं सूंघता हौं, मैं स्पर्श करता हौं, स्वाद लेता हौं, मैं इनके इष्ट अनिष्टविषे राग द्वेषकरि जलता हौं, सो वृथा कष्ट पाता है, रूपको नेत्र ग्रहण करता हैं, सो नेत्र रूपते उत्पन्न भया है, तेजका अंश नेत्रविषे स्थित है, सो अपने विषयको ग्रहण करता है, इनके साथ मिलिकरि तू क्यों तपायमान होता है, अरु शब्द आकाशते उत्पन्न हुआ है आकाशका अंश श्रवणविषे स्थित है, सो अपने गुण शब्दको ग्रहण करता है, इसके साथ मिलिकरि तू क्यों रागद्वेषवान् तपायमान होता है, अरु स्पर्श इंद्रिय वायुते उत्पन्न भया है, वायुका अंश त्वचाविषे स्थित है, वही स्पर्शको ग्रहण करता है, तिससे मिलिकरि तू क्यों रागद्वेषकरि तपायमान होता है, अरु रसना इंद्रिय जलते उत्पन्न भई है, जलका अंश जिह्वा हैं, अग्रभागविषे स्थित है, सोई रसको ग्रहण करता है, इस साथ मिलि तू क्यों वृथा तपायमान होता है, अरु घ्राण इंद्रिय गंधते उपजी है, सो पृथ्वीका अंश घ्राणविषे स्थित है, वही गंधको ग्रहण करती हैं, तिससों मिलिकरि तू क्यों वृथा रागद्वेषवान् होता है ॥ हे मूर्ख मन ! इंद्रियां तौ अपने अपने विषयको ग्रहण करती हैं, तू इनविषे क्यों अभिमान करता है कि, मैं देखता हौं, सुनता हौं, मैं सूंघता हौं, मैं स्पर्श करता हौं, रस लेता हौं, यह तौ इंद्रियां सब आत्मभर हैं, अर्थ यह कि अपने विषयको ग्रहण करती हैं, औरके विषयको ग्रहण नहीं करतीं, जो नेत्र देखते हैं, श्रवण नहीं करते अरु कर्ण श्रवण करते हैं, देखते नहीं, इत्यादिक सर्व इंद्रियां अपना धर्म किसीको देती भी नहीं अरु लेती भी नहीं, अपने धर्मविषे स्थित हैं, अरु विषयको ग्रहण करि इनको रागद्वेष कछु नहीं होता, अरु इनको ग्रहण करनेकी वासना भी कछु नहीं अरु तू ऐसा मूर्ख है, औरोंके धर्म आपविषे मानिकरि रागद्वेषसों जलता है, जो तू भी राग द्वेषते होइकरि चेष्टा करै, तौ तुझको दुःख कछु न होवै, जो वासनासहित कर्म करता है, सोई बंधनका कारण होता है, वासनाविना दुःख कछु नहीं अरु तू मूर्ख है, जो विचार करि नहीं देखता, ताते मैं तुझको

त्याग करता हौं, तेरे साथि मिलिकै मैं बड़े खेदको पाता हौं, जैसे बिघाडके बालकको सिंह चूर्ण करता है, तैसे तैंने मुझको चूर्ण किया है, तेरे साथ मिलिकारि मैं तुच्छ हुआ हौं, अब तेरे साथ मेरा प्रयोजन कछु नहीं, मैं तौ निर्विकल्प शुद्ध चिदानंद हौं, जैसे महाकाश घटसों मिलिकारि घटाकाश होता है, तैसे तेरे साथ मिलिकारि मैं तुच्छ हो गया हौं, इस कारणते मैं तेरा संग त्यागिकारि परम चिदाकाशको प्राप्त होऊंगा मैं निर्विकार हौं, अहं त्वंकी कल्पनाते रहित हौं, तू क्यों अहं त्वं करता है, शरीरविषे व्यर्थ अहं करनेवाला और कोऊ नहीं, तूही चोर है, अब मैं तुझको पकड़िकारि तेरा त्याग किया है, तू तौ अज्ञानते उपजा मिथ्या असत्यरूप है, जैसे बालक अपने परछायेविषे वैताल जानिकारि आपही भयको पाता है, तैसे तुझने सर्वको दुःखी किया है, जब नाश होवैगा, तब आनंद होवैगा, तेरे उपजनेकारि महादुःख है, जैसे कोऊ ऊंचे पर्वतते गिरिकै कूपविषे जाय पडै, अरु कष्टवान् होवै तैसे तेरे संग कारि मैं आत्मपदते गिरा, देह अभिमानरूपी गर्त्तविषे रागद्वेषरूपी दुःख पाया था, अब मुझको त्यागिकारि मैं निरहंकारपदको प्राप्त भया हौं, सो कैसा पद है, न प्रकाशहै, न तम है, न एक है, न दो है, न बड़ा है, न छोटा है, अहं त्वं आदिकते रहित अचैत्य चिन्मात्रहै, जरा मृत्यु राग द्वेष भय सब तेरे संयोगते होतेहैं, अब तेरे वियोगते मैं निर्विकार शुद्ध पदको प्राप्त होता हौं॥ हे मन! तेरा होना दुःखका कारण है, जब तू निर्वाण हो जावैगा , तब मैं ब्रह्मरूप होऊंगा तेरे संगकारि मैं तुच्छ हुआ हौं, जब तू निवृत्त हुआ, तब मैं शुद्ध हुआ, जैसे मेघ आकाश कुहिडके होनेकारि मलिन आकाश भासता है, जब वर्षा गई तब शुद्ध निर्मल आकाश हो रहता है, तैसे तेरे निवृत्त हुएते आत्मा निर्लेप अपना आप भासताहै ॥ हे चित्त ! यह जो देह इंद्रियादिक पदार्थ हैं, सो भिन्न हैं, इनविषे अहंवस्तु कछु नहीं, इनको एक तुझनेही इकट्ठा किया है, जैसे एक तागा अनेक मणकेको इकट्ठा करता है, तैसे सबको इकट्ठा करिकै तू अहं अहं करता है, अरु तू मिथ्या राग द्वेष करता है, ताते तू शीघ्रही सब इंद्रियोंको लेइकारि निर्वाण होहु, जो तेरी जय होवै ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे उद्दालकविचारो नाम अष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ४९.

उद्दालकविश्रान्तिवर्णनम् ।

उद्दालक उवाच ॥ आत्मा सूक्ष्मते सूक्ष्म है, अरु स्थूलते स्थूल है, शुद्ध निर्विकार शांतरूप है, सो मैं हौं; अचैत्य चिन्मात्र हौं, मेरेविषे विकार कोई नहीं, जेते कछु जन्म मरण आदिक विकार भासते हैं, सो आत्मविषे चित्तके कल्पे हैं, आत्माको कोई नहीं, जन्म तिसको कहते हैं जो पहिले न होवै, और पाछे उपजै, आत्मा तौ आगेही सिद्ध है बहुरि जन्म कैसे कहिये, अरु मृत्यु तिसको कहते हैं जो पाछे न होवै, पहले अभाव हो जावै, आत्मा तौ जगत्विषे अंत भी सिद्ध है, ताते सब विकारोंते रहित है, बहुरि मृत्यु प्रध्वंसाभाव कैसे कहिये? देहके आदि मध्य अंत तीनों काल सिद्ध हैं, ताते सब विकारोंते रहित है, सो चित्तके संयोगते विकारोंसहित भसता है ॥ हे चित्त! तेरे संयोगकारि मैं एते भ्रमको प्राप्त भया था, अरु शरीरविषे व्यर्थ अहं अहं होता है, सो जाना नहीं जाता कि, कौन है, शरीर तौ रक्तमांसका पिंड है, इंद्रियां मन आदिक सब जड हैं, अहं करनेवाला कौन है, जब अहं होता है, तब भाव अभाव पदार्थको ग्रहण करता है, जहां अहंका अभाव है, तहां भाव अभाव कैसे होवै, अहंकार झूठ है, इंद्रियां अपने अपने विषयको ग्रहण करती है, अरु मनादिकविषे भी अपने स्वभावविषे स्थित हैं यह अहं करनेवाला नहीं पाते कि, कौन है, अहंका रूप कछु नहीं पाते ताते, निश्चय भया कि, सब पदार्थ झूठ हैं, अहंकार पदार्थ ग्रहण करनेवाला भी झूठ है, जेते कछु पदार्थ हैं सो अहंकारकरि होते हैं, मैं क्यों इसके साथ मिलिकारि देह इंद्रियोंके इष्ट अनिष्टविषे राग द्वेष करौं, इसका अरु मेरा संयोग तौ कछु नहीं, मैं तौ आत्मा निर्लेप अद्वैत हौं, संयोग किससे होवै, भावरूप वस्तु ब्रह्म है, सो मैं हौं, मेरा संयोग किससे होवै यह तौ है नहीं, सब असत्यरूप है, अरु जो कहिये देहादिक हैं, तौ भी संयोग नहीं बनता, जैसे लोह अरु बटेका संयोग नहीं होता, यह बड़ा आश्चर्य है कि, सबका अहं करनेवाला कौन था, यह मिथ्या अहंकार

अज्ञानकरिकै दुःखदायक था, जैसे अज्ञान करिकै बालकको वैताल भासिकरि दुःख देता है, तैसे अविचार करिकै दुःख होताहै, जैसे पहाड़पर बादल स्थित होताहै, सो पहाड़ बादल नहीं होता, अरु बादल पहाड़ नहीं होता तैसे आत्मा अनात्मा नहीं होता, अरु अनात्मा आत्मा नहीं होता; जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासताहै, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे अहंकार आत्माविषे भासता है; विचार कियेते अहंकार कछु नहीं निकसता जहां अहंकार होता है, तहां दुःख भी आय स्थित होता है, जैसे जहां मेघ होता है, तहां बिजली भी होतीहै, तैसे जहां अहंकार होता है, तहां शरीररूपी वृक्षकी मंजरी बढती है, जैसे गरुडके विद्यमान सर्प नहीं रहता, तैसे आत्मविचारके विद्यमान अहंकार नहीं रहता, ताते चित्तादिक सब झूँठ हैं, अज्ञानकरि भासते हैं, इनकरि रचा हुआ जगत् सत्य कैसे होवै ? यह जगत् अकारण है ताते मिथ्या भ्रमकरिकै भासता है, जैसे भ्रांतिकरिकै आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, जैसे नौकाविषे बैठेते तटवृक्ष चलते हैं, जैसे गंधर्व नगर भासता है, जब चित्त नष्ट होवै, तब सब भ्रमका अभाव हो जाताहै, देहविषे जो अभिमानहै, सो दुःखोंका कारण है, जबलग विचार नहीं उपजता, तबलग भासता है, जैसे बरफकी पुतली तबलग होती है, जबलग सूर्यका तेज नहीं लगा, जब सूर्यका तेज लगा, तब बरफकी पुतली गलि जाती है, जैसे बालकको भ्रमणेकरि पृथ्वी भ्रमती भासती है, तैसे चित्तके भ्रमकरि यह जगत् भासता है, अरु विचारके उपजेते अहंकार गलि जाता है ॥ हे मन ! तेरेसाथ मिलनेकरि बड़ा दुःख होता है, अरु तुझते रहित मैं आपको देखा है, अब तू सब इंद्रियोंसहित निर्वाण होहु आत्मविचारकरि आत्मअग्निविषे स्थित होहु, जो सब मल तेरा जलै, अरु शुद्धताको प्राप्त होवै, अरु इस देह साथ तेरा मिलाप है, सो दुःखके निमित्त है, मन अरु देहके अंतरते आपसमें शत्रुभाव है, अरु बाहिरते स्नेह भासता है, अंतर परस्पर नाश करनेकी इच्छा करते हैं, जो दुःख होता है, तौ मन इसके नाशकी इच्छा करताहै, अरु देह कहती है, मन नाश होवै तौ मेरेविषे दुःख कोई नहीं, इसका मिलनाही दुःखका कारण है ॥ हे मूर्ख ! मन

देहको तेरे संगकरि दुःख होता है, आपते इसविषे भी कोऊ नहीं मनविषे देहका अभिमान न होवै, तौ भी दुःख कोई नहीं इनके संयोगकरि दुःख होता है, अरु बिछुरनेकरि दुःख कछु नहीं तैसे मन अरु देहविषे वियोग कछु नहीं, जैसे जहां अंगारेकी वर्षा होती है, तहां बुद्धिमान् नहीं रहते, तैसे इनविषे मिलकर हमको रहना योग्य नहीं ॥ हे मूर्ख मन ! जेता कछु दुःख तुझको होता है, सो देहके मेल मिलापते होताहै, इसकेसाथ तू किसनिमित्त मिलता है, अरु आपको सुख जानता है, इसके मिलनेकरि तुझको दुःखही होता है, परंतु ऐसा मूर्ख है, जो वारंवार देहकी ओरही दौड़ता है, तू सुख जानता है, अरु तेरा नाश होता है, जैसे पतंग दीपको सुखरूप जानिकरि मिलनेकी इच्छा करता है, अरु जल मरते हैं, जैसे मच्छी मांसकी इच्छा करती है, सो कंडीविषे फँस मरती है, तैसे तू देहकी इच्छा करता है, अरु नाशको प्राप्त होताहै, ताते इसका अभिमान त्याग, जो तुझको शांति प्राप्त होवै, अरु देह कछु वस्तु नहीं, मनहीका विकारहै, पंच तत्त्वोंकी देह बनी हुई है, सो कछु वस्तु नहीं, सब मनके फुरणेकरि रचे हैं, ताते फुरणेको त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु जो तुझको शांति प्राप्त होवै, अरु मैं तौ सबते अतीत शुद्ध चिदानंद स्वरूप हौं, मेरे पास न कोऊ मन है, न इंद्रियां हैं, मैं अद्वैतरूप हौं, जैसे राजाके समीपमें कोई नहीं होता, तैसे मेरे निकट मन इंद्रियां कोई नहीं, मैं शुद्ध आत्मतत्त्व हौं भोगोंसाथ मेरा क्या प्रयोजन है, जो इससाथ मिलिकरि दीनताको प्राप्त होऊं मुझको इनकेसाथ कछु प्रयोजन नहीं, चिरपर्यंत रहैं, अथवा अबहीं नष्ट हो जावें, इनके नाश होनेकरि मेरा नाश नहीं होता, अरु ठहरनेविषे प्रयोजन नहीं होता इनते आपको भिन्न जानाहै, जैसे तिलोंते तेल निकासि लिया तब बहुरि नहीं मिलता, अरु दूधते माखन निकास लिया तब बहुरि नहीं मिलता, तैसे विचार करिकै अपना आप काढि लिया तब बहुरि इनके साथ नहीं मिलता, मैं शुद्ध चिदानंद आत्मा हौं, सब जगत् मेरे आश्रयहै, सबविषे मैं एकही अनुस्यूत व्यापा हौं, अब तिस स्वरूपविषे स्थित होऊं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारि

करि उद्दालक ब्राह्मणने वृत्तिको विषयोंते निवृत्त करिकै पद्मासन धारा, अरु प्रणव अर्धमात्रा अकार उकार मकार क्रमकरिकै तिसकी उपासना करने लगा, प्राणायाम करिकै मात्राका ध्यान करत भया, अकार ब्रह्मा, उकार विष्णु, मकार शिव, अर्धमात्र तुरीया, इनको क्रमसहित करने लगा ॥ प्रथम रेचक प्राणायाम करने लगा, आकारकी ध्वनिसाथ रेचक करत भया तिसकरि सब प्राणवायु अंतरते निकसे तब अंतर शून्य अरु शुद्ध हुआ, जैसे अगस्त्यमुनिने समुद्रको शून्य किया था तैसे, अरु आकाशकरि ऐसी ध्वनि उचरी जो ब्रह्मा विष्णु रुद्रपर्यंत चली गई, अरु देह अभिमानको त्यागिकरि पुर्यष्टकाको सुषुम्नाके मार्गविषे प्राप्त किया जैसे पक्षी आलयको त्यागिकरि आकाशमार्गको उड़ताहै, तैसे उद्दालकने पुर्यष्टकाको ब्रह्मरंध्रविषे स्थित किया जबलग चित्त सुखेन रहा, तबलग स्थित रहा काहेते कि हठ करनेसों दुःख होताहै, इसी कारणते जबलग सुखेन रहा, तबलग स्थित रहा, जब थका तब पुर्यष्टकका वायु अधःते आया, तब उकार विष्णुरूपकी ध्वनि अरु ध्यानसाथ कुंभक किया सब प्राणवायुको आधार चक्रविषे रोका न तलेको गमन करै, न ऊपरको गमन करै, तिसकरि प्राण स्थित संघट भए; तिसते अग्नि निकसी तिस अग्निकरि इसका पाप पुण्यरूपी शरीर जलिगया, तिसविषे जबलग सुखेन रहा, तबलग स्थितभया, काहेते कि, हठयोग दुःखदायक है, इस कारणते जबलग सुखेन रहा, तबलग स्थित भया, बहुरि मकारकी ध्वनिसों रुद्रका ध्यान करिकै पूरकप्राणायाम करत भया, पूरकप्राणायाम करिकै सब स्थान वायुसों पूर्ण किये, ऊर्ध्वको चित्तकला प्राप्त भई अरु जिसका स्पर्श महाशीतल है, जैसा चंद्रमाका मंडल शीतल है, तिसते अमृतकी वर्षा होती है, तिसकरि यह औरको पवित्र करनेहारा हुआ है, जैसे धुआँ आकाशको जाता है अरु जलको पाइकरि औरोंको शीतल करनेहारा होता है, तैसे इसका शरीर औरोंको पवित्र करनेहारा हुआ, जैसे मंदराचलकरिकै मथा क्षीरसमुद्र तिसते कल्पवृक्ष निकसा तैसे इसके शरीरविषे प्राणवायु स्थित भया पद्मासन बांधिकरि इंद्रियोंको रोंकता भया, जैसे हस्ती बँधनोंसाथ बंधता है; तैसे इंद्रियोंको रोंकता भया,

अर्धमात्रा जो तुरीयापद है, तिसके दर्शननिमित्त यत्न करने लगा, नेत्रोंको अर्धमूँदत भया, अरु बाह्य विषयोंका त्याग किया इंद्रियोंको भी त्यागकरि प्राण अपानको मूलचक्रविषे रोंकता भया तिसकरि नवही द्वार रोंके गए, जैसे बालकके खेलनेका पाणी चोर होता है, तिसके मुँदनेकरि चलता पाणी सब छिद्रोंते रोंका जाता है, तैसे मूलचक्रके रोंकनेकरि नव ही द्वार रोंके गए इसप्रकार चित्तको रोंकता भया जब मनरूपी चंचल मृग दौड़ै तब वैराग्य अरु अभ्यासके बलकरि बहुरि ले आवै जैसे पुलकरि जलका वेग रुकता है, तैसे चित्तको स्थित किया तब अंतःकरणकी जो सात्त्विकी वृत्ति है, तिसको त्यागिकरि स्थित भया तब मनकी वृत्ति जो है, निद्रारूप जडता तिसविषे मन मूर्च्छित हो गया, जैसे सूर्य बादलोंविषे होवै तैसे निद्राविषे लीन हो गया तब राजस तामसका प्रवाह बहुरि फुरने लगा तिसको आत्मविवेककरि निवृत्त किया जैसे प्रकाशकरि तमको निवृत्त करता है, तैसे यह विकल्परूपी तमको निवृत्त करता भया, विवेकके बलकरि चित्तकलाविषे लगाया तिसको चित्तकी वृत्तिके साथ साक्षात्कार किया, महाप्रकाशवान् अरु शांतिरूप तिसविषे एक क्षण चित्त स्थित रहा, बहुरि बाह्य निकसि गया जैसे पुलको तोडिकरि जल निकसि जाता है, तैसे निकसि गया, बहुरि अभ्यासके बलकरि आत्मकलाविषे लगाया, तब तिस परमपद शांत आत्मपदविषे चित्तकी वृत्ति स्थित भई, तहां परम आनंद अमृतविषे मग्न भई, जो अशब्द आनंदपरिणामते रहित है, तिसविषे स्थित हुआ, जिस पदविषे देवता ऋषीश्वर स्थित हैं, जिस पदविषे ब्रह्मा विष्णु रुद्र स्थित हैं, तिस पदविषे उद्दालक स्थित भया ॥ हे रामजी ! जो एक क्षण भी तिसविषे स्थित भया है, अरु जो वर्षपर्यंत स्थित भया है सो दोनों तुल्य हैं, जिसको तिस पदका अनुभव भया है, सो भोगोंकी इच्छा नहीं करता, जैसे जिसने स्वर्गका नंदनवन देखा है, सो करजुएका वन देखनेकी इच्छा नहीं करता, तैसे ज्ञानवान् भोगोंकी वांछा नहीं करता, अरु शोक कदाचित् नहीं उपजता जैसे जिसको राज्य प्राप्त भया है, सो हीनताको प्राप्त नहीं होता, तैसे जिसने आत्मपदविषे स्थिति पाई है,

तिसको विषयोंकी तृष्णा अरु शोक नहीं उपजता ॥ हे रामजी ! इसप्रकार उद्दालक स्थित था, तब सिद्ध गंधर्व विद्याधरोंके समूह तिसके निकट आय प्राप्त भए, बडे तेजवान् अरु चंद्रमाकी नाईं मुख जिनके, सो आइकारि इसको नमस्कार करत भए, अरु कहा, हे भगवन् ! स्वर्गको चलौ, अरु दिव्य भोग भोगौ, तुमने बडी तपस्या करी है, धर्म अर्थ पुण्यका सार काम हैं, अरु कामका सार जो स्त्रियां हैं, सो तुम्हारे भोगने निमित्त हैं, सो कैसी स्त्रियाँ हैं, विद्याधरियां महादेवमूर्त्ति स्वर्ग भी इन्होंकरि शोभता है, जैसे वसंतऋतुकी मंजरियां और पुष्पोंकरि पृथ्वी शोभती है, ताते तुम विमानोंपर आरूढ होइकारि स्वर्गको चलो, बहुत कालपर्यंत भोग भोगौ ॥ हे रामजी ! जब सिद्धोंने इस प्रकार बहुत कहा, तबउद्दालकने तिनको अतिथि जानिकरिनिरादर न किया; यथायोग्यपूजाकरिकैकहत भया, हे सिद्धो ! तुमको नमस्कार है, तुम जाओ, तिसकी सिद्धताविषे आसक्त न भया; काहेते किपरमानंदविषे स्थित रहा; विपयोंके सुख तुच्छ जानता भया, जैसे अमृतखानेंवाला विपकी इच्छा नहीं करता, तैसे उद्दालक विषयोंके सुखको नचाहता भया, तब कछुक दिन रहि सिद्ध पूजते भये, बहुरि उठि गए, यह परमपदविषे स्थित भया, तिस पदविषे स्थित हो अपने प्रकृत व्यवहारको करता भया, मेरुपर्वत मंदराचलपर्वतविषे विचरा, कंदराविषे ध्यान कर बैठे, कहूं एक दिन बैठा रहे, कहूंवर्षोंके समूह बीतिजावैं इसप्रकार समाधि करिकै उतरा, तब समाधि हो गई ॥ हे रामजी ! चित्त तत्त्वज्ञ अभ्यासकरिकै महाचेतन तत्त्वको प्राप्त होताहै, अरु दिशाविषे जैसेचित्रका सूर्य होता है, तैसे उदय अस्तते रहित हुआ उपशम परमपदको पाया, अरु चित्त भली प्रकार शांत हो गया, अरु जन्मरूपी फाँसीको तोडत भया, अरु देहरूपीभ्रम क्षीणहो गया शरत्कालके आकाशवत् निर्मल भया, अरु विस्तृत उत्कृष्ट प्रकाशरूप उद्दालकका वपु हो गया अरु सत्तासामान्यविषे स्थितहोइकारि विचरने लगा, परम शांतिको प्राप्त भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे उद्दालकविश्रांतिवर्णनंनाम एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥

पंचाशत्तमः सर्गः ५०.
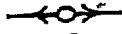
उद्दालकनिर्वाणवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे आत्मरूप ज्ञानदिनके प्रकाशकर्त्ता सूर्य ! हे संशयरूपी तृणोंके जलावनेहारे अग्नि ! हे अज्ञानरूपी तापोंके शांतकर्त्ता चंद्रमा हे ईश्वर वसिष्ठजी ! सत्तासामान्यका रूप क्या है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जगत्के अत्यंत अभावकी भावना करिकै जब चित्त क्षीण हो जावै तिसते शेष जो रहै, सो सत्तासामान्य है, जब चित्तते रहित आत्मसत्ता होवै, जिसविषे चित्त लीन हो जावै, तब सत्तासामान्य उदय हो आवै, जो असत्यकी नाईं स्थित है, सो सत्तासामान्य है ॥ हे रामजी ! जब सब इंद्रियां प्रपंच शांत हो जावैं, अरु शुद्ध बोध रहै, अंतर बाहरका व्यवधान मिटि जावै, सब जगत् एकरूप हो जावै, समाधि अरु उत्थान एक जैसा हो जावै, ऐसी दशाकी जो प्राप्ति है सो सत्तासामान्य है, सो देहके होतेही विदेहरूप है, तिसको तुरीयातीतपद कहते हैं, समाधिविषे स्थित होवै, तौ भी केवलरूप है, उत्थान होवै, तौ भी केवलरूप है, अरु अज्ञानी जो है, तिसको समाधि उत्थान तुल्य नहीं होता, काहेते कि, ज्ञानते उपजी समाधि तिसको नहीं प्राप्त भई, जो जीवन्मुक्त पुरुष है, हमते आदि लेकरि जिनको ज्ञानदृष्टि प्राप्त भई है, नारद देवर्षि ब्रह्माविष्णु रुद्र आदिक और भी ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो सत्ता सामान्यविषे स्थित हैं, तिनको समाधि अरु उत्थानविषे तुल्यता है, जैसे आकाशविषे पवनका चलना अरु ठहरना समान है, जैसे पृथ्वीविषे जल स्थित है, अरु अग्निविषे उष्णता स्थित है, तैसे सत्ता सामान्यविषे स्थित है, तिस पदविषे स्थित होइकरि उद्दालक विचार करता था, जबलग जगत् कोटरविषे विचरनेकी इच्छा थी, तबलग ऐसे विचरता रहा, जब विदेहमुक्त होनेकी इच्छा भई तब पहाड़के कंदराविषे पत्रोंका आसन बनाइकरि पद्मासन बाँधा, बाह्य इंद्रियोंके विषयोंका त्याग किया, दंतोंके साथ दन्तोंको मिलाइकरि सब संकल्पका त्याग किया, प्राणवायुको मूल आधार चक्र करिकै नवोंही

द्वार खेचरी मुद्राकरि रोंकत भया, न अंतर न बाहिर, न अध, न ऊर्ध्व, सर्व भावअभाव विकल्पको त्यागिकरि आत्मतत्त्वविषे चित्तकी वृत्तिको जोड़ता भया, तव शुद्ध चिन्मात्रविषे चित्तकी वृत्ति जाय प्राप्त भई, रोम खड़े हो आए, तिस व्युत्थानको भी त्याग किया, तव सत्तासामान्य विश्वंभर पदको प्राप्त भया, परम विश्रांति अनादि आनंद सुंदररूप हैं, तिस पदको प्राप्त हुआ, चिरकालकरिकै क्षीण मन भया, तब पुतलीकी नाईं शरीर हो गया, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे निर्मल पदको प्राप्त भया, जिसते चित्त उपजा था, तिसविषे जाय लीन भया, जैसे सूर्यकी किरणोंद्वारा वृक्षविषे रस होता है, अरु सूर्यही खेंचि लेता है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकरि तिसहीविषे लीन होते हैं, तैसे चित्त लीन हो गया अरु संकल्प संपूर्ण उपाधिविलासते रहित भया, तिस आनंदपदको प्राप्त भया, जिसविषे इंद्रादिकको आनंद तुच्छ भासता है, ऐसा विश्वंभर आनंद जो उत्तम पुरुषोंकरि सेवने योग्यहै, तिसको उद्दालक प्राप्त भया. अद्वैत अशब्द सत्तासामान्य पदविषे स्थित भया, परम शांतिरूप होता भया, तब केतेक काल पीछे तिसका शरीर गिर पड़ा, जैसे रस सूखेते वृक्ष गिर पडता है, सूर्यकी किरणोंकरि सूखा हुआ शरीर वीणाकी नाईं होत भया, जैसे वीणा बाजती है, अरु तिसका शब्द प्रगट होता है, तैसे जब वायु चलै, तब तिस शरीरविषे प्रवेश करि निकसेते शब्द प्रगट होता है, केतेक काल पीछेते देवताओंकी स्त्रियां अरु अश्विनीकुमारकी शक्ति आदिक आईं, महाअग्निकी नाईं जिनका प्रकाशहै, अरु देव देवी हैं, सब देवतोंकरि पूज्य सो सखियोंसहित आइकरिकै गलेविषे सुंदर पुष्पोंकी माला पहिराई, अरु मोरके पुच्छवत् सुंदर करिकै तिसके आगे पूजा करि नृत्य करने लगीं, अरु लीलाकरिकै शोभती भईं ॥ हे रामजी ! उद्दालकके चित्तकी वृत्तिमें कलनाते रहित विवेकरूपी वल्ली प्रगट भई, तिसको आत्मानंदरूपी फल भया, और जिसके हृदयविषे ऐसे फूलोंकी सुगंधि स्थित होवे, सो भी सब भ्रमको तारि जावै, जिसको ऐसा विवेक प्राप्त होवै, सो सब भ्रमते मुक्त होवै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे उद्दालकनिर्वाणवर्णनं नाम पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपंचाशत्तमः सर्गः ५१.

ध्यानविचारवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार उद्दालक ऋषीश्वर आत्मपदको प्राप्त भया है, तैसे क्रमकरिकै अपने आपको विचारकरिकै तू आत्मपदको प्राप्त होहु ॥ हे कमलनयन! कर्तव्य यही है कि, गुरु अरु शास्त्रोंके वचनोंको धारिकरि जगत् भ्रमते मुक्त होहु, अरु आत्माभ्यासकरि शांतपदको प्राप्त होओ, प्रथम गुरु अरु शास्त्रोंके वाक्योंको समझिये, तिसकरि जो विषयभूत अर्थहै, तिसके अभ्यासविषे बुद्धिको लगाइये, इसप्रकार जब दृढता होवै, तब परमपदकी प्राप्ति होवै, अथवा एक बुद्धिविषे तीक्ष्ण अभ्यास होवै, कलंक कलनाते रहित ऐसा बोध होवै, अरु साधनादि सामग्रीते संहित होवै, अथवा वैराग्यादिक सामग्रीते रहित होवै तौ भी अविनाशी पदको प्राप्त होवै ॥ राम उवाच ॥ हे भूतभविष्यके ईश्वर ! एक ज्ञानवान् पुरुष समाधिविषे स्थित होता है, बहुरि जगत्व्यवहारविषे विचरताहै; अरु एक समाधिविषे स्थित है, जगत्का व्यवहार नहीं करता, तिन दोनोंविषे श्रेष्ठ कौन है ? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! प्रथम समाधिका लक्षण सुन कि, समाधि किसको कहते हैं, अरु व्युत्थान किसको कहते हैं सो सुन यह गुणोंका समूह अहंकारते लेकरि तत्त्वगुणात्मक है, जो इनको अनात्मरूप देखता है, अरु आपको केवल इनका साक्षी चेतन जानता है, अरु स्वाभाविक जिसका चित्त शीतल है, तिसको समाधि कहते हैं, जो मैत्री करुणा अमान्यता आदिक गुणकरि स्थित हुआ है, मन आत्मविषयकरि शांतिको प्राप्त होता है, तिसको समाधि कहते हैं ॥ हे रामजी ! जिसको ऐसा निश्चय होता है कि, मैं शुद्ध चिदानंदस्वरूप हौं, अरु दृश्यके संबंधते रहित हौं, ऐसे निश्चयकरि जिसका अतःकरण शीतल होता है, सो कोऊ वनविषे अथवा गृहविषे रहै, सो दोनों स्थान उनको तुल्य हैं, अरु वह दोनों पुरुष तुल्य हैं, जो अंतःकरण शीतल होवै, सो बड़े तपोंका फल अनंत है ॥ हे रामजी ! जो इंद्रियोंको शमन करिकै बैठा है, अरु मनकरि जगतके पदार्थकी चिंतवना करता है,

तिसकी समाधि मिथ्या है, वह उन्मत्तकी नाईं नृत्य करता है, अरु जिसको वासना कोई नहीं, अरु मनविषे व्यवहार करता है, तिसको बुद्धिमान्की समाधिके तुल्य जान, कोऊ ज्ञानी व्यवहार करता है, कोऊ ज्ञानवान् व्यवहारके त्यागिकरि वनविषे समाधिविषे स्थित हो बैठता है, सो दोनों निश्चयकरि परमपदको प्राप्त होतेहैं, इसविषे संशय नहीं करना, ज्ञानवान् निर्वाह पुरुषार्थ करता भी दृष्ट आता है, तौ भी अकर्त्ता है, अरु जो अज्ञानी कर्त्ता भी नहीं, परंतु वासनाकरिकै कर्तव्यभावको प्राप्त होता है, जैसे कोऊ पुरुष कथाश्रवण करने बैठाहै, अरु मन किसी और ठौर निकस गया है; तौ सुनता बैठा भी नहीं सुनता, तसे ज्ञानवान्का चित्त आत्मपदकी ओर लगा है, ताते वह कर्त्ता भी नहीं कर्त्ता, उसको कर्तृत्वका अभिमान कछु नहीं होता, अरु घनवासनासहित जो अज्ञानी सब इंद्रियोंते स्थित करिकै सोइ गया है, तिसको स्वप्न आया सो पर्वतते टोएविषे आपको गिरा देखता है, अरु कष्टवान् होता है, ताते जहां वासना है, तहां क्षोभ भी है, जहां वासना कछु नहीं तहां शांति है ॥ हे रामजी! जिसविषे कर्तृत्वका अभिमान नहीं, अरु निश्चयकरि आपको अकर्त्ता जानता है, तिसको केवलीभावते समाधिस्थित जान, अरु जिसविषे कर्तृत्व अभिमान है, अरु समाधिकरि बैठा है, तौ भी तिसको व्युत्थान जान ॥ हे रामजी! चित्तको चलावनेका कारण स्मृति है जो स्मृति जगत्की लेकरि समाधि लगाय बैठता है, तौ भी चित्तवासनाकरिकै विस्तारको पाता है, जैसे बीजसों अंकुर उपजता है, अरु विस्तारको पाता है, तैसे मनविषे जो स्मृति वासनाकी होती है, तिसकरि चित्त विस्तारको पाता है, अरु जो जगत्की वासना मनते जाती रही, अर्थ यह कि, जब जगत्का सततभाव निवृत्त होता है, तब चित्त अचल हो जाता है ॥ हे रामजी! जिस चित्तसों वासना नष्ट होतीहै, तिसको अचल स्थिति कहतेहैं, सो ध्यानविषे केवलीभावविषे स्थित होता है, अरु जिसके चित्तविषे सदा वासना फुरती है, तिसको सदा क्षोभ होता है, ताते निर्वासनिक होइकरि परम पदको प्राप्त होहु ॥ हे रामजी! जिस चित्तविषे वासनागंध होती है तहां कर्तृत्वका अभिमान स्फुरता है, तिसकरि सदा दुःखी होता है,

वासनाके क्षीण हुएते मुक्त होता है, जिस पुरुषके चित्तसों जगत्की आस्था निवृत्त भई है, अरु वीतशोक भया है, सो स्वस्थ आत्मा है, तिसको समाधि कहते हैं ॥ हे रामजी ! जिसके अंतते संसारका राग दोष मिटि गया है, अरु शांतिको प्राप्त भया है, तिसको सदिव्य समाधि कहते हैं, ताते चित्तविषे जो पदार्थभावना है, तिसको त्यागिकरि अपने स्वभावविषे स्थित होहु, तब गृहविषे रहहु, अथवा वनविषे जावहु, दोनों तुझको तुल्य हैं ॥ हे रामजी ! गृहविषे स्थित हैं, अरु चित्त जिनका समाहित है, अहंकारके दोषते रहित हैं, तिनको कुटुम्ब अरु जनोंके समूह भी वनकी नाईं हैं, जैसे उसको वन है, तैसे ज्ञानवान्को गृह वनतुल्य है, अरु देह अभिमानी जो अज्ञानी है, सो वनविषे जाय समाधि लगाय बैठता है, अरु चित्तकी वृत्ति विषयोंकी ओर रहती है, तब वह जगत्के समूहको देखताहै, अथवा सुषुप्तिविषे जड़भूत हो जाता है॥ हे रामजी ! चित्त उत्थानविषे स्वरूपते गिरा हुआ जगत्भ्रमको देखता है, अरु जो चित्त निर्वाणपद आत्माविषे स्थित होता है, तब उपशम होता है ॥ हे रामजी ! जो पुरुषभाव सर्व पदार्थोंते आत्माको अतीत जानता है, सो समाहितचित्त कहाता है, अरु जिसको जाग्रत् जगत् स्वप्नवत् भासता है, सो समाहितचित्त कहाता है, वह पुरुष उनके समूहविषे रहता है, तौ भी उसका संबन्ध किसीसाथ नहीं, जैसे कोऊ पुरुष राजमार्गविषे चला जाता है, तहां किसी मार्गके पदार्थसाथ संबंध नहीं होता, तैसे उस पुरुषका अभिमान किसीविषे नहीं स्फुरता, जिस पुरुषका चित्त अंतर्मुख हुआ है, सो सोवै अथवा बैठे, अथवा चलै, देखै, नगर ग्राम सब उसको महावनरूप भासता है, सब जगत् उसको आकाशरूप भासता है, जिस पुरुषको आत्माविषे प्रीति भई है, तिसको अंतर्मुखी कहते हैं, जिसका अंतर आत्मज्ञानकारि शीतल भया है, तिसको सब जगत् शीतलरूप भासताहै, जबलग जीता है, तबलग विगतज्वर होइकारि जीता है, अरु जिसका अन्तर तृष्णाकारि जलता है, तिसको सब जगत् दावाग्निसाथ तपता भासता है ॥ हे रामजी ! यह सब जगत् इसके चित्तविषे स्थित है, जैसी भावना चित्तविषे होती है, तिसके अनुसार जगत् भासता है, स्वर्ग पृथ्वी

लोक पाताल वायु नदियां आकाश देश काल जेता कछु जगत् हैं, सो सब चित्त अंतःकरणविषे है, वही बाहर विस्तार होइकारि भासता है, जैसे वटके बीजविषे वटका विस्तार होता है, तैसे चित्तविषे जगत्का विस्तार होता है, अरु बाहर जो सूर्य आदिक भासता है, सो भी चित्तके अंतर स्थित हैं, जैसे फूल खिलता है, तिसके अंतरकी सुगंधि बाहर भासती है, अरु वस्तुते न कछु अंतर है, न बाहिरहै, जैसा किंचन होता है, तैसाही चैत्यताकरि फुरता है, तैसे वही सत्ता जगत्रूप होईकारि भासती है, जगत् सब आत्मरूप है, और न कोऊ सत्य है, न असत्य है, एक आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनको सदा ऐसेही भासता है ॥ हे रामजी ! जिसके अंतर शांति है, तिसको सब जगत् शांतिरूप है, अरु जिसका अंतर देहाभिमानविषे स्थित है, सो नाशरूप होता है, अरु भयको प्राप्त होता है, किसी ओरते शांति उसको प्राप्त नहीं होती, स्वर्ग, पृथ्वीलोक, पाताल, वायु, आकाश, पर्वत, नदियां, देश, काल सबको प्रलयकालकी अग्निवत् जलता देखता है; जिसके अंतर ताप होता है, तिसको सब जगत् तपता भासताहै, आत्मज्ञानीको शांतरूप भासता है, जैसे अंधको सब जगत् तमरूप भासता है, अरु नेत्रोंवालेको सब जगत् प्रकाशरूप भासता है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषको आत्मपदविषे प्रतीति भई है, अरु इंद्रियोंकेसाथ कर्म भी करता है, परंतु हर्षशोकके वश नहीं होता, सो समाहितचित्त कहाता है, जो पुरुष सबको आत्मा देखता है, चित्तको चिंतवता नहीं, अरु भविष्यत्की इच्छा नहीं करता, वर्त्तमानविषे रागद्वेषते रहित होइकारि विचरता है, सो समाहितचित्त कहाता है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष जगत्की पूर्वापर गतिको देखिकारि हँसताहै अरु शमपदविषे स्थित होता है, किसीविषे ममता नहीं करता, सो समाहितचित्त कहाता है, अरु जो पुरुष अहंममताते रहित है, अरु जगत्की विभागकलनाते रहित है, चेतन अचेतनभाव जिसको नहीं फुरता सो पुरुष सत्य है; अरु आकाशकी नाईं स्वच्छ निर्मल है, राग द्वेष क्रोध विकारोंते काष्ठ लोष्ट समान हो रहता है, अरु सब भूतोंको अपनेसमान देखता है, अरु औरके द्रव्यको देखिकारि दृष्टि

नहीं करता, स्वभावहीकारि नहीं चाहता, कछु द्वंद्वके भयकारि नहीं त्यागता, ऐसे जो देखता है, अरु अहंकारते रहित होता है, जगत्के न सत्यभावको देखता है, न असत्यभावको देखता है, न ज्ञानको देखता है, न अज्ञानको देखता है, न जड़ देखता है, न चेतन देखता है, केवल अद्वैततत्त्व देखता है, सो महाशांत पदविषे स्थित है, सो उठि खड़ा होवै, अथवा बैठा रहै, उदय होवै, अथवा अस्त होवै, बडे भोगोंविषे रहै, अथवा वनविषे जाय बैठे, अथवा मद्यपानकरि उन्मत्त होवै, अरु नृत्य करै, अरु गयादिक तीर्थोंविषे निवास करै, अथवा कंदराविषे जाइ निवास करै, शरीरको अगर चंदनका लेपन अथवा चीकडकेसाथ लपेटै अथवा देह अबहीं गिरै, अथवा कल्पपर्यंत रहै, कछु कदाचित् भी तिस पुरुषको कलंक नहीं लगता, जैसे स्वर्णको चीकड़के मिलापका दोष नहीं लगता; तैसे ज्ञानवान्को कर्तृत्वका दोष नहीं लगता ॥ हे रामजी! इस संवित्को अहंताही कलंक है, सो महापुरुष अहंकारते रहित है, ताते स्पर्श नहीं होता, जैसे सीपीको रूपेका आभास नहीं स्पर्श करता तैसे ज्ञानवान्को क्रिया स्पर्श नहीं करती ॥ हे रामजी! अहंताही करिकै यह दीन होता है, जब अहंता इसको फुरती है, तब अनेक प्रकारके दुःख सुख देखता है, परंपरा जन्मोंको देखता है, अरु भयको प्राप्त होता है, जैसे किसीको जेवरीविषे सर्प भासता है, अरु भय पाता है, जब भलीप्रकार दीपकके प्रकाशकरि देखता है तब सर्पभय निवृत्त होता है तैसे अहंताकारि यह दुःख पाता है, अहंताके शांत हुएते शांतिमान् होता है ॥ हे रामजी! ज्ञानवान् जो कछु कर्म करता है, खाता पीता लेता देता हवन करता है; तिसविषे अहंताका अभिमान नहीं करता, ताते करनेविषे तिसका कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता, अरु जो नहीं करता तिसविषे कछु अभिमान नहीं, ताते करनेते उसकी हानि कछु नहीं होती, अपने स्वभावविषे स्थिति है; जगत्को द्वैतभावकारि नहीं देखता, सर्व आत्मभावकारि देखता है, ताते कर्म स्पर्श नहीं करता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे ध्यानविचारो नाम एकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशत्तमः सर्गः ५२.

भेदनिरासवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! चित्त आदिक जो जगत् है, सो वास्तव आत्माते भिन्न कछु नहीं, आत्मारूपी मिरच है, तिसविषे चित्त अहंतारूपी देश काल तीक्ष्णता भिन्न नहीं, जैसे इक्षुते मधुरता भिन्न नहीं, तैसे आत्माते जगत् भिन्न नहीं; जैसे पत्थरविषे कठोरता है, तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे पर्वतविषे जडता होती है, तैसे आत्माविषे अहंता होती है, जैसे जलविषे द्रवता होती है, तैसे आत्माविषे अहंता आदिक होती हैं, जैसे फूल फल टास वृक्षते भिन्न नहीं होते, तैसे आत्माविषे अहंता आदिक अभेद होते हैं, जैसे तीक्ष्णता मिरचते भिन्न नहीं तैसे चित्त अहंतारूपी देश काल आत्माते भिन्न नहीं; जैसे अग्निविषे उष्णता होती है, बरफविषे शीतलता होती है, सूर्यविषे प्रकाश होता है, गुडविषे मधुरता है, तैसे आत्माविषे जगत् होता है, जैसे अमृतविषे स्वादवेदना होती है; तैसे आत्माविषे देशकाल वेदना होती है ॥ हे रामजी ! जैसे मणिविषे प्रकाश होता है, तैसे आत्माविषे अहंता होती है, जैसे जलते तरंग भिन्न नहीं होता, तैसे आत्माते अहंता भिन्न आदिक नहीं होते, जेता कछु जगत् भासता है सो आत्मतत्त्वका प्रकाश है, सो आत्मा अनन्त है, सबविषे पूर्ण है, एकही ईश्वरभावविषे स्थित है, महा घनशिलाकी नाईं स्थित है, तिसते भिन्न कछु नहीं, जैसे आकाश अपनेभावविषे स्थित है, तैसे सत्य केवल आत्माविषे स्थित है, अपने आपकरि निर्वेद है, अरु वेदना भी तिसते भिन्न कछु नहीं, जैसे जलही तरंगरूप हो भासता है, तैसे आत्मा वेदनरूप हो भासता है, जैसे जलविषे द्रवता भासती है, अरु पवनविषे चलना भासता है, तैसे ज्ञानरूप आत्माविषे अहंतारूप देश काल जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! जीवोंका जीवना ज्ञानकरि होता है, अरु ज्ञानसत्ताका जीवना चेतनकरि होता है, तैसे चिन्मात्र अरु जीवोंविषे रंचकमात्र भी कछु भेद नहीं, जैसे ज्ञान चेतनसत्ता अरु जीवविषे भेद नहीं तैसे ज्ञाता अरु जगत्विषे भेद

कछु नहीं एकही अखंड सत्ता ज्यौंकी त्यौं स्थित है ॥ हे रामजी! सर्व सत्ता एक अज अनादि अरु आदि अन्त मध्यते रहित प्रकाशरूप है, चिन्मात्र अद्वैततत्त्व अपने आपविषे स्थित है, अशब्द है, तिसविषे वाणी प्रवेश नहीं करसकती अरु जेते कछु वाक्यहैं, सो तिसके जतावने-निमित्त कहे हैं, वास्तवते द्वैत वस्तु कछु नहीं, एक आत्मतत्त्वको अपने हृदयविषे धारिकारि स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवा० उपशमप्रकरणे भेदनिरासवर्णनं नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ५३.

सुरघवृत्तान्तमांडव्योपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठउवाच॥हे रामजी! एक आगे पुरातन इतिहास हुआ, तिसको ऋषीश्वर कहते हैं, सो तू सुन ॥ क्रांत देशका राजा सुरघ होता भया, तिसका एक वृत्तांत है, सो विस्मयको उपजावनेहारा है ॥ हे रामजी! उत्तर दिशाविषे पृथ्वी है, तहां सुन्दर सुगन्धता है, मानौं कपूरकारि लीपी हुई है, मानौं सदाशिवके हंस आय स्थित हुए हैं, हिमालयके शिखरऊपर कैलासपर्वत हैं, सो सब पर्वतोंते उत्तम है, अरु उज्वल श्वेत है, सो रुद्रके रहनेका स्थान है, तहां कल्पवृक्ष अरु गंगाका प्रवाह चलता है, और भी बड़ी नदी चलती हैं, अरु कमलोंसहित ताल बहुत महासुंदर स्थित हैं, जिसमें मृग पक्षी बहुतहैं, तिस हिमालयके तले स्वर्ण-वत् जटावाले क्रांत रहते हैं, जैसे वृक्षके मूलविषे पिपीलिका रहतीहै, तैसे पर्वतके आश्रय क्रांत देशके जीव रहते हैं, तिस क्रांत देशका राजा सुरघ होता भया है, कैसा राजा मानौ प्रत्यक्ष लक्ष्मीमूर्तिधारी भुजविषेहै, वेग-वान् ऐसा मानौ पवनकी मूर्ति है, अरु वैराग्यवान् ऐसा मानौ जनेंद्र हैं, अरु बुद्धिमान् ऐसा मानौ बृहस्पति, अरु कवि ऐसा मानौ शुक्र है अरु राजा ऐसा मानौ इंद्र अरु धनी ऐसा मानौ कुबेर, ऐसा राजा होइकरि राज्य करता भया, भली प्रकार प्रजाकी पालना करै, जो भले मार्गविषे वर्तै तिनकी रक्षा करै, अरु जो पापकर्म चोरी आदिक करैं, तिनको

दंड देवै, जैसा कर्म आनि प्राप्त होवै, तिसविषे रागद्वेषते रहित होइकारि व्यतीत करै, एक कालमें अपने स्थानविषे बैठा है कि,चित्तविषे विचार आनि उपजा, संशयरूपी वायुकारिकै तिसकी बुद्धिरूपी पक्षिणी डोलायमान भई है, बडा अनर्थ है कि, मैं जीवोंको कष्ट देता हौं, ताते इसको धन देऊं अरु कष्ट न देऊं जैसे तिलोंको तेली पेरता है, तैसे मैं पापियोंको कष्ट देता हौं; अरु दुष्टोंको कष्ट दियेविना राज्य नहीं चलता जैसे जलविना नदीका प्रवाह नहींचलता, तैसे दुष्टोंको कष्ट दियेविना राज्य नहीं चलता, अरु जब दंडदेता हौं तब दुःखपाते हैं, मैं क्या करौं दोनों बातोंविषे कष्टहै ॥हे रामजी! ऐसे विचारविषे राजा भ्रमतारहै,तब एक दिन तिसके गृहविषे मांडव्यमुनि आनि प्राप्तभया,जैसे इंद्रके गृहविषे नारद आवै तैसे आया, तब राजा भलीप्रकार तिसका पूजन करता भया अरु संदेहवान् होइकारि संशयरूपी कुत्सित वृक्षके नाशकर्त्ता कुहाडे सर्ववेत्तासों पूछता भया, ॥ सुरघ उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्व धर्मगत तुम्हारे आवनेकारि मैं बडे आनंदको प्राप्त भया हौं जैसे वसंत ऋतुकारि पृथ्वी प्रफुल्लित होतीहै तैसे प्रफुल्लित भया हौं कि मैं भी अब आपको पुण्यवान् जानत भया हौं कि, मैं भी पुण्यवानोंविषे प्रसिद्ध होऊंगा, काहेते जो तुम मेरे गृहविषे आये हौ, जैसे सूर्यके उदय हुएते प्रकाश हो आता है, तैसे मैं तुम्हारे दर्शनकारि प्रसन्न भया हौं ॥ हे भगवन् ! मुझको संशय है, तिसके निवारणेको योग्य हौ, जैसे सूर्यके उदय हुएते अंधकार नष्ट हो जाता है; तैसे तुमकारि मेरा संशय निवृत्त हो जावैगा, जो कोऊ महापुरुषोंका संग करता है, तिसका संशय अवश्य निवृत्त हो जाता है, अरु संशय परम दुःखोंका कारण है, ताते मेरे संशयको तुम दूर करौ, सो मुझे यह संशयहै कि, जो कोऊ दुष्ट कर्म करता है, तिसको मैं दंड देताहौं, अरु जब उसको दुःख देखताहौं, तब मुझको दया उपजती है, जैसे सिंहके नख हस्तीको खैंचते हैं, तैसे यह संशय मुझको खैंचता है, ताते यही उपाय कहौ, जिसकारि मुझको समता प्राप्त होवै, जैसे सूर्यकी किरणैं सब ठौरविषे सम होती हैं, तैसे इष्ट अनिष्टविषे मैं सम होऊं कृपाकारि मुझको कहौ ॥ मांडव्य उवाच ॥ हे

राजन् ! यह तौ बहुत सुगम है, अरु अपने अधीन हैं, आपहीकरि सिद्ध होता है, अरु अपनेही गृहविषे हैं ॥ हे राजन्! सब उपाधि मनविषे उठती हैं, सो मन तुच्छ है, विचार कियेते निवृत्त हो जाता है, जैसे उष्णताकरि बरफ जलमय हो जाता है, तैसे विचार कियेते मनभाव लीन हो जाता है, तब ताप भी निवृत्त हो जाता है, जैसे शरत्कालके आयेते कुहिड नष्ट हो जाती है, तैसे विचार कियेते मनभाव नष्ट हो जाता है, सो विचार इसप्रकार कि, मैं कौन हौं, अरु इंद्रियां क्या हैं, अरु जगत् क्या है, जन्ममरण किसको कहतेहैं, इस विचारकरि जब तू अपने स्वभावविषे स्थित होवैगा तब तुझको हर्ष शोक अरु क्रोध राग द्वेष चलायमान न कर सकैगा, जैसे वायुकरि पर्वत चलायमान नहीं होता, तैसे तू अचल रहैगा ॥ हे राजन् ! जब आत्मबोध होवैगा तब मन अपने मनभावको त्यागि देवैगा, तू अचल संतापते रहित अपने स्वरूपको प्राप्त होवैगा, जैसे तरंगभाव मिटनेकरि जल निर्मल हो जाताहै, तैसे तू अचल होवैगा, मन धर्मभी रहैगा, परंतु मध्यसों अज्ञान नष्ट हो जावैगा आत्मसत्ता भाव होवैगा, जैसे काल वही रहताहै, परंतु ऋतु और होजाता है तैसे मन वही होवैगा, परंतु स्वभाव और हो जावैगा, अरु तेरे टहलुए प्रजा भी साधु होजावैंगे, तेरी आज्ञामें वर्त्तैंगे, अरु तुझको देख प्रसन्न होजावैंगे ॥ हे राजन्! जब तू विवेकरूपी दीपकसे आत्मरूपी मणि पावैगा तब तेरी बडाई सुमेरु अरु समुद्र अरु आकाशते भी अधिक होवैगी, जब तुझको विवेकसों आत्ममहत्तत्त्वताकाप्रकाश होवैगा, तब तू संसारकीतुच्छ वृत्तिविषे न डूबैगा, जैसे गोपदके जलविषे हस्ती नहीं डूबता, तैसे तू राग द्वेषविषे न डूबैगा, जिसको देहविषे अभिमानहै, अरु चित्तविषे वासना है, सो तुच्छ संसारकी वृत्तिविषे डूबते हैं, ताते जेता कछु अनात्मभाव दृश्य है, तिसका त्याग करि पाछे जो शेष रहै, सो परमतत्त्व आत्मा है ॥ हे राजन् ! जो कछु सत्य वस्तु है, तिसको हृदयविषे धर, अरु जो असत्य है तिसका त्याग कर, जैसे तबलग कलरकारि सोनार धोता है, जबलग स्वर्ण नहीं निकसता, जब सुवर्ण निकसता है, तब धोनेका त्याग करता है, तैसे तबलग आत्मविचार कर्तव्य है, जबलग

आत्माका साक्षात्कार नहीं भया जब आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होता है तब विचारसाथ प्रयोजन नहीं रहता ॥ हे राजन् ! सबविषे सब प्रकार सब काल सब आत्माकी भावनाकर अथवा जेता कछु दृश्यभाव है, सो सब त्यागिकारि जो शेष रहैगा सो तुझको भासि-आवैगा, जबलग सर्व दृश्यका त्याग न करैगा, तबलग आत्मपदका लाभ न होवैगा सर्व दृश्यके त्यागते आत्मपद भासैगा ॥ हे राजन् ! किसी वस्तुके पानेका यत्न करता है, तौ औरको त्यागिकारि उसका यत्न करिये तौ प्राप्त होता है, तौ आत्मतत्त्व अनन्य होइकारि चित्तविना कैसे प्राप्त होवैगा, जब संपूर्ण अपना यत्न एकही ओर लगताहै, तब तिस पदकी प्राप्ति होती है, ताते आत्मपद पावनेनिमित्त सब दृश्यका त्याग कर सबके त्याग कियेते जो शेष रहै, सो परमपद है ॥ हे राजन् ! सब-के त्याग कियेते पाछे जो सत्ता अधिष्ठान रहैगा सो तुझको आत्मभाव-कारि प्राप्त होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघवृत्तांतमां-डव्योपदेशो नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः ५४.

सुरघवृत्तांतवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहकारि मांडव्यमुनि अपने स्था-नको गया, तब सुरघराजा एकांतमें बैठिकारि विचार करने लगा कि, मैं कौन हौं, न मैं सुमेरु हौं, न मेरा सुमेरु है, न मैं जगत् हौं, न मेरा जगत् है, न मैं पृथ्वी हौं, न मेरी पृथ्वी है, न मैं क्रांत मंडल हौं, न मेरा क्रांत मंडल है, काहेते जो अपने भावविषे स्थित है, मेरे भावकारि तौ यह स्थित नहीं, जो मैं न होऊं तो भी यह ज्योंकी त्यों स्थित है, तौ मेरे कैसे होवैं, अरु मैं इनका कैसे होऊं, न मैं नगर हौं, न मेरा नगर है, हस्ती घोड़ा मंदिर धन स्त्री पुत्रादिक जेते कछु पदार्थ हैं, सो न मेरे हैं, न मैं इनका हौं, इनविषे आसक्त होना वृथा है, इनविषे संबंध मेरा कछु नहीं, जेते कछु भोगोंके समूह हैं, न मैं हौं, न यह मेरे हैं,

टहलुए भृत्य कलत्र सब अपने भावकारि सिद्ध हैं, मेरा इनकेसाथ संबंध कछु नहीं, न मैं राजा हौं, न मेरा राज्य है, मैं एकाएकी शरीरमात्र हौं, इनविषे मैं ममत्व करता हौं, सो वृथा है, अरु शरीरविषे जो मैं अहंकर्त्ता हौं, सो भी व्यर्थ है, काहेते जो हाथ पाँव आदिकका स्वरूप है, सो भिन्न है, न यह मैं हौं, न यह मेरे हैं, इनविषे मेरा शब्द कछु नहीं, रक्त मांस हाड आदिकरूप हैं, सो मैं नहीं, यह जड़ हैं, मैं चेतन हौं, इनकेसाथ मेरा कैसे संबंध होवे ? जैसे जलका स्पर्श कमलकोकछु नहीं तैसे इनका स्पर्श मुझको नहीं न मैं कर्मइंद्रियां हौं न मेरी कर्म इंद्रियां हैं, यह जड हैं, मैं चैतन्य हौं, न मैं ज्ञानइंद्रियां हौं, न मेरी ज्ञानइंद्रियां हैं, इनते परे मन है, सो भी मैं नहीं, यह जड है, मन बुद्धि चित्त अहंकार यह सब अनात्मारूप हैं, मेरा इनकेसाथ अविद्याकरि संबन्ध है, भ्रांतिकरिके मैं इनको अपना स्वरूप जानता था, यह सब भूतोंका कार्य है, इनके पाछे चेतन जीव है, सो चेतन दृश्यको चेतनेवाला है, सो चेतन चेतना मैं नहीं, इस सर्वते शेष अचैत्य चिन्मात्र है, सो सत्ता मेरा स्वरूप है, बड़ा कल्याण भया, जो मैं अपना आप पाया हौं, अब मैं जागा हौं, अपना स्वरूप पाया हौं, बडा आश्चर्य है, जो मैं वृथा देहादिकको आप जान शोक मोहको प्राप्त होता था, मैं तौ एक निर्विकल्प चेतन हौं, अरु अनंत आत्मा हौं, सबविषे व्याप रहा हौं, ब्रह्मरूप आत्मा हौं इंद्रियोंते आदि जेते भूतगण हैं, सो सबका आत्मा हौं, यह भगवान् आत्मा सबके अंतर व्याप्या है, जैसे सबके अंतर तत्त्व होते हैं, तैसे यह चेतनरूप सर्व भावको भरि रहा है, अरु सर्व भावोंविषे व्यापि रहा हैं, भैरव अरु उदय अस्तंभाव आदि विकारोंते रहितहै, ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत सबका आत्मा यहीहै, सब प्रकाशोंका दीपक प्रकाशकरनेहारा है, अरु संसाररूपी मोतियोंके परोवनेहारा तागा यही है, सबका कारण कार्य यही है, अरु साकारते रहित है, शरीर आदिक सब इसकी सत्ताकारि उपलब्ध होते हैं, शरीररूपी रथ इसीकारि चलता है, अरु वास्तवते शरीरादिक कछु वस्तु नहीं, यह जगत् चित्तरूपी नटकी नृत्य लीलारूपहै, चित्तविषे जगत् फुरताहै,

वास्तव और वस्तु कछु नहीं, बड़ा कष्ट है, मैं वृथा संग्रह असंग्रहकी चिंता करता था, यह गुणोंका प्रवाह है, इसविषे मैं क्यों शोकवान् होता था, बड़ा आश्चर्य है, जो असत्य भ्रम सत्य हो मुझको दिखता था, अब मैं निश्चयकरिकै सम्प्रबोध हुआ हौं, दुर्दृष्टि मेरी दूर भई, दृष्टिकी जो अलख दृष्टि है, सो मैंने देखी है, अरु जो कछु पावने योग्य था, सो मैं पाया हौं, अचैत्य चिन्मात्र तत्त्वको प्राप्त भया हौं, जेता कछु दृश्य है, तिसको मैंने स्वरूपते देखाहै, अरु अहं मम दुःख मेरा नष्ट भया है, मैं चिदानंदपूर्ण आत्मा हौं, नित्य शुद्ध अनंत आत्मा अपने आपविषे स्थित हौं, अरु ग्रहण क्या अरु त्याग क्या? यह क्लेश कोऊ नहीं, न कोऊ दुःख है, न सुख है, सर्व ब्रह्म है, और दूसरी वस्तु कछु नहीं राग किसका करौं? अरु द्वेष किसका करौं? मैं मिथ्या मूढताको प्राप्त होइ कारि दुःखी होता था, अब कल्याण हुआ मैं अमूढ होइकारि अपने आप स्वभावविषे स्थित भया हौं, ऐसे आत्माके साक्षात्कारविना दुःखी था, इसके देखेते अब किसका शोक करौं अरु कैसे मोहको प्राप्त होऊँ अब मैं क्या देखौं, अरु क्या करौं, कहां स्थित होऊं यह सब जगत् आत्माके प्रकाशकारि है, अरु सब आत्मारूप है ॥ हे अतत्त्वरूप! अर्थ यह कि जिसविषे तत्त्वोंकी उपाधि कछु नहीं तेरी दृष्टि निष्कलंक है, मैं अब सम्यक् ज्ञानवान् हुआ हौं, मेरा मुझहीको नमस्कार है, मैं अनंत आत्मा हौं, अनुभवरूप हौं, भ्रमते रहित निष्कलंक सब इच्छाते रहित सुषुप्तिकी नाईं शांतरूप हौं, अचैत्यचिन्मात्र हौं, सदा अपने आपविषे स्थित हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघवृत्तांतवर्णनं नाम चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशत्तमः सर्गः ५५.

सुरघवृत्तान्तसमाप्तिवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! क्रांत जो स्वर्णरूप देश है, तिसका राजा परमानंदको प्राप्त भया, इसप्रकार विचार अभ्यासकारि ब्रह्मरूप हुआ, जैसे गाधिका पुत्र विश्वामित्र तपस्या करिकै उसी शरीरसाथ क्षत्रि

यते ब्राह्मण हुआ, तैसे राजा सुरघ अभ्यास करिकै ब्रह्मरूप ब्रह्मबोध हुआ, अनेक राज्यके कार्योंको करत भया, जैसे सूर्य इष्ट अनिष्टविषे सम है, विगतज्वर होइकरि दिनोंको व्यतीत करता है, तैसे रागरोषते रहित राज्यका कार्य करत भया, जैसे जल ऊंची नीची ठौरविषे गमन करताहै, अपना जल भाव नहीं त्यागता सम रहताहै, तैसे राजा हर्षशोकते रहित होइकरि राज्यकार्य करत भया, अरु स्वभावको न त्यागत भया आत्मविचारको धार सुषुप्तिकी नाईं वृत्ति हो गई संसार भावको फुरना कछु न फुरै, जैसे वायुते रहित दीपक प्रकाशता है, तैसे शुद्ध प्रकाशको धारता भया, हे रामजी! दयाकरता भी दृष्ट आवै,परंतु उसकी दृष्टिविषे कछु दया नहीं,अरु दयाते रहित भी औरोंको दृष्ट आवै,परंतु उसकी दृष्टि विषे निर्दयता नहीं, न कछु सुख, न दुःख, न अर्थ न अनर्थ सब पदार्थोंविषे सम एक भाव आत्मा देखै अरु अंतरते पूर्णमासीके चंद्रमावत् शीतल रहै, अरु आत्माका किंचनरूप जगत्को जानत भया,सुख दुःखका भाव शांत हो गया जैसे सूर्यके उदय हुएते अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे सुखदुःख नष्ट हो गए, अरु शोक विलास कर्त्ता, मत्त होता, स्थित होता, चलता, श्वास लेता, अरु पाचों विषयोंको ग्रहण कर्त्ता रागद्वेषको प्राप्त न भया, जैसे पत्थरविषे फुरना कछु नहीं फुरती, तैसे उसको कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभिमान कछु न फुरा, सब कर्तव्यको कर्त्ताभी निःसंग रहा, जैसे जलविषे कमल अलेप रहता है, तैसे राज्यविषे निर्लेप होइकरि जीवन्मुक्त हुआ बहुत काल बितावता भया, तिसके अनंतर शरीरका त्याग किया जैसे बरफका कणका सूर्यके तेजकरि जलमय हो जाता है, तैसे शरीर अपने भावको त्यागिकरि आत्मतत्त्वविषे लीन हो गया, जैसे नदी समुद्रविषे लीन होती है, बहुरि इतर नहीं भासती, तैसे सुरघ अपने भावको त्यागिकरि उज्वल भावको प्राप्त भया, कलनारूपी मलको त्यागिकरि निर्मल ब्रह्म होता भया, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे निर्मल चिदानन्द ज्योतिर्भावको प्राप्त भया, जैसे घट फूटेते घटाकाश महाकाश हो जाता है, तैसे पूर्ण ब्रह्म चिदानंद तत्त्व होता भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघवृत्तांतसमाप्तिर्नाम पंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशत्तमः सर्गः ५६.
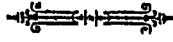
सुरघपरघसमागमवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तुम भी इसी दृष्टिको आश्रय करिकै विचारौ, तब सब भय मिटि जावैगा, जैसे घोर तमविषे बालक भयको पाता है, सो जब दीपकका प्रकाश होता है, तब निर्भय होता है, तैसे संसाररूपी घोर तमविषे आया पुरुष दुःख पाता है, जब ज्ञानरूप दीपक उदय होवै, तब निर्भय हो जाता है, हे रामजी ! जब आत्म विचारविषे कछु भी चित्त विश्राम पाता हैं, तब तिस विश्रामको आश्रयकारि संसा-रसमुद्रते निकसि जाता है, जैसे टोएविषे गिरे ताको तृणका बूटा हाथ लगै, तौ भी तिसके आश्रयकारि निकसि आता है ॥ हे रामजी ! यह पावन दृष्टि मैंने तुझको कही है, इसको चित्तविषे विचार परस्पर मिलिकारि उदाहरणसाथ अभ्यासकारि नित्य एक समाधिविषे स्थित होहु, अरु पृथ्वीका भूषण होइकारि लोकोंविषे विचरौ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! एक समाधि किसको कहिये, अरु कैसे होती है, सो कहौ, और मेरा चित्त फुरता है, सो स्थित होवै, जैसे वायुकारि मोरका पुच्छ हलता है, तैसे चंचलरूप चित्त सदा फुरता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब सुरघ प्रबुद्ध हुआ था, तब तिसका संवाद पर्णाद राजा ऋषिसों हुआ था, महाअद्भुत समाधि है, तिसको सुनिकारि विचारै तौ तू एक समाधिमान् होवैगा, जो इनने मिलिकारि परस्पर चर्चा करी है, सो सुन ॥ हे रामजी ! पारश देशका राजा महावीर्यवान् था, अरु परघ तिसका नाम था सो सुरघका मित्र था, जैसे नंदनवनविषे कामदेव अरु वसंतऋतुका मित्रभाव होता है, तैसे सुरघ अरु परघका मित्रभाव होत भया, एक कालमें परघके देशविषे प्रलयकालविना प्रलयकालकी नाईं होत भया, तिसकारि सब जीव दुःख पाने लगे, प्रजाके जीवोंकी जो पापबुद्धि थी, तिसीका फलआनि लगा, महादुर्भिक्ष पड़ा, कई क्षुधाकारि मृतक भए, कई अग्निकारि जलि मरे, कई झगडा कारि मृतक भए, प्रजाके लोक बहुत दुःखको प्राप्त भए, अरु राजाको दुःख कछु न प्राप्त

भया, जब प्रजा बहुत दुःख पाई, तब राजा प्रजाको दुःखी देखत भया, अरु प्रजाके दुःख निवारणेको समर्थ न भया, तिसकरि प्रजा अरु कुटुम्बको त्यागि गया, जैसे वनको अग्नि लगेते पक्षी त्यागि जाते हैं, जैसे ग्रामको अग्नि लगै तौ पैंढाई त्यागि जाते हैं, तब एक पहाडकी कंदराविषे तप करने लगा, ऐसा तप करने लगा; जैसा जिनेंद्रने तप किया था; तिस कंदराविषे फल न पावै सूखे पान ले खावै; जैसे अग्नि सूखे पानको भक्षण करती है; तैसे सूखे पान खावै; तिसकरि तिसका नाम पर्णाद होत भया; वह तौ एकांत जाइ कारि तप करने लगा; परंतु द्वीपविषे तिसका नाम पर्णाद प्रसिद्ध भया; अरु तप यही कि; चित्तकी वृत्तिके आत्मपदविषे जोडता भया; सहस्र वर्षपर्यंत तप किया, तब अभ्यासकारि चित्त स्थित भयेते केवल ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्व हृदयकी निर्मलताकारि प्रकाशि आया, तब सब तप्तता मिटि गई, रागद्वेषते रहित निष्क्रिय आत्मदर्शी जीवन्मुक्त होइकारि विचरने लगा, रागद्वेषते रहित हुआ, त्रिलोकीरूपी मढीविषे विचरै, सिद्धोंके स्थानोंविषे जावै सरोवरोंविषे कमलोंके निकट भँवरा हंसोंसाथ जाय मिलता है, तैसे सिद्धोंसाथ राजा जाय मिलै, ऐसे फिरता फिरता क्रांत देशविषे सुरघके स्थानोंको जाय प्राप्त भया, तब सुरघ पूर्व मित्रको देखि कारि उठि खड़ा भया, परस्पर कण्ठ लगाइकारि मिले, अरु परस्पर भावकारिकै एक आसनपर चंद्रमा अरु सूर्य जैसे बैठ गए, अरु आपसमें कुशल पूछने लगे, प्रथम परघ बोलता भया ॥ परघ उवाच ॥ हे मित्र! तेरे दर्शनते परमानंदको प्राप्त भया हौं, जैसे कोई चन्द्रमाके मंडलविषे जाय आनंदवान् होवै, तैसे आनंदवान् हुआ हौं, बहुत कालका जो वियोग होता है, तब बहुत प्रीति बढ़ती है, जैसे वृक्षको ऊपरते काटेते बहुरि बढ़ता है, तैसे प्रीति बढ़ती है ॥ हे साधो! अब मैं भी ज्ञानवान् हुआ अरु तूभी मांडव्य मुनि अरु आत्माके प्रसादकारि ज्ञानको प्राप्त भया है, हे राजन्! मेरा अभीष्ट प्रश्न है कि, अब दुःखोंते क्यों मुक्त भया है अरु विश्रामको क्यों प्राप्त भयाहै अरु आत्मपद पानेकी बडाई मेरु आदिकते भी ऊंचीहै, तिसको तू क्यों प्राप्त भया है, परम कल्याणवान् आत्मारामी क्यों हुआ है? अरु

तू रागद्वेष मलते क्यों रहित हुआ है जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है; तैसे निर्मल क्यों हुआ है ? अरु सब कार्योंको कर्त्ता समभावविषे क्यों रहता है ? अरु आधि व्याधि ताप तेरे क्यों दूर भये हैं ? अरु तेरी प्रजा भी विगतज्वर क्यों भई है ? अरु धन राज्य मालविषे भी कुशल क्यों है ? जैसे चंद्रमाकी किरणोंकारि शीतलता पसर रहती है, तैसे तेरा यश दशों दिशामें क्यों पसरि रहा है ? अरु तेरा यश ग्रामवासी क्षेत्रोंविषे अरु कुंडिया क्यों गावती हैं ? हे राजन् ! प्रजा टहलुए पुत्र कलत्र सब आधिव्याधिते क्यों रहित हुए हैं ? अरु आपातरमणीय जो विषय पदार्थ हैं, तिनविषे अब तेरी प्रीति क्यों नहीं है ? अरु तृष्णारूपी सर्पिणी तुझको अब क्यों नहीं डसती ? हे राजन् ! तुम्हारी हमारी मित्राई हुई थी सो समय पाइकारि तुम कहां रहे, हम कहाँ रहे अब बहुरि आनि हुए हैं, बड़ा आश्चर्य है, ईश्वरकी नीति जानी नहीं जाती, सुखते दुःख हो जाता है, अरु दुःख गएते सुख हो जाता है, संसारकी दिशा आगमापायी है, संयोगका वियोग होता है वियोगका संयोग होता है, तैसे तुम्हारा हमारा संयोगका वियोग हो गया था, बहुरि वियोगका संयोग आनि हुआ है, बड़ा आश्चर्य है, ईश्वरकी नीति अद्भुतरूप है ॥ सुरघ उवाच ॥ हे देव ! परमात्मा देवकी नीतिको जानि नहीं सकते, सो महागंभीर विस्मयको देनेहारी अरु दुर्ज्ञात है, तुम्हारा हमारावियोग हुआ तब दूरते दूर जाय पड़े, तुम कहां अरु हम कहां बहुरि आनि इकट्ठे भये हैं, जो देवकी नीति आश्चर्यरूप है, तुम जो मुझको कुशल पूछा, सो तुम्हारा आवनाही जो पुण्य है, तिसकारि मैं परम पावन हुआ हौं तुम्हारे दर्शनकारि पाप सब नष्ट हो जाता है, आज हमारे पुण्यका फल लगा है जो तुम्हारा दर्शन भया है, अरु जेता कछु यश संपदा है, सो सब आज प्राप्त भया है ॥ हे भगवन् ! संतोंका जो आवना है, सो मधुर अमृतकी नाईं है, जैसे अमृत झरनेते निकसता है, तैसे तुम्हारे दर्शनते अरु वचनोंकारि परमार्थरूपी अमृत स्रवता है, जिसको पाइकारि जीव निर्भयताको प्राप्त होते हैं, संतोंका मिलना परमपदके तुल्य है, सो हम परम शुद्धताको प्राप्त भए हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघपरघसमागमवर्णनं नाम षट्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ५७.

समाधिनिश्चयवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार पूर्व वृत्तांत कहा तब बहुरि परघ बोलत भया ॥ परघ उवाच ॥ हे राजन् ! जो जो समाहित-चित्त इस सगज्जालविषे कर्म करता है, सो सुखरूप होताहै, अब संकल्पते रहित जो परम विश्राम अरु परम उपशम समाधिहै, तिसविषे क्या स्थित हुआ है ॥ सुरघ उवाच ॥ हे भगवन्! तुमही कहौ कि, सब संकल्पते रहित परम उपशम समाधि किसको कहते हैं, अरु जो तुम मुझते पूछौ तौ श्रवण करौ, जो ज्ञानवान् महात्मा पुरुष हैं, सो तूष्णीं रहैं, अथवा व्यवहार करैं, वह असमाहितचित्त कदाचित् नहीं होते ॥ हे साधो ! नित्य प्रबुद्ध जिनका चित्त है, अरु जगत्के कार्य भी करते हैं, अरु आत्म-तत्त्वविषे स्थित हैं, तौ वह सर्वदा समाधिविषे स्थित हैं, अरु पद्मासन बाँधिकरि बैठते हैं, ब्रह्मअंजली हाथविषे रखते हैं, अरु चित्त आत्मपदविषे स्थित नहीं होता, अरु विश्रांतिको नहीं पाता, उनको समाधि कहां वह समाधि नहीं कहाती॥ हे भगवन्! परमार्थतत्त्वबोधहै, सो सब आशारूपी तृणोंको जलावनेहारी अग्नि है, ऐसी निराशरूप जो समाधि है, सोई समाधिहै तूष्णीं होनेका नाम समाधि नहीं ॥ हे साधो ! जिसका चित्त समाहित अरु नित्य तृप्तहै, सदा शांतरूपहै, अरु यथा भूतार्थ है, अर्थ यह कि, यथार्थ ज्यौंका त्यौं ज्ञानहुआहै, अरु तिसीविषे निश्चय है, सो समाधि कहाती है, तूष्णीं होनेका नाम समाधि नहीं जिसके हृदयविषे संसाररूप सत्यताका क्षोभ नहीं, निरहंकार है, अरु अनउदयही उदय है, सो पुरुष समाधिविषे कहाता है, ऐसा जो बुद्धिमान् है, सो मेरुते भी अधिक स्थित है ॥ हे साधो ! जो पुरुष निश्चित्त है, ग्रहणत्यागते जिसकी बुद्धि निवृत्त भई है, अरु पूर्ण आत्मतत्त्वही भासता है, अरु व्यवहार भी करता दृष्ट आता है, तौ भी तिसको समाधि कही है, जिसका चित्त एक क्षण भी आत्मतत्त्वविषे स्थित होता है, तिसकी अत्यंत समाधि हो जाती है, क्षणक्षण बढती जाती है, निवृत्त नहीं होती, जैसे अमृतके

पान कियेते अमृतकी तृष्णा बढती जाती है, तैसे एक क्षणकी समाधि बढती जाती है जैसे, सूर्यके उदय हुएते सब किसीको दिन भासता है, तैसे ज्ञानवान्को सब आत्मतत्त्व भासता है, इतर कदाचित् नहीं भासता है, जैसे नदीका प्रवाह किसीते रोका नहीं जाता, तैसे ज्ञानवान्की आत्मदृष्टि किसीते रोकी नहीं जाती, जैसे कालकी गति कालको एक क्षण भी विस्मरण नहीं होती, तैसे ज्ञानवान्की आत्मदृष्टि विस्मरण नहीं होती जैसे पवन चलते ठहरतेको अपना पवनभाव विस्मरण नहीं होता, तैसे ज्ञानवान्को चिन्मात्रतत्त्वका विस्मरण नहीं होता, जैसे सत् शब्दविना कोऊ पदार्थ सिद्ध नहीं होता, तैसे ज्ञानवान्को आत्माविना कोऊ पदार्थ नहीं भासता जिस ओर ज्ञानवान्की दृष्टि जाती है, तहां अपना आप भासता है, जैसे दर्पणोंके मंदिरविषे सर्व ओर अपना मुख भासता है, तैसे ज्ञानवान्को सर्व ओर अपना आपही भासता है, जैसे उष्णता विना अग्नि नहीं, शीतलता विना बर्फ नहीं, श्यामता विना काजर नहीं पायाजाता तैसे आत्मा विना जगत् नहीं पायाजाता ॥ हे साधो ! जिसको आत्माते भिन्न पदार्थ कोई नहीं भासता, तिसको उत्थान कैसे होवे, सर्वदा मैं बोधरूप हौं, अरु सर्वदा निर्मल हौं, सर्वदा सर्वात्मा समाहितचित्त हौं, ताते उत्थान मुझको कदाचित् नहीं, आत्माते भिन्न मुझको कोऊ नहीं भासता, सर्व प्रकार आत्मतत्त्व मुझको भासता है ॥ हे साधो ! आत्मतत्त्व सर्वदा जानने योग्य है, सर्वदा और सर्व प्रकार आत्मा स्थित है, बहुरि समाधि अरु उत्थान कैसे होवे ? जिसको कार्यकारणविषे विभागकलना नहीं फुरती, अरु आत्मतत्त्वविषे स्थितहै, तिसको समाहित असमाहित क्या कहिये ? समाधि अरु उत्थानका वास्तव कछु भेद नहीं, मिथ्या है, आत्मतत्त्व सदा अपने आपविषे स्थित है, द्वैत भेद कछु नहीं, तौ समाहित असमाहित क्या कहिये ॥ इतिश्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे समाधिनिश्चयवर्णनं नाम सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ५८.

सुरघपरघनिश्चयवर्णनम्।

सुरघ उवाच ॥ हे राजन्! निश्चय करिकै अब तू जागा है अरु परमपदको प्राप्त भया है, अरु पूर्णमासीके चंद्रमावत् शीतल अंतःकरण भया है, अरु परम शोभाकरि मुख शोभित भया है, अरु ब्रह्मलक्ष्मीकरि संपन्न परमानंदसों पूर्ण भया है, शीतल अरु स्निग्ध तेरा हृदयकमल विराजमान है, निर्मल विस्तृत गंभीरता तेरी मुझको प्रगट भासती है, अरु निर्मल शरत्कालके आकाशवत् तेरा हृदय भासता है, अहंकाररूपी मेघ तेरा नष्ट भयाहै ॥ हे राजन्! अब तुझको सर्वत्र स्वस्थता अरु सर्वथा संतुष्टता है, अरु किसीविषे राग नहीं, वीतराग होइकरि विराजता है सार असार को तुझने भली प्रकार जाना है, अरु जानिकरि असार संसाररूपी समुद्रते पारको प्राप्त भयाहै, अरु महाबोधको ज्योंका त्यों जानिकरि अखंड स्थिति पाई है, भाव अभाव पदार्थ दोनोंको तू जानत भया है, सम असम जो जगत्के पदार्थ हैं, तिनते मुक्त भया है, मुदित शांत आशय हुआ है, इष्ट अनिष्ट ग्रहण त्याग तेरा निवृत्त भया है, राग द्वेष तृष्णारूपी मेघ बादलोंते रहित निर्मल आकाशवत् तू शोभता है, अरु अपने आपकरि तृप्त भया है, कछु इच्छा तुझको नहीं ॥ सुरघ उवाच ॥ हे मुनीश्वर! इस जगत् विषे ग्रहण करने योग्य वस्तु कोई नहीं जेते कछु दृश्य पदार्थ हैं, सो सब आभासरूप हैं, तौ किसको ग्रहण करिये अरु जो कहिये, ग्रहण करने योग्य नहीं तौ त्याग करिये, सो आभासरूप पदार्थोंका त्याग क्या करिये, अरु ग्रहण क्या करिये काहेते जो है नहीं, सब तुच्छ अतुच्छ पदार्थ हैं, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है, सो जलाभासका कौन अंग ग्रहण करिये, अरु कौन अंग त्याग करिये, तैसे यह जगत् भी है ॥ हे मुनीश्वर! जगत्के तुच्छ पदार्थ हैं, एक अतुच्छ हैं, जो थोड़े कालविषे नष्ट हो जाते हैं, सो तुच्छ हैं, अरु चिरकालपर्यंत रहते हैं, सो अतुच्छ हैं, परंतु दोनों कालते उपजे हैं, अब मैं अकाल स्वरूपको देखा है, तब दोनों तुल्य हो

गए हैं, बहुरि इच्छा किसकी करौं, जो है, कछु नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! जो रमणीय पदार्थ जानते हैं, तिसकी इच्छा करते हैं, सो त्रिलोकी-विषे रमणीय पदार्थ कोऊ नहीं, सब तुच्छ नाशरूप हैं, अरु जीवोंको जो बड़े पदार्थ भासते हैं, सो अविचारकारि भासते हैं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध जेते इंद्रियोंके विषय हैं, सो सब असाररूप हैं, स्त्रीको बडा पदार्थ जानते हैं; सो देखने मात्र सुंदर है, अंतरते रक्त मांस विष्ठा मूत्रका थैला बना हुआहै, इसविषे सार कछु नहीं, अरु पर्वत बड़े पदार्थ हैं, सो पत्थर बंटे हैं, अरु समुद्र है सो जल है, वनस्पती काष्ठ पत्र हैं, इनते आदि जो कछु पदार्थ हैं, सो आपातरमणीय हैं, सो विचारविना सुंदर भासते हैं, इनकी जो इच्छा करते हैं, सो अपने नाशके निमित्त करते हैं, जैसे पतंग दीपककी इच्छा करताहै, सो अपने नाशके निमित्त करता है, जैसे हरिण नाद श्रवणकी इच्छा करता है, सो नाशको प्राप्त होता है, तैसे जो विषयोंकी तृष्णा करते हैं सो अपने नाशको करते हैं, ताते विचारते रहित जो अज्ञानी है, सो पदार्थको रमणीय जानिकारि अपने नाशके निमित्त इच्छा करता है, अरु जो समदर्शी ज्ञानवान् हैं, सो अरमणीय जानिकारि किसी जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं करते, जैसे सूर्य उदय हुएते अंधकारका अभाव होता है, ताते जब पदार्थोंका राग उठि गया, तब तृष्णा किसविषे रहै ॥ हे साधो ! राग द्वेष इच्छा ग्रहण त्याग जेते कछु विकार हैं, तिन सबते रहित शुद्ध आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, बहुत कहनेकारि क्या है, जिस पुरुषके मनते वासना नष्ट होगई है, सो उपशमवान् कल्याणमूर्ति परमपदको प्राप्त हुआ है, अरु संसारसमुद्रको तरि गया है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सुखपरघनिश्चयवर्णनं नाम अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९.

कारणोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार सुरघ अरु परघ जगत्को भ्रम-रूप विचारते भये, विचार कारिके परस्पर गुरु जानिकारि पूजते भये, बहुरि

परच चलता रहा ॥ हे रामजी ! इसका परस्पर संवाद तुझको श्रवण कराया है, सो परमबोधका कारण है, इसविचारके क्रमकरि बोधकी प्राप्ति होती है, तीक्ष्ण बोधकरिकै जब विचार करैगा, तब अहंकाररूपी बादलका अभाव हो जावैगा, अरु शुद्ध हृदयरूपी आकाशविषे आत्मरूपी सूर्य प्रकाश हो जावैगा, तातें परमपदके लाभके निमित्त अहंकाररूपी बादलके अभावका यत्न करो, सो आत्मा सत्य है, सब आनंदकी संपदाहै, चिदाकाशहै, तिसविषे स्थिति पावैगा ॥ हे रामजी ! जो पुरुष नित्य अंतर्मुखी अध्यात्ममयहै, अरु नित्यचिदानंदविषे चित्तको जोडता है, सो सदा सुखी है, तिसको शोक कदाचित् नहीं होता, जो पुरुष आत्मपदविषे स्थित हुआ है; सो बडे व्यवहार करै, अरु रागद्वेषसहित दृष्ट आवै; तौ भी तिसको कछु कलंक प्राप्त नहीं होता, जैसे कमल जलविषे दृष्ट आता है, तौ भी ऊंचा रहता है, जल उसको स्पर्श नहीं करता, तैसे ज्ञानवान्को व्यवहारका रागद्वेष अंतर स्पर्श नहीं करता ॥ हे रामजी ! जिसका अंतर मन शांत हुआ है, तिसको संसारके इष्टअनिष्ट पदार्थ चलाय नहीं सकते, जैसे सिंहको मृग दुःख दे नहीं सकते तैसे ज्ञानवान्को जगत्के पदार्थ दुःख नहीं दे सकते, जिस पुरुषको आत्मानंद प्राप्त भयाहै, तिसको विषयोंकी तृष्णा नहीं रहती, विषयोंके निमित्त दीन कदाचित् नहीं होता, जैसे जो पुरुष नंदनवनविषे स्थित भया है, सो कंकरेके वृक्षकी इच्छा नहीं करता; तैसे ज्ञानवान् जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं करता ॥ हे रामजी ! जिस जिस पुरुषने जगत्को अविद्यारूप जानिकरि त्याग कियाहै, तिसके चित्तको जगत्के पदार्थ दुःख दे नहीं सकते, जैसे विरक्तचित्त पुरुषकी स्त्री मरि जावै, तब उसको दुःख नहीं होता, सो ज्ञानवान्के चित्तविषे भोगोंकी दीनता नहीं उपजती, जैसे नंदनवनविषे कंटकका वृक्ष नहीं उपजता जिस पुरुषको आत्मबोध हुआ है; अरु संसारका कारण मोह निवृत्त भया है, सो जगत्के कार्यकर्त्ता दृष्ट आता है, परंतु उसको स्पर्श नहीं करता जैसे आकाशविषे अंधकार दृष्ट आता है, परंतु आकाशको स्पर्श नहीं करता ॥ हे रामजी ! अविद्याके निवृत्तका कारण विद्या है, और किसी

उपायते निवृत्त नहीं होती, जैसे प्रकाशविना तम निवृत्त नहीं होता, तैसे विचारविना अविद्या निवृत्ति नहीं होती, अविचारका नाम अविद्या है, अरु विचारका नाम विद्या है, जब अविद्या नष्ट होवैगी, तब विषयभोग स्वाद न देवैंगे आत्मानंदकारि संतुष्टमान रहैगा॥ हे रामजी ! ज्ञानवान्को विचारते इंद्रियोंके व्यवहार अंध नहीं कर सकते जैसे जलविषे मच्छीरहतीहै, तिसकोजल अंधनहीं कर सकता और आप अंध रहता है, तैसे ज्ञानवान् व्यवहारविषे भी अंध नहीं होता और जीव अंध हो जाते हैं;जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होताहै, तब अज्ञानरूपी रात्रि निवृत्त हो जाती है, अरु चित्त परमानंदको प्राप्त होता है, अरु रागद्वेषरूपी निशाचर नष्ट हो जाता है, तब बहुरि मोहको प्राप्त नहीं होता जिसके हृदय आकाशविषे आत्मज्ञानरूपी सूर्य उदय हुआ है, तिसका जन्म अरु कुल सफल होताहै, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अपने अमृतको पाइकारि अपनेविषे शीतल होता है, तैसे जो पुरुष आत्मचिंतनाविषे अभ्यास करता है, सो शांतिको प्राप्त होता है॥ हे रामजी ! बुद्धि भी वही है, श्रेष्ठ दिन भी वही, अरु मृत्युभी वहीहै, अरु शास्त्रभी वही है, जिसकरि संसारते वैराग्य उपजै अरु आत्मतत्त्वकी चिंतना उपजै,जब आत्मपदको पाता है, तब इसका सब क्लेश मिटि जाताहै,अरु जिसको आत्म चिंतनाविषे रुचि नहीं, सो महाअभागी है, चिरपर्यंत कष्ट पावैगा ॥ जन्मरूपी जंगलका वृक्ष होवैगा॥ हे रामजी ! जीवरूपी बलध है, अरु अनेक आशारूपी फांसियोंकारि बांधाहै, अरु जरा अवस्थारूपी पत्थरोंके मार्गकारिकै, जर्जरीभावहोता है. भोगरूपीतलावडी गर्त्तविषे गिराहै कर्मरूपी भारकोलिये जन्मरूपी जंगलविषे भटकता हुआ कर्म चीकडविषे फँसा हुआ रागद्वेषरूपी मच्छरोंकारि दुःखी होताहै, स्नेहरूपी रथको पकडि खैंचता है, अरु पुत्र स्त्रियादिककी ममतारूपी चीकडविषे गोते खाताहै; अरु मोहसंसाररूपी मार्गविषे कर्मरूपीरथकेसाथजोडता है, अरु ऊपरते, अज्ञानरूपी तप्तताकारि जलता है, संतजन अरु सच्छास्त्ररूपी वृक्षकी छायाको नहीं पाता ॥ हे रामजी ! जीवरूपी बलध ऐसा है, सो निकसनेका यत्न करै, जब तत्त्वका अवलोकन करै, तब चित्तभ्रम नष्ट हो

जावै ॥ हे रामजी ! संसाररूपी समुद्र है, तिसके तरणेका उपाय सुन, महापुरुष संतजन है, सो मलाह है, अरु तिसकी युक्तिरूपी जहाज होवै, तिसकरि संसाररूपी समुद्रको तरि जावेगा, और उपाय कोई नहीं, यह परम उपाय है, जिस देशविषे संतजनरूपी वृक्ष नहीं, जिन की फलोंसहित शीतल छाया है नहीं, तिस निर्जन देश मरुस्थलविषे एक दिन भी न रहिए ॥ हे रामजी ! संतजनरूपी कैसे वृक्ष हैं, स्निग्ध अरु शीतल वचनरूपी जिनके पत्र हैं, अरु उनका प्रसन्न होना सुंदर फूल हैं; अरु उनका निश्चय उपदेशरूपी फल हैं, जब यह पुरुष तिनके निकट जावै, तब महामोहरूपी तप्तताते छूटेगा, अरु शांतिको प्राप्त होवैगा, अरु तिनको पाइकरि तृप्त होवैगा, अरु तिन फलोंको पाइकरि अघावैगा, सब दुःखोंते मुक्त होवैगा ॥ हे रामजी ! अपना आपही मित्र है, अरु अपना आपही शत्रु है, अपने आपको जन्मरूपी चीकड़विषे न डारै, जो देहविषे अहंभाननाकरि विषयोंकी तृष्णा करता है सो अपनाआपहीनाशकरताहै, अरु जो देहभावको त्यागिकरि आत्मअभ्यास करता है, तब अपना आप उद्धारकरता है, सो अपना आपही मित्र है, अरु जोआपको संसारसमुद्रविषे डारताहै, सो अपना आपही शत्रु है ॥ हे रामजी ! प्रथम विचार यह करि देखै कि जगत् क्या है, अरु कैसे उत्पन्न भया है, अरु कैसे निवृत्त होवैगा, अरु मैं कौन हौं अरु सत्य क्या है, अरु असत्य क्या है; ऐसे विचारकरि जो सत्यहै तिसको अंगीकार करै, अरु जो असत्य है, तिसका त्याग करै ॥ हे रामजी ! न इसका धन कल्याण करताहै, न मित्र बांधव न शास्त्र कल्याण करते हैं, अपना उद्धार आपही करता है, ताते अपने मन साथ मित्राई करै, दृढ वैराग्य अरु अभ्यास करै तब संसार कष्टते छूटै, जब वैराग्य अभ्यासकरि तत्त्वके अवलोकनरूपी वेड़ी करै, तब संसारसमुद्रते तरि जाता है ॥ हे रामजी ! जीवरूपी हस्ती है; अरु जन्मरूपी गर्त्तविषे गिरा हुआ है, अरु तृष्णा अहंकाररूपी जंजीरोंसे बांधाहै, अरु कामनारूपी मदकरि उन्मत्त है, जब तिनते छूटै, तब मुक्त होवै ॥ हे रामजी ! हृदयरूपी नेत्रोंविषे अनात्मा अभिमानरूपी मल रक्त हो गया है, जब वि-

चाररूपी औषधीकरि तिसको दूर करिए, तब आत्मरूपी सूर्यका दर्शन होवै ॥ हे रामजी! और उपाय कोई न करै, तौ एक उपाय करै जो देहको काष्ठ लोष्टवत् जानिकरि इसका अभिमान त्यागै, जब अहं अभिमान-रूपी बादल नष्ट होवैगा, तब आपही आत्मारूपी सूर्य प्रकाश आवैगा, जब अहंकाररूपी बादल लय होवैगा, तब आत्मतत्त्वरूपी सूर्य भासैगा, सो परमानंदस्वरूप है, सुषुप्तिते मौन अंकुर है; केवल अद्वैत तत्त्व है, वाणी करि कहा नहीं जाता, अनुभवकरिकै आपही जानाजाता है, हे रामजी! सब जगत् अनंत आत्मा है; जब चित्तका दृढ परिणाम उस-विषे होवै, तब स्थावरजंगमरूप जगत्विषे वही दिव्य देव भासैगा; और वासना सब निवृत्त हो जावैंगी, केवल परमानन्द आत्मतत्त्व अनु-भवकरि दिखाई देवैगा, सो स्वरूप पूर्ण अद्वैत है, और सब जगत्को त्यागिकरि तिसके पानेका यत्न करौ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्र-करणे कारणोपदेशवर्णनं नाम एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः ६०.

भासविलासवृत्तांतवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मनकरि मनको छेदौ; अरु अहं मम भावको त्यागौ, जबलग मन नष्ट नहीं होता तबलग जगत्के दुःख निवृत्त नहीं होते जैसे मूर्तिका सूर्य मूर्तिके नष्ट हुएविना अस्त नहीं होता, जब मूर्ति नष्ट होवै तब सूर्यका आकार दूर हो जावै, तैसे जब मन नष्ट होवै, तब संसारके दुःख नष्ट हो जावैंगे, अन्यथा नहीं होते ॥ हे रामजी! जैसे प्रलयकालविषे अनंत दुःख होतेहैं, तैसे मनके होने-करि अनंत दुःख होते हैं, जैसे मेघके वर्षणेकरि नदी बढ़ती जाती है, तैसे मनके जागेते आपदा बढ़ती जाती है, इसही पर पुरातन इतिहास मुनीश्वर कहते हैं सो परस्पर सुहृदोंका है, तू श्रवण कर ॥ हे रामजी! सह्याचल पर्वतोंविषे बडा पर्वत है, तिस ऊपर फूलोंके समूह हैं, अरु नानाप्रकारके वृक्ष हैं अरु जलके झरने चलते हैं, मोतियोंके स्थान अरु स्वर्णके शिखर हैं कहूं देवताके स्थान हैं पक्षी शब्द करते हैं, अरु

तले क्रांत रहते हैं, ऊपर सिद्ध देवता विद्याधर रहतेहैं, पीठविषे मनुष्य रहते हैं, नीचे नाग रहते हैं, मानौ संपूर्ण जगत्का गृह यही है, तिसके उत्तर दिशा सुंदर तलाव है, वृक्ष फूलोंकारि पूर्ण है, महासुन्दर रचना स्वर्ग जैसी उपमा तिनकी, तहां अत्रि नाम ऋषीश्वर रहताथा, साधुओंके श्रम दूर करनेहारा था, तिसके आश्रमकेपास दो तपस्वी आनि रहे, जैसे आकाशविषे बृहस्पति अरु शुक्र आये हैं, तैसे यह दोनों रहैं तिन दोनोंके गृहविषे दो पुत्र महासुन्दर उत्पन्न भए, जैसे कमल उत्पन्न होवैं, तैसे उत्पन्न भए,एकका नाम भास,एकका नाम विलास भया, दोनों क्रमकारि बडे हुए जैसे अंगुरीके दोनों पत्र हैं, सो बढते हैं, तैसे बढ़ते जावैं, अरु परस्पर तिनकी प्रीति बहुत बढ़ी अरु इकट्ठेही रहैं, जैसे तिल अरु तेल इकट्ठेही रहते हैं, जैसे फूल अरु सुगंधि इकट्ठे रहते हैं, जैसे स्त्री अरु पुरुषकी प्रीति आपसमें होतीहै, तैसे उनकी प्रीति बढ़ी. अरु देखनेमात्र तौ दो मूर्ति दृष्ट आवैं, परंतु मानौ एकही हैं, स्नान आदिक क्रिया भी तिनकी एक समान, मानसी क्रिया भी एक समान, अरु महासुन्दर प्रकाशवान्, जैसे चंद्रमा अरु सूर्य हैं, तैसे जब केताक काल व्यतीत भया, तब तिनके माता पिता शरीरको त्यागिकारि स्वर्गको गये, तिनके वियोगते दोनों शोकवान् भए, जैसे कमलकी कांति जलविना जाती रहै, तैसे उनके मुखकी कांति कुम्हलाय गई, फेरि इनके मरनेकारि क्रिया सब करत भए, पाछे उनके गुण स्मरण करिकै विलाप कर महाशोकवान् होवैं, महापुरुष भी लोकमर्यादा लंघते नहीं ॥ हे रामजी ! इसप्रकार शोककारि उनका शरीर कृश हो गया ॥ इति श्रीयोगवा० उपशमप्रकरणे भासविलासवृत्तांतवर्णनं नाम षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमः सर्गः ६१.

अनित्यताप्रकरणम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे उजाड वनका वृक्ष जलविना सूख जाहै, तैसे उनका शरीर सूख गया,तब दोनों विगतज्वर होइकारि विचरने लगे, जैसे यूथ समूहसों विछुरा हरिण शोकवान् होताहै, तैसे आपसमें

बिछुरि गए अरु शोकको प्राप्तभए; एकले एकले फिरने लगे, निर्मल ज्ञान तिनको प्राप्त नथा, सो जब केताककाल व्यतीत भया तब बहुरि आय मिले अरु विलास कहत भये ॥ हे भाई ! मेरे हृदयको आनंद देनेहारे अमृतके समुद्र जीवनेरूपी जो वृक्ष है, तिसका फल सुखहै, सो तू एताकाल क्या सुखसों रहाहै अरु तेरा मेरा वियोग होगया; तब तू कैसी क्रिया करत भया, क्या तुझने कछु निर्मल चित्त किया है, क्या तुझने अब आत्मपद पाया है अरु क्या तेरी बुद्धि शोकते रहितहै अब तुमको क्या विद्या फली है क्या तू अब कुशलरूप हुआ है ॥ भास उवाच ॥ हे साधो ! अब हमको कुशल भया है, जो तेरा दर्शन भया है, अरु जो जगत्‌विषे कहौ तौ कुशल कहां है, इस संसारविषे स्थित हुए हमको सुख अरु कुशल कहां है, हे साधो ! जबलग ज्ञेय परमात्मतत्त्वको नहीं पाया, अरु जबलग चित्तभूमिका क्षीण नहीं भई, अरु जबलग संसारसमुद्रको नहीं तरे, तबलग कुशल कहां है, जबलग चित्तसों दुःख निवृत्त नहीं होता, तबलग चित्तकी भूमिका नष्ट नहीं होती, जबलग संसारसमुद्रते पारको प्राप्त नहीं भया, तबलग हमको सुख कहां है जबलग चित्तरूपी क्षेत्रविषे आशारूपी कंटकोंकी वल्ली बढती जाती है, सो आत्मविचाररूपी रात्रिसाथ नहीं काटी, तबलग हमको कुशल कहां, जबलग आत्मज्ञान उदय नहीं भया, तबलग हमको कुशल कहां है ॥ हे साधो ! संसाररूपी विषूचिका रोग है, आत्मरूपी औषधविना दूर नहीं होता, सब जीव नित्य वही क्रिया करते हैं, जिसकारि दुःखकी प्राप्ति होवै है, सुखको नहीं प्राप्त होते, देहरूपी एक वृक्ष हैं, तिसविषे बाल अवस्था रूपी पत्र हैं, यौवन अवस्थारूपी फूल है, वृद्ध अवस्थारूपी फल हैं, सो मृत्युके मुखमें जाय पड़ता है, उपजता है, बहुरि नष्ट होता है, यह सुख जो लवाकार है, अरु दुःख जिसका स्थावर दीर्घते दीर्घ है, ऐसे जो शुभ अशुभ आरंभ हैं, तिनविषे इनको दिनरात्रि व्यतीत होते हैं ॥ हे साधो ! चित्तरूपी हस्ती है, सो वैराग्यरूपी सांकरविना दूरते दूर तृष्णारूपी हस्तिनीके पाछे चला जाता है, जैसे इल्लपक्षी मांसकी ओर चला जाता है, तैसे चित्त विषयोंकी ओर धावता है, आत्मारूपी जो

चिंतामणि है, तिसकी ओर नहीं जाता, अहंकाररूपी जो इल्ल है सो देहादिकरूपी मांसको धावताहै, अरु सुखरूपी जो कमल है, अपमानरूपी धूलकरि धूसर हो जाता है, अरु योगरूपी बर्फकरि नष्ट हो जाता है॥ हे साधो! देहरूपी कूपविषे गिरा है, भोगरूपी तिसविषे सर्प है, अरु आशारूपी कंटक है; तृष्णारूपी जलहै, तिसविषे यह दुःख पाता है॥ हे साधो! नानाप्रकारके रंगरंजनारूपी जिसविषे रंग हैं, अरु जिसविषे तृष्णारूपी चंचलताहै ऐसे चैत्य दृश्यविषे मग्न है चित्तरूपी एक ध्वजा है, सो कालरूपी चंचलता वायुकरि भासती है, चित्तरूपी समुद्र है, अरु चिंतारूपी तिसविषे घुमर घेर हैं, जीवरूपी तृण तिसविषे आय कष्ट पाता है, अरु बुद्धिरूपी पक्षिणी है, वासनारूपी जालविषे कष्ट पाती है, यह मैंने किया है, यह करता हौं, यह करौंगा, इसी वासनारूपी जालविषे बुद्धिरूपी पक्षिणी कष्ट पाती है, एक क्षण भी विश्रामवान् नहीं होती॥ हे भाई! यह चित्तरूपी कमल है इसको रागद्वेषरूपी हस्ती चूर्ण करता है, कि यह मेरा सुहृद् है, यह मेरा शत्रु है, अहं मम इसको मारता है, शुद्ध आत्मरूपको त्यागिकरि देहादिक अनात्मरूपविषे अहंभाव करता है, अरु दीनताको प्राप्त होता है, जैसे राज्यते रहित राजा कष्ट पाता है, तैसे आत्मभावते रहित कष्ट पाताहै, देहाभिमान करिकै जन्ममरणके दुःखोंको देखताहै, जब देहाभिमानका त्याग करै, तब कुशल होवै अन्यथा कुशल नहीं होता॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे अनित्यताप्रकरणं नामएकषष्टितमः सर्गः॥६१॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२.

अन्तरासंगविचारवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इसप्रकार उनने परस्पर कुशलका प्रश्न किया, जब केताक काल व्यतीत भया, तब अभ्यासद्वारा उनको निर्मल ज्ञान प्राप्त भया, अरु मोक्षपदको प्राप्त हुये, ताते हे रामजी! ज्ञानते और मार्ग कल्याणनिमित्त कोऊ नहीं, जिसका चित्त आशारूपी

फाँसीसे बाँधा हुआ है, सो संसारसमुद्रके पार होनेको समर्थ नहीं होता, ताते जीव संसारसमुद्रविषे गोते खाता है, अरु ज्ञानवान् शीघ्रही तरि जाता है, जैसे गोपद लंघनेविषे सुगम होता है, अरु जिस पक्षीके पक्ष टूटे हैं, सो समुद्रको नहीं तर सकता, बीचमेंही गिरिकै गोते खाता है, अरु पंखोंसे गरुड शीघ्रही लंघि जाता है, तैसे जिन पुरुषोंके वैराग्य अरु अभ्यास-रूपी पंख टूटे हैं, सो संसारसमुद्रते पार नहीं हो सकते अरु जिन पुरुषोंके वैराग्य अभ्यासरूपी पंख हैं ऐसे ज्ञानवान् शीघ्रही तरि जाते हैं ॥ हे राम-जी ! जो देहते अतीत महात्मा पुरुष चिन्मात्रतत्त्वविषे स्थित हुए हैं, सो ऊंचे होकारि देखते हैं, अरु अपने देहको देखि हँसते हैं जैसे सूर्य जनताको देखि हँसता है, अर्थ यह कि, जगत्की क्रियाते निर्लेप रहता है, जैसे रथके टूटेते रथ वायुको खेद कछु नहीं; तैसे देहके दुःखकारि ज्ञानवान्को खेद कदाचित् नहीं होता, अरु मनके क्षोभकारि भी आत्मतत्त्वविषे कछु क्षोभ नहीं होता, जैसे तरंगके ऊपर धूलि परती है, तिसकारि समुद्रको कछु लेप नहीं होता, तैसे मनके दुःखकारि आत्माको क्षोभ नहीं होता ॥ हे रामजी ! देह अरु आत्माका संयोग कछु नहीं, जैसे जल अरु हंसका संयोग कछु नहीं, जैसे जल अरु बेडीका संबंध कछु नहीं, तैसे देह अरु आत्माका संबंध कछु नहीं, जैसे पहाड़ समुद्रका संबंध कछु नहीं, जैसे जल अरु पत्थर अरु काष्ठ एक ठौर रहते हैं, परंतु संबंध कछु नहीं, जैसे जल अरु बेडी संघट्ट होता है, तौ जलकणके उठते हैं. तैसे देह अरु आत्माके संयोगते चित्तवृत्ति फुरती है ॥ हे रामजी ! इसको दुःख जो होता है, सो संगकारि होता है, जहां अहं मम अभिमान होता है, तहां दुःख भी होता है, अरु अहं ममका अभिमान नहीं तहां दुःख भी कछु नहीं, अरु मच्छीको जलविषे ममत्व होता है, तिसके वियोगकारि कष्ट पाती है, तैसे जिस पुरुषको देहविषे अहं ममभाव है, सो बड़ा कष्ट पाता है, अरु जिसको देहविषे अभिमान नहीं, तिसको दुःख भी कछु नहीं ॥ हे रामजी ! ज्यों ज्यों मनते संसर्गता निवृत्त होती है, त्यों त्यों भोग-प्रवाह कष्ट नहीं देते. जैसे जल अरु पत्थरको कष्ट नहीं होता, जैसे दर्पण-विषे पर्वतका प्रतिबिंब होता है, सो दर्पणको प्रतिबिंबका संग नहीं होता

अरु कष्ट भी नहीं होता, तैसे जब देहविषे संसर्गभाव उठि जावै, तब कष्ट कोई नहीं होता, जैसे दर्पणको कछु नहीं होता, तैसे आत्मा अरु जगत्की क्रिया है ॥ हे रामजी ! सर्वथा संवित्मात्र आत्मतत्त्व स्थित है, सो शुद्ध है, द्वैत शब्दके फुरणेते रहित है, जो तिसविषे स्थितहै, तिसको द्वैत शब्द नहीं फुरता, अरु जो अज्ञानी है, तिसको द्वैतकलना उठती है ॥ हे रामजी ! यह सब जीव अदुःखरूप हैं, परंतु अज्ञानभ्रमकरि आपको दुःखी जानते हैं, जैसे स्थाणुविषे चोरभावना अविचारकरि होती है, तैसे आत्माविषे दुःखकी भावना अविचारकरि होती है ॥ यह पुरुष अशब्द रूप है, परंतु कलनाके वशते आपको संबंधी जानता है, जैसे स्वप्न विषे अंगना बंधन करती है, जैसे स्थानविषे वेताल भासता है, अरु भयको प्राप्त करता है, तैसे अपनी कल्पनाकरि बंधमान होता है ॥ हे रामजी ! देह अरु आत्माका संबध असत्य है, जैसे जल अरु बेडीका संबंध असत्य है, जब जलका अभाव होवै, तब बेडीको चिंता कछु नहीं होती अरु बेडीका अभाव हो जावै तौ जलको कछु चिंता नहीं होती ताते असत्य संबंध है, तैसे आत्मा अरु देहका संबंध असत्य है, जब ऐसे जानकरि अंतर संगते रहित होवै, तब देहका दुःख कछु नहीं लगता, देहके दुःखविषे आपको दुःखी मानना, देहविषे अहंभावनाकरि आत्मा दुःखी होता है; जब देहविषे अभिमानको त्यागि देवै, तब सुखी होवै, ऐसे बुद्धीश्वर कहते हैं, जैसे जल अरु पत्थर इकट्ठे रहते हैं, परंतु अंतरसंगका अभाव है, ताते दुःख कछु नहीं लगता, तैसे अंतरते संगरहित होवै तब देह इंद्रियोंके होते भी दुःखका स्पर्श कछु न होवै निर्दुःख पदविषे प्राप्त होवै ॥ हे रामजी ! जिसको देहविषे आत्माभिमान है, तिसको जन्म मरण दुःखरूप संसार है, जैसे बीजते वृक्ष उत्पन्न होता है, तैसे देहाभिमानते सुखदुःखरूप संसार उत्पन्न होता है, अरु संसारसमुद्र-विषे डूबता है, अरु जो अंतरसंगते रहित होता है, सो संसारसमुद्रके पारको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! जिसके अंतर देहाभिमान है, तिसके चित्तरूपी वृक्षविषे अनेक मोहरूपी शाखा उत्पन्न होती हैं अरु जो अंतर संगते रहित है, तिसका मोह लीन हो जाता है, वह चित्त लीन कहाता है,

जिसका चित्त देहादिकोंविषे बंधमान है, तिसको नानाप्रकारका भ्रमरूप जगत् भासता है, अरु जिसका चित्त देहादिकोंविषे बंधमान नहीं, सो एक आत्मभावको देखता है, जैसे टूटी आरसीविषे अनेक प्रतिबिंब भासते हैं, अरु सारी एकही प्रतिबिंबको ग्रहण करती है, तैसे संशयित चित्तविषे नानाप्रकारका जगत् भासता है. अरु शुद्धचित्तविषे एक आत्मा भासता है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष व्यवहार करता, अरु संगते रहित है, ऐसे जो निर्मल पुरुष हैं, सो संसारते मुक्त हैं, अरु जो सर्व व्यवहारको त्यागि बैठा है अरु तप भी करता है, अरु अंतर चित्त आसक्तहै, सो बंधनमें है अरु जो अंतरसंगते रहित है सो मुक्त है, अरु अंतरचित्त किसी पदार्थविषे बंध है सो बंधहै, बन्ध अरु मुक्तका एताही भेदहै, अंतर असंगहै सो सर्व कार्यकर्त्ता भी अकर्ता है, जैसे नट स्वांगको धरता भी अलेप है, तैसे वह पुरुष अलेप है, अरु जो अंतर अभिमानसहित है, सो कछु नहीं करता है, तौ भी करता है, जैसे सर्व व्यवहार त्यागिकरि शयन करता है, अरु स्वप्नविषे अनेक सुख दुःख भोगता है तैसे वह सब कछु कर्त्ता है, चित्तके करनेकारि कर्त्ता है, चित्तके अकरनेकारि, अकर्ता है, शरीरकारि करना सो करना नहीं, अरु शरीरकारि अकरना सो अकरना नहीं जो ब्रह्महत्या करता है, तौ असंसक्त पुरुषको कछु पाप नहीं लगता अरु जो अश्वमेध यज्ञ करै तौ कछु पुण्य नहीं होता, जिसके चित्तते सर्व आसक्तता दूर भई है, सो पुरुष मुक्तस्वरूप है; अरु धन्य धन्य है, अरु जिसका चित्त आसक्त है, सो बंध अरु दुःखी है, जो पुरुष आसक्ततासे रहित है, सो आकाशकी नाईं निर्मल है, समभाव एक अद्वैत आत्मत्त्वविषे स्थित है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे अंतरासंगविचारो नाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३.

संसक्तविचारवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! संग किसको कहते हैं, अरु बंधरूपसंग किसको कहते हैं; अरु मोक्षरूप संग किसको कहते हैं, अरु संगबंधनोंते

मुक्त किसको कहते हैं, अरु किस उपायकरि मुक्त होता है, सो कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! देह अरु देहीका जो विभाग है, तिसका त्याग कर, अरु तिससाथ जो मिलिकरि करता है, अरु देहमात्रविषे अपना विश्वास करता है, जो एताही मात्र मैं हौं, इसको संग अरु बंध कहते हैं ॥ हे रामजी ! आत्मतत्त्व अनंत है, अरु देहमात्रविषे अहंभाव नाकरि आपको एता मान पुरुष जानता है, तिसविषे अभिमान करता है, अरु सुखकी इच्छा करता है, इसका नाम बंध अरु संग कहते हैं, अरु जिसको यह निश्चय हुआ है, कि सर्व आत्माही है, किसकी इच्छा करौं, अरु किसका त्याग करौं, इस असंगकरि जीवन्मुक्त कहाता है, अथवा न मैं हौं, न यह जगत् है, सर्व भाव अभावको त्यागिकारि अद्वैत सत्ताविषे स्थित होता है, इसका नाम जीवन्मुक्त है, न कर्मोंके त्यागकी इच्छा है, न करनेकी इच्छा है अरु अंतरते कर्तृत्वभाव नहीं इस संगका जिसने त्याग किया है, सो असंग कहाता है॥ हे रामजी ! जिसको आत्मतत्त्वविषे निश्चयहै, अरु राग द्वेष हर्ष शोकके वश नहीं होता, सो असंसर्ग कहाता है, अरु सर्व कर्मोंका फल जिसने त्याग किया है, कि मैं कछु नहीं करता, ऐसा जो मनकरि त्यागी है, सो असंसर्ग कहाता है, तिसको कोऊ कर्म बंधन नहीं करि सकता, सर्व संपदा तिसको होतीहैं, अरु जो संसक्त पुरुष कर्तृत्वभोक्तृत्वके अभिमानसहित है, तिसको अनंत दुःख उत्पन्न होते हैं, जैसे कोई गर्त्तविषे गिर पड़े, तिसविषे कंटकोंके वृक्ष होवैं, तिसकरि कष्ट पाता है, तैसे संसक्त पुरुष कष्ट पाता है, हे रामजी ! संगके वशते विस्तृत दुःखकी परंपरा उत्पन्न होती है, टोयेके वृक्षसाथ कंटक उत्पन्न होवै ॥ हे रामजी ! जैसे नासिकाविषे रसडी पाइकरि ऊंट, बैल, गंधर्व भार उठाये फिरते हैं, अरु मार खाते हैं, तैसे संसक्तपुरुष आशारूपी फांसीसाथ बांधे हुये दुःख पाते हैं, वही संसक्तताका फल ऊंटादिक भोगते हैं, जलविषे रहते हैं, शीत उष्णकरि कष्टमान होते हैं, अरु कुहाडेसाथ काटते हैं, इसप्रकार संसक्तताका फल वृक्ष भोगते हैं, पृथ्वीके छिद्रविषे कीट होते हैं; अरु अंगपीडाकरि कष्ट पाते हैं, सो संसक्तताका फल पाते हैं, और जो क्रियादिक अन्नादिक

उगते हैं, अरु दात्रीसाथ काटते हैं, सो अंतर दुःख पाते हैं, बहुरि बोता है, बहुरि काटते हैं, सो संसक्तताका फल भोगते हैं, इसप्रकार योनिको पाते हैं, अरु कष्टमान् होते हैं, सो संसक्त हैं, हरे तृणोंको हिरण खाता है, अरु वधिक इसको बाणकरि मारता है, अरु कष्टमान् होता है, जो जीव तुझको दृष्ट आते हैं, सो इसप्रकार संसक्तताकरि बांधे हुए हैं, सो संसक्तता भी दो प्रकारकी है, एक बंधः है, एक बंधन करने योग्य है, जो मूढ़ जीव हैं, अरु जो तत्त्ववेत्ता हैं, सो वंदना करने योग्य हैं ॥ हे रामजी! आत्मतत्त्वते जो गिरा है, अरु देहादिकविषे अभिमानी हुआ है, सो मूढ है, संसारविषे जन्ममरणको प्राप्त होता है, अरु जिसको आत्मतत्त्वका ज्ञान हुआ है, अरु निष्ठा है, सो वंदना करने योग्य है, तिसको बहुरि जन्म मरण संसार नहीं होता, शंख चक्र गदा पद्म जिसके हाथविषे हैं, अरु आत्मतत्त्वविषे निश्चय है, आत्मतत्त्वविषे संसक्त है, अरु तीन लोककी पालना करता है, सो वंदना करने योग्य है, अरु जो निरालंब सूर्य आकाशविषे विचरता है, अरु सदा स्वरूपनिष्ठा है, सो वंदना करने योग्य है, अरु जो महाप्रलयपर्यंत जगत्को उत्पन्न करता है, अरु सदाशिव स्वरूपविषे संसक्त है, ब्रह्मारूप होकरि विराजता है, सो वंदना करने योग्य है, अरु जो लीलाकरि स्त्रीको अर्धांग रखता है, उसके प्रेमरूपी बंधनसाथ बांधा है, अरु विभूतिको लगाता है, सदा स्वरूपविषे संसक्त है, शंकरवपुको धारिकरि स्थित है, सो वंदना करने योग्य है, इसते आदि लेकरि सिद्ध देवता विद्याधर लोकपाल जिनकी संसक्ति स्वरूपविषे है, सो मुक्तस्वरूप हैं, अरु वंदना करने योग्य हैं, अरु जो देहादिकोंविषे संसक्त है, सो बंध है, जन्म जरा मृत्युको पाता है, अरु कष्टमान होता है ॥ हे रामजी! जिनको शरीरविषे अभिमान है, अरु बाहरते उदार भी दृष्ट आता है, परंतु जब भोगोंको देखता है, तब इसप्रकार गिरता है, जैसे मांसको देखिकरि आकाशते इल्ल पखेरू गिरते हैं, तैसे वे गिरते हैं, अरु वृथा यत्न करते हैं ॥ हे रामजी! संसक्त जो जीव है, सो बांधे हुए कई देवतारूप धारी स्वर्गविषे रहते हैं, कई मनुष्यलोकविषे रहते हैं, कई सर्प

आदिक पातालविषे रहते हैं, तीनों लोकोंविषे भटकते फिरते हैं, जैसे गूलरविषे मच्छर रहते हैं, तैसे ब्रह्मांडविषे संसक्त जीव रहते हैं, अरु मिट जाते हैं, कालरूपी बालकका जीवरूपी गेन्द है, कभी अधको उछालता है; कभी ऊर्ध्वको उछालता है ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् है सो सब असत्यरूप है, मनरूपी चितेरेने संगरूपी रंगसाथ शून्य आकाशविषे देहादिक जगत् लिखा है, सो सब असत्यरूप है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु मिट जाते हैं; तैसे जीव ब्रह्मांडविषे उपजते रहते हैं, जिसका मन देहादिकविषे संसक्त है, सो तृष्णारूपी अग्निकरि तृणोंकी नाईं जलते हैं ॥ हे रामजी! जो संसक्त पुरुष हैं तिनके शरीर पानेकी कछु संख्या नहीं, मेरुके शिखरते लेकरि चरणोंपर्यंत गंगाका प्रवाह चले, तरंगोंसहित तिसके मोतियोंवत् जो लव-कणके हैं, तिनके गिननेकी संख्या होवे, परंतु संसक्त जीवके शरीर गिननेकी संख्या नहीं, अरु जेती कछु आपदा है, सो तिनको प्राप्त होती हैं, जैसे समुद्रविषे सब नदियां आय प्राप्त होती हैं, तैसे सब आपदा तिसको प्राप्त होती हैं ॥ हे रामजी! जो देह अभिमानी सदा विषयोंकी सेवना करता है, सो रौरव कालसूत्र आदिक जो नरक हैं, सो नरक अग्निकी लकड़ियां होवैंगे, जलैंगे, कष्ट पावैंगे, और जेते कछु दुःखके स्थान हैं, सो सब संसक्त जीवको प्राप्त होवैंगे, अरु जो असंग संगति चित्त हैं, तिन पुरुषोंको सब विभूति पदार्थ प्राप्त होवैंगे, जैसे वर्षाकालविषे नदियां जलकरि पूर्ण होती हैं, जैसे मानससरोवरविषे सब हंस आनि स्थित होते हैं, तैसे असंसक्तचित्त पुरुषको सब सम्पदा प्राप्त होती हैं, अरु जिस पुरुषका देहाभिमान बढ़ि जाता है, सो विषकी नाईं जान अरु जिसका देहाभिमान घटि जाता है, तिसको अमृतरूप जान, विष ज्यों ज्यों बढ़ता है, त्यों त्यों मारता है, अरु अमृत ज्यों ज्यों बढ़ता है, त्यों त्यों अमर करता है, हे रामजी! जो पुरुष देहाभिमानका त्यागकरि स्वरूपविषे संसक्त होता है, सो सुखी होता है अरु जिसको अन्तर दृश्यका संग है, तिसके यह संसक्तरूपी अंगार अंगोको जलावैगा, अरु जिसके अन्तर संग नहीं वह असंगरूपी अमृतकरि

सुखी होवैगा अरु चंद्रमाकी नाईं शीतल मुक्तरूप है, अविद्यारूपी विषूचिका रोग तिसका नष्ट हो जाता है, शांतरूप होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे संसक्तविचारो नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥६३॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ६४.

शांतसमाचारयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जो मैंने तुझको उपदेश किया हैं, तिसको विचार करि अभ्यास कर, जो सर्वकाल सर्व स्थान सर्व कर्मोंको कर्ता चित्तको देहादिकविषे संसक्ति मत कर, केवल आत्मचेतनविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! न संसक्तविषे, चित्त होवै, न चेष्टाविषे चित्त होवै, न किसी वस्तुविषे सत्य जानि चित्त होवै, न आकाशविषे, न अधविषे, न ऊर्ध्व, न दिशाविषे, न बाहर, न अंतर, चित्त होवै, न प्राणोंविषे, न उरविषे, न मूर्धा तालुविषे, न भौंहके मध्यविषे, न नासिकाविषे, न जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिविषे, न तम न प्रकाशविषे, न श्यामवर्ण, न रक्त पीत श्वेतविषे, न स्थिरविषे, न चलविषे, न आदि, न अंतविषे, न मध्यविपे, न दूर न निकटविषे, किसी पदार्थविषे न चित्तादि अंतःकरणविषे, न शब्द-स्पर्श रूप रस गंधविषे, न कलना अकलनाविषे, चित्तको लगावहु, सर्व ओरते चित्तको वर्जिकारि चेतनतत्त्वविषे विश्राम कर कछुक द्वैतको लेकारि चेतनतत्त्वका आश्रय न कर. हे रामजी! जब सर्वते निराश हुआ, अरु आत्मतत्त्वविषे स्थित हुआ, तब विगतसंग होवैगा, जीवका जीवतत्त्व चलता रहैगा, केवल चिदात्मा होकारि स्थित होवैगा, सर्व व्यवहार करै, अथवा न करै, करते भी अकर्ता होवैगा, अथवा इसका भी त्यागकारि केवल चिदानंद शांतरूप जो तत्त्व है, तिसविषे स्थित होउ; अद्वैतरूप तत्त्व स्वाभाविक भासैगा, जैसे बादलोंके दूर भये सूर्य स्वाभाविक भासि आवैगा, तैसे फुरणेते रहित चेतनतत्त्व भासि आवैगा ॥ जैसे चिंतामणि प्रकाशरूप स्वाभाविक भासि आती है, तैसे आत्मा प्रकाश स्वाभाविक भासि आवैगा, बहुरि जो कछु क्रिया करैगा, सो

फलदायक न होवैगी, जैसे कमलको जल नहीं स्पर्श करता तैसे तुझको क्रिया स्पर्श न करैगी, अरु चित्त आत्मगत निर्वाणरूप होवैगा, क्रियाकर्ता भी अकर्ता रहैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे शांतसमाचारयोगोपदेशो नाम चतुः षष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पंचषष्टितमः सर्गः ६५.

संसक्तचिकित्सावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! असंसक्त पुरुष है सो ध्यान करै, अथवा व्यवहार करै, सदा ध्यानविषे स्थित है, अरु शोकते रहित है; जैसे बाह्य क्षोभमान् दृष्ट आता है, परंतु अंतर सर्व कलनाते रहित है, वह संपूर्ण लक्ष्मीकरि शोभता है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषका चित्त चैत्यते रहित अचलचित्त है, सो विगतज्वर है, तिसको कछु दुःख स्पर्श नहीं करता जैसे जल कमलोंको स्पर्श नहीं करता, किन्तु वह औरोंको भी निर्मल करता है, जैसे निर्मली मलीन जलको निर्मल करती है, तैसे वह जनताको निर्मल करता है, अरु जो आत्मतत्त्वविषे लीन है, सो क्षोभमान् भी दृष्ट आता है, परंतु क्षोभ कदाचित् नहीं, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब क्षोभमान् दृष्ट आता है परंतु सूर्यको क्षोभ कदाचित् नहीं, तैसे ज्ञानवान्का चित्त क्षोभायमान् दृष्ट आता है, तौ भी क्षोभ कदाचित् नहीं ॥ हे रामजी ! आत्मारामी जो पुरुष है, सो बाह्य मोरके पुच्छवत् चंचल भी दृष्ट आता है, परंतु अंतर सुमेरु पर्वतकी नाईं अचल है, जिनका चित्त आत्मपदविषे स्थित भया है, तिनको सुख दुःख अपने वश नहीं करि सकते, जैसे फाटकको प्रतिबिंबका रंग नहीं चढता, तैसे ज्ञानवानको सुखदुःखका रंग नहीं चढता, जिस पुरुषको परावर ब्रह्मका साक्षात्कार हुआ है, तिनका चित्त रागद्वेषकरि रंजित नहीं होता, जैसे आकाशविषे बादल दृष्ट आता है, परंतु आकाशको स्पर्श नहीं करता, तैसे ज्ञानवान्के चित्तको रागद्वेष स्पर्श नहीं करते, जो आत्मध्यानी है, जिसको परम बोधका साक्षात्कार भया है, अरु कलनामलते मुक्त हुआ है, सो पुरुष असंसक्त

कहाता है ॥ हे रामजी ! जो आत्मारामी पुरुष है, तिसको आत्मज्ञानके अभ्यासकरि संसक्तता निवृत्त होजाती है, अन्यथा संसक्तभाव निवृत्त नहीं होता, जब चित्त परिणाम आत्माकी ओर होवैगा, जैसे चंद्रमा परिणामके वशते अमावास्याको सूर्यरूप हो जाता है, तैसे चित्त दृढपरिणामके वशते आत्मरूप हो जाता है, जब चित्त चैत्यभावते हीन होता है; तब क्षीणचित्त कहाता है, अरु शांत कलना कहाता है, तब जाग्रत् इसको सुषुप्तिरूप हो जाता है, तिस अवस्थाविषे जो कछु क्रिया करता है, सो फलका आरंभ नहीं होता, काहेते कि, निरहंकार होजाता है, जैसे यंत्रीकी पुतली अहंकारते रहित चेष्टा करती है, अरु संवेदनते रहित है, तिसको कोऊ दुःख नहीं होता, तैसे निरहंकार निःसंवेदन पुरुष निर्दुःख अरु निर्लेप कहाता है ॥ हे रामजी! इष्ट अनिष्ट भाव अभावरूपी जगत् चित्तविषे होताहै, जब चित्त आत्मभावको प्राप्त हुआ तब किसकरि किसको किसका बंधन होवै, सर्व आत्मतत्त्व होता है, जैसे नट सर्व स्वांगको धारता है, अरु अपना अभिमान किसीविषे नहीं होता, तैसे सुषुप्तिबोध पुरुष जगत्की क्रिया करताहै, अरु बंधमान नहीं होता, जीवन्मुक्त होकारि स्थित होताहै ॥ हे रामजी ! सुषुप्तिबोधको आश्रयकारिकै जगत्की क्रिया करौ, क्रियाकर्म कर्ता त्रिपुटीकी भावनाते रहित होहु, तब तुमको दुःख कछु न होवैगा न आदानविषे न त्यागविषे अभिमान होवैगा, यथाप्राप्तिविषे स्थित होवैगा सुषुप्ति बोधविषे स्थितहै, सो कर्ता हुआ भी कछु नहीं करता; ऐसे निश्चयको धारिकारिकै जैसे इच्छा होवै तैसे करौ ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान्की चेष्टा बालकवत् होतीहै, जैसे बालक अभिमानते रहित पिंगुड़ेविषे अंगोंको हिलाता है, तैसे ज्ञानवान् अभिमानते रहित कामकरता हैं, फलका स्पर्श नहीं होता, जब चित्त अचित्तरूप होजाता है, तब जाग्रत् जगत् सुषुप्तिरूप होजाता है, अरु जो कछु क्रिया करता हैं, सो स्पर्श नहीं करती ॥ हे रामजी ! इसको जब जगत्ते सुषुप्ति दशा प्राप्त भइ, तब इसका अंतर शीतल होजाता है, रागदोष कछु नहीं फुरते, आत्मानंदकारि पूर्ण होता है, जैसे पूर्णमासीक चंद्रमा शोभता

है, तैसे वह शोभता है, जो सुषुप्ति बोधविषे स्थित है, सो महातेजवान् महाघूर्म होता है, आत्मानंदकरि पूर्ण चंद्रमाकी नाईं हो जाता है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष सुषुप्ति अवस्थाविषे स्थित है, सो किसी संसारके क्षोभकरि चलायमान नहीं होता जैसे पर्वत सर्व कालविषे क्षोभायमान नहीं होता, जैसे भूकंपविषे सब वृक्षादिक चलायमान होतेहैं, अरु अस्ताचलपर्वत कंपायमान नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् नहीं होता, चलायमान जैसे पर्वत सर्व कालविषे सम रहता है, अरु तरु उगिके गिर पडता है, पर्वत ज्योंका त्यों रहता है, तैसे ज्ञानवान् अनेक प्रकारकी क्रियाविषे समरहताहै॥हे रामजी!ऐसी सुषुप्तिदशा अभ्यास योगकरि प्राप्त होती है, जब यह दशा प्राप्त होती है, तब इसको तत्त्ववेत्ता तुरीयापद कहते हैं, सो परमानंदरूप है,तिसविषे सर्व दुःखनाश हो जाते हैं, असंसक्त हो जाता है, मनका मननभाव निवृत्त हो जाता है, तब ज्ञानवान्को परम सुख उदय होता है, तिसकरि परमानंद घूर्म हो जाता है, इस संसार रचनाको लीलारूप देखता है, सर्व शोकते रहित निर्भय होता है, संसार-भ्रम दूर होजाता है, जब तुरीया पदविषे प्राप्त हुआ है, तब संसारविषे बहुरि नहीं गिरता, जो यत्नवान् पुरुष परमपावन पदविषे स्थित हुए हैं, सो संसारकी अवस्थाको देखिकरि हँसते हैं, जैसे पहाड़के ऊपर बैठा पुरुष नगरको जलता देखिकरि हँसता है तैसेज्ञानवान् आत्मानंदको पाइ करि संसारके कार्योंमें दुःख जानिकरि हँसते हैं ॥ हे रामजी ! तुरीयाव-स्थाविषे स्थितहै सो अविनाशी होता है, अरु आनंदरूप आनंदकलनाते आनंदकलना है, जब ऐसे तुरीयातीत पदको प्राप्त होताहै, तब जन्म मरणके बंधनते मुक्त होता है, अभिमान आदिक कलनाते रहित परम ज्योतिविषे लीन होता है, जैसे लूनकी गोली समुद्रविषे जलरूप हो जाती है, तैसे वह आत्मरूप हो जाता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रक-रणे संसक्तचिकित्सा नाम पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ६६.

संसारयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जबलग तुरीयापदविषे स्थित होता है, तबलग केवल जीवन्मुक्त होता हैं, इसते उपरांत विदेहमुक्त तुरीयातीत है, सो वाणीका विषय नहीं, जैसे आकाशको भुजाकारि कोई पकडि नहीं सकता, तैसे तुरीयातीत वाणीका विषय नहीं; तुरीयातीत पदते विश्रांति भी दूर है, विदेहमुक्त कर पाता है अब तुम कछुक काल ऐसी सुषुप्ति अवस्थाविषे स्थित हो, पाछे परमानंदपदविषे स्थित होना ॥ हे रामजी ! तुरीयावस्थाविषे जो स्थित हुआ है, सो निर्द्वंद्वभावको प्राप्त हुआ है, जब तू सुषुप्ति अवस्थाविषे स्थित होवैगा तब जगत्के कार्य भी करता रहैगा सदा पूर्ण रहैगा, उदय अस्तके भावको कदाचित् प्राप्त न होवैगा, जैसे मूर्तिका चंद्रमा लिखा उदय अस्तको नहीं प्राप्त होता है, तैसे तू उदय अस्तभावको प्राप्त न होवैगा ॥ हे रामजी ! इस शरीरको आप जानिकारि रागद्वेषविषे जलता है, जिस पदार्थका सन्निवेश होता है, तिसके नष्टहुए नष्ट हो जाताहै, जैसे मृत्तिकाका अन्वय घटविषे होता है, घटके नाश हुए मृत्तिकाका नाश न होवै, तैसे भ्रमको मत अंगीकार करहु, तू सदा ज्योंका त्यों है, तेरा सन्निवेश तौ इ[illegible]विषे कछु न हुआ, ताते ज्ञानवान् देहके नाश हुए शोकवान् नहीं होता, अरु देहके स्थित हुए सुखी भी नहीं होता. काहेते कि देहके साथ संबंध कछु नहीं, जो तत्त्वदर्शी पुरुष है, सो यथाप्राप्तिविषे निर्दोष होकारि विचारता है, अभिमानादिक विकारोंते रहित निर्मल आकाशवत् है, जैसे शरत्कालकी रात्रिविषे चंद्रमाकारि आकाश निर्मल होता है, तैसे मनकी वृत्ति विकारोंते रहितकारि आत्मपदविषे स्थित होता है, संसारकी ओर नहीं गिरता, जैसे योग मंत्र तप सिद्धकारि संपन्न आकाशविषे उड़ता जाताहै सो पुरुष पृथ्वीपर नहीं गिरता॥हेरामजी ! तू भी अपने प्रकृतिभावविषे स्थित होकारि यथाप्राप्त क्रियाको कर्ता निर्द्वंद्व होउ, अरु तू भी अब स्वरूपका ज्ञाता हुआ है, परमपदविषे जागा है, अपने स्वरूपको प्राप्त

हुआ है, पृथ्वीविषे विशोकवान् हुआ विचरौ, इच्छा अनिच्छाको त्यागिकरि शीतल प्रकाश अंधकार तप्त अरु मेघते रहित शरत्कालके आकाशवत् निर्मल शोभैगा ॥ हे रामजी ! यह जगत् चिदानंदस्वरूपहै, अरु आदि अंतते रहित है, अहंत्वं आदिक भ्रमते रहित तिसविषे स्थित होउ, आत्माकेवलअव्यक्तचिंतनाते रहितहै, तिसका शरीरसाथसंबंधकैसे होवै, आत्मा आदिक नामभी उपदेशव्यवहारकेनिमित्त कल्पेहैं, नामरूप भेद भयते रहित अशब्द पद है, सोई जगत्रूप होइकरि स्थितभया है, जगत् कछु भिन्न वस्तु नहीं, जैसे जल तरंगरूप हो भासताहै, सो जलते कछु भिन्न वस्तु तरंग नहीं, तैसे आत्माते भिन्न जगत् कछु नहीं जैसे समुद्र सब जलरूप है, जलते इतर कछु भिन्न नहीं, तैसे सब जगत् आत्मरूप है, भिन्न कछु नहीं, जैसे जल अरु तरंगविषे भेद नहीं, पट अरु तंतुविषे भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद नहीं॥ हे रामजी ! और द्वैत कछु वस्तु है नहीं, परंतु मैं तेरे उपदेशके निमित्त द्वैतको अंगीकारकरि कहता हौं, यह जो शरीर है, तिसकेसाथ तेरा संबंध कछु नहीं जैसे धूप अरु छायाका संबंध नहीं होता, प्रकाश अरु तम इकट्ठे नहीं, होते, तैसे आत्मा अरु देहका संबंध नहीं, देह जड अरु मलिन है, अरु दृश्य असत्य है, आत्मा निर्मलचेतन है, अरु सत्य है, तिसका देहसाथ संबंध कैसे होवै, जैसे शीत अरु उष्णका परस्पर विरोध है, तैसे आत्मा अरु देहका संबंध नहीं जैसे वनको अग्नि लगेते जंतु जलते हैं, तैसे भ्रमदृश्यरूप देहविषे अहंभाव करिकै जलते हैं ॥ हे रामजी ! जैसे दावाग्निविषे कुबुद्धि जलबुद्धि करै तैसे अज्ञानी देहविषे आत्मबुद्धि करतेहैं, जैसे मरुस्थलविषे सूर्यकी किरणोंमें जल भासता है, तैसे आत्माविषे देहभाव रखते हैं ॥ हे रामजी ! चिदात्मा निर्मल, अरु नित्य स्वयंप्रकाश है, अरु देह मलिन है, अस्थि मांस रक्तमयहै, इसकेसाथ आत्माका संबंध कैसे होवै, आत्माविषे देहका अभाव है केवल एक अद्वैत तत्त्व अपने आपविषे स्थितहै, तिसविषे द्वैतभ्रम कैसे होवै ॥ हे रामजी ! स्वरूपते न कोऊ बंध है, न कोऊ मुक्त है, सर्व सत्ता आत्मतत्त्व स्थित है अंतर बाहर सर्व वही है, मैं सुखी हौं मैं दुःखी

हौं, मैं मूढ हौं, इस मिथ्या दृष्टिको दूरते त्याग, आपको केवल आत्मरूप जानिकरि स्थित होहु, यह जो दृश्य है, सो परम दुःख देनेहारा है, इसकरि दुःख प्राप्त होवैगा, जैसे तृण अरु पहाड़की एकता नहीं होती, पट अरु पत्थरकी एकता नहीं होती; तैसे आत्मा अरु शरीरकी एकता नहीं होती, जैसे तम अरु प्रकाशका संयोग नहीं होता, तैसे देह अरु आत्माका संयोग नहीं होता, अरु दोनों तुल्य भी नहीं होते, जैसे शीत अरु उष्णकी एकता नहीं होती; जैसे जड़ अरु चेतनकी एकता नहीं होती, तैसे शरीर अरु आत्माकी एकता नहीं होती ॥ हे रामजी ! शरीर जो बोलता है, सो वायुके बलकरि चलता बोलता है, आठ स्थानोंविषे वायुके बलकरि अक्षरोंका उच्चार होता है, उर, कंठ, शिर, जिह्वामूल, दंत, नासिका, होठ, तालु, यही अष्ट स्थान हैं, क ख ग घ, इन चारोंका उच्चार कंठविषे होता है, च छ ज झ, चारोंका तालुस्थानविषे उच्चार होता है, ट ठ ड ढ, इन वर्णोंका मूर्द्धनि (शिरविषे) उच्चार होता है, त थ द ध, इनका दंतोंविषे उच्चार होता है, प फ ब भ म, इन पांचोंका होठोंविषे उच्चार होता है, ङ ञ ण न, इनका नासिकाविषे उच्चार होता है; जिह्वाविषे जिह्वामूलीयका उच्चार होता है, जिस पदके आदिका हकार होवै, सो हृदयविषे उच्चार होता है, आठों स्थानोंविषे इन वर्गोंका वायुकरि उच्चार होता है, अरु नव ज्वर सूक्ष्मका उच्चार होता है, आत्मा इनते निर्लेप होता है, जैसे बाँसुरी वायुकरि शब्द करती है, तैसे यह पांच तत्त्वोंकारि शब्द होता है, इनविषे आत्माभिधान करना कि मैं कर्त्ता हौं, सो महामूर्खता है, अरु नेत्रादिक भी इंद्रियां वायुकरि चेष्टा करती हैं, ताते इस भ्रमको त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होउ, आत्मा आकाशवत् सर्वविषे पूर्ण है, जैसे आकाश सब ठौरविषे पूर्ण है परंतु जहां आदर्श होता है, तहां प्रतिबिंब होकरि भासता है, तैसे आत्मा सब ठौरविषे पूर्ण है, परंतु जहां चित्त होता है तहां भासता है ॥ हे रामजी ! जहां वासनाकरि [illegible] है, तहां आत्माको अनुभव होता भासता है, जो मैं इहां हौं, जैसे जहां पुष्प होता है, तहां सुगन्धि भी होती है; तैसे जहां चित्त होता है, तहां

अहंभाव भी होता है, जैसे आकाश सर्व ठौरविषे है, परंतु जहां प्रतिबिंब होता है, तहां भासता है, जैसे जल सर्व पृथ्वीविषे है, परंतु भासता तहां है, जहां खोदाजाता है, तैसे आत्मा सब ठौर पूर्ण है, परंतु भासता तहां है जहां चित्त है, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब सब ठौर है, परंतु जहां आदर्श अथवा जल है, तहां भासता है, तैसे आत्मा जहां तहां पूर्ण है, परंतु चित्तके अहंभावकारि भासता है, आत्माका प्रतिबिंब चित्तहीविषे भासता है, सो चित्त आत्माकी सत्ताकारि जगत्‌रचनाको पसरता है, जैसे सूर्यकी किरणैं धूपको पसारती हैं ॥ हे रामजी ! भूतोंका कारण अंतःकरणही है, अरु आत्मा तत्त्व तौ अतीतही है, आदिकारण नहीं है, अरु वास्तवते अकारण है, जगत् जो सत् भासता है, सो अविचारकारि भासता है, तिसके निवृत्तिका उपाय आत्मज्ञान है ॥ हे रामजी ! संसारका कारण अंतःकरण है, असम्यक् ज्ञानकरिकै सत्यरूप भासता है, जैसे मरुस्थलविषे असम्यक् ज्ञानकरिकै जल भासता है, जब यथार्थ ज्ञान होता है, तब जगत्‌का कारण चित्त नष्ट हो जावै, जैसे दीपकके प्रकाशकारि अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मज्ञानकारि चित्त नष्ट हो जाता है, संसारका कारण अपना चित्तही है, इसका नाम जीव, अंतःकरण, चित्त, मन है ॥ राम उवाच ॥ हे महाआनंदके देनेहारे ! एती संज्ञा चित्तकी कैसे हुई है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सर्वभावरूप एक परमात्मा तत्त्व है, जैसे समुद्र, नदियां, तरंग आदि संज्ञा एक जलही धरताहै, तैसे चित्तादिक अनेक संज्ञाको आत्मा धारताहै, अरु सदा एकरूप है संवेदन फुरणेकारि अनेकरूप धारता है, जैसे एक जलको अनेक तरंग कहूं बुद्बुदे, कहूँ जल, कहूं चक्र, कहूं स्थिर, एती संज्ञाको धारता है, परंतु सबही जलरूप है, तैसे सर्वशक्ति आत्मा सर्व शरीरोंविषे सर्वरूप होता है, जब स्पंदकलना दूर होती है, तब शुद्ध स्वरूप हो भासता हैं, अरु जहाँ अज्ञान संसरणेको अंगीकार करता है, तहां वही अनंत आत्मा जीव कहाता है, जैसे केसरीसिंह पिंजरेविषे फँसता है, तैसे यह जीवरूप होता है ॥ हे रामजी ! जहां अहंभाव फुरता है, तहां जीव कहाता है, अरु जो निश्चय [illegible] फुरताहै, तिसको बुद्धि कहतेहैं, संकल्पविकल्पकारि मन कहाता

है, चिंता करनेते चित्त कहाता है, प्रकृत भावकरि प्रकृति कहाता है ॥ हे रामजी ! प्रकृतिरूप जो पदार्थ है, सो जड़ कहाता है, अरु चेतन है सो जीव कहाता है, अरु जड़ जो दृश्यभावकरि संवित् भाग है, अजड़ जो जीव अहं सो द्रष्टाभावकरि सिद्ध होता है, इनके जो मध्य है, सो परमात्मा तत्त्व है, सो नानारूप हो भासता है, यह रूप जीवका बृहदारण्यउपनिषद्विषे बहुत प्रकार करिकै और वेदांतशास्त्रोंविषे कहा है, इसते इतर संज्ञा शास्त्रकारने कल्पिकरि कही है, सो वृथा कल्पना कही है, जबलग अहंभावकरिकै चित्त संसरता है तबलग जगत्भ्रम होता है, जैसे जबलग सूर्य है तबलग प्रकाश होता है, जब सूर्य अस्त होता है, तब प्रकाश जाता रहता है, तैसे जब चित्तका अभाव हुआ, तब जगत्-भ्रम जाता रहता है, देहविषे आत्माबुद्धि करनी सो महामूर्खता है, काहेते यह अध ऊर्ध्व संयोग है जो आत्माका, ऐसे संयोग होवै तौ देहके नाश हुए आत्मा भी नाश हो जावै, देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे वृक्षके पात नाश हुए वृक्षका नाश नहीं होता, तैसे शरीरके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे घटके नाश हुए आकाशका नाश नहीं होता, तैसे शरीरके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे पुरातन वस्त्रको त्यागिकरि पुरुष नूतन वस्त्र पहिरता है तैसे आत्मा पुरातन शरीरको त्यागिकरि नूतन शरीरको अंगीकार करता है इसका नाम मूर्ख मृत्यु कहते हैं, शरीरके नाश हुए आत्माका नाश तौ कछु नहीं होता ॥ हे रामजी ! जिसका चित्त निर्वासनिक हुआ है, उसका शरीर जब छुटता है, तब उसका चित्त चिदाकाशविषे लीन हो जाता है, अरु जिसका चित्त वासनासहित है, सो एक शरीरको त्यागिकरि और शरीरको पाता है, तौ भी शरीरके नाश हुए, आत्माका नाश नहीं होता, जो देहके नाश हुए आपको नाश मानता है, सो मूर्ख है, जैसे स्थाणुविषे अज्ञानकरिकै वैताल भासता है, जैसे माताके स्थानोंविषे मूर्ख बालकको वैताल भासता है, तैसे अज्ञानकरि आत्माविषे मृत्यु भासता है, अरु जो इसका आत्मतत्त्व नाश होवै, अर्थ यह कि चित्तनाश हो जावै, बहुरि फुरै नहीं सो तौ आनंद हुआ, अरु जो शरीरके नाश हुए

आत्माका नाश कहते हैं, सो मूढ हैं, मिथ्या कहते हैं, जैसे कोऊ देशते देशांतरको जाता हैं, तौ उसका अभाव नहीं होता, तैसे शरीरको त्यागि करि और शरीरको प्राप्त होता है, आत्माका नाश नहीं होता, जैसे जलविषे तरंग फुरता है, बहुरि लीन होकरि और ठौरविषे जाय फुरता है, तैसे आत्मा एक शरीरको त्यागिकरि औरको धारता है जैसे पक्षी उड़ता उड़ता दूर जाता है, तब दृष्ट नहीं आता, परन्तु नाश नहीं होता, तैसे शरीरके नाश हुए आत्मा और ठौर प्रगट होता है, नाश नहीं होता॥ हे रामजी ! वासनाके वशते यह जीव एक शरीरको त्यागिकरि और शरीरको जाय प्राप्त होता है, इसी प्रकार वासनाके अनुसार जीव फिरता है, वासनारूपी जेवरीसाथ बांधा जीवरूपी वानर शरीररूपी स्थानोंविषे भटकता है॥ हे रामजी ! जीव वासनारूपी रसडीसाथ बांधा हुआ, कबहूं ऊर्ध्वलोक कबहूं मनुष्यलोकविषे घटी-यंत्रकी नाईं भ्रमता है॥ हे रामजी ! जीवको हृदयविषे जो वासना होती है, तिसकरि जरा मृत्यु जन्म आदि दुःखोंको पाता है, अरु कर्मोंरूपी भारको उठाइ फिरता है, कबहूं स्वर्गको जाता है, कबहूं पातालको जाता है, कबहूं मध्यस्थानविषे जाता है, शांतिको प्राप्त कदाचित् नहीं होता॥ ताते हे रामजी ! अविद्यारूपी जो संसार है, इसको भ्रमरूप जानिकरि इसकी वासनाका त्यागकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होउ॥ वाल्मीकि उवाच॥ इस प्रकार जब सब वसिष्ठजीने कहा, तब सूर्य अस्त हुआ, सब सभा स्नानके निमित्त उठी, परस्पर नमस्कार करिकै अपने अपने स्थानको गए, रात बिताय सूर्यकी किरणोंसाथ आइ बैठे॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे संसारयोगोपदेशो नाम षट्षष्टितमः सर्गः॥ ६६॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७.

मोक्षस्वरूपोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! आत्मा देहके उपजेते उपजता नहीं, अरु नाश हुएते नाश नहीं होता, सो तू निष्कलंक आत्मा है, तुझको देहसाथ संबंध कदाचित् नहीं, जैसे कुंजविषे फूल फल होता है, जैसे घटविषे घट-

आकाश होता है, सो परस्पर भिन्नरूप होता है, एकके नाश हुए दूसरेका नाश नहीं होता तैसे देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता अरु जो देहके नाशविषे अपना नाश मानता है, सो मूर्ख जड़ है, तिस अर्थ चेतनताको धिक्कार है ॥ हे रामजी ! जैसे रथ अरु सरडियां अरु घोड़ेका स्नेहते रहित संयोग होता है, तैसे शरीर अरु चित्त अरु इंद्रियांका संयोग है ॥ हे रामजी ! रथ टूटेते रथ वायुकी हानि तौ नहीं होती, तैसे देह इंद्रियोंके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे पृथ्वी पहाड़ऊपर जलके प्रवाहका संयोग होता है, अरु वियोग भी होता है, सो एकके नाश हुएते दूसरेका नाश नहीं होता है, तैसे देह इंद्रियका संयोग है, इनके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे स्थाणुविषे बेताल भासता है, अरु भयमान होता है, तैसे देहविषे अहंभावकरि राग, द्वेष, सुख, दुःख पावता है, जैसे एक काष्ठकी अनेक पुतलियां होतीं हैं, सो काष्ठते इतर कछु नहीं तैसे जेते कछु शरीर हैं, सो पंच भूतोंके हैं, पांच भूतोंते हैं, इतर कछु वस्तु नहीं, बहुरि यह पंच भूतोंका शरीर पंच भूतोंविषे लीन होता है, तिसको मृतक हुआ कहते हैं, यह आश्चर्य है, जो प्रत्यक्ष पंचभूतोंका शरीर है, तिसविषे आत्मभावना श्वान करते हैं, बहुरि हर्षकारि शोकको प्राप्त होते हैं, इसीते मूर्ख हैं ॥ हे रामजी ! न कोऊ पुरुष है, न कोऊ स्त्री है, अरु इनके निमित्त मूढ रुदन करते हैं जैसे मृत्तिकाके खिलोने हस्ती घोडा आदिक विचित्र रचना होती है, तिसकी प्राप्ति अप्राप्तिविषे अज्ञानी बालक तुष्टिवान् अरु खेदवान् होता है, तैसे अज्ञानी पांचभौतिक रचना देखिकारि प्राप्तिविषे राग द्वेष करता है, ज्ञानवान्को सब भूत भ्रांतिमात्र भासते हैं, जैसे माटीके पुरुष आपसमें मिलैं तब उनको राग द्वेष कछु नहीं होता है, तैसे बुद्धि इंद्रियां मन आत्माका मिलाप है, तिसविषे तुझको रागद्वेष कछु नहीं होता, जैसे पाषाणकी पुतलियां मिलती हैं, उनको स्नेहबंधन कछु नहीं होता, तैसे देह इंद्रियां प्राण आत्माका आपसमें स्नेह बुद्धिते रहित हैं, ताते तू स्नेहते रहित होउ, शोक काहेको करता है, जैसे तृण अरु जलके तरंगका संयोग होता है, तृण इधर उधर जाता है, जलको

कछु हर्ष शोक नहीं होता है, तैसे देहभूत आत्माका योग है इनको मिलाप अरु बिछुरेका दुःख सुख कछु नहीं होता, आत्मा अरु अनात्मा देह इंद्रियां प्राण मन बुद्धि आदिक विलक्षण भाव है परस्पर इनके क्षय अरु उदयविषे हर्ष शोक कछु नहीं परंतु चित्तके उदयकरिकै अनात्मा धर्म आत्माविषे प्रतिबिंबित भासता है, ताते तुम तत्त्वबोधका विचार करिकै चित्तको त्यागि अपने स्वरूपविषे स्थित होउ; जैसे जल तरंगभावको त्यागिकरि अपने स्थित स्वभावको प्राप्त होता है, तैसे तू अपने अक्षोभभावको प्राप्त होवैगा, तब भौतिक देहते आपको भिन्न जानैगा, जैसे वायुमंडलको प्राप्त हुआ देहादिक जीव पृथ्वीमंडलको देखता है, तैसे तू आत्मपदको स्थित हुआ देहादिक भूतोंको देखैगा ॥ हे रामजी ! तुम देहादि भूतोंको देख त्यागिकरि अतीत अजन्मा पुरुष होइ रहौ, तब तुम परमप्रकाशको पावैगा जैसे सूर्यकांतमणि सूर्यके उदय हुए परम प्रकाशको प्राप्त होता है; तैसे जब बोधकरिकै द्रष्टा दर्शन दृश्यभाव तेरा जाता रहैगा, तब तू अपने भावको ज्योंका त्यों जानैगा, जैसे मद्यकरि क्षीब हो जाता है, मद्यके उतरेते आपको ज्योंका त्यों जानता है, अरु मद्यभावको स्मरण करता है, तैसे स्मरण करैगा, आत्मतत्त्वका जो स्पंद फुरना हुआ है, तिसका नाम चित्त है, सो अवस्तुरूप है, जैसे समुद्रविषे तरंगभाव उदय होता है, सो कछु वस्तु नहीं, तैसे चित्तादिक कछु वस्तु नहीं, भ्रांतिरूप हैं, इसप्रकार जानिकरि महाबुद्धिवान् वीतराग निष्पापरूपी जीवन्मुक्त हुए हैं, महा शीत पदकी प्राप्तिमें विचरते हैं जैसे रत्नमणिकी किंचन नानाप्रकारकी लहरी होती हैं, सो मनन कलनाते रहित चमत्कार है, तैसे मनुष्योंविषे जो ज्ञानवान् उत्तम पुरुष हैं तिनका व्यवहार कलनाते रहित होता है, जैसे कूपविषे प्रतिबिंब पड़ता है, जैसे आकाशविषे धूलि उड़ती भासती है, आकाश मलभावको प्राप्त नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् पुरुष अपने व्यवहारविषे कर्तृत्वके अभिमानको नहीं प्राप्त होता, जैसे मेघके आने जानेकरि समुद्रको राग द्वेष नहीं होता, तैसे आत्मा ज्ञेय पुरुषको भोगोंके आने जानेविषे राग द्वेष नहीं होता ॥ हे रामजी ! जिस मनविषे जगत्के किसी पदार्थोंकी मननवासना नहीं फुरती, तिस चित्तविषे जो कछु फुरणा भी भासती है सो विलास

स्वरूप जान, उसको बंधनका कारण कछु नहीं होता, अरु जिस चित्त-विषे अहं त्वं आदिक जगत्की भावना है, परंतु अंतरते तिसको सत्य-ताबुद्धि है, तिसकरि वह दृश्य द्रष्टा अरु दर्शन संबंध तीनों कालोंसं-युक्त जगत्को विस्तारैगा, जो कछु दृश्य है, सो असत्यरूप है, अरु जो सत्य है, सो एक अव्यक्तरूप है, तिसको आश्रयकरिकै अलेप होहु, तब हर्षशोककी दिशा कहां है, जेता कछु दृश्य जगत् भासता है, सो सब असत्यरूप है, जो सत्य है, सो सदा ज्योंका त्यों है, असत्यरूप दृश्यके निमित्त तू क्यों वृथा मोहको प्राप्त होता है, असम्यक् दर्श-नको त्यागिकरि सम्यक्दर्शी होहु ॥ हे सुलोचन रामजी ! जो सम्य-क्दर्शी है, सो मोहको नहीं प्राप्त होता, दृश्य जो विषय अरु दर्शन कहिये इंद्रियां, तिनकेविषे संबन्ध मिलनेविषे जो आत्मसुख है अनुभव-रूप सो परब्रह्म कहाता है, अरु अनुत्तम सुख सो तिस संवित्विषे स्थित है, सो ज्ञानवान् है; तिसको मोक्षप्राप्ति है, अरु जो दृश्य दर्शन विषे स्थित होता है, तिस अज्ञानीको वह संवित् संसारभ्रम दिखावती है, अरु दृश्य दर्शनविषे जो अनुभवसत्ताहै, सो सुख आत्मारूप है;जो दृश्यसाथ लगा है, सो बंध है, अरु जो दृश्यते मुक्त होइ संवित्विषे स्थित है, सो मुक्त कहाता है ॥ हे रामजी ! दृश्य दर्शनके संबंधविषे मध्य जो संवित् है, सो अनुभवगोचर है, तिस संवित्को आश्रय करिकै दृश्य दर्शनते जो मुक्त है, सो संसारसमुद्रको तरैगा, यह सुषुप्तिरूप अवस्था है, इसको प्राप्त हुआ परम प्रकाशको प्राप्त होता है, इसीको मुक्त कहते हैं, जो दृश्य दर्शनते मुक्तबुद्धि है, सो मुक्त कहाता है, अरु जो दृश्य दर्शनसाथ बांधा है, सो बंध है, अन्य सर्वोंका अनुभव करनेहारा आत्मा है, सो न स्थूल है, न अणु है, न प्रत्यक्ष है, न अप्रत्यक्ष है, न चेतन है, न जड़ है, न सत्य है, न असत्य है, न अहं है, न त्वं है, न एक है, न अनेक है, न निकट है, न दूर है, न अस्ति है, न नास्ति है, न प्राप्ति है, न अप्राप्ति है, न सर्व है, न असर्व है, न पदार्थहै, न अपदार्थहै, न पांचभौतिकहै, न अपांचभौतिकहै, जेती कछु दृश्य जाति है, सो मनसहित षट् इंद्रियोंकरि भावको प्राप्त होता है, जो इनते अतीत है, सो इनका विषय नहीं, सो विषय कैसे होवै, निष्कि-

चनरूप है, अरु यह भी सब वही रूप है, ज्योंका त्यों जानेते सब आत्मरूप है, जगत् अनात्मरूप कछु नहीं, सम्यक्ज्ञानकरि ऐसे भासता है, यह जो कठिनरूप पृथ्वी भासती है, द्रवतारूप जल भासता है, स्पंदरूप वायु, उष्णतारूप अग्नि, अवकाशरूप आकाश भासता है, सो सब आत्मरूप है, जो कछु वस्तु अवस्तुरूप जगत् भासता है, सो आत्मसत्ताते इतर कछु नहीं, आत्माते इतर जगत्को मानना उन्मत्त-चेष्टा है, मूर्ख मानते हैं, महात्मा पुरुषको काल कलनारूप जगत् सब आत्मरूप है, कल्पते आदि लेकरि अंतपर्यंत सब आत्माका चमत्कार है, इतर कछु नहीं ऐसे जानिकरि तुम अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, अरु संसारसमुद्र तिर जावहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे मोक्षस्वरूपोपदेशो नाम सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ६८.

आत्मविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो मैं तुझको द्वैतके त्यागकी विचार-दृष्टि कही है, इस विचार करिकै अपना जो आत्मस्वभाव है, सो प्राप्त है, जैसे बुद्धिमान्को उपासना अभ्यासकरिकै चिंतामणि प्राप्त होता है, अरु इसके उपरांत और भी परम दृष्टि सुन, जिस दृष्टिकरिकै अचल आत्मरूपको देखता है, कि मैंही आकाश हौं, मैंही दिशा हौं, मैंही सूर्य हौं, अध ऊर्ध्व मैंही हौं, देवता दैत्य मैंही हौं, प्रकाश तम अरु मेघ पर्वत मैंही हौं पृथ्वी समुद्र पवन धूलि अग्नि आदिक स्थावर जंगम जगत् मैंही हौं ॥ हे रामजी ! सर्व जगत् आत्माही है, तौ अहं अरु त्वंते भिन्न और अनेक अरु एक कैसे होवै, ऐसा निश्चय जिसके अंतर होता है, तिसको सब जगत् आत्मरूप भासता है, सो पुरुष हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होता, जो सब जगत् मनोमात्र है, तौ अपना अरु पराया क्या कहिये ? ज्ञानवान्को आत्माते इतर नहीं भासता, ताते हर्षविषादको नहीं प्राप्त होता, ॥ हे रामजी ! अहंकार भी तीन प्रकारके हैं, दो प्रकार सा-

त्त्विक निर्मल हैं, तत्त्वज्ञानकारि प्रवर्त्तता हैं, अरु मोक्षदायक परमार्थरूप है, अरु तीसरा संसारको दिखावता है, एक अहं है, जो तुझको कहा है, सर्व मैंही हौं, मुझते अन्य कछु नहीं, अरु दूसरा यह जो परम अणु जो सूक्ष्मते अतिसूक्ष्म है, साक्षिभूत अव्यक्तरूप हौं, यह दोनों मोक्षदायक हैं, अरु तीसरा यह जो आपको नख शीशपर्यंत देहरूप जानना, सो दुःखदायक संसारका कारण है, शांति सुखका कारण नहीं, अथवा इन तीनोंको त्यागकारि स्थित होउ, यह सर्व सिद्धांतका कारण है, जैसे तेरी इच्छा होवै तैसे कर, आत्मा सर्वते अतीत है अरु सर्वते परे है, तौ भी अपनी सत्ताकरिकै जगत् पूर्णकारि रहा है, अरु सर्वका प्रकाशरूप वही है, अपने अनुभवकारि सदा वस्तु उदयरूप है, अरु किसी प्रमाणका विषय नहीं, अनुमान आदिक अरु सत्यवाद इनते परे रहित है, अरु सर्वकाल सर्वको अपने प्रकाशकारि प्रकाशता है, अरु यह जो दृश्य जगत् है, सो सब आत्मा भगवान् है, अरु दृश्य दर्शन सत् असत्सूक्ष्म स्थूल सबते आत्मा रहित है, अरु वही सर्वरूप है, सर्वकी वाणी कहनेविषे भी वही आता है, अरु किसीके कहनेविषे भी नहीं आता, जो नानात्व भासता है, सो भी तिसते अन्य कछु नहीं, आत्मा आदिक संज्ञा भी शास्त्रोंने उपदेशके निमित्त कल्पी हैं, सर्व शक्ति तिसविषे कल्पी हैं, सर्वत्र तीनों कालोंविषे स्थित है, अरु प्रकाशरूप है, सूक्ष्मभावकारि भी वही है, स्थूलरूप भावकारि भी वही है, सो सर्व ठौर व्यापक है, अरु अपने फुरणेकारि जीवरूप हो भासता है, जब चित्तसंवित् फुरणेरूप होती है, तब जीव आदिकरूप हो भासता है, फुरणेते रहित द्वैतकलना मिटि जाती है, जैसे आकाशविषे जब पवन फुरता है, तब उष्ण शीत हो भासता है, तैसे फुरणेकारि जीवादिक भासता है, अरु आत्मा चेतन सर्वत्र व्यापकरूप है, अरु कबहूं किसी भावको प्राप्त नहीं भया, जैसे पदार्थ अपने अपने भावविषे स्थित हैं, तैसे परम स्वर आत्मा अपने स्वभावविषे स्थित है, परंतु तिसका भासना पुर्यष्टकाविषे होता है, जैसे वायुविना धूलि उड़ती नहीं, जैसे अंधकारविषे प्रकाशविना पदार्थ भासता नहीं, तैसे पुर्यष्टकाविना आत्मा भासता नहीं, पुर्यष्टकाविषे प्रतिबिंब भासता है, जैसे

सूर्यके उदय हुए, सर्व जीवोंका व्यवहार होता है, अरु सूर्यके अस्त हुएते लीन होताहै अरु सूर्य दोनोंविषे अलेपहै, तैसे आत्मा सर्वका प्रकाशक अरु निर्लेप है, शरीरोंके व्यवहार होनेविषे अरु इष्टताविषे ज्योंका त्यों है न उपजता है न विनशता है, न वांछता है, न त्यागता है, न मुक्त है, न बंध है, सर्वदा सर्व प्रकार आत्मा ज्योंका त्यों एकरूप है तिसके अज्ञानकरि जीव अनात्मभावको प्राप्त होता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है अरु केवल दुःखोंका कारण होता है आत्मा आदि अंतते रहित अज अविनाशी है, अपने आपते इतर कछु नहीं हुआ इसते वांछा त्यागि देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित है, ताते बंध नहीं, जो बंध नहीं तौ मुक्ति कैसे होवै, सर्व कलनाते रहित ऐसा आत्मा सर्वका अपना आप है, अविचार करिकै मूढ रुदन करते हैं, ताते मैं जो तुझको उपदेश किया है, तिसको आदिते लेकरि अंतपर्यन्त भली प्रकार विचारि देख, इस युक्तिकरिकै शोकका त्याग कर, मूर्खोंवत् लोकोंविषे शोकको मत प्राप्त होहु ॥ हे सुमते। बंधमोक्षकी कल्पनाका त्याग कर, न बंधके त्यागकी इच्छा कर, न मोक्षकी प्राप्तिकी इच्छा कर, यंत्रकी पुतलीवत् अभिमानते रहित चेष्टा कर, इसका नाम आत्मा मौन है ॥ हे रामजी ! मोक्षका नाम कोऊ पदार्थ आकाशविषे स्थित नहीं, न कोऊ पातालविषे स्थित है, न भूमिलोकविषे स्थित है, चित्तका निर्मल होना मोक्ष है, जो अनात्मासाथ आपको मिलावना, तिसविषे आत्म अभिमान करना, यह मैल है इसका त्याग करना, अरु शुद्ध आत्मविषे चित्तको लगावना, इसका नाम मोक्ष है जब चित्तसों गुणोंमें वृत्तिका त्याग होवै, अरु सम्यक् आत्मज्ञान होवै, तिसको तत्त्वदर्शी मोक्ष कहते हैं ॥ हे रामजी! जबलग आत्मबोध नहीं होता, तबलग यह दीन दुःखी होता है, जब आत्माका निर्मल बोध होता है, तब दुःखोंते मुक्त होता है, ताते और उपायोंको त्यागि भक्ति करिकै मोक्षकी वांछा कर, अरु चिरकालकरिकै जब इस बोधको साध्य चित्त विस्तृत पदको प्राप्त हुआ, तब दश मोक्षकी वांछा नहीं करता, एक मोक्ष क्या है ॥ हे रामजी ! जीवको और उपाय मोक्षका कोऊ नहीं, आत्मबोधको पाइकरि सुखी होवैगा, जब चित्त अचित्त होता है, तब सब जगद्भ्रम मिटि

जाता है, अरु जगत् कछु दूसरी वस्तु नहीं, अद्वैत आत्मतत्त्व है, जो वही है, तौ बंध किसको कहिये ? अरु मोक्ष किसको कहिये ? बंधमोक्षकी कल्पना तुच्छ है, तिसका त्यागकरि चक्रवर्ती हो पृथ्वीकी पालना कर, तुझको कर्तृत्वका स्पर्श कछु न होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे आत्मविचारो नाम अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ६९.

निरास्पदमौनविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसके संकल्पते जगत् उपजा है. अज्ञान करिकै आपको शरीर जानता है, अपने संकल्पको उपजाइकै अपना स्वरूप जानता है, जैसे कोऊ सुंदर पुरुष होवै, तिसको देखेविना कुरूप जानै, तैसे आत्माके साक्षात्कारविना देहरूप आत्माको जानता है कि, मैं देह हौं, ज्यों ज्यों आत्माका प्रमाद होता है, त्यों त्यों देहविषे अधिक अभिमान होता है जैसे ज्यों ज्यों मद्यपान करता है त्यों त्यों उन्मत्त होता है ॥ हे रामजी ! यह जो नानाप्रकारका दृश्य जो भासता है, सो अज्ञानकरि भासता है, जैसे सूर्यकी किरणोंकरिकै मरुस्थलविषे जल भासता है, तैसे असम्यक्ज्ञान करिकै आत्माविषे जगत् भासता है, एक कलनाके फुरनेकरि मन बुद्धि चित्त अहंकार इंद्रियां देह भासते हैं, सो एक फुरणेकी एती संज्ञा है, जैसे एक जलकी अनेक संज्ञा होती हैं, तैसे एक फुरणेकी अनेक संज्ञा हुई हैं. जो चित्त है, सो अहंकार है, जो अहंकार है, सोई मन है, जो मन है, सोई बुद्धि है, इनविषे भेद कछु नहीं, जैसे बर्फ अरु शुक्लता अरु शीतलताविषे भेद कछु नहीं तैसे मन बुद्धि आदिकविषे कछु भेद नहीं, एकके नाश हुए दोनोंका नाश होजाता है, ताते मनविषे जो कछु कलना है, तिसको त्यागकरि मोक्षकी इच्छाका भी त्यागकरि बंधनवृत्तिको भी त्याग कर॥ हे रामजी। वैराग्य अरु विवेकअभ्यासकरिकै मनको निर्मल करौ, जब मन निर्मल हुआ, तब मनका मननभाव नष्ट हो जावैगा,

जब यह फुरणा फुरता है कि, मैं मुक्त होऊं तब भी मन जागि आता है, अरु मनके जागेते मनन भी हो आता है, मनन हुआ, तब अपनेसाथ शरीर भी भास आता है, अरु अनेक दुःखभी भास आते हैं॥ हे रामजी! आत्मतत्त्व सबते अतीतहै, अरु सर्वरूप भी वहीहै, तब कौन बंध है अरु कौन मोक्ष है,जब मनका मननिवृत्त हुआ,तब न कोऊ बंध है,न कोऊ मुक्त है, आत्मा सर्व क्रियाते अतीत है, अरु क्रिया भी इसप्रकार होती है, जैसे वायुके हिलनेकरि वृक्षके पत्र फूल हिलते हैं, तैसे प्राणोंके फुरणे करि हाथ पांव आदिक इंद्रियां चेष्टा करती हैं ॥ हे रामजी ! चित्तशक्ति है सो सर्वव्यापी सूक्ष्म है अरु अचल है, न आपही चलती है, न और किसीकी प्रेरी हुई चलती है सदा स्थितिरूप है, जैसे मेरु पर्वत न आपही चलता है, न वायुकरि चलाया चलता है, तैसे चित्तशक्ति अचल है ॥ हे रामजी ! जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो आत्मारूपी दर्पणविषे प्रतिबिंबित भासते हैं, जैसे सर्व पदार्थोंको दीपक प्रकाशता है; तैसे सब पदार्थोंको आत्मा प्रकाश करता है अरु सब पदार्थोंविषे एक आत्मा अनुस्यूत प्रकाशता है, अहं त्वं आदिक कलनाते रहित है, जहां अहं त्वं आदिक कलना नहीं फुरती, तहां सुख दुःख भी नहीं फुरता, जैसे वृक्षों अरु पहाडोंते अहंत्वं शब्द नहीं फुरता,तैसे आत्माविषे नहीं फुरते,ताते ज्ञानवान्‌विषे कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं फुरते ॥ हे रामजी ! आत्मा निरहंकार अरु निराकार है, तिसविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे होवै ? कर्तृत्व भोक्तृत्व आत्माविषे अज्ञानकरि भासताहै, जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है ॥ हे रामजी ! अज्ञानरूपी मदिरापान करिकै मनरूपी मृग मन हुआ है, तिसकरि सत्‌असत्‌का विचार नहीं करि सकता, जैसे मृगतृष्णाकी नदी असतही सत् भासती है, मृग तिसको सत् जानिकरि पान करनेके निमित्त दौडताहै, तैसे यह जीव अरूपसंसारको रूप जानिकरि दौडता है, जब आत्मसत्ताका सम्यक् बोध होता है, तब यह अविद्या नाश हो जाती है, जैसे ब्राह्मणोंके मध्य चंडाली आनि बैठे, जब उन ब्राह्मणोंने उसको पिछानी कि, यह चंडाली है, तब छुप जाती है, तैसे जब अविद्याको जाना कि, यह अविद्या है, तब नष्ट हो जाती है ॥ हे रामजी ! जब अविद्याको ज्योंकी त्यों जानी तब अविद्यारूप जगत्

मनको खैंच नहीं सकती,जैसे मृगतृष्णाकी नदीको जब जाना,तब तृष्णा होवै तौ भी मनको जल खैंच नहीं सकता ॥ हे रामजी! जब परमार्थ-सत्ताका बोध हुआ, तब मूलते वासना नष्ट हो जाती है,जैसे दीपके उदयते अंधकार नष्ट हो जाता है,तैसे आत्मज्ञानकारि अविद्या वासना-सहित नष्ट हो जाती है॥ हे रामजी! अविद्या अविचारते सिद्ध है, जब सच्छास्त्रोंकी युक्तिकारि विचार इसको प्राप्त होता है, तब अविद्या नाश हो जाती है,जैसे बर्फका कणका धूपकारि गलिजाता है, अरु जलमय हो जाता है, तैसे विचारकारि अज्ञान नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी! देह जड है, आत्मा सदा चेतनरूप है, बहुरि देह जडके निमित्त भोगोंकी वांछा करनी यह बडी मूर्खता है, जो ज्ञानवान् पुरुषहैं, सोइस बंधनको तोडि डारते हैं ॥ हे रामजी! आशारूपी फांसीको हृदयते काटौ, जब आशारूपी आवरण दूर भया, तब पूर्णमासीके चंद्रमावत् अंतर शीतल हो जावैगा, तैसे यह पुरुष भी तीन तापोंते मुक्त शीतल हो जाता है, जैसे पर्वत होकारि अग्नि लगै, तिसके ऊपर जलकी महत् वर्षा होवै, तब तप्तताते मुक्त हुआ शांतिमान् होता है ॥ हे रामजी! जैसे केसरीसिंह पिंजरेको तोड़िकारि निकसताहै, तैसे ज्ञानवान् पुरुष भोगवासनाके बंध-नको तोरि डारता है ॥ हे रामजी! आत्माके साक्षात्कार हुए परमानं-दको प्राप्त होता है, जैसे रंकको त्रिलोकीके राज्य मिलनेकारि आनंदकी प्राप्ति होवै, तैसे ज्ञानवान्को आनंद प्राप्त होता है, परम निर्मल लक्ष्मी कारि शोभता है, जब इसके हृदयसों आकाशरूपी मैल जाता है, तब जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल शोभताहै,तैसे शोभताहै॥हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुष अपने आपविषे नहीं समावता है, जैसे महाकल्पका समुद्र नहीं समावता अरु जैसे मेघ जलको त्यागिकारि मौन हो जाता है, तैसे ज्ञानवान् आशाको त्यागिकारि आत्म मौन हो जाता है, जैसे अग्नि लकड़ीको जलाइकारि धुंवाते रहित अपने आपविषे स्थित होजाता है, तैसे चित्तकी वृत्तिते रहित हुआ आत्मपदविषे निर्वाण हो जाता है, जैसे दीपक निर्वाण होजाता है, तैसे चित्तनिर्वाण हुआ परमानंदको प्राप्त होता है, जैसे अमृतको पानकारि पुरुष आनंदवान् होता है, तैसे

परमानंदकरि पूर्ण अपने आपविषे प्रकाशता है, जैसे वायुते रहित दीपक स्थानविषे प्रकाशता है, जैसे शुद्ध मणि अपने प्रकाशकरि प्रकाशता है, तैसे ज्ञानवान् अपने आपकरि प्रकाशता है, मैं सर्वात्मा हौं, सर्वगत हौं, ईश्वर हौं, सर्वाकार हौं, निराकार हौं, केवल चिदानंद आत्मा हौं, सदा अपने आपविषे स्थित हौं ॥ हे रामजी ! ऐसे ज्ञानी अपने आपको जानता है, अरु पूर्व दिन व्यतीत हो गया है, तिनको हँसता है, मैं तौ अनंत आत्मा हौं, मायाके भ्रमकरि आपको कर्ता भोक्ता मानता था ॥ हे रामजी ! ऐसे जानिकरि राग द्वेषते रहित परमशांतिको प्राप्त होता है, उसके ताप सब निवृत्त हो जाते हैं, अरु सदा आत्माविषे प्रीति रहती है, चित्त सर्व ओरते पूर्ण हो जाता है, अरु सबको पवित्र करनेहारा होता है, कामरूपी चक्रते मुक्त होता है, जन्मोंके बंधन काटि डारता है, रागद्वेष आदिक द्वंद्व अरु सर्व भयते मुक्त होता है, अविद्यारूपी संसारसमुद्रको तरि जाता है, उत्तम लक्ष्मीको प्राप्त होता है, अर्थ यह कि, परमपदको प्राप्त होता है, बहुरि संसारके जन्ममरणको नहीं प्राप्त होता, अरु कर्मोंका अंत हो जाता है ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान्की क्रियाको देखिकरि और वांछा नहीं करतेहैं, परंतु औरोंकी क्रियाको देखिकरी ज्ञानवान् किसीकी वांछा नहीं करता, अरु सबको आनंदवान् करताहै, अरु आप किसीकरि आनंदवान् नहीं होता, न किसीको देता है, न लेता है, न किसीकी स्तुति न निंदा करता है, न किसी उत्तम पदार्थोंको पाइकरि उदय होता है, न अनिष्टको पाइकरि नष्ट होता है, हर्ष शोकते रहित है, अरु सर्व फलका त्याग किया है, सर्व उपाधिते रहित है, कर्तृत्व भोक्तृत्वते आपको न्यारा मानता है, ऐसा जो पुरुष है, सो जीवन्मुक्त है ॥ हे रामजी ! जब तू सर्व इच्छा त्याग करि मौन करैहै, तब निर्विशेष भावको प्राप्त होवैगा जैसे मेघ जलका त्यागकरि मौन भावको प्राप्त होता है, तैसे तू मोक्षभावको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! जैसे कामी पुरुष स्त्रीको कंठ लगायकरि आनंदवान् होता है, तिसको ऐसा आनद नहीं होता, जैसा आनंद निर्वासनिक पुरुषको होताहै, अरु फूलगुच्छेकरि ऐसा वसंतऋतु नहीं शोभता, जैसे उदारबुद्धि आत्मा मौ-

नवान् शोभता है, अरु हिमालय पर्वतविषे प्राप्त हुआ भी ऐसा शीतल नहीं होता, जैसा निर्वासनिक पुरुषका मन शीतल होता है, मोतियोंकी मालाकरि अरु केलेके वनको प्राप्त हुआ ऐसे सुखको नहीं पाता अरु चंदनोंके लेप करनेहारा ऐसा शीतल नहीं होता, जैसा शीतल निर्वासनिक मन होता है, अरु चंद्रमाको स्पर्शकरि ऐसा शीतल नहीं होता, जैसा निर्वासनिक पुरुष शीतल होता है, चंद्रमा बाहरकी तप्तता मिटाता है परंतु अंतर तप्तताको निवृत्त नहीं करता, अरु निराशताकरिकै अंतरकी तप्तता मिट जाती है, परम शांतिको प्राप्त होता है, जैसी शीतलता निर्वासनिक पुरुपके संगकरि होती है, तैसी और किसी उपायते नहीं प्राप्त होती ॥ हे रामजी ! ऐसा सुख स्वर्गविषे नहीं प्राप्त होता, अरु सुंदर स्त्रियोंके स्पर्शकरि भी ऐसा सुख नहीं प्राप्त होता, जैसा सुख निर्वासनिकको प्राप्त होता है, निर्वासनिक पुरुष तिस सुखको प्राप्त होता है, जिस सुखविषे त्रिलोकीके सुख तृणवत् भासते हैं ॥ हे रामजी ! आशारूपी एक करंजुएका वृक्ष है, तिसके काटनेको उपशमरूपी कुहाड़ा है, जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है, तिसको सब पृथ्वी गोपदके समान तुच्छ भासती है, अरु मेरु पर्वत एक टूटे वृक्षसमान भासता है, अरु दिशा डब्बीके समान भासतीं हैं. काहेते कि, उत्तमपदको प्राप्त हुआ है, त्रिलोकीकी विभूति तृणकी नाईं तुच्छ देखता है, जो पुरुप निर्वासनिक हुआ है, सो जगत्को देखिकरि हँसता है, अरु कदाचित् जगत्के पदार्थोंकी कल्पना नहीं फुरती, तृणवत् जानिकरि जगत्को त्याग दिया है, अरु सदा आत्मतत्त्वविषे स्थित है, तिसको उपमा किसकी दीजे, तिस पुरुपकी उदय अस्त अहं त्वं आदिक कलना नष्ट हो गई हैं, केवल आत्मस्वभावको प्राप्त हुआ है, तिस ईश्वर आत्माको तोलि कौन सकै ? जब दूसरा उसके समान होवै, तब तोलै ॥ हे रामजी ! वह पुरुष सब संकटोंके अंतको प्राप्त भया है ॥ हे रामजी ! यह जगत् मिथ्या भ्रमरूप है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि भासता है जैसे भ्रमकरि मरुस्थलविषे नदी भासती है, जैसे मद्यपानकरि नगर भ्रमता भासता है, तैसे यह मिथ्या जगत् भ्रमकरिकै भासता है, इसकी आशा मत कर, तू

बुद्धिमान् पंडित है, मूर्खोंकी नाईं मोहको प्राप्त क्यों होताहै, यह मैं, यह मेरा अज्ञानकरिकै भासताहै, इस कलनाको चित्तते दूर कर, यह वास्तव कछु नहीं सब जगत् आत्मारूप है, नानात्व कछु है नहीं, जो सम्यक्-दर्शी पुरुष है, सो जगत् एकरूप जानिकरि धैर्यवान् रहता है खेदको कदाचित् प्राप्त नहीं होता ॥ हे रामजी ! जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है अरु आत्मविचारकरि आत्मपदको प्राप्त हुआ है, तिसको देखिकरि मो-हनेवारी माया भी भागि जाती है, निकट नहीं आती, जैसे सिंहके नि-कट मृग नहीं आता, तैसे ज्ञानवान्के निकट माया नहीं आती, सुंदर स्त्रियां अरु मणि कांचन आदिक धन अरु पत्थर काष्ठ तिसको तुल्य भासता है, भोगोंकरि उसको सुख नहीं होता, अरु आपदाकरि खेद नहीं होता, सदा ज्योंका त्यों रहता है, जैसे पर्वत वायुकरि चलायमान नहीं होता, तैसे वह पुरुष सुख दुःखकरि चलायमान नहीं होता, सुंदर बाल, स्त्री उसके चित्तको खैंचि नहीं सकती, अरु कामदेवके बाण चलाये उस-पर टूक टूक हो जाता है, राग द्वेष उसको खैंचि नहीं सकता, सदा आपको निराकार अद्वैत निष्क्रिय निर्गुण जानता है, अरु सुंदर बगीचे ताल वल्ली शय्या इंद्रियोंके विषयभोग अरु दुःख देनेहारे उसको तुल्य है, रागद्वेषको नहीं प्राप्त करते, जैसे पर्वतविषे ऋतुअनुसारकरि मीठे कटु फल होते हैं, सो उसको किसीविषे रागद्वेष नहीं होता, अकस्मात् जो भोग आय प्राप्त होता है, तिसको भोगता हैं, परंतु हर्ष शोकवान् नहीं होता ॥ हे रामजी ! यथार्थदर्शी इष्ट अनिष्टविषे चलायमान नहीं होता, जैसे वसंतऋतुके आनेजानेविषे पर्वत सुखदुःखको नहीं प्राप्त होते कर्मइंद्रियोंकरि कर्म करताहै. परंतु तिसविषे आसक्त नहीं होता है, बाह्य दृष्टिसों आसक्त भासता है, परंतु अंतर आसक्त नहीं होता, अरु जो बाह्य आसक्त नष्ट नहीं होता, परंतु अंतर देहविषे चित्त आसक्त है, सो मग्न हो डूबता है, जैसे शुद्धमणि चीकड़विषे दृष्ट आती है, तौ भी तिसको कलंक कछु नहीं अरु जो बीचते खोटी है, बाह्य उज्ज्वल भी भासती है, तौ भी सकलंक है, तैसे जो चित्तकरि आसक्तहै, सो आसक्त है, अरु जो चित्तभावकरि आसक्त नहीं सो आसक्त नहीं ॥ हे रामजी !

आत्मसत्ता सदा प्रकाशरूप है, अरु नित्यशुद्ध परम आनंदस्वरूपहै, जिस पुरुषको अपने शुद्ध स्वरूपका ज्ञान है, तिसको विस्मरण नहीं होता॥ हे रामजी! शरीरसों अहंभाव जिसका उठि गयाहै, इंद्रियोंकरि कर्म करता है तौ करता भी नहीं करता, अरु जो देहविषे अहंभावहै, सो नहीं करता भी करताहै, जैसे किसीको बांधव चिरकालते मिला बहुरि विस्मरण नहीं होता, तैसे अपना स्वरूप जिनने जाना है, तिसको विस्मरण नहीं होता हे रामजी! जिनको शुद्धस्वरूपका सम्यक्ज्ञान होताहै, तिनको भ्रांतिरूप जगत् नहीं भासता जैसे जेवरीविषे सर्पभासताहै, जब भ्रम निवृत्तहुआ, तब ज्योंकी त्यों जेवरी भासती है, सर्प नहीं भासता, जैसे मरुस्थलविषे जलबुद्धि निवृत्त भई बहुरि जलबुद्धि नहीं होती, तैसे आत्माके जानेते देहभाव नहीं होता, जैसे पहाड़ते नदी उतरती है, सो बहुरि पहाड़पर नहीं चढ़ती, जैसे स्वर्णका खोट अग्निकरि जला हुआ बहुरि खोटा नहीं होता, चीकड़विषे डारिए तौ भी खोटा नहीं होता, तैसे जब हृदयकी चिद्ग्रन्थि टूटी तब गुणोंके व्यवहारविषे भी गांठ नहीं पडती. अर्थ यह कि, बंधमान नहीं होता, जैसे वृक्षते टूटा फल बहुरि नहीं लगता, तैसे जिसका देहाभिमान टूटा है, सो बहुरि नहीं होता है, अरु स्वरूप-विषे ही अभिमान होता है, जैसे लोहके हथोड़ेसाथ परका चूर्ण किया, तब बहुरि नहीं फुरता, जिस पुरुषने अविद्याको जाना है, सो बहुरि उसकी संगति नहीं करता, जैसे जिस ब्राह्मणने चंडालोंकी सभा जानी तब बहुरि उनकी संगति नहीं करते, तैसे जब आत्मविचारकरि मनको चूर्ण किया, तब बहुरि नहीं फुरता, जैसे जिस पुरुषने अवि-द्यारूप जगत्को जाना है, सो बहुरि जगत्के पदार्थोंविषे आसक्त नहीं होता॥ हे रामजी! विष जो मधुर जलसाथ मिला होवै, सो जबलग जाना नहीं, तबलग तिसको पान करता है, अरु जब उसको जाना तब बहुरि नहीं पान करता, तैसे जबलग इस संसारको ज्योंका त्यों नहीं जाना, तबलग इसके पदार्थोंकी इच्छा करता है, जब जाना कि, मायामात्र हैं, तब इसकी इच्छा नहीं करता॥ हे रामजी! सुंदर स्त्रियां जो नानाप्रकारके वस्त्रों भूषणसहित दृष्ट आतीहैं, इनको जानताहै कि, यह असत् मांस रुधिर आदिककी पुतलियां बनीं हैं और कछु नहीं, ऐसे जानिकरि जो तिनकी इच्छा त्यागता है, सो निवृत्त हो जाता है,

जैसे मूर्तिऊपर रंग नील पीत श्याम लिखे होते हैं, तैसे उसके वस्त्र अरु केश हैं. हे रामजी! जिस पुरुषको आत्माका साक्षात्कार होता है, तिसको अवस्तुविषे वस्तुबुद्धि नहीं होती, अवस्तुविषे वस्तुबुद्धि तब होती है, जब वस्तुका विस्मरण होता है, सो तौ ज्ञानवान्‌को सदा स्वरूपका स्मरण है, तिसको अवस्तुविषे वस्तुबुद्धि कैसे होवै, जिसको आत्मबुद्धि हुई है, उसको विस्मरण नहीं होता, जैसे किसी पुरुषने गुड किसी पास रक्खा होवै, अरु वह खाय जावै, तौ उसको दंड आदिक कर्मकारि सकैगा,-परंतु उसका रस दूर करनेको समर्थ नहीं, तैसे जिसको आत्माका अनुभव हुआ है, तिसको दूर करनेको कोऊ समर्थ नहीं ॥ हे रामजी! जैसे परव्यसनी नारी होती है, किसी पुरुष साथ उसका चित्त लगता है, तब गृहका कार्य भी करती है, परंतु चित्त तिसका सदा उसविषे रहता है, तैसे ज्ञानवान् क्रिया करता है, परंतु तिसका चित्त सदा आत्मपदविषे रहता है, जैसे परव्यसनी नारीको अपना भर्ता दंड भी करता है, तौ भी स्पर्शका सुख उसके हृदयते दूर नहीं कारि सकता, तैसे जिसको आत्मअनुभव हुआ है, तिसके दूर करनेको कोई समर्थ नहीं; देवता दैत्य दूर नहीं कारि सकते तौ औरकी क्या वार्ता है, वडे जो सुख अथवा दुःख अनुभव प्रवाह आनि पडै तौ भी तिसको खंडन नहीं कारि सकते कर्ता हुआ भी अकर्ता हुआ है, जैसे परव्यसनी नारी परपुरुषके संयोगकारि दुःख पाती है, परंतु इसको स्पर्शके सुखका अनुभव हुआ है तिसके संकल्पकारि अनुभव अखंड करती है, तिसकारि उसको दुःख नहीं भासता, तैसे जिसको आत्मसुख प्राप्त भया है, तिसको दुःख सुख अपर कछु नहीं भासता ॥ हे रामजी! सम्यक् ज्ञानकारि जिसकी अविद्या नष्ट भई है, सो दुःखोंको नहीं देखता; जो उसके अंग काटे, तौ भी दुःख नहीं होता शरीरके नष्ट हुए नष्ट नहीं होता, सुख दुःख उसके नष्ट हो गए हैं, सदा आत्मपदविषे निश्चय रहता है, संकटवान् भी दृष्ट आता है, परंतु तिसको संकट कोऊ नहीं, वनविषे रहै, अथवा गृहविषे रहै, व्यवहार करै अथवा समाधि करै, वह सदा ज्योंका त्यों रहता है, उसको खेद कष्ट किसी प्रकार नहीं होता ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे निरास्पदमौनवि-..नाम एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमः सर्गः ७०.
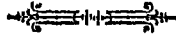
मुक्तामुक्तविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! राजा जनक राज्यव्यवहार करता रहा, परंतु आत्मपदविषे स्थित था, तिसकरि उसको कलंक न भया, सदा विगतज्वरही रहा, अरु तेरा प्रपितामह जो राजा दिलीप था, सो भी सर्व आरंभोंको करता रहा, परंतु अंतर रागद्वेषको न प्राप्त भया, जीवन्मुक्त होके चिरपर्यंत पृथ्वीका राज्य राजा करत भया. अरु राजा अज नानाप्रकारके युद्ध राज्यव्यवहारकी पालना करत भया. अरु सदा जीवन्मुक्त स्वभावविषे स्थित भया. राजा मांधाता नानाप्रकारकी युद्धचेष्टा करता रहा, परंतु सदा परमपदविषे निश्चय रहा, कदाचित् मोहको प्राप्त न भया. अरु राजा बलि पातालविषे स्थित हुआ, महात्यागी राज्यव्यवहारको करता भी दृष्ट आया, परंतु स्वरूपके ज्ञानकरि सदा शांतरूप जीवन्मुक्त होकरि विचरता भया, अरु नभचर दैत्योंका राजा सदा नाना युद्ध आदिक क्रियाविषे रहा, देवताओंके साथ सदा विरोध रहा, परंतु हृदयविषे कछु ताप न भया; अरु इंद्रके युद्धविषे वृत्रासुर दैत्य मारा, परंतु सदा शीतल कदाचित् क्षोभको प्राप्त न भया अरु दैत्योंका राजा प्रह्लाद पातालविषे राज्य करता रहा, परंतु हृदयविषे कछु क्षोभ न भया ॥ हे रामजी! शम्बर नामक दैत्य अपनी सृष्टिके रचनेको उदय भया, सो तिस रचनेविषे बंधमान न भया, सदा शांबरी मायापरायण भया अरु मायासाथ एक मायावीरूप होकरि स्थित हुआ॥ हे रामजी! यह संसार जो शांबरीमायारूप है, तिसका शांबरी त्यागकरि अपने स्वरूपविषे स्थित रहै, अरु विष्णु भगवान् सदा दैत्योंको मारता है, युद्ध करता रहता है, अरु हृदयविषे अलेप बुद्धि है, तिसकरि सदा सुखी जीवन्मुक्त हैं. अरु मूसल नाम दैत्य विष्णुसाथ युद्धकरि शरीरको छांडत भया, परंतु अंतर देहसाथ संबंध कछु न था; तिसकरि जीवन्मुक्त सुखी रहा, पिंडको न प्राप्त भया ॥ हे रामजी! सर्व देवताओंका मुख अग्नि है, सो यज्ञलक्ष्मीको चिरकालपर्यंत भोगता है, परंतु ज्ञानवान् है,

इसकारि क्षोभवान् नहीं होता, सदा शीतल रहता है, अरु देवता सदा चंद्रमाकी किरणोंते अमृतपान करते हैं, परंतु चंद्रमाको कछु क्षोभ नहीं होता, अरु देवताओंका गुरु बृहस्पति स्त्रीऊपर चंद्रमासाथ युद्ध करता भया अरु देवताके निमित्त नानाप्रकारके कर्म करता है, अरु रागद्वेषको नहीं प्राप्त होता, ताते जीवन्मुक्त है ॥ हे रामजी ! दैत्योंका गुरु शुक्रजी, सो दैत्योंके निमित्त सदा यत्न करता रहता है, अरु लोभीकी नाईं अर्थको चिंतवता है, परंतु जीवन्मुक्त है, जो अंतर सदा शीतल रहता है, कदाचित् खेदको प्राप्त नहीं होता, अरु पवन प्राणियोंके अंगोंको चिरकाल फेरता है, चेष्टा करता हैं, अरु खेदको प्राप्त नहीं होता ताते जीवन्मुक्त है, अरु ब्रह्मा सदा लोकोंको उत्पन्न करता है, अरु प्रलयपर्यंत इसकी क्रियाविषे रहता है, परंतु स्वरूपका साक्षात्कार है, ताते जीवन्मुक्त है, अरु विष्णु भगवान् युद्धादिक द्वन्द्वोंविषे रहता है, जरा मृत्युआदिक भावको प्राप्त होता है, परंतु सदा मुक्तस्वरूप है. अरु सदाशिव त्रिनेत्र है, अर्धांगधारी रहा है, परंतु हृदयविषे संसक्त नहीं ताते जीवन्मुक्त है, अरु गौरी मोतियोंकी माला कंठविषे पहरती है, अरु त्रिनेत्रको सदा मालावत् कंठसाथ रखती है, परंतु अंतरते शीतल रहती है, ताते जीवन्मुक्त है, अरु स्वामिकार्तिक दैत्यसाथ युद्ध करता रहा, परंतु ज्ञानरूपी रत्नोंका समुद्र था, अंतरते शीतल रहा अरु सदाशिवका भृंगीगण अपना रक्त मांस माताको देत भया, परंतु धैर्यविषे रहा, खेदको न प्राप्त भया, नानाप्रकारकी क्रिया करता भया, परंतु जीवन्मुक्त है ताते सदा सुखी है. अरु नारद मुनि सदा मुक्तस्वभाव है, सदा जगत्की क्रियाजालविषे रहताहै, परंतु क्षोभको नहीं प्राप्त भया, ताते जीवन्मुक्तहै, अरु जीवन्मुक्तमन मौन जो विश्वामित्रहै, सो वेदोक्त कर्म कर्ता है अरु फिरता रहता है, ताते जीवन्मुक्त है, अरु सूर्य भगवान् दिनको प्रकाश करता है, अरु फिरता रहता है, परंतु जीवन्मुक्त है, सदा सुखी रहता है, अरु यम सदा जीवोंको दंड करता रहता है, अरु क्षोभविषे रहता है, परंतु जीवन्मुक्त है, इंद्र कुबेरते आदिलेकारि त्रिलोकीविषे जीवन्मुक्त हैं, व्यवहारविषे शीतल हैं, कई मूढ शिलावत् हो हैं, कई परमबोधवान् वनविषे जाय स्थित भये हैं, जैसे भृगु,

भारद्वाज, विश्वामित्र, जाय स्थित भये हैं, अरु कई चिरकालपर्यंत राज्य पालना करते रहते हैं, जैसे जनक, मांधाता आदिक करते हैं, कई आकाशविषे बड़ी कांति धारिकारि बृहस्पति, चंद्रमा, शुक्र, सप्तर्षि, आदिक जाय स्थित भये हैं, कई स्वर्गविषे अग्नि, वायु, कुबेर, यम, नारदादिक जाय स्थित भये हैं, कई जीवन्मुक्त पातालविषे प्रह्लादादिक जाय स्थित भये हैं, कई देवतारूप धारिकारि आकाशविषे स्थितहैं, कई मनुष्यरूप धारिकारि मनुष्यलोकविषे स्थितहैं, कई तिर्यक्योनिविषे स्थित हैं, उनको सर्वथा सर्व प्रकार सर्वविषे सर्वात्मारूप भासता है, इतर कछु नहीं, नानाप्रकारका व्यवहार है, सो भी अद्वैतकारि किया ॥ हे रामजी! दिव्य विष्णु अरु धाता अरु सर्व ईश्वर अरु शिव आदिक सब आत्माके नाम हैं, अरु वस्तुरूपविषे जो अवस्तु है, अरु अवस्तुविषे जो वस्तु है, सो अवस्तुसों वस्तु तब निकसती है, जब युक्ति होती है, अरु वस्तुसों अवस्तु भी युक्तिकारि दूर होती है, जैसे अवस्तुरूप रेत है, तिससों स्वर्ण युक्तिकारि निकसता है, अरु वस्तुरूपी सोनेसों मैल युक्तिकारि दूर होता है, तैसे अवस्तुरूप देहादिकोंविषे वस्तुरूप आत्मा शास्त्रोंकी युक्तिकारि पाता है. अरु वस्तुरूप जो आत्मासों दृश्यरूप अवस्तु भी शास्त्रोंकी युक्तिकारि दूर होती है ॥ हे रामजी! जो पापते भय करताहै, सो जब धर्मविषे प्रवर्तता है, तब निर्भय होता है, तैसे दुःखोंके भय करिकै जीव आत्मपदकी ओर प्रवर्तता है, तब भावनाके वशते असत्सों सत्को पाता है, ध्यान अरु योग भी शून्य हैं परंतु यत्नके बलकारि तिससों सत् पाता है, अरु जो असत् है, सो उदय होकारि सत् भासती है, जैसे बाजीगरकी बाजीसों शशेके सींग भासि आतेहैं, तैसे आत्माविषे असद्रूप जो जगत् सो अज्ञानकारि दृढ हो भासता है, परंतु कल्पके अंतविषे यह भी नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी! यह जो सूर्य चंद्रमा इंद्रादिक हैं, तिनके नाम भिन्न रहैंगे अरु बडे सुमेरु आदि पर्वत अरु समुद्र आदिक सब नाश हो जावैंगे जेते कछु भाव पदार्थ तुझको भासते हैं, उत्तम मध्यम कनिष्ठ सो सब नाश हो जावैंगे; सब मायामात्र हैं, कोई नहीं रहेगा, ऐसे विचार करिकै इनके भावअभावविषे हर्ष शोक मत कर, अरु समताभावको प्राप्त होहु ॥ हे

रामजी ! जो असत्है, सो सत्यकी नाईं भासता है, अरु जो सत् है सो असत्की नाईं भासता है; तातें यथार्थ विचारकरि सत्रूप आत्मपदविषे स्थित होहु, अरु असत्रूप जगत्की आस्थाको त्यागि समताभावको ग्रहण कर, इस लोकविषे जो अविवेकमार्गविषे विचरता है सो मुक्त नहीं होता, इस प्रकार कोटि जीव संसारसमुद्रविषे डूबते हैं, अरु जो विवेकविषे प्रवर्तता है सो मुक्त होता है ॥ हे रामजी ! जिसका मन क्षय हुआ है. तिसको मुक्तरूप जान, अरु जिसका मन क्षय नहीं भया, सो बंधनविषे है, ताते जिसको सर्व दुःखोंते मुक्तिकी इच्छा होवै सो आत्मविचार करै तिसकरि सर्व दुःखनाश हो जावैंगे ॥ हे रामजी ! दुःखोंका मूल चित्त है, जबलग चित्त है, तबलग दुःख है जब चित्त नष्ट हो जाता है, तब दुःख सब मिटि जाते हैं ॥ हेरामजी! जब आत्मज्ञान होता है तब चित्तका अभाव हो जाता है, अरु दुःख सब मिटि जाते हैं, अरु राग इच्छा सब भय मिटि जाते हैं केवल शांतरूप होता है, जनक आदिक जो जीवन्मुक्त हुए हैं, सो निराग निःसंदेह होकरि महाबोधवान् व्यवहार भी करते रहे, परंतु सदा शीतलचित्त रहेहैं, ताते तू भी विवेककरि चित्तको लीन कर, हलोहर बंटा पत्थर अरु स्वर्णसम जीवन्मुक्त होकरि विचर ॥ हे रामजी ! मुक्ति भी दो प्रकारकीहै, एक जीवन्मुक्तिहै, एक विदेहमुक्तिहै जो पुरुष सर्व पदार्थोंविषे असंसक्तहै, अरु मन शांतभावको प्राप्त हुआहै, सो मुक्त कहाता है, अरु जिस पुरुषका सर्व पदार्थोंका ज्ञानकरि स्नेह नष्ट भया है, अरु व्यवहार करता दृष्ट आता है तौ भी शीतलचित्त है, सो जीवन्मुक्त कहाता है, जो पुरुष सर्व भाव अभावपदार्थोंको त्यागिकरि केवल अद्वैततत्त्वको प्राप्त हुआ है, अरु शरीर आदिकक्रिया कोऊ दृष्ट नहीं आती सो विदेहमुक्त कहाता है, अरु जो तीसरा है, जिसका स्नेह पदार्थोंते दूर हुआ नहीं सो बंध कहाता है, मुक्तिके अर्थ भी यत्न करता है, जब युक्तिपूर्वक यत्न करता है, तब दुस्तर भी सुगम हो जाताहै, अरु जो युक्तिते रहित यत्न करता है, तिसको गोपद भी समुद्र हो जाता है ॥ हे रामजी ! जिनने आत्मकरि आत्मविचार कियाहै, तिनको विस्तृत जगत् समुद्र गोपद होजाता है, अरु अज्ञानीको गोपद भी दुस्तर हो गया है, कोऊ

इष्ट अनिष्ट अल्प भी आनि प्राप्त होता है; तिसविषे डूबि जाता है, निकस नहीं सकता, तिसको गोपद भी समुद्र है, अरु ज्ञानीको अत्यंत विभूति ऐश्वर्य आनि प्राप्त होवै, अथवा विपर्यय तिसका अभाव हो जावै, तौ भी तिसविषे रागद्वेषकारि नहीं डूबता ॥ हे रामजी ! जिसको कछु प्राप्ति होवै सो अपने प्रयत्नके बलकारि होती है, जो कोऊ प्रधान हुआ है, सो प्रयत्नरूपी वृक्षके फलकारि हुआ है, आत्मपदकी प्राप्ति भी प्रयत्नरूपी वृक्षका फल है ताते और उपाय त्यागिकारि आत्मपदकी प्राप्तिका प्रयत्न कर ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे मुक्तामुक्तविचारो नाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ७१.

संसारसागरयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जेती कछु जगज्जाल है, सो सब आत्मा ब्रह्मका आभासरूप है, अज्ञानकारि स्थिरताको प्राप्त हुआ है, विवेककारि शांति हो जाती है, ब्रह्मरूपी समुद्रविषे जगत्रूपी आवर्त फुरते है तिनकी संख्या करनेको कोऊ समर्थ नहीं, आत्मरूपी सूर्यके जगत्रूपी त्रसरेणु हैं ॥ हे रामजी ! असम्यक् दर्शन जगत्की स्थितिका कारण हैं, अरु सम्यक् दर्शनकारि शांत हो जाता है, जैसे मरुस्थलविषे असम्यक् दर्शनकारि जल भासता है, सम्यक् दृष्टिकारि अभाव हो जाताहै ॥ हे रामजी ! संसाररूपी समुद्र अपार घोररूप है, सो शास्त्र युक्ति अरु आत्मअभ्यासविना तरना कठिनहै, मोहरूपी जलकारि पूर्णहै अरु मरणरूपी आवर्त है अरु पुण्यरूपी जग है ॥ अरु वडवाग्नि इसके अंगोंविषे नरक समान हैं, अरु तृष्णारूपी घूमरघेर है, अरु इंद्रियां मनरूपी तंदुल मच्छ हैं, क्रोधरूपी सर्प हैं, तिनविषे जीवरूपी नदियां हैं, सो प्रवेश करती हैं; जन्ममरणरूपी वृत्तचक्र हैं, तिनको जो तारि जाता है, सो पुरुष है, अरु स्त्रियां जो सुन्दर लगती हैं, सो महाबलवंत हैं, नेत्र

जिनके पहाड़के खैंचनेविषे समर्थ हैं कमलकी नाईं, अरु दंत मोतियोंकी नाईं हैं, होठ तरियांवत् हैं, इत्यादिक जो सुंदर अंग हैं, सो महादुःखके देनेहारे हैं, वडवाग्निकी नाईं हैं, जो इनको तारि जाता है, सोई पुरुष है ॥ हे रामजी ! जो जहाज अरु मल्लाह होते हैं, तौ भी इनको नहीं तरता, तिसको धिक्कार है, जहाज अरु मल्लाह कौन हैं, सो श्रवण कर, मनुष्यशरीरविषे कछु विचारसहित बुद्धि है, सो जहाज है, अरु संत-रूपी मल्लाह हैं, इनको पाइकारि जो संसारसमुद्रको नहीं तरते तिनको धिक्कार है, ऐसे संसारसमुद्रको ग्रहणकारि जो तरिगया है, तिसको पुरुष कहते हैं ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषने आत्मविचारविषे बुद्धिको लगाई है, सो तारि जाता है, अन्यथा तारि नहीं सकता, जिसको आत्म अभ्यास दृढ़ भया है, सो तरनेको समर्थ होता है ॥ हे रामजी ! प्रथम आर्जव सो ज्ञानवान् पुरुषोंकेसाथ विचार अरु बुद्धिकारि संसारसमुद्रको देखौ, जब तैंने इसको ज्योंका त्यों जाना तब तू विलासक्रीडा करने-योग्य होवैगा ॥ हे रामजी ! तू तौ भगवान् है, परंतु बोधके विचारकारि संसारसमुद्रको तारि जाए, तू तौ जवान है, तेरे पाछे और तेरे स्वभावको विचारकारि संसारसमुद्रको तारि जावैंगे, अरु जो इस शुभ मार्गको त्यागिकारि विषयमार्गको धारते हैं, सो संसारसमुद्रविषे डूबे हैं ॥ हे रामजी ! यह जो विषयभोग हैं, सो विषरूप हैं, जो इनको सेवैगा सो नष्ट होवैगा , परंतु जिसको ज्ञान प्राप्त हुआ है तिसको यह जैसे गरुड़ मंत्र पढ़नेवालेको सर्प दुःख नहीं दे सकते, तैसे दुःख दे नहीं सकते, जिसका परिणाम शुद्ध हुआ है, सो विभूतिमान् है, बल वीर्य तेज यह तीनों तत्त्वके साक्षात्कारकारि चढ़ि आते हैं, जैसे वसंतऋतुके आएते रस फूल फल सब सुन्दर हो आते हैं ॥ हे रामजी ! जो ज्ञानकी धर्म लक्ष्मी प्राप्त भई सो पूर्ण अमृततुल्य है, शीतल शुद्ध सम प्रकाशरूप है, लक्ष्मीको पाइकारि विदितवेद स्थित हो रहते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे संसारसागरयोगोपदेशो नाम एकसप्ततितमः सर्गः ॥७१॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ७२.

जीवन्मुक्तवर्णनम् ।

रामउवाच ॥ हे मुनीश्वर ! संक्षेपते तत्त्ववेत्ताके लक्षण बहुरि कहो, जिनको तत्त्वका चमत्कार हुआ है, तिनकी उदार वाणीकरि वृत्ति कहो, ऐसे कोन हैं, जो तुम्हारे वचन सुनते तृप्त होवैं ? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्तके लक्षण मैं तुझको बहुत प्रकार आगे कहे हैं, बहुरि भी सुन॥ हे महाबाहो ! संसारको ज्ञानवान् सुषुप्तिकीनाईं जानता है, अरु सब ईषणा तिसकी नष्ट हो गई हैं, अरु सब जगत्को आत्मारूप देखता है, केवल भावको प्राप्त होता है, अरु संसार सुषुप्तिरूप होजाता है, आत्मानंदविषे घूर्म रहताहै, देताहै, परंतु अपने जाननेकारि किसीको नहीं देता, अरु लोक दृष्टिकारि प्रत्यक्ष हाथोंहाथ ग्रहण करता है, परंतु अपनी दृष्टिकारि कछु नहीं लेता, ऐसा जो आत्मदर्शी ज्ञानवान् उदार आत्मा है, सो यंत्रकी पुतलीवत् चेष्टा करता है, जैसे यंत्रकी पुतली अभिमानते रहित चेष्टा करती है, तैसे ज्ञानवान् अभिमानते रहित चेष्टा करता है, देखता है, हँसता है, लेता है, देता है, परंतु अंतरते सदा शीतलबुद्धि रहता है, भविष्यका कछु विचार नहीं करता, अरु भूतका चिंतवन नहीं करता, अरु वर्त्तमानविषे स्थिति नहीं करता, सर्व कार्योंविषे अकर्त्ता है, संसारकी ओरते सोई रहा है, आत्माकी ओरते जाग्रत् है, अंतरते सर्वका त्याग किया है, बाह्य सर्व कार्योंको करता है, अंतर किसी पदार्थकी इच्छा नहीं, अरु बाह्य जैसे प्रकृत आचार आनि प्राप्त होता है, अभिमानते रहित तैसे करता है, दोष किसीविषे नहीं करता सुखदुःखविषे पवनकी नाईं होता है, भ्रमको त्यागिकारि सर्व कार्य कर्मोंको करता है, उदासीकी नाईं, न किसीकी वांछा है, न किसीविषे खेदवान् है, बाह्यते सब कछु कर्त्ता दृष्ट आवै, अंतरते सदा असंग है ॥ हे रामजी ! भोक्ताविषे भोक्ता है, अभोक्ताविषे अभोक्ता है, मूर्खोंविषे मूर्खवत् स्थित है, बालकोंविषे बालकवत् स्थित है, वृद्धविषे वृद्धवत्, धैर्यवान्विषे धैर्यवान् स्थित है, सुखविषे सुखीहै, दुःखविषे धैर्यवान्है,

अरु सदा पुण्यकर्त्ता बुद्धिमान् है, सदा प्रसन्न मधुर वाणीसंयुक्त है, अरु अंतरते सदा तृप्त है, दीनता तिसकी निवृत्त भई है, सर्वथा कोमलस्वभाव है, चंद्रमाकी नाई शीतल है, पूर्ण शुभ कर्म करनेविषे कछु अर्थ नहीं, अशुभविषे कछु पाप नहीं ग्रहणविषे ग्रहण नहीं न त्यागविषे त्याग है, न बंध है, न मुक्त है, न आकाशविषे कार्य है, न पातालविषे कार्य है, यथावस्तु यथादृष्ट आत्माको देखताहै, द्वैतभाव तिसको कछु नहीं फुरता अरु बंध मुक्तके निमित्त कछु कर्तव्य नहीं, सर्व संदेह सम्यक्ज्ञानकरि जलि गए, जैसे पेटीते मुक्त हुआ पक्षी आकाशमें उडताहै, तैसे शंकाते रहित चित्त उनका आत्मआकाशको प्राप्त हुआ है॥ हे रामजी! जिसका मन संसारभ्रमते मुक्तहुआहै, अरु समरस आत्मभावविषे स्थित भयाहै, तिसको इष्टअनिष्टविषे कछु राग द्वेष नहीं होता आकाशकी नाई सबविषे सम रहता है, जैसे पिंगुडेविषे बालक अभिमानते रहित अंगोंको हिलाता है, तैसे ज्ञानीकी चेष्टा अभिमानते रहित होती है, जैसे मद्यपान करनेवाला उन्मत्त हो जाता है, तैसे आत्मानंदविषे ज्ञानी घूर्म हो जाता है, द्वैतकी संभाल तिसको कछु नहीं, हेयोपादेय बुद्धिते रहित होता है ॥ हे रामजी! सर्वको सर्व प्रकार ग्रहण करता है, अरु त्याग भी करता है, परंतु अंतरते ग्रहण त्याग कछु नहीं करता, जैसे बालकोंको ग्रहणत्यागकी बुद्धि नहीं होती, तैसे ज्ञानीको नहीं होती, उसको सर्व कार्यों विषे राग द्वेष नहीं फुरता, जगत्के पदार्थोंको न सत् जानिकरि ग्रहण करता है, न असत् जानिकरि त्याग करता है, सर्वविषे एक अनुस्यूत आत्मतत्त्व देखता है, न इष्टविषे सुखबुद्धि करता है, न अनिष्टविषे दोषबुद्धि करता है ॥ हे रामजी! जो सूर्य शीतल हो जावै, अरु चंद्रमा उष्ण हो जावै, अग्नि अधोको धावै, तौ भी ज्ञानीको कछु आश्चर्य नहीं भासता, वह जानता है, सब चिदात्माकी शक्ति फुरती है, न किसीपर दया करता है, न अदयाहै, न लज्जा करता है, न अलज्जा करता है, न दीन होता है, न उदार होता है, न सुखी होता है, न दुःखी होता है, न हर्ष है, न उद्वेग है सर्व विकारोंते रहित शुद्ध अपने आपविषे स्थित है, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल

होता है, तैसे निर्मल भावविषे स्थित है, जैसे आकाशविषे अंकुर नहीं उदय होता, तैसे उसको रागद्वेष नहीं उदय होते ॥ हे रामजी! ऐसा पुरुष सुखदुःखको कैसा ग्रहण करै, उसको जगज्जाल ऐसे भासता है, जैसे जलविषे तरंग होता है, ऐसे जानिकारि तू भी अपने स्वभाव-विषे स्थित होउ ॥ हे रामजी! स्वप्नविषे एक निमेषकारि स्वप्नसृष्टि फुरि आती है, अरु क्षणविषे नष्ट हो जाती है, तैसे जाग्रत्‌विषे सृष्टि उपजि आती है, अरु लीन हो जाती है, जेती कछु इच्छा अनिच्छा दुःखसुख शोक मोह आदिक विकार हैं, सो सब मनविषे फुरतेहैं, जहां मन होता है, तहां विकार भी होता है, जैसे जहां समुद्र होताहै, तहां तरंग भी होता है, तैसे जहां मन होता है, तहां विकार भी होता है, जहां चित्तका अभाव है, तहां विकारोंका भी अभाव है, जबलग चित्त फुरताहै, तब लग जगद्भ्रम होता है, जब विचाररूपी सूर्यके तेजकारि मनरूपी बर्फका पुतला गलिगया, तब आनंद हुआ, तब सुखदुःखकी दशा शांत हो जातीहै जब सुखदुःखका अभाव हुआ, तब ग्रहण त्याग मिटि जाताहै, इष्टअनिष्ट वांछित नष्ट हो जातेहैं, जब यह नष्ट होजातेहैं, तब शुभ अशुभभी नहीं रहता जब शुभ न रहै, तब रमणीय अरमणीय भी नष्ट हो जाताहै, अरु भोगोंकी इच्छा भी नष्ट हो जाती है, जब भोगोंकी इच्छा नष्ट हो जाती है, तब मन भी निराशपदविषे लीन हो जाता है ॥ हे रामजी! जब मूलसहित मन नष्ट भया, तब मनविषे जो संसारके संकल्प सो कहां रहैं, जैसे तिलोंके जलेते तेल नहीं रहता, तैसे मनविषे संकल्प विकल्प नहीं रहते; तब केवल शांत आत्मा शेष रहता है, जैसे मंदराचलके क्षोभ मिटेते क्षीरसमुद्र शांतिमान् होता है, तैसे चित्त शांत होता है ॥ हे रामजी! ताते भावविषे अभावकी भावना दृढ करहु, अरु स्वरूपका अभ्यास करहु, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे कलनाकोत्यागिकारि महात्मा पुरुष निर्मल हो जाता है ॥ ॥ इति श्रीयो० उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तवर्णनं नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥७२॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ७३.

जीवनमुक्तज्ञानबंधवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे जलविषे द्रवताकरिके चक्र आवृत होते हैं, सो असत्ही सत् होकरि भासतेहैं, तैसे चित्तके फुरने-करि असत् जगत् सत् हो भासता है, जैसे नेत्रोंके दूखनेकरि आकाश-विषे तरुवरे मोरके पुच्छवत् मुक्तमाला हो भासते हैं, सो असत्ही सत् भासतेहैं, तैसे चित्तके फुरणेकरि जगत् भासता है जैसे बादलोंके चलने-करि चंद्रमा धावता दृष्ट आता है, तैसे चित्तके फुरणेकरि जगत् भासता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जिसकरि चित्त फुरता है, अरु जिसकरि अफुर होता है, सो प्रकार कहौ, जिससे तिसका उपाय करौं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे बर्फविषे शीतलता होती है, अरु तिलोंविषे तेल होता है, अरु फूलोंविषे सुगंध होता है, अग्निविषे उष्णता होतीहै, तैसे चित्तविषे फुरना होती है, चित्त अरु फुरना दोनों एक वस्तु अभेद हैं, दोनोंविषे जब एक नष्ट होवै, तब दोनों नष्ट हो जावैं, जैसे शीतल अरु श्वेतताके नष्ट हुए बर्फ नष्ट हो जाता है, तैसे एकके नाश हुए दोनों नाश हो जातेहैं, सो चित्तके नाशके दो क्रम हैं, योग अरु ज्ञान, योग कहिए चित्तकी वृत्तिका निरोध करना अरु ज्ञान कहिए सम्यक् विचारना ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! वृत्तिका निरोध किस युक्तिकरि होता है, प्राण अपान और पवनका रोकना कैसे होताहै, जिस योगकरि अनंत सुखसंपदा प्राप्त होती है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस देहविषे जो नाड़ी हैं, तिनविषे प्राणवायु फिरता है, जैसे पृथ्वी ऊपर नदियोंका जल फिरता है, सो प्राणवायु एक है, स्पंदके वशते नानाप्रका-रकी विचित्र क्रियाको प्राप्त होता है, तिसकरि अपान आदिक संज्ञाको पाता है, योगीश्वर कल्पते हैं, जैसे पुष्पविषे सुगंध अभेदरूप है, अरु बर्फविषे श्वेतता अभेद है, आधार आधेय एकरूप है, तैसे प्राण अरु चित्त अभेदरूप हैं, जब अंतर प्राणवायु फुरता है, तब चित्तकला फुरती है, फुरिकारि संकल्पके सन्मुख होती है, तिसका नाम चित्त कहाता है,

जैसे जल द्रवीभूत होता है, तिसविषे लहरीचक्र फुरि आतेहैं, तैसे प्राणों-करि चित्त फुरि आताहै, चित्तके फुरनेका कारण प्राणवायुहै, जब प्राण-वायुका निरोध होता है, तब निश्चयकरि मन भी शांत होताहै, सो मनके लीन हुए, संसार भी लीन हो जाता है, जैसे सूर्यप्रकाशके अभाव हुए, रात्रिविषे मनुष्योंका व्यवहार शांत हो जाता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह जो दिन अरु रात्रि निरंतर आगमन करतेहैं, देहरूपी ग्रहविषे प्राणवायुका रोकना किस प्रकार होता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! संतजनोंका संग अरु सत् शास्त्रका विचार, अरु विषयते वैराग्य तिसकरि योग्य अभ्यास होता है, प्रथम जगत्‌विषे असत्‌बुद्धि करनी अरु वांछित जो अपना इष्ट देव है, तिसका ध्यान करना जब चिरकाल ध्यान करता है, तब एक तत्त्वका अभ्यास होता है, तिस-करि प्राणोंका स्पंद रोका जाता है, रेचक पूरक कुंभक जो प्राणायाम हैं, जब अखेदचित्त होकरि अभ्यास दृढ़ करता है, अरु एकध्यान संयुक्त होता है, तिसकरि भी प्राणोंका स्पंद रोंका जाता है; ॐकारका उच्चार करना, ऊर्ध्व तिसकी जो सूक्ष्म ध्वनि होती है, प्रथम शब्द बडी ध्वनिसों होता है, सूक्ष्मध्वनि शेष रहती है, तिसविषे चित्तकी वृत्तिको लगावनी, तब सुषुप्तिरूप अवस्थाविषे वृत्ति तद्रूप हो जाती है, तब प्राणस्पंद रोंका जाता है, अरु रेचक प्राणायाम जो करताहै, तिसके अभ्यासकरि विस्तृत प्राणवायुसों शून्यभाव आकाशविषे जाय लीन होता है, तब प्राणस्पंद रोंका जाता है, अरु कुंभककरि जो प्राणवायुकों अभ्यासके बल स्थित करना, तब प्राणवायु रोंका जाता है, अरु तालुमूलसाथ यत्नसों जिह्वाको ताल घंटासाथ लगानी, इस खेचरी मुद्राकरि वायु ऊर्ध्वरंध्रको जाता हैं, ऊर्ध्वरंध्रविषे गया भी प्राणवायुका स्पंद रोंका जाता है, अरु जो द्वादश अंगुलपर्यंत नासिकाके अग्रविषे अपानरूपी चंद्रमाका निर्मल स्थान आकाशमें है, तिसका देखना ज्योंका त्यों होवे, तौ भी प्राणस्पंद रोंका जाता है, तालुके द्वादश अंगुल ऊर्ध्व रंध्रका अभ्यास होवे, तिसके अंतविषे जब प्राणोंको लगावे, तब तिस संवित्‌विषे प्राणोंका फुरणा नष्ट हो जाता है, अरु जो भवमध्य त्रिपुटीविषे और प्रकाशको त्यागिकरि तिसविषे चेतसकला रह-

तीहैं, तहां वृत्तिको जोडै वृत्तिको जोड़ते प्राणकला रोंकी जाती है, अरु जो सर्व वासनाको त्यागिकरि हृदय आकाशविषे चेतनसंवित्का ध्यान करै, तौ भी चिरकालके अभ्यासकरि ऐसे प्राणस्पंद रोंका जाता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जगत्के भूतोंका हृदय किसको कहते हैं, जिस महाआदर्शविषे सर्व पदार्थ प्रतिबिंबित हो जातेहैं ॥ वसिष्ठ उवाच हे रामजी ! जगत्के भूतके दो हृदय हैं, एक ग्रहण करने योग्य है, एक त्यागने योग्य है, तिसका भेद सुन, नाभिते जो देहविषे दश अंगुल ऊर्ध्व हैं सो त्यागनेयोग्यहैं परिच्छिन्न भावकरिकै देहके एक स्थानविषे स्थित हैं, अरु तिसविषे जो संवित्मात्र ज्ञानस्वरूप अनुभवकरि प्रकाशताहै सो मनुष्यको ग्रहण करने योग्यहै; जो अंतर बाहिर व्यापरहा है, अरु वास्तव अंतर बाहिरते भी रहित है, सो प्रधान हृदय है, अरु सर्व पदार्थोंका प्रतिबिंब धरनेहारा आदर्श है, सर्व संपदाका भंडार है, सो सर्व जीवोंका संवित् हृदय है, एक अंगका नाम हृदय नहीं, जैसे जलविषे एक पत्थर पुरातन पड़ा होवै, सो जल नहीं हो जाता, तैसे संवित्मात्रके निकट संवित्मात्र तौ नहीं होता, यह जड़रूप है, आत्मा चेतन आकाश है, सो यह प्रधान हृदय है; तातें बलकरिकै संवित्मात्रकी ओर चित्तकोलगावहु, तब प्राणस्पंद भी रोंका जावैगा ॥ हे रामजी ! यह प्राणोंका रोंकना मैंने तुझको कहा है, और भी शास्त्रोंविषे अनेक प्रकारकरि कहा है जिस जिसप्रकार गुरुके मुखते श्रवण किया है, तिसी प्रकार अभ्यास करै, तब प्राणोंका निरोध होताहै, गुरुके उपदेशते अन्यथा सिद्ध नहीं होता जिसको अभ्यासकरिकै निरोध सिद्ध भया है, सो कल्याणमूर्ति है और कल्याणमूर्ति नहीं होता ॥ हे रामजी ! अभ्यासकरिकै प्राणायाम होता है, अरु वैराग्यकी दृढताकरिकै वासनायाम होता है ॥ अर्थ यह कि, वासना रोकी जाती है, जब दृढ अभ्यास करै, तब चित्त अचित्त हो जाता है ॥ हे रामजी ! भ्रुकुटीके दश अंगुलपर्यंत जो वायु जाता है, तिसका वारंवार जब अभ्यास करता है, तब क्षीण हो जाता है, अरु खेचरी मुद्राते तालुसाथ जिह्वा लगाइकरिकै जो अभ्यास करै तौ भी प्राण रोके जाते हैं, इसके अभ्यासकरि चित्तकी व्याकुलता जाती रहती है, परम उपशमको प्राप्त होता है, यह पुरुष आत्मारामी होता है, सब शोक दूरि

हो जाते हैं, अंतर आनंदकी प्राप्ति होती है, ताते तू भी अभ्यास कर। जब प्राणस्पंद मिट जाता है, तब चित्त भी स्थित हो जाता है, तिसके पाछे जो पद है, सो निर्वाणरूप है ॥ हे रामजी ! जब प्राणस्पंद मिटि जाते हैं, तब चित्त भी स्थित हो जाता है, जब चित्त स्थित हुआ, तब वासना नष्ट हो जाती है, जब वासना नष्ट हो जाती है, तब मोक्षकी प्राप्ति होती है, जबलग चित्त वासनाकरि लपेटा है, तबलग जन्ममरणको देखता है, जब मन वासनाते रहित होता है, तब मोक्ष होता है ॥ हे रामजी ! प्राणवायुको रोंककरि वासनाते रहित हुआ, जहां तेरी इच्छा होवै, तहां विचर, तुझको बंधन न होवैगा, जब प्राण फुरता है, तब मन उदय होता है, जब मन उदय हुआ, तब संसारभ्रम होता है, जब मन क्षीण होता है, तब संसारभ्रम नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! जब मनसों संसारकी वासना कलना मिटि जाती है, तब अशब्दपद प्राप्त होता है, तिसते यह सर्व है, अरु जो यह सर्व है, अरु जिसते न सर्व है, अरु जो न सर्व है, अरु जो न सर्वविषे है, जिसविषे न यह सर्व है, ऐसा जो निर्गुण तत्त्व है, सो सर्व कलनाके त्यागते प्राप्त होता है, तिसको उपमा किसकी दीजै ? आत्मा अविनाशी निर्विकल्प निर्गुण है, यह जगत् नाशरूप संकल्पके रचित गुणरूप तिसको किस पदार्थसाथ दृष्टांत दीजै ? अर्थ यह कि, दूसरा कछु नहीं, जेते कछु स्वाद हैं, तिनको स्वादकर्ता वही है, अरु जेते प्रकाश हैं, तिनको प्रकाशकर्ता वही है, सर्वकलनाका कलनारूप वही है, जेते कछु पदार्थ हैं, तिन सबनका अधिष्ठानरूप वही है, सो चित्त अरु आवरणके दूर हुए प्राप्त होताहै, अरु सर्व पदार्थोंकी सीमा वही है, ऐसा जो आत्मारूप चंद्रमा शीतल है, जब तिसविषे बुद्धिमान् स्थित होता है, तब जीवन्मुक्त कहाता है, अरु सर्व इच्छा आश्चर्य नष्ट हो जाता है, अहं त्वं आदिक कल्पना मिटि जाती हैं, सर्व व्यवहार विस्मरण होता है, ऐसा जो मुक्त मन है, सो पुरुषोत्तम होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तज्ञानबंधो नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ७४.

सम्यग्ज्ञानवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे प्रभो ! योगीकी युक्ति तुमने कही, जिसकरि चित्त उपशम होता है, अब सम्यक् ज्ञानका लक्षण भी कृपा करि कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह निश्चय है, कि आत्मा आनंदरूप, आदिअंतते रहित, प्रकाशरूप सर्व परमात्मा तत्त्व है, इस निश्चयको सम्यक् ज्ञान बुद्धीश्वर कहते हैं, अरु यह जो घटपटादिक अनेक पदार्थशक्ति हैं, सो सब आत्मा परमानंदरूप हैं, तिसते इतर नहीं, ऐसा जो देखनाहै, सो सम्यक् देखनाहै, सर्वात्माहै, नित्यशुद्ध है, परमानंदस्वरूप है, सदा अपने आपविषे स्थितहै, ऐसा निश्चय सम्यक् ज्ञान है, अरु जो इसते इतर होवै, सो असम्यक् ज्ञान है॥हे रामजी ! सम्यक्दर्शीको मोक्ष है,असम्यक्दर्शीको बंधहै, तिसको आत्मा जगत्रूप भासताहै, सम्यक् दर्शीको केवल आत्मा भासताहै जैसे जेवरीविषे असम्यक्दर्शीको सर्प भासताहै सम्यक्दर्शीको जेवरी भासतीहै सर्व संवेदन संकल्पते रहित शुद्ध संवित् परमात्मा है तिसको जो जानता है सो परमात्माके जाननेवाला बुद्धीश्वरहै, इसते इतर है सो अविद्या है, हे रामजी ! आत्मतत्त्व सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे द्वैतकलना कोई नहीं, ऐसा जो यथार्थदर्शी है, सोई सम्यक्दर्शी है, सर्व आत्मा पूर्ण है भावअभाव बंधमोक्ष कोई नहीं, न एक है, न द्वैत है, ब्रह्मही अपने आपविषे स्थित है, जो सर्व चिदाकाश है, तौ बंध कौनको कहिए अरु मोक्ष कौनको कहिए, ऐसा जिनको ज्ञान है, तिनको काष्ठ पाषाण ब्रह्माते चेटीपर्यंत सब सम भासता है, अल्पमात्र भेद भी नहीं भासता, कल्पनाके सन्मुख कैसे होवै ॥ हे रामजी ! वस्तुके आदि अंत जो अन्वय व्यतिरेक करिकै आत्मा सिद्ध होता है ॥ अर्थ यह जो पदार्थ है सो है, तौ भी आत्मसत्ताकरि सिद्ध होता है, अरु जो पदार्थका अभाव हो जाता है तौभी आत्मसत्ता शेष रहती है, तू तिस परायण होउ, जो अविनाशी अनुभव धारि तिसकेविषे स्थित होउ वही अनुभवसत्ता जगत्रूप होकरि भासती है, जरामरण आदिक जो नानाप्रकारके विकार

वस्तुरूप भासते हैं, सो वस्तु अपने आपविषे फुरती है, जैसे जलविषे द्रवता करिकै नानाप्रकारके तरंग बुद्बुदे होते हैं, सो जलरूप हैं, इतर कछु नहीं तैसे चित्तके, फुरनेकरि नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, सो आत्मरूप हैं, इतर कछु नहीं, आत्मतत्त्वही अपने आपविषे स्थित है जब तिसविषे स्थित होता है, तब बहुरि दीन नहीं होता, जो पुरुष दृढ विचारवान् है, सो भोगोंकरि चलायमान नहीं होता, जैसे मंद पवन करिकै मेरु पर्वत चलायमान नहीं होता, अरु जो अज्ञानी हैं विचारते रहित मूढ हैं, तिनको भोग ग्रासि लेते हैं, जैसे जलते रहित मच्छीको बगला ग्रासि लेता है अरु जिसको सर्व आत्माही भासता है, सो सम्यक्दर्शी पुरुष कहाता है, वही मुक्तरूप है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सम्यक्ज्ञानवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितमः सर्गः ७५.

चित्तोपशमयोगवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो विवेकी पुरुष भोगोंके निकट आय प्राप्त होता है, तौभी इच्छा नहीं करता। काहेते कि, अर्थबुद्धिही तिसविषे कछु नहीं, जैसे सुन्दर कमलिनी चित्रकी लिखी हुईके निकट भँवरा आनि प्राप्त होता है, तौ भी इच्छा नहीं करता; तैसे विवेकी भोगोंविषे अर्थबुद्धि नहीं करता ॥ हे रामजी ! सुखदुःखकी प्राप्ति अरु निवृत्तिविषे इच्छा तबलग होती है, जबलग देहाभिमान होता है, जब देहाभिमान निवृत्त हुआ, तब कछु इच्छा नहीं होती ॥ हे रामजी ! ममता करिकै दुःख होता है, जब रूपको नेत्र देखते हैं, तिसको इष्ट मानिकरि प्रसन्न होते हैं, अरु अनिष्ट मानिकरि दोष करते हैं, जैसे बलद भारवाहक चेष्टा करता है, तिसको लाभ टोटा कछु नहीं होता; जिसको उसविषे ममत्व होता है, वह लाभ टोटेका शोक करता है, तैसे यह ममत्व करि इंद्रियोंके विषयोंमें हर्षशोकवान् होता है, जैसे गर्दभ कीचड़विषे डूबै, अरु राजा शोक करता है कि, मेरे नगरका गर्दभ

डूबा है, तैसे यह ममत्वकरिकै इंद्रियोंके विषयोंमें दुःख पाता है, नहीं तौ गर्दभ कीचड़विषे डूबेते राजाका क्या नष्ट होता है ॥ हे रामजी ! यह इंद्रियां तौ अपने विषयोंको ग्रहण करती हैं, इसविषे जीव तपायमान होता है, सो आश्चर्य है, अरु इन विषयोंकी यह चेष्टा इच्छा करते हैं, सो क्षणक्षणविषे नष्ट हो जाते हैं ॥ हे रामजी ! जो मार्गविषे किसीसाथ स्नेह हो जाता है, तौ ममत्व प्यारकरि दुःख होता है, तब जो देहविषे ममत्व करैगा, तिसको दुःख क्यों नहीं होवैगा, भावै कैसा बुद्धिमान् होवै, शूरमा होवै, तौ भी संगकरि बंधमान होता है ॥ अर्थ यह कि, इंद्रियोंकी विषयोंका अहंभावकरि ग्रहण करैगा, तौ तिनके नाश होनेकरि यह भी नाश होवैगा, जिन नेत्रोंका विषय रूप है, सो नेत्र साक्षी होकरि रूपको ग्रहण करते हैं; अरु ऐसा मूर्ख है, जो औरोंके धर्म आपविषे मानि लेता है, अरु तिनविषे तपायमान होता है, जैसे भ्रमदृष्टिकरिकै आकाशविषे मोरपुच्छवत् तरुवरे भासते हैं, अरु दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे मूर्खताकरिकै इंद्रियोंके धर्म अपनेविषे मानि लेता है, जैसे इंद्रियां साक्षी होकरि विषयोंको ग्रहण करती हैं, तैसे चित्त भी अभिमानते रहित साक्षी होकरि ग्रहण करै तौ रागद्वेषकरि तपायमान न होवै, जैसे जलविषे चक्र तरंग फुरते दृष्ट आते हैं, तैसे यह इंद्रियोंके रूप विषय अरु इंद्रियां फुर आती हैं, आधार आधेयकरि इनका संबंध होता है, अरु चित्त इनके साथ मिलि व्याकुल होता है, रूप इन्द्रिय अरु मन इनका परस्पर असंगभाव है, जैसे मुख अरु दर्पण अरु प्रतिबिंब भिन्न भिन्न असंग हैं, तैसे यह भिन्न भिन्न असंग हैं, परंतु अज्ञानकरि मिले हुए भासते हैं जैसे लाखकरिकै सोने रूपे चीनीका संयोग होता है तैसे अज्ञानकरिकै रूप अवलोकन मन संस्कारका संयोग होता है, जब ज्ञान अग्निकरि अज्ञानरूपी लाख जलि जावै, तब परस्पर भिन्न भिन्न हो जाते हैं, बहुरि किसीका दुःख सुख किसीको नहीं लगता, जैसे दो लकडीका संयोग लाखकरि होता है तैसे अज्ञानकरि विषय इन्द्रियां मनका संयोग होताहै, ज्ञानरूपी अग्निकरि

जब बिछुरि जाते हैं, तब बहुरि नहीं मिलते जैसे भिन्न भिन्न मणके सूत्रके तागेकरि इकट्ठे होते हैं, तैसे देह इन्द्रियोंविषे अज्ञानकरि इकट्ठे होते जब विचार करिकै तागा टूटि पडै, तब भिन्न भिन्न हो जावै, बहुरि मिलै नहीं ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषोंको आत्मविचार भया है, सो ऐसे विचारते हैं, कि जो हमको दुःख देनेहारा चित्त था, चित्तके नष्ट हुए आनंद भया है जैसे मंदिरविषे दुःख देनेहारा पिशाच रहता है, तब दुःख होता है, नहीं तौ मंदिर दुःख नहीं देता, पिशाच दुःख देता है, तैसे शरीररूपी मंदिरविषे दुःख देनेहारा चित्त है ॥ हे चित्त ! तुझने मिथ्या मुझको दुःख दिया था, अब मैं आपको जाना है, तू आदि भी तुच्छ है, अंत भी तुच्छ है वर्तमानमें भी तू मिथ्या जीवको दुःख देता है, जैसे मिथ्या परछाया बालकको वैताल होकरि दुःख देता है बड़ा आश्चर्य है ॥ हे चित्त ! तू तबलग दुःख देता है, जबलग आत्मस्वरूपको नहीं जाना जब आत्मस्वरूपका ज्ञान भया, तब तू कहूं दृष्ट न आवैगा, तू तौ मायामात्र है, अब तू रहु अथवा जाउ, मैं अब तुझसों मोहित नहीं होता, तू तौ मूर्ख जड है, अरु मृतक है, तेरा आकार अविचारते सिद्ध है, अब मैं पूर्वका स्वरूप पाया है, तू तत्त्व नहीं, भ्रांतिमात्र है, जो मूढ है सो तुझकरि मोहित होता है, विचारवान् मोहित नहीं होता, जैसे दीपककरि अंधकार दृष्ट नहीं आता; तैसे ज्ञानकरि तू दृष्ट नहीं आता ॥ हे मूर्ख चित्त ! तू बहुत काल इस देहरूपी गृह विषे रहा है; अरु तू वेतालरूप है, जैसे अपवित्र स्थानविषे वेताल [illegible] है, जहां श्मशान आदिक स्थान होते हैं, तैसे सत्संगते रहित [illegible] गृह सो श्मशानके समान सदा अपवित्र है, तहां तेरे रहनेका स्थान है, अरु जहां संतोंका निवास होता है, तहां तुझसारिखे ठौर नहीं पाते हैं सो मेरे देहरूपी गृहविषे सत् विचार संतोषादिक संतजन [illegible] स्थित हुए हैं, तेरे बसनेका ठौर नहीं ॥ हे चित्त पिशाच ! तू [illegible] तृष्णा पिशाचनी अरु कामक्रोधादिक गुह्यक अपने साथ लेकरि चिर पर्यंत विचरा था, अब विवेकरूपी मंत्रकरि मैंने तुझको निकाला है तब कल्याण हुआ ॥ हे चित्त ! पिशाचरूप ! तू प्रमादरूपी मद्यपान

कारि मत्त हुआ था, अरु चिरपर्यंत नृत्य करता था, विवेकरूपी मंत्रकरि तुझको काढा, अब देहरूपी कंदरा शुद्ध भई है, अरु शुद्ध भाव पुरुषोंने निवास किया है, जैसे सिंह कंदरासों निकसि जाता है, तब मुनीश्वर आनि निवास करताहै, तैसे यहां शुद्धभावहूने प्रवेश किया है॥ हे चित्त ! मैं तुझको विवेकरूपी मित्र करिकै वश कियाहै, अब तेरा क्या पराक्रम है, तू तबलग दुःख देता था, जबलग विचाररूपी मित्र पाया न था, अब तेरा बल कछु नहीं चलता, अब मैं; केवल महाभावविषे स्थित हौं, आगे भी मैं तुझको जगाता था; आपते तू सबरूप है, जैसे कच्चे मंत्रवाला सिंहको जगाता है, अरु आप कष्ट पाता है, तैसे मैं तुझको जगाइकरि कष्ट पाता था, अब मैं आत्मविचारकारि परिपक्व मंत्रकारि वश किया है, तब शांतिमान् हुआ हौं, ममता मान मेरे कछु नहीं, मोह अहंकार सब नष्ट हो गया है, इनका कलत्र भी नष्ट हो गया है मैं निर्मल चेतन आत्मा हौं, मेरा तुझको नमस्कार है, न मेरेविषे कोऊ आशा है, न कर्म है, न संसार है, न कर्तृत्व है, न मन है, न भोक्तृत्व है, न देह है, ऐसा जो निर्गुणरूप आत्मा है, मेरा मुझको नमस्कार है, न कोऊ आत्माहै, न अनात्माहै, न अहं है न त्वं है, किसी शब्दका प्रवेश नहीं, ऐसा निराश है, न रूप हौं, न प्रकाशरूप हौं, अरु निर्मल आत्मा हौं, अपने आपविषे स्थित हौं, ऐसा जो मैं आत्मा हौं, सो मेरा मुझको नमस्कार है, न विकार हौं, नित्य हौं, निराश हौं, सर्व कार्योंविषे अनुस्यूत हौं, अंशांशीभावते रहित हौं, ऐसा सर्वात्मा जो मैं हौं, सो मेरा मुझको नमस्कार है, सम हौं, सर्वगत हौं, सूक्ष्म हौं, अपने स्वभावविषे स्थित हौं, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, आकाश आदिक जगत् मैं नहीं, अरु मैंही सर्व पदार्थ होइकारि भासता हौं, ऐसा मैं सर्वात्मा हौं, अब मैं सर्व भावको प्राप्त भया हौं, अरु मनभाव मुझते दूर भया है, मेरे प्रकाशकारि विश्व भासता है, अजर अमर अनंत हौं, गुणातीत अद्वैत हौं, मनन जिसते दूर भया है, ऐसा जो मैं सुंदररूप हौं, कैसा हौं, जिसविषे विश्व प्रगट है, अरु स्वरूपते अविनाशी हौं, अनंत अजर अमर गुणातीत ईश्वररूपको नमस्कार है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे चित्तोपशमयोगवर्णनं नाम पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ७६.

चित्तशांतिप्रतिपादनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार विचारकारि तत्त्ववेत्ता आत्माको सम्यक्कारि जानते हैं, तू भी आत्मविचारका आश्रय करिकै आत्मपदके आश्रय होउ, यह जगत् सब आत्मरूप है, ऐसे जानिकारि चित्तसों जगत्की सत्यताको त्यागिकारि जब ऐसे विचार करै, तब चित्त कह है? बड़ा आश्चर्य है कि, जो चित्त वस्तुरूप दिखाई देता था, सो चित्त अविदित मायामात्र असत्रूप था, जैसे आकाशके फूल कहनेमात्र हैं, तैसे चित्त कहनेमात्र है, अविचारकारि दिखाई देता है, विचारवान्को चित्त असत् भासता है, काहेते कि, अविचारते सिद्ध है, जैसे नौकापर बैठे बालकको तटके वृक्ष चलते भासते हैं, बुद्धिमान्को चलनेविषे सद्भाव नहीं होता, तैसे मूर्खको चित्तसत्ता भासती है, अरु विचारवान्का चित्त नष्ट हो जाता है, जब मूर्खतारूप भ्रम शांत हुआ, तब चित्त कछु नहीं पाता जैसे बालक चक्रपर चढ़ाहुआ फिरता है, तौ पर्वत आदिक पदार्थ तिसको भ्रमते हैं, जब चक्र ठहरि जाता है, तब चक्र आदि पदार्थ अचल भासते हैं, तैसे चित्तके ठहरनेते द्वैत कछु नहीं भासता आगे मुझको द्वैत भासता था, सो चित्तके फुरनेकारि नानाप्रकारकी तृष्णा इच्छा उठती थी, अब चित्तके नष्ट हुए इन पदार्थोंकी भावना नष्ट भई है, संशय शोक सब मेरे नष्ट होगए हैं, अब विगतज्वर स्थित हौं, जैसा मैं स्थित हौं तैसे हौं, ईषणा कोई नहीं, जब चित्तका चैत्यभाव नष्ट हुआ, तब इच्छा आदिक गुण कहां रहै, जैसे प्रकाश नष्ट हुए वर्णज्ञान कछु नहीं रहता है, तैसे चित्तके नाश हुए इच्छा आदिक रहते, अब चित्त नष्ट हुआ, तृष्णा नष्ट होगई, मोहका पींजरा पड़ा, अब मैं निरहंकार हौं, बोधवान् हौं, सब जगत् शांतरूप हौं, और नानात्व कछु नहीं, मैं निराभास आदिअंतते रहित आनंद पदको प्राप्त हुआ हौं, सर्वगत सूक्ष्म आत्मतत्त्व अपना आप है, तिस विषे मैं स्थित हौं, निरंतर इन विचारोंसाथ अब क्या प्रयोजन है

जबलग आपको मैं देह जानता था, तबलग यह विचार मूर्ख अवस्था-विषे थे, अब मैं अमित निराकारको प्राप्त हुआ हौं, केवल परमानंद सच्चिदानंदको प्राप्त हुआ, किस पदका विचार करौं, आगे मैं चित्तरूपी वेतालको आपही जगावता था, अरु आपही दुःखी होता था, अब विचाररूपी मन्त्रकरि मैं इसको नष्ट किया है, अरु निर्णयकरि अपने स्वरूपको प्राप्त भया हौं, शांत आत्मा अपने आपविषे स्थित हौं ॥ हे रामजी ! जिसको यह निश्चय प्राप्त हुआ है, सो निर्द्वंद्व रागद्वेषते रहित होकरि स्थित होता है, प्रकृत कर्म करता है, मानमदते रहित आनंद-करिकै पूर्ण होता है, जैसे शरत्कालकी रात्रिको पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकरि पूर्ण होता है, तैसे प्रकृत आचार कार्यकर्त्ता ज्ञानवान्को शांत पूर्ण आत्मा है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे चित्तशांति-प्रतिपादनवर्णनं नाम षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ७७.

वीतवोपाख्याने चित्तानुशासनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह विचार वेदविदोंने कहा है, पूर्व मुझको ब्रह्माने विंध्याचल पर्वतविषे कहा था, इस विचार करिकै वह परमपदविषे स्थित हुआ है, इस दृष्टिको आश्रयकरिकै आत्मविचार होकरि तमरूपी संसारसमुद्रको तरिजावहु ॥ हे रामजी ! इसके ऊपर एक और परम दृष्टांत सुन, सो दृष्टांत परमपदको प्राप्त करनेहारा है, जिस-प्रकार वीतवमुनीश्वर विचारकरिकै निःशंक स्थित हुआ है, सो सुन, वीतव मुनीश्वर महातेजवान् था, सो संसार आधिव्याधिते वैराग्य करत भया, अरु नागादि होके पर्वतोंकी कंदराविषे विचरने लगा, जैसे सूर्य सुमेरु पर्वतके चौफेर फिरता है तैसे विचरने लगा, अरु संसारकी क्रियाओंको दुःखरूप विचारता भया कि, यह बडे भ्रमके देनेहारी हैं ऐसे जानिकरि उद्वे-[illegible] हुआ निर्विकल्प समाधिकी इच्छा करता भया, अपना जो कछु व्यव-[illegible]र था, तिसको त्यागत भया, अरु गौर जो अपनी कुटी थी, तिसका त्याग करिकै और केलेके पत्रोंकी बनाइकरि बैठा, जैसे भँवरा कमलनको

त्यागिकरि नील कमलपर जाय बैठता है तैसे गौरकुटीको त्यागिकरि श्यामकुटीविषे जाय बैठा, नीचे कुश बिछाइ तिसऊपर मृगछाला बिछाइ कारि पद्मासन मार बैठे जैसे मेघ जलको त्यागिकरि ध्द मौन स्थित होता है, तैसे और क्रियाको त्यागिकरि शांतिके निमित्त शांतरूप स्थित है; हाथोंको तले किया मुखको ऊपर किया, ग्रीवाको सुधारिकै स्थित करत भया इंद्रियोंकी वृत्तिको रोकत भया, बहुरि मनकी वृत्तिको भी रोक दिया जैसे सुमेरुकी कंदराविषे सूर्यका प्रकाश बाह्यते मिट जाता है, तैसे इंद्रियोंकी वृत्ति रोंकि बाहरते मिट जाती है, अरु अंतरते भी विषयोंकी चिंतवनाका त्याग किया, इसप्रकार वह क्रमकरिकै मन स्थित करता भया, जब मन निकारि जावै, तब कहै, बडा आश्चर्य है, मन महाचंचल है, जो मैं स्थित करता हौं, तौ बहुरि निकस जाता है, जैसे सूखापात तरंगविषे पड़ा ठैरता नहीं तैसे मन एकक्षण भी ठहरता नहीं, सर्वदा इंद्रियोंकरि विषयोंकी ओर धावता है, जैसे गेंदको ज्यों ज्यों ताडना करता है, त्यों त्यों उछलता है, तैसे इस मूर्ख मनकोजिस ओरते खैंचता हौं, तिसी ओर बहुरि धावताहै, उन्मत्त हस्तीकी नाई, जो घटकी ओरते खैंचताहै, तौ रसकी ओर निकस जाताहै, अरु जो रसकी ओर खैंचता है, तौ गंधकी ओर धावता है, स्थिर कदाचित् नहीं होता, जैसे वानर कबहूँ किसी टासपर, कबहूँ किसी टासपर जाय बैठता है, इसप्रकार मूर्ख मन शब्द स्पर्श गंध रूप रसकी ओर धावता है, स्थिर नहीं होता इसके ग्रहण करनेको पंच स्थान हैं, जिस मार्गकरि विषयोंको ग्रहण करताहै, सो पंच ज्ञानइंद्रियां हैं॥ अरे मूर्ख मन! तू किसनिमित्त विषयोंकी ओर धावता है, यह तौ आप जड असत्‌रूप भ्रांतिमात्र हैं, तू इनकरि शांतिको कैसे प्राप्त होवैगा, इनविषे चपलता करि इच्छा करना अनर्थका कारण है, ज्यों ज्यों इनके अर्थोंको ग्रहणकरैगा, त्यों त्यों दुःखके समूहको प्राप्त होवैगा, ये विषय भी जड असत्‌रूप हैं, तू भी जड है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी असत् होती है, तैसे यह असद्रूप है॥ हे मुने! यह तौ सब असाररूप है, अरु तू भी इंद्रियां सहित जडरूप है, तू कर्तृत्वका अभिमान क्यों करताहै? सबका कर्ता चिदानन्द आत्मा

भगवान् है, अरु सदा साक्षीभूत है, तैसे आत्मा साक्षीभूत है, तू क्यों वृथा तपायमान होता है, जैसे सूर्य सबकी क्रियाको करावता साक्षीभूत है, तैसे आत्मा साक्षीभूत है, अरु जगत् सब भ्रांतिमात्र है, जैसे अज्ञानकरि जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे अज्ञानकरिकै आत्माविषे जगत् भासता है, जैसे आकाश अरु पातालका संबंध कछु नहीं होता जैसे ब्राह्मण अरु चंडालका संयोग नहीं होता जैसे सूर्य अरु तमका संबंध नहीं होता, तैसे आत्मा अरु चित्त इंद्रियोंका संबंध कछु नहीं होता, आत्मा सत्तामात्र है, यह जड असत्‌रूप है, इनका संबंध कैसे होवै, आत्मा न्यारा साक्षीभूत है, जैसे सूर्य सब जनोंते न्यारा रहता है, तैसे आत्मा न्यारा साक्षीभूत है॥ हे चित्त ! तू तौ मूर्ख है, विषयरूपी चबेणेविषे तू रहै औरको भक्षण कर्ता तू तृप्त कदाचित् नहीं होता, अरु विचार मिथ्या कूकरकी नाईं चेष्टा करता है, तेरेसाथ हमको कछु प्रयोजन नहीं॥ हे मूर्ख ! तू तो मिथ्या अहं अहं करता है, अरु तेरी वासना अत्यंत असत्‌रूप है, अरु जिन पदार्थोंकी तू वासना करता है, सो भी असत्‌रूप हैं, तेरा अरु आत्माका संबंध कैसे होवै, आत्मा चेत्तनरूप है, अरु तू मिथ्या जडरूप है, अरु यह मैं जानाहौं कि, जन्ममरण आदिक विकार अरु जीवत्वभावको तुझने मुझको प्राप्त किया था, मैं तौ केवल चेतन परब्रह्म हौं, मिथ्या अहंकारकरिकै जीवत्वभावको प्राप्त किया था, अरु देहमात्रआपको जानताथा, मैं तौ संवित् मात्र नित्यशुद्ध हौंआदि अंततेरहित परमानंद चिदाकाशअनंतआत्मा हौं, अब मैंस्वरूपविषेआप जागा हौं, और सद्भाव मुझको कछु नहीं दृष्ट आता॥ हे मूर्ख मन ! जिन भोगोंको तू सुखरूप जानिकरि धावता है सो अविचार करिकै प्रथम तो अमृतकी नाईं भासते हैं, अरु पाछे विषकी नाईं हो जाते हैं, वियोगकरिकै जलावते हैं, अरु आपको तू कर्ता भोक्ता भी मिथ्या मानता है, तू भी कर्ता भोक्ता नहीं, अरु इंद्रियां भी कर्ता भोक्ता नहीं. काहेते ? कि, जड है, जो तुम जड हुए तौ तुम्हारे साथ मित्रभाव कैसे होवै, अरु जो तू जड असत्‌रूप है तौ कर्ता भोक्ता कैसे होवै, अरु जो चेतन सत्‌रूप है, तौ भी तेरेविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं संभवता, तू मिथ्या है, मैं प्रत्यक्ष चेतन

हौं तू कर्तृत्व भोक्तृत्वमिथ्या अपनेविषे स्थापन करता है, तू मिथ्या है, जब मैं तुझको सिद्ध करता हौं, तब तू होता है, तू निश्चयकरि जड़ है, तुझको कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे होवै, जैसे पत्थरकी शिला नृत्य करनेको समर्थ नहीं होती, तैसे तुझको कर्तृत्वकी समर्थता नहीं, तेरेविषे कर्तृत्व जो है, सो मेरी शक्ति है, जैसे दात्री घास तृण आदिकको काटती है, सो केवल आपते नहीं काटती पुरुषकी शक्तिते काटती है, अरु खड्गकरि जो हननक्रिया होती है, सोभी आपते नहीं होती, पुरुषकी शक्ति है, तैसे-तुम्हारेविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व मेरी शक्तिकरि होती है, जैसे पात्र करि जल पान करता है, सो पात्र नहीं करता, पान पुरुष करता है पात्र करिकै पान करता है तैसे तुम्हारेविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व मेरी शक्ति-करती है, मेरी सत्ता पाइकरि तुम अपनी चेष्टाविषे विचरते हौ, जैसे सूर्यका प्रकाश पाइकरि लोक अपनी अपनी चेष्टा करता है, तैसे मेरी शक्ति पाइकरि तुम्हारी चेष्टा होती है, अज्ञानकरिकै तुम जड़ जीवते रहतेहौ, ज्ञानकरिकै लीन हो जाते हौ, जैसे सूर्यके तेजकरि बर्फका पुतला गलि जाताहै, ताते हे चित्त ! अब मैं निश्चय किया है कि, तू मृतकरूप मूढ है, परमार्थते न तू है, नइंद्रियां हैं, जैसे इंद्रजालके बाजीके पदार्थ भासते हैं, सो सब मिथ्या हैं, केवल विज्ञान रूप मैं अपने आपविषे स्थित निरामय अजर अमर नित्य शुद्ध बोध परमानंदरूप हौं, अरु मैंही नानारूप होकरि भासता हौं, परंतु कदा-चित् द्वैतभावको प्राप्त न हुआ, सदा अपने आपविषे स्थित हौं, जैसे जलविषे तरंग बुद्बुदे दृष्ट आते हैं, सो जलरूप हैं, तैसे सर्व पदार्थ मेरेविषे भासते हैं, सो इतर कछु नहीं ॥ हे चित्त ! तू भी चिन्मात्रभा-वको प्राप्त हुआ, जब तू चिन्मात्रभावको प्राप्त होवैगा, तब तेरा भिन्न भाव कछु न रहैगा, अरु शोकते रहित होवैगा, आत्मतत्त्व सर्व भा-वविषे स्थित सर्वरूप है, जब तिसको तू प्राप्त होवैगा, तब सब कछु तुझको प्राप्त होवैगा, न कोऊ देह है, न जगत् है, सर्व ब्रह्मही है, ब्रह्मही ऐसे भासता है, वास्तव अहं त्वं कल्पना कोऊ नहीं ॥ हे चित्त ! जो आत्मा चेतनरूप है, सो सर्वगत आत्मा है, आत्माते

इतर कछु नहीं, तौ भी तुझको संताप नहीं, अरु जो अनात्मा जड़ असतरूप है, तौ भी तू न रहा, जो कछु परिच्छिन्न जैसा तू बनता है, सो मिथ्या भ्रम है, आत्मतत्त्व सर्वव्यापकरूप है, द्वैत कछु नहीं, सर्व वही है, तौ भिन्न अहं त्वं की कल्पना कैसे होवै, अरु असत् सों कार्यकी सिद्धता कछु नहीं शशेके सींग जैसे असत् हैं, तिनसों कछु मारनेका कार्य सिद्ध नहीं होता, तैसे तुम असत् हौ, तुमसों कर्तृत्व भोक्तृत्व कार्य कैसे होवे ? अरु जो तू कहै, मैं सत् असत् चेतन जडके मध्यभाव हौं, जैसे तम अरु प्रकाशका मध्यभाव छाया है, तैसे सूर्यरूप परमात्मा निरंजनके विद्यमान मंदभावी छाया कैसे रहती है, ताते कर्तृत्व भोक्तृत्व तुझको नहीं होता. काहेते कि ? तू जड है, जैसे दात्री पड़ी होवे, तिसको घास काटनेका कार्य आपते नहीं होता, जब पुरुषके हाथ शक्ति होती है, तब कार्य होता है, तैसे तुमसों कार्य कछु नहीं होता, जब आत्मसत्ता तुमसों मिलती है, तब तुमसों कार्य होता है, तुम क्यों अहंकारकरिकै वृथा तपायमान होते हौ, अरु हे चित्त ! जो तू कहै कि, ईश्वरका उपकार है तौ ईश्वर जो परमात्मा है, तिसको करने अकरनेविषे कछु प्रयोजन नहीं, अरु सबका कर्ता भी वही है, अरु अकर्ता है, जैसे आकाश पोल करिकै सबको वृद्धता देनेहारा है, परंतु स्पर्श किसीसाथ नहीं करता, तैसे परमात्मा सबको सत्ता देनेहारा है, अरु अलेप है ॥ हे मूर्ख मन ! तू क्यों भोगोंकी वांछा करता है; तू तो जड असतरूप है अरु देह भी जड असत् रूप है भोग कैसे भोगैंगे, अरु जो परमात्माके निमित्त इच्छा करता है, तौ परमात्मा सदा तृप्त है, अरु इच्छाते रहित है सर्वविषे वही पूर्ण है, दूसरेते रहित एक अद्वैत प्रकाशरूप अपने आपविषे स्थित है, तुझको किसकी चिंता है, ताते वृथा कल्पनाको त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होउ, जहां सर्व क्लेश शांत हो जाते हैं, अरु जो तू कहै कि, परमात्मासाथ मेरा कर्तृत्व भोक्तृत्वका सम्बंध है, तौ नहीं बनता, जैसे फूल अरु पत्थरका संबंध नहीं होता, तैसे परमात्मासाथ तेरा संबंध नहीं होता, समान अधिकरण द्रव्यका संबंध होता है, जैसे जलमृत्तिकाका संबंध होता है, जैसे औषधिविषे चंद्रमाकी सत्ता प्राप्त होती है, जैसे सूर्यकी तप्तताकरि शिला

तप जाती है, जैसे बीजअंकुरका संबंध होता है; जैसे पिता अरु पुत्रका संबंध होता है, सो द्रव्य अरु गुणका संबंध होता है, जो आकारसहित वस्तु है, तिसका कैसेहू संबंध बनाताहै, अरु जो निराकार निर्गुण वस्तु है तिसका कैसे संबंध होवै; समानकरि संबंध नहीं,जो परमात्मा चेतनहै, तू जड है, वह प्रकाशरूप है, तू तमरूपहै, वह सत्‌रूपहै, तू असत्‌रूप है; संबंध तौ किसीसाथ नहीं बनता, तू क्यों वृथा जलताहै, तू मननरूप है, परमात्मा सर्व कलनाते रहित है, तेजकी एकता तेजकरि होती है, अरु जलकी एकता जलसाथ होतीहै,तू कलंकरूप है, परमात्मा निष्कलंकरूप है, तेरी एकता तिससाथ कैसे होवै, जिसका अंग कछु होता है, तिसका संबंध भी होताहै, सो संबंध तीन प्रकारकाहै, सम, अर्धसम, अरु विलक्षण, इनका संबंध होता है, जैसे जलसाथ जलकी एकता होतीहै तेज साथ तेजकी एकता होतीहै, यह समहै, जो तेरा आत्मसाथ सम संबंध नहीं, एक अर्धसम है, जैसे स्त्री अरु पुरुषके अंग समान होते हैं, परंतु विलक्षणरूप हैं सो अर्धसम भी तेरा अरु आत्माका संबंध नहीं, अरु कछुक अन्यकी नाईं भी तेरा संबंध नहीं, जैसे जल अरु दूधका संबंध होता है, तैसे तेरा भी नहीं, अरु अत्यंत जो विलक्षण है, तिनकी नाईं भी तेरा नहीं; जैसे काष्ठ अरु लाखका अरु पुरुष अरु हाथी घोड़ा आदिकका संबंध नहीं, अरु आधार आधेयवत् भी तेरा संबंध नहीं जैसे बीज अंकुर पिता पुत्र आदिक जो संबंध है, तैसे भी तेरा अरु आत्माका संबंध कोई नहीं, काहेते जो संबंध तिसका होता है, तिससाथ कछु भी अग मिलता है, जिसका अंग कोऊ नहीं मिलता, परस्पर विरोध होवै, तिसका संबंध कैसे कहिए, जैसे कहिए शशेके सींग ऊपर अमृतका चंद्रमा बैठा है, तम अरु प्रकाश इकट्ठे हैं, जैसे यह नहीं बनता, तैसे आत्मसाथ देह मन इंद्रियोंका संबंध नहीं बनता. काहेते कि, आत्मा सर्व कलनाते अतीत नित्य शुद्ध अद्वैत प्रकाशरूप है, अरु मनआदिक जड असत् मिथ्या तमरूप हैं, इनका संबंध नहीं जो परस्पर विरोध होवै; तिनका संबंध कैसे होवै, तुम तौ परमात्माके अज्ञानकरि मन इंद्रियां देहादिक उदय हुए

हौ, आत्माके ज्ञानकरि अभाव हो जाते हैं बहुरि संबंध कैसे होवै ॥ हे मन ! जेते कछु जगत् हैं, सो सब ब्रह्मस्वरूप हैं, तिसते इतर द्वैत कछु नहीं, अहं त्वंकी कल्पना कोई नहीं, ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, सब कलना तेरेविषे थी, अरु तू तबलग था, जबलग स्वरूपका अज्ञान था, जब स्वरूपका ज्ञान भया, अरु अज्ञान नष्ट भया, तब तू कहां है, जैसे रात्रिके अभावते निशाचरोंका अभाव हो जाता है, तैसे अज्ञानके नाश हुए तेरा अभाव हो जाता है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्याने चित्तानुशासनं नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः ७८.

वीतवोपाख्यानेऽनुशासनयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार वीतव मुनीश्वर विंध्याचल पर्वतकी कंदराविषे विचार करत भया, तीक्ष्ण बुद्धिसाथ और भी जो कछु कहा है सो सुन, अनात्मा जो देह इंद्रियां मनआदिक हैं सो संकल्पते उपजेहैं जब ज्ञान उदय हुआ, तब इनका अभाव हो जाता है ॥ हे मन ! जैसे सूर्यके उदय हुए, तम नष्ट हो जाता है, तैसे नित्य उदितरूप परमात्मा अनुभव स्वरूपके उदय हुए तुम्हारा अभाव हो जाता है, वासना करिकै तिसका आवरण था, जब वासनाका अभाव हो जाता है, तब आवरणका भी अभाव हो जाताहै, जैसे मेघके नष्ट हुए सूर्य प्रकाशता है, तैसे वासनाके अभाव हुए आत्मतत्त्व प्रकाशता है, वासनाका मूल अज्ञानहै, जब अज्ञानसहित वासना नष्ट भई, तब चिदानंद ब्रह्म प्रकाशता है, वासनाहीका नाम बंध है, वासनाके निवृत्तिका नाम मोक्ष है जब वासनारूपी जेवरी काटैगा तब परमात्माका साक्षात्कार होवैगा, जैसे प्रकाशविना अंधकारका नाश नहीं होता, तैसे मन इंद्रियां देहादिकका आत्मविचारविना नाश नहीं होता, जब विचारकरिकै आत्मपद प्राप्त होवै, तब मनसहित षट् इंद्रियोंका अभाव हो जाता है ॥ अर्थ यह कि,

इनका अभिमान नष्ट होताहै, इनके धर्म अपनेविषे नहीं भासते; जबलग देह इंद्रियोंकेसाथ मिला है, तबलग आत्मपदको पाइ नहीं सकता ताते आत्मपद पानेका कल्याणके निमित्त अभ्यास कर. जबलग मन इन्द्रियौंके गुणोंसाथ आपको मिला जानता है, तबलग इसको अपने स्वरूपकी विभुता अरु सिद्धता नहीं भासती, जब आत्माका साक्षात्कार हो जावै, तब रागद्वेषादिक विकार नष्ट होजावैंगे, जैसे सूर्यके उदय हुए निशाचरोंका अभाव हो जाता है, तैसे आत्माके साक्षात्कार हुए विकारोंका अभाव हो जाताहै,जिसके देखेते इनका अभाव होजाताहै, तिनका आत्मासाथ संबंध कैसे होवै, जैसे प्रकाश अरु तमका संबंध नहीं होता तैसे सत् असत्का सम्बंध नहीं होता, जैसे जीवते अरु मृतकका संबंध नहीं होता, तैसे आत्मा अनात्माका संबंध नहीं होता, आत्मा सर्व कल्पनाते रहित है, मन आदिक सर्व कल्पनारूप हैं, कहां यह मूक जड अनात्मारूप, अरु कहां नित्य चेतन प्रकाश निराकार आत्मरूप, इनका परस्पर विरोधरूप हैं; संबंध कैसे कहिये, यह तौ निश्चयकरि अनर्थका कारण है, जबलग इनका अभिमान है, तबलग जगत् दुःखरूप है, जब इनका वियोग होवै, तब जगत् परमात्मारूप होता है, जबलग इसको आत्माका अज्ञान है, तबलग आपको इनमें मिला देखता है, दुःख पाता है, जब आत्माका ज्ञान हुआ, तब अपनेसाथ इनका संयोग नहीं देखता है, अरु यह मैं निश्चयकरि जाना है, कि इंद्रियां अरु मनके संयोगते जगत् भासता है, जब इंद्रियोंका ग्राम नष्ट होजाता है, तब जगत् परमात्मारूप हो जाता है, अरु मैं जो आत्मा अरु मन इंद्रियोंका इकट्ठा जानता था; सो प्रसादरूपी मद्यके पानकरि मत्त हुआ, मनकरि जानता था, अब आत्मविचारकरिकै मन नष्ट भया, तब सुखी भया, जो विषको पानकरि मूर्छित होवै, सो तौ बनता है, परंतु पान कियेविना मूर्छित होवै, सो आश्चर्य है, ताते जब अनात्माका इससाथ संयोग होता, तब सुखदुःख करिकै राग द्वेषवान् होना भी बनता है, आत्मा तौ सुखदुःखका साक्षीभूत है; सुखदुःखका संयोगही जिससाथ नहीं, अरु रागद्वेषकरि जलता है, तौ महामूर्खता

है, आत्मा तौ सुखदुःखका साक्षीभूत है. जैसा तिसके आगे अभ्यास होता है, तैसाही भासता है, कदाचित् विपर्यय भावको प्राप्त नहीं होता सुखदुःखविषे मूर्ख मनआदिक रागद्वेषवान् होता है, आत्मा तौ सदा साक्षीभूत क्षीणवृत्ति है, तिससाथ इंद्रियोंका संयोग कैसे होवै, जो संयोगका अभाव सिद्ध हुआ, तौ आत्माविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे कहिये जहां चित्तकलना होती है, तहाँ कर्तृत्व भोक्तृत्व होता है, जहां चित्तकलनाका अभाव है, तहाँ कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभावहै, ऐसा निष्कलंक आत्मा तत्त्व मैं हौं, जो न कर्ता हौं, न भोक्ता हौं, न मेरेविषे बंध है, न मोक्ष है, न अहंता है, मैं सर्वात्मा अलेपरूप हौं ॥ हे मन ! तू भी मैं हौं, अरु पृथ्वी आप तेज वायु आकाश पांचों तत्त्व मैं हौं, इसप्रकार निर्णय करि जिसने धारा है, सो मोहको प्राप्त नहीं होता, जो अहं अभिमान करनेवाला आत्माते भिन्न आपको जानता है, तब दुःखी होता है, जब अपने स्वभावविषे स्थित होता है, तब परमसुखी होता है, ताते जिसको कल्याणकी इच्छा होवै, तिसको एक आत्मपरमात्मपरायण होना योग्य है, जब स्वरूपको त्यागिकरि संकल्पके ओर धावता है, तब दुःखोंके समूहको प्राप्त होता है ॥ हे चित्त ! जो तू अपनेविषे कर्तृत्व देखता था सो तू इंद्रियांसहित जडरूप पत्थरके समान है, जैसे आकाशविषे पवन नहीं लगता, तैसे तुमसों कर्तृत्व नहीं होता, जब इसको स्वरूपका प्रमाद होता है, तब चित्त आदिकेसाथ आपको मिला जानता है, अरु चित्तादिक आत्माकी सत्ता पाइकरि चेतन होता है, जैसे अग्निकी सत्ता पाइकरि लोह जलावनेको समर्थ होता है, तैसे तुम आत्माकी सत्ता पाइकरि कर्तृत्व भोक्तृत्वविषे समर्थ होते हौ, जब आत्मविचार करिकै स्वरूपका साक्षात्कार होताहै, अरु अज्ञानवृत्ति निवृत्त हो जाती है, मनआदिकका वियोग होता है, सर्व कलनाते रहित हुआ, तब केवल मोक्षरूप आत्मा होता है, कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभाव हो जाता है, जैसे आकाशविषे लालीका अभाव है, तैसे आत्माविषे कर्तृत्वका अभाव है, सब जगत् आत्मस्वरूप भासता है, जैसे समुद्र तरंग आदिक नानाप्रकार होता है, सो सब जलरूप है, इतर कछु नहीं, तैसे सर्व जगत् आत्मरूप है, आत्माते इतर कछु

नहीं, सो सच्चिदानंद आत्मा मैं सदा अपने आपविषे स्थित हौं, और द्वैतकलना मेरेविषे कोई नहीं जैसे समुद्र उष्णताते रहित है, तैसे परमात्मा सर्व कलनाते रहित है, जैसे आकाशविषे वन नहीं होता, तैसे परमात्माविषे कलना नहीं होती, संवेदनते रहित संवितमात्र सर्वात्मा है, जब तिसका साक्षात्कार होता है, तब अहं त्वं आदिक कलनाका अभाव हो जाता है, सो अनादि अरूप सर्वगत है, सदा अपने आपविषे स्थित है, ऐसा जो अद्वैत तत्त्व है, तिसको द्वैतकलना आरोपनेको कौन समर्थ है, सो ऐसा कौन है, जो आकाशविषे ऋग्वेदको लिखै; नित्य उद्योत सर्वका सार अद्वैत आत्माहै, तिसविषे द्वैतकलनाका अभाव है, सर्वविषे पूर्ण निर्मल नित्य आनंदरूप है, ऐसे आत्माको अब मैं प्राप्त हुआ हौं, जगतका सुखदुःख अब नष्ट भया है, सम शांतरूप हुआ हौं ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्यानेऽनुशासनायोगोपदेशो नाम अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः ७९.

वीतवोपाख्याने चित्तोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हेरामजी ! इसप्रकार वीतवमुनिश्रेष्ठ विचार करता भया, बहुरि जो कछु निर्मल बुद्धिसाथ विचारने लगा सो सुन॥हे इंद्रियरूपमन ! तुम क्यों अपने अर्थोंकी ओर धावते हो, तुमको विषयोंकरि शांति प्राप्त नहीं होती, जैसे मृग मरुस्थलकी नदी देखिकरि दौडताहै, अरु शांतिमान् नहीं होता, ताते तुम विषयोंकी ओर तृष्णाकरि शांतिमान् न होहुगे, इनकी इच्छा त्यागिकरि जो सत्यहै, परमात्मतत्त्व अविनाशी सर्व अवस्थाविषे एकरस है, तिसको ग्रहण करौ; तब सर्व दुःख तुम्हारे मिटि जावैंगे, तुम्हारेसाथ मैं मिला था, तब मैं भी दुःख पाया था, तुम अज्ञानकरिकै उत्पन्न भये हौ, जो तुम्हारेसाथ मिलता है, तिसको भी दुःख प्राप्त होता है, जैसे तपी हुई लाख जिसके शरीरसाथ स्पर्श करती है, तिसको जलावती है तैसे जिसको तुम्हारा संग भया है, सो दुःखको प्राप्त होताहै ॥ हे मन ! यह जीव जो मरता है सो कालके मुखमें जाय

प्रवेश करता है, सो तुम्हारे संगकारि जाय पड़ता है, जैसे नदी जल सहित होती है, तब समुद्रकी ओर चली जाती है, जलते रहित होवै तौ क्यों जावै; तैसे तुम्हारे संगकारि कालके मुखमें जाय पड़ता है, तुम्हारा संग न होवै, तौ काहेको पड़ै जैसे मेघ कुहिडकारि सूर्यको आच्छादि लेताहै, तैसे मनरूपी मेघ तू इच्छारूपी कुहिडकारि आत्मारूपी सूर्यको आच्छादि लेता है, अरु परंपरा दुःखोंकी वर्षा करनेहारा है ॥ हे मन! तेरेविषे चिंता उठती है, सो तू मर्कटकी नाईं है, जैसे मर्कट वृक्षको ठहरने नहीं देता, पड़ा हिलावता है, तैसे चित्त देहको ठहरने नहीं देता, अरु चित्तरूपी पखेरू है, लोभ लज्जा तिसके दो पंखें हैं, अरु रागद्वेषरूपी चंचु हैं, तिसकारि शरीररूपी वृक्षपर बैठ, शुभ गुणोंको काटि काटि खाता है, अरु चित्तरूपी कूकर महानीच है, भोग भावनारूपी जो महा अपवित्र पदार्थ है, तिनको हृदयरूपी स्थानविषे इकट्ठा करता है, ऐसी चेष्टाते कदाचित् रहित नहीं होता, अरु चित्तरूपी उलूक है, अज्ञानरूपी रात्रिविषे आइ विचरता है, चेष्टाकारि प्रसन्न होता है, अरु शब्द करता है, जैसे श्मशानविषे वेताल शब्द करता है, जब अज्ञानरूपी रात्रि नष्ट होवै, तब चित्तरूपी उलूकका अभाव होवै, अरु संपदा आनि प्रवेश करै, जैसे सूर्यके उदय हुए, सूर्यमुखी कमल उदय होता है तैसे संपदा प्रफुल्लित होती हैं, जहां मोहरूपी कुहिड अरु इच्छारूपी धूलि हृदयरूपी आकाशसों निवृत्त होती है, तब निर्मल आकाश प्रगट होता है ॥ हे चित्त! जबलग तू नष्ट नहीं होता, तबलग शांति नहीं होती, अरु जैसे अकस्मात् मेघ आवै, अरु गडेकी वर्षा करै, तिसकारि मार्ग चलनेवाले दो कष्ट पाते हैं, तैसे स्वस्थ बैठे हुए, जो चिंता आनि प्राप्त होती है, सो तेरे संयोगकारि होतीहै, संकल्पविकल्परूपी गडेकी वर्षाकारि सतमार्ग चलनेवाला दुःख पाता है, अरु जहां चित्त नष्ट होता है, तहां सर्व आनंद होता है, शीतलता अरु मित्रताकारि पावन होताहै, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होताहै, मेघके नष्ट हुए सूर्य प्रकाशता है, तैसे अज्ञानके नष्ट हुए आत्मा प्रकाशता है, तब प्रसन्नता, गंभीरता, महत्त्वता, अरु समता होती है, जैसे वायु अरु मंदराचल पर्वतते रहित क्षीरसमुद्र शांतिमान् भया

अरु जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है, तैसे अज्ञानके नाश हुए आत्मानंद पाइकारि यह शोभता है ॥ हे चित्त ! यह स्थावर जंगम जगत् संवित्‌रूप आकाशविषे है, तिस महत् ब्रह्मको तू भी प्राप्त होउ, जो पुरुष आशारूपी फाँसीको तोड़िकारि आत्मपदविषे प्राप्त हुआ है, अरु संसारका सद्भाव निवृत्त किया है, सो जन्ममरणके बंधनमें नहीं पड़ता, जैसे जला पत्र बहुरि हरा नहीं होता, तैसे नष्ट हुआ चित्त जन्ममरणको नहीं पाता ॥ हे चित्त ! सर्वको भक्षण करने-हारा जो तू संसारको सत् मानकर तिसकी ओर धावैगा, तब तेरा कल्याण न होवैगा, अरु जो आत्माकी ओर आवैगा, तब तेरा परम कल्याण होवैगा, जब तू अपना अभाव कारि आत्मपदविषे स्थित होवैगा, तब कल्याणरूप होवैगा, अरु जब तू अपना सद्भाव करैगा, जो आकारको न त्यागैगा, तब दुःखी होवैगा, जो तेरा जीवना है सो मृत्युसमान है, अरु जो मृत्यु है सो जीवनेसमान है, दोनों पक्षविषे जो तेरी इच्छा है, सो अंगीकार कर; जो तू अबहीं आपको आत्मपदविषे निर्वाण करैगा, तब परमपदको प्राप्त होवैगा, अरु परमसुखी होवैगा, अरु जो न करैगा, तौ परमदुःखी होवैगा, जो आत्मपदका त्याग करैगा सो मूढ है, तेरा निर्वाण होना आत्म-पदविषे जीवनेनिमित्त है, अरु आत्मते इतर जो तू जीनेकी इच्छा करता है, सो तेरा जीना मिथ्या है, अर्थ यह जो तू आदि भी मिथ्या है, अब भी विचारविना भ्रममात्र है, विचार कियेते नाश हो जावैगा, जैसे सूर्यके प्रकाशविना अंधकार होता है, प्रकाशकारि नाश हो जाताहै, तैसे विचार विना चित्त है विचारकारि नाश हो जाता है, एता काल मैं अविवेककारि नाश हो जाता था, जैसे बालकोंको अपने परछाईंविषे वेतालकल्पना होती है, विचारविना भयको पाता है, विचार कियेते निर्भय होता है, तैसे अब मैं तेरे संगते छूटा, अपने पूर्व स्वरूपको प्राप्त हुआ हौं, विवेककारि तेरा अभाव हुआहै, ताते विवेकको नमस्कार है ॥ हे चित्त ! अविवेककारि तू मेरा मित्र था, अब बोधकारिकै तेरा चित्तभाव नष्ट हो गया, तू परमेश्वररूप है, अब वासना नष्ट भई है, आगे तेरेविषे

नानाप्रकारकी वासना थी, तिसकरि तू मलिन दुःखरूप था, अब वासना नष्ट भई है, तौ परमेश्वररूप भया है, चित्तस्वभाव तेरेविषे अज्ञानकरि उपजा दुःखोंका कारण था, सो विवेककरि लीन भया है, जैसे रात्रिके पदार्थ सूर्यके उदय हुए लीन हो जाते हैं, तैसे विवेककरि चित्तभाव नष्ट भया है, सो सिद्धांतका कारण है तेरे संगकरि मैं तुच्छ जैसा हो गया था, अब शास्त्रोंकी युक्तिकरि निर्णय किया है कि, न तू आगे था, न अब है, न बहुरि होवैगा, जबलग मैं आपको जाना न था तबलग तेरा सद्भाव था, अब मैं आपको जाना है, अरु अपने आप-विषे स्थित भया हौं, अब मैं परम निर्वाण शांतरूप हौं सब ताप मेरे नष्ट भये हैं, नित्य शुद्ध चिदानंद परब्रह्मस्वरूप हौं जगत्की सत्य असत्य कलना मेरी नष्ट भई है, काहेते कि, कलना सब चित्तविषे थी, जब चित्त निर्वाण हो गया, तब कलना कहां रही, मैं केवल शुद्ध आत्मा हौं, प्रतियोगी कोऊ नहीं, न व्यवच्छेद है, काहेते कि, दूसरा कोऊ नहीं, चित्तकी चेतना फुरती थी, सो निर्वाण होगई है, अब मैं स्वस्थ भया हौं, जैसे तरंगोंते रहित समुद्र अचल होता है, तैसे मैं सर्व कलनाते रहित वीतराग हौं, संवेदनते रहित सम सत्तामात्र अपने आपविषे स्थित हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्याने चित्तोपदेशो नाम एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः ८०.

वीतवमनोज्ञवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार वीतवने निर्वासनिक होकारि निर्णय किया, विंध्याचल पर्वतकी कंदराविषे समाधि करता भया, आकाशवत् निर्मल चित्त इंद्रियोंकी वृत्ति बाह्यते खैंचिकरि अचल करत भया, शिर अरु ग्रीवाको सम करिकै चित्तकी वृत्ति अनंतर आत्मा साक्षिभूत-विषे स्थितकरी, जैसे लकडियोंको जलाइकारि अग्निकी ज्वाला शांत हो जातीहै, तैसे प्राण अरु मनकी वृत्तिका स्पंद मिटगया, जैसे शिलाविषे पुतली होती है, जैसे मूर्त्तिकी लिखी पुतली होती है, तैसे स्थित होगया.

तीनसौ वर्ष समाधिविषे रहा, जैसे एक घडी होती है, तैसे समाधि लगे हुए व्यतीत होगया, मेघोंकी वर्षा शिरके ऊपर होवै अरु मंडलेश्वर आनि शिकार खेलै अरु बडे शब्द होवैं, रीछ वानरोंके शब्द होवैं, सिंहके हाथियोंके शब्द होवैं, वनको अग्नि लगैं, गडेकी वर्षा होवै, वायु चलै, धूप पडै, तौ भी समाधिते न जागै, जैसे पहाडविषे शिला दबी होती है, तैसे शरीर दब गया जब तीनसौ वर्ष व्यतीत भये तब चित्त आनि फुरा कि, शरीर मेरे साथ है, परंतु प्राण नहीं फुरैं, तब चित्तके फुरनेविषे आपको कैलास पर्वत ऊपर देखत भया, कदंब वृक्षके नीचे देखत भया, सौ वर्षपर्यंत मौन होकरि जीवन्मुक्त निर्मल आत्माकरि विचरा, बहुरि विद्याधरोंविषे विद्याधर होकरि विचरा सौ वर्षपर्यंत, तिसके अनंतर और पंचयुग होकरि इंद्र हुआ, देवता नमस्कार करै हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! देशकाल अरु मन आदिक प्रतिभा अनियत अनियम उसको कैसे भासा ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! चित्तसर्व आत्मारूप है, जैसा जैसा तिसविषे फुरणा होता है, तैसा हो भासता है, जैसे जैसे देशकालका फुरणा होता है, तैसेही अनुभव होता है ॥ हे रामजी! जेता कछु प्रपंच है, सो मनोमात्र है; जैसा फुरणा तीव्र होता है, तैसे अनुभवसत्ताविषे भासता है, तहां स्थित होताहै, जब और भ्रमविषे गया तौ नियमके जैसा होता जाता है, तैसेही जो अज्ञानी होता है, तिसको वासना करि नानाप्रकारका जगत् भासता है, अरु ज्ञानवान् होता है, सो सब आत्माको देखता है, तिसका फुरणा भी अफुरणा है, अरु वासना भी अवासना है, वीतव मुनीश्वर जो देखता भया, सो चित्तके फुरणेकरि देखता भया, परंतु स्वस्थरूप था, उसकी वासना भी अवासना थी, जैसे भूना बीज नहीं उगता, तैसे वासना अवासना थी, भ्रांतिका कारण न था, कल्पपर्यंत चंद्रधारी सदाशिवका गण होकरि विचरा, समस्तविद्याका ज्ञाता सर्वज्ञ त्रिकालदर्शी जीवन्मुक्त होकरि विचरा॥ हे रामजी! जैसा किसीका संस्कार दृढ होता है, तैसा तिसको अनुभव होता है, जैसे वीतव चित्तको स्पंदकरिकै जीवन्मुक्तका अनुभव करता भया ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो ऐसे है तौ जीवन्मुक्तके मतविषे बंध मोक्ष

हुआ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्तको सब ब्रह्मस्वरूप भासता है, बंध मोक्ष अवस्था तिसविषे कहां है, ज्ञानमात्र आकाशविषे जैसा फुरणा होता है, तैसा ही भासता है ॥ हे अंग ! यह सब चिन्मात्रस्वरूप है, अरु जगत् जो नानाप्रकार भासता है, सो मनकरि भासता है, वास्तवते न जगत् है, न अजगत् है, केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है, जगत्के भूत भविष्य केवल ब्रह्मसता भासती है, चिन्मात्रते इतर जो कछु जगत् भासता है, सो मनके फुरणेकरि भासता है, जिनको ऐसा ज्ञान नहीं तिनको जगत् वज्रसारते दृढ हो भासता है, अरु ज्ञानवान्को आकाशवत् भासता है ॥ हे रामजी ! अज्ञानकरिकै मन उपजा है, तिस कारि संपूर्ण जगत् हुआहै, वास्तवते और कछु नहीं जैसे समुद्रविषे तरंग हुल्लास होता है, तैसे चिदाकाशविषे आकार भासते हैं, जब चित्तअचित्त हो जाता है, तब द्वैत कछु नहीं भासता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवमनोज्ञवर्णनं नाम अशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमः सर्गः ८१.

वीतवसमाधियोगोपदेशवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! वीतव मुनीश्वरका जो शरीर विंध्याचल पर्वतविषे पड़ा था, बहुरि तिसकी क्या अवस्था भई ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तिसके अनंतर आत्मवेत्ता वीतव मुनीश्वर जो तेजवान् था, सो एक कालविषे शरीर गुणोंको मनकरि विचारत भया, कई नष्ट हो गए हैं, कई अनष्ट हैं, तिन अनष्टोंविषे पृथ्वीके मध्य जो स्थित था, तिसको देखत भया, जो कंदराविषे धूलि पडी थी, वर्षा करिकै क्षुभ गया है, कीचड़विषे फँसा ऊपर तृण जाल जम गया है, तिसको देखिकरि कहने लगा कि, इसविषे प्रवेश करौं, बहुरि विचार किया कि यह तौ जड़ गुंग है, अरु फँसा हुआ है, इसके निकाशनेको मैं समर्थ नहीं, ताते सूर्यमंडलको जाऊं, जो सूर्यका सारथि अरुण पंगु है, सो इसको निकासैगा, अथवा इसकेसाथ मेरा क्या प्रयोजनहै ? यह नाश

हो जावै, अथवा रहै, एता यत्न मैं किस निमित्त करौं, अपने निर्गुण स्वरू-पविषे स्थित होउँ, देहसाथ मेरा क्या है, इसप्रकार वीतव तूष्णीं होगया है, एक क्षणके अनंतर बहुरि चिंतना भई, जो पृथ्वीविषे देहकरिं न कछु त्यागने योग्य है, न कछु ग्रहण करने योग्य है, ताते देहका त्यागना रखना समान है, यह शरीर किसनिमित्त दबा रहै, अरु कछुक काल इसका प्रारब्धवेग है, आकाशविषे सूर्य स्थित है, तिस-विषे प्रवेश करौं, जैसे आदर्शविषे प्रतिबिंब प्रवेश करता है, तैसे करों अरु शरीरको सूर्यके सारथिकरि निकासौं॥ हे रामजी! ऐसे विचारकरि मुनीश्वर पुर्यष्टकारूपसों आकाशमार्गमें चढे, सूर्यके अंतर वायुरूप प्रणा-यामकरिकै प्रवेश किया, जैसे शस्त्र पिंडविषे अग्नि प्रवेश करताहै, तब सूर्य जानत भया कि, वीतवमुनीश्वरने प्रवेश कियाहै, सो किसनिमित्त आया है, सर्वज्ञ था, तिसकरि जानत भया कि, पृथ्वीविषे इसका शरीर कीचड अरु तृणोंकरि आच्छादित हुआ है, तिसके निकासने निमित्त आया है, ऐसे विचार अपने सारथीको कहतभया ॥ हे सारथी ! विंध्याचल पर्वतकी कंदराविषे, वीतवमुनीश्वरका शरीर दबा पड़ाहै, तिसको तू जाइ करि निकास दे, तब अरुण नामक जो सारथी जिसका शरीर हस्तिवत् है, सो विंध्याचल पर्वतविषे आइकरिकै नखोंसे शरीरको निकासत भया सो कैसे नख हैं, जिनसे पहाड उखार डारेहैं, उन नखोंसे धराकोटरविषे गाडे हुए शरीरको काढत भया, जैसे समुद्रके तीर भिहका तंतु काढि पातेहैं, तैसे पर्वतकी कंदराते शरीरकोनिकास डारा, तब मुनीश्वरने पुर्यष्ट-काकरिकै शरीरविषे प्रवेश किया, जैसे पक्षी आकाश मार्गते उड़ता आलयविषे आइ प्रवेश करै, तैसे शरीरविषे आइ प्रवेश किया, अरु साव-धान होकरि अरुणको नमस्कार करत भया, अरुण वीतवको नमस्कार करत भया, परस्पर नमस्कार करिकै अपने कार्यकी ओर हुए; अरुण आकाशमार्गको गया, अरु मुनीश्वर तलावकी ओर गया, कीचडसाथ भरा हुआ शरीरसों मुनीश्वर तलावविषे डुबकी मारतभया, जैसे हस्ती मल धोता है, तैसे स्नान करिकै संध्यादिक कर्म करत भया, सूर्य भगवान्का पूजन किया, जैसे प्रथम तपकरि शरीर शोभता था, तैसे

भूषित किया, मैत्री समता सत्य मुदिता आदिक गुणोंकरि संपन्न भया, ब्रह्मलक्ष्मीकरि शोभता भया, अरु सबके संगते रहित भया, जो इन गुणोंको भी स्वरूपविषे स्पर्श न करै, आपको शुद्ध स्वरूप जानै ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवसमाधियोगोपदेशो नाम एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमः सर्गः ८२.

वीतवोपाख्यान इंद्रियनिर्वाणवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जब केतेक दिन व्यतीत भये. तब समाधिके निमित्त मुनीश्वरका मन उदय हुआ, तब जाइकरि विंध्याचल पर्वतकी कंदराविषे स्थित भया, पूर्व जो विचार अभ्यास किया था अरु परावर परमात्मा दृष्टि भई थी, तिसकरि बहुरि चित्तको कहत भया ॥ हे चित्त ! इंद्रियों मैं तुम्हारा पूर्वही प्रहारकर छोडा है, अब तुम्हारे अचित्तविषे अनर्थ अर्थ कोई नहीं, काहेते जो अस्ति नास्ति कलना मेरी नष्ट भई है, अस्ति नास्तिके पीछे जो शेष रहता है, तिसविषे स्थित हौं जैसे पहाडका सिंह अचल होता है, तैसे अचल हौं अरु सदा उदयरूप असत्की नाईं स्थित हौं, उदय स्वरूप इसकरि जो सदा ज्ञानरूप प्रकाशवान् हौं अरु असत्की नाईं इसप्रकार जो सदा अक्रियरूप हौं, अरु असत्रूप उदयकी नाईं स्थित हौं, असत् इस कारणते कि, मन इंद्रियोंका विषय नहीं, अरु उदयकी नाईं इस कारणते कि, सबका साक्षीभूत हौं, अरु सदा समरस प्रकाशरूप अपने आपविषे स्थित हौं, बहुरि कैसा हौं प्रबुद्ध हौं; अरु सुषुप्तिविषे स्थित हौं, प्रबुद्ध इस कारणते जो इंद्रियोंको विषयकी उपलब्धि करता हौं; अरु सुषुप्त इस कारणते कि हर्ष शोक इष्ट अनिष्टसों रहित हौं अरु जगत्की ओरते सुषुप्ति समाधिविषे हौं, तहां जाग्रत् हुआ, तुरीयापद आत्मतत्त्वविषे स्थित हौं, जैसे स्थाणु स्तंभस्थित होताहै, तैसे स्थितरूप हौं नित्य शुद्ध समान सत्ता आत्मपद तहां मैं निरामय स्थित हौं ॥ हे रामजी ! इसप्रकार चिंतवताहुआ मुनीश्वर ध्यानविषे जुडा षट्दिनपर्यंत ध्यानविषे

रहा, उपरांत जागा तब एकक्षणके समान जानत भया, जैसे सोया हुआ क्षणविषे जागै, इसीप्रकार वीतव शुद्ध पदको प्राप्त भया जीवन्मुक्त होइकारि चिरकालपर्यंत विचरत भया, न कोऊ वस्तु हर्ष देवै, न शोक देवै चलता हुआ भी स्थिर रहै, इन्द्रियोंका व्यवहार करता इष्ट अनिष्ट प्राप्तिविषे सम रहै, कदाचित् किसीविषे चलायमान न होवै, चलता बैठता मन इंद्रियोंको कहै ॥ रे इंद्रियों! मरहु, हे मन! तू शमवान अब हुआ है, आत्माको पाइकारि अब देख, तुझको क्या सुख है जिस सुखके पाएते और पाने योग्य कछु न रहता निराग सुख है, ऐसा जो परम शांतरूप अचल सुख है, तिसको आश्रय करिकै चंचलताको त्याग. अरु हे! इंद्रियों तुम्हारा वास्तवते स्वरूप कछु नहीं अरु आत्मपदविषे तुम दृष्ट नहीं आती, अपने स्वरूपके जानेविना तुम मुझको दुःख देती थीं, अब मैं अपने स्वरूपको प्राप्त भया हौं, मेरेको वश करनेकी समर्थता तुमको नहीं. काहेते कि. तुम अवस्तुरूप हौ, आत्माके प्रमादकारि तुम्हारा भान होता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है तैसे अनात्माविषे आत्मभावना अरु अनात्माविषे आत्मभावना होती है, सो अविचारकारि होती है अरु विचार करिकै नहीं होती, अब विचार करिकै यह भ्रम निवृत्त भया है, तुम इंद्रियांगण और हौ, अहंकार और है, ब्रह्म और है, कर्तृत्व और है, भोक्तृत्व और है औरका दुःख आपविषे मानना यही मूर्खता है, जैसे वनकी लकडी और है, बांस और हैं, चर्म और है जिस करिकै रथ बनता है, अरु लोहा और पीतल और बडे और जिसकारि रथ जडा है, बैल और जो रथको चलावतेहैं, तिन सब करिकै रथ बनता है, जैसे गृहका आकार होताहैं, तैसे रथ है, तिसविषे बैठनेवाला पुरुष और होता है, रथकी सामग्री परस्पर और होती है, तिसविषे बैठनेवाले कहैं कि, मैं रथ हौं सो नहीं बनता, तैसे शरीररूपी रथ है, अज्ञान करिकै मिला है, इंद्रियां और हैं, मनआदिकऔरहैं, तिसविषेपुरुषहै, सो जीव है जीवकहै मैं शरीर हौं, बडी मूर्खता है, तिस शरीरके सुख दुःख मूर्खता करिकै, आपको मानते हैं, जो विचार करिकै देखैं तौ रागद्वेष क्षोभते मुक्त होवैं, मैं अविचाररूपी विस्मृति स्वरूपको दूरते त्यागा है, अरु स्वरूपकी स्मृति स्पष्ट करी

है, जो आत्मतत्त्व सत् है, तिसको सत् जाना है, अरु अनात्मा असत् है, तिसको असत् जाना है, जो सत् है, सो स्थित है, जो असत् है, सो क्षीण हो जाता है॥ हे रामजी! इस प्रकार वीतव मुनि विचार करिकै जीवन्मुक्त हुआ, अपने स्वरूपविषे बहुत वर्षोंको व्यतीत किया, अपना जो निर्भयपद है, जिसविषे चित्तादिक भ्रम सब नष्ट हो जाते हैं, ऐसे शुद्ध पदको प्राप्त हुआ यथा भूतार्थ आत्मध्यनविषे स्थित भया, ग्रहण अरु त्यागनेकी भावना कछु नहीं रही, परिपूर्ण आत्मपदको प्राप्त भया, अगस्त्यमुनिका पुत्र वीतव मुनि, तिस पदको पाइकरि निर्वासनिक हुआ, बहुरि जिसकालविषे जिस प्रकार विदेहमुक्त हुआ है, सो सुन. बीसहजार अरु सातसौ वर्ष जीवनमुक्तहो करि रहा, बहुरि विदेहमुक्त भया, जो इच्छा अनिच्छाते रहित पद है, जन्ममरणका जिसविषे अंत है, रागद्वेषते रहित पदको प्राप्त हुआ है॥ हे रामजी! हिमालयपर्वतकी कंदरा थी, तिसविषे प्रवेश किया, पद्मासन धारि करि हाथ जोडकर कहत भया॥ हे राग! तू निरागताको प्राप्त होउ, अरु तू निर्दोषताको प्राप्त होउ, तुम्हारे साथ मैं चिरपर्यंत क्रीडा करी है, परंतु विवेकते रहितकरी है, तुम अब जाओ, मेरा तुमको नमस्कार है, अरु हे भोग! तुम्हारी लालसा करि मुझको परमपदका विस्मरण होगया था; जैसे माता सुखके निमित्तपुत्रकी लालसा करती है, तैसे मैं सुख जानिकरि तुम्हारी लालसा करताथा, अब जाओ, तुमको मेरा नमस्कार है, अब निर्वाण पदको प्राप्त होता हौं॥ हे दुःख! तुझको भी नमस्कार है, तेरे उपदेशकरि मैं आत्मपदको प्राप्त हुआ हौं, काहेते कि, मैं सदा भोग सुखको चाहता था, जब सुख प्राप्त होता था, तब तुझको भी साथ ले आता था, सुखते तेरी उत्पत्ति होती है, सुखकी लालसाविषे तौ मैं अनेक जन्म पाता रहा, अरु जब सुख आवै तब तुझको भी साथ ले आवै, तुझको देखिकरि मुझको आत्मपदकी इच्छा उपजी, तेरे प्रसादकरि मैं परम शीतल पदवीको प्राप्तहुआ हौं॥ हे दुःख! तू तौ दुःख था, परंतु मुझको सुख प्राप्त किया, ताते तेरा कल्याणहोवै तू अब जाउ॥ हे मित्र! संसारविषे जीवना असार है, जिसका संयोग

होता है, तिसका वियोग भी होता है, अरु तुझने मेरे साथ बड़ा उपकार किया है, जो अपना नाश किया है; अरु मुझको सुख प्राप्त किया है, जो तू मुझको प्राप्त न था, तौ मैं आत्मपदके निमित्त कब यत्न करता तुझने अपना नाश करना माना, परंतु मुझको सुख प्राप्त किया ॥ हे मित्र ! तू बांधवोंकी नाईं चिरकालपर्यंत मेरे साथ रहा, तू कदाचित् मुझते दूर न भया, मैं तेरा नाश नहीं किया, तुझने अपना नाश आपही किया है, तू मुझको जब प्राप्त हुआ था, तब मुझको विवेकोत्पत्ति भयी, तिस विवेकने तेरा नाश कियाहै, ताते तुझको मेरा नमस्कार है ॥ अरु हे माता तृष्णा ! तुझको नमस्कार है, तू सदा मेरे साथ होइ रही है, कदाचित् त्याग नहीं किया, जैसे अयाने बालकका त्याग माता नहीं करती, तैसे तुझने मेरा त्याग नहीं किया, अब तू जा ॥ हे कामदेव ! तुझने आपही विपर्यय होकारि अपना नाश किया है, जब तू बहिर्मुख था, तब जीवता था, जब अंतर्मुख हुआ, तब तू मिट गया, तुझको नमस्कार है. अरु हे सुकृतो ! तुमको नमस्कार है, तुमने भी बड़ा उपकार किया था, जो नरकोंसे निकास कारि स्वर्गोंविषे प्राप्त किया था परंतु अंत सबका वियोग होना है, ताते तुम भी जाउ. हे दुष्कृतो ! तुम भी जाउ, विकर्मरूपी तुम्हारा क्षेत्र है, अरु युवा अवस्था बीज है, तिसते नरक दुःख फल होता है, सो तुम्हारे साथ भी संयोग हुआ था, ताते तुमको भी नमस्कार है, तुम भी जाउ ॥ हे मोह ! तुमको भी नमस्कार है, तुझकारि चिरकाल मैं बांधा था, अरु नाना प्रकारके स्थानको प्राप्त होता था, अरु तू भय दिखाता था, तिसकारि मैं भयको प्राप्त होता था, ताते तुझको नमस्कार है, अब तू जाउ ॥ हे गिरिकंदरा ! तुझको भी नमस्कार है, तुझविषे मैं चिरकाल तप किया है ॥ हे बुद्धि! हे विवेक ! तुमको भी नमस्कार है, तुमने मेरे साथ उपकार किया है, जो संसार बंधनते मुक्त किया है, तुम भी जाओ हे दंड ! अरु तुंबा ! तुमको भी नमस्कार है, तुम भी जाओ, बहुत काल तुम भी मेरे सम्बन्धी रहे हौ ॥ हे देह ! रक्त मांसका पिंजर होइकारि तू मेरे साथ बहुत काल रहा है, अरु तुझने उपकार किया है कि, विवेक उपजानेका स्थान तूही

है, तेरे संयोगकरि मैं परमपद पाया है, तू भी अब जा, तुझको नमस्कार है ॥ हे संसारके व्यवहारो ! तुमको भी नमस्कार है; तुम्हारेविषे मैं बहुत क्रिया करी हैं, स्थान देश क्रिया कर्म किया हैं, ऐसा पदार्थ जगत्‌विषे कोई नहीं जो दिया लिया न होवैगा, अरु ऐसा कर्म कोई नहीं मेरेविषे जो किया न होवैगा, अरु ऐसा देश कोई नहीं जो देखा न होवैगा, अब सबको नमस्कार है ॥ हे इंद्रियों ! प्राण मन आदिक तुमको नमस्कार है, हमारा चिरकाल संयोग था, अब वियोग हुआ. काहेते कि, जिसका संयोग होता है, तिसका वियोग भी होता है, ताते तुम्हारा हमारा भी वियोग होता है, नेत्रोंकी ज्योति सूर्यमंडलविषे जाय लीन होवैगी, घ्राणोंकी गंध पृथ्वीविषे जाय लीन होवैगी, प्राण त्वचा पवनविषे जाय लीन होवैंगे, श्रवण आकाशविषे लीन होवैंगे, मन चंद्रमाविषे लीन होवैगा, जिह्वा रसविषे लीन होवैगी, इसी प्रकार सब अपने अपने अंशविषे जाय लीन होवैंगे; जैसे लकडियोंके जलेते अग्नि शान्त हो जाती है, जैसे शरत्कालविषे मेघ शांत हो जाता है, जैसे तेलते रहित दीपक निर्वाण हो जाता है, जैसे सूर्यके अस्त हुए प्रकाश शांत हो जाता है; तैसे मनआदिक शान्त हो जावैंगे ॥ हे रामजी ! ऐसे विचार करते करते मन सर्व कार्योंते रहित प्रणवके ध्यानविषे लगा, सर्व दृश्यते शान्त होगया, मोहरूपी मलको त्यागिकरि चित्त प्रणवके विचारमें लगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्यान इंद्रियनिर्वाणवर्णनं नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमः सर्गः ८३.

वीतवनिर्वाणयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार शब्दब्रह्म प्रणवका उच्चार करत भया, पंचम भूमिका जो चित्तकी अवस्था है, तिसको प्राप्त भया है, अन्तर बाह्यके जो स्थूल सूक्ष्म पदार्थ हैं, अरु त्रिलोकीके संकल्प सर्व त्यागिकरि अक्षोभरूप स्थित भया, जैसे चिंतामणि अपने प्रकाश-

विषे स्थित होतीहै, जैसे पूर्णकालकारि चंद्रमा अपनेआपविषे स्थित भया है, अरु जैसे मंदराचलके निकसे क्षीरसमुद्र स्थित भयाहै, जैसे मथनेते रहित मंदराचल स्थित भयाहै, जैसे कुंभारका चक्र फिरता फिरता ठहर जाता है, जैसे सूर्यके अस्त हुए व्यवहारक्रिया जीवोंकी ठहर जाती है, अरु जैसे मेघते रहित शरत्कालका आकाश निर्मल होताहै, जैसे प्रकाश तमते रहित आकाश होताहै, तैसे फुरणेते रहित मन शांतिको प्राप्त भया प्रणवके ध्यान करिकै बहुरि तिस वृत्तिके अंतको प्राप्त भया मंत्रको भी त्यागता भया, जैसे महापुरुष क्रोधको त्यागताहै, तैसे वृत्तिको त्यागत भया, बहुरि तेज प्रकाश उदय हुआ, तिसको भी निमेषविषे त्यागत भया, आगे न तेज है, न तम है, तिसविषे अभाववृत्ति रहती है, तिसको भी निमेपविषे त्यागता भया, तब जैसे नूतन बालककी जन्मके समय पदार्थज्ञानते रहित अवस्था होती है, तैसे अवस्था प्राप्त भई, तब जो सत्तामात्र आत्मतत्त्व सुषुप्तपदहै, तिसका आश्रय किया महाअचल जो सुमेरुकी नाईं स्थिर अवस्था है, तिसको प्राप्तहुआ, बहुरि केवल अचेतन चिन्मात्रपद तुरीया निरानंद आनंदहै, जिसविषे स्वरूपते इतर और आनंद नहीं ऐसे आनंदको प्राप्त हुआ जो असत्सत्रूपहै, सर्वक्रियाते अतीत है, इस कारणते असत् है, अनुभवरूप है, इस कारणते सत्यस्वरूप है, ऐसे अशब्द पदको प्राप्त हुआ, जो परम शुद्धपावन पद है, अरु सर्व भावके अतर प्राप्त है, अरु सर्व भाव शब्दते रहित है, जिसको शून्यवादी शून्य कहते हैं, ब्रह्मवादी ब्रह्म कहते हैं, विज्ञानवादी जिसको विज्ञान कहतेहैं, सांख्यमतवाले जिसको पुरुष कहते हैं, योगवाले जिसको ईश्वर कहतेहैं, शैवी जिसको शिव कहते हैं, वैष्णव जिसको विष्णु कहते हैं, शाक्त जिसको परमशक्ति कहते हैं, कालवादी जिसको काल कहते हैं, आत्मवादी जिसको आत्मा कहते हैं; अरु माध्यमिक जिसको मध्यम कहते हैं, इत्यादिक जो शास्त्रोंवाले कहते हैं, सो एक परब्रह्म कहते हैं; काहेते जो सर्वदा सर्वकाल सर्वप्रकार सर्वविषे सर्वरूप वही है, ऐसे सर्वात्माको वीतव मुनीश्वर प्राप्त भया, जिस आनंदसमुद्रके बलकारि सर्वको आनंद होता है, ऐसे आत्मतत्त्व अनुभवरूप अपने आनंदको प्राप्त हुआ वही-

रूप होत भया, जो अन्य है, निरन्य है, निरंजन है, सर्व है, असर्व है, अजर है, अमर है, सबकी आदि है, सकलक है, अरु निष्कलंक है, ऐसा जो आकाशते निर्मल पद है, तिसको वीतव मुनीश्वर प्राप्त हुआ ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवनिर्वाणयोगोपदेशो नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमः सर्गः ८४.

वीतवविश्रांतिसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! दुःखरूप संसार समुद्रके पार वीतव मुनीश्वर परमपदको प्राप्तहुआ, जिसपदके प्राप्त हुए जन्म मरणको बहुरि नहीं पाता, जिस पदविषे स्थित हुआ परमशांत उपशम आनंदको प्राप्त भया, जैसे समुद्रविषे बुंद पड़ी हुई समुद्र हो जाती है, तैसे ब्रह्मसमुद्रविषे ब्रह्म होत भया, अरु शरीर जो वीतवका था, सो विरस होकरि गिर पडा, जैसे शीतकालविषे वृक्षोंके सूखे पत्र गिर पडतेहैं, तैसे शरीर गिर पडा, शरीररूपी वृक्ष था, तिसविषे हृदयरूपी आलय था, तिसविषे प्राणरूपी पक्षी रहता था, सो चिदाकाशविषे प्राप्त हुआ, जैसे खंभाडीकरि पत्थर धावता है, तैसे जाय प्राप्त भया, अपने स्वरूपविषे स्थित हुआ ॥ हे रामजी! यह मैं वीतवकी कथा तझको सुनाई है, सो अनंत विचारकरि युक्त है, इस प्रकार विचारकरि वीतव विश्रामवान् हुआहै, तुम भी उसको विचारिकरि सिद्धतासारको प्राप्त होउ, और दृश्यकी चिंतवनाको त्यागि सावधान होउ ॥ हे रामजी ! जो कछु मैं तुझको पूर्व कहा है, सो तिसविषे प्राप्त हुआ बहुरि पाने योग्य कछु नहीं रहता अरु अब जो कछु कहता हौं, अरु जो कछु पाछे कहौंगा तिसको विचार कि, मुक्ति ज्ञानहीकरि होती है, अरु ज्ञानहीकरि सब दुःख नाश होतेहैं, ज्ञानहीकरि अज्ञान निवृत्त होता है, अरु ज्ञानहीकरि परम सिद्धताको प्राप्त होताहै, पाने योग्य यही वस्तुहै, दुःखोंके नाश करनेको और कोई समर्थ नहीं. यह निश्चय है कि ज्ञानकरि सब फांस काटे जातेहैं, ज्ञानहीकरि वीतवने मनकोचूर्ण किया॥

हे रामजी! वीतवकी संवित् जगत्के अतीत होत भई, जेता कछु दुःख है, सो मनकरि होता है, मनके उपशम हुए सब जगत् अनुभवरूप हो जाताहै, वीतव भी मनोमात्र था, मैं भी मनोमात्र हौं, तू भी मनोमात्र है, पृथ्वी आदि जगत् सर्व मनोमात्र है, मनते इतर कछु नहीं, जहां मन होता है, तहां जगत् होता है, मनही जगत्रूप है, अरु जगत्ही मनरूप है, जो ज्ञानवान् पुरुषहै, सो मनकी दिशाको त्यागिकरिकै केवल चिदानंद आत्मतत्त्वविषे स्थित होता है, रागद्वेष विकार आदि तिनके मिट जाते हैं॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवविश्रांतिसमाप्तिर्नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

पंचाशीतितमः सर्गः ८५.

सिद्धिलाभविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! वीतवकी नाईं विदितवेद्य होकरि रागद्वेषते रहित स्थित होउ, जैसे सहस्र वर्ष वीतव वीतशोक जीवन्मुक्त होकरि विचरा है, तैसे तू भी विचर; और भी बोधवान् राजा अरु मुनीश्वर हुए हैं, जैसे प्राप्त हुए राज्यादिक व्यवहारविषे रहे हैं, तैसे तू भी जीवन्मुक्त होकरि रहहु ॥ हे रामजी! सुख दुःख कर्म आत्माको स्पर्श नहीं करते, आत्मा सर्वज्ञ है, तू किस निमित्त शोक करता है, बहुत विदितवेद्य पृथ्वीविषे विचरते हैं, परंतु शोकको कदाचित् नहीं प्राप्त होते, जैसे तुम अब शोक नहीं करते ॥ हे रामजी! तू अब स्वस्थ है, उदार है, सम सर्वज्ञ है, आत्मा है, तुझको बहुरि जन्म नहीं, जीवन्मुक्त पुरुष जो अपने स्वरूपविषे स्थित है, सो हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होताहै जैसे सिंह वानर गीदड़ आदिकके वश नहीं होता तैसे जीवन्मुक्त विकारोंते रहित होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! इस प्रसंगविषे मुझको संदेह हुआहै, तिसको निवृत्त करौ, जैसे शरत्कालकरि मेघ नष्ट हो जाताहै, तैसे नाश करौ॥ हे तत्त्ववेत्ताविषे श्रेष्ठ! जीवन्मुक्तके शरीरविषे शक्ति क्यों नहीं दृष्ट आती जो आकाशविषे उड़ता फिरै, अरु सूक्ष्मरूपकरि और शरीरविषे

प्रवेशकरि जावै, इत्यादिक शरीरविषे नहीं देखते ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आकाशगमनादि जो सिद्धि हैं, सो तपादिक कर्मोंकी शक्ति हैं, जेते कछु जगत् विचित्र हैं; देखाई देना बहुरि गुप्त हो जाना इत्यादिक वस्तु द्रव्यके स्वभाव हैं, आत्माके ज्ञानके नहीं ॥ हे रामजी ! कोऊ द्रव्य क्रिया कालको यथाक्रम साधता है, तिसको शक्ति प्राप्त होती है, ज्ञानी साधै अथवा अज्ञानी साधै शक्ति प्राप्त होतीहै, परंतु शक्ति आत्मज्ञानका फल नहीं, आत्मज्ञानीको आत्मज्ञानीकी सिद्धता होती है, आत्मकरि आपविषे तृप्त होता है, सिद्ध जो अविद्यारूप है, तिसकी ओर नहीं धावता, जेता कछु जगत् है; सो तिसने अविद्यारूप जाना है, ऐसे जानकरि पदार्थोंविषे नहीं डूबता, जो अज्ञानीहै, सो सिद्धताके निमित्त इन पदार्थोंको साधता है, अरु जो ज्ञानवान् है, सो इन पदार्थोंकेवास्ते यत्न नहीं करता, अरु जो यत्न करै तौ ज्ञानी होवै, अथवा अज्ञानी होवै इंद्रादिकोंके ऐश्वर्यको पाता है, अरु ज्ञानकी शक्ति नहीं, द्रव्यकी शक्ति है सो अविद्यारूप है, अज्ञानी इनकी ओर धावते हैं, ज्ञानवान् नहीं धावते, वे सर्वते अतीत हैं, सर्व इच्छाका जिसने त्याग किया है, अरु आत्मपदविषे संतोष पाया है, वे इनकी इच्छा नहीं करते, इनकी इच्छा भोगों अथवा बड़ाईके निमित्त होती है, अथवा मान अरु जीवनेके निमित्त तथा सिद्धिके निमित्त इच्छा होती है, आत्मज्ञानीको न भोगोंकी इच्छा होती है, न सिद्धता न मानकी इच्छा होती है, काहेते जो सब अनात्मा धर्म है, वह नित्यतृप्त परम शांतरूपहै, वीतराग निर्वासनिक पुरुष है, अरु आकाशकी नाईं सदा अपने आपविषे स्थितहै, जैसे सुख स्वाभाविक आता है, तैसे दुःख स्वाभाविक आताहै, शरीरके सुख दुःखकी अवस्थाविषे चलायमान नहीं होता, नित्य तृप्त असंगहोताहै जीवन मरणकी वृत्ति उसको नहीं फुरती, सर्वविषे सम रहता है, समुद्रविषे नदियां प्रवेश करती हैं, अरु समुद्र अपनी मर्यादाविषे स्थित हैं, तैसे ज्ञानवान्को क्षोभ नहीं प्राप्त होता ॥ हे रामजी ! जो कछु ज्ञानवान्को प्राप्त होता है, सो आत्माविषे अर्चन करते हैं, तिसको करनेविषे कछु अर्थ नहीं, अकरनेविषे कछु प्रत्यवाय नहीं होता, अरु तिसको

किसीका आश्रय नहीं, सदा अपने स्वरूपविषे स्थित है, अरु यह जो सिद्धि हैं, सो मंत्र काल कर्मकरि होती हैं, एक योगक्रिया ऐसी होती है; तिसके साधनेकरि उडनेकी शक्ति हो आती है, एक मंत्रोंकरि शक्ति होती है, एक गुटका मुखमें रखनेकरि उड़नेकी शक्ति होती है, इत्यादिक शक्तिकी प्रथमही नीति हो रहती है, तिसते अन्यथा नहीं होती ॥ हे रामजी ! जैसी शक्ति जिस साधनकरि नीति हुई है; तिसके अन्यथा करनेको सदाशिव भी समर्थ नहीं। काहेते जो स्वाभाविक स्वतःसिद्ध है, जैसे चंद्रमाविषे आदिनीति शीतलता है, अरु अग्निविषे उष्णता है इत्यादिक पदार्थोंविषे आदि नीतिकरि जो स्वयंभाव हुआ है, तिसके दूर करनेको समर्थ कोऊ नहीं, सर्वज्ञ जो विष्णु भगवान् है, सो भी अन्यथा करनेको समर्थ नहीं होता ॥ हे रामजी ! जिस द्रव्यविषे मारनेकी सत्ता है, सो मारता है, मद्यविषे मत्त करनेकी शक्ति है, तैसे द्रव्य योग काल आदिकविषे सिद्धता शक्ति नीतिहुई है, जैसे एक औषधमें क्लेश करनेकी शक्ति है, तिसके पायेते क्लेश होता है, जैसे इनविषे अपनी अपनी शक्ति है, जो इनको साधता है तिसको वह प्राप्त होती हैं, जो आत्मज्ञानी इनका साधन करै, वह कर्तेविषे भी अकर्त्ता है, अरु आत्मज्ञानके पानेविषे सिद्धि कछु उपकार नहीं कर सकती, परंतु जो इनकी वांछा करै तौ यत्न करिकै पाता, यत्न विना नहीं पाता आत्मज्ञानीको इच्छा भी नहीं होती, आत्मपरायणही होताहै, आत्मलाभ करि सर्व इच्छा तिसकी शांत होजाती हैं ॥ हे रामजी ! जेते लाभ हैं तिनते परम आत्मलाभ है, आत्माको पाइकरि बहुरि इच्छा किसीकी नहीं होती, जैसे अमृतके पान किये और जलकी इच्छा नहीं करता, तैसे आत्माके लाभकरि और इच्छा नहीं होती, ऐसे आत्मलाभ जिनने पाया है तिनको इनकी इच्छा कैसे होवै, जैसी जैसी किसीको इच्छा होती है, तिसको तैसाही प्राप्त होताहै, ज्ञानी होवै अथवा ज्ञानते रहित होवै, इच्छा प्रयत्नके अनुसार प्राप्त होती है यह जो वीतव था, तिसको इच्छा कछु न रही थी, अरु प्रथम जो सूर्यपास गमनकी शक्ति इसविषे दृष्ट आई थी; सो क्रियाके साधन करिकै थी, पीछे जब ज्ञान उपजा तब इच्छा

कछु न रही ॥ हे रामजी ! जो कछु किसीको फल प्राप्त होता है, सो अपने प्रयत्नकरि होता है, जो ज्ञानवान् है, सो सदा तृप्त रहता है, तिसको इष्ट अनिष्टकी इच्छा कछु नहीं फुरती ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! एता काल जो वीतव तीनसौ वर्ष समाधिविषे रहा, तब तिसका शरीर पृथ्वीसाथ पृथ्वी क्यों न हो गया, अरु सिंह बघाडादिक उसको क्यों भोजन न करि गए ? अरु पाछे विदेहमुक्त हुआ, प्रथम क्यों न हुआ ? जो पृथ्वीविषे दबे हुएको निकासने निमित्त बड़ा यत्न किया, इस संशयको निवारण करौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो संवित् वासनासाथ बांधी हुई है, सो सुखदुःखको भोगती है अरु मलिन भावकरि आवरी हुई है, अरु जो वासनाते रहित है, सो शुद्ध समतारूप है, सुखदुःखके भोगते रहितहै, किसी कारणकरि छेदी नहीं जाती ॥ हे रामजी ! जिस जिस पदार्थविषे चित्त लगता है, सोई सोई पदार्थ स्वरूपविषे भासता है, यह पदार्थकी शक्ति है, जैसी पदार्थोंविषे शक्ति होती है, तैसी भासती है, इस कारणते बहुत वर्ष व्यतीत होते हैं, तौ भी समाधिके बलकरि तिसका शरीर ज्योंका त्यों रहता है. काहेते कि, चित्त जिस पदार्थविषे लगता है, तिसका रूप हो जाता है, जैसे मित्रको मित्रभावकरि देखता है, स्वाभाविकही प्रसन्न होता है, अरु शत्रुको देखिकरि चित्तविषे स्वाभाविकही अप्रसन्नता फुरि आती है, मिष्ट वस्तुको देखिकरि चित्त स्वाभाविक लोलुप हो जाता है, कटुकविषे विरसताको प्राप्त होता है, जैसे मार्ग चलनेवालेका चित्त मार्गके पर्वत वृक्षोंके रागकरि बंधायमान नहीं होता; अरु जैसे चंद्रमाके निकट गएते शीतलता होती है, सूर्यके निकट उष्णता प्राप्त होती है, सो पदार्थकी शक्ति है; जिस पदार्थसाथ वृत्तिका स्पर्श होता है, तिसका स्वाभाविक आरंभ विफल प्राप्त होता है, तैसे जब योगी देह इंद्रियोंकी वासना ममत्वभावको त्याग कर समभावविषे प्राप्त होता है, तब तिसको समभावका अनुभव होता है. अर्थ यह कि, सर्वविषे एकही भासता है, इस कारणते शरीरको सिंहादि कछु कोऊ छेदि सकते नहीं, जो जीव उसके घात करनेको आते हैं, सो हिंसाभावको त्यागि देते

हैं, अहिंसक हो जाते हैं, इस कारणते निकट आय शांत हो जाते हैं, वीतवका शरीर छेदनको न प्राप्त भया; न पृथ्वीविषे पृथ्वी हो गया, सर्वत्र समता आकाश एकही स्थित है, काष्ठ लोष्ट पत्थर ब्रह्मादि तृणपर्यंत सर्वविषे एक अनुस्यूत है, अरु जहां पुर्यष्टका होती है, तहां भासता हैं, जहां पुर्यष्टका नहीं होती, तहां नहीं भासता, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब सब ठौरविषे पूर्ण है, परंतु जहां स्वच्छ ठौर दर्पण जलते आदि लेकरि होते हैं, सो भासते हैं; जहां उज्वल ठौर नहीं होता, तहां प्रतिबिंब नहीं भासता तैसे जहां पुर्यष्टका है, तहां संवित् भासती है, अन्यथा नहीं भासती, इस कारणते जो वीतवकी संवित् समभावविषे स्थित हैं, उसको किसी तत्त्वका अरु जीवका क्षोभ नहीं होता, अरु पंच तत्त्वोंका क्षोभ तब होता है, जब प्राण फुरते हैं, जब प्राण फुरणेते रहित होता है, तब तत्त्वोंका क्षोभ नहीं होता, सो वीतवकी बाह्य अरु अन्तर स्पंदकला प्राणोंकी शांति हो गई थी, प्राण अरु चित्तकला दोनों फुरणेते रहित थीं, इसका हृदय भी क्षोभित न भया ॥ हे रामजी ! देहरूपी गृहविषे चित्त अरु वायुका स्पन्द शांत हो जाता है, जब इनका फुरना शांत होता है, तब शरीर नांश हो जाताहै, तब सब सुमेरुकी नाईं स्थित हो जाते हैं किसीकी समर्थता नहीं, जो तिसको क्षोभ करै, अरु नाश करै, योगीश्वरका चित्त अरु प्राण निस्पन्द हो जाता है, सो इनको वश करिकै जुड़ता है, तब उसको न तत्त्वोंका क्षोभ होता है, न वात पित्त कफका क्षोभ होता है, न और कछु क्षोभ होता है, इसकरिकै योगीका शरीर सहस्र वर्षपर्यंत भी ज्योंका त्यों रहता है, नष्ट नहीं होता है, जैसे वज्रको कोऊ चूर्ण नहीं कर सकता, तैसे तिसके शरीरको कोऊ नाश नहीं कर सकता, सबकी शक्ति तिसके ऊपर कुंठित हो जातीहै, इस कारणते वीतवका शरीर ज्योंका त्यों रहा, अरु तब क्यों न विदेहमुक्त हुआ सो सुन॥ हे रामजी ! तत्त्वज्ञ विदितवेद वीतराग महाबुद्धि है जिनकी, अभिमानरूपी गांठ टूट पडी है, सो पुरुष स्वतन्त्र स्थित होता है, तिनको न कोऊ प्रारब्ध कर्म है, न सञ्चित कर्म है, न वर्तमानका कर्म है; सबते मुक्त तत्त्ववेत्ता स्वतंत्र स्थित होते हैं, अरु स्वेच्छ विचरते हैं, जैसी इच्छा

करै, तैसी शीघ्र होती है॥ हे रामजी! वीतवको आकाशमात्रते जीवनेका स्पंद फुर आया, तब केताक काल जीवता रहा, जब उसकी संवित्विषे विदेह मुक्त होनेका स्पंद फुरा, तब विदेहमुक्त हो गया, उनकी स्थिति स्वाभाविक स्वतंत्र होती है, जिसकी वांछा करता है सो तत्काल हो जाता है, मन आत्मपदविषे स्थित होता है, उनको कछु कृत्य कर्तव्य नहीं॥ इति श्रीयोगवा० उपशमप्र० सिद्धिलाभविचारो नामपञ्चाशीतितमः सर्गः८५॥

षड्शीतितमः सर्गः ८६.

दानविचारवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन्! जब विचारकारि वीतवका चित्त शांत हो गया, तब उसको मैत्री करुणा आदिक गुण आन प्राप्त हुये, यह तुमने कहा, परंतु जब विवेक कारिकै चित्त उसका नष्ट हो गया, बहुरि मैत्री आदिक गुण कहां आनि प्राप्त भए॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! चित्तका नाश दो प्रकारका है, जीवन्मुक्तका चित्त अचित्तरूप हो जाता है, अरु विदेहमुक्तका चित्त स्वरूपते नष्ट हो जाता है, जैसे भूना दाना होता है, तैसे जीवन्मुक्तका चित्त देखनेकारि चित्तरूप है, सो बीचते शब्दभाव नहीं अरु जैसे दाना नष्ट हो जावे तैसे विदेहमुक्तका चित्त है सो देखनेमात्र भी नहीं रहता॥ हे रामजी! जो चित्तकी सत्यता है, सो दुःखोंका कारण है, अरु चित्तकी असत्यता सो सुखोंका कारण है, चित्तविषे विषयोंकी वासना फुरती है, सो चित्त जन्मोंके देनेहारा है, अरु दुःखोंका कारण है, गुणोंके संगकारि अहं ममभावविषे रहता अरु चित्तकी सत्यताकारि जीव कहाताहै॥ हे रामजी! जबलग चित्त विद्यमानहै, तबलग अनंत दुःख होता है. दुःखरूपी वृक्षका बीज चित्त है, जब चित्त नष्ट हुआ तब कल्याण हुआ॥ राम उवाच॥ हे ब्राह्मण! मन किसका नाम हुआ, अरु कैसे नष्ट होता है, अरु अस्त कैसे होता है, सो कहौ?॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे प्रश्नवेत्ताविषे श्रेष्ठ! चित्तसत्ताका लक्षण मैं तेरेको कहाहै, अब चित्तमृतकका लक्षण सब सुन, सुख अरु दुःखकी दिशा जिसके धैर्य-

स्वरूपको चलाय नहीं सकती, जैसे सुमेरुको पवन चलाय नहीं सकता तैसे जिसके चित्तको दुःख चलाय नहीं सकता, तिसका मृत्यु जान. अर्थ यह कि, वह चित्त सत्पदको प्राप्त भया है, उस चित्तते चिंता नाश होगई है, जैसे भूने दानेते अंकुर नाश हो जाता है, तैसे उसका चित्त नाश हो जाता है, आत्माते इतर जिसको कछु नहीं फुरता सो चित्त मृतक हुआ है ॥ हे रामजी ! अहं इच्छा द्वेषादिक विकार जिसके चित्तको तुच्छकरि सकैं नहीं, तिसका चित्त मृतक जान अरु जिसको इंद्रियोंके विषय इष्ट अनिष्ट प्राप्त होवैं, अरु राग द्वेषकरि ग्रहण त्यागकी द्वैतभावना न उपजै, ज्योंका त्यों रहै, तिस पुरुषका चित्त मृतक जान जिसका चित्त नाश हुआ है, सो जीवन्मुक्त जान, अरु जिसको संसारके इष्ट पदार्थोंविषे राग होता है, तिसकरि ग्रहणकी इच्छा करताहै, अरु अनिष्टकी प्राप्तिविषे दोष करिकै त्यागनेकी इच्छा करता है, अहं ममभाव संयुक्त देहविषे अभिमानहै, तिस करि आपको सुखी दुःखी मानताहै, अपनेविषे अनुभव होता है सो चित्त जीवता है, यह चित्त सत्यताहै, अरु जब चित्त संसारते विरक्त होवै अरु जब चित्त सत्संग करै, सच्छास्त्रोंका श्रवण मनन करै, अरु स्वरूपका अभ्यास करै, तब चित्त अचित्त हो जाताहै, अरु परमानंदकी प्राप्ति होतीहै, तब जीवन्मुक्त होकरि विचरता है,अरु मैत्री आदिक गुण जिस प्रकार जीवन्मुक्तविषे होते हैं, सो सुन ॥ हे रामजी ! चित्तविषे जो संसारकी सत्यतारूपी मैल है, यही चित्तभाव है, सो आत्मज्ञानकरि नष्ट हो जाता है तब मैत्री आदिक गुण आनि प्राप्त होते हैं, जैसे सूर्यके उदय हुए तम नष्ट हो जाता है, अरु प्रकाश उदय होता है, अरु जैसे भूने दानेका अंकुर जलि जाता है, तैसे ज्ञानकरि चित्तका चित्तत्वभाव नष्ट हो जाता है अरु मैत्री आदिक गुण उदय होते हैं, देखनेमात्र चित्त देखता है, अज्ञानीकी नाईं यत्न करता भासता है, परंतु अज्ञानीका चित्त जन्मका कारण है, ज्ञानीका चित्त जन्मका कारण नहीं, जैसे कच्चा दाना उगता है, भूना नहीं उगता, तैसे अज्ञानी जन्मता है, ज्ञानी नहीं जन्मता, जैसे चंद्रमा राहुते छूटता है, तब चित्तविषे मैत्री करुणा आदिक

गुण आनि उदय होते हैं, जैसे वसंतऋतुके आए वल्लियां सब प्रफुल्लित हो आती हैं, तैसे चित्तभाव मिटेते मैत्री आदिक गुण स्वाभाविक आनि फुरते हैं, अरु जो विदेहमुक्त होता है, तिसका चित्त स्वरूपते भी नष्ट हो जाता है, वहां गुण कोई नहीं रहता, वह अवस्था और कोई नहीं जानता, विदेहमुक्त जानता है, तिसविषे द्वैतकल्पना कछु नहीं फुरती, निर्मल पावन पद है ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्तका चित्त स्वरूपविषे अचित्त होकारि रहताहै, अरु विदेहमुक्तविषे चित्त स्वरूपते नष्ट हो जाता है, इस कारणते जीवन्मुक्तविषे मैत्री आदिक गुण पातेहैं, विदेहमुक्तविषे आत्मा निर्मल निष्कलंक है, सो चित्तके नष्ट हुए विदेहमुक्तविषे रहता है, गुणोंकी कल्पना तिसविषे कोई नहीं फुरती, परम पावन निर्मल पदविषे स्थित होता है, अरु शांति आदिक गुण भी नष्ट हो जाते हैं, काहेते कि, चित्त स्वरूपते नष्ट हो जाता है, चित्तके नष्ट हुए चित्तकी अवस्था कहां रहै, न कोऊ गुण रहता है, न अवगुण रहता है, न वह गुणोंते उत्पन्न भया सार कहाता है, न अवगुणोंते उत्पन्न भया असार कहाता है, न लोलुप है, न लक्ष्मी है, न अलक्ष्मी है, न उदय है, न अस्त है, न हर्ष है, न शोक है, न तेज है, न तम है, न दिन है, न रात्रि है, न संध्या है, न दिशा है, न आकाश है, न अर्थ है, न अनर्थ है, न वासना है, न अवासना है, न अंजन है, न निरंजनहै, न सत्य है, न असत्य है, न चंद्रमा है, न तारे हैं, न सूर्य है,ऐसा जो सर्व कलनाते रहित पद है, शरत्कालके आकाशकी नाईं निर्मल है अरु बुद्धिते परे पद है, तिसविषे औरकी गम नहीं, जैसे आकाशके स्थानको पवन जानता है, तैसे उसकी अवस्थाको वही जानै, तहां स्थित हुए सर्व दुःख शांत होजातेहैं, ब्रह्मानंदविषे लीन होजाताहै, ज्ञानवान् आकाशकी नाईं निर्मल पदको प्राप्त होता है, जिसके पाएते और पाना कछु नहीं रहता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे ज्ञानविचारो नाम षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमः सर्गः ८७.

स्मृतिबीजविचारवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! परमाकाशके कोशविषे एक पहाड है, तिसके ऊपर एक जगत्‌रूपी वृक्ष है, तारे तिसके फूल हैं, अरु मेंहु पत्र हैं, सूर्य चन्द्रमा स्कन्ध हैं, देवता दैत्य मनुष्यादिक जीव सब तिस ऊपर पखेरू रहते हैं, सप्त समुद्र तिसकेपास बावडियां हैं, अनन्त नदियां तिसविषे प्रवेश करती हैं, चतुर्दश प्रकारसे भूतजात उत्पन्न होते हैं, सुखदुःखरूपी फलोंकारि पूर्ण है, मोहरूपी जलकारि सींचता है, सो दृढ होकारि स्थित हुआ है, तिसका बीज कौन है, यह ज्ञानरूपी बोधकी वृद्धिके निमित्त मुझको संक्षेपते कहौ ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस संसारका बीज बडा शरीर है, जिसके अन्तर आरंभकी घनता है, जब शुभ अशुभका आरम्भ शरीरका अंकुर होता है, तब शुभ अशुभ करता है, ताते संसारका बीज शरीर है, तिस शरीरका बीज चित्त है. राजस सात्त्विक तामस वृत्ति जिसके टास हैं, अरु जन्ममरणका भंडार है, अरु सुखदुःखरूपी रत्नका डब्बा है, ऐसा जो चित्त है, सो इस शरीरका कारण है ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगज्जाल दृष्ट आता है, सो सब असत्‌रूप है चित्तके फुरणेकारि नानाप्रकारके आडम्बर भासते हैं, जैसे गन्धर्वनगर नानाप्रकारके आरंभसहित भ्रम करिकै भासते हैं, जैसे संकल्पपुर भासता है सो असत् है, तैसे यह जगत् असत् है, जैसे मृत्तिकाविषे घटभाव होता है, तैसे चित्तविषे जगत्का सद्भाव होता है, चित्तरूपी अंकुरके वृत्तिरूपी दो टास होते हैं, एक प्राणोंका, दूसरा दृढभावना, जब प्राणस्पंद होती है, हृदय गात्र जो है, इकहत्तर सौ नाडी हैं, जब तिनकी ओर संवेदनरूप चित्त उदय होता है, तब प्राण स्पन्द तिनकी ओर नहीं फुरता, जब प्राण फुरता है, तब शुद्ध सात्त्विक चित्त आनि उपजता है, तिसविषे जगत् भासता है, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे प्राणविषे नीलता भासती है, जब प्राणस्पन्द होता है, तब चित्त संवित् उछलती है, जैसे हाथ कारि ताडन किया गेन्द उछलता है, जैसे प्राणस्पन्दविषे सर्वगत संवित् उपलब्धरूप होती

है, तहां प्रतिबिंबितरूप होकरि सात्त्विक भागविषे स्थित होती है, महासूक्ष्मते सूक्ष्म है, जैसे वायुविषे गंध रहती है, सोई संवित्‌रूपको त्यागिकरि बहिर्मुख धावती है, तिसकरि नानाप्रकारका जगत् भासता है, अरु नानाप्रकारकी वासना उठती है, तिस करिकै अनेक दुःखोंको प्राप्त होता है ॥ ताते हे रामजी ! संवित्‌को अन्तर्मुख रोकना कल्याणका कारण है, जब संवित् स्वरूपविषे स्थित होती है, तब क्षोभ मिट जाता है, जब शुद्ध संवित्‌विषे अहं उल्लेख फुरता है, तब वेदनरूप होती है, सो चित्त है, चित्तकरि अनेक दुःख होते हैं, चित्तका होना अनर्थका कारण है, जब चित्त न उपजै, तब शांति हो जाती है, अरु चित्त तब निवृत्त होता है, जब प्राणस्पंद रोकिये अथवा वासना नष्ट होवै, सो ध्यान अरु प्राणायामकरि योगीश्वर प्राणोंको रोकता है, तब चित्त स्थित हो जाता है, यह योगकरि अनुभव करता है, अरु ज्ञानकरि भी अनुभव सुन ॥ हे रामजी ! चित्त वासनाकरिकै उत्पन्न होता है, सो वासना विचारते रहित फुरती है, जैसे बालकोंको जन्मतेही स्तनोंते दूध चूसनेकी वृत्ति फुरती है, तैसे अकस्मात्‌ते भावनाकी दृढतासों वासना फुरि आती है ॥ हे रामजी ! जिसविषे पुरुषकी तीव्र भावना होती है, सोईरूप पुरुषका होता है, स्वरूपके प्रमाद करिकै भासा है, तिसविषे दृढ़ प्रतीति हो गई है, तिसकी भावना करताहै, जगत्‌की वासनाकरि मोहको प्राप्त भयाहै, जो स्वतःसिद्ध अनुभवरूप आत्मा है तिसको जानि नहीं सकता, अरु वासनाकी प्रबलता करि स्वरूपका त्याग कियाहै, अरु भ्रांतिरूप जगत्‌को सत्य देखता है, जैसे मद्यकरि मत्तको पदार्थ विपर्यय हुए औरके और भासते हैं, तैसे मूर्खोंकी वासनाके बलकरि जगत्‌के पदार्थ सत्य भासतेहैं ॥ हेरामजी ! असम्यक् ज्ञानकरि जीव दुःखी होता है, शांतिको नहीं प्राप्त होता, मनकी चिंताकरि जलते हैं; मन किसका नाम है, सो श्रवण कर, जो असम्यक् ज्ञानकरि अनात्माविषे आत्मभावना होवै, अरु वस्तु आत्माविषे अवस्तु अनात्मभावना होवै, तिसका नाम मन है, सो मन कैसे उत्पन्न होताहै चेतन संवित्‌विषे जो पदार्थोंकी चिंतवना होती है, बहुरि तीव्र पदार्थकी दृढ भावना होती है, तब वही चेतनसंवित् चित्तरूप हो जाती है,

तिस चित्तविषे बहुरि जन्म मरण आदिक विकार उपजते हैं, बहुरि किसीका ग्रहण किसीका त्याग करता है, जब ग्रहण अरु त्यागका संकल्प अंतरते निवृत्त होवै, तब चित्तभी मृतक हो जावै, जब वासना नष्ट हो जाती है, तब मन अमन पदको प्राप्त होता है, मनका अमन होना परम उपशमका कारण है ॥ हे रामजी ! जेते कछु जगत्के पदार्थ हैं, तिनकी अभावना करिये अरु सब जगत् भूतकारि त्यागिये, तब हृदयआकाशविषे चित्त शांत हो जावै ॥ हे रामजी ! चित्तका स्वरूप एता मात्र है, जब पदार्थोंते रस उठि जावै, तब चित्त बहुरि नहीं उपजता, जबलग पदार्थोंका रस फुरता है, तबलग स्थूल हो जाता है, असम्यक् ज्ञानकारि जो अनात्माविषे आत्मभावना है, ज्यों ज्यों यह दृढ होती है, त्यों त्यों चित्तरूपी वृक्ष अनर्थके निमित्त बढ़ता जाता है, अरु ज्यों ज्यों अनात्मासों आत्मबुद्धि निवृत्त हो जाती है. जो अवस्तुविषे वस्तुबुद्धि न होवै, त्यों त्यों चित्तरूपी वृक्ष क्षीण हो जाता है, सो कल्याणके निमित्त हैं, जब चित्त यथाभूत यथार्थको देखता है, तब चित्त अचित्त हो जाता है, अरु सर्व आशा निवृत्त हो जाती हैं, परम शांति शीतलता हृदयविषे स्थित होतीहै, तब पदार्थोंको ग्रहण भी करता है, परंतु अंतरते रागसंयुक्त वासना निवृत्त भई है, तिसकारि चित्त शांतिको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्तविषे भी चेष्टा दृष्ट आती है, परंतु जन्मका कारण नहीं होती. काहेते कि मनविषे मनका सद्भाव नहीं, जैसे नटुआ अभिमानते रहित अनेक प्रकारके स्वांग धारता है तैसे वह अभिमानते रहित चेष्टा करता है, जैसे कुंभारका चक्र भ्रमता ताडनाते रहित हुआ शनैः शनैः स्थिर हो जाता है, तैसे ज्ञानवान्का चित्त चेष्टा करता दृष्ट भी आता है, परंतु जन्मका कारण नहीं जब प्रारब्ध भोग वेग पूर्ण होवैगा, तब स्वाभाविक ठहरि जाता है जैसे भूना बीज नहीं उगता, तैसे रागते रहित ज्ञानीकी चेष्टा है, जैसे भूना बीज नहीं होता, देखनेमात्र ज्ञानीकी चेष्टा तुल्य होती है, जैसे भूना अरु काचा बीज एक समान भासता है, परंतु काचा उगता है, भूना नहीं उगता, तैसे ज्ञानीकी चेष्टा जन्मका कारण नहीं

होती. काहेते कि चित्त शांत हो जाता है॥ हे रामजी! जिसकी चेष्टा अभिमानते रहित है सो जीवन्मुक्त कहाता है, तिसका चित्त केवल चिन्मात्रको प्राप्त हुआ है, जब शरीरको त्यागता है, तब अचित्तरूप चिदाकाश होता है॥ हे रामजी! चित्तके दो बीज हैं, एक प्राणोंका फुरणा, दूसरा वासनाका फुरणा, दोनोंविषे जब एकका अभाव हो जाता है, तब दोनों नाश हो जाते हैं, ये परस्पर कारणरूपहैं, जैसे तालते मेघ जलपानकरि जाता है, बहुरि वर्षाकरि ताल पुष्ट होता है, सो परस्पर कारणरूप हैं, तैसे प्राणस्पंद अरु वासना परस्पर कारणरूप हैं, जैसे बीजते अंकुर होतेहैं, अरु अंकुरते बीज होते हैं, तैसे प्राणस्पंदते वासना होती है, अरु वासनाते प्राणस्पंद होता है, ये दोनों चित्तका कारण हैं, जैसे फूलविना सुगंधि नहीं होती, सुगंधिविना फूल नहीं होता, तैसे वासनाविना प्राण नहीं होते, प्राणविना वासना नहीं होती॥ हे रामजी! जब वासना फुरती है, तब संवित्‌विषे क्षोभ होता है, वह प्राणोंको जगावती है; तिसकरि जगत् उपजता है, जब हृदयविषे प्राणस्पंदके धर्म होते हैं, तब संवित् क्षोभ होता है, अरु चित्तरूपी बालक उपजता है, इसप्रकार वासना अरु प्राण दोनों चित्तका कारण हैं; दोनोंविषे एकका नाश होवै; तब दोनों नाश हो जावैं, अरु चित्तका भी नाश हो जावै॥ हे रामजी! चित्तरूपी एक वृक्षहै; सुखदुःखरूपी तिसके स्कंधहैं, चिंतारूपी फलहैं, कार्यरूपी पत्र हैं,वृत्तिरूपी वल्लीसे वेष्टित हुआहै,अरु रागद्वेषरूपी दोनों बगले ऊपर आनि बैठे हैं, अरु तृष्णारूपी काली सर्पिणी करि वेष्टित किया है, अरु इंद्रियांरूपी पक्षी तिसपर आनि स्थित होता है, इच्छादि रोगोंकरि पुष्ट होता है, अज्ञान इसका मूल है, अवासनारूपी खड्गकरि शीघ्रही काटा जाता है, संसारकी अभावना अरु स्वरूपकी भावनाकरि शीघ्रही नाश हो जाता है, जैसे तीक्ष्ण पवनकरि पका फल वृक्षसों शीघ्रही गिर पड़ता है, तैसे आत्मभावकरि फल गिर पड़ता है॥ हे रामजी! चित्तरूपी आँधी है, सर्व दिशा तिसने मलिन करी हैं; प्रकाशको आच्छादि लिया है; अरु तृष्णारूपी तृण तिसविषे पड़े उछलते हैं, अरु शरीररूपी स्तंभाकार अज्ञानरूपी कुंडेते उपजा हुआ, वायु विरो-

ला बड़े क्षोभको प्राप्त करता है, जब अंतर प्रकाश होवै, तब तम दूर करें, जब स्पंद रोकिए तब धूलि शांत हो जाती है, आत्मविचारते जब वासनाते रहित होवै, तब शरीररूपी धूलि शांत हो जावै॥ हे रामजी ! प्राणोंके रोकनेकरि शांति होतीहै; अरु वासनाके अनउदयते चित्त स्थिर हो जाता है, प्राणस्पंद अरु वासनाका बीज संवेदन है, जब शुद्ध संवित् मात्रविषे संवेदनका त्याग करै, तब वासना अरु प्राण दोनों न फुरैं, जैसे वृक्षका बीज मूल काटिए तब बहुरि नहीं होता, तैसे इनका मूल संवेदन है; जब संवेदनका अभाव होवै, तब दोनों नहीं बनते, संवेदनका बीज आत्मसत्ता है, संवित् सत्ताते संवेदन प्रगट भया है, तिसते इतर नहीं जैसे तिलोंविना तेल नहीं पाता, अंतर बाह्य और कछु नहीं, सब संवित्सत्ताविना अंतर नहीं पाता, वही संकल्पद्वारा संवेदनको देखती है, जैसे स्वप्नविषे अपनी मृत्युको देखता है, देश देशांतरको प्राप्त होता है, तैसे सब सत्ता संवेदनको देखती है, संवित् चिन्मात्रविषे संवेदनका उत्थान होता है, जो अहं अस्मि तब संवेदन जगज्जाल दिखावती है, अपनी संवेदन उठिकरि आपको भ्रम दिखातीहै, जैसे बालकको अपने संकल्पते उपजा वैताल सत्य भासता है, जैसे स्थाणुविषे पुरुष भासता है, तैसे संवित्विषे संवेदन भासती है ॥ हे रामजी ! असम्यक् ज्ञान-करिके संवेदनरूप हो जाती है तिसविषे आत्मबुद्धि होती है, अरु सम्यक् ज्ञानकरिके लीन हो जाती है, जैसे जेवरीविषे असम्यक् ज्ञानकरिके सर्प भासता है,तैसे आत्माविषे संवेदन भासती है, तीनों जगत् ब्रह्म संवित्-रूप हैं, संवेदन भी कछु भिन्न नहीं, यह निश्चय जिसको दृढ़ होवै, इसको बुद्धीश्वर सम्यक्ज्ञान कहते हैं, जो प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जगत् है, तिससों वास्तव बुद्धि त्याग करनी, इसकरि भी संसारके पारको प्राप्त होवैगा, अरु जो अवस्तु बुद्धिकरि न त्यागैगा, तौ जगत् बडे विस्तारको पावैगा ॥ हे रामजी ! संवेदनका जो उत्थान होता है, सो बडे दुःखोंको देनेहारा है, अरु संवेदन जो जडवत् अजड है, सो परम सुखसंपत्तिका कारण है, सो आनंद उत्थानते रहित आनंदस्वरूप है, जिसको संवेदन उत्थानते रहित असंवेदन संवित् आत्माकी बुद्धि हुई है, सो संसारसमुद्रके

पारको प्राप्त होताहै ॥ राम उवाच ॥ हे प्रभो ! जडताते रहित असंवेदन कैसे होता है, अरु असंवेदनकारिकै जड़ता कैसे निवृत्त होती है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो सर्व ठौरविषे आसक्त नहीं होता अरु कहूँ चित्तकी वृत्ति नहीं लगती, अरु जीवतत्त्वका ज्ञान कछु न रहै, सो असंवेदन जडताते रहित है, संवेदन जो है, स्पंदरूप जिसकरि दृश्य भासता है, सो दृश्यकी ओरते जड है, अरु स्वरूपविषे चेतन है, सो अजड कहाता है ॥ हे रामजी ! हृदयाकाश जो चेतन संवित् है, तिस-साथ संवेदनका स्पर्श कछु न होवै, ऐसा संवित् अजड है देवता भी वही है, नाग, दैत्य, अरु राक्षस, हस्ती, मनुष्य आदिक स्थावर जंगमरूप सब वही धारि रहती है ॥ हे रामजी ! अपनी चेष्टाकारिकै संवित् आपको आपही बँधावती है, जैसे घुराण आपही आपको गृहविषे बँधावती है, तैसे संवित् आपको बँधावता है, जब अपनी ओर आती है; तब आपही आपको प्राप्त होती है ॥ हे रामजी ! जगत् जाग्रत्रूपी समुद्र है, संवित्रूपी तिसविषे जल है, तिसकारि सब स्थान पूर्ण होगये हैं; अंतरिक्ष पृथ्वी आकाश पर्वत नदियां आदिक सब संवित्रूपी जलकी लहर हैं, ताते सर्व जगत् संवित्मात्र है, तिसविषे द्वैत कलनाका अभाव है, यह सम्यक् ज्ञान है, इस संवित्का बीज सन्मात्र है, सन्मात्र सत्ताते संवित्का उदय होना हुआहै, जैसे प्रकाशते ज्योति उदय होतीहै अरु इस सत्ताके दो रूप हैं, एक रूप नानाप्रकार हो भासता है, द्वितीय एकही रूप है, घट पट तत्त्व आदिक एक सत्ताके नानाप्रकारके विभाग स्थित हैं, अरु विभागते रहित एक सत्ता स्थित है, सो सत्ता सामान्य अद्वैतरूप परमार्थसत्ता है ॥ हे रामजी ! विषयको त्यागिकारि जो सन्मात्र है सो अलेप एकरूपहै, सो महासत्ताहै, तिसको ज्ञानवान् परमसत्ता कहते हैं, अरु नाना आकार भी सत्ता कबहूँ नहीं धारती, यह संवेदन कारिकै हुए हैं, इस कारणते अवस्तुरूप है, एकरू जो परमसत्ता निर्मल अविनाशी है, न कबहूं नाश होती है, न विस्मरण होती है, काहेते अनुभवरूप है ॥ हे रामजी ! एक कालसत्ता, एक आकाशसत्ताहै, सो यह सत्ता अवस्तुरूप हैं, इस विभागसत्ताको त्यागिकारि सन्मात्रसत्ता जो है; तिसी परायण

होउ, कालसत्ता आकाशसत्ता यद्यपि उत्तम है, परंतु वास्तव नहीं. जहां नाना विभाग कलना आकार अरु नानाकारण हैं, सो पवित्रकर्ता पावन नहीं इसीते कहा है कि, आकाश काल आदिक सत्ता वास्तव नहीं, अरु सत्ता सामान्य जो संवित्‌मात्र है, सो सर्वका बीज है, तिसते सबकी प्रवृत्ति होती है ॥ हे रामजी ! जेते कछु पदार्थ हैं, तिनकी जो कलना सत्ता सामान्य पर्यंत है, तिस परमपद अनंत अनादि बीजरूपका बीज और कोई नहीं, जब तिसका भान होवै, तब यह निर्विकार होकरि स्थित होवै, तिसको जीवन्मुक्त कहते हैं, जब दृश्यकी भावना कछु न फुरै, जैसे बालक मूक (गूंगा) होता है, अभिमानते रहित होता है, तैसे ज्ञानकरिके यह निर्वासनिक होवै, तब जड़ताते मुक्त होता है, अरु सर्व आत्मभावको प्राप्त होता है, अरु जिस संवित्‌विषे दृश्यका स्पर्श होता है, सो संवित् जड़ है, काहेते कि, शुद्ध स्वरूपविषे मलिनका स्पर्श होता है, इसीते जड है, अरु जो संवित् द्वैत फुरणेते रहित है, सो शुद्ध है, अरु अजड है, अरु जो द्वैतभावको ग्रहण करती है, सो स्वरूपकी ओरते जड़ है ॥ हे रामजी ! जिसको स्वरूपकी ओर स्थिति भई है, अरु दृश्यभावका लेप नहीं होता सो सर्व वासनाको त्यागिकरि निर्विकल्प समाधिविषे जुड़ता है, जैसे आकाशविषे नीलता स्वाभाविक वर्त्तती है, तैसे योगी आनंदविषे वर्त्तता है, अरु निःसंवेदन संवित्‌विषे नष्ट होता है वहीरूप हो जाता है मनकी वृत्ति तहां स्थिर होजाती है, बैठते, चलते, स्पर्श करते, सुगंध लेते, देखते, सुनते, सब इंद्रियोंकी क्रिया करते भी मन स्थिर रहता है, दृश्यका अभिमान नहीं फुरता सो अजड़ कहाता है, संवेदनते रहित सुखी होता है ॥ हे रामजी ! ऐसी दृष्टि प्रथम तो कष्टरूप भासती है, परंतु सब दुःखको नाशकर्त्ता होती है, ताते इसी दृष्टिको आश्रय करके दुःखरूप जो संसारसमुद्र तिसको तरिजाउ. कैसा संसारहै, जैसे वटका बीज सूक्ष्म है, विस्तारको पाइकरि आकाशको स्पर्श करने लगता है, तैसे सूक्ष्म संवेदनते जब संकल्प पसरता है, तब वही बड़े जगत्‌के विस्तारको धारती है, अरु जन्मके जालको प्राप्त होती है, बीजरूपकरि आपही जन्मोंविषे डारता है, बहुरि बहुरि मोहविषे गिरता है, जब संवित् अपनी ओर होती है, तब मोक्षको प्राप्त होता है, जैसी भावना स्वरूपविषे दृढ होती है, सोई सिद्ध होती है, जैसे नटुआ अनेक

स्वांगको धारता है, तैसे संवित् अनेक आकारोंको धारती है, जब नट भूमिकाको त्यागता है, तब अपने स्वरूपविषे प्राप्त होती है॥ हे रामजी! संवित्‌रूपी नटिनी है, अरु जगत्‌रूप धारिकरि नृत्य करती है, अरु जो दुःखरूप संसारसमुद्रविषे गिरे नहीं, सो सत्ता सब कारणोंका कारण है, तिसका कारण कोई नहीं, अरु सर्व सारोंका सार है, तिसका सार कोई नहीं, तिस चेतनरूपी बडे दर्पणविषे सम सत् जगत् भासता हैं, प्रतिबिंबित होता है, जैसे तालविषे किनारेके वृक्ष प्रतिबिंबित होते हैं, तैसे सब वस्तु चिद् दर्पणविषे प्रतिबिंबित होती है॥ हे रामजी! जेते कछु पदार्थ हैं, सो आत्मसत्ताकरि सिद्ध होते हैं, उसी अनुभवविषे सबका अनुभव होता है, जैसे षट् रसोंका स्वाद जिह्वाकरि सिद्ध होता है, तैसे सब पदार्थ चिदाकाशके आश्रय सिद्ध होते हैं, सब जगत्‌गण तिसीते उपजे हैं, तिसीविषे वर्ततेहैं, बढतेहैं तिसीविषे स्थित दीखतेहैं, तिसीविषे लीन होते हैं, सबका अधिष्ठान वही सत्ता है, बहुरि कैसी है, गुरुकी गुरुता वही है, लघुकी लघुता वही है, स्थूलकी स्थूलता वही है, सूक्ष्मकी सूक्ष्मता वही है, द्रव्योंका द्रव्य वही है, कष्टोंविषे कष्टता वही है, बडेविषे बडाई वही है, तेजोंका तेज वही है, तमका तम वही है, वस्तुकी वस्तु वही है, द्रव्यका द्रव्य वही है, द्रष्टाका द्रष्टा वही है, किंचनविषे किंचन वही है, निष्किंचनविषे निष्किंचन वही है, तत्त्वोंका तत्त्व वही है, असत्यका असत्य वही है, सत्यका सत्य भी वही है, आश्रमविषे आश्रम वही है, अनाश्रमविषे अनाश्रम वही है॥ हे रामजी! ऐसी जो परम पावन सत्ता है, तिसविषे प्रयत्न करिकै स्थित होउ, बहुरि जैसी इच्छा होवै, तैसे करहु, सो आत्मतत्त्व निर्मल है, अजर है, अमर है, शांतरूप है, चित्तके क्षोभते रहितहै, भवसंसारते मुक्तिकेनिमित्त तिसविषे स्थित होउ॥ इति श्रीयोगवा० उपशमप्रकरणे स्मृतिबीजविचारो नाम सप्ताशीतितमः सर्गः॥८७॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ८८.

संशयनिराकरणोपदेशवर्णनम्।

राम उवाच॥ हे महाआनंदके देनेहारे! यह जो बीजोंका बीज तुमने कहाहै, सो किसप्रकार प्राप्त होवै, जिसप्रकार उस पदकी शीघ्र प्राप्ति होवै

सो उपाय कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इन सबके बीजका जो उत्तर दिया है तिस तिस उपायकरि परमपदकी प्राप्ति होती है, अब और भी जो तैंने पूछाहै, सो सुन, सत्ता सामान्यविषे स्थित होने निमित्त यत्न कर्तव्य है, जेती कछु संसारकी वासनाहैं, बलकरि तिसको त्याग करिये, अरु शुद्ध आत्माविषे तीव्र अभ्यास करिये, तब शीघ्रही अविघ्न आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होवै ॥ हे तत्त्ववेत्ता ! उस पदविषे क्षीण भी स्थित होहुगे, तब अक्षयभावको प्राप्त होहुगे ॥ हे रामजी ! सत्ता सामान्य संवित्मात्र तत्त्व है, तिसविषे स्थित होउ, जो इच्छा होवै सो करौ, तिसविना कछु अपर सिद्ध न होवैगा, सब वही भासैगा, ऐसा जो अनुभव तत्त्व है, सो तेरा स्वरूप है, तिसके ध्यानविषे स्थित हुए तुझको खेद कछु न होवैगा, ऐसा संवेदनसाथ ध्यान नहीं होता, अरु ऊंचा पद है, पुरुषप्रयत्नकरि तिस पदको प्राप्त होहु ॥ हे रामजी ! केवल संवेदन साथ ध्यान नहीं होता, काहेते जो सर्वत्र संभव संवित् तत्त्व है, संवित् सर्वदा सर्वकाल सहायक होती है, अरु सबसाथ मिली हुई है, जो कछु चितवै, जहां इच्छित होवै, जो कछु करै, सो सब संवित्करि सिद्ध होता है ॥ हे रामजी ! आत्मतत्त्व प्रत्यक्ष है, तिसका भान नहीं होता, और कछु भासता है, यही अविद्या आवरण है, सो इसको दुःख होताहै, जो स्वरूपके प्रमादकरि दृश्यकी वासना करताहै, तिसकी दृढताकरि अंतःकरण दुःख पाता है, जब यत्न करिकै वासनाका त्याग करिये, तब मन अरु शरीरके दुःख सब नाश हो जावैंगे, अरु पूर्व जो इसको मोह दृढ होरहा है, जैसे मेरुको मूलते उखाड़ना कठिनहै, तैसे वासनाका त्याग कठिन हो रहा है, सो वासना मनते होती है, जबलग मन क्षय नहीं होता, तबलग वासना भी क्षय नहीं होती, अरु तत्त्वज्ञानविना मन नाश नहीं होता, जब वासना अरु मनका आवरण दूर होता है, यह परस्पर कारण रूप है, ताते हे रामजी ! तू पुरुषप्रयत्न करिकै मनके संकल्पविकल्पको निवृत्त कर, अभ्यास अरु विचार करिकै विवेकको उपायकरि भोगोंकी वासना दूरते त्याग, इसकरि तू शांतिमान् होवैगा, इन तीनोंका सम अभ्यासकरि तत्त्वज्ञान मनोनाश अरु वासनाक्षयका वारंवार अभ्यास कर, जबलग इनको न साधैगा, तबलग अनेक उपायोंकरि शांतिको न

प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! जो वासनाका क्षय होवै, अरु मनोनाश तत्त्वज्ञानका अभ्यास न करै; तौ कार्य सिद्ध नहीं होता, अरु जो मनोनाश करै, अरु तत्त्वज्ञानकारि वासनाक्षय न करै, तब भी कल्याण न होवैगा अरु तत्त्वज्ञानका विचार करै, अरु वासनाक्षय न होवै, तौ भी कुशल न होवैगा, जब तीनोंका सम अभ्यास होवै, तब फलकी प्राप्ति होवै ॥ हे रामजी ! एकके सेवनेते सिद्धता नहीं प्राप्त होती, जैसे मंत्रोंको कोऊ प्रतिबंध लय करै, तब फलदायक नहीं होता. अर्थ यह कि, मंत्र संपूर्ण हुआ फलदायक होता है, एक एक चरण पढै तौ फलदायक नहीं होता जबलग सब मंत्र संध्यादिक एक ठौर नहीं पढता, तबलग मंत्र नहीं फुरते तैसे एकला किसीकारि कार्य सिद्ध नहीं होता, जब चिरकाल इनका इकट्ठाही सेवन होवे, तब कार्य होवै, जैसे बडा शत्रु सैन्यसंयुक्त होवै, तिसको मारनेको एक शूरमा जावे, तब शत्रुको मारि न सके, जब इकट्ठे सेनाके ऊपर जाय पडै, तब उसको जीति लेवै, तैसे ससाररूपी शत्रु है; जब तत्त्वज्ञान मनोनाश और वासनाके क्षयका इकट्ठा अभ्यास होवै, तब संसाररूपी शत्रु नाश होवै ॥ हे रामजी ! जब तीनोंका अभ्यास करैगा, तब हृदयकी अहं मम ग्रंथी टूटि पडतीहै, जैसे अनेक जन्मोंकी संसारसत्यता जो इसके हृदयविषे स्थित हो रही है, सो अभ्यास योग कारि टूटि पडैगी, नाश हो जावैगी; ताते चलते, बैठते, खाते, पीते, सूंघते, स्पर्श करते, जागते, इन तीनोंका अभ्यास करो ॥ हे रामजी ! वासनाके त्यागेते प्राणस्पंद रोका जाताहै, जब प्राणोंका स्पंद रोका, तब चित्त अचित्त हो जाता है; एक प्राणोंके रोंकेते वासनाक्षय हो जातीहै तब भी चित्त अचित्त हो जाता है, आत्मयोगकारि अथवा वासना त्यागकारि आत्मतत्त्व प्रकाशैगा, इनविषे जो तेरी इच्छा होवै सोई कर. प्राणोंका रोंकना योगकारि भावैं, वासनाका त्यागकर; प्राणायाम तब होता है, जब गुरुकी दीनी युक्ति स्थित होतीहै, आसन अरु आहारके संयम कारि प्राणोंका स्पंद रोंका जाता है, अरु सम्यक् ज्ञानकारिकै जगतको अवास्तव जानताहै, तब वासना नहीं प्रवर्त्तती, जो जगत्की आदि भी अरु अंत भी स्थित है, तिसविषे मन जब स्थित होताहै, तब वासना नहीं उपजती ॥ हे रामजी ! जब व्यवहारविषे निःसंग हुआ, अरु संसा-

रकी भावनाते विवर्जित हुआ, अरु शरीरविषे नाशवंत बुद्धि भई, तब वासना नहीं प्रवर्तती, जब विचारकरिकै वासना क्षय होवै, तब चित्त भी नष्ट हो जावैगा, जैसे वायुके ठहरते धूलि नहीं उडती, तैसे वासनाके क्षय हुए चित्त नहीं उपजता, जो प्राणस्पंद है, सोई चित्तस्पंद है, जब वासना फुरती है, तब जगद्भ्रम उपजता है, जैसे अरुडते धूलि उपजती है, तैसे चित्तते वासना उपजती है, जब प्राणस्पंद ठहरता है, तब चित्त भी ठहर जाता है, ताते यत्नकरि प्राणस्पंद अथवा वासनाके जीतनेका अभ्यास करो, तब शांतिमान् होवोगे, अरु जो यह उपाय न करैगा, अरु औरको चित्त वश करनेका उपाय करैगा, तौ बहुत कालते पावैगा ॥ हे रामजी ! मनके जीतनेका अन्य उपाय इन युक्तिविना और कोई नहीं, जैसे मतवाले हस्तीको अंकुशविना वश करनेका उपाय और कोई नहीं, तैसे मन युक्तिविना वश नहीं होता, सो युक्ति कौन है, संतोंकी संगति सच्छास्त्रोंका विचार करना, जो इस उपायकरि तत्त्वज्ञान अरु वासनाक्षय, अरु प्राणोंका स्पंद रोकना यह चित्त वश करनेको परमयुक्ति है, इसकरि चित्त शीघ्रही जीता जाता है, अरु जो इन उपायोंका त्यागकरि हठसों मन वश किया चाहते हैं, सो क्या करते हैं, जैसे तमके नाश करनेको दीपक जगावे, तौ नाश हो जाता है; अरु शस्त्रोंकरि तमको काटै, तौ तम नाश न होवैगा, तैसे और उपायोंकरि चित्त वश न होवैगा, इसविना और उपाय करतेहैं, सो मूर्ख हैं, जैसे मतवाला हस्ती भेहकी तंतुसे बांधा नहीं जाता, जो कोऊ इसकरि बांधने लगै तौ महामूर्ख है, तैसे मनके जीतनेको और प्रकार जो हठ करते हैं, सो महामूढ हैं, और उपाय करिकै क्लेश प्राप्त होवैगा, आत्मसुख न प्राप्त होवैगा, जैसे दुर्भागी जीवोंको कहूं सुख नहीं होता है ॥ हे रामजी ! तीर्थदान, तप, देवताकी पूजा यह चारों साधन जिनने कियेहैं, अरु मन जीतनेका उपाय नहीं किया, सो मृगकी नाईं हुए भ्रमते फिरते हैं, पहाड़ोंकी कंदराविषे फल पत्र खाते फिरतेहैं, मनका नाश किया नहीं, ताते आत्मपदको नहीं पाया, सो और पशुओंके समान हैं, जैसे और पशु मृग पहाडोंविषे होते हैं, तैसे वे भी हैं ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषने मनको वश नहीं किया, तिसको शांति प्राप्त नहीं होती, जैसे कोमल अंग मृग

ग्रामविषे गया शांतिको प्राप्त नहीं होताजैसे जलविषे आया तृणनदीके वेगकारि भटकता फिरता है, कष्टमान होता है, तैसे वह पुरुष कर्म करता है, मनको स्थित किएविना कष्ट पाता है, कबहूं दुःखसाथ जलता है, कबहूँ कर्मोंके वशते स्वर्गको प्राप्त होताहैं, सो भी नाश होजाते हैं, जैसे जलविषे तरंग उछलता है, कबहूँ अधको जाता है, तैसे कर्मोंके वशते जीव स्वर्ग नरकविषे मध्यविषे भ्रमते हैं, ताते ऐसी दृष्टिका त्यागकारि शुद्ध संवित्‌मात्रको आश्रय कर, अरु वीतराग होकारि स्थित होउ ॥ हे रामजी ! जगत्‌विषे ज्ञानवान् सुखी है, अरु जीता भी वहीहै,और सब दुःखीहैं, अरु मृतक समान हैं, अरु बली भी ज्ञानवान् है, सो मोहरूपी शत्रुको मारकर संसारसमुद्रके पारको प्राप्त होता है, और सब निर्बल हैं, ताते तुम भी ज्ञानवान् होहु, संवेदन रहित जो संवित्‌मात्र तत्त्व है, सो एक है. अरु सर्वकी आदि है, सबते उत्तम कलनाते रहित सर्वविषे स्थित है, तिसविषे स्थित होहु, तब कर्ता हुआ भी अकर्ता होवैगा, अरु परम ब्रह्म उदय होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे संशयनिराकरणोपदेशवर्णनं नाम अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

ऊननवतितमः सर्गः ८९.

मोक्षोपायवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस पुरुषने आत्मविचारकारि अल्प भी अपना चित्त निग्रह कियाहै, सो संपूर्ण फलको प्राप्त होवैगा, अरु तिसका जन्म सफल हुआहै ॥ हे रामजी ! जिस चित्तविषे विचाररूपी कणका उदय हुआ है, सो अभ्यास कारिकै बडे विस्तारको पावैगा, निरागपूर्वक जिसके हृदयविषे विचार उपजाहै, सो बढता जाताहै, अरु अविद्यारूपी गुणोंके फलको काटि डारैगा अरु सब शुभ गुण आनि आश्रय करैंगे, जैसे जलकारि पूर्ण हुये तालका सब पक्षी आनि आश्रय करते हैं ॥ हे रामजी ! जिसको सम्यक् ज्ञान प्राप्त हुआ है, अरु निर्मल बोधकारि यथादर्शन हुआ है, तिसको इंद्रियोंकेविषे चलाइ नहीं सकते, जबलग स्वरूपका प्रमाद होता है, तबलग आधि दुःख इसको होताहै, अरु जब स्वरूपविषे स्थित होताहै, तब शरीर अरु मनके दुःख इसको वश नहीं

कारि सकते, जैसे बिजुरीको ग्रहण कोऊ नहीं करता, जैसे पुष्टिकारि मेघोंको मुष्टिविषे कोऊ पकड नहीं सकता, जैसे आकाशके चंद्रमाको मुष्टिविषे कोऊ नहीं पकड सकता, जैसे मूढ स्त्री चंद्रमाको मोहनेको समर्थ नहीं होती, तैसे ज्ञानवान्‌को दुःख कोऊ वशकारि नहीं सकता ॥ हे रामजी ! जो हस्ती मदकारि मत्त है, अरु मद मस्तकते झरता है, अरु भँवरे तिसके आगे शब्द करते हैं, मच्छरोंके प्रहार अरु स्त्रियोंके श्वास तिसको नहीं छेदि सकते, तैसे ज्ञानवान्‌को विषयोंके रागद्वेष चलाय नहीं सकते, अरु जिस हस्तीके मस्तकसों मोती निकसते हैं, ऐसे बलवान् हस्तीको नखोंसाथ विदारणेहारा जो सिंहहै, जैसे उस सिंहको हिरण मारि नहीं सकता, तैसे ज्ञानवान्‌को दुःख चलाय नहीं सकता, अरु जिसके फूत्कारसाथ वनके वृक्ष जल जाते हैं, ऐसा जो सर्प है, जैसे उस सर्पको दर्दुर ग्रासि नहीं सकते, तैसे ज्ञानवान्‌को रागद्वेष चलाय नहीं सकते, अरु जैसे कोऊ राजा सिंहासनपर बैठेको तस्कर दुःख दे नहीं सकते, तैसे जो ज्ञानी स्वरूपविषे स्थित है, तिसको इंद्रियोंके विषय दुःख दे नहीं सकते, अरु जो विचारते रहित देहाभिमानी हैं, आत्मतत्त्वको नहीं प्राप्त हुए; तिनको विषय उडाइ ले जाते हैं, जैसे सूखे पत्रको पवन उडाइ ले जाता है, अरु ज्ञानवान्‌को चलाय नहीं सकते, अरु जैसे पर्वत मंदिर पवनकारि चलायमान नहीं होते, तैसे ज्ञानवान् सुख दुःखविषे चलायमान नहीं होते; अरु जो विचारते रहित है, सो देशके परिणामभावविषे स्थित मानता है, अरु जगद्भाव है, संसारभाव पदार्थोंविषे मनुष्य जन्मविषे गुरुशास्त्रका मार्ग तिसकी ओरते सोइ रहा है, अरु मूढ हो रहा है, खाने पीनेविषे सावधान है, अरु विचारते शून्य है, सो मृतकसमान है, मृतक कहाता है, यह विचार इसको कर्तव्य है, जो मैं कौन हौं, अरु यह जगत् क्या है, कैसे उत्पन्न हुआ है, अरु कैसे निवृत्त होवैगा, इसप्रकार संतोंका संग अरु अध्यात्मशास्त्रकारि विचारकारि जो पुरुष दृश्यभावको त्यागिकारि आत्मतत्त्वविषे स्थित होता है सो परमपदको पाता है, जैसे दीपके प्रकाशकारि पदार्थको पाता है, तैसे विचारकारि आत्मतत्त्व पाता है॥ हे रामजी ! जो शास्त्रविचारकारि आत्मतत्त्वका बोध होता है, सो ज्ञान कहाता है, सो ज्ञान ज्ञेयके साथ अभिन्नरूप

हैं, अध्यात्मविद्याके विचार करिकै आत्मज्ञान प्राप्त होता है, जैसे दूधसों मथिकरि माखन काढता है, तैसे विचारकरि आत्मज्ञान प्राप्त होता है, ज्ञेय इसके अंतर होता है, सो ज्ञेय परब्रह्मस्वरूप है, सत्य है, असत्यकी नाईं होकरि स्थित है, ज्ञानवान् तिसको पाइकरि तृप्त होता है, अरु जीवन्मुक्त होकरि अपने आपविषे प्रकाशता है, जैसे चक्रवर्ती राज्यविषे आनंदकरि तृप्त होता है, तैसे ज्ञानवान् ब्रह्मानंदविषे इंद्रियोंकी इच्छाते रहित शोभता है, शब्द स्पर्श रूप रस गंध पांचों इंद्रियोंमें आसक्त नहीं होता, सुंदर राग तंत्रिके शब्दविषे स्त्रियोंके गानेविषे और भी जो कोकिला पक्षी है, अरु गंधर्व गंधर्वीविषे लेकरि गायन है, तिनकी किसीविषे आसक्त नहीं होता, अरु जेते कछु स्पर्श हैं सुंदर फूल अग्र चंदन मंदार कल्पवृक्षोंके फूलोंकी सुगंधि अरु सुन्दर स्त्रियोंका स्पर्श करना, अप्सरा नागकन्या अरु स्वर्णके द्रवत्वकी नाईं जिनके अंग हैं, तिनका स्पर्श करना, अरु हीरा मणि भूषण नानाप्रकारके वस्त्र हैं, तिनविषे बंधमान नहीं होता, जैसे चंद्रमा सुंदर अरु शीतल है, परंतु सूर्यमुखीकमलोंको विकास नहीं करि सकता, तैसे सुंदर स्पर्श ज्ञानीके चित्तको हर्षवान् नहीं करते, जैसे मरुस्थलविषे हंस प्रसन्न नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् स्पर्शविषे नहीं प्रसन्न होते, अरु ज्ञानवान् रसादिकविषे भी बंधमान नहीं होता, दूध दही घृतादिक जो रस हैं अरु भक्ष्य भोज्य लेह्य चोष्य चार प्रकारके भोजन हैं, अरु कटु तीक्ष्ण मीठा खारा जितने रस हैं, तिनकी इच्छा ज्ञानवान् नहीं करते, किसीविषे बंधमान नहीं होते, आकाश बोधकरि नित्य तृप्त हैं, किसी भोगकी इच्छा नहीं करते, जैसे ब्राह्मण कूकरका मांस खानेकी इच्छा नहीं करते तैसे ज्ञानवान् उर्वशी रंभा मेनका आदिक अप्सराकी इच्छा नहीं करता, अरु गन्धकी इच्छा भी नहीं करता, चंदन अगर कस्तूरी मंदार वृक्षके फूल सुगंधिकी इच्छा नहीं करते; जैसे मच्छी मरुस्थलकी इच्छा नहीं करती, तैसे ज्ञानवान् सुंगधिकी इच्छा नहीं करता, अरु रूपकी इच्छा भी नहीं करते, सुंदर स्त्रियां बाग तालाव नदियां इत्यादिक जो रूपवंत पदार्थ हैं, तिनकी इच्छा नहीं करता, जैसे चंद्रमा बादलोंकी इच्छा नहीं करते तैसे ज्ञानवान् रूपकी इच्छा नहीं करते, औरकी क्या बात है, इंद्र यम विष्णु ब्रह्मा समुद्र कैलास मंदराचल रत्न मणि कांचन यह जो बड़े

बड़े पदार्थ हैं, तिनकी इच्छा नहीं करता, जैसे राजा नीच पदार्थोंकी इच्छा नहीं करता, तैसे ज्ञानवान् पदार्थोंकी इच्छा नहीं करता, समुद्रके गर्जने सिंहके गर्जनेते विजलीके गर्जनेते आदि भयानक शब्द हैं तिनको सुनकरि भयमान नहीं होता, जैसे शूरमा धनुष्यका शब्द सुन करि भयमान नहीं होता, जैसे ज्ञानवान् मतवाले हस्ती अरु वैताल पिशाचके शब्द सुन अरु इंद्रके वज्रका शब्द देवता सुनता हुआ कंपायमान नहीं होता, सत् स्वरूपकी स्थितिते चलायमान कदाचित् नहीं होता, अरु जो आरेसे शरीरको काटिये अरु खड्गसे कणकण करिये, बाणोंसे वेधा जावै, तौ भी कंपायमान नहीं होता, उसको राग द्वेष किसीविषे नहीं होता, शरीरपर एकओर जलता अंगार राखिये, अरु एक ओर फूलोंका स्पर्श राखिये तौ भी हर्ष शोकवान् नहीं होता, अरु एक ओर खड्गधारावत् तीक्ष्ण स्थान होवै, अरु एक ओर पुष्पशय्या होवै तिसको दोनों तुल्यहैं, एक ओर शीतल स्थान होवै, एकओर तप्तशिला होवै, दोनों उसको तुल्यहैं, एक ओर मारनेवाला विष होवै, दूसरी ओर जिवानेवाले अमृत होवैं, सो दोनों उसको तुल्य हैं ॥ हे रामजी! संपदा प्राप्त होवै, भावैं आपदा प्राप्त होवै, भावै मृत्यु प्राप्त होवै, इनविषे व्यवहार करता भी दृष्ट आता है, परंतु अतरते हर्षशोक नहीं, उसका मन अंतरते मुक्त है, सदा सम रहताहै ॥ हे रामजी! लोहके जंबुरासाथ उसका मांस तोडिये, अरु नरकविषे डारिये, अरु ऊपर शस्त्रोंकी वर्षा होवै, तौ भी ज्ञानवान् पुरुष भयको न पावैगा, अरु न उद्वेगवान् व्याकुल होवैगा, न दीन होवैगा, ज्ञानवान् इनविषे सदा सममन रहता है, पहाडकी नाईं धैर्यवान् स्थित रहता है ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान् रागद्वेषते रहित है, देह अभिमानते मुक्त जो हुआ है, तिसका शरीर अग्निविषे पड़ै, अथवा खाईविषे गिरै, अथवा स्वर्गविषे होवै, उसको दोनों तुल्य हैं, हर्षशोकते रहित है ॥ हे रामजी ! जिसको स्वरूपविषे दृढ स्थिति भई है, सो चलायमान नहीं होता, जैसे मेरु स्थित है, उसको पवित्र पदार्थ होवै, अथवा अपवित्र होवै पंथ होवै अथवा कुपंथ होवै, विष होवै, अथवा अमृत होवै, मीठा, खट्टा; सलोना, कडुवा, दूध, दही, घृत,

रस, रक्त, मांस, मद्य, अस्थि, तृण आदिक जो भक्ष्य, भोज्य, लेह्य चोष्य भोजनहैं, सो सम हैं, न इष्टविषे रागवान् होताहै, न अनिष्टविषे दोषवान् होता है, जो प्राणोंके निकसनेको सन्मुख आवै, अरु दूसरा प्राणोंकी रक्षानिमित्त आवै, तो दोनोंको आत्मस्वरूप शांतमन मधुररूप देखता है, रागद्वेषते रहित है, रमणीय अरमणीय पदार्थोंको सम देखता है, संसारकी आस्था त्यागि दीनी है, बोधस्वरूपविषे निश्चय भया है, चित्त निराग पदको प्राप्त भया है, सब जगत् उसको आत्मस्वरूप भासता है, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध पंच विषयोंके भोग अवसर अपना नहीं पाते, जैसे दर्पणको देखने लगैं तो प्रतिबिंब भासता है, दर्पणकी सूरत नहीं रहती, तैसे विषयोंविषे आत्मा देखता है, विषयोंकी सूरत नहीं रहती, अरु जो अज्ञानी है, तिसको इंद्रियां ग्रास लेती हैं जैसे तृणोंको मृग ग्रासि लेता है, अरु जिसने आत्मपदविषे विश्रांति पाई है, तिसको इंद्रियां ग्रास नहीं सकतीं ॥ हे रामजी ! अज्ञानरूपी समुद्रविषे जो पडा है, अरु वासनारूपी लहरीसे मिलिकारि उछलता है अरु गिरता है, तिसको आशारूपी तंदुआ ग्रास लेता है, हाय हाय करता है शांतिको प्राप्त नहीं होता है, अरु जो विचार करिके आत्मपदको प्राप्त भया है, सो विश्रांतिको पाइ चलायमान नहीं होता जैसे सुमेरु पर्वत जलके समूहकारि चलायमान नहीं होता तैसे वह संकल्प विकल्पविषे चलायमान नहीं होता, सर्व संकल्पकी सीमा आत्मपदविषे विश्रांति जिसको भई है, सो उत्कृष्टताको प्राप्त भया है॥ हे रामजी ! तिसको यह जगत् ज्ञानमात्र भासता है, संवित्मात्र जानिकारि विचार करता है, न किसीका ग्रहण त्याग करताहै ताते भ्रांतिको त्यागिकारि संवित्मात्रही तेरा स्वरूप है, किसका त्याग करता है, किसका ग्रहण करता है, जो आदिविषे भी न होवै, अंतविषे भी न रहै, मध्यविषे कछु भासै सो भ्रममात्र जानिये इसप्रकार जानिकारि भावअभावकी बुद्धिको त्यागिकारि निःसंवेदनरूप होइकारि संसारसमुद्रको तारि जावहु, मन बुद्धि इंद्रियां करिके कर्म करौ, भावैं न करौ, निःसंग होहुगे तब तुमको लेप न लगैगा ॥ हे रामजी ! जिसका मन अभिमानते रहित हुआ है, सो कर्म करता भी लेपायमान नहीं होता, जैसे मन और ठौर गया होता है,

विद्यमान शब्द अथवा रूप पदार्थोंको होते भी नहीं जानता, तैसे जिसका मन आत्मपदविषे स्थित हुआ है, तिसको सुखदुःख कर्म नहीं लगता, जो पुरुष अभिमानते रहित है, सो कर्मोंविषे सुखदुःखको भोगता दृष्ट आता है, परंतु उसको स्पर्श नहीं करता, देखौ तौ यह बालक भी जानते हैं, जो मन और ठौर जाता है, तौ सुनता भी नहीं सुनता तैसे वह पुरुष करता भी नहीं करता ॥ हे रामजी! जिसका मन असंग हुआ है, सो देखता है, परंतु नहीं देखता, सुनता है, परंतु नहीं सुनता, स्पर्श करता है, परंतु नहीं करता है, सूँघता है, रस लेता है, परंतु नहीं लेता, इत्यादिक जो कछु चेष्टा हैं, सो कर्त्ता भी अकर्त्ता है उसका चित्त आत्मपदविषे लीन भया है, जैसे कोऊ पुरुष देशांतरको जाता है, सो उस देशविषे व्यवहार कर्म करता है, परंतु उसका चित्त गृहविषे रहता है, तैसे ज्ञानवान्का चित्त आत्मपदविषे रहता है, यह बात मूर्खभी जानता है, कि जैसा वेग मनविषे तीव्र होता है, तिसीकी सिद्धता होती है, सोई भासता है, और नहीं भासता ॥ हे रामजी! सर्व अनर्थोंका कारण संग है, संसारके संगकरि जन्ममरणके बंधनको प्राप्त होता है ताते सब अनर्थोंका कारण संसारका संग है, सब इच्छाका कारण संग है, अरु सब आपदाका कारण संग है, संगत्यागकरि मोक्षरूप अजन्मा होता है, ताते संगको त्यागिकरि जीवन्मुक्त होकरि विचरहु ॥ रामउवाच॥ हे भगवन्! सर्व संशयरूपी कुहाडके नाशकर्त्ता शरत्कालका पवन, संग किसको कहते हैं? संक्षेपते मुझको कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! भावअभाव जो पदार्थ हैं; सो हर्षशोकको देनेहारे हैं, जिस मलिन वासकरि यह प्राप्त होता है, सो वासनासंग कहाता है ॥ हे रामजी! जो देहविषे अहंबुद्धि होती है, अरु संसारकी सत्य प्रतीति होती है, तिस संसारके इष्ट अनिष्टको राग द्वेष सहित ग्रहण करता है, ऐसी मलिन वासना संग कहाती है, अरु जीवन्मुक्तकी वासना हर्षशोकते रहित शुद्ध होती है, सो निःसंग कहाती है, तिसकी वासना जन्ममरण नहीं होता ॥ हे रामजी! जिस पुरुषको देहविषे अभिमान नहीं होता, अरु स्वरूपविषे स्थित है, शरीरके इष्ट अनिष्टविषे

राग द्वेष नहीं करता, उसकी शुद्ध वासना है, वह जो सत्ता है, सो बंधनका कारण नहीं होता, जैसे भूना बीज नहीं उगता, तैसे ज्ञानवान्की वासना जन्ममरणका कारण नहीं होती, अरु जिसकी वृत्ति जगत्के पदार्थविषे स्थित है, अरु रागद्वेषकरि ग्रहण त्याग करता है ऐसी जो मलिन वासना है, सो जन्मोंका कारण है, इस वासनाको त्यागिकरि जब तू स्थित होवेगा, तब तू कर्ता हुआ भी निर्लेप रहैगा, हर्ष शोकादि विकारोंते जब तू रहित होवैगा, तब वीतराग भय क्रोधते असंग होवैगा हे रामजी ! जिसका मन असंग हुआ सो जीवन्मुक्त हुआ है, ताते तू भी वीतराग होकरि आत्मतत्त्वविषे स्थित होवहु, जीवन्मुक्त पुरुष इंद्रियोंके ग्रामको निग्रह करिकै स्थित होता है, अरु मान मद वैरको त्यागिकरि संतापते रहित स्थित होता है, जो कछु कर्म करते हैं, सो सब आत्मा जानि करते हैं, परंतु व्यवहार बुद्धिते रहित असंग होइकरि कर्म करते हैं, सो करते भी अकरते हैं, तिसको आपदा अथवा संपदा प्राप्त होवै, अपने स्वभावको नहीं त्यागते, जैसे क्षीरसमुद्रको मन्दराचल पर्वत पाइकरि शुक्लताको न त्यागता भया, तैसे जीवन्मुक्त अपने स्वभावको नहीं त्यागते ॥ हे रामजी ! आपदा प्राप्त होवै अथवा चक्रवर्ती राज्य प्राप्त होवै, अथवा सर्पका शरीर प्राप्त होवै, अथवा इन्द्रका शरीर प्राप्त होवै, इन सबविषे सम आत्मभाव स्थित होते हैं, हर्षशोकको नहीं प्राप्त होते हैं, अरु सर्व आरंभको त्यागिकरि नानात्वभमरहित स्थित होते हैं, विचार करिकै जिनने आत्मतत्त्व पाया है, जैसे स्थिति होवै तैसे स्थिति होवै, तुम भी इसी दृष्टिको पाइकरि आत्मतत्त्वको देखौ, तब वीतज्वर होवैगा, आत्मपदको पाइकरि बहुरि जन्ममरणके बंधनमें न आवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे आर्षदेवदूतोक्तमहारामायणे मोक्षोपायवर्णनं नाम ऊननवतितमः सर्गः ॥८९॥

इति पञ्चमं उपशमप्रकरणं समाप्तम् ५